[वर्ष २ ; खंड २]   वैशाख, ३०० तुलसी-संवत   [संख्या ४ ; पूर्ण संख्या २२

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)   छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

॥ श्रीः ॥

माधुरी

विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र

मासिक पत्रिका

वर्ष २, खंड २

माघ-आषाढ़, ३०० तुलसी-संवत् (१९८०-८१ वि०)

फ़रवरी-जुलाई, १९२४ ई०

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

प्रकाशक—

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

वार्षिक मूल्य ६॥)] [छमाही मूल्य ३॥)

लेख-सूची

१—पद्य

२—गद्य

चित्र-सूची

क—रंगीन

ख—व्यंग्य

ग—सादे

छप गए ! छप गए !! छप गए !!!

हिंदी-साहित्य के तीन अनूठे ग्रंथ !

हिंदी-नवरत्न

हिंदी-संसार के सुपरिचित सुलेखक और सुकवि तथा स्वनामधन्य समालोचक "मिश्रबंधु"-रचित हिंदी के नव महाकवियों की जीवनियों और कविताओं पर समालोचनात्मक रीति से लिखा हुआ गवेषणा-पूर्ण ग्रंथ। संशोधित, संवर्धित, सुसंपादित एवं सुसज्जित द्वितीय संस्करण। यह द्वितीय संस्करण अनेक विशेषताओं से युक्त है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें महात्मा कबीरदास की आलो-चनात्मक जीवनी भी जोड़ दी गई है। महाकवियों के प्रामाणिक चित्र दिए गए हैं। पहले संस्करण से लगभग दूना बड़ा हो गया है। आज तक की नई खोजों का समावेश किया गया है। जो प्रथम संस्करण पढ़ चुके हैं, उनके लिये भी इसमें अनेक दर्शनीय नवीनताएँ हैं। इसका अंतरंग और बहिरंग पहले से बहुत-कुछ बदल गया है। एक प्रकार से यह सर्वांगसुंदर नूतन सृष्टि है। जिन्हें हिंदी के प्राचीन साहित्य की अपूर्वता और महत्ता पर इतराना हो, वे इसे अवश्य पढ़ें। इसे पढ़े बिना हिंदी-साहित्य के महान् गौरव-पूर्ण अंग से परिचित होना एक प्रकार से असंभव-सा है। पृष्ठ-संख्या लगभग ७००, सादे चित्र ६ और त्रिवर्ण चित्र २, ऐंटिक पेपर पर स्वच्छ एवं शुद्ध सुंदर छपाई, रंगीन रेशमी सुनहरी जिल्द, मूल्य लागत-मात्र केवल पाँच रुपए, सादी जिल्द ४॥) इस ग्रंथ के लिये साहित्या-नुरागी बरसों से लालायित थे। हमारे पास महीनों पहले ही से पेशगी ऑर्डरों का ढेर लगा हुआ है। यदि आप इसे मँगाने में देर करेंगे, तो फिर बरसों इसके तृतीय संस्करण की राह देखनी पड़ेगी। आज ही 'शुभस्य शीघ्रम्' कीजिए।

सुकवि-संकीर्तन

(ले०—साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिंदी-संसार को माननीय द्विवेदीजी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। आधुनिक हिंदी-साहित्य के निर्माण में आपकी प्रभावशालिनी लेखनी ने बहुत बड़ा काम किया है। अकेले 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा हिंदी की जो स्तुत्य सेवा आपने की है, केवल उसी के कारण साहित्य के इतिहास में आपका नाम सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। अस्तु। समय-समय पर आपने सुकवियों, कविता-प्रेमियों और कवि-कोविदों के आश्रयदाताओं के संबंध में जो परिचयात्मक लेख लिखे थे, 'सुकवि-संकीर्तन' में उन्हीं का सुसंपादित संग्रह है। आपकी ओजस्विनी लेखनी की सभी विशेषताएँ इन लेखों में मौजूद हैं। एक ओर सुंदर, सरल, सरस और प्रौढ़ गद्य का चमत्कार है, तो दूसरी ओर लेखक का अपूर्व अध्यवसाय, स्पष्ट मानसिक विकास तथा बहुव्यापक ज्ञान प्रति पृष्ठ में प्रतिबिंबित है। इन मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद लेखों में जो बातें वर्णित हैं, वे कभी पुरानी नहीं हो सकतीं। इन्हें बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं ऊब सकता। इसे पढ़ने में एक उपदेशप्रद उपन्यास का-सा आनंद आता है। कहीं साहित्यिक लालित्य है, कहीं अगाध पांडित्य है, कहीं काव्य की कमनीय छटा है, बिलकुल नायाब चीज़ है। इसमें दस चित्र भी हैं। एक बार अवश्य देखिए। मू० १।), सजिल्द १।)

मनोविज्ञान

(ले०—पंडित चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०, एल्० टी०)

इस पुस्तक में मनोविकारों, मानसिक वृत्तियों और मनोभावों तथा मनोवेगों का सूक्ष्म परिचय अतीव सरल एवं साधु भाषा में स्पष्टता-पूर्वक लिखा गया है। मुखाकृति से हृदय का परिचय जानने की कला से यदि आप परिचित होना चाहते हैं, तो इस पुस्तक का अध्ययन अवश्य कीजिए। प्रत्येक शिक्षक और छात्र के पास इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए। विषय गहन है, पर लेखन-शैली इतनी सरल और सरस है कि पुस्तक आरंभ करने पर बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। मनोरंजन और शिक्षा दोनों का उत्तम साधन है। बातें बहुत बारीक हैं, पर ऐसी रोचक रचना है कि क्रमशः पाठक की रुचि उत्तेजित होती चली जाती है। मूल्य ॥।), सुनहरी रेशमी जिल्द १।)

संचालक गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, २९-३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

शोभा

[चित्रकार—श्रीयुत हीरालाल-बब्बनजी]

अभिनव जोबन जोति-सों जगमग होत बिलास ;
तिय के तन-पानिप बढ़े पिय के नैननि प्यास ।

(मतिराम)

The Calcutta Phototone Company, Calcutta.

[... सचित्र मासिक पत्रिका]

वसंत

[१]

...

[२]

...

...ताहि जताइ दीजा,
... उर अमित उछाह लै;
... दै चटक गुलाबनि की
...त तोप मैन बादसाह लै।

... है।

"रत्नाकर"

शोभा

[चित्रकार—श्रीयुत हीरालाल-बब्बनजी]

अभिनव जोबन जोति-सो जगमग होत बिलास ;
तिय के तन-पानिप बढ़े पिय के ननानि प्यास ।

(मतिराम)

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !
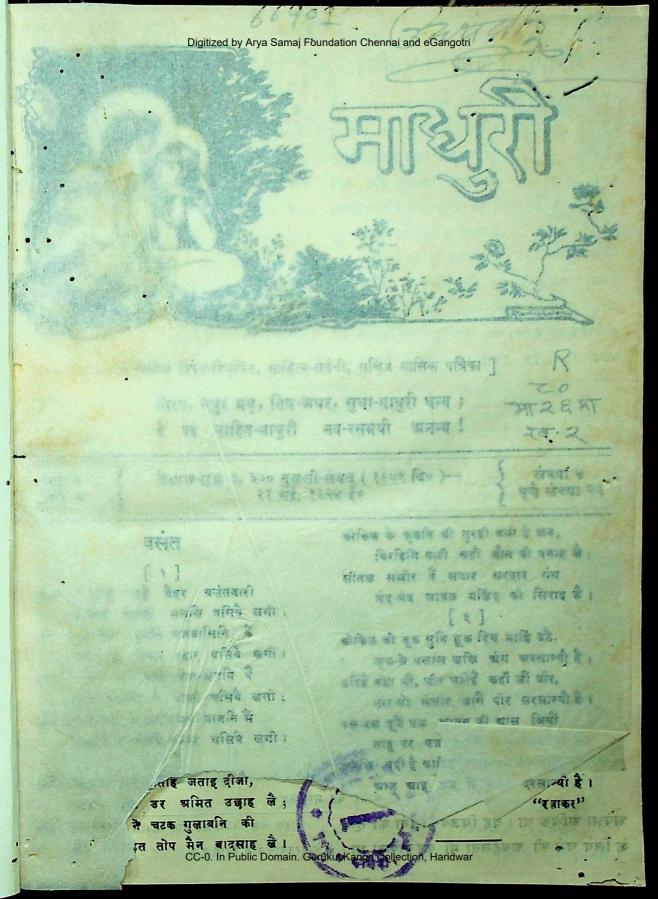
वर्ष २ खंड २ | वैशाख-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ११ मई, १९२४ ई० | संख्या ४ पूर्ण संख्या २२

वसंत

[१]

एकाएक आई कहूँ बैहर बसंतवारी
संतवारी मंडली मसूसि त्रसिबै लगी ;
कहै 'रतनाकर' दृगनि ब्रजबासिनि कैं
रंगनि की बिसद बहार बसिबै लगी ।
ससकन लागे बर बागे अंग-अंगनि पैं
उरज उतंगनि पैं चोली चसिबै लगी ;
धुनि डफ-तालनि की आनि बसी प्राननि मैं
ध्याननि मैं धमकि धमार धसिबै लगी ।

[२]

ऊधौ, जसवंत जाइ कंतहिं जताइ दीजौ,
आवत बसंत उर अमित उछाह लै ;
कहै 'रतनाकर' नै चटक गुलाबनि की
कोप कै चढ़त तोप मैन बादसाह लै ।
कोकिल के कूकनि की तुरही बजी है अब,
बिरहिनि बारी कहौ कौन की पनाह लै ;
सीतल समीर पैं सवार सरदार गंध
मंद-मंद आवत मलिंद की सिपाह लै ।

[३]

कोकिल की कूक सुनि हूक हिय माहिं उठै,
लूक-से पलास लखि अंग अरसान्यौ है ;
करिहैं कहा धौं, धीर धरिहैं कहाँ लौं बीर,
तीर-सो समीर लागैं पीर सरसान्यौ है ।
पल-पल दूजैं पल आवन की आस जियौं
ताहू पर पत्र आनि बिष बरसान्यौ है ;
अवधि बदी है कालिह आइबे की कंत अरु
आजु आइ ब्रज मैं बसंत दरसान्यौ है ।

"रत्नाकर"

अयोध्या में बाबर की मसजिद

भारत में मुग़ल-साम्राज्य का संस्थापक बाबर एक धर्मांध विजेता नहीं था। उसके जीवन के केवल अंतिम पाँच वर्ष (१५२६-३० ई०) हिंदुस्तान में व्यतीत हुए थे। बाबर के इससे पहले के जीवन पर विचार करने से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि उसके हृदय में समय-समय पर धार्मिक ग्लानि उत्पन्न हुआ करती थी, तथापि राज्य-लिप्सा का अधिकार उसके हृदय पर धार्मिक प्रेरणा की अपेक्षा अधिक था। वह विजय-वासना की तृप्ति के लिये धर्म की अवहेलना भी कर सकता था। मरने से पहले उसने अपने पुत्र के लिये कुछ उपदेश अंकित किए थे *। उनसे भी पता चलता है कि वह धार्मिक निष्पक्षता को अपने साम्राज्य की स्थिति के लिये आवश्यक समझता था। परंतु यदि उसकी हिंदुस्तान की कृतियाँ देखकर उस पर धर्मांधता का कलंक लगाया जाय, तो एक बार निरुत्तर ही होना पड़ेगा। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि बाबर की सेना के लोग मुसलमान थे, और यदि उन्हें धार्मिक प्रोत्साहन न दिया गया होता, तो वे हिंदुस्तान की विजय में बाबर के सहायक न हुए होते। और, बाबर था साम्राज्य का भूखा।

अपने अनुयायियों की धर्मांधता को संतुष्ट

बाबर की मसजिद

* इस लेख की मालिक प्रांत भोपाल की बेगम साहबा के पुस्तकालय में रक्खी है।

करने के लिये बाबर ने जो कार्य किए हैं, उनमें अयोध्या के सबसे पवित्र स्थल का विध्वंस भी एक है। अयोध्या भगवान् रामचंद्र की जन्म-भूमि तथा क्रीड़ा-भूमि है। वह हिंदुओं की सात महापुरियों में अग्रगण्य है। आज से चार सौ वर्ष पहले इस पुरी की प्रतिष्ठा कुछ कम न थी। यहाँ का सबसे पवित्र स्थान भगवान् रामचंद्र का जन्म-स्थान ("जन्मभूमि" का मंदिर) समझा जाता था। परंपरा से यह कहावत चली आती थी कि वह मंदिर ठीक उसी स्थल पर बना है, जहाँ पर रामचंद्र का जन्म हुआ था। समय का फेर देखिए, आज उसी पुनीत ऐतिहासिक स्थल पर एक मसजिद बनी हुई है, और वह "बाबर की मसजिद" के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त मसजिद, हिंदू-मंदिर का विध्वंस करके, और एच० आर० नेविल महोदय के लेखानुसार * अधिकतर उसी की सामग्री से, बनाई गई है। इस मसजिद के भीतर १२, और बाहर, फाटक पर, २, काले, कसौटी के पत्थर के, स्तंभ लगे हुए हैं। केवल ये स्तंभ ही अब प्राचीन मंदिर का स्मारक या भग्नावशेष-मात्र शेष रह गए हैं। ऐसे दो स्तंभ फ़ैज़ाबाद के अजायबघर में भी रक्खे हुए हैं। इन स्तंभों को देखकर पुराने मंदिर की सुंदरता का, किसी अंश तक, अनुमान किया जा सकता है। इन स्तंभों की लंबाई ७ से ८ फ़ीट तक है। किनारों पर तथा बीच में तो ये चौखुंटे हैं, पर इनका शेष भाग गोल या अठपहलू है। इन पर बड़ा सुंदर नक़्क़ाशी का काम बना हुआ है।

यह मसजिद सुरक्षित रूप से स्थित है। इसके भीतर, 'मिंबर †' पर, तथा बाहर, फाटक पर, दो पद्य-लेख खुदे हुए हैं। उनसे मसजिद के संबंध में कुछ बातें ज्ञात होती हैं। मसजिद के भीतर-वाला लेख अधिक महत्त्व का है। वह इस प्रकार है—

(۱) بفرمودهٔ شاه بابر که عدلش
بنا بست تا کاخ گردون ملاقی
(۲) بنا کرد این مهبط قدسیان
امیر سعادت نشان میر باقی
(۳) بود خیر باقی چو سال بنایش
عیان شد که گفتم بود خیر باقی

इन शेरों का नागराक्षरों में पाठ इस प्रकार होगा—

(१) ब फ़रमूद-ए-शाह बाबर कि अदलश,
बना ईस्त ता काख़ गरदूँ मुलाक़ी।
(२) बिना कर्द ईं महबते कुदसियाँ,
अमीरे सआदत निशाँ मीर बाक़ी।
(३) बुवद खैर बाक़ी चु साले बिनायश,
अयाँ शुद कि गुफ़्तम बुवद खैर बाक़ी।"

इनका अनुवाद यह होगा—

१—बाबर शाह की आज्ञा से, जिसके कि न्याय की ध्वजा आकाश तक पहुँची हुई है,
२—नेक-दिल मीर बाक़ी ने फ़रिश्तों के उतरने के लिये यह स्थान बनाया है,
३—उसकी कृपा सदा बनी रहे! (बुवद खैर बाक़ी)।—इसी टुकड़े में इस इमारत के बनने का वर्ष, ९३५ हिजरी, भी निकल आता है।

लेख अपने स्थान के लिये उपयुक्त ही है। इस लेख से तीन बातें ज्ञात होती हैं। एक तो यह कि मसजिद बाबर की आज्ञा से बनी थी; दूसरी यह कि उसे मीर बाक़ी ने बनवाया था; तीसरी यह कि ९३५ हिजरी (तदनुसार १५२८ ई०) में बनी थी। यह तिथि या तारीख मुसलमानी

* फ़ैज़ाबाद-डिस्ट्रिक्ट-गज़ेटियर (१९०५), पृष्ठ १७३ देखो।
† वह आसन, जहाँ से खुतबा पढ़ा जाता है।

गणना-रीति से "बुवद ख़ैर बाक़ी" इस वाक्य से निकल आती है। *

यद्यपि इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मसजिद बाबर ही की बनवाई हुई है, तथापि यह बात ज्ञातव्य है कि किसी मुसलमानी इतिहासकार के लेख में इसके निर्माण का ज़िक्र भी नहीं आया। यहाँ तक कि स्वयं बाबर के "आत्म-चरित" (बाबरनामा) में, जिसमें कि वह अपनी छोटी-छोटी बातें भी लिख लिया करता था, इसका कोई वर्णन नहीं है। इसका कारण संभवतः यह है कि जो बाबरनामा प्राप्त है, उसके इस समय के इंदराज खंडित हैं। संभव है, इसका वर्णन उसी लुप्त अंश में रहा हो। परंतु जो अंश प्राप्त हैं, उनमें इस मसजिद के बनने की न आज्ञा का ही इंदराज है, और न समाप्ति का ही।

हाँ, बाबरनामे से इस बात का पता चलता है कि ९३४ हिजरी के मुसलमानी महीने रजब में—तदनुसार १५२७ ई० के मार्च-मास के अंत में—बाबर ने औद (अवध या अयोध्या) के निकट पड़ाव डाला था, और अवध के प्रबंध के संबंध में कुछ काररवाई की थी। अनुमान होता है कि बाबर से इसी समय मसजिद के बनाने की आज्ञा ली गई होगी।

यद्यपि बाबरनामे में मीर बाक़ी नाम के कई व्यक्ति हैं, तथापि इसका पता चलाना कठिन नहीं है कि यह मीर बाक़ी कौन था? यह बाक़ीबेग नाम का एक सरदार था, जो ताशकंद (मध्य-एशिया) का निवासी था। यह बाबर के साथ कई स्थलों पर रहा है। बाक़ीबेग ताशकंदी का नाम बाबर-नामे में कई जगह आता है। यह भी पता चलता है कि अवध का प्रबंध करने के लिये जो सेना नियुक्त थी, उसका अफ़सर यही था। सन् ९३५ हिजरी में ही इसकी सेना को छुट्टी मिल गई थी, और यह भी घर जाने की छुट्टी पा गया था।

मसजिद के बाहरवाला लेख खंडित है। पहले तीन शेर पढ़े जा सकते हैं। शेष लेख अब नहीं पढ़ा जाता। वे तीनों शेर ये हैं—

(१) بنام آنکه دانا هست اکبر
که خالق جمله عالم لامکانی
(२) درود مصطفی بعد ازستایش
که سرورانبیائے دو جهانی
(३) فسانه در جهان بابر قلندر
که شد دردور گیتی کامرانی

इनका नागराक्षरों में पाठ इस प्रकार होगा—

(१) "ब नामे आँकि दाना हस्त अकबर,
कि खालिक़ जुमला आलम लामकानी।
(२) दुरूदे मुस्तफ़ा बादज सतायश,
कि सरवर अंबियाए दोजहानी।
(३) फ़साना दर जहाँ बाबर क़लंदर,
कि शुद दर दौर गेती कामरानी। × × ×"

प्रथम शेर में खुदा की तारीफ़ है कि वह "संपूर्ण जगत् का सृष्टिकर्ता तथा स्वयं निवास-रहित है।" दूसरे में हज़रत मुहम्मद की तारीफ़ है कि वह "दोनों जहान तथा पैग़ंबरों के सरदार हैं।" तीसरे में बाबर की प्रशंसा है; परंतु वाक्य पूरा नहीं है, बाद की पंक्तियों में अर्थ पूरा होता है। इस अपूर्ण वाक्य में बाबर के क़लंदर के नाम से प्रसिद्ध होने का कारण बतलाया है। तात्पर्य यह कि भारत-विजय

* ب=२, و=६, د=४ जोड़ १२
خ=६००, ي=१०, ر=२०० ,, ८१०
ب=२, ا=१, ق=१००, ى=१० ,, ११३
कुल जोड़ ९३५

करने के कारण अब उसकी भाग्यशालिता अंतिम कोटि या परा काष्ठा तक पहुँच गई, और उसे किसी और सफलता की अभिलाषा नहीं रही। क़लंदर का अर्थ फ़क़ीर होता है। परंतु, जैसी कि श्रीमती नेवरिज महोदया ने * टिप्पणी की है, फ़रिश्ता ने बाबर के क़लंदर के नाम से ख्याति पाने का दूसरा ही कारण बताया है। बाबर ने हिंदुस्तान जीतने के समय जो ख़ज़ाना पाया, उसमें से अपने लिये कुछ भी न रखकर सब कुछ दूसरों को बाँट दिया था। इसी से वह क़लंदर प्रसिद्ध हुआ। इस पद्य में निर्दिष्ट अर्थ विशेष मान्य होना चाहिए; क्योंकि यह लेख समसामयिक है।

यह बाबरी मसजिद पत्थर-चूने की बनी इमारत है; बहुत मज़बूत और सादी बनी हुई है। यह मुग़ल-काल की प्रथम इमारतों में से है। इसमें निर्माण-कला के उस विकास का पता नहीं चलता, जो बाद के मुग़ल-बादशाहों की निर्माण-कला में देख पड़ता है।

यह मसजिद कई बार हिंदू-मुसलमानों के बीच रक्त-पात का कारण बन चुकी है †। सन् १८५५ में यहाँ हिंदू-मुसलमानों में बहुत झगड़ा हुआ था, जिसमें दोनों पक्ष के बहुत-से लोग काम आए थे। वहीं, मसजिद के फाटक के सामने, ७५ मुसलमान दफ़न कर दिए गए थे। वह स्थान "गंजे-शहीदाँ" के नाम से प्रसिद्ध है।

नया "जन्मभूमि का मंदिर" बहुत समय पीछे का और नक़ली है। बड़े पुजारियों ने मसजिद के बाहर, टीन के सायबान में, कुछ मूर्तियाँ रखकर यात्रियों से पुजाने का ढंग रच लिया है।

* बाबरनामा, अनुक्रमणिका, पृष्ठ ७९ देखो।

† फ़ैज़ाबाद-डिस्ट्रिक्ट-गजेटियर, पृष्ठ १७४ देखो।

इस लेख के साथ जो बाबर की मसजिद का चित्र लगा हुआ है, वह मैंने राजा दुर्गाप्रसाद की उर्दू "तारीख़-ए-अयोध्या" (नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से १९०२ ई० में प्रकाशित) से उद्धृत किया है।

रामचंद्र टंडन

महाकवि भूषण और मतिराम

(समय और संबंध)

हम लोगों ने महाकवि भूषण और मतिराम के विषय में, भूषण-ग्रंथावली, मिश्रबंधु-विनोद तथा हिंदी-नवरत्न में, समय-समय पर अपने विचार प्रकट किए हैं। उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त समालोचक, देवनागर, सरस्वती आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी यदा-कदा इनके विषय में लेख लिखे थे। भूषण-ग्रंथावली को काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा ने प्रकाशित किया था। हाल में सभा ने उसका तीसरा संस्करण निकाला है। मिश्र-बंधु-विनोद का दूसरा संस्करण तैयार हो रहा है, तथा हिंदी-नवरत्न का दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। हमारे अतिरिक्त 'वंगवासी'-कार्यालय की भी किसी पुस्तक की भूमिका में इन महाकवियों तथा इनके भाई चिंतामणि के विषय में सार-गर्भित विचार प्रकट किए गए थे। डॉक्टर, सर ग्रियर्सन तथा शिवसिंहसरोजकार ने भी ऐसा ही किया था। उक्त महाशयों तथा हम लोगों ने यह लिखा था कि चिंतामणि, भूषण, मतिराम तथा नीलकंठ (उपनाम जटाशंकर) भाई-भाई थे। यह विचार बहुत करके जनश्रुति के आधार पर अवलंबित है। हिंदी के बहुतेरे अन्य लेखकों ने भी इस विषय पर ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं। प्रथम तीन महाशयों के सत्कवि होने से, किसी-किसी ने चौथे भाई जटाशंकर का नाम न लिखकर प्रथम तीन ही भाइयों का विवरण दिया है। जटाशंकर के साधारण कवि होने से उनका नाम आवश्यक भी नहीं है। सारांश यह

कि अब तक किसी ने इनके भ्रातृ-संबंध पर संदेह नहीं प्रकट किया था। हाँ, समय के विषय में कुछ मत-भेद अवश्य था; क्योंकि, यद्यपि इन भाइयों के बहुत-से ग्रंथ उपलब्ध हो चुके हैं, तथापि सिवा शिवराज-भूषण के और किसी में उनकी रचनाओं का समय नहीं मिलता। शिवराज-भूषण महाकवि भूषण-कृत है। इसमें, भूषण-ग्रंथावली के तीनों संस्करणों में, समय-संबंधी दोहा यों लिखा है—

"सुभ सत्रह सै तीस पर बुध सुदि तेरस मान;
भूषन शिवभूषन कियो पढ़ियो, सुनो सुजान।"

शिवराज-भूषण में शिवाजी-संबंधी जो छंद भूषण ने लिखे हैं, उनमें से बहुतेरे वर्तमान-कालिक क्रिया में कहे गए हैं। इसके अतिरिक्त शिवाजी का रायगढ़ में रहना आपने वर्तमान-काल की क्रिया में लिखा है, अथ च शिवाजी के औरंगज़ेब के यहाँ क़ैद होने तथा वहाँ से निकल आने का बहुत प्रभाव-पूर्ण वर्णन भी आपने ग्रंथारंभ में ही किया है। आपने इस ग्रंथ में, तथा अन्य ग्रंथों में भी, शिवाजी-संबंधी अनेक घटनाओं का प्रभाव-पूर्ण वर्णन किया है। इन घटनाओं के कथन में न्यूनाधिक्य, वर्णन-प्रणाली तथा भूषण के जीवन-चरित्र से संबद्ध अनेकानेक जनश्रुतियों को मिलाकर, सब बातों पर बहुत ध्यान पूर्वक मनन करके, हमने भूषण महाकवि का जन्म-काल संवत् १६९२ के लगभग माना था, और यही विचार भूषण-ग्रंथावली के प्रथम दो संस्करणों की भूमिका एवं हिंदी-नवरत्न के प्रथम संस्करण में प्रकट किया था। उक्त दोहे में भूषण ने तिथि, पक्ष तथा संवत् तो लिखा है, किंतु मास नहीं लिखा। यह देखकर हमने महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी से प्रार्थना करके संवत् १७३० का पंचांग बनवाया, तो जान पड़ा कि संवत् १७३० में बुध के दिन शुक्ला त्रयोदशी श्रावण तथा कार्त्तिक में पड़ी थी। किंतु वह कार्त्तिक में थोड़ी तथा श्रावण में अधिक थी। इसलिये शिवराज-भूषण का समाप्त होना हमने श्रावण-शुक्ला त्रयोदशी, बुधवार, को माना था।

यह सदैव मानना ही पड़ता है कि लिखित घटनाओं के सम्मुख, तुलनात्मक दृष्टि से, ढाई ढाई सौ वर्षों से प्रचलित किंवदंतियाँ श्रेष्ठतर नहीं मानी जा सकतीं; क्योंकि विविध लोगों के मुखों से फैलती हुई बात थोड़े ही दिनों और थोड़ी ही दूर में कुछ-की-कुछ सुनाई देने लगती है। फिर भी, कुछ नहीं से वह भी श्रेष्ठतर है। अतएव जिसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता, उसके बारे में लिखते समय किंवदंतियों का दुर्बल सहारा लेना ही पड़ता है। हिंदी-नवरत्न प्रकाशित होने के थोड़े ही दिन पीछे काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा द्वारा होनेवाली हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज में संवत् १६९८ का रचा हुआ जटाशंकर-कृत 'अमरेश-विलास' नाम का ग्रंथ प्राप्त हुआ। किंवदंती यह कहती थी कि जटाशंकर भूषण के सबसे छोटे भाई थे। अतएव पहले के विचार को छोड़कर हमने भूषण का जन्म-संवत् लगभग १६९२ के स्थान पर, लगभग १६७० मान लिया; और चार-चार वर्षों का अंतर मानकर चिंतामणि, मतिराम तथा जटाशंकर के जन्म-संवत् क्रमशः १६६६, १६७४, और १६७८ अनुमान किए। अन्य विचारों से भूषण का जन्म-संवत् १६९२ के लगभग बैठता था, सो इसे पीछे हटाने में हमने जहाँ तक कम हो सका उतना ही हटाया। इसीलिये जटाशंकर का ग्रंथ-रचना-काल बीस ही वर्ष की अवस्था में मानकर उनका जन्म-संवत् १६७८ कहा, और उनसे तीनों बड़े भाइयों को एक दूसरे से चार-चार वर्ष और पीछे हटा दिया। मिश्र-बंधु-विनोद में इन्हीं विचारों के अनुसार इन भाइयों के समय लिखे गए। भूषण ने एक छंद में शिवाजी के पौत्र साहूजी की उत्तरवाली चढ़ाई का उल्लेख किया है, जो संवत् १७७२ में हुई थी। इस कारण इन महाकवि की उपस्थिति संवत् १७७२ में माननी पड़ती थी। अतः इनका जन्म-संवत् जितना ही पीछे हटाना पड़ता था, इनकी अवस्था उतनी ही अधिक होती जाती थी। इनका जन्म-काल संवत् १६९२ वि० मानने में और कारणों के साथ यह विचार भी एक कारण था। इन भ्राताओं के किसी अन्य ग्रंथ में अब तक समय का उल्लेख नहीं मिला था। हम लोगों को केवल इतना ज्ञात था कि संवत् १६९८ में जटाशंकर ने अमरेश-विलास रचा, और संवत् १७३० में भूषण ने शिवराज-भूषण। इनके समय-संबंधी विचारों को पुष्ट करने में दृढ़ घटनाएँ ये ही दो थीं। शेष कथन जनश्रुतियों तथा भूषण द्वारा विविध घटनाओं के कथनों पर अवलंबित थे। ऐसे विचारों के आधार पर जो मत स्थिर किए जायँ, वे सिद्धांत

कहलाकर अनुमान ही माने जायँगे। अतएव आगे आनेवाली गवेषणाओं से यदि कोई नवीन घटनाएँ ज्ञात हों, तो यह नहीं कहा जा सकेगा कि समस्त पूर्ववर्ती समालोचकों के मतों का खंडन हो गया। बल्कि इतना ही कहा जा सकेगा कि नवीन दृढ़ घटनाओं के ज्ञात होने से हिंदी-मर्मज्ञों के वर्तमान ज्ञान में वृद्धि हुई।

हाल में काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा ने हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण का पहला भाग प्रकाशित किया है। इसकी प्रस्तावना में मित्रवर बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० ने इन त्रिपाठी-बंधुओं के विषय में पंडित भागीरथप्रसाद का मत प्रकट किया है। पंडितजी ने इन कवियों के विषय में तीन प्रकार के कथन किए हैं—(१) इन कवियों के बारे में नवीन घटनाओं का ज्ञान, (२) उन घटनाओं से निष्कर्षों का निकालना, और (३) इस संबंध में पूर्ववर्ती समालोचकों, विशेषकर हम लोगों, का भ्रम दिखाना। ये ही तीन विषय पंडित भागीरथप्रसाद के कथन में प्रधान हैं, विशेषकर पिछले दोनों। अब हम इन तीनों पर यथाक्रम विचार करते हुए अपना मत भी प्रकट करते जायँगे।

(१) वृत्तकौमुदी-नामक एक नया ग्रंथ खोज में प्राप्त हुआ है। उसमें लिखा है, किसी मतिराम त्रिपाठी ने उसे संवत् १७५८ में रचा। यह मतिराम अपने को वत्सगोत्री त्रिपाठी, विश्वनाथ का पुत्र तथा श्रुतिधर का भतीजा बतलाते हैं। भूषण आदि से आप अपना कोई संबंध प्रकट नहीं करते। इस ग्रंथ की रचना के दो उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं—

"अति अथाह गुनसिंधु सूर कासीनरेस हुव ;
आतपत्र धरि धीर धरनि-मंडन प्रसिद्ध भुव।
विक्रम जिमि पथिराज सबल पारथ पृथु पेक्खिय ;
छात्र-धर्म प्रतिपालि दान कृप, कर्न सुलेक्खिय।
मधुसाहि-सुअन बुंदेल घर बीरसिंह अवतार लिय ;
जब जूथ प्रबल मंडिय जगत, सत्रपति बिदिसि-दिसि हद्द किय।
बसु कीरति कमनीय करिय दिन दान आमत करि ;
हद्द हिम्मत हिंदुवान पेंड़ि रक्खिय सु भुजन धरि।
असि कास खंड अराति अखिल सज्जन सुख संचिय ;
देवराज सम साज मौज फौजनि बर रंचिय।
बुंदेलबीर कुंजरपती चंद्रभान महिपाल सुव ;
धनि धीर, धरनि-मंडन प्रबल सुमिरसाहि नरनाह हुव।"

पंडितजी का विचार है कि यह रचना ललितललाम की प्रणाली से मिलती है। हमने मतिराम की रचना में छंदोभंग नहीं देखा; किंतु इन दोनों छंदों में छंदोभंग विद्यमान है। पंडितजी ने चार छप्पय और इस ग्रंथ से लिखे हैं। उन सबमें भी ऐसे-ही-ऐसे भद्दे छंदोभंग हैं। यहाँ तक कि एक-दो दोहों में भी छंदोभंग हुआ है। यदि ग्रंथ के अन्य छंद भी ऐसे ही भ्रष्ट हैं, जैसे कि पंडितजी ने उद्धृत किए हैं, तो हमें कहना पड़ेगा कि रसराजकार मतिराम को ऐसे ग्रंथ का रचयिता बतलाना उनके ऊपर पूरा कलंक आरोपित करना है। फिर भी, संभव है, असली ग्रंथ में छंदोभंग न हो, और यह दोष उक्त पंडितजी अथवा अन्य लेखकों की कृपा का फल-मात्र हो। यदि कोई हिंदी-मर्मज्ञ इन छंदों को प्रकाशित करता, तो ये छंदोभंग सुगमता-पूर्वक निकाले जा सकते थे। अतएव हम माने लेते हैं कि उक्त भद्दे छंदोभंग कवि कृत न होकर अनभिज्ञ लेखकों का कृत्य-मात्र हैं। दूसरा विषय छंदों की प्रौढ़ता का है। इसमें भी ये छंद, हमारी सम्मति में, रसराजकार की साहित्य-प्रौढ़ता के चतुर्थांश को भी नहीं पाते। वृत्तकौमुदी हमारे देखने में नहीं आई। इसके जो छंद पंडितजी ने उद्धृत किए हैं, उनमें ओज-गुण की प्रधानता है, और प्रसाद-गुण का नितांत शैथिल्य। यह रचना-शैली मतिराम की नहीं है। ललितललाम के कुछ छंद ओज-पूर्ण अवश्य हैं; किंतु, फिर भी, उसमें प्रसाद-गुण का सौंदर्य विद्यमान है, जो वृत्तकौमुदी के उद्धृत छंदों में अप्राप्य है। ललितललाम संवत् १७४५ के पूर्व का ग्रंथ है, और रसराज हमने संवत् १७६७ के लगभग का माना है। ललितललाम तथा रसराज के गुणों में पृथ्वी-आकाश का अंतर है। उसके चुने हुए छंद रसराज के साधारण छंदों के समान हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि मतिराम ने कोई क्रमोन्नति न करके संवत् १७६७ के लगभग एकबारगी भारी कवित्व-शक्ति प्राप्त कर ली। वृत्तकौमुदी के उद्धृत छंद हमें ललितललाम के उत्कृष्ट छंदों से हेय समझ पड़ते हैं। अतएव यदि रसराजकार मतिराम का संवत् १७५८ में वृत्तकौमुदी बनाना माना जाय, तो यह भी मानना पड़ेगा कि ललितललाम के पीछे १३-१४ वर्ष तक, संवत् १७५८ पर्यंत, उनकी कवित्व-शक्ति की अवनति हुई, और फिर संवत् १७६७ के लगभग उन्होंने अद्वितीय कवित्व-

शक्ति प्राप्त कर ली। इन कारणों से हमें समझ पड़ता है कि यह वृत्तकौमुदी ग्रंथ ललितललाम तथा रसराज बनानेवाले मतिराम की रचना नहीं है। फिर भी, जब तक पूरा ग्रंथ न देखा जाय, तब तक उसके विषय में दृढ़ता-पूर्वक कोई मत नहीं प्रकट किया जा सकता; क्योंकि यह भी संभव है कि ग्रंथ के बहुतेरे अन्य छंद परमोत्कृष्ट हों, और उक्त पंडितजी ने शिथिल छंद ही उद्धृत किए हों। यह भय इस कारण उपस्थित होता है कि आपने जितने छप्पय उद्धृत किए हैं, सब छंदो-भंग से दूषित हैं। किंतु यह नहीं जान पड़ता कि इस ग्रंथ में कोई भी छंद शुद्ध न हो। उद्धृत छंदों को देखकर इतना अवश्य कहना पड़ता है कि यदि शेष छंद भी ऐसे ही हैं, तो यह ग्रंथ ललितललाम क्या, चंद्रशेखर-कृत हम्मीरहठ से भी निकृष्टतर है। ऐसे ओज-पूर्ण छंद हिंदी के बहुतेरे अन्य कवियों ने बनाए हैं। फिर भी बहस के ख़याल से हम माने लेते हैं कि वृत्तकौमुदी रसराजकार मतिराम ही का ग्रंथ है।

उक्त पंडितजी ने लिखा है कि शिवराज-भूषण का ऊपर लिखा हुआ दोहा भूषण-कृत न होकर किसी अन्य कवि का है। उसका पाठ आप यों लिखते हैं—

"संवत् सत्रह सैंतीस सुचि बदि तेरस मान ;
भूषन शिवभूषन कियो, पढ़ौ, सुनौ सज्ञान।"

इसी के साथवाले भूषण-कृत छंद का पाठ आप इस प्रकार लिखते हैं—

"एक प्रभुता को धाम सजै तीनै बेद काम
रहै पंचानन बड़ानन राजी सर्वदा;
सातो बार आठो जाम जाचिक निवाजे अव-
तार थिराजे क्रिपान ज्यों हरि गदा।
शिवराज-भूषण अटल रहै तो लौं जो लौं
त्रिदस भुअन सब गंग औ नरमदा;
साहि-तनै साहसीक भौंसला सरजा बंस,
दासरथी जा रसता सरजा विसरदा।"
(३२० छंद, पृष्ठ २४, १३२)

इसी छंद का शुद्ध रूप हमारी भूषण-ग्रंथावली में इस प्रकार है—

"एक प्रभुता को धाम, सजे तीनौ बेद काम,
रहैं पंच आनन षड़ानन सरबदा;
सातौ बार आठौ जाम जाचक नेवाजै, नव
अवतार थिर राजै कृपन हरि गदा।
सिवराज-भूषन अटल रहै तौ लौं, जौ लौं
त्रिदस भुवन सब गंग औ नरमदा;
साहि-तनै साहसीक भौंसिला सुरज-बंस,
दासरथि राज तौ लौं सरजा थिर सदा।"

दोहे का शुद्ध रूप हम ऊपर लिख ही चुके हैं। हमें शोक है कि छंदोभंग पंजा झाड़कर हमारे पंडितजी के ऐसा पीछे पड़ा है कि वह जो छंद उद्धृत करते हैं, उसी में विना छंदोभंग लाए उन्हें चैन ही नहीं। बेचारे भूषण का एक दोहा और छंद उद्धृत किया, तो उनमें भी छंदोभंग की भरमार मचा दी। आपका कथन है कि भूषण के ये दो छंद केवल बनारस-पुस्तकालय की प्रति में पाए जाते हैं, अन्यत्र नहीं; और, मनहरन के शिथिल छंद होने के कारण वह भूषण-कृत नहीं है। मनहरन बेचारा क्या करे, जब आप ही उसमें अशुद्धियाँ करके छापें, और फिर भ्रष्ट बतावें? उसका शुद्ध रूप, जो भूषण-ग्रंथावली में दशाब्दियों से छपा है, ऐसा भ्रष्ट नहीं है। छंद बहुत उत्कृष्ट नहीं है, किंतु ख़ासा है। भूषण के कई अन्य छंद इससे भी गए-बीते हैं। फिर यदि यह भूषण-कृत न भी हो, तो दोहे पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है? केवल बुरे छंद के निकट-वर्ती होने से दोहा त्याज्य नहीं हो सकता। आपका कथन है कि भूषण का यह दोहा सुचि अर्थात् आषाढ़-बदी तेरस को रविवार होना लिखता है; किंतु संवत् १७३० (या १७३७) में उस तिथि को बुधवार था, रविवार नहीं। किंतु आपके दोहे में दिन का कथन तो है ही नहीं, फिर यदि रवि अथवा बुध, कोई भी वार उस तिथि को पड़े, तो उससे दोहे में कैसे अशुद्धि स्थापित होती है? जब अशुद्धि नहीं, तो दोहे के कल्पित होने का अनुमान कैसा? आप कहते हैं, सिवा काशिराज के पुस्तकालय की प्रति के और किसी भी प्राप्त प्रति में यह दोहा नहीं है। हमने भूषण-ग्रंथावली संपादित करते समय शिवराज-भूषण की सात प्रतियाँ इकट्ठी की थीं, जो कलकत्ता, लखनऊ, पूना, बंबई, बाराबंकी, सीतापुर तथा काठियावाड़ की थीं। हमने बनारसवाली प्रति अद्यापि नहीं देखी; किंतु, फिर भी, उक्त सात प्रतियों को देखकर उक्त दोहे तथा मनहरन-छंद का पूर्वोक्त

रूप में, भूषण-ग्रंथावली के शिवराज-भूषण में, स्थान दिया है। इससे आपका यह कथन असिद्ध ठहरता है कि सिवा बनारसवाली प्रति के यह दोहा अन्यत्र नहीं मिलता। बनारसवाली प्रति भी विना उचित कारणों के अशुद्ध नहीं मानी जा सकती। दोहे का जो रूप हमने लिखा है, उसमें सब बातें ठीक-ठीक बैठ जाती हैं, जैसा कि हमने ऊपर दिखलाया है। शिवराज-भूषण में शिवाजी की जीवनी के संबंध की अनेकानेक घटनाएँ कही गईं, किंतु संवत् १७३० के आगे की एक भी घटना उसमें कथित नहीं है, यद्यपि इसके पीछे उनका शरीर सात वर्ष और रहा था, और इन सात वर्षों में अनेकानेक महती घटनाएँ भी संघटित हुई थीं, जो पूर्व-घटनाओं से गौरव में बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। यदि यह ग्रंथ साहूजी के समय में बना होता, जैसा कि आप प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं, तो इसमें शिवाजी-संबंधी (संवत् १७१६ से संवत् १७३० तक की) घटनाएँ ही क्यों होतीं, और उससे आगे की क्यों न होतीं? संवत् १७१६ से पहलेवाली घटनाएँ साधारण होने से कवियों के काम की न थीं, अतः नहीं कही गईं। किंतु १७३० से आनेवाली घटनाएँ बहुत महत्त्व-पूर्ण थीं, जिनका वर्णन शिवाबावनी में तो भूषणजी ने अधिकता से किया, किंतु शिवराज-भूषण में नहीं। इससे स्पष्ट प्रकट है कि शिवराज-भूषण संवत् १७३० में ही समाप्त हुआ, जैसा कि वह कहते भी हैं। संवत् का दोहा कहकर दूसरे ही छंद, अर्थात् उक्त मनहरन, में कवि ने शिवाजी को दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद दिया है। इससे भी ग्रंथ का शिवाजी के जीवन-काल में ही समाप्त होना सिद्ध होता है। इसी मनहरन के पीछे ग्रंथ का अंतिम पद्य लिखा गया है, जो इस प्रकार है—

"पुहुमि, पानि, रबि, ससि, पवन जब लौं रहैं अकास ;
सिव सरजा तब लौं जियौ भूषन सुजस प्रकास।"

अतएव हमारे पंडितजी का यह तर्क निकलता है कि भूषण महाराज शिवाजी के मरने के ३४ वर्ष पीछे उनको चिरंजीवि होने का आशीर्वाद देते हैं। सारा ग्रंथ शिवाजी का वर्णन वर्तमान-काल में करता है, और अनेक स्थानों पर उनको मंगल-वृद्धि तथा अन्यान्य आशीर्वाद देता है। फिर भी, जिन [illegible] कारण दिखाए, हमारे पंडितजी उस सब कथन को अनर्गल-वाद और कपोल-कल्पना-मात्र समझते हैं!

महाराज छत्रसाल का जन्म संवत् १७०६ में हुआ था, जैसा कि इतिहास-प्रसिद्ध है। उनके समकालीन लाल कवि भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ छत्र-प्रकाश में यही कहते हैं। यथा—

"संवत सत्रह से गए आठ अगेरे बीस ;
लगत बरस बाईसई उमड़ि चल्यौ अवनीस।"

इन्हीं महाराज छत्रसाल को, उन्हीं के सामने, भूषण बालक महाराज कहते हैं। यथा—

"लाल छितिपाल छत्रसाल महाबाहु बली,
कहाँ लौं बखान करौं तेरी करवाल को।"

जो मनुष्य संवत् १७०६ में उत्पन्न प्रसिद्ध महाराजा छत्रसाल को, उन्हीं के मुँह पर, बालक महाराज कहे, वह अवस्था में उनसे बहुत बड़ा अवश्य होगा। यह विचार भूषण के संवत् १६९२ के भी पहले के जन्म-काल को पुष्टि-प्रदान करता है। पंडित भागीरथप्रसादजी ने प्रसिद्ध भगवंतराय खींची असोथर-नरेश का मृत्यु-काल संवत् १७९७ माना है, और अपने विचार में इस घटना के कथन का भूषण-कृत यह छंद उद्धृत किया है—

"उठि गयो आलम सों रुजुक सिपाहिन को,
उठि गो बँधैया सबै बीरता के बाने को ;
'भूषन' भनत उठि गयो है धरा सों धर्म,
उठि गो सिंगार सबै राजा, राव, राने को।
उठि गो सुसील कवि, उठि गो जसीलो डील,
फैलो मध्य-देस में समूह तुरकाने को ;
फूटे भाल भिच्छुक के, जूझे जसवंतराय,
अरराय टूटो कुल-खंभ हिंदुवाने को।"

उक्त छंद में भी आपने कई छंदोभंग किए थे ; किंतु हमने छंद शुद्ध करके लिखा है। परंतु आश्चर्य यह होता है कि आप इसे युक्त-प्रांत के, फ़तेहपुर ज़िले के, राजा भगवंतराय खींची के विषय का कैसे मानते हैं; क्योंकि छंद तो किसी जसवंतराय का उल्लेख करता है, और उनके जूझने से मध्य-प्रदेश में, न कि युक्त-प्रांत में, तुरकों का फैलना लिखता है। जान पड़ता है, उस समय मध्य-प्रदेश में कोई जसवंतराय होंगे, जिनका वर्णन भूषण ने किया है। अतः इस छंद से उनका संवत् [illegible] तक जीवित रहना सिद्ध नहीं होता। यदि

भगवंतराय खीँची का भी कोई छंद भूषण महाराज ने लिखा होता, तो भी भूषण का जीवन १२७ वर्ष का ठहरता, जो दुर्घट अवश्य है, किंतु असंभव नहीं। कहते हैं, शेख़ सादी १२० वर्ष जीवित रहे थे। यदि भूषण का जीना उतना ही, या उससे कुछ अधिक भी, सिद्ध हो, तो केवल इसी बात से उनके संबंध की सारी जन-श्रुतियाँ तथा पूर्वोक्त प्रमाण अनर्गल नहीं माने जा सकते। यह भी नहीं कहा जा सकता कि सौ वर्ष के पीछे प्रत्येक मनुष्य की मानसिक शक्तियों का ऐसा क्षय हो जाता है कि इस अवस्था के पीछे भूषण का-सा प्रतिभाशाली कवि एक भी उत्कृष्ट छंद न बना सके। संभव है, भूषण का शारीरिक तथा मानसिक बल बहुत बढ़ा-चढ़ा हो। फिर उक्त छंद के भगवंतराय खीँची-विषयक न होने से भूषण की अवस्था इतनी लंबी-चौड़ी सिद्ध भी नहीं होती। अतएव पंडितजी के कुल प्रमाणों पर युक्ति-पूर्वक विचार करने से केवल इतना तथ्यांश निकलता है कि यदि वृत्तकौमुदी रचनाकार मतिराम-कृत मानी जाय, तो वह भूषण के सगोत्र न थे।

(२) पंडितजी के आधारों का उल्लेख हम ऊपर कर चुके। उन पर विचार भी हो चुका। अब हम उन आधारों से निकाले हुए आपके निष्कर्षों पर विचार करेंगे। आपने भूषण और मतिराम के समय और संबंध, दोनों विषयों पर उक्त आधारों से निष्कर्ष निकाले हैं। मतिराम के संबंध में हमने जो समय-संबंधी विचार लिखे थे, उनसे आपका कोई विरोध नहीं जान पड़ता। किंतु भूषण के विषय में आपका विचार है कि वह शिवाजी के नहीं, उनके पौत्र साहूजी के दरबारी कवि थे, और उन्हीं के आदेशानुसार उन्होंने शिवराज-भूषण की रचना की। यह कथन हमें पूर्णतया अनर्गल समझ पड़ता है। भूषण का समय आगे हटाने के लिये आपने उक्त दो विचार लिखे हैं, जो अग्राह्य दिखलाए जा चुके हैं। शिवराज-भूषण के संवत् १७३० में समाप्त होने के भी पुष्ट प्रमाण ऊपर ग्रंथ ही से दिए जा चुके हैं। यदि साहूजी के आदेशानुसार शिवराज भूषण रचा गया होता तो यह बात ग्रंथ में लिखी होती, जैसा कि कविगण प्रायः करते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथ में यत्र-तत्र शिवाजी के साथ साहूजी का भी उल्लेख आवश्यक होता। किंतु सारे ग्रंथ में साहूजी का कहीं नाम तक नहीं आया। ग्रंथ में कई छंद शिवाजी को संबोधित करके कहे गए हैं। यथा—

"और बाम्हननि देखि करत सुदामा-सुधि,
मोहिं देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ ?"

भूषण स्वयं लिखते हैं—

"शिव-चरित्र लखि यों भयो कबि भूषन के चित्त ;
भाँति-भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त ।"

इससे प्रकट है कि भूषण ने यह ग्रंथ किसी के कहने से नहीं रचा, बरन् शिवाजी का चरित्र अपने नेत्रों से देखकर चित्त की उमंग से बनाया।

अब संबंध के विषय में विचार करना है। यदि वृत्तकौमुदी मतिराम-कृत मानी जाय, तो भूषण और मतिराम सगोत्र नहीं रहते; क्योंकि भूषण कश्यप-गोत्री ठहरते हैं और मतिराम वत्स-गोत्री। संसार में भाई शब्द केवल सगे भाइयों के लिये ही नहीं प्रयुक्त होता, बरन् सगे, सौतेले, चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे आदि सभी भाई भाई ही कहलाते हैं। अतः ये दोनों ममेरे अथवा मौसेरे भाई होने से भी संसार में परस्पर भाई प्रसिद्ध हो सकते थे। संभव है, ये ऐसे ही भाई रहे हों, और भाई कहलाने से समय के साथ सगे भाई कहलाने लगे हों। यह सच है कि जनश्रुति का आधार बहुत पुष्ट नहीं माना जा सकता; किंतु दूर-दूर तक प्रचलित चिरकालीन किंवदंती को बिना किसी कारण के नितांत अशुद्ध कहना उचित नहीं समझ पड़ता। पंडितजी का कथन है कि यदि मतिराम भूषण के किसी प्रकार के भी भाई होते, तो अपने पिता तथा चाचा तक का उल्लेख करनेवाले मतिराम इनका नाम अवश्य लिखते। यह कोई आवश्यक बात नहीं है। संभव है, पिता के शीघ्र परलोकगामी होने से मतिराम को उनके चाचा ने ही पाला हो, और वह चाचा को पितृतुल्य ही समझते हों। संभव है, किन्हीं अन्य कारणों से भी उन्होंने भूषण आदि का उल्लेख न आवश्यक समझा हो। केवल अनिश्चित निष्कर्षों के आधार पर हम एक प्राचीन और विस्तृत किंवदंती को ग़लत मानने के लिये तैयार नहीं हैं।

(३) उक्त विषयों के अतिरिक्त आपको हमारे लेखों में अन्य प्रकार से भी अशुद्धियाँ स्थापित करने में प्रसन्नता प्राप्त हुई है। आपके ऐसे कथनों का सारांश इस प्रकार है—

(१) "मिश्रबंधु-विनोद में वर्णित है कि नीलकंठ ने संवत् १६९८ में अमरेशविलास-नामक ग्रंथ रचा था। उनकी अवस्था उस समय २५-३० वर्ष से न्यून न होगी, इस कारण उनका जन्म-संवत् १६७० विक्रम के लगभग पड़ता है। विनोद में भूषण का जन्म-संवत् १६९२ माना है। जब भूषण के छोटे भाई नीलकंठ का जन्म १६७० के लगभग है, तो भूषण का जन्म उससे भी पूर्व होना चाहिए था। परंतु विनोद इसके २० वर्ष पीछे मानता है, जो अशुद्ध है।"

(२) "मिश्रबंधु-विनोद में वृंद कवि को भूषण का वंशज माना है, जो कि नितांत अशुद्ध है।"

(३) "विनोद तथा नवरत्न में भूषण का मृत्यु-काल संवत् १७७२ माना गया है। भूषण ने एक कवित्त भगवंतराय खींची के परलोक-गमन के पश्चात् उनकी प्रशंसा में लिखा था। (यह कवित्त पीछे लिखा जा चुका है)—इससे स्पष्ट होता है कि भगवंतराय खींची के मारे जाने के पश्चात् उनकी प्रशंसा में भूषण ने वह छंद रचा है। सदानंद-कृत भगवंतराय-रासा में उनका मृत्यु-काल १७९७ संवत् लिखा है। अतः यह निश्चित है कि भूषण कवि संवत् १७९७ तक अवश्य वर्तमान थे। अतः उनका मृत्यु-काल संवत् १७७२ मानना नितांत अशुद्ध है।"

(४) "शिवराज-भूषण की भूमिका में, वंगवासी में छपी शिवाबावनी के आधार पर, लिखा है कि चिंतामणि का जन्म-संवत् १६९८ और भूषण का १६७१ प्रतीत होता है; परंतु ये दोनों संवत् भी अशुद्ध ही प्रतीत होते हैं।"

(५) "उसी भूमिका में यह भी कथन किया है कि शिवाजी दिल्ली गए, और वहीं औरंगज़ेब ने उन्हें क़ैद कर लिया। शिवाजी दिल्ली नहीं, आगरे में उपस्थित हुए थे, और वहाँ से मथुरा होकर चुपके से निकल गए।"

(६) "मिश्रबंधु-विनोद में वर्णित है कि राजा शंभूनाथ सोलंकी सितारे के राजा थे। इन्हें सितारे (मरहठी प्रांत) का राजा बताना भ्रांति-मूलक है।"

(७) "विनोद के अनुसार चिंतामणि के जन्म तथा भूषण के ठीक जन्म-काल में ७२ वर्ष का अंतर पड़ता है, जो सहोदर भाइयों में कभी संभव नहीं।"

(८) "हिंदी-नवरत्न में जो यह लिखा है कि छंदसार-पिंगल शंभूनाथ सोलंकी के आश्रय में लिखा और उन्हीं के नाम समर्पित किया है, वह अशुद्ध प्रतीत होता है।"

इन आक्षेपों के बारे में हमारा उत्तर इस प्रकार है—

(१) विनोद में नीलकंठ का जन्म-संवत् १६७८ लिखा है, और भूषण का १६७०। अतएव यह आक्षेप व्यर्थ है। हमने भूषण का जन्म-काल हिंदी-नवरत्न में १६९२ के लगभग माना है, और विनोद में १६७० के लगभग। इस विचार-परिवर्तन का कारण ऊपर दिया ही जा चुका है, और विनोद में भी दिया गया है। अतएव समझ पड़ता है, लेखक महाशय का अभिप्राय शुद्ध कथन का नहीं है। वरन् अशुद्ध कथन तक करके विनोद में दोषारोप-मात्र करना उन्हें अभीष्ट है।

(२) विनोद में वृंद को भूषण का वंशधर नहीं कहा गया, वरन् हिंदी-नवरत्न तथा भूषण-ग्रंथावली में केवल इतना कहा गया है कि वृंद का भूषण का वंशधर होना प्रसिद्ध है, या सुना जाता है। अतएव यह हमारा सिद्धांत नहीं है। वरन् हमारे कुछ ग्रंथों में एक जनश्रुति-मात्र का कथन है।

(३) इसका उत्तर ऊपर दिया जा चुका है।

(४) भूषण-ग्रंथावली की भूमिका में हमने उस स्थान पर केवल वंगवासी के कथनों का वर्णन किया है, न कि अपने मत का। हमारा अंतिम मत भूषण का जन्म-संवत् १६७० के इधर-उधर मानने का है, जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है। उसमें अशुद्धि दिखलाने के प्रयत्न में पंडितजी ने स्वयं भूलें की हैं।

(५) शिवाजी का दिल्ली जाना मिस्टर एल्फ़िन, ई० मॉर्सडन, प्रो० तैलंग इत्यादि इतिहासकारों के कथनों के आधार पर कहा गया था। इन महाशयों के इतिहास अब भी शिक्षा-विभाग में प्रचलित हैं। प्रो० यदुनाथ सरकार शिवाजी के आगरे में उपस्थित होने का कथन करते हैं। हमारा ग्रंथ साहित्य के इतिहास से संबंध रखता है, न कि ऐतिहासिक घटना के वर्णन से। अतः चाहे शिवाजी दिल्ली गए हों, या आगरे, प्रयोजन उनके क़ैद होने से है, जहाँ से शिवाजी युक्ति-पूर्वक निकल भागे, और भूषण ने शिवराज-भूषण के आरंभ में ही जिसका प्रभाव-पूर्ण वर्णन किया है।

(६) हमने शंभुनाथ सोलंकी को न तो सितारे का राजा बतलाया है, न महाराष्ट्र-प्रांत का। हमारा तो कथन केवल इतना था कि वह सितारा-गढ़ के राजा थे। वह गढ़ उत्तर-भारत में भी हो सकता था। सितारे-

(शहर) का विचार हमारे लेखों में आरोपित करना आपकी भूल है।

(७) विनोद के अनुसार तो चिंतामणि तथा भूषण के जन्म-संवतों में केवल चार ही वर्षों का अंतर पड़ता है, न कि ७२ वर्षों का।

(८) छंदसार-पिंगल के थोड़े-से पृष्ठ ही हमारे देखने में आए थे ; क्योंकि हमारी प्रति अपूर्ण है। इस समय वह अपूर्ण प्रति भी हमारे पास उपस्थित नहीं है, अतः हम यह नहीं कह सकते कि हमने छंदसार-पिंगल महाराजा शंभुनाथ सोलंकी के नाम पर बनाना किस आधार पर कहा था। पूरा ग्रंथ देखने से इस विषय में निश्चय-पूर्वक कुछ कहा जा सकता है।

"मिश्रबंधु"

श्रीगौरांग या श्रीकृष्णचैतन्य

"गोपिन के अनुराग आगे आप हारे स्याम,
जान्यो यह लाछ रंग कैसे आवै तन मैं ;
ये तौ सब गौरतनी, नख-सिख बनी-ठनी,
खुल्यो यों सुरंग अंग-अंग रंगे बन मैं।
स्यामताई माँझ सो ललाई हू समाई जो ही,
ताते मेरे जान फिरि आई यहै मन मैं ;
जसुमति-सुत सोई सचीसुत गौर भए,
नए-नए नेह चोज नाचैं निज गन मैं।"

(प्रियादास)

यह कवित्त नाभादास-कृत "भक्तमाल" की टीका में है। इसमें महाप्रभु को स्पष्ट शब्दों में कृष्ण भगवान् का अवतार कहा है। आस्तिक हिंदू-मात्र अवतार में विश्वास करते हैं। गीता में अवतार का कारण बताया गया है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामायण के इन छंदों में उसी का आशय प्रकट किया है—

"जब-जब होइ धरम की हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन-पीरा।
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति-सेतु ;
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम-जनम कर हेतु।"

अर्थात् संसार में धर्म की संस्थापना, अधर्म (अत्याचार) का विनाश, एवं लोकजन को स्वकर्तव्य-पालन में—चाहे वह परिवार, समाज, राजा या देश, किसी के प्रति हो—आरूढ़ करना ही अवतार का प्रयोजन है।

इस व्याख्या से, धर्म-विप्लव होने पर, सभी देशों और सभी जातियों के बीच अवतार की संभावना है, और, विचार-पूर्वक देखने से, ऐसा ही हुआ भी है। संसार में महात्मा मसीह तथा माननीय महम्मद साहब का प्रादुर्भाव ऐसे ही कठिन समयों में हुआ था, और उनके द्वारा निश्चय उन देशों में दुराचार का बहिष्कार तथा सदाचार का प्रचार हुआ।

यह कहा जा सकता है कि न उन्होंने स्वयं अपने को कहीं अवतार कहा है, न उनके अनुयायी ही उन्हें अवतार मानते हैं। यूनानी, रूमी या मुसलमानी धर्म-कथाओं या दंत-कथाओं में भी अवतार की बात नहीं सुनी जाती। यह सच है; परंतु इन महापुरुषों में से एक परमात्मा के पुत्र और दूसरे मित्र अवश्य कहे जाते हैं।

सच पूछिए, तो जगत् की सारी सृष्टि परब्रह्म का अवतार है। परंतु सबमें उसका एक ही समान विकास नहीं। इसी से वही पूर्ण, सर्वोपरि और सर्व-श्रेष्ठ है।

हिंदू-धर्म में सब समय जगत् के कल्याणार्थ पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानंद का ही, और वह भी पूर्ण कला से हीं, अवतार होना नहीं कहा जाता। अनेक अवतार अंश-कला और विशेष-विशेष शक्तियों से माने जाते हैं, और सबके द्वारा निर्दिष्ट कार्य सिद्ध होता गया है।

फिर भक्ति-भावनाओं में पितृभाव एवं सखा-भाव भी मुख्य हैं। अतएव वे ईश्वर के अवतार अवश्य कहे जायँगे। पुत्र पिता का अंश है ही, और मित्र से अभिन्नता होती ही है। दूसरे, वे महान् संत थे, और पाँचवें गुरु कहते हैं—

"नानक साध प्रभु भेद न भाई।"

अतएव उनके अनुयायी कहें या न कहें, हम उन्हें अंशावतार निश्चय कहेंगे। उनमें ऐसी कला ज़रूर थी, नहीं तो आज वे संसार में ऐसे सर्वमान्य न होते।

बात यह है कि महापुरुषों के जगदुपकार के विचार से ही उनकी गणना अवतारों में की जाती है, और उसकी मात्रा की विवेचना से पूर्ण या अंश-कला का निर्णय होता है। तभी तो बुद्धदेव, जिन्हें आदि में ब्राह्मणगण श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखते थे, पीछे उनके गुणों पर ध्यान देने से हमारे दशावतारों में सम्मिलित किए गए।

आदि में अवतारों को अवतार स्वीकार करने में सब लोग तैयार नहीं होते। कारण, सबमें उन्हें पहचानने की क्षमता नहीं होती। नहीं तो श्रीरामचंद्र को वनवास देने का किसे साहस होता? शिशुपाल क्या इतना बढ़-बढ़कर श्रीकृष्णचंद्र से बातें करता? या उनके दूत बनकर जाने के समय दुर्योधन उन्हें नज़रबंद करने का उद्योग करते? श्रीगुप्त, देवदत्त आदि क्या बुद्धदेव के प्राणघात की चेष्टा करते? ईसा को क्या सूली दी जाती? महम्मद साहब को क्या मक्का छोड़कर मदीना भागना पड़ता? सिख-गुरुओं को क्या पीड़ित होना होता? और, गौरांग की क्या क़ाज़ी के पास निंदा की जाती?

प्रथम सब अवतार तथा महापुरुषगण साधारण दृष्टि से ही देखे जाते हैं। वे अपना काम भी साधारण ही के बीच आरंभ कर देते हैं। उनकी अलौकिक प्रतिभा-प्रभा उत्तरोत्तर देदीप्यमान होकर उन्हें अवतार के आसन पर विराजमान करा देती है, और उनके संसार में न रहने पर भी संसार उनके चरणों में नत हुआ करता है। कोई पीछे और कोई जीवित-काल से ही अवतार कहलाने लगते हैं। गौरांग को लोग उनके जीवन-समय ही से अवतार मानने लगे थे। यह बात उनके जीवन-वृत्तांत के पाठ से प्रकट होती है।

पतित-पावनी गंगा का सदा दर्शन पाते रहने की लालसा से आपके पिता सपरिवार श्रीहट्ट (सिलहट) से आकर नदिया-ज़िले के अंतर्गत नवद्वीप-नगर की मायापुरी-पल्ली में बसे थे। उस समय नदिया विद्या का एक महान् केंद्र-स्थान था। वहाँ के न्याय-शास्त्र के पठन-पाठन की सुख्याति भारत में सर्वत्र फैली हुई थी। आपके पिता जगन्नाथ मिश्र साधारणावस्था के एक वैदिक ब्राह्मण थे। उनकी स्त्री एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी और विद्वान् नीलांबर चक्रवर्ती की कन्या थीं। शकाब्द १४०७ (सं० १५४२) के फाल्गुन की पूर्णिमा को सूर्यास्त के कुछ काल पीछे नवद्वीप-चंद्र का उदय हुआ। इस कलंक-रहित चंद्र के उदय की लज्जा तथा ईर्षा से आकाश के चंद्र ने पूर्व ही से अपने मुख पर 'ग्रहण' का बुर्क़ा डाल रक्खा था। उस समय गंगा नहानेवालों के मुखों से "हरि बोल" की ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि सदा अल्प काल ही में उस नगर के घर-घर और डगर-डगर में, नहीं-नहीं, भारत के नगर-नगर में, हरिकीर्तन की ध्वनि से गगनांगण गूँजने लगेगा।

अपनी माता की यह दसवीं संतान थे। आठ बहनें शैशवावस्था में संसार से बिदाई ले चुकी थीं। एक भाई विश्वस्वरूप (माता की नवीं संतति) वर्तमान थे। इनके नाना ने जन्मकुंडली बनाने पर, यह देखकर कि कुछ काल बीतने पर यह एक महान् पुरुष होंगे, एवं विश्व-भर में इनकी सुख्याति प्रसारित होगी, इनका नाम विश्वंभर रक्खा था। किंतु नीम के वृक्ष के निकट इनका जन्म होने से इनकी माता इन्हें निमाई कहती थीं। श्रीकेदारनाथ भक्तिविनोद ऐसा ही कहते हैं। विज्ञवर प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार महोदय का कथन है कि अनेक संतानों के नष्ट होने के कारण शिशु-घातिनी देवी की शांति के निमित्त इनका यह हीनताबोधक नाम निमाई, अर्थात् अल्पजीवी रक्खा गया था। इस विचार से तो विश्वस्वरूप ही का ऐसा नाम होना चाहिए था; क्योंकि उनका जन्म बहनों के मरने पर हुआ था। यह तो भ्राता के जीवन-काल में संसार में आए।

इनका रूप-लावण्य अद्वितीय था। इनकी मूर्ति बड़ी ही मनोमोहिनी थी। शरीर शुद्ध तप्त स्वर्ण के समान दीप्यमान था। जैसे व्रजविहारी कृष्ण की साँवली सलोनी छवि आबाल-वृद्ध को मोहित किए रहती थी, वैसे ही इनका सौम्य-स्वरूप मनोमोहक था *। इसी से प्रतिवासिनी स्त्रियाँ इन्हें गौरहरि कहा करती और इनका मुख देखने के लिये सदा लालायित रहती थीं। इसी से बाद को यह गौरांग महाप्रभु कहलाने लगे। संन्यास ग्रहण करने पर इनका नाम कृष्णचैतन्य पड़ा। इनके ये ही अंतिम दो नाम सुप्रसिद्ध हैं।

शैशव-काल में यह सदा अपनी जननी की गोद में रोया करते थे। जब इनकी माता या पड़ोस की नारियाँ "हरि बोल-हरि बोल" उच्चारण करतीं, तब यह शांत हो जाते थे। इससे इनके घर में सर्वदा "हरि बोल" की धूम मची रहती थी।

---

* कहते हैं, श्रीवास पंडित का मुसलमान दरज़ी इनका रूप देखकर "देखा है-देखा है" कहता हुआ कई दिनों तक पागल-सा हो गया था, एवं इनका हाथ अवलोकन कर विजय आचार्य की भी यही दशा हो गई थी।

बचपन में एक बार मिठाई न खाकर यह मिट्टी खा गए, और कहने लगे कि मिट्टी की ही परिवर्तित अवस्था मिठाई है। मा ने कहा—"जिस अवस्था में वह जिस विशेष कार्य के लिये उपयुक्त होगी, उससे वही काम लिया जायगा। मिट्टी के प्याले से पानी पिया जायगा, किंतु उसकी बनी ईंट तो खाई नहीं जायगी।" इन्होंने माता की बात मान आगे ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की। आप माता की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करते थे। कठिनावस्था उपस्थित होने पर भी आपने इसका परिचय दिया है।

इस प्रकार की बाललीला की बातें अधिक न कहकर इनकी बुद्धि की अकाल-परिपक्वता और प्रखरता की बातें अब कहेंगे। इन्होंने "अल्पकाल विद्या सब पाई" का उदाहरण दिखलाया था।

पाँच वर्ष की अवस्था में, एक पाठशाला में, इन्होंने बंग-भाषा अति शीघ्र सीख ली। स्वग्राम के समीपस्थ गंगानगर में, पं० गंगादास के 'टोल' में, दो वर्ष पढ़कर यह व्याकरण तथा अलंकार में खूब पक्के हो गए। फिर अपने पिता के पुस्तकालय के सहारे स्वाध्ययन द्वारा दस बरस की अवस्था पार करते-करते यह संस्कृत-भाषा के सब अंगों के, विशेषतः व्याकरण और न्याय के, ऐसे ज्ञाता हुए कि बड़े-बड़े नैयायिक इनसे शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं करते थे। एक दिग्विजयी काश्मीरी पंडित, केशव मिश्र, के आगमन पर जब नवद्वीप के टोलों के पंडितगण निमंत्रणादि के बहाने वहाँ से इधर-उधर टल गए, तो बरकोना-घाट पर स्नान करते समय बालक चैतन्य ने थोड़ी ही देर के शास्त्रार्थ में उनका अदमनीय विद्या-गर्व ऐसा चूर्ण कर दिया कि उन्हें लज्जावश रातों-रात वहाँ से खिसक जाना पड़ा। अब विद्वन्मंडली में गौरांग का डंका बजने लगा, और यह स्थानीय पंडितों के सिरताज बन गए, जिससे उन लोगों के जी में जलन भी होने लगी।

पिता का स्वर्गवास होने पर, १४-१५ वर्ष की उम्र में, नवद्वीप ही के बल्लभाचार्य की लक्ष्मी नाम की कन्या से इनका विवाह हुआ। उसके कुछ दिन पहले पिता के जीवन-काल ही में विवाह के लिये दबाव डाले जाने पर इनके ज्येष्ठ भ्राता, १६ वर्ष की अवस्था में, संन्यासी हो गए थे।

घर में किसी के न रहने और विवाह हो जाने से अन्य स्थानीय पंडितों के समान इन्होंने भी अपना एक टोल स्थापित किया। फिर पूर्व-बंगाल में भ्रमण कर और विद्या के प्रभाव से सबसे सम्मानित तथा पूजित हो, प्रचुर धन-संग्रह कर यह घर लौट आए। उस समय साँप के काटने से इनकी स्त्री का शरीरांत हो गया था।

इन्होंने संसार की अनित्यता पर अनेकानेक उपदेश देकर माता का शोक दूर किया। यह माता के आग्रह से फिर राजपंडित सनातन मिश्र की कन्या विष्णुप्रिया का पाणिग्रहण कर संसार चलाने लगे।

१६-१७ वर्ष की अवस्था में इन्होंने बहुत-से विद्यार्थियों के संग गया की यात्रा की। वहीं यह माधवाचार्य-संप्रदाय के वैष्णव ईश्वरपुरी के निकट दीक्षित हुए। वह सुप्रसिद्ध माधवेन्द्रपुरी के शिष्य थे, जिन्होंने पहले-पहल संन्यासियों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया था।

गया से लौटने पर गौरांग का रंग-ढंग सर्वथा परिवर्तित हो गया। विद्या-मद, जिससे आप मत्त-से देखे जाते थे, एकदम उतर गया। नैयायिकों के संग का तर्क-वितर्क आपने तर्क कर दिया, शास्त्रार्थ को विदाई दी, आलोचना-समालोचना की प्रवृत्ति का मूल-मोचन कर दिया।

यह परम भक्त और पूरे धर्म-प्रचारक हो गए। इनकी धार्मिक रुचि तथा आध्यात्मिक शक्ति ऐसी जाग्रत् हुई कि अद्वैतप्रभु, श्रीवास पंडित एवं अन्यान्य लोग, जो इनके जन्म के पूर्व वैष्णव-धर्म ग्रहण कर चुके थे, इस युवक की ऐसी परिवर्तित अवस्था देख अचंभा करने लगे।

यह जब जो बातें कहते, जो व्याख्यान देते, उनमें सदैव कृष्ण-प्रेम की ही कथाएँ भरी रहती थीं। इनका भक्ति-भाव इतना बढ़ चला कि इनका तन, मन, कार्य, सब कृष्णमय देख पड़ने लगा। गोपियों की-सी भक्ति इनमें आ गई। पागलों के समान यह हँसते, रोते, उच्च स्वर से अविरत कृष्ण-कृष्ण उच्चारण करते, वृक्षों पर चढ़ जाते और आवेश में आने ही को कृष्ण मान बैठते थे। इसी समय सुप्रसिद्ध वृद्ध विद्वान्, भक्त अद्वैताचार्य एवं संन्यासी नित्यानंद (निताइ) इनसे आ मिले।

मुरारि गुप्त ने आँखों-देखी बातें कही हैं। उनका कथन है कि श्रीवास के घर पर अपने सैकड़ों अनुयायियों के सामने, जिनमें प्रायः सभी पंडित विद्वान् थे, इन्होंने

ऐसी शक्ति का परिचय दिया था। इसी समय, अपने अनन्य अनुगामियों के संग, इन्होंने पूर्वोक्त पंडित के आँगन में रात्रि को कीर्तन का रंग जमाया। वहाँ नित्य गान, वाद्य, नृत्य, उपदेश और व्याख्यान होने लगे। उस समय नवद्वीप वैष्णवों का अखाड़ा बन गया। ये लोग नाचते, गाते, गलियों और सड़कों पर घूमते एवं भक्तों के आँगनों में आनंद मनाते थे। इसी से नाम-कीर्तन की नींव पड़ी। देखिए तो, आगे के प्रकरण में किस दृश्य की झलक नज़र आती है?

इन्होंने सबसे पहले नित्यानंद तथा हरिदास को आदेश किया कि वे लोग नगर की हर गली और हर घर में जाकर सबसे हरि-नाम-कीर्तन के लिये अनुरोध करें, और संध्या को कार्य-सफलता का समाचार बताया करें।

इस काम के आरंभ ही में इन लोगों को दो विख्यात बदमाशों से, जिनके उत्पात के कारण नदिया-नगर-भर के नाकों दम हो रहा था, काम पड़ा। उन दोनों ने डंडों से इन धर्म-प्रचारकों का सत्कार किया। परंतु शीघ्र ही प्रभु के उपदेश के प्रभाव से वे भक्ति-भाव धारण कर सन्मार्ग में आ गए। ऐसे दुराचारियों के सुधार से इनकी सुख्याति और भी बढ़ चली। इस समय से २३ वर्ष की अवस्था तक यह नवद्वीप तथा उसके आस-पास के नगरों और ग्रामों में हरि-नाम का प्रचार करते रहे।

अब नगर के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकारों से इनके कार्यों की आलोचना होने लगी। भक्तों को अलौकिक आह्लाद होने लगा। जिन लोगों को पहले धर्म-मंदिर के द्वार ही पर खड़े रहने का अधिकार था, देहली के भीतर प्रवेश की कौन कहे, झाँकने की भी योग्यता नहीं थी, वे ही आज इनके उपदेशों में अपने कल्याण की राह देख और हरि-कीर्तन में सम्मिलित होने का उत्साह पाकर, आनंद-सागर में मग्न होने लगे। स्मार्त ब्राह्मणगण ईर्षा-वश जलने लगे। पंडितों के पिंडों में पीड़ा-सी होने लगी। नवद्वीप के पंडितवर्ग विद्या-दिग्गज तो थे, परंतु विद्या-मद तथा पांडित्य द्वारा उपार्जित और संचित धन के मद ने उनके मस्तिष्क को ऐसा बिगाड़ डाला था कि ईश्वर-भक्ति को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। यदि जी चाहा, तो दिखाने के लिये कभी कुछ वेदांत की चर्चा कर मन-बहलाव कर लेते थे। अधिकतर मद्य-मांस का समर्थन करनेवाले धर्म और विधि में अधिकांश लोग विशेष ध्यान देते थे। गौरांग के नाम-कीर्तन का प्रभाव और उसकी ओर सर्व-साधारण का झुकाव देख उन लोगों के हृदय में दाह होने लगा। निमाई महाशय की कार्य-सफलता में अपनी मान-हानि तथा चिरकाल से उपार्जित प्रतिष्ठा में बट्टा लगता समझकर उन लोगों ने इनके व्यवहार को अहिंदूपन कहकर चाँद क़ाज़ी के यहाँ इनकी निंदा की। वह चट श्रीवास के घर पहुँचकर खोल (मृदंगादि) तोड़-फोड़ आज्ञा दे गया कि "यदि निमाई शांति-भंग करनेवाले इस अपूर्व धर्म के शोर-गुल से बाज़ न आवेगे, तो हम उन्हें तथा उनके सहचरों को अपना धर्म स्वीकार कराने के लिये बाध्य होंगे।"

यह समाचार पाकर महाप्रभु ने आदेश किया कि "सब लोग एक-एक मशाल लिए संध्या को एकत्र हों।" शाम को संकीर्तन के १४ दल लेकर नगर-भ्रमण करते हुए आप क़ाज़ी साहब के द्वार पर पहुँचे। देर तक उनके साथ कथोपकथन के अनंतर आपने स्नेह-पूर्वक उनके शरीर पर हाथ फेर उन्हें सब प्रकार से संतुष्ट कर दिया। उनके हृदय में हरि-भक्ति जाग्रत् हो गई, और वह भी सानंद संकीर्तन में सम्मिलित हुए। निंदकवृंद अपना-सा मुँह लिए रह गए। इसके बाद इनके द्वारा सैकड़ों धर्म-विमुखों तथा धर्म-भ्रष्टों का सुधार और उद्धार हुआ।

हमने बंगाल के एक बँगला-इतिहास में देखा है कि इनके शरणापन्न होने से जब एक मुसलमान को उनके स्वजातियों ने मारते-मारते बेदम कर कहीं फेंक दिया, तो फिर चैतन्य-लाभ करने पर वह यही कहता हुआ नगर में आ धमका कि—

"टूक-टूक देह होइ, जाय बरु प्राण,
तथापि न छाड़िबो बदने हरि-नाम।"

उसका नाम तो ठीक स्मरण नहीं आता, परंतु हम समझते हैं कि कदाचित् वही पीछे हरिदास यवन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुछ काल के पश्चात् कुलिया के ईर्षा-दग्ध तथा नीच प्रकृति के ब्राह्मणों ने इनसे झगड़ा छेड़ इनके अवरोध के लिये जनता का एक दल तैयार किया। स्वभावतः इनका हृदय कोमल था। परंतु यह थे बड़े दृढ़-प्रतिज्ञ। इन्होंने [illegible] और कोरे सांप्रदायिक विचार, दोनों

उन्नति के भारी शत्रु हैं। जब तक हम एक-मात्र नवद्वीप के ही अधिवासी होकर रहेंगे, हमारे उद्देश्य की पूर्ण सफलता न होगी। हम अब अपने परिवार से असहयोग कर संसार-भर से सहयोग करें, एवं संसार को अपना परिवार बनावें। यह काम संन्यास-ग्रहण से ही होगा। हमें इन घमंडी पंडितों का भी उद्धार करना परमावश्यक है। हमें संन्यासी-रूप में देख ये निश्चय ही पुरानी परिपाटी के अनुसार हमारे सामने झुकेंगे। तब इनके हृदय को विशुद्ध और उसमें भक्ति-भाव का संचार करने का सुअवसर और अवकाश मिलेगा।" बस, इन्होंने कटवा (ज़िला बर्दवान) में जाकर वहाँ के केशव भारती से, २४ वर्ष की अवस्था में, संन्यास ले लिया। फिर व्रज-दर्शनानुराग में मस्त हो वृंदावन की ओर चले। किंतु नित्यानंद, रत्नाचार्य तथा मुकुंद, जो इनके साथ थे, भुलावा देकर इन्हें शांतिपुर में अद्वैताचार्य के घर ले आए। वहाँ इनकी माता शची भी इन्हें देखने आईं। इनका केश-रहित कपाल, कोपीन-वेष्टित कटि और कमंडलु-युत कर देखकर माता का हृदय विदीर्ण हो गया। आप माता से स्नेह-पूर्वक मिले, वारंवार प्रदक्षिणा कर इन्हें प्रणाम किया। उन्हें रोते और महादुःखित देखकर आपने कहा—"मा, यह शरीर तुम्हारा है। तुम जो आज्ञा करोगी वही हम करेंगे; संन्यास छोड़ पुनः संसार में भी प्रवेश कर सकेंगे।"

कुछ काल वहाँ घर ही के समान हरि-कीर्तन की धूम रही; क्योंकि बहुत-से प्रेमी भक्त वहाँ पहुँच गए थे। एक दिन नदिया-वासियों के आने पर आपने उनसे सप्रेम मिलकर कहा—"हम तुम लोगों के दुःख से बड़े दुःखित हुए। माता के निकट हमारे जाने से उन्हें संकोच होगा। वह स्वतंत्रता-पूर्वक कुछ न कह सकेंगी। हम उनसे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि उनका आदेश हमें शिरोधार्य है। यदि वह नदिया जाने को कहें, तो हम अभी प्रस्तुत हैं। तुम लोग उनसे पूछो, क्या आज्ञा करती हैं।" श्रीरामचंद्र के श्रीभरत ही के विचार पर सब भार देने से जैसे उन्होंने रामचंद्र को प्रतिज्ञा-भ्रष्ट होने से बचाया था, वैसे ही शची ने भी अपने पुत्र की रक्षा की। शची ने कहा—"निमाई के घर जाने से सुख तो सबको निश्चय होगा, किंतु उसका जगत् में बड़ा उपहास और धर्म नष्ट होगा। मैं ऐसी आज्ञा, पर ऐसी आज्ञा न दूँगी, जिससे निमाई धर्म-भ्रष्ट हो। वह नीलाचल (जगन्नाथ-पुरी) में रहे। वहाँ लोग जाया ही करते हैं। तुम लोग भी जाकर भेंट कर सकोगे, और कभी गंगा-स्नान के निमित्त आने से मुझे भी देखने का अवसर मिलेगा।"

शची देवी—जिन्होंने अपनी पवित्र कोख से दो-दो संन्यासियों को उत्पन्न किया, जिनमें एक कृष्ण के अवतार कहे जाते हैं—इसके सिवा और क्या कहतीं? जीवित रहने से जगन्नाथ मिश्र भी इन्हें धर्म-भ्रष्ट करने की चेष्टा न करते। अपने ज्येष्ठ पुत्र के संन्यासी होने पर उन्होंने ईश्वर के चरणों में प्रार्थना की थी कि वह धर्म-भ्रष्ट न हों, अर्थात् संन्यास से मुँह मोड़कर घर न फिर आवें।

निदान माता की आज्ञा मानकर आप नीलाचल जाने को उठ खड़े हुए। अपना देश तथा परिवार त्याग करते समय आप कहते गए—"हे जीवगण, दुःख की एक-मात्र औषधि भगवद्गुण-कीर्तन है। वही कीर्तन करो। सुधा-समुद्र लहराने लगेगा, उसी में अवगाहन करना। फिर दुःख कहाँ?" यही उपदेश दे आपने प्रस्थान किया। गोस्वामी नित्यानंद, पं० जगदानंद, पं० दामोदर और मुकुंददत्त (चैतन्यभागवत के अनुसार गोविंद तथा गदाधर भी) इनके साथ हुए। इनके वियोग से इनकी वृद्धा माता, युवती पत्नी तथा भक्त मित्रों की जो गति हुई, वह केवल अनुभव-योग्य है। परंतु इन्हें उसकी चिंता क्या? क्या कृष्ण को मथुरा-गमन के समय नंद-यशोदा तथा गोप-गोपियों की चित्त-व्यथा की कुछ चिंता हुई थी? वन-गमन के समय नगर-निवासियों का विलाप क्या रामचंद्र के मन को फेर सका था? ऐसे अवतारियों को संसार की माया क्या कर्तव्य-पालन से विमुख कर सकती है? उन्हें तो अपना निर्दिष्ट कार्य और जगत् का कल्याण करना है।

अब देखिए, शची के दुलारे मार्ग में कैसे जा रहे हैं—

"भूमि-सयन, कर तकिया, तरुतर बास;
कहुँ-कहुँ अल्प अहरवा, कहुँ उपबास।
नयन जुगल बह निरवा, निरखन आस;
कृष्ण-कृष्ण कह रह-रह, लेत उसाँस।"

इसी प्रकार डायमंड-हारबर के पास वैष्णवों तथा शाक्तों के तीर्थ-स्थान छत्रभोग, जलेश्वर के शिव-स्थान, रेमुना के क्षीर-चोर मुरलीधर गोपीनाथ, और जाजपुर

में आदिवाराह प्रभृति एवं साक्षी-गोपाल तथा भुवनेश्वर * के दर्शन करते हुए आप पुरी पधारे।

इनके चरित्र-लेखकों ने यात्रा-विवरण विस्तार-पूर्वक लिखा है। मार्ग में आप केवल शक्ति-संचार से कितनों का उद्धार करते गए थे।

एक स्थान में एक धोबी मन लगाए कपड़े धो रहा था। आप दौड़े हुए उसके पास गए, और उससे हरि बोलने के लिये कहने लगे। बोले—"अपना काम करता और हरि-नाम जपता जा। यदि दोनों न हो सकें, तो ला, तब तक हम तेरा काम करें।" ऐसी विचित्र बातें सुनकर जो उसने इनके मुँह की ओर देखा, तो उसके चित्त का भाव एकदम बदल गया। वह आत्मविस्मृत हो नाच-नाचकर "हरिबोल-हरिबोल" कहने लगा। आप अपने सहचरों के संग वृक्षों की ओट में जा बैठे। इतने में उसकी स्त्री भोजन लेकर आई। उसकी दशा देखकर पहले तो उसे नशे के भ्रम से हँसी आई, पीछे भूत-ग्रस्त होने के भय से वह रोती-चिल्लाती गाँव की ओर दौड़ी। क्षण-भर में वहाँ सारा गाँव टूट पड़ा। एक ने साहस कर जो उसे पकड़ा, तो उसकी भी वही दशा हो गई। वहाँ मानो हरिबोल और नृत्य का कंटेजियन (संक्रामकता) फैल गया। एक-एक करके सब-के-सब उसी रंग में रँग गए। सावधान होने पर भी सदा के लिये उनके चित्त पर वही रंग जमा रहा। इनकी शक्ति-संचारादि की आलोचना अन्य लेख में की जायगी।

नीलाचल पहुँचकर श्रीपुरुषोत्तम भगवान् के दर्शन के समय, प्रेम में मग्न होकर, आप देहली पर अचेत हो गिर पड़े। संयोग-वश सार्वभौमजी वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने घर पर ले जाकर इनकी सेवा-सुश्रूषा की, और आग्रह-पूर्वक इन्हें अपने पास रक्खा।

सार्वभौम अपने समय के एक विद्यादिग्गज, वेदांती और नैयायिक पंडित थे। आप भी नवद्वीप (विद्यानगर में) उत्पन्न हुए थे, और वहाँ अपनी पाठशाला में बहुत-से विद्यार्थियों को न्याय-शास्त्र की शिक्षा देते थे। इनके पिता विशारदजी गौरांग के नाना के सहपाठी थे, और उनके पिता जगन्नाथ (उपनाम पुरंदर) मिश्र का बहुत सम्मान करते थे। निमाई के जन्म के पूर्व ही सार्वभौमजी पुरी में जाकर बसे थे। वहाँ उनके शिष्यों की संख्या बहुत अधिक थी; धन-धान्य और नाम भी बड़ा था। उनके बहनोई गोपीनाथ ने गौरांग का परिचय दिया। इनकी अवस्था, शरीर और अतुल सौंदर्य देखकर वह महाचकित हुए। उन्हें संदेह और भय हुआ कि इनसे संन्यास-धर्म जन्म-भर कदाचित् नहीं निबहेगा। इस पर साले-बहनोई में बहुत तर्क-वितर्क हुआ। उसके बाद उन्होंने एक दिन गौरांग से वेदांत-सूत्रों की व्याख्या सुनने को कहा। आपने सहर्ष सात दिनों तक व्याख्या सुनी, और कभी कुछ न बोले। आठवें दिन सार्वभौम के यह कहने पर कि "बोध होता है, आप वेदांत नहीं समझते, मेरी व्याख्या सुनकर आपने सिर भी न हिलाया," इन्होंने उत्तर दिया कि "सूत्र तो खूब समझते हैं, किंतु उनके भाष्य का अभिप्राय अवश्य ही समझ में नहीं आता।" इस पर चकित हो उन्होंने उन सूत्रों का अर्थ करने के लिये इनसे बहुत अनुरोध किया। इन्होंने अपनी व्याख्या से उनकी बुद्धि को चकित कर दिया। वह मुक्तकंठ से इनकी प्रशंसा करने लगे, और दो-चार दिनों में ही परम वैष्णव हो गए। यह समाचार फैलते ही सारा उड़ीसा-प्रदेश इनका गुण-गान करने लगा। सैकड़ों इनके शिष्य बन गए।

कुछ दिनों के बाद आप एक ब्राह्मण, कृष्णदास, को लेकर दक्षिण-देश के लोगों के उद्धार के लिये निकले। कूर्मक्षेत्र में कूर्म भगवान् के दर्शन कर, वहाँ के वासुदेव-नामक एक ब्राह्मण को कुष्ठ-रोग तथा भवजाल से मुक्त कर, मार्ग में कितने ही भाग्यशालियों को दर्शनादि से कृतार्थ और उनका उद्धार कर, सार्वभौम की प्रार्थना के अनुसार आपने गोदावरी के तटस्थ विद्यानगर के हाकिम रामानंद राय को दर्शन दिए। वहाँ दस दिन तक प्रेमा-भक्ति पर ज्ञानगोष्ठी के अनंतर आपने रंग-क्षेत्र में वेंकट-नामक एक ब्राह्मण के घर वर्षाकाल बिताया, और उनके सब परिवार को कृष्ण-भक्ति के रस में मग्न कर दिया। फिर द्वारका गए, और दक्षिण-प्रांत के भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करते हुए कन्याकुमारी तक

* "अमिय निमाई"-ग्रंथ में श्रीयुत शिशिरकुमार घोष लिखते हैं कि "इसके समान सुंदर मूर्ति जगत् में कहीं नहीं है। यूनान, रूम में अनेक मनोहर मूर्तियाँ हैं सही, किंतु देव-मूर्ति में जो भाव-भंगी उचित है, वह योरप में कहाँ? इसके निर्माण में कारीगरी के साथ प्रेम-भक्ति भी दरकार है।"

पहुँचे। दक्षिण के लोगों में अनेक प्रकार से कृष्ण-भक्ति का प्रचार और प्रसार करके, दो वर्ष के बाद, आप श्रीक्षेत्र लौट आए।

पंढरपुर में आपने तुकाराम को उपदेश दिया था। वह स्वयं एक धर्म-प्रचारक हो गए। बांबे-सिविल-सर्विस के मि० सत्येंद्रनाथ ठाकुर ने जो उनका "अभंग-समूह" संग्रह किया है, उससे इसका पता चलता है।

इस यात्रा में गौरांग ने बौद्ध, जैन एवं अन्यान्य लोगों को वैष्णव बनाया था, जैसा कि इनके जीवन-चरित्र पढ़ने से विदित होता है।

इनके पुरी लौट आने पर कटक के राजा प्रतापरुद्र तथा अनेक ब्राह्मण पंडित इनके शरणागत हुए।

फिर यह बंगाल में मालदह तक जाकर शांतिपुर होते एवं अपनी माता का आशीर्वाद लेते पुरी पहुँचे। यह अपनी माता को कभी नहीं भूलते थे। उनकी सेवा में सदा महाप्रसाद और वस्त्र भी भेजा करते थे।

पश्चात् बलभद्र भट्टाचार्य के साथ वृंदावन-दर्शन का सुख प्राप्त कर, राह में कई एक मुसलमानों को वैष्णव बनाते हुए (जो पठान-वैष्णव कहलाते हैं), आप तीर्थराज में विराजमान हुए। यहीं रूपस्वामी ने आपके दर्शन पाए।

रूप और सनातन, दोनों भाई अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता, कर्नाटक के ब्राह्मण एवं गौड़ के नवाब हुसेनशाह के दरबार के प्रधान, विश्वस्त तथा सम्मानित कर्मचारी थे। वहाँ के संसर्ग से वे दोनों मुसलमान हो रहे थे। निज-निस्तार का कोई मार्ग न देख उन दोनों ने आपके पास अपने उद्धार के निमित्त प्रार्थना की थी, और उनको वृंदावन जाने की आज्ञा हो गई थी।

प्रभु ने दस दिन में सब शिक्षा देकर रूपस्वामी को वृंदावन भेजा कि वह आध्यात्मिक विषयों पर ग्रंथ-रचना कर प्रेमा-भक्ति का प्रचार करें, एवं भक्तों के उपकारार्थ श्रीकृष्ण के लीला-स्थानों का पता लगावें।

फिर आप काशी आकर चंद्रशेखर के घर रहे, और तपन मिश्र की भिक्षा ग्रहण करने लगे। यहीं पर आपने दो मास तक सनातन को अपने सदुपदेशों से कृतार्थ किया। सनातन का वृंदावन जाने का विचार जानकर गौड़ाधिप उन्हें कारागार में डाल आप कटक पर आक्रमण करने चला गया था। वह बड़े-बड़े उद्योगों से निकलकर बनारस, आपके चरणों के निकट, पहुँचे थे।

काशी में आपने परम प्रसिद्ध प्रकाशानंद को, जो पीछे प्रबोधानंद के नाम से विख्यात हुए, एवं कतिपय अन्य संन्यासियों को वैष्णव बनाया। फिर आप वन-पथ से पुरी पधारे। इस समय से अपनी ४८ वर्ष की आयु तक आप बराबर वहीं विराजमान रहे। अंत को तोता-गोपीनाथ के मंदिर में नृत्य करते-करते आप अंतर्द्धान हो गए। यह घटना माघ की पूर्णिमा *, सं० १५९० वि० में हुई।

पूर्वोक्त रूप और सनातनस्वामी, उनके भतीजे जीवस्वामी, उक्त वेंकट के पुत्र तथा प्रबोधानंदस्वामी के भतीजे गोपाल भट्ट, युक्त-प्रदेश के रघुनाथ भट्ट एवं सप्तग्राम (हुगली-ज़िले) के एक ज़मींदार-वंश के कायस्थ भक्त रघुनाथदास, ये ही छः गोस्वामी, पश्चिम-प्रांत में कृष्ण-भक्ति-प्रचार के लिये, वृंदावन में रक्खे गए। बंगाल के उद्धार का भार स्वामी नित्यानंद को सौंपा गया।

जो लोग आपके दर्शन को जाते थे, वे आपके अलौकिक सौंदर्य, मधुर भाषण, सुखद उपदेश और कृपा-कटाक्ष से कृतार्थ हो स्व-कल्याण-साधन करते थे। आपने भारत में सर्वत्र वैष्णव-धर्म का झंडा फहरा दिया। लोगों के साथ वार्तालाप करते समय भी आपका मन अपनी लगन में मगन रहा करता था।

"लबश बा खल्क़ दर गुफ़्तार मे बूद ;
वले जानो दिलश बा यार मे बूद।"

आपके जीवन-काल ही से आपको लोग कृष्ण का अवतार मानने लगे थे। उस समय अवतार की संभावना भी थी। बंगाल में धर्म की दशा बिगड़ गई थी। तंत्र तथा शक्ति-पूजा का भी वास्तविक रंग बदल रहा था। कृष्ण-भक्ति मानो विलुप्त हो रही थी। जो गिने-गिनाए वैष्णव थे, वे घृणा, व्यंग्य और कटाक्ष के पात्र समझे जाते थे। देश को शुद्ध पवित्रता तथा प्रेम-शिक्षा की विशेष आवश्यकता थी। परंतु बंगाली वैष्णव जो चैतन्यावतार का मुख्य प्रयोजन मानते हैं, वह यह है—

'श्रीमती राधा का प्रेम कैसा उत्तम और सुंदर है,

---

* श्रीकैलासचंद्र मन्ना ने माघ और श्रीयदुनाथ सरकार ने जून-जुलाई लिखा है।

हमारे में वह कौन-सी मधुरिमा है, जिसकी माधुरी को श्रीराधा इस प्रेम से पान करती हैं, हमारे में जो सुखानंद राधा को मिलता है, उसकी सीमा और स्वाभाविक लक्षण क्या है, यही अनुभव करने को आप इस जगत् में प्रादुर्भूत हुए थे।"

इस कार्य के साधन में आपको कितनी सफलता हुई, यह तो कोई नहीं जान सकता या कह सकता, परंतु आपने प्रेमा-भक्ति के प्रवाह से भारत-भूमि, विशेषतः बंग-प्रांत को, प्लावित कर दिया, यह बात सबको स्वीकार करनी पड़ेगी।

शिवनंदनसहाय

अमेरिका और भारत

(१)

संध्या का सुहावना समय है। सूर्य की सुनहली धूप से वृक्षों की चोटियाँ चमचमा रही हैं। लोगों के शरीरों पर सोने का पानी-सा चढ़ा हुआ है। अमेरिका का नियाग्रा-प्रपात एक ऊँची चट्टान से झर-झर करता हुआ बड़े वेग से नीचे को गिर रहा है। झर-झर का शब्द मीलों से सुनाई पड़ता है। चट्टानों की चोटों से असंख्य जल-बिंदु उछल रहे हैं, और फिर सूर्य के सुनहले प्रकाश से प्रकाशित हो, सोने के गुच्छों की तरह एक में गुँथकर, छप-छप करके पानी में गिर रहे हैं। शीतल-मंद-सुगंध समीर लहरियाँ ले रहा है। वृक्षों की चोटियों पर पक्षी चहचहा रहे हैं। पर्वत-शिखर पर ललमुहे लंगूर कूद रहे हैं। मोर और मोरनियाँ मस्त होकर नाच रही हैं। अमेरिका एक वाणिज्य-प्रधान देश है। इसलिये दिन-भर के थके हुए श्रमजीवी लोग संध्या-समय इस झरने के किनारे वायु-सेवन के लिये आए हुए हैं। किनारे के हरे-भरे मैदान में हज़ारों तिपाइयाँ पड़ी हैं। लोग उन्हीं पर बैठे हुए झरने के स्वर्गीय दृश्य को देख रहे हैं। कैसा आनंद है! कोई पियानो बजा रहा है। कोई गा रहा है। कहीं-कहीं छोटी बालिकाएँ आनंद से मस्त होकर उसी के ताल पर नृत्य कर रही हैं। अहाहा! जहाँ के मनुष्यों की आत्मा स्वतंत्र है, जहाँ के लोगों को अपने सुख एवं सौभाग्य के निर्माण का नैसर्गिक अधिकार है, वहाँ की सुनहली सृष्टि की झलक हम कुचले हुए हृदयों के लिये कल्पना-मात्र है। उन लोगों के आनंद का पूछना ही क्या!

बाबू नरेंद्रदेव भी एक अप-टू-डेट इंडियन स्टूडेंट हैं। वह अपने सहपाठियों के साथ शिकागो-युनिवर्सिटी के बोर्डिंग-हाउस से मेल-ट्रेन में चढ़कर इस निर्झर की प्राकृतिक सुषमा अवलोकन करने आए हैं। सब लोग तिपाइयों में बैठे हुए निर्झर की नैसर्गिक छटा की मनोहारिणी समालोचना कर रहे थे। इतने में एक फटे-पुराने कपड़े पहने हुए नवयुवक ने आवाज़ दी—बाबूजी, जूते की मरम्मत या सफ़ाई करवाइएगा? नरेंद्र बाबू ने कहा—यहाँ आओ। युवक आ गया। बाबू को बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह हमारे यहाँ के श्रमजीवियों की तरह मैला-कुचैला, दुःखित, दीन, भिखारी, खुशामदी न था; किंतु उसके हृदय में एक ऊँची आत्मा का प्रकाश था। मुख पर जातीय गौरव का दिव्य तेज दमक रहा था, और नेत्रों में एक ऊँचे लक्ष्य की कांति का आभास।

नरेंद्र—आप क्या शू-मेकर (चर्मकार) हैं?

आगं०—हाँ।

नरेंद्र—आपका क्या नाम है?

आगं०—हेमिल्टन।

नरेंद्र—आप यही करते हैं कि कुछ और भी ?

हेमिल्टन—नहीं तो, मैं रोज़ नाइट-स्कूल में पढ़ने के लिये भी जाता हूँ।

अब तो बाबू आश्चर्य-सिंधु में डूब गए। उन्होंने कहा—आप विद्यार्थी हैं ? हम लोगों के यहाँ तो विद्यार्थी ऐसा नीच काम नहीं कर सकते !

हेमिल्टन—(हँसकर) well mister, the performance of duty can not corrupt ones dignity. महाशय, कर्तव्य किसी के पद को नहीं बिगाड़ सकता।

नरेंद्र बाबू को इस बात पर बड़ी घृणा हुई। उन्होंने कहा—हम लोग मर ही क्यों न जायँ, पर ऐसा कुत्सित कर्म कभी नहीं कर सकते। अमेरिका के विद्यार्थियों ने बाबू की इस बात पर ताली बजाई, और उनकी ओर मुँह बना-बनाकर हँसने लगे।

(२)

आज शिकागो-युनिवर्सिटी में एक बड़ा भारी उत्सव है। प्रिंसिपल-हाल बड़ी धूम-धाम से सजाया जा रहा है। रंग-बिरंगी झंडियाँ, फूलों के हार और मोटो लटक रहे हैं। इलेक्ट्रिक-लाइट के उज्ज्वल प्रकाश से कमरा जैसे जगमगा रहा है। आज पारितोषिक-वितरण का दिवस है। मिस्टर ह्यूम प्रिंसिपल चेयरमैन हैं। विद्वान् प्रोफ़ेसर बैठे हुए हैं। बाबू नरेंद्रदेव भी गए थे। उनको भी बी० ए० सेकिंड ईयर का पारितोषिक पाना था। थोड़ी देर में मिस्टर ह्यूम विद्वत्-परिषद् के सामने एक सुनहला प्लॉट लेकर खड़े हो गए। उसमें लिखा था—मिस्टर हेमिल्टन ने युनिवर्सिटी के एम्० ए०-क्लास में प्रथम पद पाया है। युनिवर्सिटी इस सफलता पर उन्हें बधाई देती है। उसके प्रिंसिपल-हाल में उनका नाम सर्वदा के लिये सोने के अक्षरों में लिखा हुआ विद्यमान रहेगा। युनिवर्सिटी उन्हें एक सुवर्ण-हार इनाम देती है।

इसके बाद हेमिल्टन के गले में मिस्टर ह्यूम ने वह माला डाल दी। सब विद्यार्थियों ने एक साथ करतल-ध्वनि की। हाँ, एक बाबू नरेंद्रदेव की ताली नहीं बजी ; क्योंकि उन बेचारे को वह दृश्य एक सुनहला स्वप्न-सा प्रतीत होता था। परतंत्रता से कुचली हुई उनकी आत्मा ने सुनहले जीवन का प्रभात कभी न देखा था।

(३)

आज दूसरे महीने के १० दिन बीत चुके। बाबू नरेंद्रदेव अपने कमरे में उदास बैठे हैं। आँखों के सामने अंधकार छाया हुआ है। भारत-भूमि से ३,००० मील की दूरी पर पड़ा हूँ। ख़र्च एक पैसा भी नहीं है। इस बार देर कैसे हो गई ? अब तो एक-एक दिन भी कठिनता से व्यतीत होता है। हिंदोस्तान तो है ही नहीं कि रुपया उधार मिल जाय। मेस मैनेजर ने बड़ी कृपा की, जो १० दिन बोर्डिंग में ठहरने दिया। लेकिन आज शाम को वह मुझे निकाल देंगे। यहाँ मेरा कोई भी नहीं है। यह सोचते-सोचते नरेंद्रदेव की आँखों से परतंत्रता के स्वरूप में दो-एक अश्रु-बिंदु छलक पड़े। इतने में डाकिए ने आवाज़ दी। बाबू का चेहरा खिल गया। जल्दी-जल्दी रूमाल से आँसू पोंछे, और बाहर निकल आए। बोले—क्या मनीऑर्डर है ?

डाकिया—नहीं बाबू साहब, चिट्ठी है।

यह कहकर उसने चिट्ठी फेंक दी। बाबू ने लिफ़ाफ़ा खोला। उसमें लिखा था—

"प्रिय मित्र !

शोक के साथ लिखना पड़ता है कि बांबे में

प्लेग का बड़ा ज़ोर है। सहस्रों मनुष्य प्रतिदिन काल के गाल में चले जाते हैं। लोग शहर छोड़ इधर-उधर भाग रहे हैं। आज आपके एक-मात्र प्रिय भाई आनंददेव का स्वर्गवास हो गया। भावज ने भी उन्हीं का अनुगमन किया। इस समय आपके घर पर पुलीस का ताला पड़ा है। घर के हरएक कोने में अंधकार छाया हुआ है। धैर्य धरने के सिवा कोई और उपाय नहीं है।

भवदीय—

वीरेंद्र"

नरेंद्रदेव के ऊपर जैसे बिजली गिर पड़ी। उनके सौभाग्य-कुसुम को, जो दिन-दिन खिल रहा था, कली फूट रही थी, काल ने तोड़ लिया, और उसे कुचल डाला। वह आसमान की ओर देखकर चीख मारकर गिर पड़े। उन बेचारे को भाई के मरने का उतना दुःख नहीं हुआ, जितना कि अपनी दयनीय दुर्दशा पर; क्योंकि परतंत्र आत्मा अपने के सिवा दूसरे का विचार नहीं करती।

(४)

आज दो दिन बीत गए हैं, नरेंद्रदेव ने कुछ नहीं खाया। खायँ कहाँ से? पास एक पैसा भी न था। भीख माँगने से मिलेगी नहीं, नहीं तो चाहे यह भी करते; क्योंकि अकर्मण्य भारत का यह अंतिम लक्ष्य है। इसके करने में उसे कुछ भी संकोच नहीं। हम ब्राह्मण हैं, उच्च कुल के हैं, फिर दूसरों के जूठे बरतन कैसे माँजेंगे? हमारा धर्म नष्ट हो जायगा, हमारे हिंदूपन में कलंक लग जायगा। आह! एक महर्षि-संतान को म्लेच्छ का जूठा छूना पड़े, क्या यह संभव है! मर जाऊँगा, पर ऐसा न करूँगा। इसी प्रकार के संकल्प-विकल्प नरेंद्र बाबू के मस्तिष्क में चक्कर मार रहे थे। पर भूख का मारा पेट नहीं मानता। कहता है—धर्म का साम्राज्य इस संकीर्णता के ऊपर है। इस आडंबर को छोड़ दो। बाहरी दिखावे से आत्मा पवित्र नहीं होती। भूख ने बड़े ज़ोर से चिल्लाकर कहा—बाबू, आत्मघात न करो। यह दुर्बलता है। इसे छोड़ो। महात्मा गाँधी ने तो जेल में भंगी का भी काम किया है; पर क्या आज वह महात्मा के नाम से पूजे नहीं जाते?

भूख ने विजय पाई। बाबू ने सर्विस-सेक्योरिंग-एजेंसी में प्रार्थना की। मैनेजर ने कहा—शिकागो-युनिवर्सिटी के प्रिंसिपल के मकान में आपको जूठे बरतन माँजने पड़ेंगे। वह आपको २) रु० रोज़ देंगे। हिंदूपन ने बहुत मना किया। पर बाबूजी ने एक न मानी। चल दिए। बाबूजी को नौकरी मिल गई। जो कल कॉलेज के होटल में अपने भाई के रुपए पर बाबूपना झलका रहे थे, उन्हें आज फटे कपड़े पहनकर नल के नीचे जूठे बरतनों में हाथ डालना पड़ा।

(५)

कई दिन हो गए। मालिक से भेंट नहीं हुई। आज प्रिंसिपल साहब ने पानी माँगा। नरेंद्रदेव ने अपना अहोभाग्य समझकर गिलास को साफ़ किया, और उसे साफ़ पानी से भरकर कमरे में हाज़िर हुए। नौकर बाबू ने देखा, प्रिंसिपल साहब प्रेसीडेंट विलसन के पत्र का उत्तर लिख रहे हैं। शिकागो के बड़े-बड़े लार्डों के इंटरव्यू-कार्ड मेज़ पर रक्खे हैं। प्रिंसिपल साहब उन्हें पढ़ रहे हैं। किसी-किसी में अपनी स्वीकृति के हस्ताक्षर भी कर रहे हैं। नरेंद्रदेव ने कहा—सर, साहब, पानी हाज़िर है। प्रिंसिपल साहब ने मुँह फेरकर देखा। वह नरेंद्रदेव को झट पहचान गए। उन्होंने मंद मुसकान के साथ

कहा—नरेंद्र बाबू, तुम और यह हालत? यह तो बड़ा कुत्सित कर्म है! नरेंद्र ने सिर लचाकर कहा—साहब, क्या आ। मुझे पहचानते हैं?

प्रिंसि०—हाँ।

नरेंद्र—आपने मुझे कहाँ देखा?

प्रिंसि०—नियाग्रा-झरने के किनारे पर मैंने आपके जूतों की मरम्मत की थी। आपने मुझे एक रुपया दिया था।

अब तो नरेंद्रदेव के मुँह का रंग उड़ गया। चेहरा फ़क हो गया। उन्होंने लज्जा और आश्चर्य से कहा—क्या आप शिकागो-युनिवर्सिटी के प्रिंसिपल हेमिल्टन हैं?

प्रिंसि०—नहीं नरेंद्र बाबू, मैं हूँ अमेरिका का एक तुच्छ शू-मेकर हेमिल्टन।

चंद्रभानु "विभव"

तुम!

जीवन जगत के, विकास विश्व-वेद के हो,
परम प्रकाश हो, स्वयं ही पूर्णकाम हो;
विधि के विरोध हो, निषेध की व्यवस्था तुम,
खेद-भय-रहित, अभेद, अभिराम हो।
कारण तुम्हीं थे, अब कर्म हो रहे हो तुम्हीं,
धर्म-कृषि-मर्म के नवीन घन श्याम हो;
रमणीय आप महामोदमय धाम, तो भी
रोम-रोम रम रहे, कैसे तुम राम हो?
बुद्धि के, विवेक के, या ज्ञान, अनुमान के भी
आए जो पतंग तुम्हें देखने, जले गए;
बलिहारी माधुरी अनंत कमनीयता की,
रूपवाले लोटने को पैरों के तले गए।
शंका लगी होने किसी को, तो कोई सपने-सा
जगने लगा है आप भूल में चले गए;
छलने के लिये तो सवाँग बहुरूपिए के
तुमने लिए अनेक, तुम ही छले गए।
सुमन-समूहों में सुहास करता है कौन,
मुकुलों में कौन मकरंद-सा अनूप है;
मृदु मलयानिल-सा माधुरी उषा में कौन,
स्पर्श करता है, हिम-काल में ज्यों धूप है।
मान है तुम्हारा, अभिमान है हमारा, यह
"नहीं-नहीं" करना भी "हाँ" का प्रतिरूप है;
घूँघट की ओट में छिपा है भला कैसे कभी,
फूटकर निखर बिखरता जो रूप है।
होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया
रूप दिए देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये;
तुम्हें भी न होता परितोष कभी मेरी जान,
बनते ही जाते हो रहस्य जोड़ने के लिये।
कंज कामना की आँखें आलस से बंद सोईं
चंद उपहारों से भी मुँह मोड़ने के लिये;
बंधन में बँधता प्रतिज्ञा की प्रतीति किए,
तुम हँस देते, बस, उसे तोड़ने के लिये।
दीन-दुखियों को देख आतुर, अधीर अति
करुणा से साथ उनके भी कभी रोते चलो;
थके श्रमी जीवों के पसीने-भरे सीने लग
जीने को सफल करने के लिये सोते चलो।
भूले, भोले बालकों के इस विश्व-खेल में भी
लीला ही से हार और श्रम सब खोते चलो;
सुखी कर विश्व, भरे स्मित-सुखमा से मुख
सेवा सबकी हो, तो प्रसन्न तुम होते चलो।

जयशंकर "प्रसाद"

आपने!

कमनीय कुंदन की कांति का कलेवर है
कौन काम का, जो काम मारा नहीं आपने;
माना, आप रुस्तम से कम नहीं, किंतु क्या, जो
दीनों को विपत्ति से उबारा नहीं आपने।
कंकड़ी-सी संपदा करोड़ों की न कौड़ी की, जो
दिया देश-भक्तों को सहारा नहीं आपने;
व्यर्थ हुए पंडित, प्रवीण, प्रतिभा के पूरे
देश की दशा को जो सुधारा नहीं आपने।

रायबहादुर

[चित्रकार—श्रीयुत आर० घोष]

पानियर में रायबहादुरी मिलने का समाचार पढ़ते ही फूलकर कुप्पा हो गए। कहते हैं—"अब क्या है, मार लिया मैदान! अब की सी० आई० ई० भी लो!"

"क्यू-क्ल्यू-क्लान"

गोरे और काले का भेद संसार में प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। एशिया, योरप, आफ़्रिका और अमेरिका तक में कालों के विरुद्ध अब तक घृणा प्रकट की जा रही थी, पर अब हिंसात्मक आंदोलन भी उग्र रूप धारण कर रहा है। अमेरिका, जिसे प्रजा-सत्ता-वाद का आदर्श कहा जाता है, वर्ण-भेद-विचार में योरप के किसी देश से कम नहीं है। हाल ही में वहाँ के हाईकोर्ट से यह फ़ैसला हुआ है कि कोई भी भारतीय अमेरिकन महिला से विवाह नहीं कर सकता, और न वहाँ का नागरिक ही हो सकता है। निग्रो लोगों पर किए गए बीभत्स तथा श्रोता के शरीर में रोमांच पैदा कर देनेवाले अत्याचार पढ़कर हृदय काँप जाता है। कदाचित् कोमलांगिनी ललनाओं को तो सुनकर ग़श तक आ जाय। भला ख़याल तो कीजिए, पति-वियोग में ठंडी साँसें लेती हुई महिला पर लात और घूँसे बरसाना, मा के पवित्र प्रेम के वियोग से व्यथित और रोते हुए बालक को पेड़ पर लटकाकर जला देना, या निःशस्त्र लोगों पर 'डायर' की भाँति गोलियों की बौछार करना क्या 'टाम काका की कुटिया' में वर्णित अत्याचारों से कहीं अधिक अमानुषिक और निंदनीय काम नहीं है? क्या इनकीज़ीशन (धर्म-विचार) के अत्याचार इन अत्याचारों से भी अधिक पैशाचिक और नारकीय थे? अमेरिका में ऐसे अत्याचार चुरा-छिपाकर नहीं, दिन-दहाड़े और प्रतिदिन होते रहते हैं। ऐसे नीच कार्य वहाँ कोई ऐरे-ग़ैरे लोग भी नहीं करते। बड़े-बड़े लोगों की यह कुत्सित करनी है!

'अदृश्य साम्राज्य का सम्राट्' और 'क्लान का गुरु-घंटाल' डब्ल्यू० इवांस

वहाँ एक गुप्त-समिति है, जिसका नाम "क्यू-क्ल्यू-क्लान" (Ku Klux Klan) है। इस समिति का वृत्तांत समाचार-पत्र पढ़नेवालों को थोड़ा-बहुत ज्ञात है।

रात्रि-सभा में एकत्रित २०,००० क्यू-क्लयू-क्लान लोग

(क्लान-रीति के अनुसार पहला विवाह)

माधुरी के पाठकों के ज्ञान-लाभ तथा मनोरंजनार्थ इस पैशाचिक समिति का सचित्र, संक्षिप्त परिचय आगे दिया जाता है।

इस समिति का मुख्य उद्देश्य अमेरिका में प्रोटेस्टेंट-ईसाई गोरों का प्रभुत्व बनाए रखना और काले लोगों तथा यहूदियों को नष्ट करना है। यह 'क्लान' कोई साधारण समिति नहीं है। इसकी शक्ति और संगठन के सामने संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका की सरकार भी थर्राती है ! बड़े-बड़े जज, जनरल, राजनीतिज्ञ, प्रोफ़ेसर और सैनिक तक इस हत्यारी समिति के सदस्य हैं ! हाल ही में संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका की ओकलोहामा-रियासत में क्लान-वालों ने ऐसा ऊधम मचाया कि वहाँ के गवर्नर मिस्टर ज० सी० वाल्टन को सैनिक क़ानून (Martial law) जारी करना पड़ा। उन्होंने क्लानवालों की एक सभा रोकने का प्रयत्न किया, तो वे शीघ्र ही प्रत्याक्रमण के लिये तैयार हो गए। ५० हज़ार क्लानवालों

के० के० के०-समिति का गुरु-कंकाल नए सदस्य को दीक्षा दे रहा है
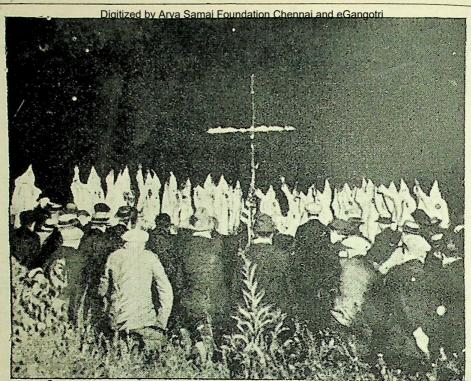
क्लान लोगों की एक सभा

आदिम क्लान का संस्थापक गुरू-घंटाल बी० फ़ॉरेस्ट

नवीन क्लान का प्रवर्तक जे० सिमंस

ने बात-की-बात में एकत्र होकर सभा कर ही तो डाली। आफ़त आई ग़रीब गवर्नर पर! वहाँ की व्यवस्थापिका-सभा ने बेचारे गवर्नर के अधिकार छीन लिए। इस संस्था ने अमेरिका में अपनी धाक जमा रक्खी है। जिस पर इसकी नज़र पड़ी कि बस, उसकी शामत ही आ जाती है। लिंचिंग (खाल खींचने की क्रिया) के द्वारा उसे इस दुनिया से ही उठा दिया जाता है। न्याय और जनता का प्रभाव क्लान की नादिरशाही के सामने कोई चीज़ नहीं। अंक-विवरण से पता चलता है कि अमेरिका में क्लान-समिति तथा अन्य गोरों द्वारा हज़ारों निग्रो लोगों का अब तक ख़ून हो चुका है, और ऐसा करनेवालों का वहाँ की सरकार कुछ भी नहीं कर पाई! क्लान-

समिति के सदस्यों की पोशाक भी बड़ी विचित्र है। अपनी सभाओं तथा अन्य सामाजिक और धार्मिक कार्यों में वे मुँह पर नक़ाब रखते हैं, जिन पर लिखा होता है के० के० के०। वास्तव में यह वर्तमान क्लान-समिति सन् १८६० ईसवी में स्थापित क्यू-क्ल्यू-क्लान का ही रूपांतर है। अमेरिकन गृह-युद्ध (The American Civil War) के उपरांत गोरों का प्रभुत्व बनाए रखने के लिये इसकी स्थापना हुई थी। नैथन वैडफ़ोर्ड फ़ॉरेस्ट आदिम क्लान-समिति का गुरू-घंटाल (Grand Wizard) था। परंतु सन् १८६६ ई० में यह समिति सरकारी तौर पर बरख़ास्त कर दी गई। फिर नवीन क्लान-समिति की स्थापना, सन् १९१५ ई० में, कर्नल विलियम जोज़ेफ़ सिमंस के द्वारा, हुई, और उसका नाम रक्खा गया 'देशभक्त, गुप्त, सामाजिक तथा परोपकारी दल' (Patriotic, Secret, social and benevolent Order)। सन् १९२० ई० में एडवर्ड यंग क्लार्क इस पैशाचिक समिति का सदस्य हुआ। उसने इसे सुचारु रूप से संगठित करके इस पर अपना सिक्का जमा लिया, और अपनी 'दक्षिणी प्रकाशन-समिति' को भी क्लान-आंदोलन में लगा दिया। क्लान-समिति ने अपना ध्येय यह बनाया कि प्रत्येक अमेरिकन को घोर तथा कट्टर अमेरिकन (Cent-Percent American) होना चाहिए। क्लान के नवीन संचालकों ने भी ऐसे प्रचार से अपना उल्लू सीधा किया। उधर सदस्यों की संख्या भी समुद्र की लहरों की भाँति ऐसी उमड़ी कि १५ महीने में ही ५,००० से ६०,००० हो गई। विपुल धन-संपत्ति क्लान-समिति के हाथ लगी। कुछ समाचारपत्रों ने क्लान की करतूतों का भंडाफोड़
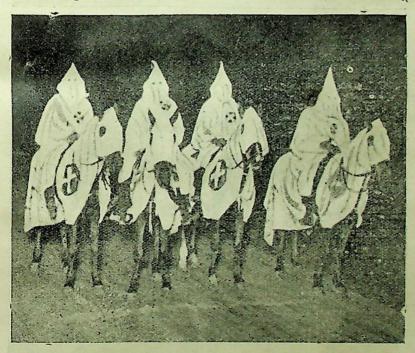
के० के० के०-समिति की एक पैरेड में सबसे अगले चार अश्वारूढ़ सदस्य

(घोड़े और आदमी नक़ाब पहने हैं)

किया। क्लान के गुरू-घंटाल क्लार्क पर अनेक दोष आरोपित किए गए। फल-स्वरूप क्लान-समिति के नेतृत्व में परिवर्तन हुए। जून, सन् १९२२ ई० में क्लान-समिति की बागडोर क्लार्क के हाथ
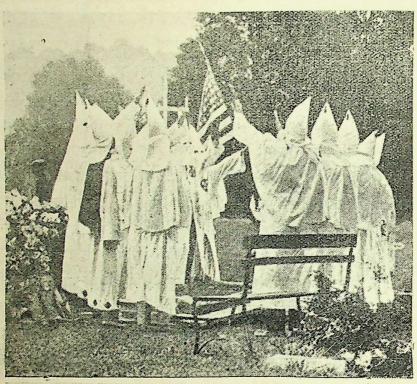
के० के० के०-समिति के एक सदस्य के शव की अंत्येष्टि
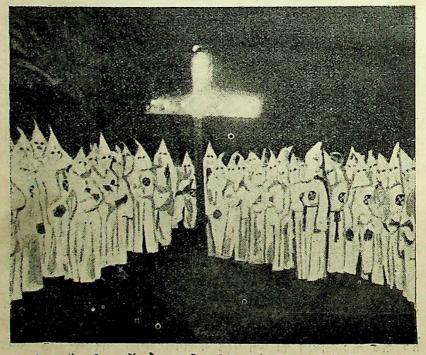
प्रदीप्त क्रॉस के चारों ओर एकत्रित के० के० के०-समिति के सदस्य (दीक्षा ली जा रही है)

में आई थी; परंतु उसी साल ऑक्टोबर में उसको अपने पद से इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। नवंबर से क्लान का गुरू-घंटाल (Imperial Wizard) डब्ल्यू० इवांस हुआ। कहा जाता है, इवांस से क्लानवालों को बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। जब से क्लान की बागडोर इवांस के हाथ में आई है, तब से क्लान ने बड़ा ही भीषण रूप धारण किया है। अभी हाल ही में संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के टैक्सास-राज्य के अंतर्गत डैलास-नगर में क्लानवालों की एक

क्यू-क्ल्यू-क्लान की एक गुप्त बैठक के स्थान के निकट दो संतरी इस उद्देश्य से पहरा लगा रहे हैं कि कोई बाहरी व्यक्ति कार्यवाही का पता न पा सके

विराट् बैठक हुई थी। उसमें ७५ हज़ार क्लानवाले उपस्थित थे। 'अदृश्य साम्राज्य' के सम्राट् इवांस ने डंके की चोट कहा कि कैथोलिक, निग्रो, यहूदी तथा अन्य वर्णों के लोग अमेरिकन होने के योग्य नहीं हैं, और इसलिये इन लोगों को अलग ही रहना चाहिए। अमेरिका में गोरे अमेरिकन प्रोटेस्टेंट लोगों का ही प्रभुत्व प्रत्येक बात में होना चाहिए। इवांस के इस भाषण से लोगों में सनसनी फैल गई है। इटली के 'फ़ैसिस्टी'-आंदोलन के समान क्लान-आंदोलन भी राजनीतिक क्षेत्र की ओर विद्युत्-वेग से बढ़ रहा है। टेक्सास, ओकलोहामा, ओरीजन आर

के० के० के०-समिति के दो मुख्य चिह्न—प्रदीप्त क्रॉस और जटित झंडा
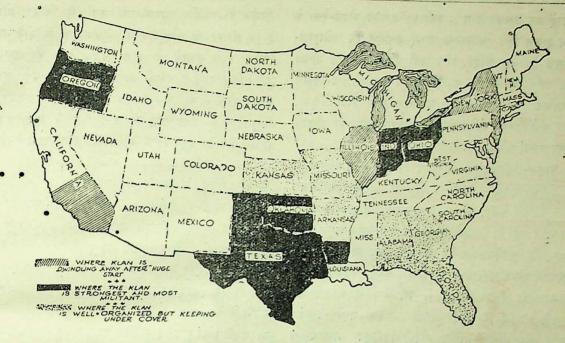
'न्यूयार्क हेरल्ड' को प्राप्त क्लान का भूगोल

ओहियो-राज्यों में क्लानवालों ने नवीन चुनावों में अद्भुत सफलता प्राप्त की है। क्लानवालों का कहना है कि ओहियो की भाँति यदि और राज्यों में भी क्लान की शक्ति प्रबल हो जाय, तो आगामी सभापति के चुनाव के लिये वे एक क्लान-सदस्य खड़ा कर सकेंगे। अकेले ओहियो-राज्य में सात लाख क्लानवाले हैं।

भारतवर्ष में जाति-पाँति, ऊँच-नीच तथा अन्य भेद दूर करने में हज़ारों अमेरिकन मिशनरी लोग लगे हुए हैं। समझ में नहीं आता, किस मुँह से ये लोग भारतवर्ष को सभ्य बनाने का दावा करते हैं? इन लोगों को चाहिए कि पहले अपने देश में निग्रो लोगों पर होनेवाले अत्याचारों को रोकें; और रोकें उन हत्या-कांडों को, जो सभ्यता के नाम पर, बेचारे काले लोगों पर, अमेरिका आदि देशों में किए जाते हैं। 'बाइबिल' के शब्दों में सभ्यता के हामी इन पादरियों से केवल यही कहना है कि "वैद्य, पहले अपना इलाज कर!"

श्रीराम शर्मा

अनहिलवाड़े के सोलंकियों का इतिहास

(वर्ष २, खंड २, संख्या १, पृष्ठ ४५ से आगे)

कर्णदेव

कर्णदेव (कर्ण) के विरुद 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' और 'त्रैलोक्यमल्ल' मिलते हैं।

कर्ण का भीलों को जीतना

कर्ण के समय गुजरात में भीलों ने विशेष उपद्रव मचाया, जिससे उसने भीलों के प्रबल सरदार आशा को जीतकर वह उपद्रव शांत किया। इस विषय में प्रबंध-चिंतामणिकार लिखता है कि "कर्ण ने आशापल्ली[1] के रहनेवाले ६ लाख भीलों के स्वामी आशा-नामक भील पर

१. आशापल्ली = आसावल गाँव जो अहमदाबाद के पास है।

चढ़ाई कर उसको जीता। वहाँ पर उसको भैरव-देवी के शुभ शकुन होने के कारण उस (कर्णदेव) ने कोछरब-नामक देवी का मंदिर, और जहाँ पर आशा को जीता था, वहाँ जयंतीदेवी का मंदिर बनवाया। फिर उसने कर्णावती[1] नाम की नगरी बसाकर वहीं राज्य किया, और कर्णेश्वर का मंदिर तथा कर्णसागर[2] नाम का तालाब बनवाया।"[3]

'सुकृत-संकीर्तन' में लिखा है कि "कर्णदेव सुंदरता में कामदेव से भी बढ़कर था। वह मालवे के राजा को जीतकर नीलकंठ की मूर्ति वहाँ से लाया।" सुकृत-संकीर्तनकार का यह कथन कि कर्णदेव नीलकंठ की मूर्ति मालवे से लाया, विश्वास-योग्य नहीं है; क्योंकि हम ऊपर बतला चुके हैं कि भोज के अंतिम समय में भीमदेव ने मालवे पर चढ़ाई की थी, और उसी समय वह नीलकंठ आदि देव-मूर्तियों-सहित सुवर्ण-मंडपिका मालवे से लाया था।

कर्ण का मालवे के परमारों से युद्ध

इसी तरह मालवे के राजा को जीतने की बात भी निर्मूल है; क्योंकि 'पृथ्वीराजविजय' से विदित होता है कि साँभर के चौहान-राजा दुर्लभराज के छोटे भाई विग्रहराज से मालवे के राजा उदयादित्य की उन्नति हुई। विग्रहराज ने उसको सारंग-नामक एक बड़े वेग-वाला घोड़ा दिया, और उस घोड़े को पाकर उदयादित्य ने गुजरात के राजा कर्ण को जीता[2]। इससे कर्णदेव का मालवे के राजा उदयादित्य को जीतना ही पाया जाता है।

१. कर्णावती नगरी कहाँ बसाई, यह स्पष्ट रूप से लिखा नहीं मिलता; परंतु आसावल की जगह उसका बसना अनु-मान किया जाता है।

२. कर्णसागर-तालाब कहाँ बनाया, यह अनिश्चित है। रासमाला के कर्ता किनलॉक् फॉर्ब्स का अनुमान है कि मोढ़ेरा-शहर (अनहिलवाड़े से दक्षिण में कुछ मील के अंतर पर) के निकटवर्ती कनसागर-गाँव के पास वह तालाब होना चाहिए।

(रासमाला, सन् १८७८ ई० की छपी हुई, पृ० ८०)

३. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३४।

४. श्रीकर्णदेवोऽथ नृपस्त्रिलोक-
विलोकनीयद्युतिराशिरासीत्;
यं वीक्ष्य नारीहृदयैकवासो-
ऽधिकं ह्रियाभून्मदनोऽप्यनङ्गः ॥ २० ॥
जित्वा बलैर्मालवभूमिपाल-
मानीतवान् यः किल नीलकण्ठम्।
तन्मूर्ध्नि सिन्धुप्रथिताध्वसंख्यं
प्रैषीद्यशः स्वं भुवनत्रयेऽपि ॥ २१ ॥
(सुकृत-संकीर्तन, सर्ग २)

१. कर्णदेव ने मालवे पर चढ़ाई अवश्य की थी; क्योंकि गुजरात के सोलंकियों का पुरोहित सोमेश्वर अपने 'सुरथोत्सव'-काव्य के पंद्रहवें सर्ग में अपने पूर्वपुरुष आम-शर्मा के विषय में, जो राजा कर्ण का पुरोहित था, लिखता है कि "मालवेश्वर के पुरोहित ने अपने राजा के सारे देश को सोलंकी-राजा (कर्णदेव) से व्याकुल हुआ देखकर उसको मारने के हेतु कृत्या (नाश करनेवाली स्त्रीरूप दैवी शक्ति) उत्पन्न की। परंतु उस (पुरोहित आमशर्मा) ने अपनी मंत्र-शक्ति से उस (कृत्या) को पीछे लौटा दिया, जिससे वह अपने उत्पादक को ही मारकर चली गई—

धाराधीशपुरोधसा निजनृपक्षोणीं विलोक्याखिलां
चौलुक्याकुलितां तदत्ययकृते कृत्या किलोत्पादिता;
मन्त्रैर्यस्य तपस्यतः प्रतिहता तत्रैव तं मान्त्रिकं
सा संहृत्य तडिल्लता तरुमिव क्षिप्रं प्रयाता क्वचित् ॥१५।२॥

इससे अनुमान होता है कि मालवे के राजा के सेवक कर्णदेव को छल से मारने के उद्योग में लगे हुए थे; परंतु उनका यत्न सफल न हो सका। 'पृथ्वीराजविजय' से यही पाया जाता है कि विजयी कर्णदेव ही हुआ था।"

२. तस्य विग्रहराजेन भोगीन्द्रेणानुजन्मना।
शेषेण च महीभारं त्याजितः पृथिवीभृतः ॥ ७५ ॥
मालवेनोदयादित्येनास्मादेवाप्यतोन्नतिः।
मन्दाकिनीहृदादेव लेभे पूरणमब्धिना ॥ ७६ ॥
सारङ्गाख्यं तुरङ्गं स ददौ यस्मै मनोजवम्।
नह्युच्चैश्श्रवसं क्षीरसिन्धोरन्यः प्रयच्छति ॥ ७७ ॥
जिगाय गूर्जरं कर्णं तमश्वं प्राप्य मालवः।
लब्ध्वानूरुस्सूर्यरथं करोति व्योमलङ्घनम् ॥ ७८ ॥
(पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५)

उदयादित्य के पूर्वज भोज ने साँभर के चौहान-राजा वीर्यराम को मारा था, जिससे चौहानों और परमारों के बीच वैर मात्र होना चाहिए। भोज के अंतिम समय में गुजरात

साँभर के चौहानों से युद्ध

'हम्मीर-महाकाव्य' में साँभर के चौहान-राजा दूसल (दुर्लभ) के हाथ से कर्ण का युद्ध में पकड़ा जाना लिखा है । पाटन (अनहिलवाड़े) के जैन-भंडार से मिली हुई 'चतुर्विंशति प्रबंध' की हस्त-लिखित प्रति के अंत में दी हुई सपादलक्ष (साँभर) के चौहानों की वंशावली में दूसल (दुर्लभ) के विषय में लिखा है कि 'वह गुजरात देश के राजा को बाँध कर लाया, और अजमेर में उससे छाछ बिकवाई ।'' इन दोनों कथनों को हम निर्मूल समझते हैं; क्योंकि यदि दुर्लभ (दुर्लभराज) गुजरात के राजा से लड़ा होता, तो उसका वर्णन 'पृथ्वीराजविजय' में अवश्य होता । ऊपर 'पृथ्वीराजविजय' से जो वृत्तांत उद्धृत किया गया है, उसमें इतना ही पाया जाता है कि दुर्लभराज के भाई विग्रहराज ने उदयादित्य की सहायता की थी । गुजरात के राजा से लड़ने का कोई अन्य प्रमाण नहीं मिलता ।

कर्णदेव की सिंध पर चढ़ाई

प्रसिद्ध काश्मीरी पंडित बिल्हण-रचित कर्णसुंदरी-नामक नाटिका के चतुर्थ अंक में मिलता है कि 'कर्ण के सेनापति रुचिक ने मुसलमानों के किसी नगर पर चढ़ाई की, और सिंधु के तट पर मुसलमानों से युद्ध हुआ, जिसमें

के सोलंकी-राजा भीमदेव तथा चेदि के राजा कर्ण ने धारा-नगरी पर चढ़ाई की । उसी समय भोज का देहांत हुआ, और मालवे की दुर्दशा हुई । भोज के पीछे जयसिंह मालवे का राजा हुआ; परंतु वह अपने राज्य की दशा सुधार न सका । उसके उत्तराधिकारी उदयादित्य ने साँभर के राजा विग्रहराज (तीसरे) से मेल कर, उसकी सहायता से, अपने राज्य को फ़िर सुदृढ़ बनाया, और गुजरात के कर्ण को भी जीता । कवि नरपति नाल्ह-रचित वीसलदेव-रासे में लिखा है कि वीसलदेव (विग्रहराज) का विवाह मालवे के परमार राजा भोज की पुत्री राजमती (राजदेवी) से हुआ । चौहान-राजा सोमेश्वर के समय के विक्रम-संवत् १२२६ के बीजोल्याँ (मेवाड़ में) की एक चट्टान पर खुदे हुए शिला-लेख में वीसल (विग्रहराज) की रानी का नाम राजदेवी लिखा है, जो राजमती से मिलता हुआ है । समय की तरफ़ दृष्टि देते हुए राजमती का भोज की पुत्री होना संभव प्रतीत नहीं होता । यदि वह परमार-वंश की हो, तो संभव है, उदयादित्य की पुत्री हो, और उस (उदयादित्य) ने विग्रहराज से अपनी पुत्री का विवाह कर चौहानों के साथ का पुराना वैर मिटाकर विग्रहराज को अपना सहायक बनाया हो । वीसलदेव-रासा इतिहास के लिये विशेष उपयोगी ग्रंथ नहीं है ।

१. 'पृथ्वीराजविजय' में इसका नाम दुर्लभ और बीजोल्याँ के शिला-लेख तथा प्रबंध-कोष के अंत की चौहानों की वंशावली में दूसल और 'हम्मीर-महाकाव्य' में दुःशल लिखा मिलता है । दुर्लभ, दुःशल और दूसल, ये तीनों एक ही राजा के नाम हैं, जिनमें से दूसल तो प्रसिद्ध लौकिक नाम होना चाहिए, और दुर्लभ तथा दुःशल उसके संस्कृत-शैली के रूप ।

२. ततोभवद्दुःशलदेवनामा
भूमानरिव्रातविजितृधामा ।
यन्मानसं प्राप्य न धर्महंसः
कांस्कान् विलासान् कलयांश्चकार ॥ २९ ॥
नाकेशनारीजनगीयमान-
गीतामृतास्वादवितीर्णकर्णम् ।
श्रीकर्णदेवं समरे विधाय [?]
तद्राजलक्ष्मीं परिणीतवान् यः ॥ ३१ ॥
(हम्मीर-महाकाव्य, सर्ग २)

हम्मीर-महाकाव्य में चामुंडराज के पीछे दुर्लभराज और उसके बाद दुःशल का राजा होना लिखा है । परंतु दुर्लभराज और दुःशल (या दूसल) एक ही राजा के नाम हैं, जिनको उक्त काव्य के कर्ता ने भ्रम से दो मान लिया है ।

१. चौहान दुर्लभराज (तीसरे) के समय तक अजमेर-नगर बसा ही न था । उस समय चौहानों की राजधानी साँभर थी । पीछे से अजमेर की प्रसिद्धि होने के कारण पिछले लेखकों ने साँभर की जगह अजमेर लिख दिया है । अजमेर-नगर उक्त दुर्लभराज के छोटे भाई विग्रहराज (वीसलदेव) के पौत्र अजयदेव (अजयराज) ने बसाया था, ऐसा पृथ्वीराजविजय से पाया जाता है—

एवंविधामजयमेरुपुरः प्रतिष्ठां
कृत्वा स कौतुक इवाजयराजदेवः ।
दोर्वीर्यसंहतनयं तनयं विधाय
सिंहासने त्रिदिवमीक्षितुमुच्चचाल ॥ १९२ ॥
(पृथ्वीराजविजय, सर्ग ५)

२. दूसलदेवः । येन गूर्जरधराधिपतिर्बद्ध्वानीतोऽजयमेरुमध्ये तक्रविक्रयं कारितः । (देखो 'प्रबंध-चिंतामणि', पृ० ५३)

उसने उन पर विजय प्राप्त की। इस विजय की ख़बर युद्ध-क्षेत्र से आए हुए प्रधान वीरसेन ने राजा को दी[1]।" इस घटना का उल्लेख दूसरे किसी ग्रंथकार ने नहीं किया; तो भी बिल्हण कर्ण का समकालीन लेखक था, और उसकी राजधानी में रहकर यह वृत्तांत उसने लिखा था, अतएव इसकी सत्यता में संदेह नहीं।

कर्णदेव के विवाह के विषय में द्वयाश्रयकार लिखता

कर्णदेव का विवाह

है कि "एक दिन एक चित्रकार बहुत देशों में भ्रमण कर राजा कर्णदेव की ड्योढ़ी पर पहुँचा। द्वारपाल से अर्ज़ कराकर वह राजा के पास गया, और प्रणाम कर बोला कि 'महाराज! आपकी कीर्ति सर्वत्र फैली हुई है, और सब लोग आपका आश्रय लेते हैं, यह सुनकर मैं भी आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।' इतना कहने के पश्चात् उसने राजा को एक अति रूपवती राजकन्या का चित्र दिखलाया, जिस पर राजा ने उसके सौंदर्य की प्रशंसा कर उत्कंठा के साथ उससे उस राजकन्या का वृत्तांत पूछा। चित्रकार ने इस पर निवेदन किया कि 'दक्षिण के चंद्रपुर[2]-नगर के राजा जयकेशी[3] की पुत्री मयणल्ला (मयणल्लदेवी) का यह चित्र है[1]। उस राजकन्या को युवावस्था प्राप्त हुई है, और वह अपने अनुरूप पति की प्राप्ति के निमित्त पार्वती का पूजन करती है। एक दिन किसी चित्रकार ने आपका चित्र उसको दिखलाया, जिसको देखते ही उसने आपको अपना पति मान लिया है। अतएव आप भी उसकी अभिलाषा को पूर्ण कीजिए।' राजा ने भी उस कन्या पर आसक्त होकर भेंट में आए हुए रत्न-सुवर्णादि को स्वीकार और उस चित्रकार को दान से संतुष्ट किया। फिर जयकेशी के एक दूत ने आकर राजा से निवेदन किया कि 'राजा जयकेशी ने साक्षात् लक्ष्मीरूप एक रत्न (राजकुमारी) तथा कुछ हाथी आपकी भेंट करने के लिये भेजे हैं। एक थके हुए हाथी को मेरे मनुष्यों ने वृक्ष की छाया में बाँधा है, और मैं आपको प्रणाम करने के लिये आया हूँ।' राजा भी उन हाथियों को देखने के लिये प्रतिहारी-सहित गुप्त रीति से बाग़ में गया, और हाथियों को देखने के पश्चात् एक लता-मंडप में पहुँचा, जहाँ उसे एक अति रूपवती कन्या देख पड़ी। उसके सौंदर्य से काम-वश होकर उसने उसका वृत्तांत जानना चाहा, तो उसकी एक सखी ने कहा कि 'यह दक्षिण के राजा जयकेशी की पुत्री है। इसने राजा कर्ण से ही विवाह करने का संकल्प किया है, इसलिये इसके पिता ने इसको यहाँ भेजा है।' यह सुनकर कर्ण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उससे विवाह किया। परंतु बहुत वर्षों तक उससे कोई संतति न हुई, जिससे उसने लक्ष्मी की उपासना की, और उसके वरदान से जयसिंह-नामक पुत्र उत्पन्न हुआ[2]।"

इस प्रकार हेमचंद्राचार्य मयणल्लदेवी के रूप की प्रशंसा करते और उस पर कर्णदेव की पूर्ण प्रीति होना लिखते हैं; परंतु उनके विरुद्ध प्रबंध-चिंतामणिकार कहता है कि

---

१. **प्रतिहारी**—गज्जणाणअरं जेदुं गअस्स रुचिकस्स सआसादो पहाणो वीरसिंहो आअच्छदि ।......। **राजा**—वीरसिंह, निवेद्य वृत्तान्तम् । **वीरसिंहः**—यथा तावदितो निर्गत्य गर्जनाधिपतिबलस्यास्मद्बलं सिन्धोरोधसि मिलितम् तथा देवाय निवेदितमेव । अनन्तरं महति समरसंमर्दे...... तत्कृतं कर्म रुचिकेन येन विस्मिताः सुराः । **राजा**—ततश्च । **वीरसेनः**—

त्रातारं जगतां विलोलवलयश्रेणीकृतैकारवं
सोन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम् ;
कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नाङ्कुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्नः पृथिव्याः पतिः॥२२॥

(कर्णसुंदरी, पृ० ५३-५५)

२. चंद्रपुर का ठीक स्थान अनिश्चित है। शायद वह बेलगाँव-ज़िले (बंबई-हाते) का चंद्रगढ़ हो, या उत्तरी कानड़ा-प्रदेश का चंढावर, जो गोकर्ण के निकट है।

३. जयकेशी गोआ (जो पुर्तगालवालों के अधीन है) का कदंब-वंशी सामंत था। वह गुहिल्ल का पौत्र और षष्ठदेव या चट्ट का पुत्र था।

१. चारित्रसुंदरगणि मयणल्ला के स्थान पर मीनलदेवी लिखता, जो उक्त रानी का लोक-प्रसिद्ध नाम होना चाहिए। मयणल्ला या मयणल्लदेवी उक्त नाम का संस्कृत-रूप होगा। संस्कृत-लेखक बहुधा लोक-प्रसिद्ध नामों को संस्कृत-शैली के साँचे में ढालकर बदल दिया करते हैं।

२. द्वयाश्रय-काव्य, सर्ग ९, श्लोक ८९ से सर्ग ११, श्लोक ३९ तक।

"कर्णाट-देश के राजा शुभकेशी के पुत्र जयकेशी की पुत्री मयणल्लदेवी ने गुजरात के राजा कर्ण से विवाह करना चाहा, जिस पर उसके पिता ने उसको अपने प्रधानों के साथ वहाँ भेज दिया; परंतु कर्ण ने उसकी कुरूपता का हाल जानने पर उसके साथ विवाह करना न चाहा। इससे वह आठ सखियों सहित प्राणत्याग के लिये उद्यत हो गई। कर्ण की माता उदयमती से उसका यह दुःख देखा न गया, जिससे उसने भी प्राणत्याग का संकल्प कर लिया। इस आपत्ति को देख कर्ण ने अपनी मातृभक्ति के कारण उसके साथ विवाह तो कर लिया, परंतु उसकी ओर कभी दृष्टिपात भी नहीं किया। फिर मुंजाल-नामक मंत्री को किसी अधम स्त्री के साथ राजा (कर्णदेव) की प्रीति होने का वृत्तांत कंचुकी-द्वारा मालूम हुआ जिस पर उसने मयणल्लदेवी को एक दिन उक्त स्त्री के वेष में राजा के पास संकेत-स्थान में भेज दिया। राजा ने उसको वही (अधम) स्त्री जानकर उससे संभोग किया, और उसके गर्भ रह गया। उस (रानी) ने इस घटना के प्रमाण के लिये राजा की मुद्रिका, जिस पर उसका नाम अंकित था, निकाल ली। दूसरे दिन राजा ने इस कुकर्म का प्रायश्चित्त पंडितों से पूछा, तो उन्होंने कहा कि ताँबे की बनी हुई स्त्री की मूर्ति को तपाकर उसे आलिंगन करना ही इसका प्रायश्चित्त है। राजा वही प्रायश्चित्त करने को तैयार हुआ। उस समय उक्त मंत्री ने उस घटना का सच्चा हाल राजा से निवेदन कर दिया। फिर सुमुहूर्त में उसके पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम जयसिंह रक्खा गया।"[2]

उपर्युक्त दोनों लेखकों में से हेमचंद्राचार्य का कथन ही ठीक प्रतीत होता है; क्योंकि वह समकालीन लेखक थे। चारित्रसुंदरगणि भी अपने कुमारपाल-चरित्र में कर्ण की कर्णाटी रानी को बड़ी रूपवती और सौंदर्य में लक्ष्मी से भी बढ़ी-चढ़ी बतलाता[3] है।

कर्णदेव के मंत्री

कर्णदेव के तीन मंत्री थे उदयन, मुंजाल और संपत्कर (साँतू या साँति)। उदयन का लोक-प्रसिद्ध नाम ऊदा था। वह मारवाड़ का रहनेवाला श्रीमाली महाजन था। कर्णावती में बसने के बाद वह धनाढ्य हुआ था। उसने कर्णावती में उदयन-विहार-नामक जिनालय बनवाकर उसमें २४ अतीत, २४ अनागत और २४ वर्तमान तीर्थंकरों की मूर्तियाँ[1] स्थापित कीं। उसकी भिन्न-भिन्न स्त्रियों से आस्थड (आहड), बाहड (चाहड), आंबड और सोलाक नाम के चार पुत्र हुए[2], जो जयसिंह (सिद्धराज) की सेवा में रहे, और उच्च पदों पर नियत किए गए। संपत्कर का लौकिक नाम साँतू या साँति था। साँतू[3] ने

---

१. प्राचीन लेखों में जयकेशी के पिता का नाम षष्ठ-देव (षष्ठ) या चट्ट मिलता है। चट्ट उसका लौकिक नाम होना चाहिए। पंडितों ने उसका संस्कृत-रूप षष्ठदेव या शुभकेशी बनाया हो, यह संभव है।

२. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३१-१३३।

३. श्रियं जयन्त्या निजरूपकान्त्या
　　स्वर्णं स्ववर्णेन च तर्जयन्त्याः।
कर्णोऽपि कर्णाटनृपाङ्गजाया-
　　श्चकार पाणिग्रहणं जयायाः ॥ ३८ ॥
　　　　(कुमारपाल-चरित्र, सर्ग १, वर्ग १)

चारित्रसुंदरगणि ने कर्ण की दो रानियों का उल्लेख किया है, जिनमें से कर्णाटक के राजा की पुत्री का नाम जया लिखा है और दूसरी रानी मीनलदेवी को काश्मीर के राजा की पुत्री बतलाया है—

कर्णाय काश्मीरपतिः स्वपुत्रीं
　　प्रैषीदथो मीणलदेविनाम्नीम्;
चकार पाणिग्रहणं महेन
　　तस्याः स लोकोत्कृतविस्मयेन।
　　　　(सर्ग १, वर्ग २)

यह उसका भ्रम है। मीनलदेवी ही कर्णाटक के राजा की पुत्री थी, जैसा कि 'द्व्याश्रय-काव्य' और 'प्रबंध-चिंतामणि' में लिखा मिलता है। कर्णदेव के और भी रानियाँ होंगी; परंतु काश्मीर के राजा की किसी पुत्री का विवाह उसके साथ हुआ हो, ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता।

१. जैसे बौद्ध लोग २४ अतीत, २४ अनागत (भविष्य में होनेवाले) और २४ वर्तमान बुद्धों का होना मानते हैं, वैसे ही जैन लोग तीर्थंकरों के विषय में मानते हैं।

२. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३६-१३८।

३. आबू पर के देलवाड़ा-गाँव में बने हुए विमलशाह के मंदिर से संबंध रखनेवाली दक्षिण तरफ़ की देवकुलिकाओं (छोटे देवालयों) में से एक के भीतर की मूर्ति के आसन पर इस आशय का लेख खुदा हुआ है कि "विक्रम-संवत् ११९९ में राजा भीम के प्रीतिपात्र, धारापद्रीय-वंश के अमात्य

साँतूवसही नाम का मंदिर बनवाया। मुंजाल ने मुंजाल-स्वामीप्रासाद बनवाया।

प्रसिद्ध काश्मीरी कवि बिल्हण ने—जो वेद, वेदांग, व्याकरण, साहित्य आदि का अच्छा ज्ञाता था, और जिसकी कविता की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी—काश्मीर के राजा कलश के समय में स्वदेश से प्रस्थान किया। वह मथुरा, वृंदावन, कन्नौज, प्रयाग और बनारस में ठहरता हुआ डाहल (चेदि) के राजा कर्ण के दरबार में पहुँचा। वहाँ पंडित गंगाधर को शास्त्रार्थ में जीतने के बाद धारानगरी में गया। परंतु उस समय वहाँ का विद्वान् राजा भोज मर चुका था। वहाँ से वह गुजरात आया, और राजा कर्ण-देव के समय अनहिलवाड़े में ठहरा। वहाँ उसने मंत्री संपत्कर (साँतू) की प्रेरणा से उक्त मंत्री के प्रवर्तित किए हुए भगवान् नाभेय (ऋषभदेव) के यात्रा-महोत्सव पर अभिनय करने के लिये 'कर्णसुंदरी'-नाटिका लिखी, जिसका नायक स्वयं राजा कर्णदेव है। वहाँ से वह सोमनाथ गया। वहाँ से समुद्र-मार्ग द्वारा दक्षिण पहुँचा। वहाँ से रामेश्वर होकर लौटता हुआ कल्याणपुर आया। वहाँ के सोलंकी-राजा विक्रमादित्य (छठे) ने उसको बड़े सम्मान से अपने यहाँ रक्खा, और विद्यापति (मुख्य पंडित) की उपाधि तथा बड़ी समृद्धि प्रदान की। उसने वहाँ रहकर अपनी वृद्धावस्था में विक्रम-संवत् ११४२ के आसपास 'विक्रमांकदेव-चरित'-नामक काव्य रचा। यह दक्षिण के सोलंकियों का इतिहास जानने के लिये बड़ा ही उपयोगी ग्रंथ है।

बिल्हण की तीसरी पुस्तक 'बिल्हण-चरितकाव्य' मानी जाती है। परंतु वास्तव में वह पुस्तक बिल्हण की बनाई हुई ही नहीं है, और न उसके कर्ता को बिल्हण के वृत्तांत का कुछ भी ज्ञान था। उसमें लिखा है कि "गुजरात के राजा वैरिसिंह के राज्य-काल में काश्मीरी पंडित बिल्हण अणहिलपत्तन (अनहिलवाड़े) पहुँचा, तो राजा ने उसकी विद्वत्ता की ख्याति सुनने पर अपनी पुत्री शशिकला को पढ़ाने के लिये उसे नियत किया। कुछ समय बाद वह उस राजकन्या के साथ प्रेम में फँस गया। इसकी ख़बर पाने पर राजा ने उसके लिये प्राणदंड की आज्ञा दी। जब उसको वध-स्थान पर ले जाकर यह कहा गया कि अब अपने इष्टदेव का स्मरण कर ले, तो उसने उक्त राजकन्या के स्मरण में 'अद्यापि तां कनकचंपकदामगौरीं' इस पद से आरंभ कर ५० श्लोक कहे। इतने में राजा ने अपनी रानी के मुख से अपनी कन्या का उस (बिल्हण) पर पूर्ण प्रेम होना सुना, जिससे उसका कोप कुछ शांत हुआ। अपनी प्रजा तथा मंत्रियों के निवेदन करने पर, ब्राह्मण-वध के पाप से डरकर, जो 'कुछ होनहार था, सो हुआ' ऐसा मानकर उसने उसका अपराध क्षमा किया, और शशिकला का विवाह उसके साथ करके बहुत-से गाँव, घोड़े और द्रव्य आदि समृद्धि उसे दी।" यह सारी कथा कल्पित है और उसके लेखक ने बिल्हण के साथ बड़ा अन्याय

साँति की स्त्री शिवादेवी ने अपने पुत्र नीन्न (नीना) और गीगा के कल्याणार्थ यह प्रतिमा स्थापित की।" (ओं संवत् ११११)—

थारापद्रियसन्ताने भीमभूपालवल्लभः।
साँत्यमात्यो महीख्यातः श्रावकोऽजनि सत्तमः॥ १॥
भार्या तस्य शिवादेवी श्रेयसे प्रतिमामिमाम्।
नीन्नगीगाख्ययोः सून्वोः कारयामास निर्मलाम्॥ २॥

इस लेख का साँति और प्रबंध-चिंतामणि का साँतू एक ही पुरुष है। इस लेख से यह भी पाया जाता है कि साँति कर्णदेव के पिता भीम के समय में भी मंत्री के पद पर रहा था। मुनि जिनविजयजी महाराज ने 'प्राचीन जैन लेख-संग्रह', द्वितीय भाग, पृ० १२६, संख्या १५४ में यह लेख छापा है। परंतु पाठ बहुत ही अशुद्ध छपा है। 'भीमभूपाल' के स्थान में 'सोमरुपाल' पढ़ा है, जो उसकी अशुद्धियों में से बहुत ही खटकता हुआ पाठ है।

१. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३८।

२. वही, पृ० १३६।

३. कलश ने विक्रम-संवत् ११२० से ११४६ तक राज्य किया था।

४. देखो मेरा लिखा हुआ 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास', पृ० १२१-२२ का टिप्पण।

१. बिल्हण-चरित की अधिकतर प्रतियों में उसके कर्ता का नाम नहीं मिलता ; परंतु 'काव्यमाला' में छपी हुई पुस्तक में उसके कर्ता का नाम 'काश्मीरक बिल्हण कवि' मिलता है, जो विश्वास-योग्य नहीं है।

किया है। उस समय गुजरात का राजा कर्ण था, न कि वैरिसिंह। वैरिसिंह चावड़ा (चापोत्कट)-वंश का राजा था, और बिल्हण के समय में उसका मरे २०० वर्ष से अधिक समय हो चुका था। उक्त काव्य में 'अद्यापि तां कनकचंपकदामगौरीं' से आरंभ होनेवाले जो ५० श्लोक मिलते हैं, वे 'चौरपंचाशिका' अथवा 'सुरतपंचाशिका' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं; और उन पचास श्लोकों का एक पृथक् काव्य मिलता है, जिसके सब श्लोक द्वयर्थक हैं। उनका आशय जैसे राजकन्या के साथ घटता है, वैसे ही दुर्गा के पक्ष में भी घट सकता है। हस्त-लिखित पुस्तकों में कहीं उसके कर्ता का नाम बिल्हण मिलता है, तो कहीं चौर कवि[1], और कहीं सुंदर कवि[2]। पर उस कविता और बिल्हण के उपर्युक्त दोनों ग्रंथों की कविता में रात-दिन का-सा अंतर है। यदि उसकी रचना बिल्हण ने की होती, तो उसमें उक्त राजकन्या के पिता का नाम वैरिसिंह कभी न मिलता, और बिल्हण का कुछ विश्वास-योग्य चरित्र अवश्य होता[3]।

कर्णदेव ने अनहिलवाड़े में कर्णमेरु-नामक प्रासाद बनवाया था। उसने वि० सं० ११२० से ११५० तक राज्य किया।

कर्णदेव-संबंधी अन्य बातें

उसका देहांत[4] होने पर उसका पुत्र जयसिंह, जो ३ ही वर्ष[1] का था, गुजरात के राजसिंहासन पर बैठा।

कर्णदेव का एक ताम्रपत्र मिला है, जो विक्रम संवत् ११४१ वैशाख सुदी १५ का है[2]।

गौरीशंकर-हीराचंद ओझा

१. डॉक्टर राजेंद्रलाल मित्र-संगृहीत 'नोटिसिज़ ऑफ् संस्कृत मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द १, पृ० २५०, नंबर ४४१।

२. इति सुंदरकविविरचितं चौरपंचाशिकाख्यं काव्यं समाप्तं ॥ श्रीकाली जयति ॥ ० ॥

शाके नवग्रहहिमांशुसमुद्रचन्द्रे
　सूर्ये गते परिमिते मिथुनं गिरीशम् ;
श्रीसुन्दरेण रचितं प्रथमं सुकाव्यं
　काश्यादिनाथचरमद्विज आलिलेख।

(कलकत्ते की संस्कृत-कॉलेज लाइब्रेरी की संस्कृत-पुस्तकों की सूची, नं० १७, काव्य, पृ० २६, नं० ४४)

३. बिल्हण का विशेष वृत्तांत जानने की इच्छा रखनेवाले पाठक मेरे लिखे हुए 'सोलंकियों का प्राचीन इतिहास', प्रथम भाग के पृ० १२० से १२४ तक देखें।

४. प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३४।

५. द्व्याश्रयकार लिखता है कि कर्णदेव देवप्रसाद पर कृपा रखने का आदेश देकर ब्रह्म का चिंतन और हरि का स्मरण करता हुआ इंद्रपुर को सिधारा (द्व्याश्रय-काव्य, ११।१११)

१. 'प्रबंध-चिंतामणि', पृ० १३३। उक्त पुस्तक में यह भी लिखा है कि 'जयसिंह तीन वर्ष की अवस्था में अपने समान वयवाले बालकों के साथ खेलता हुआ एक दिन राज-सिंहासन पर जा बैठा। ज्योतिषियों ने उस समय को बहुत अच्छा बतलाया, जिस पर राजा ने उसी समय उसका राज्याभिषेक कर दिया (प्रबंध-चिंतामणि, पृ० १३४)। ऐसा ही जिनमंडन ने अपने 'कुमारपालप्रबंध' में लिखा है। चारित्र-सुंदरगणि अपने 'कुमारपाल-चरित्र' में जयसिंह का आठ वर्ष की उम्र में सिंहासनारूढ़ होना लिखता है—

स लाल्यमानो ललनाभिरासी-
　दष्टाब्दिको भूपसुतः क्रमेण।
नृपासनेऽसौ विचरन् सदंत
　उपाविशच्चान्यदिने निजेच्छम् ॥ २७ ॥
(सर्ग १, वर्ग २)

जयसिंह चाहे ३ वर्ष की और चाहे ८ वर्ष की अवस्था में राजसिंहासन पर बैठा हो, परंतु इतना तो निश्चित है कि अपने पिता की मृत्यु के समय वह बालक था, इसी से राज्य-भार उसकी माता मयणल्लदेवी ने अपने ऊपर लिया था।

२. एपिग्राफ़िया इंडिका, जिल्द १, पृ० ३१७-१८।

इँगलिस्तान का 'क्यू'

जो लोग योरप में कुछ दिन रहे और योरपियन विद्वानों और राजनीतिकों से मिले हैं, वे शीघ्र ही समझ जाते हैं कि शारीरिक बल या स्वाभाविक मानसिक प्रतिभा में योरपियन जातियाँ हमसे बढ़कर नहीं हैं। योरपियन-जीवन के निरीक्षण से एक यह निश्चित निष्कर्ष निकलता है कि

वर्तमान विश्वव्यापी योरपियन प्रधानता का रहस्य एक शब्द में छिपा हुआ है, जिसे अँगरेज़ी में Organisation (संगठन) कहते हैं। यह तथ्य अन्य योरपियन देशों से भी अधिक स्पष्ट इँगलिस्तान में है। नियमन (Discipline) और संगठन (Organisation), ये ही दो अँगरेज़ों की सफलता के मूल-मंत्र हैं। अँगरेज़ी-जीवन के मुख्य-मुख्य अंगों को लेकर इस सिद्धांत की व्याख्या भविष्य लेखों में फिर की जायगी ; पर यदि यह सत्य है, जैसा एक दार्शनिक ने कहा है कि व्यक्तियों और राष्ट्रों के लक्षण ज़रा-ज़रा-सी घटनाओं में शीशे की तरह झलकते हैं, तो साधारण अँगरेज़ी-जीवन की एक बहुत ही साधारण बात का परिचय रुचिकर होगा।

अपने देश से यहाँ आकर जो भारतवासी रेल पर सफ़र करते हैं, उन्हें पहले बड़ा आश्चर्य होता है। न तो यहाँ स्टेशनों पर कोई शोर-गुल है, न कोई परेशानी है, न कोई कठिनाई है। लंदन-शहर में कोई ७० लाख आदमी रहते हैं। इनके अलावा कोई ४० लाख आदमी रोज़ बाहर से काम करने आते हैं। एक करोड़ से ज़्यादा आदमियों की आमद-रफ़्त के लिये सड़कें काफ़ी नहीं हैं। इसलिये सड़कों के नीचे सुरंग खोदकर बिजली की रेलें, सैकड़ों स्टेशनों से, हर दो-तीन मिनट पर, छूटती हैं। ये भी काफ़ी नहीं हैं। इसलिये इनके भी ७०-८० फ़ीट नीचे दूसरी सुरंग लगाकर रेल चलती है। इन भीतरी रेलों के अलावा लंदन से सारे इँगलैंड को चारों ओर हर पाव घंटे, आध घंटे या प्रत्येक घंटे के बाद रेलें दौड़ती हैं। लंदन में सैकड़ों रेलवे-स्टेशन हैं। गत वर्ष एक स्टेशन पर ५ करोड़ टिकट बिके थे। इस भीड़भाड़ में भी टिकट लेने में किसी को ज़रा-सी दिक़्क़त नहीं होती। जो पहले पहुँचा, वह खिड़की के पास खड़ा हो गया। जो उसके बाद आया, वह उसके पीछे खड़ा हो गया। इसी तरह लोग क़तार में एक के पीछे एक खड़े होते जाते हैं, और चुपचाप शांति-पूर्वक टिकट लेकर प्लेटफ़ार्म की तरफ़ बढ़ते जाते हैं। कोई करोड़पती हो या भिखारी, २५ वर्ष का जवान हो या ८० वर्ष की बुढ़िया, जो जिस समय आवेगा, उसी के अनुसार टिकट पावेगा। धक्का देकर आगे बढ़ जायँ, या क़तार में पहले आनेवाले लोगों से आगे खड़े हो जायँ—यह विचार कभी किसी के मन में आता ही नहीं। कभी-कभी एक के पीछे एक खड़े हुए आदमियों की क़तार बास गज़ लंबी हो जाती है। लोग खड़े-खड़े या खिसकते-खिसकते उपन्यास या अख़बार देखा करते हैं। जल्दी की कोई बात नहीं, कोई आवश्यकता नहीं। अपनी पारी आने पर टिकट मिल ही जायगा। इधर हिंदोस्तान में देखिए, हरएक लाइन और हरएक स्टेशन में बूढ़े आदमियों को, स्त्रियों या बच्चों को टिकट लेने में कितना कष्ट होता है, कितने धक्के खाने पड़ते हैं। कभी-कभी तो टिकट मिलता ही नहीं। पर यहाँ योरप में क़तार की परिपाटी के कारण सबको एक-सी सुविधा है। इस परिपाटी को अँगरेज़ी में 'क्यू' कहते हैं।

इँगलिस्तान में रेलवे-स्टेशनों पर ही नहीं, किंतु सर्वत्र 'क्यू' का दृश्य नज़र आता है। अभी यहाँ 'शिव-नेत्र' (The Eye of Shiva)-नामक एक भारत-विषयक नाटक की धूमधाम थी, और अब, आजकल, 'हसन' नाम के एक दूसरे पूर्वी नाटक का बाज़ार गर्म है। यहाँ नाटक आठ बजे शुरू होते और ग्यारह बजे समाप्त होते हैं। इतनी फ़ुरसत किसी को नहीं है कि रात

के दो बजे तक नाटक देखे, और दिन-भर निद्रा या तंद्रा में नष्ट करे। दूसरे, यह क़ानून भी है कि रात को ग्यारह बजे के बाद नाटक, सिनेमा, आपेरा, रिव्यू, कंसर्ट आदि सब बंद हो जाय। 'हसन', या 'लाई', या ऐसे किसी अन्य सर्व-प्रिय नाटक के लिये टिकट लेने को जन-प्रवाह ४-५ बजे से उमड़ पड़ता है। लोगों का नियम है कि सप्ताह में अमुक दिन नाटक देखने जायँगे। उस दिन चाहे पानी बरसता हो, चाहे बरफ़ गिरती हो, नाटक देखने वे अवश्य ही जाते हैं। अच्छी जगह पाने की अभिलाषा से बहुत पहले चले जाते हैं, और 'क्यू' में खड़े-खड़े उपन्यास, अख़बार आदि पढ़ा करते या बातें किया करते हैं। जो जिसके बाद आता है, वह उसके पीछे खड़ा होता जाता है। इस तरह कभी-कभी सौ-दो सौ गज़ लंबा 'क्यू' बन जाता है। आँधी, पानी या तूफ़ान में भी यह 'क्यू' बिना किसी गड़बड़ या शोर-गुल के खड़ा रहता है।

अब लंदन में घोड़ा-गाड़ी बहुत कम हैं। अगर लंदन की सड़कों पर किसी को टमटम में जाते देखें, तो आप अनुमान कर सकते हैं कि यह देहाती है। शहर के अमीर आदमी मोटर-कार रखते हैं, और ग़रीब आदमी कभी-कभी किराए की, टैक्सी कहलानेवाली, मोटर-कार पर और बहुधा 'बस' कहलानेवाली, १००-१२५ व्यक्तियों को बिठानेवाली, दुमंज़िली मोटर-गाड़ियों पर सफ़र करते हैं। लंदन में हज़ारों 'बसें' चलती हैं। पर सफ़र करनेवाले इतने हैं कि कभी-कभी 'बस' ठहरने की जगहों पर भीड़ होने लगती है। भीड़ हुई नहीं कि 'क्यू' बन गया। 'बस' के आने पर नियमानुसार एक-एक करके लोग बैठने लगते हैं। जितनी जगह ख़ाली हुई, उतने आदमी बैठकर चले गए; बाक़ी दूसरी 'बस' की प्रतीक्षा में खड़े-खड़े फिर उपन्यास या समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

'क्यू' बनाने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि जहाँ आपको घबराहट या कोलाहल स्वाभाविक मालूम होता है, वहाँ भी यह नियम नहीं टूटता। इँगलिस्तान के सब विद्यालयों में विद्यार्थियों और अध्यापकों के मिलने-जुलने के कमरे रहते हैं। भोजन-शालाएँ भी होती हैं। वहाँ नियत समय पर विद्यार्थियों और अध्यापकों के लिये बाज़ार से भी सस्ता भोजन तैयार रहता है। पाख़ाने और पेशाब-घर बिलकुल साफ़-सुथरे होते हैं। बड़े कोट, टोपी, छड़ी आदि रखने के लिये क्लाक-रूम कहलानेवाले कमरे होते हैं। इस देश की आब-हवा ऐसी है कि बारह महीने हलका-हलका पानी बरसता है। कोई नहीं कह सकता कि यदि प्रातःकाल ११ बजे धूप निकली हुई है, तो ११½ बजे पानी न बरसने लगेगा, और १२ से १ बजे तक बदली रहने के बाद फिर दस मिनट बौछार न पड़ेगी। इस अनिश्चित वर्षा से अपनी रक्षा के लिये सब लोग घर से बाहर निकलने पर बड़ा कोट (ओवरकोट) और टोप साथ ले लेते हैं। पर सभ्य-समाज का यह नियम है कि किसी के घर, किसी होटल, पुस्तकालय या विद्यालय में घुसते ही आप बड़ा कोट और टोप उतारकर क्लॉक-रूम के चौकीदार के हवाले कर दें। विद्यालयों के सब विद्यार्थी इस नियम का पालन करते हैं। उस दिन हमारे विद्यालय में रात को, आठ बजे, वर्तमान योरपियन स्थिति पर मि० नार्मन एँजेल का व्याख्यान सुनने के लिये, सैकड़ों विद्यार्थी जमा हुए हिंदी में अनूदित "भारी भ्रम"-नामक पुस्तक के रचयिता मि० एँजेल योरप, अमेरिका

और एशिया में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, और बादशाह से लेकर ग़रीब मज़दूर तक, सबके सम्मान-पात्र हैं। उस दिन, अस्वस्थ होने के कारण, उन्हें पाँच मिनट की देर हो गई। सभा का आरंभ होते ही एक विद्यार्थी ने पूछा—"सभापतिजी! क्या इँगलिस्तान में अब वक्त के पाबंद व्याख्याता नहीं रहे, जो ऐंजेल महोदय के लिये हमें पाँच मिनट प्रतीक्षा कराई गई?" दूसरे ने कहा—"सभापतिजी, भविष्य में आप यह ख़याल रक्खें कि देर में आनेवाले सज्जन यहाँ न बुलाए जायँ। नष्ट करने को हमारे पास बहुत समय नहीं है।" उस समय तो बात हँसी में टल गई; पर असल में यहाँ समय पर न आने या समय की पाबंदी न करने से बड़े-से-बड़ा आदमी भी तुरंत ही नज़रों से गिर जाता है। घंटे-भर के प्रतिभाशाली व्याख्यान के बाद डेढ़ घंटे तक योरपियन स्थिति पर वाद-विवाद हुआ। यहाँ वाद-विवाद पूर्ण स्वतंत्रता से होता है। एक विद्यार्थी ने व्याख्याता से पूछा—"सन् १९१२ में आप कहा करते थे कि युद्ध होना असंभव है। फिर १९१४ में आपने युद्ध में सहायता की। अब आप किस चिंता में हैं?" दूसरे ने पूछा—"आप न तो हमें उदार-दल के मालूम होते हैं, और न मज़दूर-दल ही से आपको पूरी सहानुभूति है। फिर आपको पार्लियामेंट का मेंबर होने की इतनी धुन क्यों समाई है?" ऐसे ही कई प्रश्न हुए। बहस होते-होते साढ़े दस बज गए, और सभा-विसर्जन हुआ। हमारे देश का जो कोई इस सभा को देखता, वही कहता कि ये लड़के कैसे उतावले और उद्धत हैं; न बड़ों का आदर है, न ज़बान में लगाम है। पर सभा-विसर्जन होने पर वे ही लड़के जब कोट, टोपी, छड़ी, छाता लेने के लिये क्लॉक-रूम में गए, तो बिलकुल सीधे हो गए! इँगलिस्तान में नवंबर में कड़ाके का जाड़ा पड़ता है। उस दिन सूर्य भगवान् के दर्शन नहीं हुए थे। सूर्यास्त हुए छः घंटे हो गए थे; पानी बरस रहा था; ठंडी हवा ज़ोर से चल रही थी; बहुत-से विद्यार्थियों को पाँच-पाँच सात-सात मील दूर अपने घरों को जाना था। यदि लड़कों के लिये कभी जल्दी करने का मौक़ा था, तो यही। पर क्लॉक-रूम में जाते ही लड़के शांति-पूर्वक चुपचाप, मानो स्वभावतः, क्यू बनाकर खड़े हो गए। क़तार में से एक-एक ने जाकर अपनी चीज़ें चौकीदार से ले लीं, और चलता हुआ। न काउंटर पर भीड़ हुई, न किसी को यह सूझा कि अपने से पहले आनेवाले के आगे खड़ा हो जाऊँ।

एक और दृष्टांत लीजिए। रविवार, ११ नवंबर को विगत समर-विजय का वार्षिक उत्सव मनाया गया था। शहर का सारा कारोबार बंद था। सारी जनता प्रातःकाल से ही शहर के बीच में उस स्थान की ओर उमड़ रही थी, जहाँ लड़ाई में काम आए हुए लाखों आदमियों का स्मारक बना हुआ है, जिसे अँगरेज़ी में सीनोटैफ़ कहते हैं। ट्रैफ़ेल्गर-स्क्वेयर से लेकर व्हाइट-हाल तक सारी सड़क पर लाखों आदमी खचाखच भर गए। नवंबर के प्रातःकाल का जाड़ा होने पर भी इतनी भीड़ थी कि गरमी के मारे बहुत-से लोग ग़श खाकर गिर रहे थे। जैसे कोई बेहोश होता, वैसे ही पास का कोई आदमी हाथ उठाकर चिल्लाता—"एंबुलेंस!", और तुरंत ही एंबुलेंस के दो स्वयंसेवक भीड़ को चीरते हुए बेहोश आदमी को उठाकर, भीड़ के बाहर मोटर-कार में बिठाकर, पास के एक बाग़ में डॉक्टर के सिपुर्द कर आते। लाखों की यह भीड़ इसलिये खड़ी हुई थी कि देश के लिये मरनेवाले अपने

भाइयों, लड़कों, संबंधियों और मित्रों की स्मृति में सीनोटैफ़-स्मारक पर फूल चढ़ा दें। जो भारत-वासी यारप को एक-मात्र विषय विलास में मग्न समझते हैं, वे ज़रा यहाँ आकर देखें कि कोई स्कूल या कॉलेज, क्लब या पुस्तकालय, होटल या बैंक—शायद घर भी—ऐसा नहीं है, जिससे कोई-न-कोई देश के लिये मरने न गया हो, जिसमें ११ नवंबर को मरनेवालों के नामों की शिला पर फूल न चढ़े हों। यह जाति के सारे बलि-दान का विशाल स्मारक तो यहाँ एक तीर्थ-क्षेत्र हो गया है। इसी की पूजा करने के लिये ११ नवंबर को सारा लंदन उमड़ पड़ा था। स्मारक के चारों ओर थोड़ी-सी जगह पुलीस ने खाली रक्खी थी। एक ओर बहुत बड़ा खुला मैदान था। चारों ओर की भीड़ उसमें छोड़ दी जाती थी। ज्यों ही पार्लियामेंट-हाउस की बिगवेन-नामक विशाल घड़ी ने ग्यारह बजाए, त्यों ही सब लोगों ने अपनी-अपनी टोपी उतार ली। दो मिनट के लिये ऐसी शांति हो गई, मानो वहाँ कोई था ही नहीं। सारे इँगलैंड में ये दो मिनट पूर्ण शब्द-विहीन शांति में, परलोक-गत देशभक्तों की स्मृति में, बिताए गए। सीनोटैफ़-स्मारक के पास प्रिंस ऑफ़ वेल्स आए, राजमंत्री आए, बड़े पादरी आए—सब एक-एक माला चढ़ाकर चले गए। तत्पश्चात् साधारण जनता की पारी आई। बड़े मैदान में हज़ारों गज़ लंबा क्यू बन गया। दो-दो चार-चार करके सब लोग स्मारक के पास आने और फूल चढ़ाकर दूसरी ओर निकल जाने लगे। दोपहर हो गई, शाम हो गई, रात हो गई, अभी क्यू ख़तम नहीं हुआ। बहुत रात होने पर लोग घर चले गए। पर प्रातःकाल फिर क्यू शुरू हो गया, और शाम तक जारी रहा। मैंने बहुत-से व्यक्तियों को अपने आत्मीयों की याद में हिचकी भर-भर कर रोते देखा; पर किसी को क्यू का नियम तोड़ते नहीं देखा। भीड़ थी, मर्मस्पर्शी शोक था, भूख की व्याकुलता थी; पर यह उद्योग किसी ने न किया कि मैदान में अपनी अपेक्षा पहले आनेवाले आदमी के आगे होकर स्मारक के पास जल्दी पहुँच जाऊँ, या झपटकर जल्दी से फूल चढ़ा आऊँ।

सच पूछिए, तो क्यू से समय की बहुत किफ़ायत होती है, और सभी असुविधाओं से बचत हो जाती है। दस दिन हो गए, पर मैं देखता हूँ कि स्मारक पर आज भी फूलों के ढेर लगे हैं, जो लाखों आदमियों ने चढ़ाए थे। यदि ११ नवंबर को धक्केबाज़ी होती, तो न-जाने कितने आदमी कुचलकर मर जाते, और शायद ही दस-पाँच हज़ार आदमियों को स्मारक के दर्शन होते। यदि हमारे देश में सेवा-समितियाँ जनता को क्यू (क़तार) बनाना सिखावें, और रेलवे-स्टेशनों पर, मंदिर-मस्जिदों में, माघ-मेला आदि के समय तथा अन्य अवसरों पर स्वयं-सेवक स्वयं क्यू बनाकर दिखावें, तो जनता की बड़ी सेवा हो।

लंदन से } बेनीप्रसाद

सौंदरनंद-काव्य तथा भदंत अश्वघोष

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' (साहित्यदर्पण)

उपक्रम

सं[स्कृत-साहित्य] में 'रसात्मक वाक्य' को काव्य कहते हैं। काव्य के चार भेद हैं—ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य, शब्द-चित्र तथा वाच्य चित्र। पुनः दृश्य और श्रव्य के भेद से काव्य दो प्रकार के होते हैं। नाटकादि को

दृश्य काव्य कहते हैं। इनके अनेक भेद होते हैं। दृश्य काव्य में नट आदि राम-युधिष्ठिरादि की अवस्था का अनुकरण, अंग तथा वचन से, करते हैं। केवल श्रवण से सुनकर जिस काव्य के रस का अनुभव करते हैं, उसे श्रव्य काव्य कहते हैं। श्रव्य काव्य गद्यमय तथा पद्यमय होता है। गद्य-काव्य चार प्रकार के होते हैं—मुक्तक, वृत्तगंधि, चूर्णक तथा उत्कलिकाप्राय। जिस गद्य-काव्य में समास का अभाव हो, उसे मुक्तक और जिसमें समास की गंध हो, उसे वृत्तगंधि कहते हैं। समास-समन्वित गद्य को उत्कलिकाप्राय और अल्प-समास-युक्त गद्य को चूर्णक-काव्य कहते हैं।

पद्य-काव्य के स्थूलतः तीन भेद हैं। यथा—महाकाव्य, खंड-काव्य और कोष-काव्य। महाकाव्य सर्गबद्ध होता है। इस काव्य में नायक सुर होते हैं, अथवा धीरोदात्तगुणान्वित सद्वंशजात क्षत्रिय। इसमें एक वंश में उत्पन्न अनेक राजों का वर्णन रहता है। शृंगार, वीर तथा शांत-रस में से एक रस प्रधान रहता है। अन्य रस उस प्रधान रस के अंगी रहते हैं। कहीं तो महाकाव्य में खलों की निंदा और कहीं सज्जनों की कीर्ति वर्णित रहती है। महाकाव्य में (न अति स्वल्प और न अति दीर्घ) आठ से अधिक सर्ग रहते हैं। प्रत्येक सर्ग में पद्य एक ही वृत्त के रहते हैं। संध्या, सूर्य, इंदु, रजनी, प्रदोष, अंधकार, प्रातः, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन तथा सागर के वर्णन महाकाव्य में पाए जाते हैं। खंड-काव्य एक ही अर्थ से युक्त संस्कृत-पद्यों से निर्मित होता है। मेघदूत आदि का शुमार खंड-काव्य में है। अन्योन्य अपेक्षा न रखनेवाले श्लोक-समूह कोष-काव्य हैं।

रचना

सौंदरनंद महाकाव्य है। इसमें १८ सर्ग हैं। इस काव्य के रचयिता भदंत अश्वघोष हैं। इसमें शांत-रस प्रधान है। शुद्धोदन का द्वितीय पुत्र सुंदर, जिसका दूसरा नाम नंद भी है, इस काव्य का नायक है।

अब प्रश्न यह है कि भदंत अश्वघोष की लेखनी ही से इस काव्य का उद्भव हुआ है, अथवा अन्य कोई इस काव्य का कर्ता है? नेपाल के राजपुस्तकालय म एक ताड़-पत्र पर लेख है। उससे यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि सुवर्णाक्षी के पुत्र भदंत, महावादी, अश्वघोष ही ने इस काव्य को बनाया। तिब्बती भाषा में अश्वघोष-कृत "बुद्ध-चरित" का जो अनुवाद हुआ है, उससे भी अश्वघोष ही इस काव्य के रचयिता सिद्ध होते हैं।

दूसरी बात यह है कि सौंदरनंद और बुद्ध-चरित एक दूसरे की कमी की पूर्ति करते हैं। फिर दोनों मिलकर बुद्ध के जीवन-चरित का सविस्तर वर्णन करते हैं। बुद्ध-चरित में कपिल-वस्तु से बुद्ध के प्रस्थान, उनके अध्ययन तथा तप का विस्तार-पूर्वक उल्लेख है; पर सौंदरनंद में इन विषयों की मीमांसा सूक्ष्म रीति से की गई है। कपिलवस्तु-नगर का संस्थापन सौंदरनंद म विशेष रूप से लिखा है। कक्षीवान् गौतम के सदृश गौतम-वंशोद्भव कपिल हिमालय के पार्श्व में तप कर रहे थे। इसी समय कुछ इक्ष्वाकु-वंश के राजकुमार उन ऋषि के आश्रम में आए; क्योंकि उनके पिता ने अपनी स्त्री के अनुरोध से उन्हें निर्वासित कर दिया था। महर्षि कपिल उनके उपाध्याय हो गए। गुरु के गोत्र से वे भी गौतम हो गए, यद्यपि इसके पूर्व वे कौत्स कहलाते थे। विभिन्न गुरु की स्वीकृति से एक पिता के पुत्र भिन्न-भिन्न-गोत्रावलंबी हो सकते हैं, जैसे राम गार्ग्य हुए, और वासुभद्र गौतम—

"एकपित्रोर्यथा भ्रात्रोः पृथग्गुरुपरिग्रहात् ;
राम एवाभवत् गार्ग्यो वासुभद्रोऽपि गोतमः ।"

ये इक्ष्वाकु-वंश के राजकुमार शाक्य के नाम से भी प्रसिद्ध हैं । कहा जाता है, शाक-वृक्षों से आच्छादित स्थान पर इनका आवास था, अतः ये शाक्य कहलाते थे । एक दिन कपिल ऋषि हाथ में जल-पात्र लेकर आकाश की ओर उठे, और इन शाक्य-राजकुमारों से कहा—"आप लोग यान पर आरूढ़ होकर पृथ्वी पर गिरती हुई जल-धारा को चिह्नित करें । उसी चिह्नित स्थान पर अपनी राजधानी संस्थापित करें।" राजकुमारों ने ठीक वैसा ही किया, और उस वास्तु (कपिल के आवास) पर कपिलवस्तु-नामक नगर बसाया । पर बुद्ध-चरित में इस नगर के संस्थापन का सूक्ष्म वर्णन है । बुद्ध-चरित नंद के बौद्ध-मत स्वीकार करने के विषय में केवल एक-दो बातें लिखता है; पर इस महाकाव्य में इस विषय का पूर्ण विवरण है ।

वैदिक तथा पौराणिक इतिवृत्त की समता दोनों ग्रंथों में पाई जाती है । पराशर मुनि के दोष का उल्लेख बुद्ध-चरित के चतुर्थ सर्ग के ७६वें श्लोक में और सौंदरनंद के सातवें सर्ग के २६वें श्लोक में है * । वसिष्ठ, पांडु, ऋष्यशृंग, गौतम, विश्वामित्र तथा अन्य ऋषियों का भी उल्लेख दोनों ग्रंथों में पाया जाता है ।

तर्ष, धर्मन् , पुष्पवर्ष, प्रविद्ध आदि शब्दों का प्रयोग इन दोनों ग्रंथों में किया गया है। अशुद्ध 'गृह्य'-शब्द का भी प्रचुर प्रयोग दोनों ग्रंथों में हुआ है ।

दोनों ग्रंथों की लेख-शैली प्रायः एक-सी है । कवि ने दोनों ग्रंथों में वैदर्भी-रीति का अवलंबन किया है । विश्वनाथ कविराज के मत से—

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मका ;
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ।"

ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर अन्य 'स्पर्श'-वर्ण तथा लघु र, ण आदि माधुर्य-सूचक वर्ण हैं । इन वर्णों से समन्वित, समास-रहित या अल्प-समास-युक्त रचना-शैली का नाम वैदर्भी-रीति है । इनमें प्रसाद-गुण का भी प्राचुर्य है ।

"चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः ;
स प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।"
(विश्वनाथः)

"अर्थवैमल्यं प्रसादः" (वामनः)

"श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ;
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।"
(मम्मटः)

अर्थात् प्रसाद-गुण-युक्त वह रचना है, जिसके शब्द सुनते ही अर्थ भासित हो जाता है ।

बुद्ध-चरित तथा सौंदरनंद में भिन्नता केवल इतनी है ही कि बुद्ध-चरित की रीति सौंदरनंद की रीति से कुछ कर्कश प्रतीत होती है । इसके दो कारण हो सकते हैं । प्रथम कारण यह है कि कॉवेल साहब (Mr. Cowell) ने जिस लिपि का अवलंबन कर बुद्ध-चरित प्रकाशित किया है, वह दोष-पूर्ण थी । दूसरा कारण यह हो सकता है कि बुद्ध-चरित कवि का प्रथम ही ग्रंथ होगा । इन बातों से विदित होता है कि अश्वघोष ही ने बुद्ध-चरित तथा सौंदरनंद की रचना की है ।

सौंदरनंद की कविता सरस, मधुर तथा मर्म-स्पर्शी है । इस कविता में न नैषध के-से लावण्य-पूर्ण, ग्रंथिमय, श्लेष-पूर्ण श्लोक ही दृष्टि-गोचर होते हैं, और न माघ के-से उपमामय, ललित और [illegible] श्लोकों के ही दर्शन मिलते

* "पाराशरः शापशरस्तथर्षिः काली सिषेवे झषगर्भयोनिम् ;
[illegible]ऽस्य यस्यां सुषुवे महात्मा द्वैपायनो वेदविभागकर्ता ।"

हैं। साधारण समालोचक की दृष्टि में कालिदास की कीर्ति उपमा पर अवलंबित है। यदि ऐसी बात है, तो अश्वघोष यथार्थ में कालिदास को भी नाँघ जाते हैं। अश्वघोष की एक-दो कविताओं का उल्लेख मैं यहाँ प्रसंगवश किए देता हूँ—

"तां सुन्दरीं चेन्न लभेत नन्दः
सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः ;
द्वन्द्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभे-
तान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ।"

भावार्थ—यदि नंद उस सुंदरी को न प्राप्त कर सकते, और यदि वह सुंदरी अपने पति का सेवन न कर सकती, तो दोनों विकल स्त्री-पुरुष इस प्रकार शोभा न पाते, जिस प्रकार रात्रि के विना चंद्र और चंद्र के विना रात्रि। कालिदास की प्रायः इसी भाव की एक कविता लीजिए—

"परस्परेण स्पृहणीयशोभं
न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत् ;
अस्मिन् द्वये रूपविधानयत्नः
पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत्।"

यह कविता भदंत की कविता के सामने नीरस प्रतीत होती है।

कवि ने बौद्ध-धर्म के गहन दर्शन का सरल, सरस तथा सुगम शब्दों में वर्णन किया है—

"दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्;
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्।
तथा कृती निर्वृतिमभ्युपेतो
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ;
दिशं न काञ्चिद्विदिशं न काञ्चित्
क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम्।"
(सर्ग १६, श्लोक २८। २९)

अर्थात् जैसे जब दीपक निर्वाण को प्राप्त होता (बुझ जाता) है, तब वह न पृथ्वी को जाता है न अंतरिक्ष को, न दिशा को न विदिशा को, स्नेह (तेल) के क्षीण हो जाने के कारण केवल शांति को प्राप्त होता है, उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्य निर्वाण को प्राप्त होता है। निर्वाण प्राप्त होने पर न वह पृथ्वी को जाता है, न अंतरिक्ष को, न दिशा को, न विदिशा को। वह क्लेश का क्षय हो जाने के कारण शांति को प्राप्त होता है।

ग्रंथकार

काव्य के अंत में सुवर्णाक्षी-पुत्र, साकेत-निवासी, आर्य, भदंत, महापंडित तथा महावादी आदि उपाधियाँ कवि के नाम के साथ लिखी हैं। इन उपाधियों से यह स्पष्ट है कि यह कवि महान् लेखक तथा उच्च कोटि का धर्म-प्रचारक था। नानजियो (Nanjio) के लेखानुसार यह कवि सात ग्रंथों का रचयिता समझा जाता है। सुज़ुकी (Suzuki) का कथन है कि इस कवि ने आठ पुस्तकों की रचना की। महायानधर्मोदय का अनुवाद, जो अँगरेज़ी में सुज़ुकी ने किया है, महायान-शाखा का प्रवर्तक है। इससे स्पष्ट है कि यह कवि महायान-धर्म का अनुयायी था। चीन-देश में यह बात प्रसिद्ध है कि अश्वघोष कनिष्क के धार्मिक उपाध्याय थे।

सम्राट् कनिष्क के राजत्व-काल में जो बौद्ध-सभा हुई थी, उसमें अश्वघोष का सभापति के पार्श्व से अवरोहण-पंक्ति में तृतीय स्थान था। इन बातों से प्रतीत होता है कि ख्रीष्ट की प्रथम शताब्दी में यह वर्तमान थे। सारनाथवाले अशोक-स्तंभ के लेख से स्पष्ट है कि यह कनिष्क के राज्य के चालीसवें वर्ष में विद्यमान थे। उस शिला-लेख में इनका राजा अश्वघोष

कहकर उल्लेख हुआ है। आजकल शक्तिशाली महंत लोग जब राजा अथवा महाराजा की उपाधि से विभूषित रहते हैं, तो इसमें आश्चर्य क्या कि हमारे चरित्र-नायक राजा की उपाधि से विभूषित हों।

इनके जन्म-स्थान के विषय में सुजुकी कहता है कि उत्तर-भारत में ही यह उत्पन्न हुए होंगे। किंवदंती के अनुसार आप साकेत के निवासी थे। साकेत वर्तमान अवध-प्रांत का प्रधान नगर था। बौद्ध-ग्रंथों के अवलोकन से भी यह विदित होता है कि साकेत कोशल का प्रधान नगर था। अयोध्या और साकेत एक ही नगर के दो नाम हैं। बौद्ध-चरित तथा सौंदरनंद में कवि ने जो प्रगाढ़ वैदिक ज्ञान का परिचय दिया है, उससे उनका ब्राह्मण होना सिद्ध होता है।

भारत के बड़े-बड़े कवियों में इनकी गिनती है। पुरातन तथा मध्य-काल में इनकी ऐसी प्रसिद्धि थी कि अनेक कवियों के भी काव्य आप ही के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

यह बौद्ध-मतानुयायी थे; महायान-मार्ग का अनुसरण करते थे। इन्होंने अपने ग्रंथों में वैदिक शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। अनुप्रास के आप बड़े प्रेमी थे। प्रथम सर्ग में आप शाक्य-राजकुमारों के राष्ट्र का वर्णन करते हुए अपनी आलंकारिक निपुणता का परिचय इस प्रकार देते हैं—

> "तन्नाथवत्तैरपि राजपुत्रै-
> रराजकं नैव रराज राष्ट्रम्;
> तारासहस्रैरपि दीप्यमानै-
> रनुत्थिते चन्द्र इवान्तरीक्षम्।"

जीवन की असारता का वर्णन करते हुए कवि ने बौद्ध-धर्म के तत्त्व जताने में तनिक भी त्रुटि नहीं की है। प्रसंग-वश कुछ श्लोकों का उल्लेख किए बिना लेखनी आगे नहीं बढ़ती—

> "तस्माज्जरादेर्व्यसनस्य मूलं
> समासतो दुःखमवेहि जन्म;
> सर्वौषधीनामिव भूर्भवाय
> सर्वापदां क्षेत्रमिदं हि जन्म।"

अर्थात् हे मनुष्यो, इसलिये संक्षेप में इस जन्म को ही जरा आदि व्यसनों की जड़, और दुःख का स्थान समझो। जिस प्रकार सब ओषधियों का उत्पत्ति-स्थान पृथ्वी है उसी प्रकार सारी विपत्तियों का उद्भव-स्थान जन्म है।

> "आकाशयोनिः पवनो यथा हि
> यथा शमीगर्भशयो हुताशः;
> आपो यथान्तर्वसुधाशयाश्च
> दुःखं तथा चित्तशरीरयोनि।"

अर्थात् आकाश जिस प्रकार पवन का उत्पत्ति-स्थान है, अग्नि जिस प्रकार शमी के गर्भ में अवस्थित है, जल जिस प्रकार पृथ्वी के भीतर विद्यमान है, उसी प्रकार चित्त और शरीर ही इस दुःख का मूल है।

कवि ने इस प्रकार शृंगार, हास्य, करुण और रौद्र-रस का वर्णन भी अपने ओजस्वी शब्दों में किया है, जिसके अवलोकन-मात्र से चित्त में रसानुसार विकार पैदा हो जाता है।

करुण-रस के वर्णन में कवि ने "अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्" इस भवभूति की सूक्ति को सार्थक कर दिया है। कौन ऐसा हृदय होगा, जो कवि के निम्न-लिखित श्लोक पढ़कर आँखों से अश्रुपात न करेगा?—

> "एषाम्यनाश्यानविशेषकायां
> त्वयीति कृत्वा मयि तां प्रतिज्ञाम्;

कस्मान्नु हेतोर्दयितप्रतिज्ञः
सोऽद्य प्रियो मे वितथप्रतिज्ञः ।"
"आर्यस्य साधोः करुणात्मकस्य
मन्नित्यभीरोरतिदक्षिणस्य ;
कुतो विकारोऽयमभूतपूर्वः
स्वेनापरागेण ममापचारात् ।"

अश्वघोष ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। कुछ ग्रंथ तो इन्होंने मोक्ष-प्राप्ति के उद्देश्य से बनाए हैं, और कुछ काव्य-रचना के अभिप्राय से। कवि के दार्शनिक ग्रंथ लुप्तप्राय हो गए हैं। जो हैं, वे भी शोचनीय अवस्था में हैं। ऐसा कवि, जिसने अपने कविता-कलाप से संसार को मुग्ध कर लिया है, आज तक विस्मृति के गर्त में पड़ा हुआ है, यह कितने खेद की बात है!

रामदीन पांडेय

आईनए-हिंद

हम पहले क्या थे?

वे भी दिन थे कभी, दम भरती थी दुनिया अपना;
था हिमालय की बलंदी पै फरेरा अपना।
रंग अपना था जमा, बैठा था सिक्का अपना;
कोई मैदाँ था, वहाँ बजता था डंका अपना।
हमसरी[1] के लिये अपनी कोई तैयार न था;
काम अपने लिये कोई, कहीं दुश्वार[2] न था।
खुशबयाँ[3] ऐसे थे, जादू का असर रखते थे;
कोई फ़न बाक़ी न था, इल्मो-हुनर रखते थे।
हम किसी का न कभी ख़ौफ़ो-ख़तर रखते थे;
दिल बला का, तो क़यामत का जिगर[4] रखते थे।
कोई शमशेरो-क़लम में न था सानी[5] अपना;
पानी-पानी हुए दुशमन, वो था पानी अपना।
एकजाँ[6] क़ौम थी, आपस में मुहब्बत वह थी;
फ़ैज़[7] आलम[8] को पहुँचता था, सख़ावत[9] वह थी।
दिले-दुशमन को हिला देते थे कूवत वह थी;
मौत से भी नहीं हम डरते थे, हिम्मत वह थी।
सर फिरा जिसका, दिखाया उसे अक्सर नीचा;
सर के रहते कभी हमने न किया सर नीचा।
धर्म के, प्रेम के दरिया थे बहाए हमने;
एक समझे थे सदा अपने-पराए हमने।
'भेद' क्या-क्या नहीं लोगों को बताए हमने;
आदमी बन गए, 'गुर' ऐसे सिखाए हमने।
जानवर को भी हम इंसान बना देते थे;
इल्म की, अक़्ल की यक कान[1] बना देते थे।
राम और कृष्ण की बातें तो पुरानी समझो;
अब फ़साना[2] उन्हें समझो, कि कहानी समझो।
जो समझना हो तुम्हें, राज़े[3]-निहानी[4] समझो;
बुद्ध भगवान की, शंकर की ज़ुबानी समझो।
मुक्ति क्या चीज़ है, संसार में बंधन क्या है;
और बंधन में बँधा आपका यह मन क्या है।
तने-इंसान[5] में यह रूह[6] का जल्वा क्या है,
एक दुनिया तो है यह, दूसरी दुनिया क्या है।
धर्म क्या चीज़ है, ईमान का नक़्शा क्या है;
शास्त्र क्या कहते हैं, और वेद का दावा क्या है।
लापता जो था, पता उसका लगाया हमने;
एक आलम नया आलम को दिखाया हमने।
इल्म[9] मुमकिन न था जिसका, किया उसको मालूम;
नूरे-ईमाँ[10] से किया कुफ़्र[11] को हमने मादूम[12]।
दीनो-दुनिया का ज़माने को सुझाया मफ़हूम[13];
दोनों आलम में हुआ शोहरा[14], पड़ी अपनी धूम।
धर्म का तत्त्व समझकर लिखी गीता हमने;
योग के बल से बली काल को जीता हमने।
एक मैदान था वीराँ[15], जो चमन हमसे हुआ;
सत्य का, प्रेम का दुनिया में चलन हमसे हुआ।
भंग अपना न कभी कोई वचन हमसे हुआ;
हम हुए फ़ख़्रे-वतन[16], फ़ख़्रे-वतन हमसे हुआ।
साफ़ दिल सबके हुए, की वो सफ़ाई हमने;
रौशनी ज्ञान की दुनिया को दिखाई हमने।

---

१. समता। २. कठिन। ३. सुवक्ता। ४. कलेजा। ५. तलवार। ६. जोड़। ७. बहु लाभ। ८. संसार। ९. दान, उदारता।

१. खानि। २. कथा। ३. भेद। ४. गुप्त। ५. मनुष्य-शरीर। ६. आत्मा। ७. प्रकाश। ८. कथन। ९. ज्ञान। १०. धर्म का प्रकाश। ११. नास्तिकता। १२. नष्ट। १३. [illegible] १४. प्रसिद्धि। १५. उजाड़। १६. जन्मभूमि का गर्व।

दान देने[1] में न कुछ जान को समझा हमने;
सच्ची बलि अपने ही बलिदान को समझा हमने।
जान से भी सिवा सम्मान को समझा हमने;
शान पर अपनी रहे, आन को समझा हमने।
धर्म को छोड़के हर्गिज़ न हुए हम बे'दीं;
खाल खिंचवाई है और हड्डियाँ अपनी दे दीं।
मुल्क और क़ौम पै हम जान फ़िदा करते थे;
वह वफ़ादार थे, दम रहते वफ़ा करते थे।
नातिक़े[2] बंद मुख़ालिफ़[3] का किया करते थे;
हक़ जो था हुब्बे[4]-वतन का, वो अदा करते थे।
नाज़[5] था हमको फ़ने-जंग[6] की उस्तादी पर;
सर झुकाते न थे, मर मिटते थे आज़ादी पर।
जंग में हाथ सदा पड़ता था बढ़कर अपना;
दुशमनों का था जिगर, और था ख़ंजर अपना।
दम में सर कर लिया मैदाँ कि दिया सर अपना;
पर्दे पर रूए-ज़मीं के न था हमसर अपना।
रास्त वह तीर थे, दुश्मन की कंजी पर बैठे;
कितने ही मूज़ी उड़ा देते थे हम घर बैठे।
रश्के-गुलज़ार था यह फूला-फला अपना वतन;
सर्वों नाज़ाँ थे, कहीं चर्बज़ुबाँ थी सौसन।
हम थे जी-जान से समझे इसे अपना जीवन;
इस पै कुरबान किया हमने सदा तन, मन, धन।
इसकी सेवा से कभी हाथ न खींचा हमने;
ख़ून अपना दिया, और ख़ून से सींचा हमने।
इसका फल यह था कि यक ताज़ा बहार आई थी;
नक़्शा जन्नत[12] का था, ऐसी चमन-आराई थी।
पाँव रखती थी सँभाले, जो सबा[13] आई थी;
लुत्फ़ था, दौलतो-सर्वत[14] की घटा छाई थी।
ऐसा कंचन था बरसता, हैं तरसती आँखें;
देखने को थीं ज़माने की बरसती आँखें।
कौन था, जो मए-उल्फ़त[15] का तलबगार[16] न था;
कौन दिल था कि जो आनंद से सरशार[17] न था।

थी वह आज़ादी, ग़ुलामी से सरोकार न था;
आप अपनी थी मदद, ग़ैर मददगार न था।
कौन घर था, न थे इशरत[1] के तराने जिसमें;
वह जगह कौन थी, सुख के न थे थाने जिसमें।
की भी हिंसा, तो फ़क़त नफ़्स को मारा हमने;
अपने ही बाज़ुओं का रक्खा सहारा हमने।
गर किया, तो किया व्यसनों से किनारा हमने;
लोक के साथ ही परलोक सँवारा हमने।
लूटना सुख का समझते थे लुटाना दिल का;
चोरी में जानते थे सिर्फ़ चुराना दिल का।
आई भी कोई मुसीबत, न मुसीबत समझी;
हासिले-ज़िंदगी[4] बस, हमने मुहब्बत समझी।
वक़्त की क़द्र की, और इल्म की क़ीमत समझी;
ज़र्रों से लेके फ़लक[5] तक की हक़ीक़त समझी।
देवताओं पै फ़ज़ीलत[6] का था दावा हमको;
ब्रह्म से मिलके मिला ब्रह्म का रुतबा हमको।

"त्रिशूल"

सोने और चाँदी का व्यापार

तीसरा अध्याय; भारतीय विदेशी हुंडी का बाज़ार

"भारतीय हुंडी का बाज़ार अन्य देशों के हुंडी के बाज़ार से भिन्न प्रकार का है। यहाँ की मुद्रा-व्यवस्था न तो सोने ही की है, और न चाँदी ही की। इस देश का प्रधान सिक्का रुपया है, जिसकी चाँदी की क़ीमत उसकी बाज़ारू क़ीमत से लगभग ३/४ अंश है। भारत-सरकार ने अपने ऊपर देश को केवल चालू सिक्का पूरा ढाल-कर देने की ही ज़िम्मेदारी नहीं ले रक्खी है, उसके साथ ही व्यापारिक लेन-देन को चुकता करने के अंतरराष्ट्रीय साधनों को भी पूरा करने का भार, आरंभ ही से, अपने सिर पर ले रक्खा है। रुपए के लिये मुख्य-मुख्य स्थानों में

---

१. अधर्मी। २. बोलना। ३. शत्रु, विरोधी। ४. जन्म-भूमि का प्रेम। ५. गर्व। ६. युद्धकला। ७. सीधे। ८. कुटिलता। ९. हिंसक। १०. वाटिका-स्पर्द्धी। ११. गर्वित। १२. स्वर्ग। १३. पूर्वीय पवन। १४. संपत्ति। १५. प्रेम-मद्य। १६. इच्छुक। १७. मस्त।

१. सुख-भोग। २. राग। ३. मन का दमन किया। ४. जीवन का फल। ५. आकाश। ६. गुरुता।

ख़ज़ाने खोल दिए हैं। वे सब ख़ज़ाने भारतीय अर्थ-सचिव और उनके महकमे के निजी ताल्लुक़ में हैं। इन ख़ज़ानों पर स्थानीय सरकार का शासनाधिकार नहीं है। भारतीय सरकार, निर्यात की वस्तुएँ ख़रीदने के लिये, व्यापारियों को जैसी और जितनी तादाद में रुपयों की ज़रूरत पड़ती है, वैसे और उतने रुपए देती है। भारत-मंत्री, विलायत में, भारत-सरकार पर, कलकत्ते, बंबई और मदरास की जो हुंडियाँ, भारत को रुपए भेजने की इच्छा रखनेवाले व्यापारियों के हाथ, बेचते हैं, उन हुंडियों को भारत-सरकार, इंपीरियल बैंक ऑफ़ इंडिया की मारफ़त, सकरवा देती है। इन नगरों से उत्तर-भारत में रुपया पहुँचाने के लिये पुरज़े, जिन्हें सकार ट्रांस्फ़र कहती है, बेच जाते हैं। ये ट्रांस्फ़र ख़ज़ानों में जमा हुए लगान के रुपयों से सकार दिए जाते हैं।"*

संक्षेप में यही हमारा भारतीय हुंडी का बाज़ार है। अब हम नीचे की पंक्तियों में इसी को समझाने की चेष्टा करेंगे—

जब से भारतवर्ष पर अँगरेज़ी अमलों (ब्युराक्रेसी) का शासन हुआ है, तभी से प्रतिवर्ष इस देश से इन अमलों की पेंशन, देश के राष्ट्रीय ऋण के सूद और रुपए ढालने के लिये ख़रीदी हुई चाँदी आदि के लिये विलायत को कई लाख रुपए भेजे जाते हैं। इसको सरकार 'होम-चार्जेज़' कहती है। एक तरफ़ तो यह स्थिति है। दूसरी तरफ़ प्रतिवर्ष भारत से विलायत को करोड़ों रुपए का माल जाता है। इस माल के मँगानेवाले व्यापारियों को क़ीमत का रुपया विलायत से यहाँ भेजना होता है। अस्तु। सुविधा के लिये ऐसे दो व्यक्ति विलायत में मिल जाते हैं, जिसमें हुंडी के द्वारा सहज ही रुपए जहाँ के तहाँ पहुँच जायँ, और न तो भारत-सरकार को होम-चार्जेज़ के लिये विलायत सोना भेजना पड़े, और न विलायती व्यापारियों को मँगाए हुए माल की क़ीमत चुकाने के लिये वहाँ से सोना भेजना हो। यही होता भी है। भारत-मंत्री भारतवर्ष से होम-चार्जेज़ के रुपए न मँगाकर विलायत में उन्हीं व्यापारियों के हाथ भारतीय ख़ज़ानों पर की गई हुंडी बेचकर रुपए प्राप्त कर लेते हैं। वे व्यापारी इन हुंडियों को अपने भारतीय आढ़तियों के पास भेजकर अपना ऋण अदा कर देते हैं। इस प्रकार व्यापारियों को भारतवर्ष में और भारत-मंत्री को विलायत में अपनी आवश्यकता के अनुसार रुपए प्राप्त हो जाते हैं।

प्रचलित मुद्रा-व्यवस्था के पृष्ठ-पोषक लोगों का कहना है कि यदि भारत-मंत्री इस प्रकार विलायत में भारतीय ख़ज़ानों पर की गई हुंडियाँ न बेचा करें, तो इस देश का ऋण चुकाने के लिये वहाँ के व्यापारियों को यहाँ सोना अथवा गिनी भेजनी पड़ें। चूँकि भारतवर्ष में सोने का सिक्का प्रचलित नहीं है, और सरकार ने आवश्यकतानुसार यहाँ का चालू सिक्का रुपया पूरा ढालने की, अपने ऊपर ज़िम्मेदारी ले रक्खी है, इसीलिये अंत को इस आए हुए सोने को ख़रीद कर, अथवा इसके एवज़ में, सरकार को रुपए देने ही पड़ते हैं। कारण, इसी में लोग अपने लेन-देन का हिसाब रखते और चुकाते हैं। रुपया ही हमारा मूल्य-माध्यम और हिसाब की इकाई (Standard of Value and Money of account) है। भारत-सरकार रुपयों के लिये चाँदी विलायत में ख़रीदती है, उधर वही सोना फिर इस चाँदी के दाम चुकाने के लिये विलायत को भेजना पड़ता है। यह व्यर्थ की दिक़्क़त और ख़र्च बचाने का केवल यही मार्ग है कि भारत-मंत्री विलायत में भारतीय ख़ज़ानों पर की गई हुंडी बेचें। ये हुंडियाँ ठीक वही काम देती हैं, जो सोने का आयात देता है।

यहाँ के व्यापारियों और सरकार के विषय में भी ठीक यही बात है। भारत-सरकार को इन विलायती हुंडियों के रुपए बंबई, कलकत्ते और मदरास में देने पड़ते हैं। जो व्यापारी इनके रुपए पाते हैं, उन्हें वे ही रुपए उत्तर-भारत तथा अन्यान्य प्रांतों को निर्यात के लिये ख़रीदे हुए माल की क़ीमत चुकाने या नया माल ख़रीदने के लिये भेजने पड़ते हैं। इन्हीं प्रांतों में सरकार का लगान का रुपया भी इकट्ठा होता है, जो बंबई, कलकत्ते और मदरास की बड़ी ट्रेज़रियों को भेजना होता है। अस्तु। इन शहरों से भारत के बाहर के ख़ज़ानों पर के ट्रांस्फ़र बेच कर भारत-सरकार जो रुपया व्यापारियों से इकट्ठा करती है, उसी से भारत-मंत्री की हुंडियाँ सकार दी जाती हैं। ये ट्रांस्फ़र इसी प्रकार ज़िला-ख़ज़ानों में आए हुए लगान के रुपयों से सकार दिए जाते हैं। यही हमारे अंतर्देशीय और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लेन-देन को चुकता करने के

* यह "स्पाल्डिंग, ईस्टर्न एक्सचेंज" का उद्धरण है।

ढंग है । इस कार्य में बैंक और देशी सराफ़ आदि अधिकतर लगे हुए हैं । वे बंबई और कलकत्ते की अपनी शाखाओं पर हुंडियाँ करके उत्तर-भारत में आवश्यकतानुसार रुपया खींचते रहते हैं । परंतु अंत में सिक्के की बढ़ती हुई माँग सरकार ही के द्वारा पूरी होती है, जिसे सरकार उपर्युक्त ट्रांस्फ़र बेचकर पूरा करती है ।

भारतीय व्यापार-तुला साधारणतः सदैव इसके पक्ष में रहती है । अतएव विदेशों से इस देश को सदैव पावना रहता है । जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, हमारी सरकार ये ऋण के चुकाने के साधन समय-समय पर जनता को जुटाती रहती है । इन साधनों को सरकार 'काउंसिलस' कहती है । लंदन में जो 'इंडिया-काउंसिल' है, वहीं से इन साधनों का प्रादुर्भाव होता है । अतएव ये काउंसिलस कहे जाते हैं । ये काउंसिलस भारत-मंत्री के द्वारा भारत के—बंबई, कलकत्ते और मदरास के—ख़ज़ानों पर लिखी गई हुंडियाँ हैं । हम यह पिछले अध्याय में बता आए हैं कि वैदेशिक लेन-देन के चुकाने में हुंडियों का कैसे उपयोग किया जाता है । हर बुधवार को भारत-मंत्री की ओर से विलायत में बैंक ऑफ़ इँगलैंड इन हुंडियों के लिये टेंडर माँगने की सूचना प्रकाशित कर देता है । इस सूचना में बेची जानेवाली हुंडियों की तादाद और टेंडर की कम-से-कम रक़म ज़ाहिर कर दी जाती है । प्रत्येक टेंडर देनेवाले को टेंडर में हुंडी की तादाद, भाव और शहर का नाम लिखना पड़ता है । यह आवश्यक नहीं है कि टेंडर जितनी हुंडियों के लिये माँगा जाय, उतनी सभी हुंडियाँ भारत-मंत्री टेंडर देनेवालों के हाथ उस सप्ताह बेचें । साधारणतः वे टेंडर, जिनमें दर्शनी हुंडी के लिये १ शि० ३।।।=)।। पे० (१ शि० ३$\frac{29}{32}$ पेनी) फ़ी रुपए से और तार की हुंडी के लिये १ शि० ३।।।≡) पेन (१ शि० ३$\frac{15}{16}$ पेनी) फ़ी रुपए से नीचा भाव दिया जाय, नहीं स्वीकार किए जाते । तार की हुंडी के लिये साधारणतः दर्शनी हुंडी से आध आना पेनी अर्थात् $\frac{1}{32}$ पेनी ऊँचा भाव लिया जाता है । परंतु जब इंपीरियल बैंक ऑफ़ इंडिया के ब्याज की दर फ़ी सदी ८) से ज़्यादा ऊँची चढ़ जाती है, तो इकन्नी पेनी अर्थात् $\frac{1}{16}$ पेनी से कम ऊँचे भाव में ये तार की हुंडियाँ नहीं बेची जातीं । टेंडर में जिसका सबसे ऊंचा भाव होता है, उसी का टेंडर स्वीकार किया जाता है । यदि टेंडर की रक़म से अधिक टेंडर आए हों, तो हिस्से लगाकर हुंडियाँ टेंडर देनेवालों में बाँट दी जाती हैं । आगामी सप्ताह के टेंडर की रक़म गत सप्ताह के टेंडरों के स्वीकार कर लेने पर ही प्रकट की जाती है ।

इन साप्ताहिक हुंडियों की बिक्री के अलावा भी भारत-मंत्री, सप्ताह के अन्य दिनों में, नियत भाव पर काउंसिलस बेचने को तैयार रहता है । यह भाव साधारणतः गत सप्ताह के स्वीकृत टेंडरों के नीचे-से-नीचे भाव से आध आना पेनी ऊँचा नियत किया जाता है । इन 'विशेष हुंडियों' की तादाद और भाव भी टेंडर की स्वीकृति की सूचना के साथ-साथ प्रकट कर दिया जाता है । इन विशेष हुंडियों को अँगरेज़ी में 'इंटरमीजिएट बिल्स और स्पेशल्स' कहते हैं ।

दुर्भाग्यवश जब कभी व्यापार-तुला भारतवर्ष के विपक्ष में होती है, तब इसी प्रकार भारत-सरकार भारत-मंत्री पर की गई हुंडियाँ बेचकर यहाँ के व्यापारियों को विलायत के व्यापारियों के प्रति देना चुकाने की सहूलियत कर देती है । इन हुंडियों को अँगरेज़ी में 'रिवर्स बिल्स' कहते हैं ।

इन काउंसिलों के भाव के संबंध में दो बातें विशेष विचारणीय हैं । प्रथम तो भारत-सरकार को विलायत रुपए भेजने की आवश्यकता, और दूसरा हमारा व्यापार । यदि भारत-मंत्री को विलायत में रुपए की जल्दी और सख़्त ज़रूरत न हो, तो इन हुंडियों के लिये साधारणतः अच्छा भाव मिल सकता है । यह बात सत्य है कि इन हुंडियों का भाव सरकार के हाथ में है । परंतु सरकार उसे मन-माने ऊँचे भाव पर नहीं ले जा सकती । कारण, युद्ध के पहले १ शि० ४=) पे० (१ शि० ४$\frac{1}{8}$ पेनी) फ़ी रुपए से ऊंचे भाव पर हुंडी ख़रीदने की अपेक्षा विलायत से सोना भेज देना लाभ-दायक हो जाता था । अब भी लगभग यही स्थिति है । भारतवर्ष में सोने की बिक्री कठिन नहीं है । भारतवासी सोना अथवा चाँदी, जो धातु सस्ती मिले, उसी में अपनी बचत की रक़म लगा रखना पसंद करते हैं । और, यह खुली बात है कि चाँदी की अपेक्षा सोना सभी को अधिक प्रिय होता है । यहाँ पर तो सोने की पुनः प्राप्ति की ही कठिनाई है । और, जैसे अन्य देशों की सरकारों ने

इसकी प्राप्ति की ज़िम्मेदारी अपने सिर पर ले रक्खी है, वैसे हमारी सरकार ज़िम्मेदारी लेने को तैयार नहीं है।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि हमारे व्यापारियों को काउंसिल-बिलस और सोने का आयात-निर्यात, ये ही दो साधन क़र्ज़ चुकता करने के लिये सुलभ हैं। अब ज़रा इन दोनों तरीक़ों की तुलना करना असंगत न होगा।

साधारणतः तार की हुंडी के भाव के १ शि० ४=) पेनी फ़ी रुपए से ऊपर जाने पर व्यापारियों को सोना अथवा सावरिन भेज देना लाभकारी हो जाता है, यह हम ऊपर कह आए हैं। भारत-सरकार, अपनी निश्चित की हुई मुद्रा-नीति के अनुसार, १४) के भाव में यह सावरिन ले लिया करती है *। इस देश में आनेवाली सभी गिनियाँ लंदन से नहीं आतीं। मिसर में प्रतिवर्ष, रबी की रुई की फ़सल के समय, विलायत से काफ़ी तादाद में गिनियाँ भेजी जाती हैं। और, जब इनका उपयोग पूरा हो चुकता है, तो फिर ये निर्यात के लिये इकट्ठी हो जाती हैं। भारत की भाँति वहाँ ये लोगों के ख़ज़ानों में बंद नहीं हो जातीं। सं० १९५० विक्रमाब्द (सन् १८९३ ई०) तक, जब तक कि भारत में टकसाल सबके लिये खुली थी, ये गिनियाँ लंदन को ही फिर भेज दी जाती थीं। परंतु इस समय के बाद से यह हाल है कि भारत की सोने की माँग लगातार बनी रहने लगी है। इसी कारण मिसर के लोग इस माँग से लाभ उठाने के लिये अब ये गिनियाँ लंदन को नहीं लौटाते। वे सतृष्ण नयनों से इस देश की माँग की प्रतीक्षा करते रहते हैं, और माँग आने पर यहाँ भेज देते हैं। तब तक गिनियों का स्टॉक इकट्ठा होने दिया जाता है।

भारत में गिनियों की आमदनी, लंदन और मिसर के अलावा, कभी-कभी आस्ट्रेलिया और आफ़्रिका से भी होती है। मिसर में गिनियों की तादाद वहाँ की रुई की फ़सल के लिये लंदन से आई हुई गिनियों के परिमाण पर निर्भर रहती है। परंतु आस्ट्रेलिया और आफ़्रिका में यह बात नहीं है। इन दोनों ही देशों में सोने की खानें हैं। संसार का अधिकांश सोना उन्हीं से निकलता है। इतना ही नहीं, वहाँ पर सोने से गिनी ढालने की टकसालें भी हैं। इन टकसालों में पैदा हुए सोने की गिनियाँ आवश्यकतानुसार कम या अधिक ढाली जाती हैं। आस्ट्रेलिया में ऊन और गेहूँ की फ़सल पर इन गिनियों का परिमाण निर्भर रहता है। जब अकाल के कारण ये दोनों ही फ़सलें कम होती हैं, तब गिनियाँ बहुत-सी फ़ालतू इकट्ठी हो जाती हैं, और तब भारत-वर्ष की ओर उनका भी झुकाव हो जाता है। आस्ट्रेलिया की ऊन और गेहूँ की फ़सल लगभग ऑक्टोबर याने कुआँर-कातिक में शुरू होती और माह-फागुन तक रहती है। फलतः यहाँ की गिनियों की आय की अपेक्षा कब की जाय, यह जानना हमारे लिये कुछ कठिन नहीं है।

आफ़्रिका में कोई ख़ास फ़सल नहीं होती। इसलिये वहाँ से सोने की आय का संभव या निश्चित समय कोई नहीं नियत किया जा सकता।

गिनियों अथवा सोने का यह सौदा भी लंदन ही में हुआ करता है। लंदन सैकड़ों वर्षों से सोने-चाँदी का प्रधान बाज़ार रहा है। वहाँ पर सब देशों के बैंक हैं। इन गिनियों का भाव भी खपत और माँग के सिद्धांत पर निर्भर है। उदाहरणार्थ आस्ट्रेलिया की गिनियों का लंदन में दो प्रकार का भाव है। एक तो तार के सौदे का, और दूसरा ६० दिन याने दो महीने की मुद्दत का। कल्पना कीजिए, आस्ट्रेलिया की ऊन और गेहूँ की साख कम है, और वह देश विलायत के अपने बैंकों द्वारा लगभग ५० हज़ार गिनियाँ ५ शि० फ़ी सैकड़े के बट्टे से बेचने के लिये तैयार है; याने ख़रीदार बैंक के आस्ट्रेलिया के आढ़तिए को गिनियाँ सिपुर्द कर देने की ख़बर आने पर विलायत में ख़रीदार बैंक को आस्ट्रेलिया के बैंक की उस शाखा के तईं, जिससे उसने सौदा किया है, ५० हज़ार गिनियों के एवज़ ४९,८७५ गिनियाँ ही देनी पड़ेंगी। कल्पना कीजिए कि यह सौदा भारत ही के लिये किया गया है। अस्तु, हमें अब यह देखना है कि इस प्रकार

---

* संवत् १९७६ की करंसी-कमेटी की सूचना के अनुसार भारत-सरकार ने सावरिन का भाव यद्यपि १०) रु० निश्चित कर दिया था, परंतु अब वह ख़ुद विलायत में उसी पुराने १५) रु० के भाव पर काउंसिल्स बेच रही है, हालाँ कि आईन में अभी तक सावरिन का भाव समयानुकूल ठीक नहीं किया गया है।

गिनियाँ मँगाना काउंसिलों की अपेक्षा हमारे लिये कहाँ तक लाभ-दायक है।

युद्ध के पहले आस्ट्रेलिया से बंबई अथवा कलकत्ते तक गिनियाँ अथवा सोना पहुँचाने का जहाज़-किराया, (बीमा, पार्सल-ख़र्च और ख़रीद की दलाली आदि सब मिलाकर) लगभग १२ शि० फ़ी सैकड़े पड़ता था। यदि हम इसको ११ शि० ६ पेनी फ़ी सैकड़े का मान लें, तो इस देश में ये गिनियाँ लगभग १ शि० ४·०५२ पेनी याने १ शि० $४\frac{३}{६४}$ पेनी फ़ी रुपए के हिसाब से आकर पड़ती है। यदि हम थोड़ी देर के लिये इस उपर्युक्त बट्टे का विचार छोड़ दें, और इन गिनियों पर लगे हुए ख़र्च याने ११ शि० ६ पेनी प्रीमियम के पड़ते से उन्हें बेच दें, तो हमें फ़ी रुपए १ शि० ४·०९२ याने (१ शि० $४\frac{३}{३२}$) पेनी प्राप्त हो जायगी। इस हिसाब में हमने ब्याज के ख़र्च का अलबत्ते अनुमान नहीं किया है; परंतु यह ख़र्च में विशेष बोझ नहीं डालता।

अब ज़रा दो महीने की मुद्दत के सौदे का विचार कीजिए। ज्यों ही गिनियाँ आस्ट्रेलिया में जहाज़ पर चढ़ा दी जाती हैं, त्यों ही उसकी सूचना डाक के द्वारा लंदन में आस्ट्रेलिया के बैंक की शाखा को दे दी जाती है। यह शाखा सूचना पाते ही ख़रीदार बैंक को बीजक भेज देती है, और ख़रीदार बैंक उस बीजक के, उस मिती से ६० और ३ दिन गिलास के मिलाकर कुल ६३ दिन में, रुपए चुकता कर देने की ज़िम्मेदारी ले लेता है। इस सौदे में आस्ट्रेलिया के बैंक को लगभग २ महीने के ब्याज की कसर पड़ती है, जिसे वह गिनियों के भाव में निकालने की कोशिश करता है। यही कारण है कि मुद्दती सौदे के भाव का तार के सौदे की अपेक्षा कुछ ऊँचा भाव होता है।

उक्त सारा सौदा एक प्रकार से हुंडी ही का सौदा है। और वह, जहाँ तक आस्ट्रेलिया का उससे संबंध है, उसके लंदन में रुपए पहुँचाने के ख़र्च पर निर्भर रहता है। आस्ट्रेलिया से लंदन तक रुपए पहुँचाने का ख़र्च जितना ज़्यादा पड़ता है, उतने ही बट्टे से वहाँ की गिनियाँ लंदन के बाज़ार में मिल सकती हैं। इससे विपरीत स्थिति में बट्टा उतना ही घट जाता है। यही आफ़्रिका से आनेवाले सोने का भी नियम है। यद्यपि लंदन से बंबई अथवा कलकत्ते तक सावरिन अथवा सोना पहुँचाने का ख़र्च केवल ६ शिलिंग फ़ी सैकड़े के हिसाब से युद्ध के पहले पड़ता था, परंतु सावरिन लंदन में आस्ट्रेलिया की सावरिन की भाँति बट्टे से नहीं प्राप्त हो सकती थी। अस्तु। बंबई में आकर वे लगभग १ शि० ४·०७३ पेनी फ़ी रुपए के हिसाब से पड़ती थीं, और वे आस्ट्रेलिया से आई हुई सावरिनों की अपेक्षा महँगी रहती थीं।

अभी तक हमने भारतीय हुंडी के बाज़ार का एक विदेशी या लंदन के बाज़ार के मुक़ाबले में विचार किया है। अब ज़रा भारतीय की दृष्टि से भी विचार कीजिए।

यद्यपि सरकार ने तमाम आए हुए सोने अथवा गिनियों के एवज़ १५) रु० फ़ी गिनी के हिसाब से रुपए देने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले रक्खी है, परंतु जब इस देश को अपना देना चुकाने के लिये कभी सोना भेजने की आवश्यकता होती है, तब रुपए के एवज़ सोना अथवा गिनियाँ देने की सरकार ने अपने ऊपर तनिक भी ज़िम्मेदारी नहीं ली है। जब कभी भारतीय व्यापार की तुला इस देश के विपक्ष में होती है, तभी अंतरराष्ट्रीय लेन-देन को चुकाने की कठिन समस्या उपस्थित हो जाती है। सरकार यद्यपि रिवर्स बिल्स (Reverse Bills) बेचकर यह समस्या हल करने की कोशिश करती है, परंतु उसकी यह कोशिश बनावटी है। फलतः प्राकृतिक रुकावट के साधन न होने से यह स्थिति कठिन-से-कठिन होती जाती है। हुंडी का भाव गिर जाता है, और लोगों को अपने वैदेशिक ऋण के चुकाने का साधन नहीं मिलता। जब-कभी देश में ऐसी स्थिति उपस्थित हुई है, तभी हमारी यह सुवर्ण-विनिमय-माध्यम-मुद्रा-पद्धति अपने अंतरराष्ट्रीय विनिमय के कार्य में असफल सिद्ध हुई है, यद्यपि हमारे रुपयों को सोने के साथ जोड़ देने की कोशिश की गई है, परंतु विलायत में जब चाँदी का भाव उस हद से भी ऊँचा होता जान पड़ता है, जब कि रुपए की धातविक क़ीमत उसकी बाज़ारू क़ीमत के बराबर हो जाती है, तो हमारी मुद्रा-पद्धति, सरकार के टिकाए रखने के देश को अत्यंत हानिकर प्रयत्नों के करते रहने पर भी, गिरती ही जाती है। संवत् १९५० विक्रमाब्द के पूर्व, जब कि भारतवर्ष में रुपए का ढलवाना सर्व-साधारण के लिये खुला था, ऐसी असुविधा और अनिश्चितता के कारण, विदेशी

लोग भारत का माल न तो साधारणतः रुपयों में ख़रीदते थे, और न अपना माल ही रुपयों में बेचते थे; क्योंकि उन्हें सदा रुपए की सुवर्णमयी क़ीमत के, चाँदी की क़ीमत के साथ-साथ, घटने-बढ़ने का पूरा भय रहता था। उदाहरण के लिये कल्पना कीजिए कि एक मंचेस्टर के व्यापारी ने भारत को कुछ कपड़ा भेजा, जिसके १,००० पौंड में बिक जाने का उसने उस रोज़ के भाव से अनुमान लगाया। उस रोज़ विलायत में चाँदी का भाव ३० पेनी प्रति स्टैंडर्ड-आउंस का था। यदि भारत में माल पहुँचने के समय तक कपड़े का भाव वही बना रहे, परंतु चाँदी के भाव में परिवर्तन हो जाय, और चाँदी माल के बिकने तक ३० पेनी प्रति स्टैंडर्ड-आउंस से गिरकर २५ पेनी प्रति स्टैंडर्ड-आउंस हो जाय, तो उस व्यापारी को लंदन में क़ीमत अपनी अंदाज़ की हुई क़ीमत से लगभग एक-षष्ठांश कम मिलती है; क्योंकि जो रुपया ३० पेनी प्रति स्टैंडर्ड-आउंस के चाँदी के भाव में लगभग ११·१४६ पेनी का था, वह अब २५ पेनी प्रति स्टैंडर्ड-आउंस के भाव में घटकर केवल ९·२६१ पेनी ही का रह जाता है। अस्तु। बात यह है कि यद्यपि भारत में उक्त माल के उसी भाव में बिकने से उतने ही रुपए मिलते हैं, परंतु वे रुपए चाँदी का भाव घट जाने से सोने की गिनियाँ कम ख़रीद सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम भारत से विलायत में माल भेजते और उसे रुपयों ही में वहाँ बेचते, तो चाँदी के भाव में घट-बढ़ होने का हानि-लाभ हमारे ख़रीदार के ऊपर पड़ता था। उस समय हुंडी के इस हानि-लाभ को हम भारतवासियों के सिर मढ़ने के लिये विदेशी व्यापारियों ने हमें पौंड ही में अपना माल ख़रीदने और हमें अपना माल बेचने को विवश किया। विलायत का व्यापारी अपनी ख़रीद का मूल्य सोने ही में देने की ज़िम्मेदारी लेकर अपने माल का मूल्य भी सोने ही में वसूल करना न्यायसंगत मानता था, हालाँ कि वह यह समझता था कि वह क़ानूनन् भारत के व्यापारी का देना वहाँ के चालू सिक्के में ही चुकाने के लिये मजबूर किया जा सकता है, और वह सिक्का चाँदी का है, न कि सोने का। फलतः उसकी उक्त प्रतिज्ञा पूर्ण भ्रामक और हम भोले भारतवासियों के लिये प्राण-घातक होती थी। कारण, हमारे लिये उसके सोने के चालू सिक्के की प्राप्ति करने का कोई सुविधाजनक मार्ग खुला न था, किंतु उसके लिये सोने और चाँदी, दोनों ही धातुओं में अपना देना चुकाने के मार्ग खुले थे। उनमें से जो उसके लिये लाभकर हो, उसे स्वीकार करने के लिये वह स्वतंत्र था। हम भारतवासियों के लिये उस समय भी केवल एक ही मार्ग खुला था, और अब भी एक ही है। वह मार्ग सोना देने का था, और अब भी है। हमारे पराधीन होने का सबसे विकट अनुभव हमें यहीं होता था, और अब तक होता है।

जब से टकसाल सर्व-साधारण के लिये बंद कर दी गई है, तब से विदेशियों के लिये सोने अथवा चाँदी में से जो धातु सस्ती हो, उसी में भारत का देना चुकाना बंद हो गया है। परंतु भारत-वासियों के लिये इससे कोई सुबीता नहीं हुआ। यहाँ पर सोना या चाँदी व्यापार की वस्तुएँ हैं। इनका भाव अन्य व्यापारिक वस्तुओं की भाँति चढ़ता और उतरता रहता है। यह भाव रुपए में, जिसकी वास्तविक क़ीमत बाज़ारू क़ीमत से कम है, किया जाता है। जब भारत का देना होता है, तो उस समय सरकार सोना लेकर रुपए दे देती है। विलायत में लोग भारत-मंत्री के हाथ पौंड बेचकर रुपए प्राप्त कर लेते हैं। परंतु जब इस देश को देना होता है, तो सरकार से सोना नहीं मिलता। सरकार जो रिवर्स-बिल्स बेचती है, सो बतौर सहूलियत के बेचती है। उनका लाभ पहुँचे हुए सिफ़ारशी लोगों ही को मिलता है। वे नियत तादाद ही में दिए जाते हैं; क्योंकि भारतीय राजस्व को इसकी हानि उठानी पड़ती है। अस्तु। उनके अपर्याप्त होने पर व्यापारियों के लिये अपना ऋण चुकाने को सोना भेजना अनिवार्य हो जाता है। इस सोने की प्राप्ति का मार्ग केवल बाज़ार ही है। माँग के आशातीत बढ़ जाने से ऐसे समयों पर सोने का भाव भी बाज़ार में बहुत बढ़ जाता है। फलतः हर हालत में ग़रीब भारतवासियों को नुक़सान उठाना पड़ता है। विलायत में सोने का बाज़ार खुला है। वहाँ वह सदा स्थिर भाव में प्राप्त हो सकता है। अतएव जब सोना भेजकर देना चुकाना लाभप्रद हो, तब उसमें व्यापारियों के लिये कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। यही सुवर्ण-माध्यम स्थापित हो जाने में हमारा लाभ है; क्योंकि अंतरराष्ट्रीय लेन-देन की धातु सोना ही है।

अब विलायत से सोना अथवा चाँदी मँगानेवाले व्यापारी किस प्रकार वहाँ पर रुपए भेजते हैं, इसका विचार कर यह अध्याय समाप्त करेंगे।

चाँदी अथवा सोने की ख़रीद होने पर उसका रुपया विलायत में पौंडों में दिया जाता है। जहाँ तक इस व्यापार से संबंध है, भारतवर्ष की ठीक वही स्थिति होती है, जो उसके आयात-व्यापार का देना चुकाने के समय होती है। सब देशों में विदेशी विनिमय के साधन व्यापारियों के लिये सुलभ करनेवाले ऐसे बैंक हैं, जो विदेशी हुंडी का व्यापार करते हैं। इस प्रकार के बैंकों में अधिकांश बैंक विदेशी ही हैं। चाँदी और सोने की क़ीमत भेजने का प्रबंध इन्हीं विदेशी बैंकों द्वारा करना पड़ता है। इन बैंकों को एक्सचेंज बैंक कहते हैं। ये हुंडी का सारा व्यापार दलालों द्वारा करते हैं। इन सबकी एक एसोसिएशन है। प्रधान-प्रधान बैंक इस एसोसिएशन के दलालों ही की मार्फ़त यह हुंडी का सारा व्यापार करते हैं। इसका विस्तृत विवरण आगे 'भारतवर्ष का सोने-चाँदी का बाज़ार'-शीर्षक अध्याय में दिया जायगा। बैंकों का यह हुंडी का व्यापार उनकी चलित पूँजी (Working capital) पर निर्भर है। यदि उनके पास काफ़ी से ज़्यादा रुपए इकट्ठे हो जायँ, और उनके लाभप्रद प्रयोग का अन्य कोई मार्ग खुला न हो, तो वे छूट से उनका इन हुंडियों की ख़रीद में उपयोग करते हैं। इसी प्रकार उनके विलायत रुपए भेजने की इच्छा पर भी यह व्यापार निर्भर रहता है। जब उन्हें विलायत रुपए भेजने होते हैं, अथवा हुंडियों द्वारा फ़ालतू रक़म का ब्याज कमाना होता है, तो वे लोगों की हुंडियाँ ख़रीदते हैं। हुंडियाँ ख़रीदने में वे पौंड ख़रीदते और रुपए बेचते हैं। ये रुपए उन्हें भारत में देने पड़ते हैं, जिनके पौंड उन्हें विलायत में हुंडियाँ सकरने पर मिल जाते हैं। हुंडियाँ बेचनेवाले वे व्यापारी होते हैं, जिन्होंने विलायत को माल भेजा है। इसी प्रकार जब उन्हें रुपए जमा करना अथवा विलायत से रुपए मँगाना होता है, तो वे हुंडियाँ बेचते हैं। हुंडी बेचने का तात्पर्य यह है कि वे भारत में रुपए देने पर उनके एवज़ में, विलायत में, अपनी शाखा द्वारा, उतने के पौंड दिला सकते हैं। इस प्रकार उनके पास रुपए इकट्ठे हो जाते हैं। भारत में हुंडी बेचना विलायत में हुंडी ख़रीदने के बराबर है, जो उसी हालत में संभव है, जब भारत में विदेशी माल का आयात हो, अथवा इन विदेशी बैंकों ने भारत के निर्यात माल की हुंडियाँ काफ़ी से ज़्यादा तादाद में ख़रीद ली हों।

सोना अथवा चाँदी मँगानेवाले व्यापारी के तईं विलायत को पौंड भेजने होते हैं। अस्तु। वह इन एक्सचेंज बैंकों द्वारा पौंड ख़रीदता है। इस प्रकार रुपए भेजने का प्रबंध करने को व्यापारी लोग हुंडी तय करना कहते हैं। जब हुंडी तय हो जाती है, तो उसकी इत्तिला चाँदी ख़रीदनेवाले दलाल को दे दी जाती है। वह उक्त बैंक के विलायत के आढ़तिए को चाँदी अथवा सोने के जहाज़-कंपनी के बिल ऑफ़ लेडिंग, बीमे की पालिसी और इनवॉइस देकर उससे उतने ही पौंड प्राप्त कर लेता है। जब चाँदी और सोना भारत में पहुँचता है, तो मँगानेवाले व्यापारी उसके हुंडी के तय किए हुए भाव से बैंक में रुपया जमा कर माल की डिलीवरी ले लेते हैं। इस हुंडी को व्यापारी लोग 'बुलियन टी० टी०' कहते हैं। यह साधारण टी० टी० से भिन्न होती है। साधारण टी० टी० से यह कभी ऊँची और कभी नीची भी रहती है। साधारणतः यह सामान्य तार की हुंडी से आध आना पेनी नीची याने मंदी रहती है। इसका कारण यह है कि विलायत में पौंड देने की तारीख़ से भारत में रुपए देकर सोने अथवा चाँदी की डिलीवरी लेने की तारीख़ तक उस रक़म पर बैंक ऑफ़ इँगलैंड की दर से, अथवा उससे एक टका ऊँचा, ब्याज बैंक को मिलने का बंबई के बाज़ार में रवाज है। बंबई में यह ब्याज़ हुंडी के भाव में नहीं जोड़ा जाता, पर कलकत्ते में जोड़ लिया जाता है, और इसीलिये कलकत्ते में, बंबई की अपेक्षा, बुलियन टी० टी० महँगी रहती है। सामान्य तार की हुंडी में उसी दिन पौंड विलायत में दे दिए जाते हैं।

विलायती हुंडी का भाव विदेशी सिक्के में दिया जाता है। हमारा रुपया विनिमय के लिये १६ पेंस के बराबर मान लिया गया है। जब हुंडी का भाव नीचे जाता है, याने १६ पेंस से कमती होता है, तो वह हमारे लिये हानिकर होता है ; क्योंकि हमारा रुपया तब १६ पेंस से कुछ कम पेंस ख़रीद कर सकता है। इससे तेज़ भाव हमारे लिये लाभदायक है। परंतु जब हुंडी का भाव रुपयों में

दिया जाता है, जैसा कि जापान आदि की हुंडी के लिये दिया जाता है, तो हम प्रत्येक विदेशी सिक्के की क़ीमत रुपयों में लगाया करते हैं। उस दशा में, हमें विदेशी सिक्के के लिये जितने कम रुपए देने पड़ें, उतना ही हमारे लिये अच्छा है, और ज़्यादा देना हानिकर। यह ऊँचा-नीचा भाव, इस अवस्था-भेद से, कभी हानिकर और कभी लाभप्रद होगा, यह बात इस विषय के अनभ्यस्त लोगों को भ्रामक प्रतीत होती है। अतः इस भ्रम से बचे रहने के लिये ऐसे नए लोगों को नीचे लिखा पद्य सदा स्मरण रखना चाहिए—

Just sing this little chorus,
And sing it every day:
"That *higher* rates are for us,
And *low* the other way,"
That is when quoting units
to every Rupee silver,
But with rupee to units foreign
It is the other way ever
For them you will sing your chorus
Every day until you die,
"That the *low* rates will be for us,
of those against us will be *high*."

कस्तूरमल बाँठिया

मसूरी की यात्रा

(मसूरी तक का मार्ग)

देहरादून तक देहरा-मेल सीधे पहुँचा देती है। जेठ-बैसाख में सुबह चार बजे लक्सर-जंक्शन पर जब अधिक ठंड मालूम पड़ती है, तब ध्यान जाता है कि किसी नए देश में आ गए। लक्सर से गाड़ी ठीक उत्तर की ओर चलती है, और प्रत्येक मिनट पर देश बदलता जाता है। चारों ओर हरे-भरे जंगल, ऊँची-नीची भूमि और दूर पर पहाड़ियाँ देख पड़ती हैं। हरिद्वार पहुँचने पर और भी अधिक सुहावना मालूम होता है। प्रातःकाल का समय, सुहावनी मंद वायु, एक ओर पहाड़ों का दृश्य, और उसके नीचे पतितपावनी गंगा की धारा—बस, हृदय आह्लादित हो उठता है। जल की अधिकता के कारण हरिद्वार के चारों ओर की भूमि बड़ी मनोहर है। हरिद्वार सचमुच 'हरि'-द्वार है।

हरिद्वार के आगे रेल को ऊपर चढ़ने में कठिनता पड़ने लगती है। कुछ ही दूर आगे दो स्थानों पर पहाड़ काटकर उसके अंदर से होकर रेल गई है। यहाँ बिलकुल अँधेरा हो जाता है। उत्तर भारत में, रेल की यात्रा में, ऐसा अनुभव शायद ही कहीं होता हो। लक्सर से हरिद्वार तक की यात्रा जितनी सुहावनी होती है, उतनी हरिद्वार के आगे नहीं होती। हरिद्वार के बाद रेलगाड़ी सिवालिक-पर्वतमाला को पार करके 'दून' में प्रवेश करती है। हिमालय और सिवालिक के बीच में बड़ा-सा गोल मैदान छूट गया है। यही 'दून' कहलाता है। सिखों के देहरे के कारण इसमें बसी हुई बस्ती का नाम भी 'देहरादून' पड़ गया।

देहरादून-स्टेशन से ही कुछ अँगरेज़ी ढंग शुरू हो जाता है। क़तार में बीसों किराए की मोटरें खड़ी मिलेंगी। मसूरी जाने के लिये सात मील—राजपुर तक—सवारी पर जाना होता है। राजपुर मसूरी की पहाड़ी के ठीक नीचे बसा है। मोटर पर, मय असबाब के, १) फ़ी आदमी किराया पड़ता है। ताँगे भी बहुत जाते हैं। वे ॥) से ॥।) तक फ़ी आदमी लेते हैं। मोटर से जाने में १५ या २० मिनट राजपुर पहुँचने में लगते हैं। पर ताँगे में कोई १½ घंटा लग जाता है।

अँगरेज़ी-होटलवालों के चक्कर में साधारण स्थिति के आदमी को न पड़ना चाहिए। हमारे एक मित्र एक अँगरेज़ी-होटल की मोटर पर राजपुर गए। वहाँ होटल में उन्हें ज़रा शौच जाने की इच्छा हुई। निवृत्त होकर बाज़ार से जलेबियाँ मँगाकर जल-पान कर मसूरी जाने को तैयार हुए। बैरे ने बिल पेश किया—बारह आने पाख़ाना जाने का! और, बारह आने कमरे में बैठकर जलेबी खाने का! कुल डेढ़ रुपया!! बेचारे ने दो आने की जलेबियाँ खाई थीं!

राजपुर से मसूरी सात मील है; लेकिन लगातार चढ़ाई है। समझ लीजिए, सात मील में केवल पहाड़ के तल से चोटी तक पहुँचना है। सवारी के लिये डंडी

राजपुर से मसूरी जाते समय मार्ग से दून का दृश्य तथा कुली

पहाड़ का एक प्राकृतिक प्रवेश-द्वार

और घोड़े हैं। गाड़ीवाली सड़क से रिक्शा भी जा सकती है। घोड़ा २) या २॥) रुपए में होता है, और डंडी में क़रीब ४॥) देने होते हैं। १॥) रोल का अलग देना पड़ता है। इसके सिवा कुली भी इनाम के नाम से कुछ ले ही मरते हैं। यदि आदमी तंदुरुस्त हो, तो उसे राजपुर से मसूरी पैदल ही जाना चाहिए। चार घंटे में आराम से पहुँच सकता है। मैदान की निस्बत यहाँ ठीक उसकी आधी चाल रह जाती है। यदि मैदान में, घंटे-भर में, आदमी ३ मील चलता है, तो यहाँ दो घंटे में ३ मील चल पाता है। मार्ग में जगह-जगह पानी का प्रबंध है।

परंतु कुछ खाने को अपने साथ अवश्य रखना चाहिए। राजपुर से यथासंभव अच्छी तरह खाकर चले। यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि ऐसे समय चले, जिसमें धूप सामने न पड़े। तीसरे पहर को सूर्य सामने होते हैं।

राजपुर से मसूरी तक असबाब कुली अपनी पीठ पर लादकर ले जाते हैं। इनकी कमाई सचमुच सिर का पसीना एँड़ी तक बहाकर होती है। एक कुली ॥=) से १) तक में होता और क़रीब एक मन बोझ ले जाता है। एजेंसी के ज़रिए अगर असबाब भेजिएगा, तो १) मन बँधा हुआ है। किंतु स्वयं प्रबंध करने से दस-बारह आने में दो कुली ठीक हो जाते हैं। कुली को अपना पता लिखकर दे दीजिए, फिर अपना असबाब निश्चित स्थान पर पहुँचा समझिए। स्टेशनों पर जैसे मिनट-भर के लिये भी कुली को आँख से ओझल नहीं होने दिया जाता, वैसे वह बात यहाँ बिलकुल नहीं होती। यदि आपका स्थान इत्तिफ़ाक़ से कुली को ढूँढ़ने पर भी न मिला, तो वह शाम तक मुख्य चौराहे या अड्डे पर बैठा इंतिज़ार करता रहेगा। ऐसा प्रायः बिलकुल नहीं होता कि कुली असबाब लेकर भाग गया हो। यहाँ के कुलियों की यह ईमानदारी प्राचीन भारत की याद दिलाती है।

नए आदमी को यहाँ पहाड़ की चढ़ाई शुरू में खल जाती है। दो आदमी होने से ज़रा अच्छा रहता है; लेकिन बात-चीत अधिक न करनी चाहिए, नहीं तो साँस तेज़ चलने लगती और थकावट भी अधिक मालूम होती है। पहाड़ की चलाई की कुंजी यह है कि चढ़ाई पर बहुत पैर जमा-जमाकर धीरे-धीरे चले, और उतराई पर तेज़ी से उतरे। यदि ढाल अधिक न हो, और सड़क अच्छी हो, तो आदमी दौड़ भी सकता है; किंतु शरीर को ज़रा सँभाले रखना चाहिए। जब थक जाय, तो ज़रा आराम कर ले। इससे आदमी फिर बहुत जल्द ताज़ा हो जाता है। मगर जल्दी-जल्दी आराम न करना चाहिए, नहीं तो आलस्य बढ़ने लगता है।

राजपुर से मसूरी जाते समय पहली कठिन चढ़ाई के बाद जब आदमी को बहुत थकावट और प्यास मालूम होती है, तभी पानी का एक नल मिलता है।

यहाँ दुर्गंध बहुत आती है; क्योंकि दूर-दूर तक पानी का कोई अन्य स्थान नहीं है, और इसी से लोग शौच इत्यादि भी इसी के निकट जाते हैं। यद्यपि राजपुर में हम लोगों ने एक रोटी की दूकान पर भरपेट रोटी खाई थी, लेकिन कुछ-कुछ भूक अभी लग आई। प्यास अधिक लगी थी; किंतु चलकर पानी पीना नुक़सान करता, अतः दो बिस्कुटों का कलेवा करके पानी पिया गया। पहाड़ पर सफ़र करते समय बिना कुछ खाए कदापि पानी न पीना चाहिए। हम लोगों के साथ एक मिशनरी साहब भी जा रहे थे। इनकी स्त्री भी पैदल ही सफ़र कर रही थीं। कुछ आगे चलने पर नेपाल के महाराज की कोठी मिलती है। इसमें बहुत रुपए ख़र्च किए गए हैं। देखकर अफ़सोस हुआ कि नेपाल की प्रजा की गाढ़ी कमाई का रुपया इस तरह बरबाद किया गया है।

नेपाल की कोठी के बाद वह स्थान पड़ता है, जहाँ से मसूरी आधी दूर रह जाती है। इसे 'हाफ़ वे' अर्थात् अर्ध-मार्ग कहते हैं। यहाँ पर नेपाल के महाराज की ही कृपा से पानी के नल लगे हैं, बैठने के लिये टीनें पड़ी हैं, और उनके नीचे बेंचें हैं। एक-दो मिठाई की दूकानें भी हैं। अँगरेज़ों के 'चाय-पानी' का तो पूरा प्रबंध है।

इसके बाद बार्लोगंज-महल्ला पड़ता है। इस जगह अँगरेज़ों का एक स्कूल है, जिसके कारण यहाँ पर कुछ बस्ती और बाज़ार भी हो गई है। यहाँ से नीचे की ओर बिजली-घर को रास्ता जाता है। मसूरी और देहरा-दून को बिजली इसी बिजली-घर से मिलती है। बार्लोगंज के आगे फिर पहले की-सी निर्जन सड़क है; किंतु चढ़ाई अब उतनी अधिक नहीं है। थोड़ी ही दूर चलने के बाद मसूरी की बस्ती शुरू हो जाती है, और अंत में आप पिक्चर-पैलेस (बायस्कोप) के सामने तिराहे पर निकलते हैं।

राजपुर से मसूरी तक की सड़क काफ़ी अच्छी है। ढंग बिलकुल पहाड़ी सड़कों का-सा है—एक तरफ़ पहाड़, दूसरी ओर खड। खड की ओर बराबर नीची पत्थर की दीवार है। सड़क ख़ूब टेढ़ी-मेढ़ी होकर गई है, और "नौ दिन चले अढ़ाई कोस" की याद दिलाती है।

पहाड़ पर आदमियों को जाते देख दीवार पर चींटियों के रेंगने का दृश्य याद आता है। यदि चींटियाँ प्लास्टर

में थोड़ा-सा खोदकर चौरस रास्ता निकाल लिया करें, तो उनके भी एक तरफ़ दीवार का पहाड़ और दूसरी ओर मकान के फ़र्श का खड रह जाय। अंतर केवल इतना रहे कि मनुष्य का मार्ग, धीरे-धीरे ऊँचा करने के कारण, टेढ़ा-मेढ़ा होकर जाता है, और चींटियों का जिधर मन आया, उधर सीधा चला जाता है। मनुष्य तो चींटियों की तरह सीधे ऊपर नहीं चढ़ सकता।

मसूरी का मौसम

देश में जेठ-बैसाख की लू और सूर्य की ज्वाला में यह ख़याल नहीं आता कि इन दिनों कहीं माह-पूस का-सा जाड़ा भी हो सकता है। इसी कारण पहले-पहल पहाड़ पर आनेवाले लोग अक्सर कम कपड़े लेकर चलते हैं। सोचते हैं, बहुत होगा, एक कंबल का जाड़ा होगा; पहनने को एक ऊनी कुर्ता रख लेते हैं, अब और कितनी सरदी लगेगी। यह बड़ी भारी भूल है। इस कारण लोग अक्सर कष्ट उठाते और बीमार तक पड़ जाते हैं।

पहाड़ पर पूरे जाड़े के सामान से आना चाहिए। लिहाफ़ और गद्दे का बोझ तो बहुत हो जाता है, लेकिन सुख भी बहुत मिलता है। पहनने के भी कुल जाड़े के कपड़े लाना चाहिए। ठंडे कपड़ों में धोती और कमीज़ों के सिवा एक-दो ठंडे सूट रख लेना काफ़ी है।

मसूरी में रात को सरदी काफ़ी पड़ती है। सुबह को तो ठरन हो जाती है, ख़ासकर अगर पानी पड़ गया हो। दिन में धूप भी काफ़ी तेज़ होती है, मगर छाँह में आते ही ठंडी हवा के झोंके लगने लगते और सरदी मालूम होती है। धूप में घूमने जायँ, तो भी एक हलका गरम कपड़ा अवश्य पहने रहना चाहिए। वैसे भी एक ऊनी कपड़ा सदा पहने रहना लाभकर है।

पहले सप्ताह में सरदी से बहुत बचना चाहिए। इसके सिवा पेट भी ख़राब न होने देना चाहिए। इसका उपाय यह है कि खाना ज़रा कम खाय। टहलने को नियम से सुबह-शाम जाना चाहिए; लेकिन प्रथम सप्ताह में बहुत कम दूर तक। पंप का पानी ओला-सा ठंडा होता है। अगर ठंडे पानी से ही नहाना पड़े, तो शरीर में थोड़ा-सा तेल मलकर नहावे। भरसक बंद जगह में नहाना चाहिए। अगर गरम पानी से नहाना हो; तो शरीर को हवा न लगने देना और भी आवश्यक है। पानी उबालकर पीना उचित है। यदि यह न हो सके, तो घड़े में एक टुकड़ा गंधक का डाल दे। मसूरी में एक सोता 'कंपनी-खड' नाम का है। यहाँ का पानी बरसात से पहले पंप के पानी से कुछ अच्छा होता है। कहते हैं, इसमें दाल बहुत जल्द गल जाती है।

ठंड के कारण ज़मीन पर सोने में यहाँ ज़रा तकलीफ़ होती है। भोजन में भी थोड़ा-सा परिवर्तन कर लेना चाहिए। लौकी की तरकारी और मूँग की दाल यहाँ पथ्य नहीं है। सबेरे चाय का पीना यहाँ लाभकर है। प्याज़ खानेवालों को प्याज़ खाना चाहिए। मक्खन और दूध का सेवन भी आवश्यक है; क्योंकि अधिक चलने-फिरने के कारण जोड़ों में चिकनाई पहुँचाते रहना अच्छा होता है।

मसूरी की बस्ती

दून के बाद पहली पहाड़ की चोटी के दोनों ओर मसूरी बसी है। अतः दक्षिण की ओर दून, सिवालिक-पर्वतमाला और उसके बाद गंगाजी सहित 'देश' दिखलाई पड़ता है। उधर उत्तर की ओर पर्वतमालाएँ और (ऊँचे स्थानों से) हिम से ढके हिमालय के शृंग भी दृष्टिगोचर होते हैं। मसूरी का पहाड़ अँगूठी के आकार का बना है। पतले भाग के नीचे राजपुर है; नग की ओर के मोटे भाग पर मसूरी की बस्ती है; और बीच की गोल घाटी में कुछ गाँव बसे हैं। इस बीच के स्थान में 'बाँध' बाँधकर झील बनाने का प्रस्ताव हो रहा है। यदि ऐसा हो गया, तो मसूरी का सौंदर्य सौगुना बढ़ जायगा। इस मुख्य पहाड़ी पर कुलड़ी-बाज़ार नाम की बस्ती है। अँगरेज़ों की सब बड़ी-बड़ी दूकानें यहीं हैं। कुलड़ी-बाज़ार की सड़क पहाड़ी के दक्षिण ओर है। अतः यहाँ से दून इत्यादि का दृश्य देख पड़ता है। इस पहाड़ी का सबसे ऊँचा शिखर 'गन-हिल' कहलाता है; क्योंकि इसके ऊपर बारह बजे के वक़्त दगनेवाली तोप रक्खी है। पानी के हौज़ भी यहीं हैं। इस पहाड़ी के उत्तर की ओर टहलने के लिये बहुत उत्तम सड़क है। यह 'केमेल्स बैक-रोड' अर्थात् ऊँट की पीठ पर की सड़क कहलाती है। इस सड़क पर से अंदर की घाटी देख पड़ती है। उत्तर के पहाड़ भी दृष्टिगोचर होते हैं।

दाहनी ओर इस मुख्य पहाड़ी से मिली हुई दूसरी पहाड़ी है, जिस पर 'डिपो' की बस्ती है। यह मसूरी का कैंटुनमेंट है। कुलड़ी-बाज़ार से डिपो की पहाड़ी के नीचे तक लंढौर-बाज़ार है। यह हिंदोस्तानियों
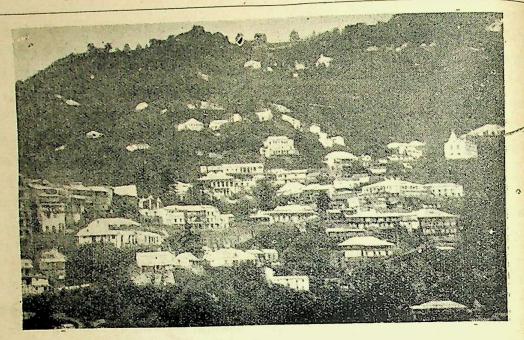
मसूरी की बस्ती का एक दृश्य
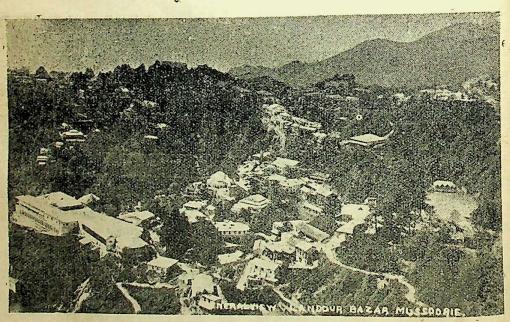
लंदौर-बाज़ार

की बस्ती है । बाज़ार भी काफ़ी अच्छा है। लंदौर-बाज़ार में घूमते समय थोड़ी देर के लिये तो आदमी यह भूल ही जाता है कि वह ७,००० फ़ीट की उँचाई पर, एक पहाड़ की चोटी पर, घूम रहा है। यहाँ हर तरह का सामान, काफ़ी, इफ़रात से, मिलता है। हाँ, कुछ महँगा ज़रूर बिकता है।

कुलड़ी-बाज़ार के बाईं ओर एक दूसरी पहा[illegible] बिलकुल मिली हुई, अंदर की ओर च[illegible] जाती है।

अँगरेज़ों की लाइब्रेरी यहीं है। यहाँ पर दो-[illegible] दूकानें हिंदोस्तानियों की अच्छी चलती हैं। लाइब्रे[illegible] बाज़ार के ऊपर की पहाड़ी अँगरेज़ों की मुख्य बस्ती है

लाइब्रेरी-बाज़ार

रिक्शा-गाड़ी

यह भाग है भी अत्यंत रमणीक। 'शार्लेविले' तथा 'सवाय' आदि बड़े-बड़े अँगरेज़ी-होटल यहीं पर हैं।

म्युनिसिपल-बाग़, पोलो का मैदान, टेनिस खेलने के स्थान वग़ैरह सब यहीं हैं। इसका सबसे ऊँचा भाग चंडाल-गढ़ी कहलाता है।

तात्पर्य यह कि मसूरी की बस्ती पाँच भागों में बाँटी जा सकती है। बाईं ओर से गिनने में इसका क्रम यों होगा—चंडाल-गढ़ी, लाइब्रेरी-बाज़ार, कुलड़ी-बाज़ार, लंदौर-बाज़ार और डिपो। महँगी की मात्रा भी इसी क्रम से उतरती गई है। हिंदोस्तानियों के लिये केवल एक जगह ठीक है, और वह है लंदौर-बाज़ार। यहाँ हिंदोस्तानियों के लिये कुछ होटल भी हैं। बाज़ार में

पूरी, मिठाई वग़ैरह सब खाने-पीने का सामान मिलता है। आर्यसमाज, सिख-गुरुद्वारा, हिंदू-मंदिर तथा गढ़वालियों की धर्मशालाएँ भी यहीं हैं।

मसूरी की कुछ विशेषताएँ

नए आए हुए आदमी को मसूरी में दो-तीन बातें ज़रूर खटकेंगी। रिक्शा का इतना इस्तेमाल देश में कहीं भी नहीं होता। बहुतों ने तो रिक्शा देखी भी न होगी। इसे बिलकुल साहब लोगों की टमटम का, जिस पर बैठकर वे शाम को क्लब अथवा टेनिस खेलने जाते हैं, छोटा और हलका नमूना समझिए। रबर-टायर, दो पहियों की, सायदार, छोटी-सी गाड़ी रिक्शा कहलाती है। इसमें टमटम से अंतर केवल इतना ही है कि एक घोड़े की जगह इसे चार या पाँच आदमी खींचते हैं—अर्थात् इसमें दो आदमी आगे लगते हैं, और दो या तीन पीछे। इसको अगर घंटों के हिसाब से न कीजिए, या कम दूर जाना हो, तो रिक्शावाले ख़ूब दौड़ते हैं। एक घंटे का भाड़ा रुपया-सवा रुपया लेते हैं। मसूरी में क़रीब दो-ढाई सौ ऐसी रिक्शा-गाड़ियाँ होंगी। हर-एक स्थान दूसरे स्थान से दूर होने के कारण यहाँ इसका प्रचार अधिक है। रिक्शा खींचनेवाले कुलियों के फटे-पुराने कपड़े और उस पर बैठनेवालों की शानदार पोशाकें आँखों में बहुत खटकती हैं, विसदृश देख पड़ती हैं।

अगर कोई मुझसे मसूरी की मुख्य विशेषता पूछे, तो मैं मोचियों की अधिकता बताऊँगा। जैसे बनारस में हर नुक्कड़ पर पानवाले की दूकान है, वैसे ही मसूरी में हर चार क़दम पर आपको मोची बैठा मिलेगा। ये मोची कीलें या तला लगाने में विशेष निपुण होते हैं। इतने मोचियों की रोज़ी कैसे चलती होगी, यह सोचकर आश्चर्य न करना चाहिए। यहाँ मोज़े उतनी जल्दी नहीं कटते, जितनी जल्दी जूते टूटते हैं।

किसी ऊँचे स्थान से देखने पर मालूम होगा कि मसूरी के प्रत्येक मकान की छत टीन की बनी है, चाहे वह दूकान हो, चाहे कोठी हो, चाहे दफ़्तर हो, चाहे पाख़ाना ही क्यों न हो। बात यह है कि यहाँ टीन के गरम होने का डर तो है ही नहीं। टीन मज़बूत और जाड़े और बरसात में बहुत अच्छी रहती है। इसी से यहाँ टीन की छतों का इतना चलन है। टीन के नीचे लकड़ी की छत भी रहती है। दीवारें बिलकुल पत्थर की होती हैं। ईंट यों ही कहीं तोहफ़े की तरह देख पड़ जाय, तो दूसरी बात है। दीवारों के ऊपर प्लास्टर इतना अच्छा किया जाता है कि वे बुरी नहीं मालूम होतीं।
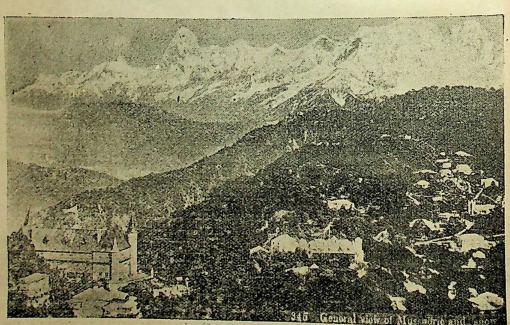
मसूरी से हिमालय का दृश्य

मसूरी में अँगरेज़ और मेमें उस तरह दूर की चीज़ नहीं रहतीं, जैसे कि अन्यत्र होती हैं। यहाँ तो ये गली-गली कूचे-कूचे मारी-मारी फिरती हैं। बाज़ार में कुँजड़ों से तकरार करते देख पड़ेंगी। रास्ते में धक्का देकर निकलने तक की नौबत आ सकती है। इन सब बातों के सिवा यहाँ की टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें, ऊपर-नीचे बसे हुए मकान, खड और पहाड़, और निकटवर्ती बादलों के दृश्य नए आदमी के लिये भारी कौतूहल की सामग्री होंगे। मसूरी में नल के पानी और बिजली की रोशनी का अच्छा प्रबंध है।

दिलबहलाव के स्थान

मसूरी या ऐसी ही अन्य पहाड़ी बस्तियाँ अँगरेज़ों ने अपने सुख के लिये बसाई हैं। अतः वहाँ उनके ही आराम और तफ़रीह का विशेष रूप से प्रबंध होता है। सबसे उत्तम स्थान पर अँगरेज़ों की बस्ती होगी। उनके खाने, घूमने और सैर-तमाशों का भी बहुत अच्छा प्रबंध होगा। मसूरी में अँगरेज़ों की लाइब्रेरी बहुत अच्छी है। इसके मेंबर शायद अँगरेज़ ही हो सकते हैं।

अँगरेज़ी-होटल भी अव्वल नंबर के कई हैं, और वे बहुत अच्छे स्थानों पर हैं। उनमें मुख्य शार्लेविले, सवाय और सेसिल हैं। रिस्टराँ, जहाँ चाय-पानी का प्रबंध होता है, जगह-जगह पर हैं। अँगरेज़ों की तफ़रीह के मुख्य स्थानों में रिंक-थिएटर (नाचघर) है। यहाँ नाच, स्केटिंग, बायस्कोप, थिएटर और जादूगरी वग़ैरह के तमाशे आदि कुछ-न-कुछ बराबर होता ही रहता है। पिक्चर-पैलेस नाम का एक घर बायस्कोप के लिये अलग है। इन सबके सिवा पोलो, टेनिस, हॉकी, गाल्फ़ आदि खेलों का भी उत्तम प्रबंध है। ख़ास नाच, तसवीरों की नुमाइशें और अन्य खेल-कूद अक्सर होते ही रहते हैं। इन जगहों में से जहाँ हिंदोस्तानी जा सकते हैं, वहाँ भी न तो उनकी रुचि का सामान ही होता है, और न काफ़ी साथी ही होते हैं। फिर यहाँ रहने में रुपए-पैसे की इतनी ज़रूरत होती है कि साधारण आदमी बाल-बच्चों का पेट काटकर ही कुछ दिन गुज़र कर सकता है।

अब तो हिंदोस्तानियों के लिये भी कई होटल खुल गए हैं, जिनमें से लंढौर-बाज़ार में गणेश-होटल, ताज-होटल तथा राष्ट्रीय विश्रामालय मुख्य हैं। लाइब्रेरी-बाज़ार में इंडियन-होटल और काश्मीरी-होटल हैं। किंतु इनका पूर्वोक्त अँगरेज़ी-होटलों से मुक़ाबला करना व्यर्थ है। हिंदोस्तानी होटलों में अगर ठीक भोजन और सील से रहित, काफ़ी हवा तथा रोशनीवाला कमरा मिल जाय, तो बहुत ग़नीमत है। दामों का हिसाब लगाने का तो सवाल ही नहीं है। आदमी देखकर मोल किया जाता है।

सवाय-होटल
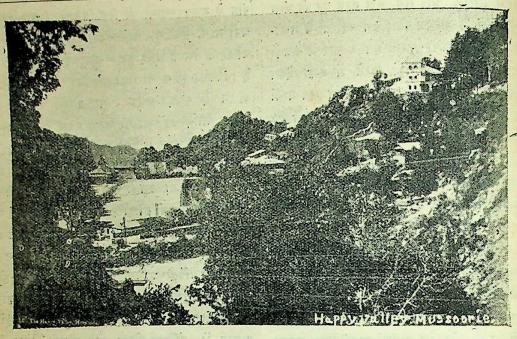
हैपीवेली में पोलो का मैदान

हिंदोस्तानी लोग खेल-तमाशों में से पिक्चर-पैलेस और रिंक-सिनेमा में बायस्कोप देखने जा सकते हैं। अगर पास रुपए काफ़ी हों, तो उन्हें पानी की तरह बहाकर किसी अँगरेज़ी-क्लब के मेंबर भी हो सकते हैं, जहाँ शाम को सिर्फ़ टेनिस खेलने को मिल सकता है। सुबह-शाम का टहलना मुख्य मनबहलावों में शुमार किया जाता है। इसके लिये माल-रोड और केमेल्स बैक-रोड बहुत उपयुक्त हैं। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, ये सड़कें क्रमशः गन-हिल के दक्षिण और उत्तर में हैं। माल-रोड से मैदान दिखलाई पड़ता है, और उसी पर अँगरेज़ी दूकानें भी हैं।

केमेल्स बैक-रोड से अंदर पहाड़ और घाटी दिखाई पड़ती हैं। यह सड़क एकांत और शांत है। एक सड़क से जाइए, और दूसरी से लौट आइए। यह नित्य टहलने के साधारण व्यायाम के लिये पर्याप्त है। यदि अधिक दूर जाना हो, तो डिपो चले जाइए। यहाँ चढ़ाई के बाद डिपो की पहाड़ी के चारों तरफ़ की सड़क पर टहलने को मिल सकता है। टिहरी की सड़क पर भी भारतीयों के जाने की मनाही नहीं है। लाइब्रेरी-बाज़ार के आगे, दाहनी ओर शार्लेविले-होटल की सड़क पर, या बाईं ओर चंडाल-गढ़ी की ओर भी, टहलने का अच्छा स्थान है। इच्छा हो, तो गन-हिल के ऊपर भी जा सकते हैं। वहाँ से चारों ओर दूर तक का दृश्य देख पड़ता है।

तिलक-इंस्टीट्यूट नाम की हिंदोस्तानियों की एक लाइब्रेरी, पिक्चर-पैलेस के निकट, बहुत अच्छे स्थान पर, खुली है। इसको देखकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। यह बहुत ही फ़ायदे और तफ़रीह की चीज़ है। यह हरएक पढ़े-लिखे हिंदोस्तानी भाई से मिलने का केंद्र है। हिंदी, उर्दू और अँगरेज़ी के सभी मुख्य-मुख्य अख़बार यहाँ आते हैं। पुस्तकें अभी अधिक नहीं हैं। सुनते हैं, लाइब्रेरी पर कोई ग्यारह हज़ार रुपए का क़र्ज़ हो गया है। धनी और पढ़े-लिखे भाइयों का यह कर्तव्य है कि वे इस ओर अवश्य ध्यान दें।

पहाड़ी स्थान खूब खाने और घूमने के लिये उपयुक्त हैं। वे मानो इसी के लिये बनाए गए हैं। जिन लोगों के पास इतना धन हो, उन्हीं को यहाँ आना चाहिए। साधारण ग़रीब के लिये तो गंगाजी के किनारे का कोई रमणीय स्थान लाखगुना अच्छा होगा। असल में पहाड़ों पर तफ़रीह के लिये तो सिर्फ़ अँगरेज़ लोग आते हैं। उनकी वजह से आया, ख़ानसामे, रिक्शा खींचने और असबाब ढोने को कुली तथा अँगरेज़ों की नक़ल करने की योग्यता रखनेवाले कुछ हिंदोस्तानी भा

भी उन्हीं के साथ आते हैं। कुछ बाबू लोगों को साहब लोगों के तईं आराम पहुँचाने की ग़रज़ से बिजली-घर, पानी-घर तथा अन्य दफ़्तरों में (काम करने के लिये) रहना पड़ता है। कुछ दूकानदारों को भी साहब लोगों को खाने-पीने और आवश्यक चीज़ें जुटाने के लिये रहना पड़ता है। बस, यही पहाड़ों का हाल है। ये सब बातें मसूरी पर भी पूर्ण रूप से घटित होती हैं।

मसूरी के निकट अन्य देखने योग्य स्थान

अन्य घूमने योग्य स्थानों में सबसे निकट 'मासी-फ़ाल' नाम की घाटी में बहता हुआ पानी है। यह स्थान कोई दो-ढाई मील है। लंदौर से जो घाटी दून की तरफ़ जाती है, उसी में यह स्थित है। दिन-भर बिताने के लिये यह जगह काफ़ी सुहावनी है। लेकिन इसमें पानी बहुत कम है। फुट-डेढ़ फुट चौड़ा पानी बहता है। आठ-नव बजे जाना चाहिए। खाना साथ में ले जाना ठीक है। यहाँ पहुँचकर स्नान और भोजन करे, और फिर दिन-भर पड़े-पड़े ताश खेले, या गप्पाष्टक लड़ावे। शाम को ठंडक होने पर लौट आवे। मगर एक बात है। जैसे लंका के मार्ग में एक राक्षसी रहती थी, जो छाया देखकर प्राणियों को पकड़ लेती थी, वैसे ही 'मासी-फ़ाल' में भी एक अँगरेज़-बुढ़िया रहती है, जिससे बहुत बचकर जाना चाहिए; नहीं तो फ़ी आदमी आठ आना दिए बिना जान बचना मुशकिल होता है। इस संबंध में किसी जानकार से सलाह लेकर जाना चाहिए, जिससे वह भयावह स्थान राह में पड़े ही नहीं।

अंदर को घाटी में 'कैंपटी-फ़ाल' नाम का एक दूसरा स्थान है। शार्लेविले की सड़क पर से जाना होता है। कोई सात मील जगह है। खाना तो पहाड़ पर हर जगह साथ ही ले जाना चाहिए। दिन-भर यहाँ भी लग जाता है। जाने से पहले यह मालूम कर लेना चाहिए कि पानी बह रहा है, या पहाड़ी लोगों ने 'बाँध' बाँधकर अपने खेतों में ले लिया है।

कोई छः मील पर बिजली-घर है। इसे भी लोग देखने जाते हैं। मार्ग बार्लोगंज होकर है। यह स्थान कोई छः मील के फ़ासले पर है, और कुलड़ी-बाज़ार के सामने की घाटी में बसा है। यहाँ जाने की मैं तो किसी को राय नहीं दूँगा; क्योंकि मेरे एक मित्र को यहाँ बड़ा बुरा अनुभव हुआ है। बेचारे एक जगह खड्ड में अड़ गए; फिर बिना दाना और पानी पहुँचाए बाहर निकलने को राज़ी ही नहीं होते थे। बिजली-घर में पानी से एंजिन चलाकर बिजली बनाई जाती है।

पहाड़ों के बीच में बहती हुई यमुनाजी को देखने भी लोग जाते हैं। यमुना मसूरी से १३ मील पर हैं। दो दिन आने-जाने में लगते हैं। रास्ता 'कैंपटी-फ़ाल'-

कैंपटी-फ़ाल

वाला ही है। यहाँ पूरे सामान से जाना चाहिए। बहुत-से साथी, दो एक नौकर (मय सब खाने-पीने के सामान के) और एक-दो डंडी या घोड़े अवश्य साथ में होने चाहिए। अगर कोई बहुत मनचला हो, तो गंगाजी के दर्शन को टेहरी-गढ़वाल भी जा सकता है। यह स्थान कोई ३९ मील पर है। मसूरी से उत्तर काशी,
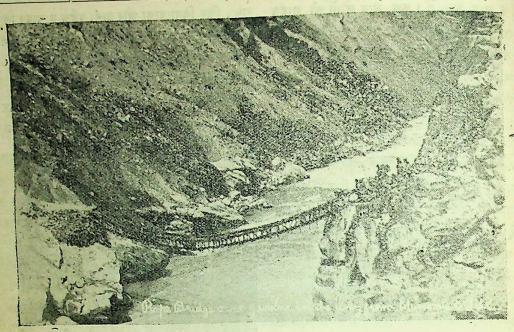
यमुनाजी पर रस्सी का पुल
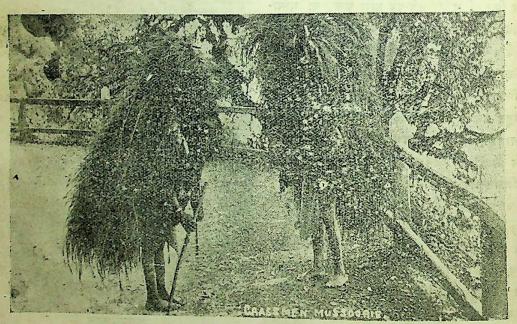
पहाड़ी घसियारे

केदारनाथ और बदरीनारायण-धाम को भी मार्ग गए हैं। हमारे बिजली-घर के साथी की तबीयत तो बर्फ़ के पहाड़ देखते ही हुमकती थी। मुझे बड़ा डर मालूम होता था; क्योंकि वहाँ तो चारा-पानी पहुँचाने का डौल भी न लग सकता था।

कुछ विशेष बातें

यह तो मैं बतला ही चुका कि पहाड़ों पर जाड़े का पूरा सामान करके जाना चाहिए। बाहर घूमने जाने के लिये ख़ाकी कोट और निकर और अंदर एक ऊनी कपड़ा पहने रहना चाहिए। पैर में मज़बूत जूता और हाथ में

मज़बूत लकड़ी पहाड़ पर बहुत काम देती है । इसके सिवा एक बेग में कुछ खाने का सामान और एक बोतल में पानी होना चाहिए। दूर घूमने जाते समय पानी और खाना हर वक़्त साथ रखना आवश्यक है। ये ही दो चीज़ें न होने के कारण हमारे मित्र को बिजली-घर के रास्ते में, खड में, रात-भर शयन करना पड़ा । दो बातें और हैं। एक तो कहीं दूर जाना हो, तो एक जानकार आदमी अवश्य साथ रखना चाहिए; और दूसरे कुराह से, जहाँ रास्ता न हो, कभी न चलना चाहिए । खाना-पानी के बाद इन्हीं दो बातों का ख़याल ज़रूरी है।

धीरेंद्र वर्मा

हिंदू-संगठन

(२)

हिंदू-धर्म के आगे जातियों का प्रश्न

जिस जाति में किसी एक श्रेणी के लोग बिलकुल गिरी हुई दशा में जीवन बिताते हैं, उस जाति या राष्ट्र के सब लोगों की अंतरात्माएँ उन गिरी हुई दशावाले लोगों की छूत से धीरे-धीरे कलुषित हो जाती हैं । परस्पर-सापेक्ष समाज में एक श्रेणी के लोगों की अवनतावस्था अन्य श्रेणी के लोगों को भी अवनति की ओर खींचती है। जिस प्रकार हैज़े के रोगी से चारों ओर हैज़ा फैलने का भय रहता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र या जाति के किसी अंग का पतन होने से धीरे-धीरे सारी जाति या राष्ट्र का पतन हो जाता है। मानसिक रोग भी, कई शारीरिक रोगों की भाँति, संक्रामक होते हैं, और गिरे हुए लोगों की मानसिक अवस्था संक्रामक रोगी की भाँति अन्य सभ्य-समाज का भी नाश कर देती है।

हिंदू-जाति को संक्रामक रोग की तरह छुआछूत के भूत ने घेर रक्खा है। उसने प्रायः छः करोड़ (ठीक-ठीक संख्या नहीं बताई जा सकती) मनुष्यों को अछूत मानकर समाज से बहिष्कृत कर दिया है। सहस्रों वर्षों के दलन और पीडन से उनकी आत्माएँ बिलकुल निर्बल पड़ गई हैं। वे अपना रूप भूल गए हैं; उन्होंने स्वाभिमान खो दिया है। धार्मिक और नैतिक बेड़ियों से (प्रेम की नहीं, अत्याचार की) जकड़े हुए गुलामों की जैसी मानसिक अवस्था होनी चाहिए, वैसी ही इनकी है। आत्मिक निर्बलता के होने से उनका जीवन घृणित, गंदा और पशुतुल्य हो गया है। हिंदू-धर्म का प्रत्येक अंग, शरीर के अंगों की भाँति, ऋषि-प्रणीत वर्णाश्रम-धर्म से जुड़ा हुआ है। इसलिये एक का प्रभाव दूसरे पर पड़ना स्वाभाविक और अवश्यंभावी है। इसीलिये हिंदुओं के आत्मिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पतन का एक मुख्य कारण छुआछूत भी है।

कुछ मनुष्यों का मत है कि जब तक एक श्रेणी के मनुष्य आत्माभिमान-हीन होकर पशुओं की भाँति दूसरों के लिये काम न करें, तब तक मनुष्य-समाज की उन्नति नहीं हो सकती । वे कहते हैं कि मनुष्य-समाज का गठन-प्रणाली को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि सामाजिक उन्नति और सभ्यता के विकास के लिये एक श्रेणी का अन्य श्रेणियों का दासत्व करना अनिवार्य है। इस संबंध में मेरा कहना यह है कि सब प्रकार की उन्नति करने के लिये पारस्परिक सहयोग और सेवा नितांत आवश्यक है; परंतु यह पारस्परिक सहानुभूति और प्रेम से ही हो सकता है, अत्याचार और पाशविक बल पर अवलंबित बंधन से नहीं। क्या एक अंग का क्षय होने से दूसरे अंगों में बल पहुँच सकता है? जिस प्रकार पैरों के नीचे होने पर भी कोई उन्हें काटकर नहीं फेंक देता, या अछूत नहीं मान लेता, उसी प्रकार किसी सेवक का या समाज का कार्य चलाने के लिये नीच, पर आवश्यक, कार्य करनेवाली जाति को अछूत कहकर बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

संसार की सभी जातियों और देशों में क्रमबद्ध श्रेणियाँ होती हैं। ऊँच और नीच श्रेणियाँ और कुल की विभिन्नता पाश्चात्य देशों में भी पाई जाती है। परंतु भारतवर्ष ही एक ऐसा अभागा देश है, जहाँ उनके निजी मानसिक गुणों—आत्मिक विकास और शिक्षा—की ओर कुछ ध्यान न देकर केवल जन्म ही के कारण करोड़ों मनुष्यों को नीच और अछूत समझ लिया जाता है। हिंदू-धर्म में जन्मगत छुआछूत की प्रथा कब और कैसे चली, यह बात अत्यंत विवादास्पद है । कुछ लोगों का

कहना है कि यह अनादि-काल से चली आती है ; और कुछ का कहना है कि यह मध्य-युग का आविष्कार है। द्वितीय मत के लोगों का कहना है कि वेद और अन्य प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चार ही वर्णों का पता लगता है, जैसा कि मनु भगवान् ने अपनी स्मृति के दसवें अध्याय में कहा है कि इन चारों वर्णों के अतिरिक्त कोई और वर्ण है ही नहीं—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ;
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः ।

यदि कोई कहे कि शूद्र ही अछूत हैं, तो यह भी ठीक नहीं ; क्योंकि हम अनेक शूद्रों को अछूत नहीं मानते। इससे यह प्रकट होता है कि अछूत कोई वर्ण नहीं है। संभव है, शूद्रों में से ही कुछ लोगों ने समाज-सेवा के भाव से अस्पृश्य और घृणित समझे जाने के कारण-स्वरूप कार्यों को करना स्वीकार कर लिया हो ; परंतु निश्चय ही उस समय न तो उन्हें घृणा की दृष्टि से ही देखा जाता होगा, और न वे सदैव अछूत ही समझे जाते होंगे। संभव है, समय के परिवर्तन के साथ-साथ यह भाव नष्ट हो गया हो, और उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया हो। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समयानुसार हमारे धार्मिक ग्रंथों में आवश्यक बातें शामिल कर दी गई हैं। इसीलिये कहीं-कहीं परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं ; और अछूतों को शूद्र मानते हुए उनके साथ यदि कहीं कठोर व्यवहार करने की आज्ञा मिलती है, तो कहीं उदारता की भी। जैसे मनुजी ने मनु-स्मृति के दसवें अध्याय में कहा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ;
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥

शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, और ब्राह्मण शूद्र। इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य के लिये भी समझ लेना चाहिए। अत्रि-स्मृति में लिखा है—

देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ;
पशुर्म्लेच्छोऽपि चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ।
(अत्रि० श्लो० ३७०)

अर्थात् राजा, वैश्य, शूद्र, निषाद, पशु, म्लेच्छ और चांडाल, ये दस प्रकार के ब्राह्मण होते हैं। इस संबंध में कुछ अधिक विवेचना करना अनावश्यक और व्यर्थ है ; क्योंकि हमारा विषय तो इतना ही है कि दलित जातियों के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करना चाहिए, तथा उनको कम-से-कम वे अधिकार देने चाहिए, जो हम विधर्मियों तक को देते हैं।

अछूत कहलानेवाले हिंदू-धर्म माननेवाले लोग यों तो सभी जगह सामाजिक अत्याचार की चक्की में पीसे जा रहे हैं, परंतु मदरास में यह अमानुषिकता बड़े ही उग्र रूप में पाई जाती है। अन्य जगह तो स्पर्श-दोष ही माना जाता है, परंतु मदरास के कई स्थानों में दृष्टि-दोष तक माना जाता है। अनेक जातियाँ—जैसे नायाडी, चलावन, कनीसन, मलकून आदि—केवल अछूत ही नहीं समझी जातीं, बल्कि उनकी छाया छूना और दर्शन भी वर्जित है। निम्न-लिखित सूची से प्रकट होता है कि वे उच्च वर्णों से कितने-कितने फ़ासले पर खड़े रक्खे जाते हैं—

नायाडी	७२ फ़ीट
चलावन	६४ फ़ीट
कनीसन	३६ फ़ीट
मलकून	२४ फ़ीट
थिया	२४ फ़ीट

ये लोग ब्राह्मणों के घरों में नहीं जा सकते; तालाब, नदी आदि के पास से नहीं गुज़र सकते। प्रायः पाँच वर्ष हुए, फ़रवरी, सन् १९१९ को, एक मुक़द्दमा कालीकट में हुआ था। मामला यह था कि एक ब्राह्मण—मिस्टर शंकरन् ऐयर—की माता पेट के दर्द से महाव्याकुल हुई। मिस्टर शंकरन् ऐयर उनके इलाज के लिये डॉक्टर चोई नाम के एक नीच को बुला लाए। मार्ग में एक तालाब पड़ता था। डॉक्टर चोई इस तालाब के पास से गुज़र कर मिस्टर ऐयर के घर पहुँचे। इस पर तालाब को अपवित्र करने के अपराध में डॉक्टर चोई और शंकरन् ऐयर पर नालिश कर दी गई। बड़े-बड़े शिक्षितों, वकीलों और ग्रेजुएटों ने साक्षी दी कि निस्संदेह तालाब के पास से एक नीच के गुज़रने से तालाब अपवित्र हो जाता है। एक प्रसिद्ध वकील से पूछे जाने पर कि "क्या एक थिया के ईसाई या मुसलमान होकर तालाब के पास से गुज़रने से वह अपवित्र नहीं होता ?", उन्होंने उत्तर दिया—"हाँ, तब नहीं हो सकता।" इन बातों में कितनी मूर्खता और संकीर्णता भरी हुई है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। भिन्न-भिन्न धर्मावलंबी जातियों के लोग तक तो

उन सड़कों से जा सकते हैं, परंतु अछूत हिंदू-समाज का अंग होते हुए भी नहीं जा सकते।

दूसरे मुख्य प्रश्न देव-दर्शन, कुओं पर पानी भरने की स्वतंत्रता और शिक्षा-संबंधी हैं। यह हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि हिंदू-धर्म कभी किसी को इन आवश्यक सुविधाओं से वंचित नहीं रखना चाहता। ईश्वर ने जल, वायु और प्रकाश के उपयोग की स्वतंत्रता पशुओं तक को दी है। उसने इनमें ऊँच और नीच की विषमता को स्थान नहीं दिया। पर, जो ईश्वर ने नहीं किया, वही मनुष्य ने स्वार्थ के वशीभूत होकर दिखाया! उसने पृथ्वी पर भी लकीरें खींचकर कहा कि यह द्विजातियों और उच्च मनुष्यों के लिये है, और वह अछूत कहलानेवाले नीच मनुष्यों के लिये। जिन ईश्वर के दरबार में ऊँच, नीच, सब एक हैं, जिनके विषय में किसी कवि ने कहा है कि "जाति-पाँति पूछै नहिं कोई; हरि को भजै सो हरि को होई।", उन "हम भक्तन के, भक्त हमारे" कहनेवाले आनंदकंद श्रीकृष्णचंद्र के मंदिर का द्वार भी उच्चाभिमानियों ने अछूतों के लिये बंद कर दिया। कहाँ भगवान् रामचंद्र, जो भीलनी के बेर बड़े आनंद से खाते हैं, जो गुह को मित्र कहकर संबोधित करते हैं, और कहाँ हम, जो ईश्वर के चरणों में अपनी भक्ति के दो पुष्प उनके चरणों में चढ़ाने के लिये आनेवाले उन अपने ही भाइयों को, जो हिंदू-धर्माभिमानी होने पर भी नीच या अछूत माने जाते हैं, धक्के मार-मारकर देवता के दरबार से निकाल देते हैं। भला इस जड़ता का भी कुछ ठिकाना है कि देव-मंदिर के अंदर चमार के प्रवेश से वह मंदिर ही भ्रष्ट हो जाय, पर चमार न शुद्ध हो। वेद-मंत्र पढ़कर जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा होती है, जो प्रतिमाएँ नित्य हज़ारों भक्तों की पवित्र भावना और भक्ति का केंद्र बनती हैं, वे ही मूर्तियाँ और उनकी छाया से परिशुद्ध भूमि एक चमार के स्पर्श से भ्रष्ट और अशुद्ध हो जाय, और चमार ऐसे संसर्ग से शुद्ध न हो! जिन भगवान् की चरण-रज से पत्थर का भी उद्धार हो गया है, क्या आपमें यह कहने की सामर्थ्य है कि शूद्र, अंत्यज, अछूत आदि लोग उन्हीं पतितपावन भगवान् का चरण-स्पर्श करके भी अशुद्ध-के-अशुद्ध ही बने रहेंगे? गंगा-यमुना में अनेक नाली-नालों का जल आकर मिलता है; पर वह गंगा-यमुना को अशुद्ध नहीं कर सकता, बल्कि शुद्ध होकर अनेक पतितों का उद्धार करता है। फिर क्या एक अछूत का लोटा कुएँ में स्वयं शुद्ध न होकर सारे कुएँ को अशुद्ध कर सकता है? पारस लोहे को सोना बना देता है, लोहा पारस को सोना नहीं बना सकता। यदि पातक की छोटी-सी चिनगारी पुण्य के बड़े-से-बड़े हिमालय को जला देती है, तो वेद और पुराण सारे ढकोसले और व्यर्थ सिद्ध होते हैं। यदि एक अंत्यज विश्वनाथ के दर्शन-स्पर्श आदि से शुद्ध नहीं होता, तो आप भगवान् को पतितपावन कहना छोड़ दीजिए। यह मत कहिए कि एक बार राम का नाम लेने से महापतितों का भी उद्धार हो सकता है।

तीसरी बात शिक्षा की है। कुछ लोग समझते हैं कि इन लोगों में शिक्षा और ज्ञान का प्रचार होने पर वे अपने प्रति किए जानेवाले अत्याचारों को समझ लेंगे, और हिंदू-धर्म के सामाजिक बंधन को तोड़कर भाग निकलेंगे। पर स्वतंत्रता और स्वत्वों की रक्षा के जिस अंकुर का विकास आज संसार के कोने-कोने में हो रहा है, उससे उन्हें वंचित रखने का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। यदि आज तक अत्याचार सहते रहने पर भी उन्होंने सामाजिक बंधन ढीला करने की चेष्टा नहीं की, तो इसका कारण वह धर्म-प्रेम है, जिसका बीज-वपन उनमें बहुत दिन हुए, हमारे पूर्वज कर गए हैं। अब चारों ओर से विधर्मियों के हिंदू-धर्म पर हमले हो रहे हैं, और विशेषकर अछूतों को हिंदू-धर्म से तोड़ लेने का प्रबल प्रयत्न हो रहा है। वे उनमें अपनी शिक्षा का धीरे-धीरे प्रवेश करा रहे हैं, और उस दूषित शिक्षा से शिक्षित कुछ लोग अपने अशिक्षित भाइयों को हिंदू-धर्म के सामाजिक बंधन तोड़ने की प्रेरणा करेंगे। उस समय यदि ये लोग अपने धार्मिक ज्ञान और शिक्षा से शून्य ही रहे, तो विधर्मियों का काम और भी सहज हो जायगा।

आज केनिया और दक्षिण-आफ्रिका के गोरे प्रवासी वहाँ बसनेवाले हिंदोस्तानियों को, जिनमें ब्राह्मण आदि भी हैं, अछूत समझते हैं। वहाँ उन्हें अलग बसाने का क़ानून बना है। क्या आप उनके तर्क को न्याय-संगत मान सकते हैं? भारतवासियों ने इस अपमान और अन्याय के प्रति घोर आंदोलन शुरू कर दिया है। उसे देखकर वहाँ के गोरे प्रवासियों का रक्त उबल पड़ा है, और

वे उसे भारतवासियों का व्यर्थ का उत्पात समझते हैं। इसी प्रकार जब से हिंदू-महासभा और सनातनधर्म के नेताओं ने दलितोद्धार का निश्चय किया है, तब से कुछ कट्टर लोग "धर्म-धर्म" चिल्लाकर उनके प्रयत्न को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे हैं। वास्तव में कुलाभिमानियों के हृदय में सार्वभौमिक प्रेम के लिये स्थान होना कठिन है। उनकी सहानुभूति एक निर्दिष्ट सीमा के बाहर नहीं जा सकती। वे अपनी श्रेणीवालों के लिये जिन बातों की गणना अत्याचार और अन्याय में करते हैं, उन्हें दूसरी श्रेणीवालों के लिये अत्याचार-अन्याय नहीं समझते।

कुछ मनुष्य समझते हैं कि दलित जातियों को ये सुविधाएँ देने से वर्णाश्रम-धर्म पर कुठाराघात होगा। संभव है, कुछ लोग अछूतोद्धार के आवरण के नीचे-नीचे वर्ण-विभाग को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे हों; परंतु स्वयं अछूतोद्धार का तात्पर्य वर्ण-व्यवस्था नष्ट करना नहीं है। यदि कुछ सज्जन अछूतोद्धार के आवरण के नीचे वर्ण-व्यवस्था को नष्ट करने की चेष्टा कर रहे हैं, तो वे देश और जाति का बड़ा अपकार कर रहे हैं, और आपस में विरोधाग्नि फैला रहे हैं। हिंदू-जाति धर्म-प्राण जाति है, और उसका धर्म बहुत कुछ वर्ण-व्यवस्था पर स्थित है। सच्चा हिंदू वर्ण-व्यवस्था का नष्ट होना स्वीकार नहीं कर सकता। निस्संदेह इस समय ऋषि-प्रणीत वर्णचतुष्टय की बड़ी दुर्दशा हो रही है; वे जीर्ण-शीर्ण हो चुके हैं। वर्णों के अस्थि-मात्र अवशिष्ट हैं। हिंदू-धर्म को फिर खड़ा करने के लिये उनमें जीवन फूँकना चाहिए, नवीन सुधार करने चाहिए, और उनके दोष निकाल देने चाहिए। परंतु वर्ण-व्यवस्था को समूल नष्ट कर देने में एक बड़े उत्तरदायित्व-पूर्ण भार को लेने की आवश्यकता है, जिसके लिये हिंदू-जाति तैयार नहीं है। दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था की आड़ में जो लोग अछूतों को मनुष्यों के प्राथमिक अधिकार देने का भी विरोध कर रहे हैं, वे भी स्वयं वर्ण-व्यवस्था पर कुठाराघात कर रहे हैं। क्या एक वर्ण के नष्ट हो जाने, विधर्मी बन जाने अथवा उच्च वर्णों में मिल जाने के पश्चात्, तीन वर्णों से वर्ण-व्यवस्था चल सकती है? कभी नहीं। वर्ण-व्यवस्था को स्थिर रखने का यही एक उपाय है कि उन्हें सहानुभूति और प्रेम से अपनाया जाय, उन्हें कुछ सुविधाएँ दे दी जायँ, जिससे वे अपने वर्ण में ही सम्मान-पूर्वक रह सकें। यदि आपने ऐसा नहीं किया, तो इसमें संदेह नहीं कि पाश्चात्य धर्म और सभ्यता के प्रभाव से हिंदू-धर्म में बड़ा भारी सामाजिक विप्लव होगा। चतुर्थ वर्ण दो भाग में विभाजित हो जायगा। एक पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावान्वित दल होगा, जो हिंदू-धर्म को छोड़कर विधर्मी होना अंगीकार कर लेगा, और दूसरा वह दल होगा, जो अपने धर्म-प्रेम के कारण हिंदू-धर्म में रहकर ही अपने स्वत्वों के लिये अन्य धर्मों का सामना करेगा। इसका पूर्वरूप अभी से दृष्टिगोचर होने लगा है। मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि प्रति दस वर्षों में नीचतम जातियों की एक बड़ी संख्या ईसाई और मुसलमान हो जाती है। दूसरे लोगों ने अपने स्वत्व प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह की शरण ली है, और अन्य लोग अपने को द्विजाति सिद्ध करने की चेष्टा में लगे हुए हैं।

हिंदू-महासभा और कांग्रेस ने दलितोद्धार की आवाज़ उठाई है। परंतु इस संबंध में बड़ी सावधानी और धैर्य के साथ आगे पैर बढ़ाने की आवश्यकता है। यह कार्य पारस्परिक सहानुभूति और सद्विचार से ही हो सकता है। शताब्दियों से प्रचलित रूढ़ियाँ दो-चार मास में नहीं टूट सकतीं। तनिक-सी असावधानी से विरोध की अग्नि भड़क जाने की सदैव आशंका रहती है। महासभा के प्रस्तावानुसार जब आगरे में अछूतोद्धार का काम शुरू हुआ, तब वहाँ के कार्यकर्ताओं में एक आर्यसमाजी सज्जन भी शामिल हुए थे। सुनते हैं, जब वहाँ के बेलनगंज-नामक मुहल्ले के एक मंदिर में अछूतों को देव-दर्शन कराया गया, तब वह आर्यसमाजी महाशय कहीं कह बैठे कि "आज सनातनधर्मियों के गढ़ पर विजय प्राप्त कर ली।" बस, फिर क्या था। सनातनधर्मी जनता में आग लग गई, और अछूतोद्धार के विरोध का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। प्रतिष्ठित और पूज्य सनातनधर्मी विद्वान् भी फिर उसे शांत न कर सके। कहने का तात्पर्य यह है कि कार्यकर्ताओं की बुद्धिमत्ता पर ही सफलता का होना अवलंबित है। इसलिये अधिक भीड़भाड़ के स्थान में थोड़े-से विचारशील कार्यकर्ताओं को लेकर ही कार्य करना अच्छा है। अनेक मनुष्य अछूतों को उनके अधिकार दिलाने के लिये सत्याग्रह का अवलंब लेने लगे हैं। इस संबंध में मेरा विचार है कि अभी वे इस कार्य में सत्याग्रह

का प्रयोग न करें। इसके कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि इस ओर सत्याग्रह का प्रयोग करना ही न चाहिए। सत्याग्रह तो अंतिम अस्त्र होना चाहिए। जहाँ हठ और स्वार्थ की पराकाष्ठा हो जाय, वहीं उसका प्रयोग होना चाहिए। अभी तो प्रचार-कार्य की बहुत आवश्यकता है। निम्न-लिखित कार्य बहुत ही शीघ्र हाथ में ले लेने चाहिए—

(१) प्रत्येक नगर में दलितोद्धार-संबंधी एक कमेटी हिंदू-सभा के अंतर्गत स्थापित की जाय।

(२) अछूत-संबंधी ट्रैक्ट गाँव-गाँव और नगर-नगर में बाँटे जायँ।

(३) अछूतों के लिये स्कूल और रात्रि-पाठशालाएँ खोली जायँ, और अन्य स्कूलों में भी यथाशक्ति उन्हें भरती कराने की चेष्टा की जाय।

(४) पाठशालाओं में उनके स्वच्छ और शुद्ध रहने पर विशेष ज़ोर दिया जाय।

(५) उनके लिये धार्मिक शिक्षा का प्रबंध हो, जिससे वे हिंदू-धर्म का महत्त्व समझें।

(६) उनकी पंचायतों द्वारा मांस और मद्य खाना-पीना बंद कराया जाय।

(७) प्रत्येक नगर में एक-एक विद्वत्परिषद् बनाकर उनसे एक व्यवस्था निकलवाई जाय, जिसमें देव-दर्शन और सार्वजनिक कुओं पर पानी भरने की आज्ञा हो। यदि बहुसंख्यक विद्वान् आपके पक्ष में न हों, तो जो कुछ भी वे अछूतों को सुविधाएँ दिलाना चाहें, उन्हें ही स्वीकार कर अधिक के लिये शांति से चेष्टा की जाय।

(८) हिंदू-महासभा और उसके स्थानीय कार्य-कर्ताओं द्वारा इस बात की पूर्ण घोषणा करा देनी चाहिए कि दलितोद्धार और पारस्परिक रोटी-बेटी एक करने का कोई संबंध नहीं है, और न होगा।

आशा है, देश के नेता और समझदार कार्यकर्ता सज्जन इस नम्र निवेदन पर पूर्ण ध्यान देकर इस कार्य को शीघ्र अग्रसर करते हुए अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचय देंगे। इस समय अछूतोद्धार और संगठन का प्रश्न हिंदू-जाति के जीवन-मरण की समस्या हो रहा है।

देवकीनंदन "विभव"

दिनों का फेर

(१)

वाम प्रोषित-भर्तृका[1]-सी, वसुमती[2],
रेणु-गुंठित[3], धूसरा, सरला, सती,
शुष्क-रूपा हो गई, न हरी-भरी,
कह रही मानो सशोक "मरी-मरी!"

(२)

तप्त मारुत हाय, श्वासोद्गार है;
भूमि क्या है, आग का अंगार है।
ग्रीष्म-दाघ[4]-प्रचंड-विरहोत्ताप से—
है तपी, दीनांग-दुःख-कलाप से।

(३)

सूर्य-काम-करावली[5]-शर-जाल से
सर्वथा बेधी गई विकराल से,
मूर्छिता, अमनोज्ञ, नीरस हो गई,
प्राकृतिक शोभा सभी बस, खो गई।

(४)

दो महीने दुःख से यों ही गए,
आ गए संयोग के दिन वे नए;
मंजु[6] वंशी की सरस ध्वनि सुन पड़ी,
मोर-पक्षों में प्रभा आई बड़ी।

(५)

पीत पट की भी छटा छहरा रही,
भव्य भावों की घटा लहरा रही;
शीघ्र आँगत-भर्तृका[7] सजने लगी,
हो हरिद्वसना[8] व्यथा तजने लगी।

(६)

श्याम-घन[9] प्राणेश का दर्शन मिला,
नव्य जीवन[10]-दान पाकर मन खिला।
बस, धरा[11] ही पलटकर राधा बनी,
पा गई यह अंत में गुरुता[12] घनी।

प्रेमदास वैष्णव

---

१. विरहिणी। २. पृथ्वी। ३. धूल में सनी हुई। ४. ताप। ५. किरण-माला। ६. इन नीचे की कई पंक्तियों में गर्जन, मयूर, बिजली आदि का वर्णन है। ७. परदेश से आए हुए पतिवाली स्त्री। ८. हरी सारी और दिशा। ९. काला मेघ (श्लेष से घनश्याम=कृष्ण) १०. जिंदगी या जल। ११. "धरा"-शब्द को उलटने से "राध" होता है, और "ध" को गुरु कर देने से "राधा"-शब्द बन जाता है। १२. श्रेष्ठता या दीर्घत्व।

मलेरिया

"विषम-ज्वर"

मलेरिया-शब्द हम लोगों के लिये नया नहीं है। यद्यपि आयुर्वेद में इस रोग का नाम 'विषम-ज्वर' कहा गया है, पर साधारणतः लोग 'मलेरिया' या 'जूड़ी-बुख़ार' के नाम ही से परिचित हैं। रोगी की तलाश में परेशान होने की ज़रूरत नहीं, प्रत्येक गाँव में दो-एक मलेरिया से पीड़ित अभागे दिखलाई ही पड़ेंगे। उनका पीला चेहरा, कृश शरीर, गढ़ों में धसी हुई आँखें और बड़ा पेट – यही मलेरिया-दैत्य का रूप समझिए। अगर मलेरिया के रोगी का संक्षिप्त रूप वर्णन करने को कहा जाय, तो इतना कहना काफ़ी है कि उक्त रोगी हड्डी, चमड़ा तथा पेट, इन तीन चीज़ों का एक ढाँचा-भर है!

भारत, और बातों में निर्धन होने पर भी, रोगों के धन में बड़ा धनी है। अन्न की फ़सलों के समान, साल में दो प्रधान फ़सलें मलेरिया की भी होती हैं। फ़सल के समय जो करुण दशा देश की हो जाती है, वह किसी से छिपी नहीं है। ऐसा अक्सर होता है कि घर-का-घर जूड़ी से बीमार पड़ा है; न तो कोई बीमारों को पानी पिलानेवाला है, और न उनके माल-असबाब की रक्षा करनेवाला। माता तेज़ बुख़ार में बेहोश पड़ी है। शिशु भूक से तड़प रहा है! भोजन का कोई ठिकाना नहीं—यह तक निश्चय नहीं कि आज दोपहर के लिये घर में कुछ है भी या नहीं—फिर पथ्य तो दूर की बात है! दवा के लिये कुछ ख़र्च करना सबके लिये संभव नहीं। उधर बग़ैर घर का काम किए भी गुज़र नहीं। ज़रा तबीयत ठीक जान पड़ी, ज़रा उठकर बैठने-भर की ताक़त हुई कि बस, बेचारा ग़रीब रोगी किसान रूखा-सूखा खाकर मज़दूरी करने चल दिया। ऐसी दशा में अगर लाखों काल का ग्रास हो जायँ, तो आश्चर्य ही क्या है? जो मरने से बच गए, उनमें से बहुतों की बढ़ी हुई तिल्ली हमेशा उन्हें मृत्यु के राज्य का रास्ता दिखलाने को तैयार रहती है।

इतने भयंकर और देश के दुर्भाग्य-स्वरूप रोग का थोड़ा-बहुत हाल प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जानना चाहिए। इस शत्रु ने न-जाने कितने प्रदेश उजाड़ दिए। फिर भी अगर इसका भीतरी हाल जानकर हम इसे निर्मूल करने में असफल रहें, तो हम लोगों के लिये बड़ी लज्जा की बात है। बहुत समय से सभी देशों के विद्वान् इस रोग को दूर करने का प्रयत्न करते आ रहे हैं; परंतु अब तक कोई भी ऐसा निश्चित उपाय नहीं जाना गया, जिससे इसकी सालाना फ़सलें रोकी जायँ। फिर भी नवीन विज्ञान ने बहुत-सी आश्चर्य-जनक बातों का पता लगा लिया है। नित्य नई बातें मालूम होती हैं। संभव है, किसी दिन हम लोग इस रोग का भी अंत देख सकें।

हमारे सामने एक ऐसे शत्रु की सेना है, जो प्राचीन काल के राक्षसों की तरह अंतर्द्धान होकर युद्ध करती है। अब तक हम यह जानते ही न थे कि शत्रु के ज़हरीले तीर किधर से आ रहे हैं, सेना की संख्या कितनी है, और वह है कहाँ। अब तक जितने युद्ध हुए, सबमें हम पराजित होते रहे। पर अब विजय-लक्ष्मी कुछ हमारे ऊपर भी प्रसन्न हुई है। हमें इतना पता लग गया है कि हमारा शत्रु कौन है, और कहाँ से छिपकर वह अपनी निशाचरी सेना का संचालन करता है। ऐसा तो बहुत ही कम हुआ है कि शत्रु के अचानक आक्रमण करने पर हम मैदान में टिक सके हों; परंतु, जब हमें उसके आक्रमण का ज्ञान पहले से हो गया, तब हम अनेक बार अपनी रक्षा करने में समर्थ हुए हैं। यही नहीं, कुछ देशों से तो हमने शत्रु को निकाल भी दिया है!

यद्यपि मलेरिया-ज्वर के लक्षण साधारणतः सभी पर प्रकट हैं, फिर भी उसका कुछ हाल दे देना असंगत न होगा।

लक्षण

सबसे पहले तो बदन कुछ भारी-सा मालूम होने लगता है। फिर रुक-रुककर सरदी मालूम होती है। जान पड़ता है, पीठ के निचले हिस्से में कहीं पर सरदी शुरू होती है, और बढ़ते-बढ़ते सारे शरीर में फैल जाती है। शरीर-भर की मांस-पेशियों में कँपकँपी पैदा हो जाती है। जान पड़ता है, कँपकँपी जबड़े के नीचे से शुरू होकर सारे शरीर में, विशेषकर हाथ-पैरों में, फैल रही है। कभी-कभी तो कँपकँपी इतने ज़ोर की होती है कि चारपाई तक हिलने लगती है।

धीरे-धीरे रोगी की सूरत में अंतर आने लगता है। चेहरा पीला या नीला, चमड़ा सूखा और ढीला-ढीला-सा, उँगलियाँ सफ़ेद और नाख़ून नीले हो जाते हैं। आँखों के चारों ओर नीला रंग छा जाता है *। साफ़ पानी-जैसा बहुत-सा पेशाब होता है। शरीर का ताप ९८° से लेकर १०३° तक रहता है। यह दशा एक घंटे से लेकर दो घंटे तक रहती है। परंतु गरम देशों में इसके भीतर ही दूसरी अवस्था शुरू होने लगती है।

दूसरी अवस्था में बड़ा ताप मालूम होता है। जान पड़ता है, गरमी अंदर से शुरू होकर शरीर-भर में फैल रही है। शरीर का चमड़ा सूखा, लाल और गरम हो जाता है। नाड़ी ज़रा हलकी, पर तेज़ हो जाती है। जो नाड़ियाँ दिखलाई पड़ती हैं (जैसे मस्तक के कोनों के पासवाली नाड़ियाँ), वे ज़ोर से चलती मालूम होती हैं। तिल्ली का भारीपन बढ़ता ही जाता है। मूत्र बहुत कम और गहरे रंग का आता है। प्यास बहुत मालूम होती है। रोगी की सोचने-समझने की शक्ति कम हो जाती है। यह अवस्था एक से तीन घंटे तक रहती है।

इसके बाद तीसरी अवस्था शुरू होती है। इसमें पसीना निकलता है। अक्सर ऐसा होता है कि इस अवस्था को पहुँचते-पहुँचते रोगी सो जाता है। जागने पर तबीयत कुछ हलकी जान पड़ती है। शरीर का ताप नार्मल (जितना साधारणतः रहता है, अर्थात् ९८° के कुछ इधर-उधर), अथवा नार्मल से कुछ कम, हो जाता है। तिल्ली के ऊपर का बोझ कम मालूम होने लगता है। मूत्र के साथ कोई गाढ़ा-गाढ़ा, ईंटे के रंग का पदार्थ गिरता है। कुछ समय के बाद रोगी प्रायः अच्छा हो जाता है। बहुत लोग तो आक्रमण के बाद अच्छी तरह अपना कामकाज भी कर सकते हैं।

दूसरे, तीसरे या चौथे दिन नियमित रूप और नियमित समय पर फिर-फिर यही हालत हुआ करती है। निश्चित रूप से तो कुछ कहना कठिन है, पर साधारणतः रोज़ आनेवाला ज्वर सुबह को, एक दिन का अंतर देकर आनेवाला (तिजारी) दोपहर को, और चौथे दिन आनेवाला (चौथिया) तीसरे पहर आता है। चौथिया-ज्वर में साधारणतः कंपावस्था सबसे लंबी होती है; परंतु उसका आक्रमण जल्दी ही शांत हो जाता है। नित्य आनेवाले ज्वर की कंपावस्था सबसे कम समय तक रहती है। परंतु आक्रमण का वेग बहुत समय तक रहता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि पहला आक्रमण कई दिन तक ख़तम ही नहीं होता। ऐसी दशा में ज्वर को "एकज्वरी" (Remittent fever) कहते हैं।

नव-वयस्कों, वृद्धों और अस्वस्थ शरीरवालों को यह ज्वर अधिक सताता है। साधारण जूड़ी-बुख़ार के साथ अगर दस्त या खाँसी शुरू हो जाय, अथवा सरदी लग जाने के कारण फेफड़ों पर असर पहुँच जाय, तो रोगी की दशा और भी ख़राब हो जाती है। साधारणतः ख़ाली मलेरिया से मृत्यु बहुत कम होती है। जब ज्वर-जनित त्रिदोष (Cachexia) के लक्षण शरीर में देख पड़ने लगते हैं, तब अवश्य ही अवस्था चिंताजनक हो जाती है। मृत्यु-संख्या का हिसाब आगे कहीं दिया जायगा।

मलेरिया-ज्वर सारे संसार में फैला हुआ है। केवल उत्तरीय तथा दक्षिणीय ध्रुव-प्रदेश उससे बचे हैं। पिछले कई साल के निरंतर उद्योग के बाद अब इँगलैंड, उत्तरी फ़्रांस, उत्तरी इटली, जर्मनी तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका के पूर्वी प्रदेशों से यह रोग बिदा हो गया है; किंतु कनाडा, मध्य-अमेरिका, मैक्सिको, दक्षिणी अमेरिका, मध्य-आफ़्रिका, स्पेन, आस्ट्रेलिया, हिमालय की तराई, बंगाल, स्याम, बर्मा तथा चीन, ये देश अभी तक इस रोग के क्रीड़ा-क्षेत्र हैं।

हिमालय की तराई में तो यह रोग साल-भर रहता है; कभी जाता ही नहीं। जन्म से ही बच्चों के शरीर

* ऊपर जो लक्षण दिए गए हैं, वे क्यों देख पड़ते हैं, इस विषय में मतभेद है। पर सबके कथन का सार यह है कि ज्वर के कारण शरीर-भर में फैली हुई सूक्ष्म रक्त-वाहिनी नाड़ियाँ (arteries) सिकुड़ जाती हैं। इसी से शरीर का रंग बदल जाता है। नाड़ियों के सिकुड़ने के कारण रक्त को काफ़ी जगह नहीं मिलती, जिससे वह शरीर के अंदरूनी भागों में—फेफड़े, हृदय, तिल्ली इत्यादि में—एकत्र हो जाता है। यही कारण है कि इन सब भागों—विशेषकर हृदय, तिल्ली एवं फेफड़ों—पर बोझ-सा मालूम होने लगता है। कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि इसी दबाव के कारण हृदय फट जाता है।

में व्याप्त रहता है। यही कारण है कि वहाँ के अभागे निवासियों की सूरत बड़ी ही करुणाजनक होती है। उनके बड़े सिर (विशेषकर कान), चिपटी नाक, फूले हुए पेट, सूखे हाथ-पैर और फीका रंग देखते ही उन्हें पहचाना जा सकता है। तिल्ली तो प्रायः सभी की बढ़ी रहती है। जलोदर, अंडवृद्धि और फ़ीलपाँव रोग भी बहुतों को हो जाते हैं।

ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक इस

इतिहास

बात का बिलकुल पता नहीं था कि यह रोग कैसे होता है। वैद्यक-शास्त्र के अनुसार इस रोग की उत्पत्ति में कोई विशेषता नहीं समझी जाती थी। शरीर का भीतरी व्यतिक्रम एवं दूषित वायु ही इसका मुख्य कारण माना जाता था। प्राचीन पुस्तकों में यह मिलता है कि एक प्रकार के मच्छड़ के काटने से ज्वर होता है। पर वह ज्वर मलेरिया है, इसका कोई प्रमाण नहीं। योरप में भी इसके विषय में बड़े-बड़े विचित्र विचार प्रचलित थे। कुछ लोगों का ख़याल था कि जो भूमि कभी आबाद न हुई हो, उसके खोदने से यह रोग उत्पन्न होता है। कुछ लोग इसे दैवी कोप का एक अंग मानकर संतुष्ट थे। मलेरिया-शब्द इटालियन-भाषा का है। इसका अर्थ है दूषित वायु। सो साधारण रूप से यह कहा जा सकता है कि पढ़े-लिखे लोग इसका कारण दूषित वायु ही मानते थे।

सन् १८७९ ई० में, सबसे पहले, क्लेब्स-नामक एक वैज्ञानिक ने यह संदेह प्रकट किया कि हो न हो, कोई जीवित प्राणी इस रोग की जड़ है। अलजीरिया (आफ़्रिका)-देश के एक सैनिक डॉक्टर—ए० लैवेरन—ने १८८० ई० में मनुष्य के रक्त में मलेरिया के रोगाणु देखे। उस समय सबने डॉक्टर साहब की बुद्धि में कुछ दोष बतलाकर इस बात को हँसी में उड़ा दिया। १८८९ ई० में मार्चियाफ़ावा और सेली नाम के दो वैज्ञानिकों ने इस प्रश्न को फिर से छेड़ा। उन्होंने रोग के कीटाणुओं को रक्त में तैरते देखा। तब लोगों को कुछ कुछ विश्वास होने लगा। इटली के कुछ डॉक्टर इस रहस्य का पता लगाने पर तुल गए। १८९४ ई० में, सब लोगों की सलाह से, यह तय हुआ कि मच्छड़ों के काटने से इसका बहुत कुछ संबंध है। उस समय विद्वानों के तीन मत हो गए—

(१) एक दल का कहना यह था कि जब मच्छड़ मलेरिया के रोगी को काटता है, तब रोगाणु भी रक्त के साथ उसके पेट में चले जाते हैं। वही मच्छड़ जब पानी के निकट बैठता है, तब उसके मल-मूत्र के साथ वे कीटाणु भी पानी में चले जाते हैं। वह पानी जो कोई पी लेता है, उसे ज्वर हो जाता है।

(२) दूसरे दल का कहना था कि मच्छड़ इधर-उधर उड़ते-फिरते ही रहते हैं। हवा में कहीं मलेरिया के कीटाणु उनके पेट में चले जाते हैं। वे ही मच्छड़ जब किसी नीरोग मनुष्य को काटते हैं, तो वे कीड़े उसके रक्त में चले जाते हैं।

(३) तीसरा दल पुराने विचार का था। वह कीटाणुओं का होना तो मानता था, पर मच्छड़ का ठेका मानने को तैयार न था। इस दल का कहना था कि दलदलों में ये कीटाणु रहते हैं। ये ही दलदल जब सूखने लगते हैं, तब उनकी हवा मनुष्य के पेट में कीटाणुओं को पहुँचा देती है।

पाठक आगे देखेंगे कि तीनों दलों के कथन में सत्य था। दोष इतना ही था कि तीनों ही इस प्रश्न के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार कर रहे थे। इन्हीं तीनों मतों को एक करके कर्नल रॉस ने मलेरिया-ज्वर का प्रचलित सिद्धांत निश्चित किया।

कर्नल रॉस हिंदुस्तान में एक सैनिक-डॉक्टर थे। १८९५ ई० की बात है कि सिकंदराबाद में एक सैनिक मलेरिया-ज्वर से पीड़ित हुआ। कर्नल महाशय उसकी चिकित्सा में हैरान थे। कोई उपाय नहीं सूझता था। एक दिन रोगी के कमरे से बाहर निकलते समय उन्होंने देखा, एक अँधेरे कोने में कुछ मच्छड़ बैठे हैं। उन्हें चट योरपियन विद्वानों का अनिश्चित मत स्मरण हो आया। उसी समय बड़े परिश्रम के साथ एक दर्जन ज़िंदा मच्छड़ उन्होंने पकड़े। उसके बाद एक बक्स में कुछ कबूतर बंद किए। बक्स में कुछ छेद करके बारीक कपड़े से उन्हें ढक दिया। उसके बाद वे मच्छड़ उसमें छोड़ दिए। कबूतरों के दाना-पानी का प्रबंध बराबर होता रहा। कई दिन के बाद देखा गया कि उन कबूतरों में से कोई भी नीरोग न था। जब उनके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु पाए गए।

कर्नल रॉस के आश्चर्य और हर्ष की कोई सीमा न थी। जिस बात की खोज निरंतर १७-१८ वर्ष से हो रही थी, उसे वह आज अनायास ही पा गए।

कर्नल रॉस के एक और मित्र डॉक्टर मांसन थे। रॉस ने अपने अन्वेषण का हाल मित्र को बतलाया। मांसन को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कर्नल रॉस से कुछ वैसे मलेरिया-ग्रस्त मच्छड़ माँगे। उन्हें विश्वास तो था ही नहीं। दूर ढूँढ़ने न जाकर पहले-पहल अपने पुत्र ही पर उनका प्रयोग किया। मच्छड़ काटने के तीसरे ही दिन उसे ज्वर आ गया, और कई हफ़्ते बीमार रहकर एक दिन वह चल बसा! बीमारी की दशा में जब उसके रक्त की परीक्षा की गई, तो उसमें मलेरिया के कीटाणु निकले।

अब तो मांसन को भी रॉस के कथन की सत्यता पर विश्वास हो गया। परंतु यह विश्वास उन्हें बड़ा महँगा पड़ा। इस प्रकार सन् १८९८ में इस भयंकर प्रयोग के फल ने डॉक्टर रॉस के मत का समर्थन किया!

दोनों एकमत हो गए। फिर मांसन की सहायता से, बहुत परिश्रम के बाद, रॉस ने एक नया तत्त्व और खोज निकाला। उन्होंने देखा, यद्यपि बहुत-से मच्छड़ रोगी को काटते और रोग के कीटाणुओं को ग्रहण कर लेते हैं, परंतु उन सभी मच्छड़ों के काटने से नीरोग आदमी रोगी नहीं हो जाता। यह बात ऐसी थी कि उनके सिद्धांत में लोगों को संदेह होने लगता था। अंत को, हज़ारों प्रयोग करने पर, यह मालूम हुआ कि एक विशेष जाति के मच्छड़ ही में यह शक्ति है कि वह कीटाणु ग्रहण करके उन्हें दूसरे मनुष्य के शरीर में पहुँचा दे। घरेलू मच्छड़ विशेषकर दो जातियों के होते हैं। एक है क्यूलेक्स (Culex), और दूसरी एनॉफेलीज़ (Anopheles)। मांसन और रॉस ने यह सिद्धांत निकाला कि एनॉफेलीज़ ही रोगी के शरीर से रोग के कीटाणु लेकर उन्हें दूसरे मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट कर सकता है, क्यूलेक्स नहीं। कुछ समय के लिये तो यह बात मान ली गई, पर थोड़े दिन बाद विरोधियों ने एक दोष और उपस्थित किया। उन्होंने एनॉफेलीज़-जाति के बहुत-से ऐसे मच्छड़ एकत्र किए, जिनके शरीर के अंदर मलेरिया के कीटाणु मौजूद होने पर भी उन सबके काटने से मलेरिया-ज्वर नहीं हुआ। इस बात से वैज्ञानिक-जगत् में एक बार फिर हलचल मच गई। परंतु थोड़े ही दिनों बाद विद्वानों ने इस समस्या को भी हल कर लिया। बहुत अन्वेषण के बाद यह निश्चय हुआ कि एनॉफेलीज़-जाति की मादा में ही यह गुण या दोष रहता है कि वह रोगी के शरीर से कीटाणु ग्रहण कर दूसरे व्यक्ति के शरीर में पहुँचा दे।

१९०० ई० में लंदन के डॉक्टर सैंबन और डॉक्टर लॉ ने मलेरिया का अनुशीलन आरंभ किया। उन्होंने देखा, यदि मच्छड़ के काटने से ही यह रोग होता है, तो रोगी और नीरोग, दोनों को मच्छड़ के काटने से बचाने पर उनकी रक्षा ज़रूर होगी। इसी विश्वास पर ये दोनों इटालियन विद्वान् साइनर टर्ज़ी के साथ इटली गए। इटली के कंपैनिया-नामक प्रांत में उन दिनों बड़े ज़ोर का मलेरिया था। इन तीनों महाशयों ने दो इटालियन नौकरों की सहायता से वहाँ कुछ झोपड़ियाँ बनवाईं। झोपड़ियाँ ऐसी थीं कि उनमें प्रकाश तथा वायु तो ख़ूब आ-जा सकता था, परंतु हरएक दरवाज़ा और खिड़की तार की बारीक जालियों से ढकी थी। इन लोगों ने यह नियम कर लिया था कि अँधेरा होते ही अपनी-अपनी झोपड़ी में जाकर सावधानी से दरवाज़ा बंद कर लिया जाय, और उजियाला होने तक हरगिज़ न खोला जाय। इस तरह इन लोगों ने मच्छड़ का काटना बिलकुल असंभव कर दिया। रात को विशेष सावधानी इसलिये की गई कि मच्छड़ अँधेरे में ही निकलते हैं।

तीसरी जुलाई से लेकर १९ ऑक्टोबर तक ये लोग वहीं रहे। आसपास सैकड़ों मौतें रोज़ होती थीं, परंतु इन पाँचों आदमियों पर कोई असर नहीं हुआ।

प्रायः इसी समय प्रोफ़ेसर सेली ने भी रेल के कर्मचारियों के ऊपर एक प्रयोग किया। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों के ६२ मनुष्य प्रयोग के लिये चुने। २४ आदमियों की रक्षा ऊपर-लिखे उपाय से की गई, और ३८ अपने भाग्य के भरोसे छोड़ दिए गए। २४ सुरक्षित आदमियों में से २० ज्वर से बिलकुल बचे रहे। शेष चार ज्वर-ग्रस्त हुए। पर जाँच करने पर प्रत्येक की थोड़ी-बहुत असावधानी पाई गई। उधर भाग्य के भरोसे छोड़े हुए ३८ आदमियों में से ३६ आदमी बीमार पड़े।

अब मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़ का कुछ हाल सुनिए।

हम पीछे लिख आए हैं कि घरेलू मच्छड़ दो जातियों में विभक्त हैं—क्यूलेक्स, और एनॉफेलीज़। यों तो मच्छड़ सभी बुरे होते हैं, क्योंकि वे हमारा रक्त पी जाते हैं, पर एनॉफेलीज़-जाति के मच्छड़ मलेरिया-वाहन होने के कारण विशेष भय के पात्र हैं। मच्छड़ जितने ही मारे जा सकें, उतना ही कल्याण है। पर एनॉफेलीज़-जाति के मच्छड़ अगर नष्ट किए जा सकें, तो यमराज का एक बड़ा भारी डिपार्टमेंट (विभाग) ख़ाली हो जाय। ऐसी दशा में एनॉफेलीज़-जाति के मच्छड़ों को पहचान लेना बहुत आवश्यक है। अगर कहीं परीक्षा करने पर एनॉफेलीज़-जाति के मच्छड़ दिखलाई पड़ें, तो मलेरिया के प्रकोप की पूर्व-सूचना मिल सकती है, और उसके रोकने का उपाय भी भरसक किया जा सकता है।
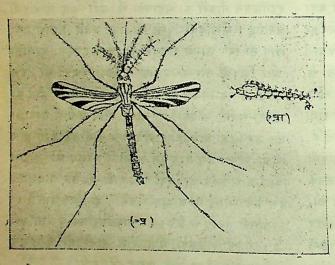
मच्छड़

चित्र 'क'

चित्र 'क' में एक एनॉफेलीज़ मच्छड़ कईगुना बढ़ाकर दिखाया गया है। 'अ' मच्छड़ है, और 'आ' उसका बच्चा। अंडे से पहले इसी तरह का बच्चा निकलता है। फिर वह रूप बदलकर वही मच्छड़ हो जाता है। आश्चर्य की बात तो यही है कि बच्चे और मच्छड़ के रूप में कोई समता नहीं देख पड़ती! सभी कीड़ों-मकोड़ों में यह विचित्रता पाई जाती है।

क्यूलेक्स और एनॉफेलीज़ बहुत-सी बारीकियों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। अतः एक को दूसरे से अलग करना कठिन नहीं है। कुछ स्थूल भेद नीचे दिए जाते हैं—

(१) अंडे। मच्छड़ों के अंडे मोरियों, छोटे-छोटे बरसाती गढ़ों और तालाबों में पाए जाते हैं। क्यूलेक्स अपने अंडे एकसाथ सटाकर रखता है। देखने में उन कुल अंडों का 'बेड़ा' एक नाव-सा मालूम होता है। एनॉफेलीज़ के अंडे इधर-उधर छिटके होते हैं। उनके रूप में भी कुछ भेद होता है। देखिए चित्र 'ख'। अ=क्यूलेक्स के अंडों का बेड़ा। आ=क्यूलेक्स का एक अंडा। इ=एनॉफेलीज़ के अंडे। ई=एनॉफेलीज़ का एक अंडा।
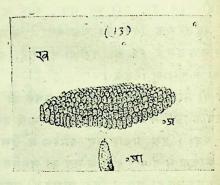
चित्र 'ख'

(२) बच्चे। मच्छड़ के बच्चे का रूप चित्र 'क' के अंतर्गत 'अ' में दिखाया जा चुका है। ये बच्चे पानी में सतह के पास ही तैरते रहते हैं। सतह के पास वे इसलिये रहते हैं कि वहाँ साँस लेने को हवा मिल सकती है। क्यूलेक्स का बच्चा सिर नीचे तथा धड़ ऊपर किए तिरछा पड़ा रहता है। एनॉफेलीज़ का बच्चा पानी की सतह के बराबर आड़ा पड़ा रहता है। देखिए चित्र 'ग'। अ=क्यूलेक्स का बच्चा। आ=एनॉफेलीज़ का बच्चा।
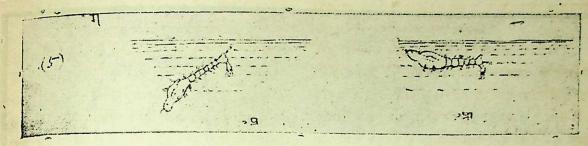
चित्र 'ग'

(३) पंख। मच्छड़ के पंख अगर आतशी शीशे अथवा अणुवीक्षण-यंत्र * से देखे जायँ, तो क्यूलेक्स और एनॉफेलीज़ पहचाने जा सकते हैं। एनॉफेलीज़ के पंख पर काले-काले धब्बे रहते हैं। देखिए चित्र 'घ'। अ=क्यूलेक्स का पंख। आ=एनॉफेलीज़ का पंख।
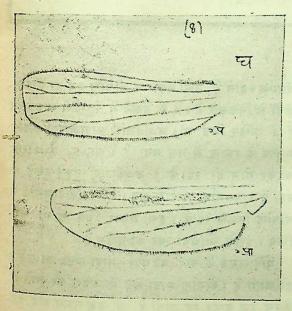
चित्र 'घ'

(४) बैठने का ढंग। दोनों जातियों के बैठने के ढंग में भी बहुत साफ़ भेद है। क्यूलेक्स की कमर झुकी रहती है। बैठने के समय शरीर के दोनों सिरे तो ज़मीन की तरफ़ रहते हैं, और टेढ़ी कमर ऊपर। एनॉफेलीज़ का शरीर सीधा रहता है। जब वह बैठता है, तब मुँह तो ज़मीन की ओर होता है, और पिछला सिरा ऊपर की ओर। देखिए चित्र 'ङ'। अ=क्यूलेक्स। आ=एनॉफेलीज़।
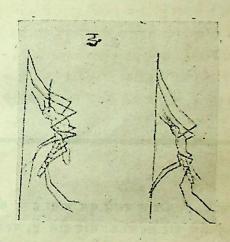
चित्र 'ङ'

(५) मुँह। दोनों जातियों के नर और मादा एक दूसरे से बिलकुल भिन्न मुँह के होते हैं। देखिए चित्र 'ट'। अ=क्यूलेक्स का नर। आ=क्यूलेक्स की मादा। इ=एनॉफेलीज़ का नर। ई=एनॉफेलीज़ की मादा।

(६) इसके सिवा एनॉफेलीज़ का रंग स्लेट-पत्थर का-जैसा होता है, तथा गर्दन के दोनों ओर एक-एक गहरी रेखा होती है। क्यूलेक्स ज़रा सफ़ेदी लिए हुए एक-सा रंग का होता है।

यहाँ पर मलेरिया के कीटाणु का जीवन-वृत्तांत दिए बिना बहुत-से पाठकों की समझ में कुछ भी नहीं आवेगा।

मलेरिया के कीटाणु का जीवन-वृत्तांत

जब किसी व्यक्ति को मलेरिया-वाही एनॉफेलीज़-मच्छड़ काटता है, तो उसकी राल के साथ कीटाणु रक्त में पहुँच जाते हैं। जब किसी कीटाणु की मुठभेड़ किसी रक्ताणु * से

* अणुवीक्षण-यंत्र=Microscope.

* रक्ताणु (Blood Carpuscles) प्राणिजीवन
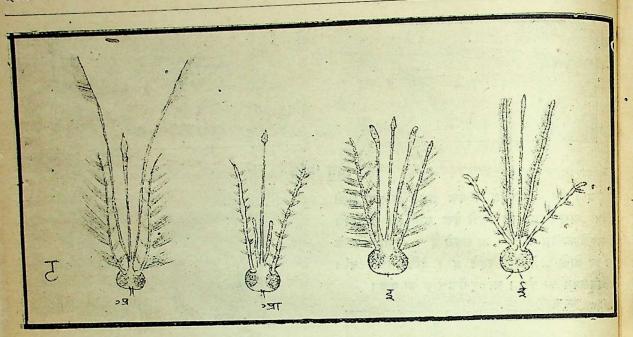
चित्र 'ट'

हो जाती है, तो कीटाणु उसमें घुस जाता है । कीटाणु पहले तो छोटे-छोटे तंतुओं की तरह होते हैं, पर रक्ताणु में पहुँचकर धीरे-धीरे मोटे और गोल होने लगते हैं। यहाँ तक कि कुछ समय के बाद वे सारे रक्ताणु को खाकर उसके बराबर ही हो जाते हैं । पूरे तौर पर बढ़ चुकने के बाद वह कीटाणु धीरे-धीरे छोटे-छोटे खंडों में कटने लगता है । इस तरह प्रत्येक कीटाणु के बहुत-से कीटाणु बन जाते हैं । जब बहुत-से टुकड़े हो जाते हैं, तो भीतरी दबाव के कारण रक्ताणु फट जाता है । बहुत-से कीटाणु-खंड उसमें से निकलकर इधर-उधर रक्त में तैरने लगते हैं। कुछ समय के बाद इन खंडों के दो रूप देख पड़ने लगते हैं। कुछ तो गोल रहकर आकार में थोड़ा बढ़ जाते हैं, और कुछ वैसे ही रहकर पतले-पतले तंतु निकालने लगते हैं। जो गोल रहते हैं, उनको मादा कह सकते हैं, और जो तंतु निकालते हैं, उनको नर। जिस प्रकार मनुष्य के वीर्य में गोल सिर और लंबी दुम के वीर्याणु* होते हैं, उसी प्रकार के वीर्याणु इन नर कीटाणु-खंडों से निकलते हैं। वे ही देखने में तंतु-जैसे जान पड़ते हैं । देखिए चित्र 'च'। अ=तिजारी का मलेरिया-कीटाणु मनुष्य के रक्ताणु में घुस गया है। आ, इ, ई=कीटाणु बढ़कर गोल हो रहा है । उ=कीटाणु टुकड़े-टुकड़े हो रहा है। ऊ=मादा कीटाणु-खंड। ए=नर कीटाणु-खंड से वीर्याणु निकल रहे हैं। इसी प्रकार चित्र छ भी समझिए । इसमें चौथिया-ज्वर का वर्णन है ।

थोड़े समय के बाद नर और मादा-खंडों का संयोग हो जाता है । वीर्याणु मादा-खंड में प्रवेश कर जाते हैं, केवल दुम बाहर रह जाती है, जो कुछ समय बाद कटकर गिर जाती है। देखिए चित्र 'ज'। यहाँ पर मलेरिया के कीटाणु के जीवन-वृत्तांत का पहला भाग समाप्त हो जाता है। अब तक कीटाणु मनुष्य-शरीर के भीतर थे, वे भीतर-ही-भीतर सब आश्चर्यजनक परिवर्तन हो रहे थे; परंतु अब मनुष्य-शरीर इन शत्रुओं को अधिक आश्रय नहीं दे सकता। अगर ये इसी प्रकार रक्त में पड़े रहें, तो कुछ समय बाद स्वयं नष्ट हो जायँ । बहुत-से नष्ट हो भी जाते हैं । पर इस समय अगर रोगी को

के लिये बहुत ही आवश्यक होते हैं । इन पर लाल-लाल हीमोग्लोबिन (Hoemoglobin) नाम का एक पदार्थ होता है । इसमें वायु से ओषजन (Oxygen)-गैस सोख लेने की शक्ति होती है ।

* वीर्याणु=Spermatazoon.
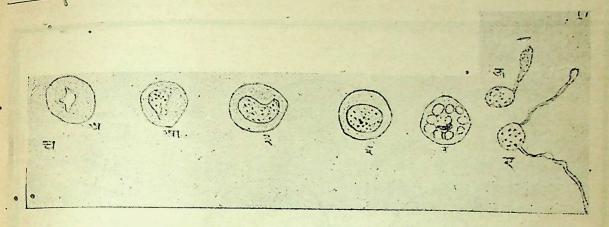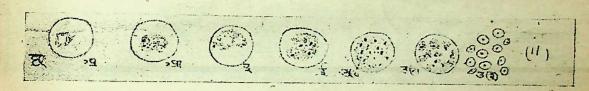
चित्र 'च'

चित्र 'छ'

(चित्र 'च' की तरह इसे भी समझिए। इसमें चौथिया-ज्वर का वर्णन है)
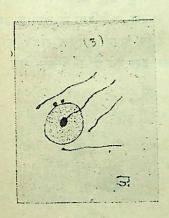
चित्र 'ज'

एनॉफेलीज़-जाति के किसी मादा-मच्छड़ ने काटा, तो ये गोल-गोल दाने, जिनको अँगरेज़ी में ookerite कहते हैं, उसके पेट में जा पहुँचते हैं। अगर क्यूलेक्स-जाति के मच्छड़ के पेट में गए, तो ख़ैरियत है, पेट में ही पच जाते हैं; पर एनॉफेलीज़-मच्छड़ के पेट में इनका पहुँचना भयानक होता है। यह मच्छड़ मलेरिया का बड़ा सहायक होती है। इसके पेट में जाते ही वे गोल दाने, भीतर-ही-भीतर, छोटे-छोटे भागों में बटने लगते हैं; साथ ही मच्छड़ के पेट की दीवार को फाड़कर पेट की दीवार और ऊपरी झिल्ली के बीच में आ जाते हैं। दाने धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते इतने बढ़ जाते हैं कि स्वयं फटकर झिल्ली को भी फाड़ देते हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दाने भीतर-ही-भीतर असंख्य टुकड़ों में बट रहे थे। उनमें से प्रत्येक टुकड़ा मलेरिया का कीटाणु हो जाता है। उक्त असंख्य कीटाणु दाने से निकलकर मच्छड़ के शरीर में इधर-उधर घूमने लगते और मच्छड़ की राल निकालनेवाली ग्रंथियों में जमा हो जाते हैं। इस अवस्था में यदि एनॉफेलीज़-मच्छड़ किसी को काटता है, तो उसकी राल के साथ वे कीटाणु भी मनुष्य के रक्त में पहुँच जाते हैं।

इसके बाद यही मामला फिर दुहराया जाता है। कीटाणु फिर रक्ताणु में घुसकर बढ़ते हैं; फिर नर और मादा के संयोग से दाने बनते हैं; फिर दाने मच्छड़ के पेट में जाते हैं; और फिर वहाँ से असंख्य कीटाणु निकलकर रक्त में प्रवेश करते हैं। देखिए चित्र 'झ'।

चित्र 'झ'
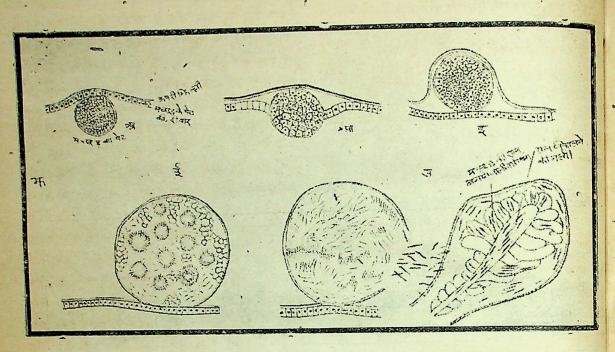
अ=मच्छड़ के पेट में दाना पड़ा हुआ है। आ=पेट की दीवार पार करके दाना बाहर निकल रहा है। इ=पेट की दीवार पार कर दाना झिल्ली के भीतर आ गया। ई=दाना बढ़ रहा है—भीतर असंख्य मलेरिया के कीटाणु भरे हुए हैं। उ=दाना फट गया। कीटाणु निकल-निकलकर मच्छड़ की राल निकालनेवाली ग्रंथियों में प्रवेश कर रहे हैं।

यह सब घटना इतनी अद्भुत और पेचीदा है कि प्राणिशास्त्र से अनभिज्ञ आदमी को सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। यह तो साफ़ ही है कि हज़ारों में से कहीं दो-चार दाने मच्छड़ों के पेट में जाते होंगे; पर कठिनता तो यह है कि उन दो-चार से करोड़ों कीटाणु पैदा हो जाते हैं!

वे यदि मनुष्य के रक्त में रहते, तो उनकी वृद्धि में मनुष्य-रक्त के सफ़ेद रक्ताणुओं के सिवा और कोई अड़चन डालनेवाला न होता। इन सफ़ेद रक्ताणुओं (White blood carpuscles) का यही काम होता है कि वे बाहरी जीवाणुओं को खाकर अपना पेट भरें। यदि मनुष्य-रक्त के ये सफ़ेद कीटाणु सबल हुए, तो मलेरिया के जीवाणु हार जाते हैं। पर बहुधा ऐसा नहीं होता। कारण, मलेरिया के जीवाणु इतनी जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं कि अपनी अधिक संख्या ही से रक्त के जीवाणुओं को हरा देते हैं। देखिए चित्र 'ठ'। अ=रक्त के लाल जीवाणु। आ=रक्त के सफ़ेद जीवाणु। इ=बाहरी कीटाणु (Bacteria)। ई=बाहरी कीटाणुओं को रक्त का सफ़ेद जीवाणु भक्षण कर रहा है।

चित्र 'ठ'

हाँ, कुछ भाग्यवान् ऐसे भी होते हैं, जिनके रक्त के सफ़ेद जीवाणु ऐसे सबल हैं कि मच्छड़ के काटने पर भी उन्हें मलेरिया नहीं होता।

इस कहानी को पाठक कोरी कल्पना न समझें। वर्षों से संसार के भिन्न-भिन्न देशों के विद्वान् सत्य के अन्वेषण में लगे रहे, और सबका निजी मत यही निकला। हममें से प्रत्येक मनुष्य कोशिश करने पर इस कथन की सत्यता की जाँच, अपनी आँखों से देखकर, कर सकता है।

बहुतेरे पाठक मलेरिया की यह रूखी रामकहानी पढ़ते-पढ़ते ऊब गए होंगे। उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि इस विषय को साधारण समझना भूल है। संसार के न-जाने कितने महत्त्व-पूर्ण काम केवल इसी रोग के कारण बिगड़ गए, और बहुत-से बरसों तक असफल होते रहे। पनामा-नहर का एक उदाहरण ही काफ़ी होगा। गत पचास वर्षों में कितनी ही बार यह नहर खोदने का प्रयत्न किया गया; पर अधिकतर मच्छड़ों ही के कारण बार-बार काम बंद कर देना पड़ा। अंत को जब अमेरिकन-सरकार ने यह काम करने का बीड़ा उठाया, तब पहला आघात मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़ों पर ही किया गया। जब तक मच्छड़ पूरी तौर से नष्ट न कर दिए गए, तब तक कुलियों का वहाँ काम करके जीते-जागते लौटना बड़ा सौभाग्य समझा जाता था। परंतु मच्छड़-विध्वंस के बाद बड़ी तेज़ी से नहर का काम चल निकला, और आज उसका उपयोगी परिणाम हमारे सामने है।

दमन के उपाय

हमारे देश में मलेरिया को रोकने के उपाय बतलाने की बड़ी ज़रूरत है। कुछ उपाय संक्षेप में नीचे लिखे जाते हैं। उपाय दो प्रकार के हो सकते हैं। एक तो वे, जिन्हें यदि व्यक्तिगत रूप से किया जाय, तो बचाव हो सकता है। दूसरे वे, जिन्हें सरकार, रजवाड़े तथा ज़मींदार, प्रजा के हित के लिये, काम में ला सकते हैं।

(१) पहले प्रकार के उपायों में सबसे मोटी बात तो यह है कि मलेरिया-ग्रस्त स्थानों से ही अपने को बचाए रखना चाहिए। जिस स्थान में मलेरिया-ज्वर का प्रकोप हो, वहाँ से हट जाना ही रक्षा का सबसे निश्चित उपाय है। पर आम तौर से लोगों की धारणा यह है कि मलेरिया एक बहुत साधारण बीमारी है। अधिकतर प्लेग और हैज़े को छोड़ और किसी बीमारी में लोग देश-त्याग नहीं पसंद करते।'

(२) बंद, अँधेरे और सीलनवाले मकान या कमरे ही मच्छड़ों के प्रिय क्रीड़ा-क्षेत्र हैं। मलेरिया-ग्रस्त मच्छड़ों का होना ऐसे स्थानों में बहुत संभव है। जहाँ तक हो सके, ऐसे मकानों, उनके परोस तथा घर में ऐसे स्थानों से परहेज़ रखना चाहिए। यों तो बंद तथा नम जगहें हर हालत में स्वास्थ्य के लिये बुरी होती हैं, पर मलेरिया की तो उन्हें खान ही समझना चाहिए। बहुधा ऐसा होता है कि घनी बस्तीवाले शहरों में निर्धनों को मजबूरन् ऐसे ही स्थानों में रहना पड़ता है। ऐसी दशा में, कमरे खूब सूखे और साफ़ रखने चाहिए। दूसरे-तीसरे दिन गंधक अथवा और किसी चीज़ का तीव्र धुआँ कर देने से मच्छड़ तथा अन्य रोगों के कीटाणु नष्ट हो जायँगे। दीवारों पर फ़िनाइल छिड़कना भी लाभप्रद है। लोगों का विश्वास है कि मलेरिया के दिनों में उबाला हुआ पानी पीना बहुत ज़रूरी है। पर पाठक स्वयं देखेंगे कि सीधे रक्त में जाने ही से मलेरिया के कीटाणु हानि पहुँचा सकते हैं—पेट में नहीं। सो जहाँ तक मलेरिया से काम है, वहाँ तक गरम पानी बहुत आवश्यक नहीं है। यह नवीन मत है।

(३) ऊपर जो कुछ लिखा जा चुका, उससे यह प्रकट है कि ये मच्छड़ ही सारे अनर्थ की जड़ हैं। अगर किसी तरह मच्छड़ों का संहार किया जा सके, तो मलेरिया की जड़ ही कट जाय। पीछे हम धुआँ, गंधक, फ़िनाइल इत्यादि मच्छड़ों के मारने की कई तरकीबें लिख आए हैं। प्रयत्न यह करना चाहिए कि उनके अंडे तथा बच्चे ही नष्ट कर दिए जायँ। साधारणतः घरों में मोरियाँ गंदी रहती हैं। परीक्षा करने पर उनमें मच्छड़ों के बच्चे बहुत दिखलाई देंगे। अतः मोरियों को ऐसा बनाना चाहिए कि उनमें पानी एक क्षण भी न ठहर सके। इसके अलावा कभी-कभी फ़िनाइल डाल देने से बच्चे ज़िंदा नहीं रह सकते। घर में या परोस में अगर ऐसे गड्ढे हों, जिनमें बरसाती पानी जमा हो जाता हो, तो उन्हें पटवा देना चाहिए। अगर ऐसा संभव न हो,

तो उनमें थोड़ा-सा मिट्टी का तेल डाल देने से भी बच्चे मर जायँगे। कारण, मिट्टी का तेल पानी से हलका होता है, और उसे पानी में छोड़ने से तेल की एक पतली तह पानी को ढक लेती है। बच्चों को इस प्रकार साँस लेने के लिये हवा नहीं मिलती, और वे मर जाते हैं।

(४) ऊपर जो उपाय लिखे गए हैं, उनका उद्देश्य मलेरिया को पैदा होने का अवसर ही न देना है। यदि यह संभव न हो सका, यदि जीवन-संग्राम के इस पहले मोर्चे में हमारी हार रही, तो ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मच्छड़ हमें काटने ही न पावें।

इस काम के लिये सबसे अचूक उपाय मसहरी है। मसहरी ऐसी होनी चाहिए, जिसके छिद्रों में से वायु तो आ-जा सके, पर मच्छड़ का प्रवेश न हो सके। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि सोते समय कोई परदा उलट न जाय।

(५) इसके सिवा यदि मकान के दरवाज़ों और खिड़कियों पर पतले तार की जाली लगवा दी जाय, तो मच्छड़ों के आने की संभावना और भी कम हो जाय। यह साधारण स्थिति के लोगों के लिये ज़रा कठिन है। अगर मकान-भर में नहीं, सोने के कमरे में ही लगवा दी जाय, तो भी मलेरिया के नाश में बड़ी सहायता मिल सकती है।

(६) यदि किसी कारण से ऊपर के किसी भी नियम का पालन न हो सके, तो शरीर को अच्छी तरह ढककर सोना तो हरएक स्थिति के आदमी के लिये सहज है। हाँ, गरमी में ऐसा करना प्रायः असंभव हो जाता है। कहीं-कहीं लोग गरमी और मच्छड़ों से व्याकुल होकर मिट्टी के तेल की या और किसी तीव्र गंधवाली चीज़ की मालिश देह में करके सोते हैं।

(७) डॉक्टरों की राय में मलेरिया-ज्वर के नाश के लिये कुनैन से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। कुनैन एक प्रकार का क्षार-विष है। इसकी जन्मभूमि दाक्षिणी अमेरिका है। सन् १८२० ईसवी में पेलेटियर और कैवेंटाऊ नाम के दो स्पेनी मनुष्यों ने ब्रेज़िलवासियों से उसका व्यवहार सीखा। कुनैन सिनकोना-नामक वृक्ष की छाल से बनाई जाती है। सिनकोना तीन तरह का होता है। उनमें पीली छाल-वाला वृक्ष सबसे अच्छा समझा जाता है। चित्र 'ड' में सिनकोना की पत्ती, फूल, फल, तथा बीज दिखलाए गए हैं।

कुनैन एक प्रकार का तीव्र विष है, जो खाने के बाद रक्त में मिलकर मलेरिया के जीवाणुओं को मार डालता है।

भारत में सर क्लेमेंट्स् मार्खम नाम के एक महाशय १८६१ ई० में पहले-पहल कुनैन लाए थे। सरकार की ओर से नीलगिरि, मैसूर, सिकिम और दार्जिलिंग में इसकी खेती होती है। वहाँ की कुनैन केवल भारत और लंका में बेची जाती है। सर्व-साधारण की सुविधा के लिये डाकख़ानों में, सस्ते मूल्य में, शुद्ध कुनैन मिल सकती है।

कुनैन के यथाविधि सेवन से मलेरिया-ज्वर रोका तथा अच्छा किया जा सकता है। इसके सिवा आयुर्वेद, यूनानी, तिब्बी तथा होमियोपैथिक चिकित्सा-शास्त्रों में भी बहुत-सी अमोघ दवाएँ हैं। उनका संग्रह करके प्रत्येक गृहस्थ को अपने पास रख छोड़ना चाहिए।

इसके सिवा बहुत-से उपाय ऐसे हैं, जिन्हें गवर्नमेंट, रजवाड़े तथा ज़मींदार जनता के हितार्थ कर सकते हैं। यथा—

(१) सबसे ज़रूरी बात तो यह है कि नए शहर और गाँव बसाते समय स्वास्थ्यप्रद स्थान का बहुत ख़याल रखना चाहिए। बस्ती ऐसे किसी ऊँचे स्थान पर बसानी चाहिए, जिसमें बरसाती पानी न जमा हो सके। बस्ती घनी होने से एक तो सफ़ाई रखना असंभव हो जाता है, दूसरे सब जगह धूप और प्रकाश नहीं पहुँच सकता।

(२) पुरानी बस्तियों का सुधार करना चाहिए। परोस के गंदे तालाब और बरसाती गढ़े पटवा देने चाहिए।

(३) जिस स्थान में जंगल बहुत होता है, वहाँ एक तो वृष्टि अधिक होती है, दूसरे वृक्षों और ज़मीन पर पड़ी हुई लताओं और पत्तियों के कारण पानी का बहाव रुक रहता है। जिन स्थानों में जंगल के कारण नमी अधिक रहती है, वहाँ उसे यथाशक्ति कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुत-से विद्वानों का मत है
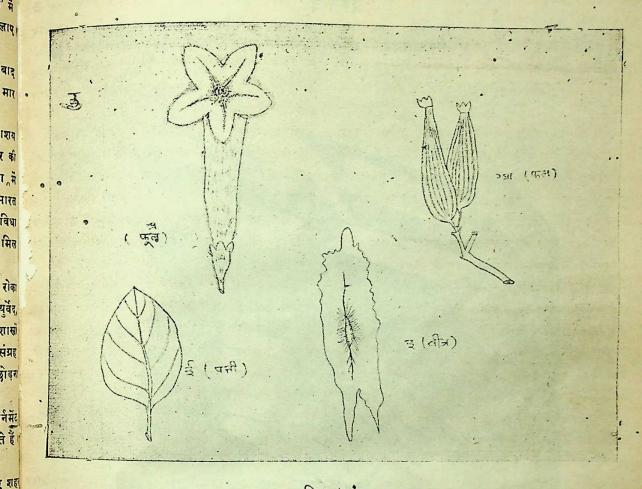
चित्र 'ड'

यूकेलिप्टस (Eucalyptus) के वृक्षों में नमी सोखने की बड़ी शक्ति होती है । बहुत-से स्थानों में केवल यूकेलिप्टस के वृक्ष लगाने ही से नमी में कमी हुई है ।

(४) दलदल मलेरिया का घर है । उसे तो अवश्य पटवा देना चाहिए ।

(५) यद्यपि सरकार की ओर से चिकित्सा का प्रबंध किया गया है, तो भी उसमें बहुत सुधार और वृद्धि की जगह है ।

पाठक इन उपायों को केवल काग़ज़ी बातें न समझें । इन्हीं उपायों का आश्रय लेने से इँगलैंड, फ़्रांस, बेलजियम, पश्चिमी प्रशिया, नार्वे-स्वीडन, पूर्वी संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका इत्यादि देश मलेरिया से एकदम मुक्त हो गए हैं । जहाँ पहले प्रतिवर्ष लाखों मौतें मलेरिया से हुआ करती थीं, वहाँ अब जूड़ी कैसी होती है, यह लोगों को स्मरण ही नहीं है ।

हमारे यहाँ सैनिटेशन(स्वास्थ्य-रक्षा)-विभाग वर्षों से अपरिमित धन पानी की तरह बहा रहा है । पर अभी तक देश का कोई उपकार उसके हाथों नहीं हुआ । हमारे नवयुवक बंधुओं के लिये यह रोग एक अच्छा कार्य-क्षेत्र दिखला रहा है । लोगों के भ्रांत विचार दूर कर और उन्हें स्वास्थ्य के आवश्यक नियम बताकर हम देश की सच्ची सेवा करने में समर्थ हो सकते हैं ।

नवलविहारी मिश्र

"प्रस्ताव"

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो]

परम गँभीर निरंतर नैनन मूँदि, पग पसारि दोउ हरबर धरती खूँदि।
प्रस्तावन को पोथा हाथ दबाइ, नेता नरम-धुरंधर बैठे आइ।
प्रस्तावन के गुनगन बहु समुझाइ, भए मगन उनहीं में सहज सुभाइ।

कालिंगड़ा—तीन ताल

स्वरकार— "निषाद"] [शब्दकार—गोविंदवल्लभ पंत

गीत

आज नवीन वसंत-उषा में मेरी भग्न कुटी के द्वार,
कौन नवीन अतिथि आया है लेकर मृदु नूपुर-झंकार?

१. मेरी ही इस दीन दशा से करने को मेरा उपहास,
कौन कुंज में गूँथ रहा है मेरी अश्रु-राशि से हार?

२. अब कोयल के स्वर से मुझको क्यों होता है इतना राग—
भूल गया हूँ जब मैं गाना, टूट गए वीणा के तार?

३. कैसे धैर्य धरूँ?—इस मुख में लज्जा, लट-घूँघट का भार,
उधर आम में बौर, बौर में मधु, मधु में मधुकर-गुंजार।

४. आहत स्मृति के निभृत निलय में है मम भग्न वासना सुप्त,
उसको छेड़ जगाने को यह किसने किया आज श्रृंगार?

५. आए ही हो, तो आओ; मैं छल से, बल से, कौशल से—
हरकर अखिल विश्व-श्री इन श्रीचरणों में दूँगा उपहार।

स्थायी

३				×				२				०			
प	प	ध॒	म	ध॒	—	प	प	ग	म	ग	ग	रे॒	—	सा	—
आ	—	ज	न	वी	—	न	व	सं	—	त	उ	षा	—	में	—
सा	ध॒	प	ध॒	म	प	ग	म	ध॒	प	म	ग	रे॒	—	—	सा
मे	—	री	—	भ	—	ग्न	कु	टी	—	के	—	द्वा	—	—	र
प	प	ध॒	म	ध॒	—	प	प	ग	म	ग	ग	रे॒	—	सा	—
कौ	—	न	न	वी	—	न	अ	ति	थि	आ	—	या	—	है	—
सा	ध॒	प	ध॒	म	प	ग	म	ध॒	प	म	ग	रे॒	—	—	सा
ले	—	क	र	मृ	दु	नू	—	पु	र	झं	—	का	—	—	र

अंतरा

	३				×				२				०			
१	प	—	प	ध	ध	ध	नी	नी	सां	रें	सां	रें	नी	नी	सां	—
	मे	—	री	—	ही	—	इ	स	दी	—	न	द	शा	—	से	—
	प	ध	सां	नी	ध	प	ध	म	प	म	ग	ग	रे	—	—	सा
	क	र	ने	—	को	—	मे	—	रा	—	उ	प	हा	—	—	स
	नि	सा	ग	म	प	ध	नि	सां	रें	सां	नि	ध	प	म	ग	रे
	कौ	—	न	कुं	—	ज	मैं	—	गूँ	—	थ	र	हा	—	है	—
	सा	ध	प	ध	म	प	ग	म	ध	प	म	ग	रे	—	—	सा
	मे	—	री	—	अ	—	श्रु	रा	—	शि	से	—	हा	—	—	र

नोट—शेष अंतरे भी इसी प्रकार बजेंगे।

---

१. चक्रवाक

स, चक्रवाक, गरुड़ इत्यादि अनेक पक्षियों के नाम तो हम बहुत दिनों से सुनते चले आते हैं, परंतु इनको आँखों से देखने अथवा इनके विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करने की ज़रूरत नहीं समझते। हमारी धारणा है कि जब पुराने ग्रंथों में इन पक्षियों के नाम आए हैं, तब वे कहीं-न-कहीं होंगे ही! और, यदि न भी हुए, तो उससे हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। ऐसी ही धारणा हमारे हृदय में जगह कर गई है, और उसी ने विज्ञान में हमारी उन्नति का मार्ग रोक रक्खा है।

परंतु पाश्चात्य विद्वान् ऐसा नहीं सोचते। उन्होंने अन्य विषयों की तरह पक्षिशास्त्र (Ornithology) का भी खूब अध्ययन किया है। जहाँ तक बन पड़ा, उन्होंने प्रत्येक देश में बसनेवाले प्रत्येक जाति के पक्षी का पूरा हाल जानने का प्रयत्न किया है। भारतीय पशु-पक्षियों के विषय में भी उन लोगों ने यथासाध्य अनुसंधान किया है, और हमारा इस विषय का सब ज्ञान उन्हीं के अनुसंधानों पर निर्भर है। उदाहरण के लिये चक्रवाक ही को ले लीजिए। अँगरेज़ी में चक्रवाक को Ruddy goose, Ruddy shelldrake, Brahmny duck इत्यादि कई नाम हैं। वैज्ञानिक भाषा में उसे Anas casarca अथवा Casarca rutalia कहते हैं। पहले जब Linneus-नामक प्राणिशास्त्रवेत्ता ने पक्षियों का विभाग किया, तब उसे Anas-नामक जाति (genus) में रक्खा था। परंतु पीछे के वैज्ञानिकों ने Anas-जाति को कई खंडों में विभक्त कर डाला, और चक्रवाक को Casarca-शीर्षक जाति में रक्खा। तभी से इसका नाम भी Anas casarca के स्थान पर Casarca rutalia हो गया *।

Anas casarca और Casarca rutalia चक्रवाक के ही नाम हैं। इसमें संदेह की जगह नहीं है। पाठकों में से जो महाशय इस विषय की विशेष छानबीन करना चाहें, वे निम्न-लिखित ग्रंथ देखें—

(१) मॉनियर विलियम्स एम्० ए०-कृत Sanskrit English Dictionary †

(२) सर्जन जनरल बालफूर-कृत Cyclopaedia of India ‡

---

* देखिए Penny Cyclopaedia

† *Chakravaka*—As M. the ruddy goose, Commonly called the Brahmny Duck. Anas Casarca. [Edition 1872. pp. 311].

‡ *Dwand Chara*—Ruddy goose. Anas Casarca [pp. 442].

(३) वामन-शिवराम आप्टे-कृत English Sanskrit Dictionary.

प्रांतीय अजायबघर, लखनऊ (Provincial museum, Lucknow) में जो चकवा और चकवी नाम के पक्षी रक्खे हुए हैं, उन पर भी Casarca rutalia ही नाम पड़ा हुआ है * ।

चक्रवाक, मुरग़ाबी, हंस, फ़्लैमिंगो इत्यादि सब एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते वर्गों के पक्षी हैं। पक्षि-शास्त्रियों ने पक्षियों के जो बड़े-बड़े विभाग (Orders) बनाए हैं, उनमें से एक का नाम Natatores है। यह सात वर्गों (Families) में विभक्त किया गया है। उन वर्गों तथा प्रत्येक वर्गवाले सुपरिचित पक्षियों के नाम नीचे दिए जाते हैं—

Orders Natatores.—

Family (वर्ग)	
Phoenicopterus ...	फ़्लैमिंगो इत्यादि।
,, Cygnidæ ...	हंस इत्यादि।
,, Anseridae ...	राजहंस आदि। (राजहंस=Anser Indicus)
,, Anatidae ...	मुरग़ाबी, पनडुब्बे, चकवा इत्यादि। (चकवा Casarca rutalia.)

Chakravaka—Ruddy goose. The birds are supposed to be separated through the night (Casarca rutalia) [pp. 640].

A genus of swimming birds of India, Casarca rutalia the Brahmni goose is met with above Sukkur. The male is a fine looking bird and measures about 29 inches. It is shy and wary [pp.594].

* अजायबघर में जो मृत पक्षी रक्खे हुए हैं, वे म्यूज़ियम-कलेक्टर मिस्टर टी० ई० डी० इन्स महाशय की कृपा से अजायबघर के अधिकारियों को प्राप्त हुए थे। नर १०वीं फ़रवरी १८८८ ई० को गढ़वाल में तथा मादा ७वीं मार्च को खेरी में बंदूक से मारी गई थी।

इन चार के अलावा तीन और वर्ग (Mergidae, Podicepidae तथा Procillaridae) हैं। पाठकों में से जिन्हें इस विषय का विशेष अध्ययन करना हो, वे Indian ornithology पर कोई भी प्रामाणिक पुस्तक पढ़ें।

चक्रवाक एक बड़ा पक्षी है। यह आकार में बत्तक से कुछ छोटा होता है; पर इसकी बनावट उससे मिलती-जुलती है। साधारणतः नर चकवे की लंबाई २४½ से २७ इंच तक, डैने की लंबाई १४½ से १५½ इंच तक, दुम ५½ से ६ इंच तक और चोंच की लंबाई २ इंच होती है। मादा भी प्रायः इसी आकार की होती है। पर कभी-कभी छोटी होती है।

चकवे का सिर पीलापन लिए हुए कत्थई रंग का होता है। यहाँ से बदलते-बदलते पीठ और छाती पर का रंग गहरा नारंगी हो जाता है। दुम कालापन लिए हुए हलके हरे रंग की होती है। शरीर का बाक़ी भाग सुपारी के रंग का होता है। चोंच काली और बत्तक की चोंच से कुछ पतली होती है। पैर भी काले होते हैं, और बत्तक के पैर के समान उँगलियाँ जुड़ी होती हैं। बहुधा नर पक्षी के गले में काले रंग का एक पट्टा-सा बना होता है। परंतु यह केवल जोड़ा खाने के मौसम में दिखलाई पड़ता है। किसी-किसी के नहीं भी होता है।

चकवी नर से कुछ हलके रंग की होती है। उसके उपर्युक्त काला पट्टा नहीं होता।

चकवा भारत के प्रायः सभी नगरों में पाया जाता है; परंतु शिकारी लेखकों ने अधिकतर इसके होने का वर्णन सिंध, फ़ारस, बिलोचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, पूर्वी तुर्किस्तान, पंजाब, संयुक्त-प्रांत, नेपाल, बंगाल, राजपूताना, मध्य-भारत, कच्छ, गुजरात तथा दक्षिण-भारत के कुछ भागों में किया है। सिंध-प्रांत की झीलों में तथा सिंधु-नदी के किनारे यह पक्षी बहुत पाया जाता है। संयुक्त-प्रांत में भी इसकी कमी नहीं है। जिस समय गेहूँ जमने पर होता है, उस समय चकवों के बड़े-बड़े झुंड सूर्योदय और सूर्यास्त के समय खेतों में पहुँच जाते और फ़सल को बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

मिस्टर रीड एक सुप्रसिद्ध शिकारी थे। वह अपनी Game birds नामक पुस्तक में चक्रवाक का हाल यों लिखते हैं—

"It will not only keep a sharp look-out on its own account but will fly along the jheel side before the gunner, uttering its warning note and put every bird qvi vive."

अर्थात् "वह (चकवा) अपने ही बचाव के बारे में विशेष सजग नहीं रहता, बल्कि शिकारी के सामने झील की ओर उड़कर दूसरों को सचेत करने के लिये शब्द करता है, और अन्य पक्षी भी उसका साथ देते हैं।"

चक्रवाक का निवास-स्थान भारत में नहीं है। यह तथा इस जाति के अधिकांश पक्षी उत्तर-दिशा से शरद्-ऋतु में यहाँ आते और वसंत के आरंभ में फिर अपने देश को वापस जाते हैं।

उत्तर-दिशा से शरद्-ऋतु में भारत आनेवाले पक्षियों के विषय में सर्जन जनरल बालफ़ूर अपनी Encyclopædia of India पुस्तक (भाग १, पृ० ३८१) में यों लिखते हैं—

"...The grallatorial and natatorial birds begin to arrive in Nepal from the North towards the close of August and continue arriving till the middle of September. The first to appear are the Common snipe and jack-snipe and rhynchœa, next the scolopaceous waders (except wood-cock), next the birds of heron and stork and crane families, then the natatores and lastly the wood cocks which do not reach Nepal till November. The time of reappearance of these birds from the South is the beginning of March and they go on arriving till the middle of May. None of the natatores stay in Nepal in spring except the teal × × ×"

इससे स्पष्ट है कि बाहर से आनेवाले पक्षियों में 'चाहा' तो सबसे पहले आता है, और राजहंस, चकवा, मुरग़ाबी इत्यादि उसके बाद आते हैं। उत्तर-दिशा से आते हुए ये पक्षी ऑगस्ट-मास के अंत में नेपाल से गुज़रते हैं, और मार्च के आरंभ में फिर दक्षिण से उत्तर की ओर जाते दिखाई पड़ते हैं। मई के मध्य तक इनका लौटना जारी रहता है। नैटैटोरीज़-विभाग का कोई भी पक्षी (पनडुब्बे को छोड़कर) वसंत-ऋतु में नेपाल में नहीं ठहरता।

यही महाशय पृ० ३६६ पर फिर लिखते हैं—

"The migratory birds of India are mostly residents of colder northern countries. They come to India in September and October and leave it again in March, April and May."

अर्थात् "भारत के अधिकांश पर्यटनशील पक्षी उत्तर के ठंडे देशों में रहते हैं। वे सितंबर और ऑक्टोबर में भारत आते और मार्च, एप्रिल तथा मई में यहाँ से चले जाते हैं।"

ख़ास चक्रवाक के विषय में कराची की म्युनिसिपल लाइब्रेरी तथा अजायबघर के क्यूरेटर, विक्टोरियन नेचुरल हिस्ट्री इंस्टीट्यूट के प्रबंध तथा नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी और एंथ्रोपॉलोजिकल सोसाइटी (बंबई) के सदस्य जेम्स ए० मरे एफ़० एस्० ए० एल्० यों लिखते हैं—

" The ruddy shelldrake is a winter visitant in India. In Sind it is found on all the large lakes and brooks and along the Indus river in large number and on the Munchur especially; like geese large parties resort to the sprouting wheat in the early morning and at night fall and do munch damage.''

अर्थात् "चक्रवाक जाड़े की ऋतु में भारत में आनेवाला पक्षी है। सिंध-प्रदेश में यह प्रत्येक झील, नाले, विशेषकर मुंचर पर और सिंधु-नदी के किनारे पाया जाता है। हंसों और मुरग़ाबियों की तरह पौ-फटे या सूर्यास्त के समय इसके बड़े-बड़े झुंड उगते हुए गेहूँ के खेतों का आश्रय लेते और उन्हें बड़ी हानि पहुँचाते हैं।"

सारांश यह कि चक्रवाक हिमालय की उत्तर-दिशा में स्थित अपनी जन्म-भूमि से सितंबर-मास के लगभग भारत में आता है। इन्हीं दिनों यहाँ के शस्य-श्यामल मैदानों में इसके लिये पर्याप्त भोजन-सामग्री मिलती है। ऑक्टोबर, नवंबर, दिसंबर और जनवरी—ये चार मास इसे प्रवास में लग जाते हैं। शिकारियों को यह बात बहुत अच्छी तरह मालूम है, और वे इन्हीं दिनों इस तथा इस जाति के अन्य पक्षियों का जी-भर शिकार खेलते हैं। इन महीनों में जिधर देखिए, इस जाति के झुंड-के-झुंड पक्षी विचित्र प्रकार का शब्द करते हुए जाते दिखाई पड़ते हैं।

फ़रवरी-मास के लगभग इन्हें अपनी जन्म-भूमि फिर याद आती है। यह इनका जोड़ा खाने का समय है।

निश्चित समय पर ये झुंड-के-झुंड उत्तर-दिशा की ओर जाते दिखाई पड़ते हैं, और फ़रवरी तथा मार्च में इनका शिकार करने के लिये शिकारियों को नेपाल तथा तराई में जाना पड़ता है। हिमालय के उत्तरी तथा दक्षिणी ढाल तथा और भी उत्तर के प्रदेश इनके अंडे देने के स्थान हैं। इन स्थानों के निवासियों की तो रोज़ी इन्हीं के अंडों पर निर्भर है। ये लोग ऐसे स्थानों का निश्चित पता रखते हैं, और समय पर जाकर अंडे जमा कर लाते हैं।

चक्रवाक के विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसका जोड़ा रात को बिछड़ जाता है, और दिन को फिर एकत्र हो जाता है। बहुत खोज करने पर भी इस जनश्रुति का उद्गम हम न जान सके। जान पड़ता है, इस कथन में सत्य का अंश बहुत कम अथवा नहीं ही है। कई अनुभवी चिड़ीमारों तथा शिकारियों से भी हमने इस विषय में पूछा। सबने एक स्वर से इस लेख की उक्त बातों का समर्थन किया।

इस विषय में हम अभी कुछ और प्रसिद्ध ग्रंथों का अध्ययन कर रहे हैं। शायद आगे बहुत-सी नई बातें मालूम हों। आश्चर्य नहीं कि उन सबको एकत्र लिखने में एक छोटी-मोटी पुस्तक ही बन जाय।

नवलविहारी मिश्र

× × ×

२. प्रतीक्षा-पथ

वही प्रकृति, सौंदर्य वही है,
वही वाटिका कलवाली;
वही सूर्य है, तेज वही है,
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !
वही पुष्प हैं, गंध वही है;
वही भ्रमर, उपवन, माली;
मधुकर का गुंजार वही है;
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !
पंचम स्वर में कूक रही है,
कुहू-कुहू कोयल काली;
हरा-भरा उद्यान वही है;
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !
वही चंद्र है, वही कला है,
वही यामिनी छविवाली,
चितवन और चकोर वही है,
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !
वही क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ वही है,
रसा वही है रसवाली,
अतुल अखिल ब्रह्मांड वही है,
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !
वही उदय है, अस्त वही है,
वही सृष्टि सुख-दुखशाली,
नश्वर जग का सार वही है,
किंतु प्रतीक्षा-पथ ख़ाली !

कांतिवल्लभ पंत

× × ×

३. साहित्यभूषणजी की भूल

फाल्गुन-मास की माधुरी में श्रीयुक्त लक्ष्मणसिंहजी 'साहित्यभूषण' ने 'वर्षा और चक्रवाक' नाम का एक छोटा लेख प्रकाशित किया है। जिसमें आपने वर्षा में चक्रवाकों के चले जाने में और वर्षा व्यतीत होने पर शरद्-ऋतु में हंसों के साथ चक्रवाकों के वापस आ जाने में वाल्मीकीय रामायण (किष्किंधा-कांड) के दो श्लोक भावार्थ-सहित, प्रबल प्रमाण रूप से, इस तरह पेश किए हैं कि—

"सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः,
प्रियान्विताः सम्प्रति चक्रवाकाः।"

[इस समय (वर्षा-ऋतु में) अपनी प्रियाओं (चक्रवाकियों) के सहित मानस-सरोवर-वास के लोभी चक्रवाक चले गए हैं।]

"अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः स्मरप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः ;
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः।"

[इस समय शरद्-ऋतु में मानस-सरोवर से आकर महानदियों के किनारे उपस्थित हुए, कामकेलि-प्रिय, पद्म-पराग से लथपथ, सुंदर और विशाल पक्षवाले चक्रवाकों के साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं।]

पर मेरी तुच्छ सम्मति में यहाँ पर साहित्यभूषणजी से, अर्थ समझने में, भूल हो गई है। उपर्युक्त पद्यों का अर्थ यों है कि * इस समय (वर्षा-ऋतु में) मानस-वास के लोभी अर्थात् हंस चल दिए,

* मानसवासलुब्धाः हंसाः सम्प्रस्थिताः, कामोद्रेकेण चक्रवाकाः प्रियासमन्विताः भवन्ति । (श्रीगोविंदराज-कृत रामायण-भूषण संस्कृत-टीका)

और चक्रवाक अपनी प्रियाओं से समन्वित हो रहे हैं। 'सम्प्रस्थिताः' इस पद्य के पूर्वार्ध में दो वाक्य हैं। 'मानसवासलुब्धाः' हंसों के लिये आया है, 'चक्रवाकाः' का विशेषण नहीं है। द्वितीय वाक्य में भवन्ति क्रिया का अध्याहार होता है। द्वितीय श्लोक का पाठ हमें इस तरह रामायण में मिला।

"अभ्यागतैश्चारुविशालपक्षैः सरःप्रियैः पद्मरजोऽवकीर्णैः ;
महानदीनां पुलिनोपयातैः क्रीडन्ति हंसाः सह चक्रवाकैः *।"

[सरोवर-प्रिय, पद्मपराग से लपटे हुए, महानदियों के किनारे उपस्थित, सुंदर विशाल पक्षवाले, सम्मुख-प्राप्त चक्रवाक-मिथुनों के साथ हंसों के जोड़े खेल रहे हैं।]

रामाभिरामीय नोट के आधार पर 'अभ्यागतैः' का अर्थ 'मानस से आए हुए' युक्ति-युक्त नहीं प्रतीत होता; क्योंकि वास्तव में मूल-ग्रंथ से मानस का कुछ भी संबंध नहीं है। साहित्यभूषणजी का 'सम्प्रस्थिता मानसवासलुब्धाः' का अर्थ इसलिये ठीक नहीं है कि वाल्मीकिजी स्वयं किष्किधा-कांड के २८वें सर्ग के ३६वें श्लोक में पुनः चक्रवाकों का वर्णन करते हैं—

"नद्यः समुद्वाहितचक्रवाकाः तटानि शीर्णान्यपवाहयित्वा ;
दृप्तानवप्राभृतपूर्णभोगा द्रुतं स्वभर्तारमुपोपयान्ति।"

[नवीन फलादि उपहारों से पूर्ण ऐश्वर्यवाली, स्तन-रूप चक्रवाकों को उठाए हुए नदियाँ टूटे-फूटे किनारों को हटाकर अपने पति समुद्र के पास जा रही हैं।]

चक्रवाक यदि मानस-सरोवर को उड़ गए, तो नदियाँ स्तन-स्थानीय चक्रवाकों को कैसे समुद्वाहित कर रही हैं? साहित्यभूषणजी के ये प्रबल प्रमाण तो वर्षा में चक्रवाकों की स्थिति के साधक ही हैं, न कि बाधक। संस्कृत-साहित्य के कवि-समय में वर्षा में हंसों के ही मानस जाने का वर्णन है, चक्रवाकों का नहीं। हिंदी-शब्द-सागर में चक्रवाकों के हंस-जातीय होने का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं दिया है। श्रीयुक्त रामानुजार्य † ने तो 'अभ्यागतैः' इत्यादि श्लोक की व्याख्या में चक्रवाकों को विरोधी जाति का लिखा है। अतः कविवर विहारी के—

"पावस घन अँधियार महँ रह्यो भेद नहिं आन ;
राति-द्यौस जान्यो परत लखि चकई चकवान।"

इस दोहे में ख्यातिविरुद्धता दोष नहीं है। तब प्रकृति-निरीक्षण में ग़लती कैसे मानी जा सकती है, जब पर्वत और जंगलों के नित्य निवासी प्रकृति-पर्यवेक्षक स्वयं आदि-कवि ही वर्षा में चक्रवाकों का वर्णन करते हैं।

रामसेवक पांडेय

× × ×

४. अनुनय

छिपे हो क्यों, आओ अब नाथ!
आँख-मिचौनी तुम्हें खेलना था मेरे ही साथ?
इस कुटिया में एकाकी मैं खोले नयन-कपाट ;
भला, बताओ, कब तक देखूँ, नाथ, तुम्हारी बाट?
जीवन-दीप बुझा चहता है, बीती आधी रात ;
इधर 'स्नेह' अधिकांश जल चुका, उधर बह रही बात।
कुछ भी खटक हुई बाहर, तो उत्सुक होते कान ;
हृदय शांत करने को तत्क्षण करतल जमते आन।
आहट पा, पट-ओट दीप ले, दौड़ द्वार के पास ;
कई बार जा, तुम्हें न पाकर मन हो गया उदास।
नाथ, तुम्हारे सुखद नाम की जपूँ निरंतर माल ;
केवल एक इसी आश्रय से बीते जीवनकाल।
है निश्चय यह ज्ञात, छिपे हो यहीं कहीं आसन्न ;
किंतु, न-जाने किस कौतुक के हेतु हुए प्रच्छन्न।

रामनारायण मिश्र

× × ×

५. प्राचीन काल में सभा-समितियाँ

बहुत-से सज्जनों की सम्मति है कि पहले भारत के लोग सभा-समिति से परिचित नहीं थे ; 'सभा'-शब्द की उत्पत्ति का श्रेय गोरे दिमाग़ ही को है। मेरे एक अमेरिका-प्रवासी मित्र ने इसी मर्म की एक चिट्ठी हमारे पास लिखी है। आपका कहना है कि "पाश्चात्य विद्वान् यह नहीं स्वीकार करते कि पहले भी भारत में सभा-समितियाँ होती थीं।" ऐसे लोगों का भ्रम दूर करने के लिये मैं कुछ ऐसे प्रबल प्रमाण उपस्थित करता हूँ, जिनसे यह सिद्ध है कि समय-समय पर यहाँ पहले भी सभा-समितियाँ होती थीं—

(१) "तं सभा च समितिश्च सेना च"।
(अथर्व०, कांड १५, अनुवाक २, वर्ग ६, मंत्र २)

* अभ्यागतैः मिथुनतया आभिमुख्येन संगतैः। (श्रीगोविंदराज-कृत रामायण-भूषण टीका)

† हंसचक्रवाकाः परस्परं वैरिणोऽपि शरद्गुणसंजातहर्षवशात् वैरं विस्मृत्य विहरन्ति न विरोधः।

(२) सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ।
(अथर्व०, कां० १६, अनु० ७, वर्ग ५५, मं० ६)
(३) "श्वेतकेतुर्हि आरुणेयः पाञ्चालानां परिषद-माजगाम ।"

(बृहदारण्यकोपनिषद्)

(४) रामचंद्र के राज्याभिषेक की कुल तैयारी हो चुकने पर राजा दशरथ ने उनके पास दूत के द्वारा उसका समाचार भेजा था । उस समय राम ने सीता से कहा—

"यादृशी परिषद् सीते इतश्चायं तथाविधिः।" इत्यादि

(५) एकविंशतिसंख्याकैर्मीमांसान्यायपारगैः ;
वेदाङ्गकुशलैश्चैव परिषत्त्वं प्रकल्पयेत् ।"

(प्रायश्चित्त-विवेक)

बौद्ध-साहित्य, संस्कृत, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत और उपनिषदें देखने से ज्ञात होता है कि भारत में पहले भी सभाएँ होती थीं ।

चरक-संहिता में भी सभाओं का ज़िक्र आया है ।

मोहनलाल महत्तो (गयावाल)

× × ×

६. स्वर्ण-परीक्षा

कसा कसौटी पर तुमने, फिर दिया आग में डाल ;
धौंक धौंकनी से धधकाया, किया लाल तत्काल ।
इतने पर भी दया नहीं, हा, पीटा बनकर क्रूर ;
सभी तरह, पर सच्चा निकला, मिला नया ही नूर ।

रामजी शर्मा

× × ×

७. उर्दू-लिपि के दोष

उर्दू-भाषा में अनेक दोष हैं ; पर सबसे बड़े दो दोष ये हैं— (१) उर्दू-वर्णमाला के अक्षरों के उच्चारण और लिखने में बहुत भेद है, और उससे प्रायः सब परिचित हैं ; (२) इस भाषा में नुक़्तों का बहुत अधिक प्रयोग होता है । किंतु जल्दी-जल्दी लिखने में बहुत-से नुक़्ते रह जाते हैं, जिससे पढ़ने में कष्ट और भ्रम होता है, और महाजनी (मुड़िया)-लिपि की भाँति आशय निकालना पड़ता है ।

पहले दोष से सांसारिक कामों में उतनी गड़बड़ नहीं मचती, जितनी दूसरे दोष से । पाठकों के मनोरंजनार्थ दूसरे दोष का एक हास्य-पूर्ण सच्चा समाचार लिखा जाता है—

१४ जनवरी, सन् १९२४ ई० को मुझे मेरे मित्र मोतीलालजी का एक पत्र मिला । पत्र उर्दू में लिखा हुआ था। उसमें मेरी माता के बहुत बीमार होने का समाचार था । अंत में लिखा था—

آپکے والد صاحب بھی ہیں ہیں

मुझे पत्र पढ़कर बहुत दुःख हुआ । इस वाक्य का अर्थ मैंने यह निकाला कि पिताजी घर पर नहीं हैं ; क्योंकि वह प्रायः बाहर रहा करते हैं । और, इस आशय का बोध करानेवाला वाक्य उर्दू-भाषा में इस भाँति लिखा जाता है—

آپکے والد صاحب بھی نہیں ہیں

मैं जल्दी में शीघ्र ही जानेवाली गाड़ी से सोनीपत, जहाँ मेरी माता और पिताजी रहते हैं, गया । किंतु वहाँ जाकर देखा, मेरे पिताजी घर पर ही हैं । मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । मैंने पूछा—आप कब आए! उन्होंने कहा—मैं तो एक सप्ताह से यहीं हूँ ।

फिर थोड़ी देर के बाद मैं अपने मित्र से मिला, तो मैंने उनसे कहा—तुमने तो लिखा था कि पिताजी घर पर नहीं हैं, किंतु वह तो यहीं हैं । मित्र ने कहा—नहीं, मैंने तो ऐसा नहीं लिखा । मेरा मतलब तो यह था कि तुम्हारे पिताजी यहीं हैं ।

मित्र के भाव को सूचित करनेवाला वाक्य उर्दू भाषा में—

آپکے والد صاحب بھی یہیں ہیں

इस प्रकार लिखा जाता है । मैंने पत्र जेब से निकालकर दिखाया । वह देखकर हँस पड़े । फिर मुझे भी हँसी आ गई ।

भाईदयाल जैन

× × ×

८. शिवाजी की सफलता पर धार्मिक आंदोलन का प्रभाव

१—एक समय महार-जाति का चोखामेला-नाम का एक मनुष्य पंढरपुर में, एक मंदिर में, दर्शनार्थ चला गया । महार अस्पृश्य शूद्रों की जाति है । उसे मंदिर में घुसने की आज्ञा नहीं थी । चोखामेला की अनधिकार-चेष्टा पर संपूर्ण ब्राह्मण-मंडली बिगड़ उठी । उस बेचारे से उत्तर माँगा गया । उत्तर में उसने विनम्र तथा क्षोभ-पूर्ण शब्दों में केवल यही कहा कि जन्म से जाति का निर्णय नहीं होता । जाति-पाँति का बंधन कर्मानुसार है । यदि हृदय में भक्ति है, तो मंदिरों में घुसना अनुचित

नहीं। मैं स्वयं मंदिर में नहीं गया, एक अज्ञात शक्ति मुझे वहाँ खींच ले गई थी। उसका यह उत्तर यथेष्ट न समझा गया। ब्राह्मणों ने स्थानीय मुसलमान-शासक से उसे दंड दिलवाने की व्यवस्था की। उसको दो बैलों द्वारा खिंचवाकर मारे जाने का दंड मिला।

२—देवगिरि के यादवों के राज्य-काल में ज्ञानदेव एक बड़े भारी महात्मा, सुधारक तथा उपदेशक हो गए हैं। उनकी बहन मुक्ताबाई की गणना भी प्रसिद्ध सुधारकों तथा उपदेशकों में थी। उनके पिता ने अपनी स्त्री की अनुमति बिना लिए ही संन्यास-ग्रहण कर लिया। जब उनके गुरु रामानंदजी को यह विदित हुआ, तो उन्होंने आज्ञा दी कि तुम पुनः गृहस्थ हो जाओ। उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा का पालन किया। उनके पुनः गृहस्थ होने पर उनके ज्ञानदेव तथा मुक्ताबाई नाम की दो संतानें उत्पन्न हुई। ब्राह्मणों ने इन बालकों को, जिन्हें कि वे संन्यासी की संतान मानते थे, जाति में मिलाना अस्वीकार कर दिया।

उक्त दो घटनाओं को हुए आज ४०० वर्ष के क़रीब हो चुके। कुछ आज की बात नहीं है। इन्हें यहाँ पर देने से मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि यह विदित हो जाय कि उस समय ब्राह्मण-समाज कितना हृदय-हीन तथा एकाधिकारी हो रहा था। केवल मंदिर-प्रवेश के पाप पर जीवन नष्ट करने को—निर्दयता-पूर्वक प्राण निकलवाने को—उद्यत हो जाना स्पष्ट बतलाता है कि उस समय वे अपने अधिकार की 'अति' कर रहे थे। उनका यह विश्वास कि ब्राह्मण सेवा कराने के लिये, दूसरों के बल पर मौज उड़ाने के लिये तथा स्वतंत्र रहने के लिये हैं, और शूद्र सेवा करने, नीच बनकर रहने तथा कदापि उत्थान न करने के योग्य हैं, अनुचित था। वही उनकी वर्तमान अवनति का कारण हुआ। समाज ऊब रहा था। धार्मिक बंधन की आड़ में खेला जा रहा शिकार उसे नवीनता उत्पन्न करने के लिये बाध्य कर रहा था। वह सुधार चाहता था।

प्रकृति के इस नियम का पालन हुआ कि समय अपने लायक़ पुरुष पैदा कर लेता है। अत्याचार तथा क्रूरता से पीड़ित जनता के बीच ज्ञानदेव तथा मुक्ताबाई-सरीखे सुधारक उत्पन्न हो गए। जनता 'नवीनता' चाहती थी। उसने इनका सादर स्वागत किया। ज्ञानदेव का यह उपदेश था कि नीच और ऊँच में कोई भेद नहीं है, कर्म के अनुसार ही मनुष्य नीचा या ऊँचा होता है; परमात्मा के यहाँ सभी बराबर हैं। गंगाजी में सभी स्नान करते हैं। नीच के स्नान करने से पानी गंदा नहीं होता। ज्ञानदेव महात्मा के इस उपदेश का सभी ने स्वागत किया। इसी उपदेश और इसी ज्ञान के सार के आधार पर, लगातार ४०० वर्ष तक, अन्यान्य महात्माओं के उपदेश हुए। ज्ञानदेव से लेकर महात्मा रामदास तक जितने सुधारक हुए, सभी ने बड़े ज़ोर-शोर से इस उपदेश का प्रचार किया। ऐसे महात्माओं की संख्या ४० के लगभग थी। इनमें स्त्रियाँ, बढ़ई, सुनार, लुहार, प्रायश्चित्त के लिये उद्यत वेश्याएँ तथा यवन भी शामिल थे। शायक़ मुहम्मद तथा शांति बहामिनि, जानी, एकाबाई, वेणुबाई, चंगदेव, ज्ञानदेव, निवृत्ति, एकनाथ तथा महासमर्थ गुरु रामदास, इन सब महापुरुषों ने इसी मुक्ति-मंत्र का प्रचार किया।

उक्त उपदेश, जिसे मंत्र अथवा दीक्षा कहना ही ठीक होगा, राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने में बड़ा सहायक हुआ। जातिभेद-जनित पारस्परिक कलह का अंत होने लगा। आपस का मनोमालिन्य दूर होने लगा। लोग अपने-आपको समझने लगे। बंधुत्व—वही बंधुत्व, जो एकता का मूल है, जो राष्ट्र का निर्माता है, जो डूबती हुई राष्ट्र की नौका का पतवार है—आपस में प्रसारित हो उठा। लोगों के हृदय में ये शब्द गूँज उठे कि हम एक ही पिता के यहाँ से आए हैं, एक दूसरे के बंधु हैं। हमारा कर्तव्य परस्पर एक दूसरे के सुख-दुःख में साथ देना है; हमारा जीवन परस्पर संयुक्त है—आपस में गुँथा हुआ है, न कि विभक्त। केवल इसी धारणा ने (जिस धारणा ने बड़े-बड़े राष्ट्रों की स्थापना को सरल तथा संभव बनाया है; जिस धारणा ने बड़े-बड़े अत्याचारियों के शासन को उलट-पुलट डाला है; जिस धारणा ने संसार-संग्राम में दुर्भेद्य क़िले का काम किया है), उन दाक्षिणात्यों के हृदय में—महाराष्ट्रों के हृदय में—अपना घर कर लिया। यदि इस धारणा का पूर्ण विकास होने पाया होता, तो सारा दक्षिण एक सूत्र में ग्रथित हो जाता। पर दुर्भाग्य-वश इसका क्षेत्र महाराष्ट्र-देश से आगे नहीं बढ़ पाया।

इस धारणा को उत्पन्न करनेवाले प्रचारक या उपदेशक कौन थे ? यह काम उन्हीं १० की संख्या में, क्रमशः, एक के बाद एक, जन्म लेनेवाले महात्माओं ने किया था। दुराचारिणी वेश्याओं ने, जिनका जन्म दुराचरण में लिप्त रहता है, इन्हीं महात्माओं के उपदेश सुनकर ज्ञान पाया; उनका मोहांधकार हटा, उन्हें सच्चा पथ दृष्टिगत हुआ। उन्होंने अपनी शुद्धि तथा मनःशांति के बाद वह कार्य किया, जो उत्तर में महात्मा कबीर तथा चैतन्य महाप्रभु के द्वारा हुआ है। इन महात्माओं ने कठिन संस्कृत-ग्रंथों का स्थानीय भाषा में अनुवाद करके उन्हें सबके समझने लायक़ बना दिया। धार्मिक विश्वास की दृढ़ता के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं की जागृति हुई। हिंदू-धर्म राष्ट्रीय भावनाओं का स्वरूप है। स्थानीय भाषा में साधारण लोगों को उसकी महत्ता समझाकर इन महात्माओं ने राष्ट्रीय जीवन की नींव डाली। ज्ञानदेव ने मराठी भगवद्गीता पर अपनी प्रसिद्ध समालोचनात्मक पुस्तक लिखी। मुकुंदराज ने, बारहवीं शताब्दी में, मराठी में, अपनी प्रसिद्ध रचना रची। भला भगवद्गीता-जैसी पुस्तक का ज्ञान प्राप्त करके भी राष्ट्रीय जीवन न जगे, यह भी कहीं संभव है ?

योरपियन इतिहास के विद्यार्थी योरप के धार्मिक आंदोलन की प्रगति को भली भाँति जानते हैं। पोप की घृणित, जघन्य और पाप-पूर्ण वासनाओं को तृप्त करने के लिये वसूल किए जानेवाले 'पीटर्स पेंस' टैक्स का जब लूथर ने विरोध किया, तब उसके हृदय में कोई राजनीतिक भावना न थी। वह स्वयं धार्मिक था; परंतु, महाराष्ट्र के ज्ञानदेव आदि महात्माओं की तरह, धर्म के ठेकेदार, तत्कालीन प्रीस्ट-समुदाय तथा उनके पाप-पिता पोप के अत्याचार, क्रूरता, दुराचरण, विद्वेष एवं अशुभ तथा नीच कर्मों से क्षुब्ध था। वह धर्म की आड़ में राजनीतिक शिकार खेलनेवालों से घृणा करता था। वह धर्म चाहता था, धर्म का दंभ नहीं। इसी कारण उसने अपने प्रोटेस्टेंटिज़्म (Protestantanism) को जन्म दिया। उसकी तथा कॉलविन की भी यही नीति थी। वे धार्मिक भावनाओं से ही उत्तेजित होकर पोप की महाशक्ति से लोहा लेने को उद्यत हुए थे। उस समय, जिस समय कि सुधार के बदले प्राण गँवाने पड़ते थे, उन्होंने यह भयंकर बीड़ा उठाया। वे और कुछ नहीं, जनता का सुख चाहते थे। आज स्वर्ग से उनकी आत्माएँ देखती होंगी कि उनका प्रयत्न सफल हुआ है। यह सभी जानते हैं कि प्रोटेस्टेंटिज़्म का वा[ह] धार्मिक स्वरूप एकाएक कितना बदल गया है। वह राजनीतिक हो गया। उसके धार्मिक स्वरूप ने ही बदलकर राजनीतिक रूप रक्खा, इँगलैंड को पोप के पंजे से छुड़ाया, स्वतंत्र बनाया तथा ऊपर उठाया। पर स्पेन की दशा क्या थी और क्या हो गई।

ठीक यही दशा दक्षिण की भी थी। तुलनात्मक दृष्टि से देखिए, जो बात वहाँ मिलेगी, वही यहाँ भी। यहाँ भी धार्मिक आंदोलन ने अपनी प्रगति के साथ-साथ राजनीतिक रूप धारण कर लिया। कहते हैं, सुधार सदैव भले के लिये ही होता है। बात अक्षरशः सत्य है। सुधार वस्तुतः भले के लिये ही होता है। उसकी उत्पत्ति के साथ ही चिनगारियाँ छूटने लगती और वे बुराइयों को भस्म कर डालती हैं। महाराष्ट्र की कुरीतियों में इसी प्रकार की आग लगी थी।

किंतु यह जो कुछ हुआ, सो सब महात्माओं के उपदेश का ही फल था। कार्यतः उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्होंने केवल भावना फूँक दी, पर और कुछ न किया। वे तलवार लेकर समर-क्षेत्र में टूट नहीं पड़े, उत्तेजना देकर हट गए। आग लगा दी। उत्साह फूँक दिया। जब सामान तैयार हो गया, भाव दृढ़ हो गया, तब एक ऐसे चतुर वीर की आवश्यकता हुई, जो उस उत्तेजना से लाभ उठावे। क्षेत्र तैयार था, केवल आगे बढ़नेवाले की कमी थी। महात्माओं ने जो उपदेश दिया था, उन्होंने सैकड़ों वर्षों से जो बीज-वपन कर रक्खा था, उसका अब पेड़ खड़ा हो गया था; केवल फल तोड़ने की कसर थी। महात्मा लड़ते नहीं। समर्थ गुरु रामदास ने जन्म-भर कभी तलवार नहीं उठाई, पर महाराष्ट्र के उद्धार का सारा श्रेय उन्हें ही है।

जिस समय जनता अपनी शक्ति को पहचानकर उसका उपयोग करने के लिये समुत्सुक थी, उसी समय शिवाजी का जन्म हुआ। उन्होंने लोगों में बेचैनी पाई, उन्हें कुछ-न-कुछ करने को उद्यत पाया, आलस्य से [ऊबा] हुआ पाया, नेता की खोज में लगे हुए पाया। शिवाजी ने उस समय को हाथ से नहीं जाने दिया।

शिवाजी की मृत्यु के बाद एक बार संभाजी के पू[र्व]

पर समर्थ गुरु ने कहलाया था—"मरहठों का संगठन तथा महाराष्ट्र-धर्म का प्रचार करो।" इस 'महाराष्ट्र-धर्म' शब्द में कितना गूढ़ अर्थ भरा पड़ा है। वास्तव में वह धर्म भिन्न था। उसमें एकता तथा संगठन का नवीन स्वरूप था। ब्राह्मणों का पुराना एकाधिपत्य-पूर्ण धर्म-राज्य न था। अस्तु। इस मंत्र को रामदासजी ने अधिक उत्तमता के साथ शिवाजी के कानों में फूँका था, इसका देश में प्रचार किया था, इसे घर-घर फैलाया था।

यदि एक तुकाराम तथा रामदास शिवाजी पर इतना प्रभाव डाल सके कि वह फ़ौरन् स्वतंत्र संग्राम में कूद पड़े, तो फिर ५० तुकाराम और रामदास-सदृश महात्माओं की उपस्थिति ने संपूर्ण जनता पर क्या प्रभाव डाला होगा, कितना उत्तम प्रचार किया होगा ?

इस धार्मिक आंदोलन ने (जिसने कि जाति-पाँति के कड़े बंधन को ढीला कर डाला, स्थानीय साहित्य को उच्चतम रचनाओं से विभूषित कर दिया, शूद्र-जाति को ऊपर उठाया, यवनों के साथ अच्छे और समान व्यवहार का पाठ पढ़ाया, राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधकर राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत करते हुए एक उच्च पद पर पहुँचाया, समाज में स्त्रियों का स्थान आदरणीय बनाया, महाराष्ट्र को एक संगठित, शिक्षित तथा भावमय राष्ट्र बनाया) शिवाजी को अपना राज्य स्थापित करने में बड़ी सहायता दी। शिवाजी को, अपने राज्य की स्थापना में इस पूर्ववर्ती धार्मिक आंदोलन से कहाँ तक सहायता मिली, यह स्पष्ट हो गया होगा। इसका श्रेय उनके पूर्ववर्ती धार्मिक आंदोलन ही को प्राप्त है।

परिपूर्णानंद वर्मा

× × ×

९. चाह और आशा

[illegible]लित कामना-कलिकाओं पर प्रिये, कुलिश का पात हुआ ;
[illegible]मावस्थित प्रणय-निशा का अंत हो गया, प्रात हुआ।
[illegible]त्य निराशा-अग्नि प्रखर हो मेरे मन को जला रही ;
[illegible]ज की हँसी, और का रोना, क्या प्रेमी-मन चाह यही ?

* * *

[illegible]लित लालिमा है अधरों की सुमन-दलों का रंग नहीं ;
[illegible]रे मधुप, मकरंद-लोभ से छू युवती के अंग नहीं।
विरह-वह्नि बहु विषम वेदना की अति उष्णोच्छ्वास वहाँ ;
तजनी तुम्हें पड़ेगी दुर्लभ निज जीवन की आस वहाँ।

"सहिष्णु"

× × ×

१०. तेरे तारे

तेरी आँखों में तारे चमकते हैं—वे तारे, जो नील सागर में खिलते और दिन के परदे में छिप नहीं सकते !

मरु-देश में मार्ग दिखानेवाले तेरे तारे, मेरी नौका के ध्रुव यंत्र हैं। तेरे तारे, पुष्पों के रूप में, पृथ्वी पर आते और माला बनकर मेरे हृदय पर झूलते हैं। मेरे नेत्रों का चुंबन करते हैं तेरे तारे।

मेरे हृदय-सरोवर में कुमुदिनी खिलती है, और तेरे तारे, उसे देखकर, मुसकिराते हैं। समीरण में सुगंध फैलती है, जब स्वप्नावस्था में तेरे तारे टिमटिमाते हैं।

चंद्र के प्रकाश से थके हुए मुझसे सूर्य का तेज कैसे सहा जाय ? मुझे अपने तारों के मधुर प्रकाश में विश्राम करने दे।

तेरे तारे चंद्र से भी सुंदर हैं, और ध्रुव से भी अटल ! तेरे तारों का एक ही प्रतिबिंब पड़ता है। मानस-तरंगों पर तैरनेवाले हैं। तेरे तारे

पाताल से निकलते हैं, या पवन में उड़ते हैं ये तारे, जो टप-टप टपकते हैं।

मेघों के मोती हैं या सागर के ओसकण ये तारे, जो तेरी आँखों में चमकते हैं।

कुँअर रामसिंह

× × ×

११. लेखन-विधि

सुंदर लिपि भी एक कला है, जिससे आँखों को विशेष आनंद होता है। स्कूलों में बहुत दिनों से कॉपियाँ लिखाई जाती हैं, जिनके कारण कई विद्यार्थी अपना लेख छापे से मिला देते हैं। परंतु अधिकांश छोटे-बड़े, टेढ़े-मेढ़े अक्षर ही लिखा करते हैं। कॉपियों का उपयोग समझते हुए भी विशेष रूप से यह छान-बीन नहीं की गई कि प्रत्येक अक्षर के अंगों का परिमाण कितना होना चाहिए, जिससे अक्षर एक-से बनकर लिपि की शोभा बढ़ावें। इस त्रुटि को पंडित सुखराम चौबे (गुणाकर कवि)-कृत कॉपियों ने दूर कर दिया। उन्होंने लिपि-प्रबोध-नामक चार कॉपियाँ तैयार की हैं, जिनमें अक्षरों के

अंगों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि उस प्रथा पर एक बार हाथ जम जाने से परिणाम सुंदर लिखावट के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। पहले नंबर के लिपि-प्रबोध में अक्षरों के आकार पर विचारकर आदि में ऐसे अक्षर लिखने का अभ्यास बतलाया गया है, जो खड़ी और आड़ी लकीरों से बन सकते हैं, जैसे "ग", "म", "भ", "झ" आदि। उसमें मोड़ों और मात्राओं का भी अभ्यास सम्मिलित है। ये सब ऐसे क्रम से रक्खे गए हैं कि लेखक आड़ी, खड़ी और मोड़ लिए हुए लकीरों की सहायता से प्रायः सभी अक्षर लिख सकता है। प्रत्येक अक्षर के खंड और प्रत्येक का मध्य-भाग दिखला दिया गया है, जिससे अक्षर छोटा-बड़ा या टेढ़ा-मेढ़ा नहीं हो सकता। प्रबोध नं० २ में अक्षरों के बदले शब्दों के लिखने का अभ्यास बतलाया गया है। शब्दों के चुनाव में सरल लिपि-क्रम पर ध्यान देते हुए ऐसा प्रबंध किया गया है कि सीखा हुआ अक्षर बार-बार आवे, और वह दो दिन तक लिखा जाय, जिससे अक्षर-विशेष पर हाथ पक्का हो जाय, जैसे "गगन" इत्यादि। इसमें तीनों अक्षर समान रूप और लिखावट के हैं। इसी प्रकार "भामा," "झाँझ," "रीझ" आदि शब्द हैं, जो सीखी हुई लेखन-विधि को परिपक्व करते जाते हैं। नं० ३ में नीति-युक्त, छोटे-छोटे, नए ढंग के, सरल वाक्य लिखे गए हैं; परंतु अक्षरों की मुटाई कुछ कम कर दी गई है। इनकी भी रचना नं० २ की कॉपी की शैली पर की गई है। उदाहरणार्थ यथा—"राजा को प्रजा परम प्रिय है"। नं० ४ भी इसी प्रकार की कॉपी है। परंतु इसमें अक्षरों का आकार और भी छोटा कर दिया गया है, और बिंदुओं से दिखाई हुई, ऊपर के और नीचे के अक्षर-खंड सूचित करनेवाली, बीच की लकीर छोड़ दी गई है। सो ठीक ही है। ऊँची कक्षा में इसकी आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। केवल नंबर तीन तक खंड-बोधक लकीरें बनाई गई हैं।

इस गुणाकर-कृत प्रबोधमाला को 'गुणाकर' ही समझना चाहिए। हिंदी के विद्यार्थियों को इससे विशेष लाभ पहुँचने की आशा है। प्रत्येक नंबर के 'क' और 'ख' दो खंड हैं। प्रत्येक का मूल्य दो आने है। इनको मैकमिलन ऐंड कंपनी ने छापा है, और ये उस कंपनी की कलकत्ता, बंबई, मदरास की दूकानों में मिल सकती हैं।

छपाई में औषध का औषध, भाट का माट, पाकरन का पाकरन, में का मे, संरक्षा का सरक्षा, मूल्य का मुल्य आदि छप गया है। आशा है, द्वितीय आवृत्ति में ये अशुद्धियाँ दूर कर दी जायँगी। ज्ञात हुआ है कि पंडित गुणाकरजी इसी परिपाटी के अनुसार पाँचवें और छठे नंबर की कॉपियाँ भी तैयार कर रहे हैं, जिनमें अंतिम कॉपी घसीट-लिपि का अभ्यास करानेवाली होगी। यह भी हिंदी-लिपि में एक नई बात होगी।

हीरालाल

× × ×

१२. वसंत

(१)

आया है ऋतुराज आज जग में, शोभा बनी सुंदरी;
फूले हैं सब वृक्ष कुंज-वन में, पत्ते हुए हैं नए
पी-पी की पपिहा पुकार करता, कू-कू करे कोकिला;
भौंरों के मधु-मत्त झुंड उड़ते, झंकार मीठी सुना

जगजीव-मनोहारी, है वसंत सुहावना;
आने से इसके भू पे, छहराती नई छटा।
खेतों में शस्य गुच्छों से, लदे हैं चहुँ ओर ही;
जिन्हें देख किसानों के, चित्त आनंद-मग्न हैं।
लताएँ लिपटी हैं त्यों, वृक्षों से मनभावनी;
प्रेम से मिलती ज्यों हैं, कांत से प्रिय कामिनी।
मंजरी आम-वृक्षों की, लदी हैं सुखद घिनी;
भौंरे मधुर गाते हैं, उन्हीं पे मधु-लोभ से।
मंजरी-गंध से मस्त, पपीहा 'पी' पुकारता;
कोकिला किलकारी दे, कहती है 'कुहू-कुहू'।
खिले हैं फूल बाग़ों में, फैली कैसी सुगंध है;
हवा भी चलती कैसी, ठंडी, मंद, सुगंध हो।
वृक्षों की सब डालों पै, पक्षी बोलें विचित्र ये;
बुलाते पथिकों को ज्यों, शोभा-दर्शन के लिये।
चाँदनी खिलती स्वच्छ, बीच आकाश रात में;
चंद्रमा हँसता-सा है, तारा-मंडल-मध्य में।
घूमते-फिरते देखो, भैंस, बैल, गऊ सुखी;
चरवाहे फिरें मस्त, गावें गीत सुराग से।
इसी भाँति सदा ही हो, भारतीय समाज में;
आनंद अति ही सत्य, कृपा से जगदीश की।

अक्षयवट मिश्र

(२)

(वसंत-भ्रम)

चले मंद 'हाथी' दोउ[1], मस्ती पाय 'घोड़ो'[2] खड़ो,
तिर्छे[3] चारु 'फ़ीलन' की चाल विकराल है ;
इदै भए गाहगह लगी 'शह' शाहैं जब,
तुर्त आय धाय एक खड़ो[4] जनु ढाल है।
ऐसे मतवालन की चाल सबै बाजतैं[5] हैं,
तातें सब खेलवारे अति ही बेहाल हैं ;
'पैदल', वज़ीर', 'शाह' कहत 'समीर' वाह,
चाल शतरंज की वसंत को धौं काल है।

(वसंत की विरहिणी)

आए ऋतुराज आज छाए रतिराज-जैसे,
साजि-साजि आए देखी सखी और पीयरो;
पुहुप वितान औ लतान मों महक आई
भायो सब जीव औ अनंद सब हीयरो।
कहाँ लौं कहौं री सखी आज परभात देखी,
काक हू[6] की केलि तौ विलोकि ताहि जी जरो;
पूछी जाय जोतिसी सों ये तो अति ठीक नीक,
बात सो बतायो है तयारी स्वर्ग की करो।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

(३)

ललकत हिय लोनी-लोनी लतिकान देखि,
डार-डार फूलन के फैले हैं फबीले जाल ;
भौंर-सोर सुनिकै मरोर मन दूरि करै,
पपिहा की 'पीउ' पर काढ़त हिए को साल।
पहिरे बसंती सारी प्यारी सों उजारी माहिं,
मिलि-मिलि मोद भरि कहत हिए को हाल ;
सुखद समीर, भीर मधुर मलिंदन की,
'मौजी' जिन्हैं बीतत वसंत गल-बाही डाल।

"मौजी"

(४)

सौरभ-समूह संग सुमनस-आगम सों,
सीत-छय छीलर को नीर-सी भई समूल ;
किसलय कोमल, सु कोकिल-कलित कुंज,
बढ़िगो बनस्थली को ये बर बिभौ अतूल।
दक्खिन पवन के 'बियोगी' परिहासन सों,
नव-दल-भार-नम्र लतिका उठति झूल ;
आग-भरे किंसुक, सुहाग-भरी सरसों त्यों
राग-भरे भँवर, पराग-भरे फूले फूल।

मोहनलाल महत्तो (गयावाल) "वियोगी"

(५)

कोयल

कोयल, जो लाती निज सँग ऋतुराज,
औ, पत्रों की ऊँची अटा, सुराग
छेड़-छेड़ कर, उमगाती अनुराग ;
अपना वदन छिपाती तू किस काज ?
क्या आँखों के आगे गाते लाज,
सुंदरि, तुझको लगती है ? या काग-
जैसे कृष्ण वर्ण को कर दुर्भाग
नहीं सामने आती तू, इस व्याज ?
या तुझको यह डर है तव मृदु गीत
तुझे पींजड़े में दे करा न बंद ?
औ' तू मंजरियों की गंध रसाल,
सरसों के खेतों की शोभा पीत,
त्यों, पलाश के फूलों का आनंद
लेने से वंचित रह जाए बाल ?

रामानुजदयालु

× × ×

१२. काव्याभिमान

नृप, न करो अभिमान स्वर्ण का, यहाँ सुवर्ण अनेकों हैं ;
आभूषण यदि पास आपके, अलंकार भी ढेरों हैं।
महिलाएँ हैं निकट आपके, यहाँ नायिका प्यारी हैं ;
तुम कठोर वचनों से डाँटो, यहाँ व्यंग्य सुखकारी हैं।
घोड़ों की यदि वहाँ सवारी, 'मत्त-गयंद'[1] यहाँ भी हैं ;
हथियारों में 'शक्ति'[2] 'मनहरण'[3] 'इंद्रवज्र'[4] ही काफ़ी हैं।

---

१. दोनों पैर। २. घूँवट, जिसकी उपमा घोड़े से दी जाती है। ३. शतरंज में फ़ीलों की चाल तिर्छी होती है ; इधर नेत्र भी तिर्छे चलते हैं। ४. प्रायः 'शह' लगने पर घोड़े का 'इरदब' दिया जाता है। ५. बाजत = (१) बज रहे हैं, जैसे नूपुर, किंकिणी आदि ; (२) लड़ते हैं। ६. काक-मैथुन बहुत बुरा अशकुन माना जाता है। इसका देखनेवाला मरण को प्राप्त होता है।

१. मत्त-गयंद—७ भगण २ गुरु का सवैया। २. शक्ति— १८ मात्रा का छंद, आदि लघु, अंत सगण रगण नगण। ३. मनहरण—३० लघु १ गुरु, ३१ वर्ण का दंडक। ४. इंद्रवज्रा—२ तगण १ जगण २ गुरु।

बनें आपके यहाँ पूरियाँ, 'मोदक' यहाँ बनाए हैं ;
हरिण आपने रखे द्वार पर, 'सारदूल' हम लाए हैं ।
यदि क्रोधित हों आप कभी, तो नहीं किसी की मानेंगे ;
हथकड़ियाँ हैं पास आपके, हम छंदों में बाँधेंगे ।
आप राज्य पर हो न चढ़ाई, यही एक भय खाते हैं ;
दग्धाक्षर, गण, छंदभंग ये, दोष हमें डरवाते हैं । *

रामचरणलाल द्विवेदी

× × ×

१४. 'अछूत'

'They Sneer at me for leaving all away ;
'What did the Hand then of the Potter shake?'
'Omar Khayyam'
(*Fitz Gerald's English version.*)

सरदी के दिन थे । बस्ती के ऊपर छाए हुए कुहरे पर काँपते हुए सूर्य की किरणें चमक रही थीं । बड़े आदमियों के लिये अब भी रात थी, और ग़रीबों के लिये रात का न होना ही अच्छा था । ऐसे कुहरे में वे ही लोग बाहर थे, जिन्होंने रात भी सरदी की गोद में बिताई थी । उन्हें सरदी नहीं लगती ; क्योंकि उनके पास पहनने के लिये कपड़े नहीं । या फिर सड़क के ऊपर वे लोग जा रहे थे, जिन्हें मजबूर होकर लिहाफ़ की शरण छोड़नी पड़ी थी । ठंडी हवा रोम-रोम कँपा रही थी । उनके गरम ऊनी कपड़े बर्फ़ हो रहे थे, और हाथ-पैर ओले । वे लोग मामूली चाल की अपेक्षा कुछ जल्दी चल रहे थे, और इसीलिये 'बाबूजी' की आवाज़ सुनकर चतुर्भुज शर्मा को पीछे मुड़कर देखना पड़ा । आवाज़ में कुछ आह थी और कुछ कसक; कुछ करुणा थी और कुछ दुःख । थोड़ी देर पहले उस आवाज़ को सुनकर प्रकृति भी रोई थी । उसके आँसू, तरल प्रकाश की तरह, धरती के ऊपर अब भी पड़े हुए थे । चतुर्भुज शर्मा ने देखा, सड़क के किनारे एक बूढ़ा भिखारी गठरी बना हुआ पड़ा है । उसका सारा बदन चिथड़ों से बनी हुई एक गुदड़ी में छिपा था, और उसको वह इस बुरी तरह से अपने में छिपाए हुए था, मानो उसका प्राण हो । सिर्फ़ चेहरा बाहर था । उसके ऊपर स्याही छाई हुई थी । आँखें भीतर को धसी जा रही थीं । उनकी पुतलियाँ गति-हीन नहीं थीं, इसीलिये उसका हृदय बंद नहीं था । लोग उसकी तरफ़ देखते और चले जाते । मानो देखा ही नहीं । सरदी से ठिठरा हुआ हृदय कहता—"हाँ, ठीक है । हम तुम्हारी दया के अधिकारी नहीं ।" भूक से कुनमुनाती हुई आँतें कहतीं—"हम तुम्हारे घर के कुत्तों के भी भोजन में हिस्सा बँटाने के लायक़ नहीं ।"

बूढ़े को देख शर्माजी को दया आ गई । उसके पास पहुँचकर उन्होंने पूछा—"क्या है ?"

"आह ! बड़ी सरदी है, बाबूजी ।"

"हाँ, है तो ।" कहकर शर्माजी ने जिस चादर को ओढ़े हुए थे, उसे दे डालने की बात सोचते हुए अपनी जेब में हाथ डाला । एक चवन्नी थी । उसको उन्होंने बूढ़े के सामने फेंक दिया । कृतज्ञता-भरी हुई आँखों से बूढ़े ने बाबूजी की ओर देखकर चाँदी के टुकड़े की ओर देखा । चवन्नी उठाने के लिये वह उठा, किंतु गिर पड़ा ।

"आह ! उठा नहीं जाता । ऐसी सरदी में भी बदन जल रहा है । दो दिन से कुछ नहीं खाया ।"

थोड़ी देर ठहरकर बूढ़ा फिर बोला—"भगवान् सुध नहीं लेते । रात-भर इसी पेड़ के नीचे पड़ा रहा । इक्कों और गाड़ियों की खड़खड़ाहट में मेरी चिल्लाहट किसी ने न सुनी । जब सन्नाटा होता, तो ईश्वर से प्रार्थना करता कि वह इस दुःख और ताप से भरे हुए संसार से मुझे ऊपर उठा ले । मगर रात को न तो ओले पड़े, और न ऐसी सरदी ही हुई, जिसमें मेरी नसों का खून जम जाता । भगवान्, तुम्हारा भला करें ।"

"अच्छा, तो फिर वह चवन्नी उठा लो ।" कहकर शर्माजी ने चलने के लिये पैर उठाया ।

किंतु बूढ़ा चवन्नी उठाने के लिये नहीं हिला । वह आशा-भरी दृष्टि से उनकी ओर देखता-भर रहा ।

आगे बढ़ने से रुककर शर्माजी ने कहा—"तुम और क्या चाहते हो ?"

"मौत, या फिर थोड़ी-सी गरमी ।"

---

१. मोदक—४ भगण का । २. सारदूल—छप्पय का १०वाँ भेद, ४ गुरु ४४ लघु । ३. दग्धाक्षर—आदि में झ ह र भ ष वर्जनीय हैं । ४. गण—जगण रगण सगण तगण अशुभ हैं । दो अशुभ गण परस्पर मिलकर अनिष्टकारी होते हैं । ५. छंदोभंग—यथा प्रथम चरण में ११ पर विश्राम हो और तृतीय में १३, या १२ पर हो तो दोष होता है ।

* ताटंक-छंद—१६+१४=३० मात्रा, अंत म गण ।

बूढ़ा शर्माजी के कपड़े-लत्तों की ओर देखकर आगे कुछ कहने से रुक गया। पीड़ित हृदय ने कहा—"कह दो।" बूढ़े की भलमनसाहत बोली—"नहीं, किसी भले आदमी को कष्ट देना ठीक नहीं।" किंतु बूढ़ा जो कुछ कहना चाहता था, उसे आँखें स्पष्ट कह रही थीं।

मौत सचमुच ही उसके लिये नई ज़िंदगी थी। किंतु शर्माजी ने बूढ़े की बात को निरा प्रलाप समझा। वह आगे बढ़नेवाले ही थे कि बूढ़े ने धीरे से कहा—"बाबूजी"। मानो अब की बार वह जो कुछ कहना चाहता था, उसको कह ही डालेगा। स्वर में वही कंपन था, और आँखों में वही आशा। बूढ़े ने उनकी ओर कुछ ऐसी दृष्टि से देखा कि उनका हृदय आँसुओं में पिघलते-पिघलते रह गया। कुछ नरमी और कुछ झुँझलाहट के साथ शर्माजी बोले—"भाई, तुम और क्या चाहते हो?"

"कुछ नहीं, थोड़ा-सा सहारा देकर उस दूकान तक पहुँचा दीजिए।"

शर्माजी ने उसकी ओर देखा। बदबूदार कपड़े, गंदा बदन। छूने का ध्यान आते ही उनकी नाक सिकुड़ गई। घृणा ने दया को कुछ दबा-सा लिया। पर बूढ़े ने उनकी ओर इस दृष्टि से देखा, मानो उन्होंने उसको उठाने के लिये अपने हाथ फैला दिए हों। वह कुछ हिला। उसने उठने की कोशिश की, और बोला—"बाबूजी, इस सरदी में मर जाऊँगा। उठने की ताक़त नहीं। वहाँ भट्ठी जल रही है। आँच के सामने पड़ा रहूँगा, और वहीं कुछ लेकर खा भी लूँगा। फिर तब तक तो दिन चढ़ आवेगा। ऊह! मरा! बाबूजी, भगवान् तुम्हारा भला करें।"

बूढ़े का दुःख शर्माजी से न देखा गया। उन्होंने अपनी चादर सँभाली, और बूढ़े को उठाने के लिये आगे बढ़े। उस समय उनका मन इतना ऊँचा हो रहा था कि आकाश को छू लेता, हृदय इतना फूल रहा था कि उसमें सारा विश्व समा जाता।

उन्होंने बूढ़े के कपड़ों को छुआ ही था कि वह बोला—"बाबूजी, मैं भंगी हूँ।"

मानो बंदूक़ की गोली लगी हो। शर्माजी एक क़दम पीछे हट गए। उन्होंने इधर-उधर देखा, और बोले—"कोई नज़र नहीं आता। अच्छा, ठहरो।" सहृदयता बोली—"कहाँ चले? चलो, इसे गोदी में लेकर वहाँ रख आवें।" दुराग्रही पवित्रता ने डपटकर कहा—"छिः! छिः! कहाँ सबेरे से भंगी के निकट आकर खड़े हुए।"

चवन्नी वहीं पड़ी रही, मानो मुरझाए हुए फूल की पँखुरियों को गिरा देने के लिये पानी की एक बूँद आई हो, और अछूत की गठरी ने धीरे से कहा—"हे भगवन्!"

कृष्णानंद गुप्त

× × ×

१५. कुछ दोहे

लरत अचल दृग, मिलत मन, औचक गिरत गरूर;
उड़ति धूरि गुरु जन-बदन, होत सौति-चित चूर।

तनति, मुरति, ठमकति फिरति, करति सैन, मुसुकाति;
नाचि नचावति दीठि मन छन-ही-छन अठिलाति।

ओठ उचै, लोचन नचै, अँचै अधर-मधु लाल;
झँपि अरसीले बाल-चख चलत नसीली चाल।

करी उमँगि अनुराग मुख दृगनि दबे दुति दून;
स्रवत मनो मकरंद चपि मृदु अरबिंद-प्रसून।

ज्यों-ज्यों मंजन करत दृग ससि-मुख सुषमा-सोत;
त्यों-त्यों बिरह-जरो खरो हीरो सीरो होत।

अलि माधव-सुषमा करी औरै मैन महीप;
जिहि आगम दृग जलज भो मन असोक, तन नीप।

उमँगि-उमँगि, लखि-लखि निरखि उसँसि-उसँसि मन मारि;
जीति हारि बाजी रही पाँसे पलटनहारि।

तोरि प्रेम-तरु क्यों भरी नखसिख रही हिलोरि;
पावस-सरिता-लौं लगै नेकौ थाह न तोरि।

तन-छबि अंबर असित दृग निरखि निमेष निवार;
ससि-मुख-सुषमा-भार मनु स्रवत सुधा की धार।

सघन पयोधर, अलक तम, हास बीजुरी बारि;
रूखौ सरस न होय क्यों लहि बरषा बरनारि।

मुकुर न होहु पत्याइहै को यह झूठे बैन;
पीठि पाछिले हू कहे देत मुकुर-से नैन।

काशीनाथ द्विवेदी

१. विज्ञान के द्वारा अपराधी का पता लगाना

अमेरिका में जासूस लोग विज्ञान की सहायता से सच्चे अपराधी का पता लगाने में बहुत कुशल होते हैं। मनोविज्ञान, शरीर-धर्म-विज्ञान (Physiology), रसायन, विष-विज्ञान, तथा विज्ञान की अन्य शाखाओं से अमेरिका के पुलिस-विभाग के कर्मचारी बहुत लाभ उठा रहे हैं। आजकल किसी के हृदय की बात का ठीक-ठीक ज्ञान वैसे ही प्राप्त हो सकता है, जैसे किसी गणित के प्रश्न का उत्तर निकाला और परखा जा सकता है।

एक वर्ष से कुछ अधिक की बात है कि न्यूजर्सी के एक धनी सर्कस के मालिक—अर्नेस्ट जॉन बृएन—का खून हो गया। बृएन जिस खिड़की से मारा गया था, उससे थोड़ी ही दूर पर मारनेवाले के पैरों के चिह्न देख पड़े। उनकी बनावट और गहराई की परीक्षा करके यह बतलाया गया कि मारनेवाला छोटा और हलका आदमी था। बस, इतना जानकर उसका पता लगा लिया गया, और उसको दंड दिया गया।

जो जासूस व्यावहारिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों को समझता है, वह जानता है कि नए या पुराने अपराधी से किस प्रकार का प्रश्न किया जाय, जो वह सच्ची बात उगल दे। न्यूयार्क के पुलीस-विभाग की शिक्षा के लिये जो स्कूल खोला गया है, उसमें मनोविज्ञान की शिक्षा मुख्य रूप से दी जाती है; मानसिक भावों आवेगों और विकारों के परखने की रीति बतलाई जाती है; तथा यह भी बतलाया जाता है कि मनो-विज्ञान के सिद्धांतों से मनुष्य अपनी स्मरण-शक्ति को बढ़ा सकता है।
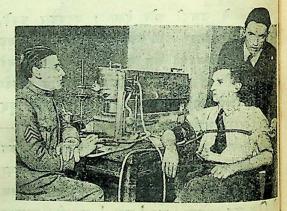
यंत्र द्वारा अपराधी की जाँच हो रही है

सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र और रसायन-विज्ञान से भी अपराध का पता लगाया जाता है। कपड़े पर पड़े हुए रक्त की छींटों को पहचानने, कपट से बनाए हुए लेखों की स्याही का पता लगाने, किस प्रकार का विष देकर मनुष्य की जान ली गई है—इसकी जाँच करने और मृतक के शरीर की परीक्षा करने में रसायन विज्ञान और सूक्ष्म-वीक्षण यंत्र की ही आवश्यकता पड़ती है। कई बार तो क़ैदी के जूतों में लगी हुई कीचड़ की परीक्षा से इस बात का पता लगा लिया गया है कि वह किस अपराध के लिये वहाँ गया था।

लोग समझते होंगे, टाइप-राइटर से लिखे हुए काग़ज़ को देखकर यह नहीं जाना जा सकता कि किसने किस मशीन से लिखा है। परंतु सूक्ष्म-वीक्षण की सहायता से इस बात का पता वैसे ही सुविधा के साथ लगाया जा सकता है, जैसे असली लिखावट से। इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों के द्वारा भिन्न-भिन्न यंत्रों से टाइप किया हुआ काग़ज़ ध्यान-पूर्वक देखने से बहुत-सी भिन्नताएँ प्रकट करता है।

हृदय की धड़कन से भी यह पता लग सकता है कि अपराधी सच बोल रहा है, या झूठ। हृदय का धड़कना, साँस लेने की गति और रक्त से दबाव को देखकर डॉक्टर बतला सकते हैं कि अपराधी झूठ बोलने का यत्न कर रहा है, या ऐसा प्रश्न पूछा गया है, जिसका ठीक-ठीक उत्तर देने से बात खुल जायगी। इस काम के लिये ऐसे यंत्र बनाए गए हैं, जिनको अपराधी के शरीर में लगा देने से हृदय और फेफड़े की क्रियाओं का अंकन अपने-आप हो जाता है; और यदि अपराधी सच छिपाने की कोशिश करता है, तो इससे जो घबराहट पैदा होती है, उसके प्रभाव से अंकन में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है।

रेडियो की सहायता से भी अपराधी का पता सहज ही लगाया जा सकता है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

२. शीतल प्रकाश और शक्ति के अनंत भांडार का पता

दो साल तक शीतल प्रकाश की खोज में लगे रहे एक वैज्ञानिक ने अब इस बात का पता लगा लिया है कि मनुष्य के उपयोग के लिये अनंत शक्ति प्राप्त की जा सकती है। शीतल प्रकाश की खोज करने के लिये महाशय जॉन जे० टोमाडेली ने पहले-पहल आकाशीय विद्युत् के साथ प्रयोग करना आरंभ किया। साधारणतः वज्रपात की शक्ति ५,००,००,००० वोल्ट गिनी जाती है। परंतु उसका प्रकाश और लोप इतनी शीघ्रता के साथ होता है कि यह घटना एक सेकिंड के एक हज़ारवें भाग में घटित होती है, और शक्ति का क्षय भी बहुत कम होता है। परंतु अपना अनुसंधान-कार्य करते समय महाशय टोमाडेली ने ५०,००,००० वोल्ट का प्रकाश पैदा किया, जो एक गज़ की लंबाई में था, और ३१
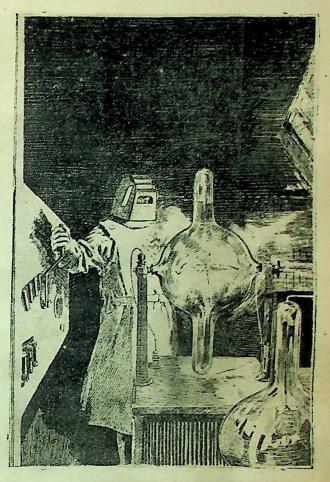
५००,०० डिग्री की भयंकर गरमी पैदा की जा रही है

सेकिंड तक स्थिर रहा। यह कार्य परमाणु(atom)-शक्ति को उन्मुक्त करने के लिये गोया एक पग आगे बढ़ाना था। इस प्रयोग से परमाणु-शक्ति पर शासन भी किया जा सकता है। आविष्कारक के कथनानुसार, यह कार्य विद्युदागार से प्राप्त की गई साधारण बिजली से नहीं चल सकता। इसके लिये वायु-मंडल से, यंत्र द्वारा, शक्ति-संचय किया जाता है। यह बिजली नहीं है। फिर भी यह कहा जाता है कि बिजली ही की जाति की कोई गुप्त शक्ति है। इस शक्ति का संग्रह करने और उससे काम कराने के लिये हैरिसन की प्रयोगशाला में विशेष प्रकार के बड़े पेचीदा यंत्र बनाकर लगाए गए हैं। प्रयोगशाला के मुख्य भवन पर वायु-मंडल में एक बृहत् यंत्र लगाया गया है। इसी यंत्र के द्वारा वायु-मंडल से शक्ति खींची जाती है। इस क्रिया के द्वारा,
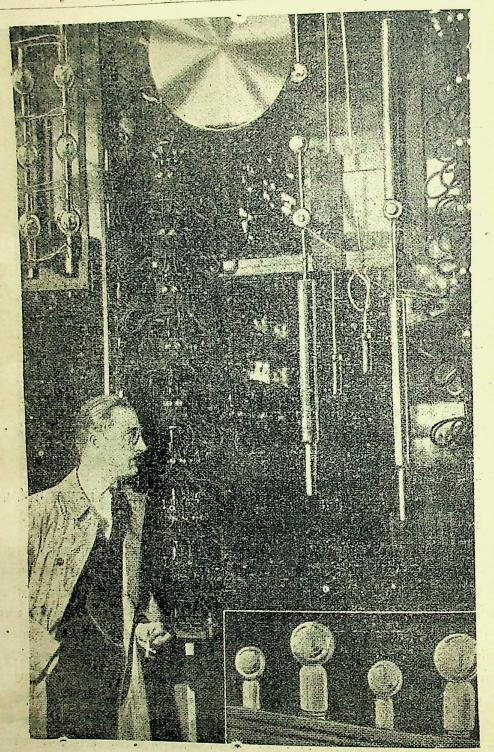
आविष्कारक और उनकी प्रयोगशाला

महाशय टोमाडेब्बी के कथनानुसार, एक ताँबे के पैसे में ८,००,००,००० घोड़ों की शक्ति पैदा की जा सकती है।

इसी प्रकार जिस शीतल प्रकाश का आविष्कार उन्होंने किया है, वह एक बोतल में बंद है। वह बिना ठि

वायु-मंडल से बिजली खींची जाती है
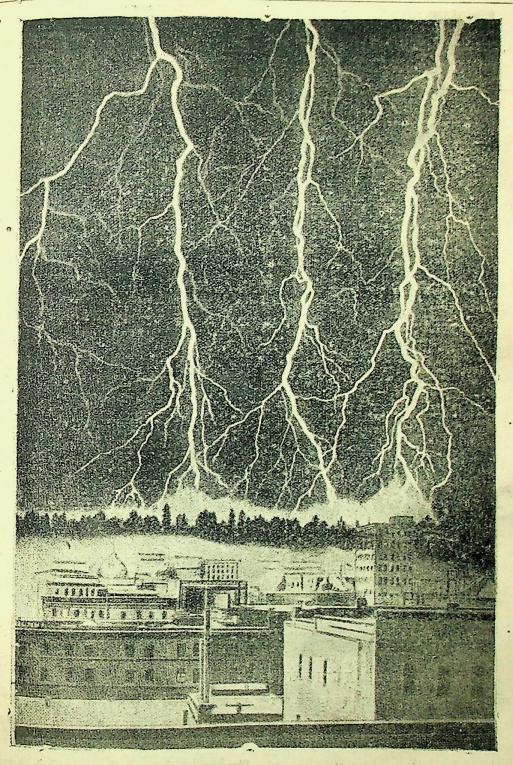
बैटरी या चिमनी के तार के संबंध के तीन साल तक, निरंतर, १०० कैंडल-पावर का प्रकाश देता रहेगा।

यह प्रयोग करते समय एक बड़ी विचित्र घटना हुई वह इस शक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाने के कारण

एक गज़ लंबा वोल्ट का प्रकाश

बेलून की भाँति फूल गए, और उनका वज़न कई पौंड बढ़ गया।

रामशरण सिंघानिया

× × ×

२. चंद्रमा तक बम-गोला

वैज्ञानिकों ने पृथ्वी का प्रायः प्रत्येक कोना छान डाला है। उन्होंने अज्ञात स्थानों के रहस्यमय विवरण को सर्व-साधारण के सामने ला रक्खा है, उन स्थानों के नक़्शे खींचकर उनका ज्ञान कराया है। केवल दोनों ध्रुवों का कुछ स्थान हमारे लिये अज्ञात पड़ा हुआ है; किंतु वैज्ञानिक लोग ध्रुवों की यात्रा करने के विचार में हैं। इससे जान पड़ता है कि वह थोड़ा-सा स्थान भी इन न थकनेवाले, अपनी धुन के पक्के, पर्यटकों से बचा नहीं रहेगा। इधर ब्रूस साहब का दल 'गौरीशंकर' की चोटी

पर चढ़ना चाहता है, तो उधर अलफ़्रेड हर्टेल साहब कुछ वैज्ञानिकों के साथ पाताल का पता लगाने के लिये निकले हैं। मतलब यह कि पृथ्वी का कोई भी स्थान वैज्ञानिकों की तीक्ष्ण दृष्टि से छिपा नहीं रह सकेगा; ऐसा कोई स्थान नहीं रहेगा, जहाँ उनके चरणों की रज न पड़े।

जब वैज्ञानिक सारी पृथ्वी मँझा आवेंगे, तब क्या करेंगे? चुप तो बैठे नहीं रह सकते। शायद उनका ध्यान पृथ्वी के सबसे निकटतम ग्रह—चंद्रमा—की ओर फिरे। इस ग्रह को हमारा सबसे शक्तिशाली दूरवीक्षण-यंत्र हमसे केवल ४० मील की दूरी पर ला देता है। उससे देखने से हमें जो बातें मालूम हुई हैं, वे भी किसी से छिपी नहीं हैं। किंतु इसी से वैज्ञानिक संतुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें चंद्रमा तक किसी प्रकार पहुँचने की धुन सवार है। भला ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य होगा, जो जान-बूझकर मृत्यु-मुख में जाना चाहे? इसलिये वैज्ञानिक लोग एक ऐसा बम-गोला यहाँ से चंद्रमा तक भेजना चाहते हैं, जो उनके पथ-प्रदर्शक का काम करे। क्लार्क-विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर आर० एच्० गोडार्ड आगामी वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में अपना गोला चंद्रमा की ओर भेजेंगे।

प्रोफ़ेसर गोडार्ड और उनका बम-गोला

प्रोफ़ेसर साहब अपने गोले को इतनी शक्ति से छोड़ेंगे कि वह प्रति सेकिंड साढ़े छः मील से भी अधिक चाल से जायगा। यह शक्ति उसे पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के बाहर पहुँचा देने के लिये काफ़ी है। यदि शक्ति में किसी कारण कमी पड़ गई, तो बम-गोले में ऐसे भी छोटे-छोटे गोले लगे हुए हैं, जो फट-फटकर उसे आगे बढ़ने में सहायता पहुँचावेंगे। जब वह पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के बाहर हो जायगा, तो फिर चालक-शक्ति की आवश्यकता नहीं रहेगी; क्योंकि चंद्रमा की आकर्षण-शक्ति उसे अपनी ओर आप खींच लेगी।

यह बम-गोला इतना छोटा भी नहीं है कि चंद्रमा तक पहुँचते-पहुँचते हमारी आँखों से ओझल हो जाय। इसकी और चंद्रमा की चाल का हिसाब पहले से लगा लिया जायगा, जिसमें यह जाकर चंद्रमा के उसी हिस्से से टकर खाय, जो हमें उस समय देख पड़ता होगा। रास्ते-भर एक शक्तिशाली दूरदर्शक की सहायता से दो आँखें उसका पीछा करती रहेंगी। बम-गोले के सिरे पर विस्फोटक पदार्थ रक्खा रहेगा, जो चंद्रमा के साथ टक्कर खाकर जल उठेगा, और आसपास के स्थानों को प्रकाशित कर देगा। उस प्रकाश की सहायता से चंद्रमा का कुछ हिस्सा प्रोफ़ेसर साहब, टेलिस्कोप द्वारा, अवश्य देख सकेंगे।

यदि प्रोफ़ेसर गोडार्ड साहब की कल्पना ठीक निकली, तो यह जानने में हमें देर नहीं लगेगी कि चंद्रमा में मनुष्य रहते हैं, या नहीं। इस विषय पर बहुत दिनों से झगड़ा चल रहा है। कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि चंद्रमा में हवा नहीं है, इसलिये वहाँ कोई प्राणी नहीं रह सकता। दूरवीक्षण-यंत्र द्वारा जो परीक्षाएँ अब तक हुई हैं, उनसे भी जाना जाता है कि चंद्रमा में किसी प्राणी का चिह्न नहीं है। किंतु प्रोफ़ेसर डब्ल्यू० एच्० पिकरिंग का मत इसके विपरीत है। वह कहते हैं, चंद्रमा में ज्वालामुखी-पर्वतों के चिह्न पाए जाते हैं। उनका विश्वास है कि उन्होंने वायु की एक पतली सतह भी चंद्रमा के चारों ओर देखी है। कभी-कभी वहाँ बरफ़ भी गिरती है। इन बातों से यह जाना जाता है कि चंद्रमा में तरी तथा वायु, दोनों हैं। इसलिये वहाँ प्राणी भी रह सकते हैं।

चंद्रमा का ताप-मान जानना भी एक आवश्यक विषय है। यदि उसके चारों ओर वायु-मंडल न होगा,

तो सूर्य की गरमी सीधी पड़ती होगी, और वह आसानी से निकल भी जाती होगी। चंद्रमा अपने चौदह दिन के 'दिन' में या तो खौलता रहता होगा, या बरफ़ से भी ठंडा रहता होगा। चंद्रमा का ताप-मान उन लोगों के लिये जानना बहुत ही ज़रूरी है, जो बम-गोले के पीछे सर्व-प्रथम चंद्रमा की यात्रा करेंगे। प्रोफ़ेसर साहब का विचार है कि जैसे मनुष्य पानी के नीचे पनडुब्बियों में बैठा हुआ बहुत देर तक रह सकता है, वैसे ही वह कम-से-कम कुछ देर तक वहाँ भी रह सकता है, जहाँ हवा नहीं है। यदि मनुष्य के

पृथ्वी से चंद्रमा तक जाता हुआ बम-गोला

कपड़े गरमी और सरदी के अच्छे रोकने-वाले हुए, तो चंद्रमा में जानेवाले मनुष्यों को, एकाएक ताप-मान में अंतर पड़ जाने के कारण, अधिक कष्ट न होगा।

चंद्रमा में प्राणियों का रहना कैसे संभव है? प्रो० पिकरिंग समझते हैं कि वहाँ इतर जाति के वनस्पतियों के सिवा और कुछ नहीं है। सो भी उन स्थानों में, जहाँ तरी अधिक है। प्रो० गोडार्ड का कहना है कि किसी भी हालत में चंद्रमा में हमसे उन्नत प्राणी नहीं रह सकते। वहाँ के प्राणियों के कार्य हमारे देखने में नहीं आते, और न शहर आदि ही देख पड़ते हैं। पर अब इस प्रकार की बहस करने का प्रयोजन ही नहीं रहा, जब प्रो० गोडार्ड का बम-गोला शीघ्र ही चंद्रमा का रहस्य खोलनेवाला है।

रमेशप्रसाद

१. महिलाओं की माँग

बंबई की महिलाओं की एक विराट् सभा उस दिन लेडी कावसजी-जहाँगीर के सभा-नेतृत्व में हुई। एक प्रस्ताव पास किया गया. जिसमें बंबई-सरकार को भारत-सचिव और भारत-सरकार के पास सिफ़ारिश करने को कहा गया कि रिफ़ार्म-ऐक्ट में आवश्यक परिवर्तन कर दिए जायँ, जिससे महिलाएँ भी कौंसिल की सदस्या हो सकें। सभी जाति की महिलाएँ सभा में मौजूद थीं, और बड़ी प्रभावशालिनी वक्तृताएँ हुईं।

× × ×

२. राष्ट्रीय बालिका-विद्यालय

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि बंबई में एक राष्ट्रीय बालिका-विद्यालय की अत्यंत आवश्यकता थी, जिसमें भारतवर्ष की भावी माताओं को उचित रूप से शिक्षा दी जाती। वर्तमान समय में, बंबई में, स्वराज्य-सभा की ओर से एक कन्या-पाठशाला स्थापित हुई है। इस पाठशाला का जन्म असहयोग के ज़माने में हुआ था, और स्वयं महात्मा गाँधी ने अपने हाथों इसकी नींव रक्खी थी। लो० तिलक के नाम पर यह चलती है। इसमें मराठी तथा गुजराती, दोनों भाषाओं की शिक्षा दी जाती है। प्राथमिक और माध्यमिक, दो विभाग भी हैं। बच्चों के लिये कोई दूसरी प्राइमरी राष्ट्रीय पाठशाला बंबई में नहीं है। इसीलिये दस वर्ष से कम उम्रवाले लड़के भी प्राइमरी क्लास में भरती किए जाने लगे हैं। पाठ्य विषय इस मतलब से रक्खे गए हैं कि कन्याएँ देश तथा समाज के आधुनिक आवश्यकीय विषयों में पूरी दक्षता हासिल कर लें। प्रतिवर्ष की उन्नति को देखकर, अनुभव के आधार पर, यह आशा की जाती है कि जिस मतलब से इस पाठशाला की नींव डाली गई है, वह निकट-भविष्य में सफलीभूत होगा। पिछले दो वर्षों तक विद्यार्थियों को गुजरात तथा तिलक-विद्यापीठ की परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिये तैयार कराया जाता था। मिस तुलस्कर एम्० ए० (अमेरिका) स्कूल की प्रधान अध्यापिका हैं। इनकी देख-रेख में पाठशाला दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति करती जा रही है। बालिकाएँ केवल स्कूली शिक्षा प्राप्त करने में ही नहीं लगी रहतीं; वे देश-सेवा-व्रत में भी अपने अमूल्य समय का कुछ अंश लगाया करती हैं। स्कूल का एक अपना 'स्वदेशी स्टोर्स' भी है। स्कूल के शुभ-चिंतक तथा उसमें काम करनेवाली अध्यापिकाएँ बराबर जी-जान से इसकी उन्नति चाहती रहती हैं। किंतु अर्थाभाव के कारण उनके काम में बहुधा बाधा पहुँचती है। वर्तमान समय में एक उत्तम भवन तथा एक विस्तृत खेलने के मैदान का होना अत्यंत आवश्यक जान पड़ता है। स्वदेश-प्रेमी तथा परोपकारी सज्जनों को, जो स्त्री-शिक्षा के प्रचार को अपना एक लक्ष्य समझते हैं, इस संस्था की सहायता के लिये तन-मन-धन से लग जाना चाहिए। यदि यह उत्तम

संस्था जीती-जागती रही, तो मा-बाप अपनी कन्याओं को वहाँ भेजकर, उन्हें शिक्षिता बनाकर, देश तथा समाज का कल्याण करने में हाथ बटा सकेंगे। महात्मा गाँधी की दिव्य दृष्टि इस स्कूल पर बराबर लगी रहती है, और आप बराबर इसकी भलाई पर ध्यान दिया करते हैं।

× × ×

३. बंबई-महिला-एसोसिएशन की प्रगति

गत ८वीं मई, १९१७ ई० को मदरास-प्रांत के अड्यार-निवासी श्रीयुत जिनारजदास की सुयोग्य धर्मपत्नी के कठिन परिश्रम तथा उद्योग के द्वारा भारतीय महिला-संघ की स्थापना हुई थी। संघ का मुख्य उद्देश्य भारतीय महिलाओं का संगठन करना, उनमें पारस्परिक प्रेम उत्पन्न कराना, आत्मोन्नति के लिये प्रयत्न करते रहना, आदर्श शिक्षा का प्रचार करना तथा परोपकार में हाथ बटाना आदि है।

२४वीं जुलाई, १९१७ ई० को श्रीमती हीराबाई ताता ने कठिन अध्यवसाय और परिश्रम से उक्त संघ की एक शाखा-सभा बंबई में स्थापित की थी। उक्त श्रीमती ताता जब तक बंबई में रहीं, उत्कट प्रेम तथा अवर्णनीय उत्साह के साथ काम करती रहीं। अब तो प्रायः ४० अन्य शाखा-सभाएँ, देश के भिन्न-भिन्न भागों में, खुल गई हैं। उनमें बालिका, युवती और प्रौढ़ा स्त्रियों को अँगरेज़ी-भाषा की शिक्षा, गृहिणी-शिक्षा तथा उनके योग्य और-और अनेक काम सिखलाए जाते हैं। उन्हें स्त्री-जाति की उन्नति के लिये किए जानेवाले हरएक आंदोलन में भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाता है।

प्रायः सभी जातियों की स्त्रियाँ उक्त संस्था की सदस्या बन सकती हैं। गत सन् १९२१ ईसवी के ऑगस्ट-मास में कुल सदस्याओं की संख्या २२८ थी। सन् १९२३ ई० के सितंबर-मास के बीच तक एक ने इस्तीफ़ा दे दिया, और छः की मृत्यु हो गई। उनके स्थान पर १८ और नई भरती हुईं। अतः इस समय इनकी संख्या २३१ है। सदस्याएँ अपनी उन्नति करने के लिये प्रायः हरएक काम करने में स्वतंत्र हैं। वे अपनी पिछड़ी हुई बहनों को भी सहयोग-पूर्वक उन्नत बनाने का महान् श्रेय ले सकती हैं। सदस्याओं में कुछ अवैतनिक शिक्षिकाओं का काम भी करती हैं। कितनी अध्ययन करती हैं। इन शाखा-समितियों में कितने ही स्कूल ऐसे भी हैं, जो सर्व-साधारण के चंदे से चल रहे हैं।

× × ×

४. शिक्षा का काम

अपोलो-स्ट्रीट फ़ोर्ट के 'क्लावेंसकी लॉज हाल' में रविवार को छोड़ प्रतिदिन प्रायः ३½ बजे से ५½ बजे तक संध्या-समय मुफ़्त शिक्षा दी जाती है। इस स्त्री-शिक्षालय में बालिका तथा प्रौढ़ा, दोनों ही विद्याध्ययन करती हैं। वहाँ अँगरेज़ी-भाषा और विविध प्रकार के लाभदायक विषयों तथा सब प्रकार के सूची-कर्म, चित्र-विद्या, स्वास्थ्य-तत्त्व, गृहिणी-कर्तव्य तथा चरित्र-गठन आदि की शिक्षा दी जाती है।

अधिकांश स्त्रियाँ क्लासों में शिक्षा पाती हैं, किंतु कुछ केवल सूची-कर्म को ही लेकर संतोष करती हैं। दो वर्षों के भीतर १४१ स्त्रियों और बालिकाओं ने इस स्कूल से लाभ उठाया है। इनमें कुछ बंबई-म्युनिसिपलिटी के बालिका-विद्यालयों की शिक्षिकाएँ भी थीं, जो सूची-कर्म तथा चित्र-विद्या आदि सीखकर अपने-अपने स्कूलों में इन विद्याओं का प्रचार कर रही हैं।

गोपीनाथ वर्मा

× × ×

५. मिसर की वीर और देशभक्त महिला

इस समय मिसर को स्वराज्य मिल गया है। पर इसके लिये उद्योग भी काफ़ी करना पड़ा है, काफ़ी कष्ट भी झेलने पड़े हैं। केवल पुरुषों ने ही नहीं, स्त्रियों ने भी यथेष्ट चेष्टा की है। वहाँ स्त्रियों ने उन्नति के लिये जो आंदोलन किया, उसका आरंभ तो पहले ही हो चुका था, मगर सन् १९१९ ई० से उस आंदोलन ने ज़ोर पकड़ा। कुछ शिक्षित और उच्च विचारवाली स्त्रियों ने काम करने के लिये एक प्रतिनिधि-मंडल बनाया। पर यह जागृति वहाँ के उच्च घरानों की मुसलमान स्त्रियों में ही परिमित थी। कुछ ईसाई स्त्रियाँ भी उनके साथ थीं। धीरे-धीरे विद्या-प्रचार के साथ-साथ मध्य-श्रेणी की स्त्रियों में भी यह आंदोलन फैल गया। अब तो साधारण किसानों की स्त्रियाँ भी अपने देश की सेवा के महत्त्व को अच्छी तरह समझ गई हैं। शिक्षित, धनी और धनी होने के साथ ही शिक्षित जितनी स्त्रियाँ मिसर में हैं, उन सबने देश की स्वतंत्रता के लिये अंतिम समय में पूर्ण चेष्टा की थी। मिसर के उन्नति

और स्वतंत्रता के आंदोलन में मर्दों के प्रधान नेता का काम श्रीयुत जगलुल पाशा करते थे। वैसे ही स्त्री-समाज के नेतृत्व का सम्मान उक्त पाशा महाशय की स्त्री को प्राप्त था। श्रीमतीजी ने अपने पति को निर्वासन-दंड प्राप्त होने पर तो अनंत धैर्य के साथ पुरुषों और स्त्रियों, दोनों का नेतृत्व कर अपनी अपूर्व शक्ति का परिचय दिया था। आप देश की स्वाधीनता के लिये चेष्टा करने के साथ-साथ स्त्री-समाज की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति के लिये भी बराबर पूर्ण उद्योग करती रहती थीं, और वह क्रम अब तक जारी है। जब जनवरी, सन् १९२२ में श्रीयुत जगलुल पाशा को फिर निर्वासन-दंड दिया गया, तब उनकी अर्द्धांगिनी ने कहा था—आज से अपने पति का उठाया हुआ आंदोलन मैं चलाऊँगी; उनके शुरू किए हुए सब काम मैं बंद न होने दूँगी। पाशा के साथ और भी कई देशभक्तों को देश-निकाले का दंड मिला था। उन सबकी स्त्रियों के साथ जगलुल पाशा की स्त्री एक अद्भुत प्रकार का तपस्वी-जीवन व्यतीत करती थीं।

विलायत के मासिक पत्र "सेंचुरी-मैगज़ीन" में मिस्टर ग्रेस टामसन सेटन ने इस विषय में एक अच्छा लेख लिखा था। उसी के आधार पर यह नोट लिखा जा रहा है। उक्त मि० टामसन एक बार जगलुल पाशा की श्रीमती से मिलने गए थे। वहाँ उन्होंने देखा कि उनके साथ काम करनेवाली स्त्रियों का उत्साह कभी कम होने-वाला नहीं है। साहब ने देखा, पहले जहाँ द्वार पर एक फ़ौज का पहरा रहता था, वहाँ एक स्त्री आधुनिक ढंग की पोशाक में बैठी है। जगलुल की स्त्री को जब मालूम हुआ कि एक साहब उनसे मिलने आए हैं, तब वह निस्संकोच बाहर आ गईं। उनके केश कुछ लालिमा-मिश्रित भूरे रंग के थे। आँखों से प्रकट होता था कि उन्हें लोगों के आंतरिक भाव जान लेने का अच्छा अनुभव है। उनकी दृष्टि वैसी ही तीक्ष्ण थी, जो हृदय की तह तक घुस जाती है। और, जो स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित थीं, वे बातचीत के सिलसिले में अपने देश की दुर्दशा और दुःखों का हाल सुनकर उत्तेजित हो उठती थीं, मगर पाशा की स्त्री में उत्तेजना का लेश भी नहीं था। वह पहले ही की तरह शांति के साथ मधुर स्वर में वार्तालाप करती रहीं। अंत में उन्होंने कहा—"मैं अपनी इच्छा से ही घर में इस तरह क़ैद-सी हूँ। मेरे पति-देव सिली-शेल्स-टापू में क़ैद हैं तो क्या हुआ, मैं उनकी स्त्री उनकी जगह पर काम करने को यहाँ मौजूद हूँ।

पहली बार २२ दिसंबर, सन् १९२१ में, जब जगलुल पाशा गिरफ़्तार हुए, तब उनकी श्रीमती ने देखा कि बहुत-से लोग पाशा को छुड़ाने के लिये भीड़ किए खड़े हैं, और सैनिक उन्हें तितर-बितर करने के लिये सख़्ती करते हैं। श्रीमती का इरादा पहले अपने पति के साथ जाने का था। मगर उसी समय उन्हें देख पड़ा कि एक १५-१६ वर्ष का लड़का सैनिकों की गोली से ज़ख़्मी होकर आँगन में मरा पड़ा है। उसी समय उन्होंने निश्चय किया कि वह अब पति के साथ न जायँगी। कारण, इस समय उनकी जितनी आवश्यकता देश को है, उतनी पति को नहीं। उन्होंने तत्काल मिसर के अँगरेज़ शासक लॉर्ड एलेनबी के पास कहला भेजा—"मैं मिसर में ही रहूँगी, और अपने पति का स्थान प्राप्त करने के लिये भरसक कोशिश करूँगी।" आपने यह भी कहला भेजा कि "तुम मेरे पति के शरीर को भले ही देश से निकाल दो, मगर देश में उन्होंने जो भावना उत्पन्न कर दी है, जो असंतोष भर दिया है, उसे कभी देश से नहीं निकाल सकते। मैं उनकी स्त्री हूँ, और इसीलिये उनके लौट आने तक उनका काम चलाती रहूँगी।" श्रीमती ने स्वदेशवासियों के लिये, झगड़ा न करने और शांति बनाए रखने के लिये, समय-समय पर आज्ञाएँ निकालीं, और वे समाचारपत्रों में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। पूर्वोक्त टामसन साहब से, मुलाक़ात ख़तम हो जाने पर, श्रीमती ने जल-पान करने का आग्रह किया। उन्हें घर के बने फुलके और चाय दी गई। श्रीमती ने उनसे कहा—"आपको मालूम होगा कि आजकल बहिष्कार-आंदोलन के कारण मैं कोई विलायती चीज़ नहीं ख़रीदती। इससे यह साधारण जल-पान करके ही आपको संतुष्ट होना पड़ेगा।" अँगरेज़ी माल के बहिष्कार का आंदोलन नेताओं के देश-निकाले की सज़ा का विरोध करने के लिये स्त्री-मंडल ने शुरू किया था। उसमें लाफ़ेम्मी नोवेल (नई स्त्री) नाम की संस्था और "महम्मद अली-समाज" की स्त्रियों ने भी बड़ा काम किया था।

जनवरी, सन् १९२२ से यह बहिष्कार शुरू हुआ था। स्त्रियों ने सभी आधुनिक नवीन उपायों से काम लिया

था । छः-सात स्त्रियों ने टेलीफ़ोन के ज़रिए दूकानदारों से प्रार्थना की कि वे अँगरेज़ी माल का व्यापार बंद कर दें । लगभग २० स्त्रियों ने कैरो (Cairo) और सिकंदरिया (पहली मिसर की राजधानी है, और दूसरा प्रधान नगर) के व्यापारियों से मिलकर अँगरेज़ी माल के बायकाट की सूचना दी । पहले तो दूकानदार लोगों ने उनके उक्त प्रस्ताव को हँसकर टाल दिया, किंतु बाज़ार की हालत देखकर एक सप्ताह के बाद ही व्यापारियों का एक प्रतिनिधि-दल स्त्रियों से मिलने आया । उसने स्त्रियों से असहयोग छोड़कर सहयोग करने के लिये कहा । पर स्त्रियों ने उनकी एक न सुनी । उक्त बहिष्कार जारी रखने के लिये चालीस स्त्रियों की एक प्रधान समिति और कई उपसमितियाँ क़ायम की गई थीं । बहिष्कार ने अँगरेज़ व्यापारियों को बड़ी हानि पहुँचाई । तब विवश होकर ब्रिटिश-साम्राज्य के कर्णधारों ने मिसर के एक स्वाधीन राज्य होने की घोषणा कर दी, और अपनी सेना भी वहाँ से हटा ली । विरोध धीरे-धीरे कम होने लगा । लोग विदेशों से व्यापार करने लगे । फिर भी बहुत-से व्यापारी कुछ दिनों तक हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहे ।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के आंदोलन में श्रीयुत वहीदुद्दीन की स्त्री भी बड़े उत्साह से काम करती थीं । एक बार उन्होंने बाज़ार में देखा कि दो मिसरी आदमी एक अँगरेज़ व्यापारी की दूकान में घुसे । आप भी उनके पीछे ही उस दूकान में पहुँचीं, और उन्हें कुछ भी नहीं ख़रीदने दिया । कुछ ही समय पहले मिसर में यह घटना असंभव थी कि एक बाईस वर्ष की नौजवान परदानशीन मुसलमान महिला दो मर्दों पर ऐसा प्रभाव डाले । जगलुल पाशा की श्रीमती परदे के अंदर खड़ी होकर मिसर की स्वाधीनता पर अक्सर व्याख्यान दिया करती थीं । उनके व्याख्यान सुनकर श्रोता लोग मंत्र-मुग्ध-से हो जाते थे, और उनकी आँखों से आँसू बहने लगते थे । स्त्रियों में जागृति होने के कारण उनके सहयोग से मिसर के नेताओं को शिक्षा-प्रचार तथा सामाजिक सुधार में अच्छी सफलता प्राप्त हुई है । स्त्रियों के इस आदर्श ने देश को यह लाभ पहुँचाया है कि वहाँ के ईसाई और मुसलमान समान उत्साह से देश का काम करते थे, और अब भी करते हैं । एकता में बल के सिद्धांत को मानकर मिसर के लोग काम कर रहे हैं । वहाँ धार्मिक हठ या पक्षपात बहुत घट गया है । मुसलमान और ईसाई नर-नारी सब मिलकर काम कर रहे हैं । उनकी इस अखंड एकता ने ही उन्हें इतनी जल्दी वह स्वराज्य दिलवा दिया है, जिसे आयरलैंड या भारत अब तक नहीं पा सका । पूर्वोक्त "लाफ़ेम्मी नोवेल" नाम की संस्था ने व्यापार-शिक्षा के स्कूल-कॉलेज, अस्पताल, शिक्षा के भिन्न-भिन्न विभाग, नागरिक शिक्षा, स्वास्थ्य-भवन, क्रीड़ा-भूमि आदि की स्थापना भी अपने लिये कर ली है । अमेरिका के-जैसे सामाजिक क्लब खोलने के लिये उसने ४०,००० डालर का चंदा जमा कर लिया है । मिसरी स्त्रियों की इस बृहत् और प्रधान संस्था का संकल्प है कि स्वदेश की भलाई के लिये स्वदेश-हित के सभी काम वह अपने हाथ में लेगी । यह काम धीरे-धीरे किया जायगा । अभी स्त्रियाँ शक्ति-संचय करती हुई यथाशक्ति अज्ञान और कुरीतियाँ दूर करने का उद्योग कर रही हैं । संसार में आजकल जो हलचल मच रही है, उन्नति, स्वतंत्रता या आत्मनिर्णय का उद्योग चल रहा है, उसमें स्त्रियों का उद्योग कम नहीं है । सभी देशों में, जहाँ पुराने रीति-रिवाज (जिनसे हानि समझी जा रही है) और एकतंत्र शासन का आधिपत्य है, सर्व-साधारण का आंदोलन, उस शासन और रीति-रिवाजों के विरुद्ध, जारी है । जहाँ स्त्रियाँ मर्दों के साथ मिलकर काम कर रही हैं, वहाँ सफलता होना निश्चित है । आशा है, भारत की स्त्रियाँ भी मर्दों के साथ मिलकर अधिक मात्रा में अपना उद्योग और देश-सेवा का काम करने में किसी देश की बहनों से पीछे नहीं रहेंगी ।

× × ×

६. श्रीमती सरलादेवी फिर संपादिका

स्वर्गीय श्रीरामभजदत्त चौधरी की धर्मपत्नी श्रीमती सरलादेवी बंगाल के सुप्रसिद्ध टैगोर-परिवार की कन्या और सुशिक्षिता हैं । आप पहले सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका भारती (बँगला) का संपादन बड़ी योग्यता के साथ करती थीं । अब फिर आपने उसके संपादन का कार्य अपने हाथ में ले लिया है । आपकी संपादकता में भारती का वैशाख का अंक बहुत सुंदर निकला है । इसमें संदेह नहीं कि आप भारतीय स्त्री-समाज के लिये गौरव-स्वरूपा हैं ।

"सौभाग्यवती"

१. काव्य
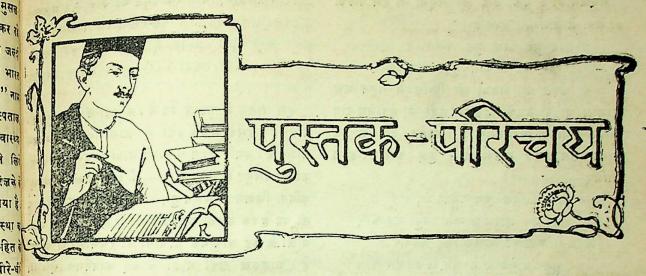
श्रीकृष्णयशगायन—रचयिता, स्व० सेठ रामदयालुजी नेवटिया । प्रकाशक, दिलसुखराय-जयनारायण नेवटिया फ़तेहपुर (जयपुर)। पृष्ठ-संख्या ४०० के लगभग। कागज़ अच्छा तथा छपाई सुस्पष्ट। मूल्य 'हरिकीर्तन की इच्छा'। प्रकाशक तथा हिंदी-मंदिर, प्रयाग से मिलती है।

स्वर्गीय सेठ रामदयालुजी नेवटिया मारवाड़ी-कुलोत्पन्न तथा जयपुर-निवासी थे। आप बड़े ही सज्जन, उदार, धर्मात्मा तथा विद्याव्यसनी थे। आप संतति तथा धन आदि से भी सुखी थे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से भी आपका परिचय था। हाल ही में, संवत् १९७९ में, आपका स्वर्गवास हो गया। नेवटियाजी पद्य-रचना भी करते थे। श्रीकृष्णगायन में आपके तीन ग्रंथ—प्रेमांकुर, लक्ष्मण-मंगल और बलभद्र-विजय—संगृहीत हैं। पुस्तक के आदि में श्रीयुत रामनरेशजी त्रिपाठी ने सेठजी की एक छोटी-सी जीवनी भी दे दी है। आरंभ में मुरलीमनोहर का एक रंगीन चित्र तथा उसके बाद सेठजी का भी एक चित्र दिया गया है। उक्त नेवटियाजी ने मारवाड़ी होकर भी हिंदी में पद्य-रचना की, यह बात उनके हिंदी-प्रेम की सूचना देती है। आपके पद्यों को पढ़ने से जान पड़ता है, आप हरिकीर्तन-प्रिय, भक्त, हृदय के अच्छे, विचारशील हिंदू थे। आपकी रचनाओं में कवित्व-गुण की झलक भी कहीं-कहीं पर मौजूद है; पर आपके अधिकांश पद्यों के देखने से जान पड़ता है, आपमें मौलिकता बहुत कम थी। पुराने कवियों के भावों को बहुत कम परिवर्तन करके आपने रख दिया है। परिवर्तन-कार्य भी आपका शिथिल हुआ है। प्राचीन कवियों के सुंदर और अनुपम भावों को साधारण पद्य-रचयितागण क्या अपना सकते हैं? अवश्य ही वे उनकी सुंदरता को बहुत कुछ नष्ट कर देते हैं। इसी दृष्टि से अपने Pathetic fallacy-नामक लेख में महामति रस्किन ने लिखा है—

"There are few thoughts likely to come across ordinary men, which have not already been expressed by greater men in the best possible way; and it is a wiser, more generous, more noble thing to remember and point out the perfect words than to invent poorer ones, wherewith to encumber temporarily the world."

खेद है कि सेठजी ने पद्य-रचना में, अपने भजनों, दोहों तथा कवित्त और सवैया आदि में सूर और तुलसी-जैसे कविपुंगवों के भावों को पूर्णतया उठाकर रख लिया है। एक उदाहरण लीजिए—

जय जय जय गिरिराज-किसोरी; जय महेस-मुख-चंद-चकोरी।
जय गजवदन-षडानन-माता; जगत-जननि दामिनि-दुति-गाता।
इत्यादि।

गोस्वामीजी की इन अमर चौपाइयों का अनुगमन सेठजी ने इस प्रकार किया है—

जय जय जय गिरिराज-दुलारी सब विधि पूरणकामा;
जय गजराजबदन-महतारी, जय महेश प्रिय भामा

पुस्तक में ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं।

नेवटियाजी के एक दोहे का नमूना भी हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं—

विघ्न हरण सुख करण युत, विद्यादरद गणेश ;
दारिद हरण को धनपती, ज्यूँ तमहरण दिनेश ।

जान पड़ता है, सेठजी को पिंगल में बहुत कम अभ्यास था । उनके बहुत-से छंदों में छंदोभंग-दोष मूर्तिमान् होकर विराजमान है । उपर्युक्त दोहे में भी उसके दर्शन सहज सुलभ हैं । कुछ और उदाहरण लीजिए—

मुख को उद्योत देख चंद ज्योति मंद होत
नैन मृग शावक के नासा जनु कीर की ;
विद्रुम-से ओष्ठ कंठ कोकिल स्तन चक्रवाक
भुज-दंड सुंड तामें मुद्रिका हैं हीर की ।
केहर-सी लंक अंक केलिन के खंभ-जैसे
भृकुटी धनु बंक ज्यूँ कटाक्ष अनी तीर की ;
सोहत पद कंजु मंजु अंग-अंग रूप-भरी
कहि न जाय छवि राजकन्या के शरीर की ।

इस छंद के पहले पद में ३१, दूसरे तथा तीसरे में ३२ और चौथे में ३३ अक्षर हैं । नेवटियाजी के रचना-कौशल का एक नमूना हम और दिए देते हैं—

विष्णु मन मानी रिद्धि सिद्धि की निशानी
तू मुनिजन बखानी भक्ति-मुक्ति की विचारदा ;
तूँहि योगमाया, विद्या तूँहि बाक बानी रानी
तेरी मेहरबानी के गावै जस नारदा ।
कृष्णदास आश तेरी मेटो भवत्रास मेरी
कृपा की कटाक्ष मोपै कृष्ण पद प्यारदा ;
कविजन चाहवारी भक्त निर्वाहवारी
सार ही की दाता जग माँही माता शारदा ।

इसमें भी छंदोभंग मौजूद है । नेवटियाजी की भाषा में कहीं-कहीं पर मारवाड़ीपन है । हमने संपूर्ण 'कृष्ण-यशगायन' नहीं पढ़ा है ; पर यत्र-तत्र जो कुछ पढ़ने में आया, उससे हमारा विचार है कि स्व० रामदयालुजी नेवटिया बहुत ही साधारण श्रेणी के कवि थे । फिर भी वह एक अच्छे भक्त और सज्जन पुरुष थे । उनके सुयोग्य पौत्र ने इनकी कृति मुद्रित कराकर पितामह के प्रति उचित भक्ति दिखलाई है ।

× × ×

मधुप—रचयिता, पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर' । प्रकाशक, बी० पी० गुप्त ऐंड को०, ३२ मछुआ बाज़ार-स्ट्रीट, कलकत्ता । पृष्ठ-संख्या ९७ । कागज़ और छपाई बहुत सुंदर । प्रत्येक पृष्ठ लाल रंग की बेल से घिरा हुआ । कविता-संख्या १३१ । मूल्य ॥) । प्रकाशक से प्राप्य ।

इस पुस्तक में फुटकर पद हैं । कविता की भाषा खड़ी बोली है । इसके अनेक पद्यों में ख़ासा काव्य-चमत्कार मौजूद है । यद्यपि बहुत-से पुराने भावों से इस पुस्तक का कलेवर परिपुष्ट है, फिर भी पुष्करजी खड़ी बोली में अच्छी कविता लिखने में समर्थ हुए हैं । यही क्यों, हमारी राय तो यह है कि उनकी कुछ उक्तियाँ तो ऐसी हैं, जो खड़ी बोली के कई आधुनिक आचार्यों की रचनाओं से अच्छी हैं । आजकल खड़ी बोली के कई कविपुंगव ऐसे हैं, जिनके भावों को समझने का लाख उद्योग करने पर भी इस समालोचना का लेखक उन तक नहीं पहुँच पाता है । समालोच्य पुस्तक में उसे ऐसा कोई पद नहीं मिला । सभी सरल, सुस्पष्ट और प्रसाद-गुण से मंडित हैं । हमारी राय में पुष्करजी की रचनाओं की सबसे बड़ी विशेषता यही है । हम पुष्करजी को इस सफलता पर बधाई देते हैं । उनकी दो-एक उक्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

मधुप, मेरा मन सोना खरा ।
बहुत दिनों तक विरहानल में पड़ करके है जरा ;
किंतु सदा ही लक्षित होता दिव्य कांति से भरा ।
अभी नहीं समत्व साँचे में मूर्ति रूप में ढरा ;
कवि पुष्कर अच्छे सोनार के अब है कर में परा ।

इस उक्ति में अच्छी रमणीयता है । एक और उदाहरण लीजिए—

मधुप, अब तीव्र शरद ऋतु आई ।
छोटे दिवस निशा पहार सम होने लगी लखाई ;
रवि का तेज न रहा पूर्व-सा, हवा बही हरखाई ।
वृक्ष-लताएँ सूनी लगतीं पत्ती सकल गिराई ;
कवि पुष्कर जाड़े के मारे, मधु भी है महँगाई ।

इन पंक्तियों में हमें कुछ भद्दापन दिखलाई देता है । यह पद्य खड़ी बोली के उपयुक्त नहीं है । एक बात और है । पुष्करजी ने शरद् को जाड़े का पर्याय मानकर ये पंक्तियाँ लिखी हैं । तभी तो शिशिर और हेमंत का कुछ भाग शरद् में आ गया । तीव्र शरद् कैसी ?

शरद् में लताएँ सूनी लग सकती हैं, उनकी पत्तियाँ गिर सकती हैं?

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

सूरसुधा—मनोरंजन-पुस्तकमाला की ४०वीं मणि। संपादक, बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० तथा मिश्रबंधु। प्रकाशक, काशी की नागरीप्रचारिणी-सभा। मूल्य १) है।

कुछ दिन पहले तक पुराने कवियों की रचनाओं पर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता था। हर्ष की बात है कि अब कुछ-न-कुछ दिया जाने लगा है। यह इसी का परिणाम है कि सूरदास की सुंदर रचनाओं के तीन सार-ग्रंथ इन दो वर्षों के भीतर ही हिंदी-संसार को उपलब्ध हुए हैं। पहले कभी कलकत्ते के वंगवासी प्रेस से 'सूरसंगीतसार' निकला था। परंतु उसमें भूलों और दोषों की भरमार थी। और बड़ा सूरसागर पढ़े कौन? अस्तु, हर्ष का विषय है कि हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक मिश्रबंधुओं ने भी सूर के रचना-सागर का यह सार निकालकर सर्व-साधारण के सम्मुख रख दिया। आशा है, कोई सज्जन पुराने कवियों की कृति पर आलोचनात्मक ग्रंथ भी लिखेंगे; क्योंकि ऐसे ग्रंथों की बड़ी आवश्यकता है। जिन लोगों के पास पूरे सूर-सागर में डुबकी लगाने का समय या साधन न हो, उनके लिये यह पुस्तक काम की है। और भी लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। ६ पृष्ठ का शुद्धि-पत्र और १८ पृष्ठ की भूमिका छोड़कर भी इसमें २७४ पृष्ठ हैं। छपाई-सफ़ाई भी बहुत अच्छी है। इतने पर भी सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) ही है! इसमें संदेह नहीं कि मिश्रबंधुओं ने इसका संपादन बड़ी योग्यता से किया है।

× × ×

वीर-पुष्पांजलि—पृष्ठ-संख्या (छोटी साँची) ५५। प्रकाशक, प्रेम-मंदिर, आरा। मूल्य लिखा नहीं।

यह पुस्तक जैन-हितैषी के संपादक पं० जुगलकिशोर मुख़्तार के पद्यों का संग्रह है। प्रेमोपहार, महावीर की वाणी, जैन संबोधन, पठन क्योंकर हो आदि १४ विषयों पर रचना की गई है, जो कि साधारण है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई बहुत अच्छी है।

× × ×

रसालवन—यह भी पुस्तक पद्य में है। पहला संस्करण आरा के स्वर्गीय कुमार देवेंद्रप्रसाद जैन ने निकाला था।

यह दूसरा संस्करण श्रीयुत लक्ष्मीचंद्र जैन बी० ए० ने जैन-होस्टल, प्रयाग से निकाला है। यह पुस्तक 'बेनीमाधव-ग्रंथमाला' का प्रथम कुसुम है, और इसके लेखक हैं भूतपूर्व मर्यादा-संपादक श्रीगिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'। पंडित अयोध्यासिंहजी उपाध्याय को समर्पित की गई है, तथा भूमिका श्रीमती चंदाबाई जैन ने लिखी है। इस २३ पृष्ठ की पुस्तक में दिखाया गया है कि नई बहुओं पर सासें किस प्रकार अत्याचार किया करती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा बहुत होता है, और इसके परिणाम कभी-कभी भीषण हो जाते हैं। कहानी हृदय-द्रावक है। रचना अच्छी है, छपाई-सफ़ाई भी अच्छी है। मूल्य केवल ।-) है। पढ़ी-लिखी स्त्रियों को इसे स्वयं पढ़ना और बे-पढ़ी स्त्रियों को सुनाना चाहिए।

× × ×

साध्वी सुलोचना—लेखक, श्रीप्रेमदास वैष्णव, मालगुज़ार मौज़ा माचामाट, ज़िला रायपुर सी० पी०। प्रकाशक भी शायद आप ही हैं। छोटी साँची के २६ पृष्ठों की यह पुस्तक उन्हीं से ≋)॥ में मिल सकेगी।

यह खड़ी बोली में एक खंड-काव्य है। विषय नाम से ही प्रकट है। रचना मज़े की है। पढ़ने में जी लगता है। लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

× × ×

मानस-पीयूष—तुलसी-कृत रामायण के बाल कांड के १७ से २७ दोहे तक की टीका। संग्रहकर्ता, श्रीसीतारामजी के एक सेवक। प्रकाशक, बाबू सम्मनलाल बी० ए०, एल्-एल्० बी०, वकील हाईकोर्ट फ़ैज़ाबाद। ९९ पृष्ठ। मूल्य ॥≈) है।

इसमें भावार्थ, शंका-समाधान, टिप्पणी आदि देकर अर्थ को ख़ूब ही स्पष्ट किया गया है। यह प्रत्येक रामायणी के काम की है। इसमें ख़ूब ही छान-बीन की गई है। पहले सत्रह दोहे क्यों छोड़ दिए गए, यह समझ में नहीं आया। आगे इसके और भी भाग प्रकाशित होंगे। यदि समग्र रामायण पर यह टीका हो जाय, तो बड़ा भारी काम हो।

× × ×

वल्लभ-संग्रह (प्रथम भाग)—संग्रहकर्ता और प्रकाशक, जयपुर-राज्यांतर्गत डूँडलोद ठाकुर साहब हरनाथसिंहजी के भूतपूर्व तथा राजकुमार खंडेला छोटा पाना के वर्तमान अध्यापक हरिवल्लभ शर्मा। इसका मूल्य ।ू) है; पृष्ठ-संख्या १०४।

संग्रहकार ने बाल्यावस्था से जो मनोरंजक या शिक्षा-प्रद कविताएँ सुनी हैं, उन्हीं में से कुछ का यह संग्रह है। ईश्वर-लक्षण, भक्ति, नीति आदि विषयों पर रचनाएँ दी हुई हैं, जिनमें प्रायः छंदोभंग दोष दिखाई देता है। पुस्तक संतोषियों के काम की है। रचनाएँ पुरानी चाल की हैं।

नवासीलाल

× × ×

बालमनोरंजन (द्वितीय भाग)—प्रणेता, ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। प्रकाशक, पुस्तक-भवन, काशी। पृष्ठ-संख्या १०६। मूल्य छः आने। प्रकाशक से प्राप्य।

यह पुस्तक पद्य में है, और बालकों के मनोरंजन के लिये लिखी गई है। सब पद्य २७ शीर्षकों में विभक्त हैं। ऐसी पुस्तकों से बालकों का मनोरंजन अवश्य होता है। बाल-साहित्य के लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता भी है। लेखक अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं। अपने बाल-समाज में हम ऐसी पुस्तकों का प्रचार चाहते हैं। परंतु ऐसी पुस्तकें यदि सचित्र हों, तो और भी अच्छा। इस पुस्तक के आदि में विषय-सूची भी रहनी चाहिए। नमूने के तौर पर कुछ पंक्तियाँ दी जाती हैं—

नाम गाँव का था पुर नाइन,
रहते थे चौबे-चौबाइन।
नर-नारी थे बड़े अनारी,
बल-विवेक के वैरी भारी।
माँग-माँग जो चौबे लाते,
दोनों मिल-जुलकर खा जाते।
कभी गालियाँ चौबे देते,
चौबाइन से धक्का लेते।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

लव-कुश-युद्ध—लेखक और प्रकाशक, पं० मातादीन चतुर्वेदी. हामगंज, औरैया, इटावा। पृष्ठ-संख्या ७२; छपाई साफ़; मूल्य ।—) है।

इस पद्यात्मक पुस्तक का विषय इसके नाम से ही प्रकट है। लंका-विजय, भरत-मिलाप, राम-राज्य, सीता-त्याग और अश्वमेधारंभ आदि भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अंदर प्रसंगानुकूल पद्य-बद्ध वर्णन हैं। पुस्तक में करुण और वीर-रस की विशेष प्रधानता है। पद्य सरल और उनके भाव स्पष्ट हैं। यत्र-तत्र आवश्यक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। सीताजी ने कहीं लक्ष्मण को 'आप' और कहीं 'तू' कहकर संबोधित किया है! होनार्थ, करनार्थ, जानार्थ आदि विचित्र शब्दों के सिवा कहीं-कहीं की तुकबंदी बिगड़ गई है।

× × ×

मानस-मंजूषा (बालकांड, प्रथम भाग)—लेखक, शोभाराम धेनुसेवक। प्रकाशक, श्रीतुलसी-ग्रंथमाला-कार्यालय, लखनादौन (सिवनी—मध्य-प्रदेश)। पृष्ठ-संख्या २५९; छपाई आदि साधारणतः स्वच्छ। मूल्य डेढ़ रुपया।

इसमें रामचरित-मानस के आदिकांड की रचना की खूबियाँ दिखलाई गई हैं। बहुत-सी शंकाओं का भी समाधान किया गया है। कवि के गूढ़ भावों का रहस्योद्घाटन, कविता-गत रसों का विश्लेषण तथा उदाहरण के साथ अलंकारों का वर्गीकरण करने में लेखक ने युक्ति और परिश्रम से काम लिया है। जिन लोगों ने मानस-शंकावली, मानस-दर्पण, काव्य-प्रभाकर और रामायण की विनायकी टीका आदि ग्रंथ को ध्यान-पूर्वक देखा है, उनके लिये इस पुस्तक में कोई विशेष नवीनता नहीं है। भिन्न-भिन्न विषयों और प्रसंगों की रचनाएँ छाँटने में सहृदयता का उपयोग किया गया है। जहाँ कहीं लेखक ने लक्षण और परिभाषा लिखी है, वहाँ भाषा की शुद्धता पर कम ध्यान दिया है। कितनी ही व्यर्थ शंकाओं का समावेश कर बाल की खाल निकालने की चेष्टा और निष्प्रयोजन ही पुस्तक की कलेवर-वृद्धि की गई है। एक जगह शंका की गई है कि "मानसकार ने पाँच ही सोरठों द्वारा वंदना क्यों की?" वाह! और आपन इस पुस्तक की प्रस्तावना पाँच ही पृष्ठों में क्यों लिखी? कविता की भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द भी ढूँढ़ निकाले गए हैं। अरबी और फ़ारसी तक तो ख़ैरियत थी, अँगरेज़ी के भी शब्द पाए गए हैं। जैसे "पतंति नो भवार्णवे" में नो=No है, और "बरषहिं जलद भूमि नियराए" में नि (Near)+आए=नियराए। ऐसी ऐसी बहुत-सी निरर्थक बातों से प्रतिभा नष्ट की गई है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

२. धर्म और दर्शन

विचित्र जीवन—लेखक, पं० कालीचरण शर्मा। प्रकाशक, प्रेम-पुस्तकालय, फुलट्टीबाज़ार, आगरा। पृष्ठ-संख्या २०२। मूल्य १) प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक में इसलाम-धर्म के प्रवर्तक 'मुहम्मद साहब के जीवन की विचित्र और रहस्यमयी घटनाएँ' (?) वर्णित हैं। यह पुस्तक धार्मिक वाद-विवाद से संबंध रखनेवाली है। हमें खेद है कि इसमें मुहम्मद साहब के जीवनचरित्र पर एक ही पहलू से विचार किया गया है। धार्मिक वाद-विवाद के जोश में आकर भिन्न धर्मावलंबी पैग़ंबर, धर्माचार्य तथा महात्माओं के चरित्रों की कमज़ोरियाँ दिखलाने से कोई लाभ नहीं है। इससे केवल कलह की वृद्धि होती है। इस दृष्टि से हम ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन के पक्ष में नहीं हैं। फिर भी हम यह स्वीकार करते हैं कि पुस्तक बड़ी खोज से लिखी गई है, और साधारण पाठक इस विचित्र जीवन को पढ़कर इसलाम-धर्म के संबंध में बहुत-सी नई बातें जान सकते हैं।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

उपयोगितावाद—अनुवादक, उमरावसिंह कारुणिक, बी० ए०। प्रकाशक, चौधरी शिवनाथसिंह शांडिल्य, ज्ञानप्रकाशमंदिर, पो० माछरा, मेरठ। पृष्ठ-संख्या १२८ और मूल्य एक रुपया! छपाई सुवाच्य।

यह "स्टुअर्ट मिल की संसार-प्रसिद्ध पुस्तक 'युटिलिटेरियनिज़्म' का हिंदी-अनुवाद" पाँच अध्यायों में समाप्त हुआ है। आरंभ में छः पृष्ठों की भूमिका लिखकर अनुवादक ने पाठकों को पुस्तक का विषय, संक्षिप्त और स्पष्ट शब्दों में, सुगमता-पूर्वक, समझा दिया है। भूमिका के बाद दस पृष्ठों में मूल-ग्रंथकार का सचित्र परिचय दिया गया है। भूमिका और ग्रंथकार के परिचय से पुस्तक की उपयोगिता इतनी बढ़ गई है कि उन्हें न पढ़ने से अधिकांश हिंदी-पाठक इस गंभीर दार्शनिक पुस्तक का मर्म शीघ्र न समझ सकेंगे। इस पुस्तक का विषयारंभ पृष्ठ २८ से होता है। अंत के १३८ पृष्ठ तक पहुँचते-पहुँचते, यथेष्ट मनोनिवेश-पूर्वक अध्ययन करने पर, पुस्तक-गत विषय इतना हृदयंगम हो जाता है कि मूल-ग्रंथकार की मानसिक पूजा करने से पहले अनुवादक की सरल भाषा की प्रशंसा करनी पड़ती है। यद्यपि पुस्तक का विषय नीरस और गहन है, उसकी प्रतिपादन-शैली भी बहुत-कुछ दुरूह है, पर उससे प्राप्त होनेवाली अमूल्य शिक्षा ऐसी पवित्र है कि सदाचार-संबंधी पुस्तकों के मननशील पाठक पढ़कर बहुत प्रसन्न होंगे। इसमें कुछ ऐसे क्लिष्ट शब्द भी हैं, जिन्हें समझने में साधारण पाठकों को कठिनाई होगी। किंतु विषय की कठिनता देखते हुए इसके लिये अनुवादक को दोष देना उचित नहीं। अनुवादक ने क्लिष्ट शब्दों के वास्तविक भावों को बोधगम्य बनाने की पूरी चेष्टा की है। मतलब यह कि पुस्तक विचारशील पाठकों के लिये सुंदर है। केवल मनोरंजन के लिये जो लोग पुस्तक पढ़ा करते हैं, वे इसकी दस-बीस पंक्तियाँ पढ़कर ही ऊब जायँगे; क्योंकि इसमें मिल ने आचार-शास्त्र के जिन सूक्ष्म एवं महत्त्व-पूर्ण सिद्धांतों की युक्ति-पूर्ण पुष्टि की है, उन्हें समझने के लिये बड़े एकाग्र-चित्त और शांतिप्रिय पाठक की आवश्यकता है। खेद है कि ऐसी उपदेश-पूर्ण पुस्तक का अधिक मूल्य रखकर 'उपयोगितावाद' के सिद्धांत की उपेक्षा की गई है।

× × ×

श्रीमद्भगवद्गीता (सरल हिंदी-टीका सहित)—संपादक और प्रकाशक, भिक्षु अखंडानंद, सस्तुं-साहित्य-वर्धक-कार्यालय, कालवा देवी, बंबई, और अहमदाबाद। पृष्ठ-संख्या २३९, पाकेट-साइज़ (गुटका), कपड़े की जिल्द, छपाई स्वच्छ। आरंभ में तीन चित्र। मूल्य आठ आने।

सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय गुजराती-साहित्य-क्षेत्र में बड़ा प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। संतोष की बात है कि वह धीरे-धीरे अब हिंदी की ओर भी ध्यान देने लगा है। जिस प्रकार उसने सस्ती और सुंदर पुस्तकें निकालकर गुजराती-साहित्य का उपकार किया है, उसी प्रकार, यदि हिंदी-प्रेमी उसे उत्साहित करें तो, वह हिंदी-साहित्य की भी स्तुत्य सेवा कर सकता है। उसकी यह छोटी-सी पोथी ज्ञानानुरागियों के बड़े काम की चीज़ है। टीका सुबोध है, पर उसकी भाषा कहीं-कहीं बहुत खटकती है। हाँ, समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। आरंभ के दो पृष्ठों में शुद्धिपत्र और लगभग ११ पृष्ठों में सटीक गीता-माहात्म्य है।

× × ×

श्रीमद्भगवद्गीता (हिंदी-पद्यात्मक)—लेखक, रघुनंदनप्रसाद शुक्ल । प्रकाशक, पं० गोविंदप्रसाद शुक्ल, ३२-१ बुलानाला, काशी । पृष्ठ-संख्या ९९; कागज़ साधारण; छपाई साफ़; मूल्य आठ आने ।

इस पुस्तक में भगवान् के दो-तीन लीथो-चित्र भी हैं । आरंभ में 'अंतर-कथा' लिखी गई है, जिसमें गीता की उत्पत्ति से पूर्व का संक्षिप्त वृत्तांत है । अठारह अध्यायों में, संक्षिप्त रीति से, गीता के कर्मयोग-संबंधी भावों को प्रधानता देते हुए, साधारण पद्य-रचना द्वारा, पाठकों को गीता का मूल तत्त्व समझाने की चेष्टा की गई है । पद्य सरल तो हैं, पर कहीं-कहीं उनसे स्पष्ट भाव समझ में नहीं आता । रचना साधारण है, और छंदोभंग बहुत ।

शिवपूजनसहाय

× × ×

३. उपन्यास और कहानियाँ

श्रीकृष्ण-सुदामा—लेखक, प्रो० रामस्वरूप कौशल ; प्रकाशक, सरस्वती-आश्रम, अनारकली, लाहौर । पृष्ठ-संख्या ५+११४ । मूल्य ।|) है ।

श्रीकृष्ण-सुदामा की मैत्री की कहानी हम बचपन में पढ़ चुके थे । इस पुस्तक में इसको आधुनिक ढंग से लिखने का प्रयास किया गया है । लेखक महाशय ने भूमिका में मित्रता की व्याख्या की है, और आशा की है कि उनकी कहानी द्वारा सच्ची मित्रता का आदर्श चित्र पाठकों के हृदय में अंकित हो जायगा । पुस्तक का दूसरा नाम भी इसीलिये 'आदर्श मित्रता' रक्खा गया है । शैली यदि अधिक रोचक होती, और घटना-वैचित्र्य को यदि लेखक महाशय ने अपनी कहानी में स्थान दिया होता, तो अच्छा होता । श्रीकृष्ण के तीसरी मुट्ठी चावल फाँकने का इरादा करने पर सत्यभामा हाथ पकड़कर यही कह देतीं कि "नाथ, आप क्या कर रहे हैं ? दो लोक तो आपने दे दिए, अब तीसरा लोक भी दे दीजिएगा, तो रहेंगे कहाँ ?", तो कुछ हर्ज न होता ।

× × ×

वीर वैरागी—लेखक, श्रीयुत भाई परमानंदजी एम्० ए० । प्रकाशक, श्रीयुत राजपाल । सरस्वती-आश्रम, अनारकली, लाहौर से प्राप्य । पृष्ठ-संख्या १५० । मूल्य ।||=) है ।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक महाशय ने बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में पंजाब के प्रसिद्ध वैरागी वीर बंदा के जीवन-चरित्र का वर्णन किया है । यह वही बंदा हैं, जिन्होंने औरंगज़ेब के अंतिम काल में, पंजाब-प्रांत में, घोर विद्रोह की अग्नि भड़काकर मुग़ल-साम्राज्य को भारी धक्का पहुँचाया ; जिन्होंने बहादुरशाह के दाँत खट्टे किए ; और जिन पर फ़र्रुख़सियर ने सिखों में फूट का बीज बोकर ही विजय प्राप्त की । शिवाजी और बंदा, दोनों हिंदू-जाति की उस जागृति के राजनीतिक रूप थे, जिसने धार्मिक रूप में पहले, मुसलमान राज्य के स्थापित होने पर, जन्म लिया था । विषय ऐतिहासिक महत्त्व का है । भाईजी ने उस महत्त्व पर कुछ प्रकाश अवश्य डाला है । परंतु पुस्तक को रोचक और सरल बनाना शायद उनका प्रधान उद्देश्य था, इसलिये ऐतिहासिक समीक्षा-प्रणाली का विचार नहीं रक्खा गया । चित्र ही इसकी सूचना देते हैं । इनसे चरित्र सचित्र अवश्य हो जाता है; परंतु यह धोखा कि ये सत्य हैं, पुस्तक के ऐतिहासिक महत्त्व को कम कर देता है ।

कालिदास कपूर

× × ×

शैलबाला—अनुवादिका, श्रीमती सावित्रीदेवी । प्रकाशक, पुस्तक-भवन, बनारस-सिटी । पृष्ठ-संख्या १७६ ; अच्छे कागज़ पर शुद्ध सुंदर छपाई । चिकने पेपर पर रंगीन चित्र । मूल्य १)

यह ऐतिहासिक उपन्यास बँगला का अनुवाद है । ३२ मनोरंजक परिच्छेदों में समाप्त हुआ है । प्रत्येक परिच्छेद के आरंभ में अँगरेज़ी की उपयुक्त उक्तियाँ हैं । पुस्तकारंभ में हिंदी के सुलेखक और सुकवि पं० रामचंद्र शुक्लजी का छोटा-सा वक्तव्य है । पुस्तकांत में उपसंहार है । शुक्लजी ने लिखा है कि अनुवादिका को इस अनुवाद में अच्छी सफलता हुई है, तथा भाषा भी सरस और चलती हुई है । पुस्तक पढ़कर हम भी इस मत से बहुलांश में सहमत हैं । हाँ, 'अंतस्थल', 'असम्मति', 'तुमसे मेरा बड़ा भारी कार्य है' और 'शरीर धूसर हो गई है' आदि शब्दों और वाक्यों का प्रयोग अच्छा नहीं लगता । ईस्ट-इंडिया कंपनी के समय से इस उपन्यास का घटना-काल आरंभ होता है । इसी देश के विभीषणों की निंदनीय सहायता

से कंपनी का किस प्रकार सिक्का जमता गया, और उसकी सहायता से विमुख रहनेवाले समर्थ लोगों की क्या दशा हुई, इन बातों का दिग्दर्शन अच्छे ढंग से कराया गया है। प्रेम की महिमा और उसका विस्मयजनक परिणाम भी दिखलाया गया है। पुस्तक सुरुचिपूर्ण, अतएव पठनीय है।

× × ×

स्वर्गीय जीवन—लेखक, मदनमोहन कौशल्य, विशारद। प्रकाशक, श्रेष्ठि केवलराम गौरी, क्लॉथ मरचेंट, क्वेटा (बिलोचिस्तान); पृष्ठ-संख्या ७०; छपाई आदि साफ़; मूल्य छः आने।

यह "एक आदर्श (?) रोचक (!) दंपती की कथा" है। आरंभ में लेखक द्वारा लिखित प्रकाशक का सचित्र और संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत है। इसमें दिखलाया गया है कि विलासिनी गृहिणी से घर का किस प्रकार नाश और शीलवती शिक्षिता गृहलक्ष्मी से परिवार की कैसी उन्नति होती है। पुस्तक में छपाई और भाषा की भूलें भरी हुई हैं।

शिवपूजनसहाय

× × ×

४. नाटक

श्रीसूरदास—लेखक और प्रकाशक, स्वामी बुधचंद्रपुरी। इन्हीं से प्राप्य। पता, मुक़ाम पोस्ट उबावड़ा हरीराम, तहसील सूजाबाद, जिला मुलतान। पृष्ठ-संख्या ८६। मूल्य ।।) है।

यह कोई सूरदासजी का जीवन-चरित्र नहीं है। इसका पूरा नाम है, "श्रीसूरदासनाटकलीलाविलास"। सूरदासजी का तो नाम-ही-नाम है। सिर्फ़ अंत में आपको उनके दर्शन हो सकते हैं। बाक़ी तो नाटक के 'पड़दे' हैं, चिंतामणि वेश्या का 'लीला-विलास' है, और ग़ज़लें और क़व्वालियाँ हैं। लेखक महाशय का एक चित्र है, और पाठकगण के नाम एक भूमिका भी है। इससे अधिक भी आप कुछ चाहते हैं?

कालिदास कपूर

× × ×

हिंदी-हरिश्चंद्र-नाटक—संकलनकर्ता, लाला विश्वंभरसहाय 'व्याकुल'। मिलने का ठिकाना 'श्रीसरस्वती मैशीन प्रिंटिंग प्रेस, पूर्वी सड़क, कचेहरी, मेरठ है। ९२ पृष्ठ और मूल्य ।।) है।

यह नाटक सफलता-पूर्वक रंगमंच पर खेला जा चुका है। इसके संकलनकर्ता भी कोई अप्रसिद्ध पुरुष नहीं, अपने विषय में उस्ताद समझे जाते हैं। यद्यपि इसकी पद्य-रचना दोष-शून्य नहीं है, और प्लाट भी पुराना है, तो भी नाटक नया ढंग लिए हुए है, और आकर्षक शैली में लिखा गया है। आशा है, नाट्य-समितियाँ इसका अभिनय किया करेंगी।

× × ×

महाभारत विराटपर्व अर्थात् कीचकवध नाटक—लेखक, अन्य अनेक नाटकों के लेखक रोहतक-निवासी लाला चंदनलाल वैश्य, प्रकाशक डॉ० प्रह्लादकृष्ण शर्मा डी० एच्० एम्० वैद्यराज, वैद्यभूषण, वैद्यनिधि। पृष्ठ-संख्या १३२, और मूल्य १)

पद्य-रचना दोष-पूर्ण होने पर भी नाटक अभिनय करने के योग्य है। आशा है, लेखक महोदय भाषा-शैली को भी सुधारने का प्रयत्न करेंगे, जिससे आगे कभी किसी को कुछ कहने का मौक़ा न मिले।

नवासीलाल

× × ×

५. इतिहास

अशोक के धर्मलेख—लेखक, श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम्० ए०। प्रकाशक, ज्ञान-मंडल-कार्यालय, काशी। पृष्ठ-संख्या ५००। मूल्य दो रुपए बारह आने। प्रकाशक से प्राप्य। काग़ज़ अच्छा तथा छपाई सुस्पष्ट। ऊपर खद्दर-मंडित जिल्द।

हिंदी-साहित्य के इतिहास-विभाग में इस पुस्तक को बहुत ही ऊँचा आसन मिलना चाहिए। यह पुस्तक बड़ी ही खोज, अध्यवसाय तथा परिश्रम के साथ लिखी गई है। इसकी भूमिका काशी-विद्यापीठ के वाइस-प्रिंसिपल श्रीनरेंद्रदेव एम्० ए० ने लिखी है। इस ग्रंथरत्न में अशोक के धर्मलेख तो सानुवाद और टिप्पणी-समेत हैं ही, पर एक प्रकार से बौद्ध-काल का इतिहास भी पूर्ण रूप से आ गया है। इसके परिशिष्ट तो और भी अनूठे बन पड़े हैं। अशोक की लिपि, पाली का व्याकरण तथा अशोक का संक्षिप्त व्याकरण, ये विषय बड़ी विद्वत्ता के साथ लिखे गए हैं। इसमें संदेह नहीं कि ऐसी पुस्तकों

के निकलने से हिंदी-साहित्य का गौरव है। मिस्टर विंसेंट स्मिथ द्वारा संपादित 'अशोक'-पुस्तक को हमने बी० ए० के कोर्स में पढ़ा था। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि उससे यह पुस्तक कहीं अच्छी है। हम लेखक तथा प्रकाशक, दोनों ही को, अशोक के धर्मलेख हिंदी-भाषा-भाषियों के सम्मुख उपस्थित करने के लिये, बधाई देते हैं। हमारा विश्वास है कि हिंदी-संसार इस पुस्तक का उचित आदर करेगा।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

मालावार का हत्याकांड—संग्रहकर्ता, मंत्री आर्य-प्रादेशिक प्रतिनिधि-सभा, लाहौर। प्रकाशक, सत्यव्रत शर्मा, शांति-प्रेस, मोतीकटरा, आगरा। पृष्ठ-संख्या ११० ; छपाई साफ़-सुथरी ; तृतीयावृत्ति ; मूल्य पाँच आने।

संग्रहकर्ता ने इस पुस्तक में मालावार का संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय तथा मोपलों के लोमहर्षण उपद्रव की भीषणता का दिग्दर्शन कराते हुए हिंदुओं के नाश का कारुणिक दृश्य बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा दिखलाया है। आर्यसमाज ने उस अवसर पर प्रपीड़ित हिंदुओं की जो सेवा और सहायता की थी, उसका विवरण भी इसमें दिया गया है। कुछ पीड़ितों की गवाहियाँ भी हैं। आरंभ में महात्मा हंसराजजी की लिखी हुई १२ पृष्ठों की ओजस्विनी भूमिका है। उसकी भाषा में दो-एक जगह पंजाबीपन की बू है। यथा—"समाचारपत्रों ने इतना मौन साधा हुआ था"! जो हो, पुस्तक का उद्देश्य और आर्य-समाज की लोक-सेवा सर्वथा श्लाघ्य है। निस्संदेह पुस्तक बड़ी खोज से लिखी गई है। इसके पाठ से प्रत्येक न्यायप्रिय मनुष्य के हृदय पर प्रभाव पड़ेगा।

शिवपूजनसहाय

× × ×

यूरप का आधुनिक इतिहास—लेखक, बाबू पशु-पाल वर्मा। प्रकाशक, श्रीमध्य-भारत-हिंदी-साहित्य-समिति, इंदौर। पृष्ठ-संख्या ५०२; मूल्य ३) रु०।

अँगरेज़ी में थेचर और श्योल का लिखा हुआ योरप का एक आधुनिक इतिहास है। मराठी में बा० बर्वे ने उसके आधार पर एक पुस्तक लिखी है। प्रस्तुत पुस्तक उसी अनूदित पुस्तक का स्वतंत्र अनुवाद है। हमारी समझ में नहीं आता कि जब लोग अनुवाद ही करने को तैयार हो जाते हैं, तो सीधे अँगरेज़ी से न करके एक अन्य भाषा के अनुवाद का सहारा क्यों लेते हैं। थेचर और श्योल की पुस्तक अवश्य उत्तम है; किंतु यदि लेखक महाशय अँगरेज़ी से अनुवाद करने का कष्ट उठाते, तो उन्हें इससे भी अच्छी अनुवाद के योग्य पुस्तकें मिल जातीं। उदाहरण के लिये राबिंसन का 'पश्चिमी योरप' थेचर और श्योल की पुस्तक से कहीं बढ़कर है। किंतु इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि प्रस्तुत पुस्तक निकम्मी और निरर्थक है। हिंदी में ऐसी जितनी पुस्तकें निकलें, वे सभी आवश्यक हैं। योरप के इतिहास की ओर हिंदी-भाषा-भाषियों की रुचि झुकनी चाहिए; क्योंकि वर्तमान युग में योरप का जो महत्त्व है, उसका सच्चा स्वरूप और कारण उसके इतिहास के अध्ययन बिना समझ में नहीं आ सकता। इस बात की आवश्यकता है कि इस देश के निवासी योरपियन राजनीतिक विचारों और संस्थाओं के विकास का इतिहास जानें और समझने लगें कि योरप को राष्ट्रीयता की वेदी पर कितने बलिदान चढ़ाने पड़े हैं। धार्मिक और सामाजिक जंज़ीरों से कसे हुए योरपियन समाज ने इन बंधनों से जिस प्रकार मुक्ति पाई है, उसका वर्णन बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। ग्रीस के दार्शनिक विचारों और ईसाई-धर्म ने योरप में स्वतंत्रता का नवीन युग स्थापित करने में जो सहायता की है, उसके पढ़ने से मालूम पड़ेगा कि नवीन विचारों में कितनी शक्ति होती है। योरप में अनियंत्रित शासन की स्थापना क्योंकर हुई, उस युग में स्वेच्छाचारी राजों ने कौन-से अच्छे और कौन-से हानिकारक काम किए, और किस प्रकार उनकी प्रजा-पीड़क नीति ने फ़्रांस की राज्य-क्रांति को जन्म दिया, ये सब बहुत ही शिक्षाप्रद बातें हैं। फ़्रांस की भीषण राज्य-क्रांति और नेपोलियन की कथाओं के पढ़ने में औपन्यासिक आनंद आता है। भेद केवल इतना ही है कि उपन्यास बहुधा कल्पित होते हैं, और ये घटनाएँ सच्ची हैं। विज्ञान के आरंभिक युग में उसकी चकाचौंध पैदा करनेवाली रोशनी में, मनुष्य ने किस प्रकार ईश्वर को भुला दिया था, और फिर क्रांति का आविर्भाव फ़्रांस की स्वतंत्रता के लिये हुआ था, उसने फ़्रांस में शनैः-शनैः किस प्रकार एकसत्तात्मक सुदृढ राज्य स्थापित कर दिया, जिसके भय से

योरप काँपने लगा, और अंत में उसका किस प्रकार अधःपतन हुआ, यह सब योरप के इतिहास के अध्ययन ही से मालूम हो सकता है। आधुनिक इटली, जर्मनी, हालैंड, रूस आदि के उत्थान की कथाएँ भी योरप के इतिहास ही से विदित होती हैं। अतएव योरोपियन सभ्यता को समझने के लिये योरप के इतिहास का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। हम लेखक महाशय की, उनके उद्योग के लिये, प्रशंसा करते हैं। लेखक महाशय ने उसे समयानुकूल बनाने के लिये एक परिशिष्ट में गत महायुद्ध का हाल भी जोड़ दिया है। आरंभ में एक नक़्शा भी दिया गया है, किंतु वह अपर्याप्त है। अनुवाद होने के कारण पुस्तक में मराठीपन यथेष्ट आ गया है। योरोपियन नामों के मराठी उच्चारण—जैसे 'फ्रूसि', 'व्हिएन्ना', 'जेनीव्हा'—हिंदी-पुस्तक में अच्छे नहीं मालूम पड़ते। भाषा में भी कहीं-कहीं मराठीपन आ गया है। यथा—"इस न्याय-कोर्ट ने चार्ल्स पर देश-द्रोह का अपराध लगाकर फाँसी की शिक्षा सुनाई।", "जब क्रामवेल ने पार्लियामेंट को भंग कर दी", "थोड़े ही समय में मानो संपूर्ण इँगलिश जनता ने बे-मालूम रीति से प्युरीटन धर्म का स्वीकार कर लिया है।", "चार्ल्स ने...राजनीतिक विषयों में पार्लियामेंट से बेबनाव कर लिया", "जब कि यूरोप के अंदर इस प्रकार की ऊलाढाली हो रही थी" इत्यादि। पुस्तक में इसी प्रकार के अनेक वाक्य मिलेंगे। ऐसे वाक्यों से पुस्तक के विषय का गौरव तो नहीं घटता, किंतु साहित्य की दृष्टि से ऐसी उपयोगी पुस्तक का भाषा-गौरव अवश्य नष्ट हो जाता है। अतएव हम आशा करते हैं कि अगले संस्करण में लेखक महाशय इस ओर विशेष ध्यान देंगे। बहुत-सी अशुद्धियाँ सावधानी के साथ प्रूफ़ न देखने के कारण भी हुई हैं। टाइटिल-पेज पर ही १४५३ की जगह १३५३ (आधुनिक योरप का इतिहास आरंभ होने की सर्वमान्य तिथि) छप गया है। तथापि, सब बातों पर विचार करके, हम पुस्तक को उपयोगी समझते हैं, और आशा करते हैं कि हिंदी-संसार में इसका उचित आदर होगा।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

६. राजनीति

देश की बात—संपादक, देवनारायण द्विवेदी। प्रकाशक, आदर्श-हिंदी-पुस्तकालय, ९४ काटन-स्ट्रीट, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ४००। मूल्य २॥) ; प्रकाशक से प्राप्य।

अब से बहुत पहले, लगभग २० वर्ष हुए, जब स्वर्गवासी पं० सखाराम गणेश-देउस्कर ने बँगला-भाषा में 'देशेर कथा'-नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें भारत की दुर्दशा का हृदयद्रावक चित्र खींचा गया था। हिंदी-भाषा में उसके अनुवाद भी, शायद दो, प्रकाशित हुए थे; पर वे अब सुलभ नहीं हैं। फिर इतने दिनों में देश की दशा में भी बड़ा अंतर पड़ गया है। बहुत-सी ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जो देश के इतिहास में बिलकुल अनूठी हैं। यह कहना अतिशयोक्ति-पूर्ण नहीं कि इन बीस वर्षों में भारत में एक युगांतर उपस्थित करनेवाला इतिहास बन गया है। समालोच्य 'देश की बात' में इस आधुनिक इतिहास का भी समावेश कर दिया गया है। इस प्रकार से यह पुस्तक बिलकुल अप-टू-डेट हो गई है। इस पुस्तक में कुल मिलाकर १४ अध्याय हैं, जिनमें अधिकतर भारत की राजनीतिक और आर्थिक दशा का चित्र बड़े अच्छे ढंग से खींचा गया है। 'देश की बात' बड़े काम की पुस्तक है। जिन लोगों को वर्तमान राजनीतिक चहल-पहल में अनुराग है, उन्हें तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। हमारी राय में इस पुस्तक का खूब प्रचार होना चाहिए। कम-से-कम प्रत्येक पुस्तकालय में तो इसकी एक प्रति अवश्य ही रहनी चाहिए।

कृष्णविहारी मिश्र

× × ×

एक ही आवश्यक बात—अनुवादक, प्रोफ़ेसर जगत-नारायण लाल, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०। प्रकाशक, श्रीरामदेवप्रसादसिंह, राष्ट्रीय महाविद्यालय, पटना। पृष्ठ-संख्या १२५; छपाई साधारण; मूल्य सात आने।

यह पुस्तक महात्मा टॉल्स्टॉय की अँगरेज़ी पुस्तक "The one thing needful" का भाषानुवाद है। इस शांतिमयी क्रांति के ज़माने में महात्मा टॉल्स्टॉय के ज्वलंत विचारों का बहुत प्रचार देखा जा रहा है। यह पुस्तक भी उक्त महात्मा का शांतिदायक संदेश वहन करती है। इसमें प्रजापीड़क शासन-यंत्र को चूर्ण करने के लिये अहिंसात्मक असहयोग को ही अमोघ अस्त्र बतलाते हुए उसकी अपरिमेय शक्ति का अतीव हृदयग्राही वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं, इसमें वर्तमान शासन-

पद्धति के दोषों का दिग्दर्शन कराते हुए धर्म की जैसी सच्ची परिभाषा लिखी गई है, और मानव-जीवन के असली लक्ष्य को जितना स्पष्ट समझाया गया है, वह बड़ा ही मार्मिक और सत्यता-पूर्ण है। अनुवादकर्ता ने जेल में ही इस पुस्तक का अनुवाद किया था। अनुवाद की भाषा कहीं-कहीं संशोध्य है और कहीं-कहीं तो विरामचिह्न-शून्य इतने लंबे-लंबे वाक्य हैं कि उन्हें स्पष्ट समझने के लिये विशेष रूप से दत्तचित्त होना पड़ता है। आरंभिक वक्तव्य अनुवादकर्ता का लिखा हुआ है; पर उसके अंत में भ्रमवश 'ग्रंथकार' लिख दिया गया है। इससे साधारण पाठकों को कुछ भ्रांति हो सकती है। पुस्तकारंभ में अनुवादक ने ४२ पृष्ठों की एक लंबी-चौड़ी भूमिका लिखी है। वह विद्वत्ता-पूर्ण है। उससे अनुवादकर्ता की सुपुष्ट विचारशीलता और निस्स्वार्थ देशभक्ति प्रकट होती है। पुस्तक का विषय तो केवल ८२ पृष्ठों और ११ अध्यायों में ही समाप्त है; किंतु अनुवादकर्ता की ओर से लिखी गई विस्तृत भूमिका ने उस पर ख़ूब उज्ज्वल प्रकाश डाला है। जिन्हें असहयोग का तत्त्व जानने की उत्सुकता हो, उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

७. ज्योतिष

भावी-प्रकाश—लेखक और प्रकाशक, पं० प्रह्लाददत्त शर्मा, ज्योतिःशास्त्र-कार्यालय, भारतभूषण-पुस्तकालय, रिवाड़ी। साफ़ काग़ज़ पर सामान्य छपाई। पृष्ठ-संख्या १०२; मूल्य १) बहुत अधिक है।

इसमें शुभाशुभ संवत् के गुण-दोषों का विचार और वर्षा, वायु, बिजली, नक्षत्र तथा ऋतुओं और महीनों के भले-बुरे लक्षणों का निर्णय किया गया है। दोहे-चौपाइयों में फल कहे गए हैं, फिर उनकी टीका भी की गई है। कविवर घाघ की रचनाओं में ज्योतिष-संबंधी बहुत-सी बातें मिलती हैं। इनसे वे कहीं अधिक उपयोगी और रोचक हैं। आदि से अंत तक पुस्तक में भाषा, छपाई और छंदों की अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं। देहातियों और किसानों के लिये यह पुस्तक कुछ लाभदायक हो सकती है।

× × ×

तेजी-मंदी-प्रकाश—लेखक और प्रकाशक, वही पं० प्रह्लाददत्त शर्मा ज्योतिषी। पृष्ठ-संख्या ७५, मूल्य ग्यारह आने।

यह पुस्तक व्यापारियों के बड़े काम की है। इसमें संवत् १९८१ का वर्ष-फल और व्रतों तथा यात्रा-मुहूर्तों का निर्णय किया गया है। इन बातों के सिवा अन्न, घी, तेल, चीनी, मसाले, गुड़, कपड़े और सोने-चाँदी आदि के भावों की तेजी और मंदी—प्रत्येक मास, पक्ष और नक्षत्र के अनुसार—बतलाई गई है। यत्र-तत्र ज्योतिष के ग्रंथों से प्रमाण-स्वरूप श्लोक भी उद्धृत किए गए हैं; और उनका सरलार्थ भी समझा दिया गया है। इसमें भी अशुद्धियों का अकाल नहीं है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

८. नीति और शिक्षा

मन की मौज—लेखक, श्रीनारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०। प्रकाशक, भीष्म ऐंड ब्रदर्स, पटकापुर, कानपुर। पृष्ठ-संख्या १६९, मामूली काग़ज़ पर साफ़ छपाई। मूल्य बारह आने।

अरोड़ाजी हिंदी-संसार में काफ़ी प्रसिद्ध हैं। इस पुस्तक में उन्होंने अपने उन २८ लेखों का संग्रह किया है, जो समय-समय पर भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इसमें सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, बालकोपयोगी, नवयुवकोपयोगी, विनोद-पूर्ण एवं शिक्षाप्रद लेखों के सिवा एक-दो जीवनियाँ भी हैं। विषय-विभिन्नता के कारण यह पुस्तक एक विविध-विषय-विभूषित अच्छे मासिक पत्र का काम देती है। अतएव पठनीय है। मूल्य कुछ अधिक है।

× × ×

अनुवाद-रत्नाकर (प्रथम भाग)—लेखक, अंबिकादत्त शर्मा। प्रकाशक, आदर्श ग्रंथमाला, मुजफ़्फ़रपुर। पृष्ठ-संख्या ६०, छपाई आदि अत्यंत साधारण, मूल्य ।)

इस पुस्तक में संस्कृत के शब्दों और वाक्यों का हिंदी-अनुवाद है। विषय-विभाग न होने के कारण सब तरह के शब्द इधर-उधर बिखर गए हैं, जिससे विद्यार्थियों को बड़ी असुविधा होगी। नाम तो है आदर्श ग्रंथमाला, पर आरंभ में ही अशुद्धि-पत्र लगा हुआ है! फिर भी पुस्तक में कई अशुद्धियाँ हैं। श्रीगणेश में ही लिखा है—ग्रामे

ग्रामे—गांवे गांवे ! क्षेत्र क्षत्र—खेते खेते ! हस्ते हस्ते—हांथे हांथे ! इस तरह की अशुद्धियाँ बहुत हैं।

× × ×

भारतीय चिंतन—लेखक और प्रकाशक, बाबू भगवानदास केला, भारतीय ग्रंथमाला कार्यालय, वृंदावन। पृष्ठ-संख्या १८८, साफ़-सुथरी छपाई, मूल्य चौदह आने।

केलाजी साप्ताहिक 'प्रेम' के संपादक थे। अपने संपादन-काल में उन्होंने 'प्रेम' में जो धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक विचार प्रकट किए थे, उन्हीं का संग्रह इस पुस्तक के रूप में उन्होंने प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में सात खंड हैं। पहले खंड में 'प्रेम' पर छोटे-मोटे छः निबंध हैं। छठा निबंध उपदेशजनक है। दूसरे खंड में धार्मिक, तीसरे में सामाजिक, चौथे में आर्थिक, पाँचवें में राजनीतिक, छठे में अंतरराष्ट्रीय और सातवें में विविध विषय के सुपाठ्य निबंध हैं। पूर्व के छः खंडों में छः-छः और सातवें में आठ लेख हैं। पुस्तक पढ़ने में जी लगता है। विषय-विभाग कर देने से उपादेयता की वृद्धि हो गई है। इसके कुछ लेख तो साधारण हैं, और कुछ साधारणतः अच्छे। किंतु साधारण लेखों से भी लेखक की लोकहितैषणा प्रकट होती है। 'मेरे तीस मिनट' और 'विचार-तरंग'-शीर्षक अंतिम लेख बड़े भावमय हैं। आरंभ में भारत-माता का चित्र और प्रेम-महाविद्यालय (वृंदावन) के अवैतनिक व्यवस्थापक श्रीआनंदभिक्षु की लिखी भूमिका है। नवयुवकों के लिये पुस्तक संग्रहणीय है।

शिवपूजनसहाय

× × ×

कर्तव्य—मनोरंजन-पुस्तक-माला की ४१वीं मणि। संपादक, बा० श्यामसुंदरदास। लेखक, रामचंद्र वर्मा। पृष्ठ-संख्या २५०, और मूल्य १) है।

यह पुस्तक 'सेमुएल स्माइल्स की ड्यूटी'-नामक पुस्तक के आधार पर लिखित है। इसमें दस प्रकरण हैं—

(१) कर्तव्य और अंतःकरण, (२) कर्तव्य-पालन, (३) ईमानदारी और सचाई, (४) साहस और अध्यवसाय, (५) नाविक, (६) सैनिक, (७) सत्कर्म करने में वीरता, (८) सहानुभूति और दया, (९) उत्तरदायित्व और (१०) उपसंहार। पुस्तक बहुत अच्छी है, सबके काम की है।

× × ×

रामकोष एकार्थ-दोहावली (प्रथम भाग)—लेखक और प्रकाशक, मास्टररामलाल जीवन-सुधार-पुस्तकालय, बाढ़, ज़िला पटना। ७७ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ।-) है।

यह हिंदी में 'अमरकोष' के ढंग की पुस्तक है। उदाहरण—

चंद्र

जलज, निशापति, विधु, उडुप, इंदु, मयंक, शशांक;
शशि, हिमकर, मंथी, सुखग, तारापती, मृगांक।
सोम, हिमांशु, कलानिधी, वीरोचन, द्विजराज;
कहिय सुधाकर चंद्र को, "राम" राक-अधिराज।

वियोग

त्याग, वियोग, विछोह पुनि, विरह, जुदाई जान,
'राम' बिछुड़ना, छूटना, अरु विच्छेदहु मान।

इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक परिश्रम के साथ लिखी गई है। इसके और भी भाग निकलने चाहिए। यह विशेषकर बालकों के बहुत काम की है।

नवासीलाल

× × ×

१. समाज

समाज-संगठन—मूल-लेखक, काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदासजी एम्० ए०। उनकी 'सोशल रीकन्सट्रक्शन'-पुस्तक का भाषांतर। भाषांतरकार, पं० छवि-नाथ पांडेय। प्रकाशक, 'भारत-बुकडिपो', अलीगढ़। मूल्य ।।=) है।

पहले इसका प्रकाशन 'विद्यानुरागी, सहज प्रकृति, सरल हृदय, पुस्तक-व्यसनी' बाबू बजरंगलालजी लोहिया करनेवाले थे; परंतु अनेक कारणों से वह अपने मनोरथ को पूर्ण न कर सके। इसीलिये यह फूल दूसरे बाग़ में जाकर खिला। परंतु छविनाथजी ने इस पुस्तक का समर्पण लोहियाजी को ही, उनके सहज स्नेही होने के कारण, कर दिया है। मित्रता इसे कहते हैं! इसमें बा० भगवान-दासजी का एक चित्र भी दिया हुआ है। भूमिका में अनुवादकर्ता महोदय लिखते हैं—"जहाँ अपना मतलब गँठता है, वहाँ तो हम धर्म-भीरु बन जाते हैं, और जहाँ अपनी हानि होती दिखाई देती है, वहाँ हम छलाँग

मारकर धर्म से कोसों दूर हो जाते हैं।" बात बिलकुल सच है, और यही कारण है कि दूसरे धर्मवाले हमारे उद्यान में लगे हुए प्यारे फूलों और फूलों को उड़ा ले जाते और मौज करते हैं। हमारी राय में तो सारे संसार में शायद ही कोई जाति इतनी अव्यवस्थित, पतित और स्वार्थी हो, जितनी हिंदू-जाति है। कैसे अचंभे की बात है कि एक ओर विधवा-विवाह को शास्त्र-विरुद्ध बताया जाता है और दूसरी ओर उन्हीं विधवाओं को बिगाड़ की ओर ले जाना नहीं रुकता ! उनसे इस बात की आशा की जा रही है कि वे अखंड ब्रह्मचर्यव्रत-रूपी सज़ा को चुपचाप भोग लेंगी, जब कि पुराने ज़माने में विश्वामित्र भी ऐसा न कर सके थे ! जो वास्तविक दशा है, उससे मुँह फेरकर पुराने समय के शास्त्रों की दुहाई देना मूर्खता है। अब नया ज़माना है; नई समस्याएँ खड़ी हो गई हैं; हिंदू-जाति के सिर पर मृत्यु का भीषण डंका बज रहा है। अतः साहस-पूर्वक काम करने का समय है। नई समस्याओं को हल करने के लिये नए शास्त्रों की सृष्टि अथवा प्राचीन शास्त्रों का संस्कार होना चाहिए। अपनी सामाजिक दुरवस्था दूर करने से पहले ही 'स्वराज्य' के लिये हाथ-पैर पटकना व्यर्थ ही नहीं, हानिकर भी है। अस्तु, इस पुस्तक में दी हुई बातों पर सबको विचार करना चाहिए। हम लेखक की कई बातों से सहमत नहीं हैं, फिर भी हमारी राय है कि इस पुस्तक का जितना प्रचार हो, उतना ही अच्छा। सामाजिक क्रांति करना हमारे अधिकार में है। उसके लिये सरकार के हाथ-पैर जोड़ने की आवश्यकता नहीं। यदि हम सफलता-पूर्वक सामाजिक क्रांति कर डालें, तो राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में देर न लगेगी। हिंदू-मुसलिम प्रश्न भी बहुत सहूलियत के साथ हल हो जायगा। कहीं-कहीं भाषा-संबंधी त्रुटियाँ हैं, जो कि पुस्तक का महत्त्व देखते हुए क्षम्य हैं।

× × ×

बाल-विवाहविवेचन—'प्रसन्न-प्रसून-पुस्तक-मालिका-संख्या '१'। रचयिता, श्रीयुत शोभाचंद जम्मड़ (प्रसन्न)। प्रकाशक भी आप ही हैं। अतएव आप ही को, सरदार, शहर (बीकानेर) के पते पर लिखने से यह प्राप्त हो सकती है। ४८ पृष्ठ; मूल्य केवल 'स्वदेश-सेवा'।

इसका समर्पण देश के नवयुवकों के नाम हुआ है। इसमें 'बाल-विवाह की परिभाषा', 'विवाह के योग्य अवस्था', 'ब्रह्मचर्य का महत्त्व' आदि छोटे-बड़े १६ विषयों पर विचार करते हुए पाठकों का ध्यान बाल-विवाह से होनेवाली हानियों की ओर खींचा गया है। ८ सवैए, २६ कवित्त और १ दोहे के अतिरिक्त गद्य में भी बहुत कुछ कहा गया है। लेखक के विचार वैसे ही हैं, जैसे किसी समझदार आदमी के आजकल होने चाहिए। पद्य-रचना सुंदर है। इस पुस्तक का खूब प्रचार होना चाहिए।

नवासीलाल

× × ×

१०. भूगोल

नवीन प्राकृतिक भूगोल—लेखक, पं० दूधनाथ पांडेय बी० एस्-सी०, एल्० टी० और बा० रामसहायलाल जौहरी। पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य तीन आने। प्रकाशक, बा० रामसहायलाल जौहरी, अध्यापक, लवेट-हाईस्कूल, ज्ञानपुर, बनारस स्टेट।

कुछ दिन हुए, हमें एक रद्दी भूगोल की समालोचना करने का कष्टकर कार्य करना पड़ा था; किंतु हर्ष की बात है कि आज हमें इस विषय की एक अच्छी पुस्तक देखने को मिली है। प्रस्तुत पुस्तक में केवल प्राकृतिक भूगोल का वर्णन है। प्रत्येक विषय को भली भाँति समझाने के लिये चित्रों और नक़्शों का उपयोग किया गया है। पुस्तक का ढंग बहुत अच्छा है। चित्र स्पष्ट और उपयोगी हैं। पुस्तक में निकम्मी परिभाषाओं की भरमार नहीं है। प्रत्येक बात सरल उदाहरणों द्वारा समझाई गई है। प्रत्येक विषय के अंत में उपयोगी प्रश्न भी दिए गए हैं। हमारी सम्मति में यदि पत्थरों के भेद, ज्वालामुखी, भूकंप, वनस्पति, ऋतुओं आदि का वर्णन और दिया जाता, तो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती। पुस्तक विद्यार्थियों के बड़े काम की है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

+ × ×

११. पत्र-पत्रिकाएँ

कवींद्र (कविता-संबंधी मासिक पत्र)—पृष्ठ-संख्या ४८, कागज़ और छपाई साधारणतः अच्छा। वार्षिक मूल्य ३)। संपादक, स्वामी नारायणानंद सरस्वती तथा उन्हीं से कवींद्र कार्यालय, लाठी मुहाल कानपूर के पते से प्राप्य।

यह कविता-संबंधी मासिक पत्र है। समालोच्य प्रथम अंक में संपादकीय तथा प्राप्ति-स्वीकार स्तंभ-समेत ३३ लेख और कविताएँ हैं। कविता-भाग कुछ अधिक है। प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ इस अंक में हैं, और उनमें से कई अच्छी भी हैं। पत्रिका का गद्य-भाग अभी विशेष उन्नति चाहता है। पद्य-भाग में भी हमारी राय है कि कविताओं का चुनाव करने में अधिक विचार कर लेना चाहिए। हमारा विश्वास है कि यह पत्र चिरायु होकर साहित्य के काव्य-भाग की सेवा करने में समर्थ होगा। हम इसका स्वागत करते हैं, और हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं।

× × ×

मनोरमा (मासिक पत्रिका)—संपादक, पं० महावीरप्रसाद मालवीय 'वीर' तथा पं० गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०। प्रकाशक, मैनेजर बेलवेडियर-प्रेस, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या १०४। आकार माधुरी का। कागज़ साधारण, छपाई स्पष्ट। वार्षिक मूल्य ५)। चित्र-संख्या ८, जिसमें तीन तिरंगे, दो एकरंगे और शेष सादे चित्र हैं। प्रकाशक से प्राप्य।

इस पत्रिका की इधर कई महीनों से बड़ी चर्चा हो रही थी। प्रथम अंक में ३९ लेख और कई कविताएँ हैं। लेखकों में कई हिंदी-साहित्य के धुरंधर विद्वान् भी हैं। लेखों का चुनाव अच्छा हुआ है। पर इस पत्रिका की विशेषता क्या है, यह कुछ समझ में न आया। लेखों और कविताओं की संख्या तो अधिक है, पर उनमें उच्च कोटि का मसाला थोड़ा ही है। प्रथम संख्या निकलने के पहले ही विज्ञापित संपादक प्रो० कालीरामजी का अलग हो जाना अच्छा नहीं हुआ। जान पड़ता है, इसी गड़बड़ी के कारण अभी तक मई का अंक नहीं निकल सका है। समालोच्य अंक में हमें प्रो० गुरुप्रसादजी पांडेय एम्० ए० का लेख बहुत पसंद आया। इसमें पांडेयजी की अध्ययनशीलता का अच्छा परिचय मिलता है। कई कविताएँ तो ऐसी हैं, जिनका भाव हम कुछ भी न समझ सके। हमारा विश्वास है कि द्वितीय संख्या में हम पत्रिका की विशेष उन्नति देखेंगे। हमारा यह भी ख़याल है कि आगे से पत्रिका के संपादक और लेखक, सभी उसके व्यवहार से संतुष्ट होंगे। इस पत्रिका के प्रबंध-संबंध में कुछ ऐसी भी बातें सुन पड़ी हैं, जिन पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता। ईश्वर करे, वे ठीक न हों। हम पत्रिका की उन्नति चाहते और उसका हृदय से स्वागत करते हैं।

× × ×

महिला-महत्त्व (मासिक पत्र)—संपादिका, श्रीमती रमादेवी और श्रीमती पार्वतीदेवी। प्रकाशक, भोलानाथ बर्मन, नं० १ शिवकृष्णदाँ-लेन, जोड़ासाकू, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य २॥); एक प्रति का मूल्य ≡); पृष्ठ-संख्या ३०। कागज़, छपाई आदि साफ़।

यह सचित्र पत्र गत रामनवमी से निकला है, और कलकत्ते का महिला-हितकारिणी सभा का मुखपत्र है। कलकत्ते में रहनेवाले कई अच्छे-अच्छे हिंदी-साहित्य-सेवियों के लेख इसमें छपे हैं। कवर पर एक भावमय चित्र भी है। आरंभ में 'मातृमूर्ति'-नामक त्रिवर्ण चित्र बहुत उपयुक्त और सुंदर है। इसके संपादकीय लेखों में मर्दानेपन की उत्कट गंध है। परदे की आड़ में कोई दाढ़ी-मूछवाला मालूम होता है। इक्कीस लेखों में से लगभग सभी लेख अच्छे हैं। उनमें कोई नवीनता या महिला-समाज के लिये कोई अभिनव संदेश न होने पर भी मसाला पढ़ने लायक़ है। 'संगीत-वाटिका' का समावेश विशेष अभिनंदनीय है। चारु चयन में जो संपादकीय विचार हैं, उनमें महिला-संसार-संबंधी कई सामयिक विषयों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। हम इसकी हार्दिक शुभ-कामना करते हैं।

× × ×

सुप्रभात (मासिक पत्र)—संपादक, पं० जनार्दन मिश्र, 'परमेश'। पता—पो० मिरजानहाट, भागलपुर। पृष्ठ-संख्या ४८। डबल-क्राउन, अठपेजी साइज़। कागज़, छपाई आदि सामान्यतः स्वच्छ। आरंभ में वसंत का एक चित्र। वार्षिक मूल्य ४), और प्रति संख्या ।≈)

इस 'सुप्रभात' का एक अंक आज से दो वर्ष पूर्व भी निकला था। कुछ कारणों से फिर कोई अंक न निकला। अब वसंत-ऋतु में फिर 'सुप्रभात' के दर्शन हुए हैं। इस सचित्र पत्र में ६ कविताएँ और १४ गद्य-लेख हैं, जिनमें विविध प्रसंग, सामयिक टिप्पणियाँ और मनोरंजक श्लोक आदि सम्मिलित हैं। लेख प्रायः उपयोगी हैं, और उनके लेखक भी योग्य हैं; परंतु लेखों के संपादन में कुछ कसर रह गई है। यह त्रुटि दूर होनी चाहिए। इस पत्र के भविष्य पर संदेह नहीं

करते ; पर बिहार के पत्रों की दशा देखकर ईश्वर से हमें प्रार्थना करनी पड़ती है कि वह इस 'सुप्रभात' को अमर करें। 'सुप्रभात' नाम का एक संस्कृत-पत्र काशी से भी निकला है; अतः इसका नाम दूसरा रक्खा जाना अधिक अच्छा होता।

× × ×

वीर (पाक्षिक पत्र)—संपादक, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी। उपसंपादक, श्रीयुत कामताप्रसाद। प्रकाशक, श्रीयुत राजेंद्रकुमार जैन, बिजनौर यू० पी०। श्रीभारतीय दिगंबर-जैन-परिषद् का पाक्षिक मुखपत्र। श्रीमहावीरजयंती-अंक। वार्षिक मूल्य २॥)

इस विशेषांक में पाँच सादे और दो रंगीन चित्र हैं। चित्र जैन-समाज के सुप्रसिद्ध व्यक्तियों के हैं। गद्य लेख ६ और पद्य ११ हैं। पद्य अत्यंत साधारण, किंतु गद्य धार्मिक भाव-पूर्ण। टिप्पणियाँ, समालोचनाएँ, सुमन-संचय, विज्ञान-सरिता सरोज, संसार-दिग्दर्शन और चित्र-परिचय आदि पठनीय। इस विशेषांक को सुंदर बनाने की बड़ी चेष्टा की गई है। सफलता भी हुई है।

× × ×

श्रीकान्यकुब्जहितकारी (मासिक पत्र)—संपादक, पं० रामप्रसाद मिश्र, शक्ति-प्रेस, कानपुर। पृष्ठ-संख्या ६०। छपाई आदि साधारण। वार्षिक मूल्य १॥)

चिकने कवर पर कान्यकुब्ज-कुल-गौरव श्रद्धेय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी का चित्र है। आरंभ में और अंत में अखिल-भारतीय कान्यकुब्ज-युवक-सम्मेलन के सभापति श्रीमान् राजा श्रीकृष्णदत्तजी द्विवेदी एम्० एल्० सी० के चित्र हैं। युवक-सम्मेलन के प्रधान मंत्री पं० श्रीरत्न शुक्लजी का भी एक चित्र है। गद्य-पद्यादि सामाजिक भावों से पूर्ण हैं। प्रायः सभी लेखों के लेखक विद्वान् हैं। बड़े खेद और लज्जा की बात है कि जिस जाति में धनियों और विद्वानों की कमी नहीं है, उसके जातीय मासिक पत्र की दशा अच्छी नहीं है। उन्नति की बेहद गुंजायश है।

× × ×

धर्मप्रकाश (मासिक पत्र)—संपादक, पं० शंकरप्रसाद भार्गव एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, एफ़्० आर० ई० एस्० और पं० गंगाविष्णु मिश्र काव्यतीर्थ, वेदरत्न, साहित्यनिधि। पृष्ठ-संख्या ४८। छपाई साफ़। वार्षिक मूल्य ३), एक प्रति का ।-); पद्य-संख्या ८। गद्य-लेख १४।

यह 'श्रीब्रह्मावर्त-सनातन-महामंडल, कानपुर के द्वारा स्थापित सनातनधर्म-व्यापारिक-कॉलेज का मुखपत्र' है। केवल ४८ पृष्ठ में सितंबर १९२३ से मार्च १९२४ तक के सात अंकों की एकसाथ भरौती कर दी गई है! चिकने कवर पर जो सुंदर चित्र है, उसमें, गीता-वाक्य के अनुसार, ईश्वरावतार के कारण धर्मप्रकाश के विस्तार का भावमय दृश्य अंकित है। आरंभ में श्रीराधाकृष्ण का चित्र है। धार्मिक और विनोद-पूर्ण लेख सुपाठ्य हैं। एक कहानी भी है। चुने हुए समाचारों और हास्य-रसमयी रचनाओं के कारण अंक उपयोगी हो गया है। किंतु एक सुप्रतिष्ठित धार्मिक संस्था के मुखपत्र में खोगीर की भरती न होनी चाहिए। इतने बड़े-बड़े विद्वानों के संपादकत्व में निकलनेवाले पत्र में देश-कालानुसार गंभीर टिप्पणियों का न रहना बहुत खटकता है। यहाँ तक कि संपादकों ने विलंब का कारण तक लिखने का कष्ट नहीं किया है। समय पर न निकलने से पत्र का प्रचुर प्रचार संदिग्ध है।

× × ×

हिंदी-मनोरंजन (मासिक पत्र)—संपादक, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक। संचालक, शिवनारायण वैश्य, कानपुर। पृष्ठ-संख्या ४९। बढ़िया काग़ज़ पर सुंदर छपाई। वार्षिक मूल्य ३); एक प्रति का ।-)

यह पत्र पहले डेढ़ वर्ष तक निकलकर कुछ विशेष परिस्थिति के कारण बंद हो गया था। अब पूर्व क्रम के अनुसार इसकी दूसरे वर्ष की आठवीं संख्या निकली है। हिंदी में विनोद-पूर्ण साहित्य की पवित्र सृष्टि करनेवाला यही एक-मात्र पत्र है। इसके उत्साही संचालक की सूचना द्वारा यह जानकर हमें संतोष हुआ कि इस बार यह बहुत सोच-समझकर निकाला गया है, और इसे स्थायी बनाने की चेष्टा में कभी शिथिलता न होने पावेगी। हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते और इसके निर्विघ्न जीवन के लिये ईश्वर से प्रार्थी हैं। इसके आरंभ में श्रीविष्णु भगवान् का त्रिवर्ण चित्र है। एक रंगीन चित्र 'वियोगिनी' का और एक व्यंग्य-चित्र भी है। चार कविताएँ और दस गद्य-लेख हैं। इनके अतिरिक्त 'संसार-वैचित्र्य' और हास्य-विनोद' बड़े ही मनोरंजक, शुद्ध और शिक्षाप्रद हैं। 'साहित्य' में 'विनोद' और 'मनोरंजन' बड़े सुरुचि-पूर्ण लेख हैं। 'वर्तमान'

संपादक का 'नया ज़माना' देखने ही लायक़ है। दिलचस्प कहानियों में स्वाभाविकता और उपदेश की मात्रा पर्याप्त है। यह कौशिकजी के संपादन-कौशल और परिश्रम का नमूना है। संपादकीय टिप्पणियों का अभाव खटकता है।

× × ×

भूगोल (मासिक पत्र)—संपादक और प्रकाशक, पं० रामनारायण मिश्र, बी० ए०, मेरठ। पृष्ठ-संख्या २४, छपाई आदि स्वच्छ; वार्षिक मूल्य ३); एक प्रति का ।)

चिकने कवर पर भूमंडल का चित्र है। तीन अलग-अलग लेखों में काश्मीर, मिसर और नैनीताल का सचित्र विवरणात्मक परिचय है। तीनों परिचय बड़े मनोरंजक और अनेक ज्ञातव्य विषयों से पूर्ण हैं। 'हीरा'-नामक सचित्र लेख में भी बहुत-सी जानने योग्य बातें हैं। इसमें अन्यान्य प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित भूगोल-विषयक लेखों की सूचना देने का जो ढंग रक्खा गया है, वह भी उपयोगी है। अंत में महीने-भर की मुख्य घटनाओं से संबंध रखनेवाले चुने हुए समाचारों का संग्रह भी कर दिया गया है। यह अपने विषय और ढंग का एकदम निराला पत्र है। हिंदी में एक ऐसे पत्र की बड़ी आवश्यकता थी। शिक्षा-विभाग में इस पत्र का खूब प्रचार होना चाहिए। इससे बड़ा लाभ होगा। शिक्षा-प्रेमी सुयोग्य संपादक के संपादकत्व में इस पत्र की यथेष्ट उन्नति होने की हमें पूर्ण आशा है।

× × ×

१२. प्राप्ति-स्वीकार

निम्न-लिखित पुस्तिकाएँ, रिपोर्टें और वस्तुएँ भी मिल गई हैं। प्रेषकों को धन्यवाद—

(१) लिपि-प्रबोध (नं० १ से नं० ४ तक)—पंडित सुखराम चौबे (गुणाकर कवि) कृत। प्रकाशक, मैकमिलन ऐंड कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता। प्रत्येक नंबर का मूल्य =) है। बालोपयोगी हैं।

(२) त्रिकाल संध्योपासना—पंडित बदरीदास पुरोहित वेदांत-भूषण द्वारा संगृहीत। प्रकाशक, श्रीपुष्टिकर वेद-पाठशाला, २१ बाँसतल्ला-स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य एक आना।

(३) निर्णयाभासप्रहासः—संकलनकर्ता और प्रकाशक, श्रीयुत रामदत्त पंथ, संस्कृत-प्रोफ़ेसर, बरेली।

(४) गुरुचालीसा—पुरोहित रामनारायण व्यास बांसकोवाला (पुराणी बस्ती, सवाई जयपुर) द्वारा लिखित और प्रकाशित।

(५) श्रीराधारमणविहारमाला

(६) बाँके पिया की नम्रप्रार्थना

(७) भगवत्-सेवाविधि

लेखक, बाबू बाँकेबिहारीलाल। प्र०, बाबू मुकुंदबिहारीलाल बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०, लखनऊ। मूल्य केवल भक्ति।

(८) चित्रकारोत्पत्ति—लेखक और प्रकाशक, सागर-निवासी शोभालाल उर्फ़ शोभाराम चित्रकार।

(९) श्रीसरस्वतीसेतुः—प्रथम भाग। शुक्र बाबूराम कवि-कृत। पाठशाला बब्बूलाल श्रीलाल सेठ, फ़र्रुख़ाबाद के पते पर एक आने में रचयिता से प्राप्य।

(१०) श्रीकामधेनुदशा—मूल्य दया
(११) भक्ति उपदेशरत्न—मूल्य -)
(१२) कन्याविनयचंद्रिका—मू० -)
(१३) स्त्रीधर्मचेतावनी—मू० -)
(१४) स्त्रीशिक्षाभजनावली—मू० -)॥
(१५) श्रीधर्मपुष्पमाला—मूल्य ≡)

} लेखक और प्रकाशक, स्वामी बुधचंद्रपुरी "पथिक", मुक़ाम—उबावड़ा हरीराम, डाक०—गवें, ज़ि० मुलतान।

(१६) सूर्यप्रार्थना—विद्याधर शास्त्री गौड़ द्वारा रचित और मुनीम लक्ष्मीचंद्र (चूरू, राजपूताना) द्वारा वितरणार्थ प्रकाशित।

(१७) मज़दूरों को संदेश—लेखक, श्रीयुत राधेलाल जायसवाल बी० ए०, एल्-एल्० बी०, अजमेर। सवा आने में लेखक से प्राप्य।

(१८) राजराजेश्वरीस्तोत्रम्—पं० अंबिकादत्त शर्मा द्वारा प्रयागस्थ द्विजराज-कार्यालय से प्रकाशित।

(१९) महाशय-नमस्ते-समीक्षा—मूल्य -)
(२०) म्लेच्छोक्तिसुधाकर ,,
(२१) कालिजचरित्र (प्रथम भाग) ,,
(२२) श्रीमानसमणिप्रकाशः ,,

लेखक और प्रकाशक, बाबू रामशुक्ल कवि द्वारा पं० अयोध्याप्रसाद-रामगुलाम, चौक, फ़र्रुख़ाबाद।

(२३) उवएसरयणमाल (उपदेशरत्नमाला प्राकृत)—कर्ता, आचार्य श्रीपद्मजिनेश्वर सूरि महोदय। संपादक, जैनमुनि गौडीदासजी महाराज । प्रकाशक, मगनमल कोचेटा, मंत्री सौभाग्य-सरस्वती-भवन, शिवपुरी (ग्वालियर स्टेट) । निछावर ।)

(२४) बालचर-विनोद—लेखक और प्रकाशक, कविरत्न पं० रामप्रीत शर्मा विशारद, संपादक 'रास', आरा । मूल्य =)

(२५) शिव-पुष्पांजलि—निर्माता, विद्याधर शास्त्री गौड़ । संशोधक, वैद्यराज पं० भागीरथजी स्वामी । बाबू ऋद्धिकरण (चूरू, राजपूताना) द्वारा वितरणार्थ प्रकाशित ।

(२६) अभिमन्यु का आत्मदान (खंड-काव्य)—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत कमलाप्रसाद वर्मा, महाराज की ड्योढ़ी, पटना सिटी । मूल्य -)॥

(२७) गाँधी-गान—लेखक, 'कुमार', 'मिलाप' 'निर्बल' । प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-प्रचारक-कार्यालय, नरसिंहपुर (मध्य-प्रदेश) । मूल्य)॥।

(२८) मेरी भावना (वितरणार्थ)
(२९) विधवा-संबोधन (मूल्य -))
— लेखक, पं० जुगलकिशोर मुख़्तार । प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, गिरगाँव, बंबई ।

(३०) सादगी और बनावट (मूल्य सदुपयोग)
(३१) दिल किससे लगाएँ (,,)
(३२) रेशम के वस्त्र (मूल्य दयापालन)
(३३) सुंदरलाल (गल्प) मूल्य -)
— लेखक और प्रेषक, श्रीज्योतिप्रसाद जैन, जैनप्रदीप-संपादक, प्रेम-भवन, देवबंद, सहारनपुर ।

(३४) साबुन का उपयोग—लेखक, श्रीयुत दुलीचंद, अग्रवाल । प्रकाशक, छत्तीसगढ़—ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, रायगढ़ (मध्य-प्रदेश) । मूल्य -)

(३५) गायगुहार और कुरीतिनिवारण (आल्हा)—लेखक, पं० गोविंददयाल मिश्र । प्रकाशक, पं० अंबिकादत्त त्रिपाठी साहित्यसागर ; मु० सुइथा कलाँ, डा० सरपतहा, ज़ि० जौनपुर । मूल्य =)

(३६) बेहयाई की हद—मूल्य -)
(३७) नारी-नित्य-पाठ— ,,
(३८) अबला है या बला—)॥
— रचयिता, पं० मोतीलाल नागर । प्रकाशक, पं० बलदेवराम नागर, अमर-कंपनी, हाथरस ।

(३९) पूर्णियापरिचय—लेखक, श्रीयुत अशरफीलाल वर्मा । प्रकाशक, श्रीयुत वीरनारायणचंद, मधुबनी पूर्णिया पद्यबद्ध ।

(४०) भारतीय वीर—लेखक और प्रकाशक, पं० देवीराम शर्मा, शमसाबाद, आगरा । मूल्य डेढ़ आना । पद्यबद्ध

(४१) सोरठा-संग्रह—संग्रहकर्ता और प्रकाशक श्रीयुत चतुरसिंह बीका राठौर, आपूवाला, बीकानेर । मूल्य

(४२) श्रीशिवमहिमामृतवर्षा—रचयिता, परमहंस श्यामनाथ कविघन । संशोधक, कार्ष्णि नारायणदास सेठ शामदास धनराजमल टीकमदास द्वारा शिकारपुर (सिंध) से वितरणार्थ प्रकाशित ।

(४३) सत्ताइस इल्मों की सीढ़ी
(४४) श्रीगंगालहरी
— लेखक और प्रकाशक, वैद्यराज पं० शिवजीलाल शर्मा आयुर्वेद-मार्तंड, मे...

(४५) शिव-पार्वती-विवाह—रचयिता तथा प्रकाशक, 'कीर्तनविशारद' पं० रामचंद्र शर्मा भजनोपदेशक मंडावर, बिजनौर (यू० पी०); मूल्य ढाई आने ।

(४६) श्रीपंचरत्न-गीता—लघु अक्षर, सजिल्द, गुटका, मू० ।≡)
(४७) ,, मध्यमाक्षर, सजिल्द गुटका, मू० ॥=)
(४८) श्रीमद्भगवद्गीता— ,, ,, ,, ।≡)
(४९) ,, गुजराती सरलार्थ-सहित, सजिल्द, गुटका, मू० ॥)
(५०) ,, मराठी-सुबोध-टीका-सहित ॥)
(५१) ,, १२वाँ और १८वाँ अध्याय, हिंदी की सरल टीका-सहित,)॥
(५२) ,, मूल, मोटा अक्षर, सजिल्द, मूल्य ॥।=)
(५३) श्रीएकाध्यायी गीता (गुजराती सरलार्थ-सहित)
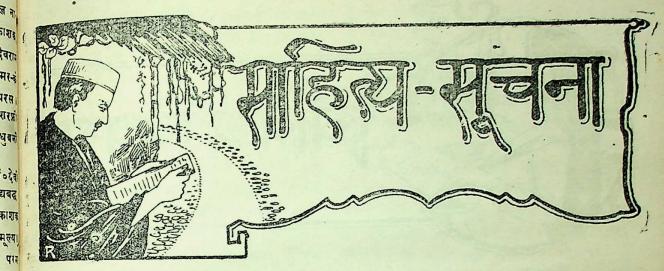
इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "केशव-कौमुदी (दूसरा भाग)", लाला भगवानदीन-कृत टीका। मूल्य २।), सजिल्द २॥)

(२) "विनय-पत्रिका (सटीक)", वियोगी हरि-कृत टीका। मूल्य २॥), सजिल्द २॥।)

(३) "भारतवर्ष का इतिहास (प्रथम खंड)", "मिश्रबंधु"-लिखित। द्वितीय संस्करण। मू० सजिल्द १॥)

(४) "भाषा-विज्ञान", बा० श्यामसुंदरदास बी० ए०-लिखित। मूल्य ३)

(५) "हिंदी-भाषा का विकास", बा० श्यामसुंदरदास बी० ए०-लिखित। मूल्य ॥=)

(६) "पद्मावत", लाला भगवानदीन-संपादित। मूल्य १), सजिल्द १।)

(७) "अकबर की राज्य-व्यवस्था", पं० शेषमणि त्रिपाठी बी० ए०-लिखित। मूल्य १)

(८) "सूर्य-सिद्धांत", बाबू महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस्० सी०, एल्० टी०, विशारद-कृत भाष्य। मू० ॥=)

(९) "विरहिणी-व्रजांगना", "मधुप"-कृत पद्यानुवाद। चतुर्थ संस्करण। मूल्य ।)

(१०) "कृष्ण-जीवन-चरित्र", लाला लाजपतराय-लिखित। द्वितीयावृत्ति। मूल्य १)

(११) "अष्टोपनिषद्", पं० बदरीदत्त जोशी-कृत अनुवाद। तृतीयावृत्ति। मूल्य २)

(१२) "कंठी-जनेऊ" का विवाह, मूल्य =)
(१३) "स्वर्ग में महासभा", मूल्य २)
} स्वर्गीय पं० रुद्रदत्त शर्मा संपादकाचार्य-लिखित। तृतीयावृत्ति।

(१४) "वर्षा और वनस्पति", पं० शंकरराव जोशी-लिखित। मूल्य ।)

(१५) "शारीर शास्त्र", राय साहब श्रीशिवदास मुकर्जी बी० ए०-लिखित। मूल्य –)॥

(१६) "शैलबाला", श्रीमती सावित्रीदेवी-कृत अनुवाद। मूल्य १)

(१७) "बोलशेविक रहस्य", पंडित रामनाथ पांडेय-कृत अनुवाद। मूल्य १॥।), रेशमी जिल्द २।)

(१८) "पृथ्वीराज-रासो", पं० मथुराप्रसाद दीक्षित-लिखित। मूल्य ॥)

(१९) "शैतानी फंदा", देवबस्मीसिंह-लिखित। मूल्य १॥), रेशमी जिल्द २)

(२०) "सुंदरी अमेलिया", पं० कार्त्तिकेयचरण मुखोपाध्याय-कृत अनुवाद। मूल्य १॥।), रेशमी जिल्द २।)

(२१) "सटक सीताराम", "एक नाटक-प्रेमी"-लिखित। मूल्य ।)

(२२) "घोटाला पर घोटाला", मू० ।)
(२३) "हिंदू स्त्री", मूल्य ॥=)
(२४) "अजामिल-उद्धार", मू० ।॥)
} मुंशी 'भारज़'साहब-लिखित।

१. हिंदुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार

इधर कुछ दिनों से हिंदुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार साधारणतः बड़ा ही कटु हो रहा है। कोई दिन ऐसा नहीं बीतता, जिस दिन के दैनिक पत्रों में हिंदुओं के प्रति मुसलमानों के दुर्व्यवहार और अत्याचार की ख़बर पढ़ने को न मिलती हो। कम-से-कम सौ-पचास स्थानों में अब तक हिंदू लुट-पिट चुके हैं, उनकी स्त्रियाँ बेइज़्ज़त हुई हैं, उनके बच्चे ज़बरन् या धोका देकर मुसलमान बनाए गए हैं। सहारनपुर, हावड़े आदि के दंगे अभी कल की घटना हैं। बंगाल के देहातों में अधिकतर मुसलमान गुंडे हिंदू-युवतियों को उठा ले जाकर उन पर अत्याचार करते हैं, और उनका यह क्रम लगातार जारी है। दिल्ली और पंजाब आदि में हिंदुओं पर मुसलमानों का अत्याचार सुसंगठित रूप से चल रहा है। हसन निज़ामी की स्कीम के अनुसार मौल्वी लोगों ने काम जारी कर दिया है। उधर भूपाल, हैदराबाद, भावलपुर आदि मुसलमानी-रियासतें भी हिंदुओं के साथ अंधाधुंध अन्याय कर रही हैं, ऐसा सुना जाता है। पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि हैदराबाद में ज़बरदस्ती हिंदू मुसलमान बनाए जाते हैं। भूपाल की रियासत ने तो धार्मिक स्वतंत्रता अथवा मत-परिवर्तन की आज़ादी भी क़ानून बनाकर छीन ली है। हज़रत आग़ा ख़ाँ साहब के अनुयायी अलग भोले-भाले हिंदुओं को बहका रहे हैं। वे आग़ा ख़ाँ साहब को निष्कलंक कृष्णावतार बताकर डंके की चोट अन्याय कर रहे हैं, और ख़ाँ साहब उसका प्रतिवाद नहीं करते। प्रतिवाद का न करें, वह तो खुल्लम-खुल्ला हिंदू-जाति के 'अछूत' भाइयों को हड़पने का विचार प्रकट करते भी नहीं हिचकते! अभी उस दिन कुछ धर्मांध मुसलमान-सिपाहियों ने एक गोरखे को, मुसलमान होने के लिये राज़ी न होने पर, गोली मार दी। एक तरफ़ मुसलमान-भाई चाहते हैं कि वे हिंदुओं को बेरोक-टोक मुसलमान बनाते रहें, मसजिदों के आगे बाजा न बजे, हिंदू-संगठन और अछूतोद्धार बंद कर दिया जाय, गो-वध रोकने की चेष्टा न की जाय, और सरकारी नौकरियों में फ़ी सदी ८० तक मुसलमानों को (अयोग्य होने पर भी) मिलें। दूसरी ओर हिंदू-जाति कुंभकर्णी निद्रा में पड़ी ख़र्राटे ले रही है। न कहीं संगठन है, न कहीं आई हुई आपत्ति की अनुभूति। कुछ सज्जन तन-मन-धन से इस मुर्दा जाति को जगाने और आत्मरक्षा के लिये प्रस्तुत करने का प्रयत्न अवश्य कर रहे हैं। पर उनके आगे भी अनेक बाधाएँ हैं। पहले तो धन की कमी है, दूसरे काम करने-वाले सच्चे आदमियों का अभाव। कहते हुए हृदय विदीर्ण होता है, इस आपत्ति के अवसर में भी अनेक रँगे सियार स्वार्थ-साधन का पाप करने से नहीं बाज़ आते। पबलिक से अगर आर्थिक सहायता कुछ मिलती भी है, तो अक्सर ऐसे धूर्त देशहितैषी बनकर घुस पड़ते हैं, और देशोद्धार या जाति-सुधार के बदले अपनी जेबें भरते और पेट पालते हैं। अगर ऐसा न होता, सच्चे और लगनवाले कार्यकर्ता २-४ सौ भी कार्यक्षेत्र में देख पड़ते, तो अब तक बहुत कुछ हिंदू-संगठन का काम हो जाता। कुछ भाई

तो यहाँ तक नीच प्रकृति के हो गए हैं कि वे मुसलमानों से धन लेकर स्वामी श्रद्धानंदजी, मालवीयजी आदि नेताओं पर धूल उछालते नज़र आते हैं। इस जाति की अजब हालत है। अनुयायी कोई नहीं है, नेता शहर-शहर घर-घर भरे पड़े हैं। प्लेटफ़ार्म पर खड़े होकर जोशीले लेक्चर देने और अग्निगर्भ लेख लिखने में ही ऐसे नेताओं के कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है। कष्ट उठाकर गाँव-गाँव घूमने और अपढ़ भाइयों को सच्ची परिस्थिति और कर्तव्य तथा उद्धार के उपायों का ज्ञान कराने को ये नेता अपना काम नहीं समझते। ये लोग व्याख्यानों और लेखों में जिस आदर्श का उपदेश करते हैं, उसका पालन स्वयं नहीं करते, और इसी कारण इनके व्याख्यान और लेख भी देश या जाति को कुछ लाभ नहीं पहुँचाते।

मुसलमान-भाई हिंदुओं के साथ जो कुछ दुर्व्यवहार कर रहे हैं, उसके लिये हम उनको कोसना उचित नहीं समझते। हम तो उनकी निंदा न करके उनकी तत्परता, जातिवत्सलता, भ्रातृप्रेम और एकता आदि गुणों की प्रशंसा ही करेंगे। एक अपरिचित अज्ञातकुलशील मुसलमान पर भी आई हुई आपत्ति को प्रत्येक मुसलमान अपने ऊपर आई हुई आपत्ति समझता है। किंतु हिंदुओं को देखिए, सगे भाई पर भी आई हुई आफ़त उनके हृदय पर कुछ असर नहीं करती। एक हिंदू पड़ोसी लुटता-पिटता है, तो सब और पड़ोसी अपने किंवाड़े बंद कर घर में छिप जाते हैं! तभी तो मुष्टिमेय मुसलमान गुंडे दिन-दहाड़े हज़ारों हिंदुओं की आँखों के आगे उनकी मा-बहनों पर अत्याचार करने और लूटने-पीटने का साहस करते हैं। कायर हिंदुओ, कब तक यह फूट और कायरपन तुम्हारा दामन न छोड़ेंगे? इस तरह कब तक अपना अस्तित्व बनाए रख सकोगे? नामर्दो, तुम्हारी आँखों के आगे कुल-महिलाओं पर, बच्चों पर, जाति के दीन-दरिद्रों पर पैशाचिक आक्रमण और अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, और तुम टुकुर-टुकुर देखते हो, अपाहिज की तरह प्रतिकार नहीं कर सकते, ज़नखों की तरह लुट-पिटकर रोते और हाय-हाय करते हो! धिक्कार है तुम्हारे जन्म लेने को! फिटकार है तुम्हारे इस कायर जीवन पर!

हम मानते और जानते हैं कि हमारे ये शब्द बहुत कठोर हैं, किसी दर्जे तक अनुचित भी कहे जा सकते हैं, पर क्या करें, चोट-पर-चोट खाए हृदय के ये उद्गार हैं। इनमें कृत्रिमता नहीं है, अपने नालायक़ भाइयों को इनसे नरम शब्दों में याद करना हमारे व्यथित हृदय के लिये असंभव है। संभव है, हमारे इन शब्दों के आघात से दस-बीस हृदयों में ही जाति की हीनावस्था का रेखापात हो, जाति को सबल और आत्मरक्षा की क्षमता से संपन्न बनाने की सच्ची लगन पैदा हो, अपनी मा-बहनों के अपमान या बच्चों के अपहरण से तिलमिला उठनेवाले कुछ भी कर्मठ नवयुवक जाति और धर्म की रक्षा के लिये प्राणपण से कार्यक्षेत्र में अग्रसर हों। हम अपने नवयुवक भाइयों से एक बार फिर अपील करते हैं। इस समय जाति की रक्षा और धर्म का उद्धार या सुधार वे ही कर सकते हैं। उनके अग्रसर हुए बिना कुछ न होगा। इस आँखों की अंधी, कानों की बहरी, जड़प्राय, लकीर की फ़क़ीर हिंदू-जाति के आशास्थल युवकों को इस समय किसी धूमधामी वयोवृद्ध नेता की प्रतीक्षा में चुपचाप बैठे रहना उचित नहीं है। उन्हें देश के प्रत्येक प्रांत में अपना कार्यक्षेत्र बाँट लेना चाहिए। वे संघबद्ध न होकर व्यक्तिगत रूप से भी बहुत कुछ कर सकते हैं। राजनीतिक उन्मादना को हृदय से निकालकर जातीयता के प्रचार और प्रसार को ही उन्हें अपना एक-मात्र लक्ष्य बनाना चाहिए। स्वराज्य प्राप्त करने की अपेक्षा जाति और धर्म की रक्षा करना अधिक आवश्यक है। जाति ही न रहेगी, तो स्वराज्य का सुख कौन भोगेगा? नवयुवकों से हमारी यह भी प्रार्थना है कि वे उच्छृंखलता को प्रश्रय न दें। कुछ न करनेवाले अपने भाइयों पर वाक्य-बाण न छोड़ना जैसे उनका कर्तव्य है, वैसे ही मुसलमान-भाइयों से वैर न बढ़ाकर उनके प्रति प्रेम ही का व्यवहार करना भी उनका लक्ष्य होना चाहिए। उनका मूल-मंत्र होना चाहिए आत्मरक्षा, न कि बदला। नेकी करनेवाले से नेकी सब करते हैं, बदी करनेवाले से भी नेकी करने में ही प्रशंसा है—यही भाव मनुष्य को देवता बनाता है। उन्हें शहर-शहर, गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर देश की दशा का अध्ययन करना चाहिए, आए हुए संकट को मिटाने के उपाय सोचना और उनका उपयोग करना चाहिए। इस समय आत्मरक्षा के लिये शक्ति का संचय

करना उनका सर्वोपरि कर्तव्य है । प्रत्येक स्थान के नव-युवकों को मिलकर ऐसी समिति का संगठन करना चाहिए, जिसके सदस्य उन गुंडों पर दृष्टि रक्खें, जो जाति की स्त्रियों और बच्चों को बहकाकर धर्मच्युत करने के षड्यंत्र रचते हैं । वे लोग उन प्रचारकों पर भी दृष्टि रक्खें, जो धर्म के नाम पर अपढ़ लोगों को लूट-मार के लिये उत्तेजित करते हैं । वे लोग ऐसे दुरवसरों पर स्थानीय लोगों को पहले से सावधान कर दिया करें, और भावी दुर्घटना को रोकने के लिये पहले से प्रस्तुत रहें । इस तरह युवक-समाज के उठ खड़े होने पर दुष्टों का दुस्साहस बहुत कम हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं । कम-से-कम हमारा तो यही विश्वास है । हम ऐसे युवक-समाजों की स्थापना का सुसमाचार सुनने के लिये उत्कर्ण रहेंगे । आशा है, हमारी यह प्रार्थना अरण्य-रोदन में परिणत न होगी ।

× × ×

२. द्विवेदीजी का दान

योरप के देशों में प्रसिद्ध प्राचीन लेखकों और कवियों के हाथ की लिखी एक-एक चिट्ठी तक बहुमूल्य समझी जाती है । उनके हाथ की लिखी चिट्ठियों और ग्रंथों की पांडुलिपियों का सादर संग्रह किया जाता है । शेक्सपियर आदि के हाथ की लिखी चिट्ठी आज लाखों रुपए मूल्य पर बिक सकती है । हिंदी के लेखकों या कवियों के पत्र-व्यवहार अथवा पांडुलिपियों के ऐसे क़दरदान मिलना तो अभी असंभव ही है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि इस शताब्दी के अंत तक या अगली शताब्दी में आज के वयोवृद्ध सुलेखकों और सुकवियों की चिट्ठियों और पांडुलिपियों को लोग आदर और आग्रह के साथ देखेंगे । इसलिये उन्हें सुरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है । आज भी अगर सूरदास, केशव, देव, तुलसीदासजी आदि के पत्र-व्यवहार और ग्रंथावलियों की हस्त-लिखित पांडुलिपियाँ सुरक्षित होतीं, तो उनका कम आदर न होता । हर्ष की बात है कि लोगों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ है, और आशा है, अब पहले के ज़माने की तरह ऐसी सामग्री नष्ट न होने पावेगी । इस शुभकार्य की सूचना हमें नागरी-प्रचारिणी पत्रिका से प्राप्त हुई है । हिंदी के स्वनामधन्य सुलेखक, सुकवि और संपादकवर्य, ज्ञानवयोवृद्ध पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने अपनी पुस्तकों की हस्त-लिखित पांडुलिपियाँ, सरस्वती के १७ वर्ष के लेखों की हस्त-लिखित प्रतियाँ, अपना कुछ पत्र-व्यवहार और अपना संपूर्ण पुस्तक-संग्रह काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा को दे डाला है । पत्र-व्यवहार इस शर्त पर दिया है कि आपके जीवन-काल में वह सर्व-साधारण को दिखाया न जाय, अथवा किसी प्रकार उसका उपयोग न किया जाय । सभा ने निश्चय किया है कि यह संग्रह पुस्तकालय में अलग आलमारियों में रक्खा जाय, और उन पर लिखा रहे कि "पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का संग्रह" । हम द्विवेदीजी के इस सात्त्विक दान की प्रशंसा करते हैं । आपके संग्रह से हिंदी-संसार को अच्छा लाभ होने की संभावना है । किंतु इस संबंध में हम इतना अवश्य कहेंगे—यद्यपि अब कहना व्यर्थ है—कि द्विवेदीजी यदि यह संग्रह हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के संग्रहालय को देने की कृपा करते, तो अधिक उपयुक्त होता । हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि ना० प्र० सभा को देने से सर्व-साधारण को लाभ न होगा । हमारा कहना यही है कि सम्मेलन का संग्रहालय अखिल भारतवर्षीय है, और सभा प्रांतीय । अखिल भारतवर्षीय संग्रहालय को देने से इस दान का महत्त्व और भी अधिक होता ; संग्रह देश-भर की संपत्ति समझा जाता, उससे सारा देश लाभ उठा सकता । किंतु 'गतस्य शोचना नास्ति' । हाँ, यदि इस अंतर को समझकर सभा के संचालक, दाता की अनुमति लेकर, सारा संग्रह सम्मेलन के संग्रहालय को दे दें, तो और बात है । यह कुछ अनुचित भी न होगा । कारण, ना० प्र० सभा के सर्वस्व बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए० ही सम्मेलन के भी जन्मदाता हैं ।

× × ×

३. देश में डकैतियों की धूम

इस समय देश की विचित्र स्थिति है । अराजकता-सी छाई हुई है । पुलीस के रहते भी गवर्नमेंट के दोर्दंड प्रताप की अवहेला करके चोर, डाकू आदि प्रजा पर आक्रमण करते हैं । बंगाल में तो डाकों का शुमार ही नहीं है । सप्ताह में ४०-५० तक डाके पड़ जाते हैं । डाकू लोग खून करके, माल लेकर, चंपत हो जाते हैं । निरस्त्र प्रजा सशस्त्र डाकुओं का सामना नहीं कर सकती । समय पर लोग अगर जमा भी होते

तो फ़ायर की आवाज़ सुनकर आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं होती। सुन पड़ता है, ये डकैतियाँ राजनीति से संबंध रखती हैं, डाकू पढ़े-लिखे बंगाली युवक ही अधिकतर होते हैं। पर हमारी समझ में नहीं आता कि ये भलेमानुस डाकू पेशेवर डाकुओं की तरह कैसे डाका डालकर साफ़ बच जाते हैं, अथवा इनमें डाकुओं की-सी निर्दयता कहाँ से आ जाती है? जब ये, अपनी समझ से, देशोद्धार के लिये धन-संग्रह करते हैं, तब अपने देश-भाइयों की इस तरह हत्या करने में क्यों नहीं हिचकते? इसके अलावा, अपने ही कथनानुसार, आंदोलन करनेवाले राजनीतिकों की गुप्त-से-गुप्त ख़बर खोज निकालनेवाली, सतर्क पुलीस इन डाकुओं को मौक़े पर पकड़ने में कैसे असमर्थ रहती है? पुलीस के पास धन, जन, शस्त्र आदि यथेष्ट संख्या में रहने पर भी, इस ओर उसकी ऐसी अकर्मण्यता कदापि क्षंतव्य नहीं है। डाकों का ज़ोर बंगाल ही में नहीं है; देश के अन्य भागों से भी डाकों और चोरियों की ख़बरें मिलती रहती हैं। आजकल लखनऊ में भी यह उपद्रव बढ़ता नज़र आता है। सराय-मालीख़ाँ नाम के मुहल्ले में, अभी हाल ही में, डॉक्टर इसमाईल नाम के एक युवक को डाकुओं ने, अपनी समझ में, जान ही से मार डाला था; परंतु वह बच गया, माल सब लुट गया। डाकू सशस्त्र थे। उनका एक तमंचा छूट गया है, सो मिला है। नित्य शहर के भिन्न-भिन्न भागों में चोरियों की ख़बर सुन पड़ती है। रात को चोरों के आने से शोर-गुल मचा ही करता है। कई दिन हुए, एक मुसलमान सेंध लगाते पकड़ा गया है। सुनते हैं, उसने बतलाया है कि इन डाकुओं या चोरों का एक गरोह है। ये लोग दिन को शहर के बाहर रहते हैं, शाम को भले आदमियों के वेष में हवा खाने आते हैं। ये स्त्रियों और बच्चों से मेल पैदा करके माल की थाह लगाते हैं, डाका डालते या चोरी करते हैं, बच्चों और स्त्रियों को भी उड़ा ले जाते हैं। आशा है, शहर के सुयोग्य कोतवाल साहब इन दुष्टों का दमन करने में कोई बात उठा न रक्खेंगे, पता लगाकर सबको गिरफ़्तार कर लेंगे। गवर्नमेंट से भी हमारी यह प्रार्थना है कि जब पुलीसवाले इन सशस्त्र डाकुओं को पकड़ नहीं पाते, और ये डाकू अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आते—यहाँ तक कि बंगाल की और नित्य २-४ डाके डालते हैं; देहातों की बात दूसरी है, ख़ास कलकत्ता-शहर में सरे-बाज़ार लूटते हैं, मार डालते हैं; बंबई में डाकू पठान ऊधम मचाए हुए हैं; सीमा-प्रांत में पठान डाकुओं के ग़ोल-के-ग़ोल हिंदू-प्रजा पर आक्रमण करते हैं, रुपए न पाकर रुपए वसूल करने के लिये आदमियों को उठा ले जाते हैं, सरकारी आदमियों तक को नहीं छोड़ते—तब गवर्नमेंट का कर्तव्य है कि वह ऐसे स्थानों पर प्रजा को, अपनी जान-माल की रक्षा करने के लिये, शस्त्र रखने का अधिकार दे दे। गवर्नमेंट को प्रजा के प्रति अविश्वास की नीति में कुछ परिवर्तन करना चाहिए। बहुत बड़ी सेना और नए ढंग के अस्त्र-शस्त्रों का बल रखनेवाली सरकार को सोचना चाहिए कि पुराने ढंग की कुछ बंदूक़ें और तमंचे प्रजा के हाथ में जाकर उसका मुक़ाबला नहीं कर सकते, मगर सशस्त्र डाकुओं से निरस्त्र प्रजा की रक्षा अवश्य कर सकते हैं। इतना हमने गवर्नमेंट की दिलजमई के लिये लिख दिया है, अन्यथा इस शांतिमय गाँधी-युग में सशस्त्र विद्रोह की तो कल्पना ही नहीं हो सकती। अगर भारत-सरकार ग़रीब प्रजा को शस्त्र देकर उसकी रक्षा न करेगी, तो पुलीस की अकर्मण्यता से उत्साहित डाकू-दल प्रजा का संहार ही कर डालेगा। आशा है, गवर्नमेंट बहुत शीघ्र इस समस्या पर विचार करके प्रजा की रक्षा का उचित उपाय करेगी। उसे चाहिए, उसका यह कर्तव्य है कि या तो पुलीस की अकर्मण्यता को सख़्ती के साथ दूर करे, या ऐसे स्थानों की प्रजा को शस्त्र रखने का अधिकार दे, या और कोई उपाय—जो उसे सूझ पड़े—करे।

× × ×

४. अमेरिका में रंग का प्रश्न

शरीर के रंग का प्रश्न आजकल सब ओर रंग पकड़ रहा है। अमेरिका के लोगों को लोग इस ज़माने में सबसे अधिक स्वतंत्रता का उपासक समझते थे। परंतु "प्रभुता पाय काहि मद नाहीं?" आज अमेरिका सब-से अधिक धनी देश है। कोई ऐसा बड़ा देश नहीं है, जो उसका ऋणी न हो। अमेरिका का व्यापार बहुत बढ़ा-चढ़ा है। ऐसी स्थिति में दिमाग़ सही रखना क्या सहज है, ख़ासकर आध्यात्मिकता-शून्य और भौतिकता-भक्त जातियों के लिये? क्या योरप और क्या अमेरिका, सबका

इष्टदेव धन है। इसके लिये कोई ऐसा अन्याय नहीं, जिसे वे न कर सकें। इसके अतिरिक्त हमारी तो धारणा यह है कि अमेरिका और योरप के लोग गोरी जातियों के लिये स्वतंत्रता के पक्षपाती भले ही हों, पर एशिया की काली जातियों को तो वे इस योग्य कदापि नहीं समझते। इधर एशिया के बहुत-से आदमी अमेरिका में जाकर बसने और धनोपार्जन करने लगे थे। यह बात भला अमेरिकनों को क्यों अच्छी लगने लगी कि उनके देश का धन अन्य देश के लोगों के हाथ में चला जाय! संसार के सर्वश्रेष्ठ धनी होने पर भी अमेरिकन लोग नहीं चाहते कि एशियाई लोग उनकी संपत्ति में हिस्सा लगावें। एशियाई लोगों के इस संपत्ति-शोषण को रोकने के लिये अमेरिकन लोग बहुत दिनों से चेष्टा कर रहे थे। उसी के फलस्वरूप इधर इमीग्रेशन-बिल अमेरिका की राष्ट्र-सभा में पेश किया गया, जिसका उद्देश्य यही है कि एशिया की कोई जाति—स्वतंत्र जापानियों से लेकर परतंत्र भारतवासियों तक—अमेरिका में निवास न कर सकेगी, और न वहाँ अपनी कोई संपत्ति ही क़ायम कर सकेगी। जापान यद्यपि इस समय दैव-कोप से दुर्बल हो गया है, तथापि वह अपनी जाति के इस अपमान को, चीन और भारत आदि की तरह, चुपचाप सह लेनेवाला नहीं है। यह बात अमेरिकन भी जानते हैं, और इसीलिये भूकंप की दुर्घटना के पहले तक वे ऐसा साहस नहीं कर सके। इस समय जापान युद्ध नहीं छेड़ सकता; क्योंकि उसे अभी पहले अपना घर सँभालना है। इसी अवसर की सुविधा पाकर अमेरिका ने जापानियों को भी अमेरिका से निकाल बाहर करना चाहा। इस ख़बर से जापान में हलचल मच गई। जापान के मंत्री ने स्पष्ट कह दिया कि अमेरिका के इस दुर्व्यवहार को जापान चुपचाप सह नहीं सकता। अगर अमेरिका दुराग्रह करेगा, तो फल अच्छा न होगा। इस पर वर्तमान राष्ट्र-पति कूलिज़ ने प्रतिनिधि-सभा में अनुरोध किया कि कुछ समय के लिये यह बिल स्थगित रक्खा जाय, अर्थात् जापानियों के लिये लागू न समझा जाय, और तब तक जापान से इस बारे में उचित समझौता करने की चेष्टा की जाय। परंतु मदांध और उच्छृंखल प्रतिनिधियों ने यह भी स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार आगामी १ जुलाई से अमेरिका में यह बिल क़ानून हो जायगा। अमेरिका का भाव जापान के प्रति बहुत दिन से अच्छा नहीं है, वह सदैव जापान से सशंक रहता है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि जापान और अमेरिका में युद्ध होना अनिवार्य है, वह चाहे जब हो। यदि जापान की शक्ति क्षीण न हो गई होती, तो बहुत संभव था कि आज इस अन्याय का जवाब हवाई-जहाज़ के बम और तोपें देतीं। तथापि यह निश्चित है कि स्वाभिमानी, स्वतंत्र जापान अमेरिका के किए हुए इस अपमान को बरदाश्त नहीं कर सकता। अमेरिका रंग, सभ्यता, सुविधा आदि की आड़ लेकर आज जापान पर वार कर रहा है। वे मदांध प्रतिनिधि, जिन्होंने दूरदर्शी राष्ट्र-पति के शुभ प्रस्ताव को ठुकरा दिया है, शायद यह समझ बैठे होंगे कि आज का निर्बल जापान कभी पहले की-सी शक्ति न प्राप्त कर सकेगा। किंतु यह उनकी भूल है। उन्हें बहुत शीघ्र अपने राष्ट्र-पति की इच्छा के अनुसार चलना पड़ेगा। इस बारे में भारतीयों के लिये, सुन पड़ता है, भारत-सरकार अमेरिका से लिखा-पढ़ी कर रही है। पर हमें तो कुछ फल होने की आशा नहीं है। हमारा तो ख़याल है—"बिन भय होय न प्रीति" और "टेढ़ जानि शंका सब काहू"।

× × ×

५. तीर्थों और देवालयों का सुधार

दुराचारी अधिकारी तीर्थों और देवालयों को दूषित न कर सकें, ऐसे स्थानों की संपत्ति को बुरे कामों में उड़ा न सकें, इसके लिये देश में चेष्टा होने लगी है। इस समय तारकेश्वर-मंदिर की सुधार-समस्या ने देश में हलचल मचा रक्खी है। स्वामी सच्चिदानंद पर प्राणघातक आक्रमण हुआ। स्वामी विश्वानंद के नेतृत्व में काम करनेवाले सत्याग्रही स्वयंसेवक महंत के महल पर अधिकार करने की चेष्टा में गिरफ़्तार हो रहे हैं। स्वामी विश्वानंद गिरफ़्तार हो गए हैं। स्वामी सच्चिदानंद भी गिरफ़्तार कर लिए जायँगे। इस प्रकार महंत के विरुद्ध सत्याग्रह चल रहा है। भारत-मंदिर (ऋषीकेश) में भी ऐसी ही घटनाएँ होने की शीघ्र संभावना है। कारण, वहाँ के महंत भी तारकेश्वर के महंत की तरह गद्दी से न हटने का दुराग्रह कर रहे हैं। ये महंत लोग सर्व-साधारण की दी हुई देव-संपत्ति को अपनी व्यक्तिगत संपत्ति बताने की धृष्टता भी करते हैं। मान लिया कि ये लोग दुराचारी

नहीं हैं। फिर भी अपने को संन्यासी कहनेवाले इन महाशयों को अपने तईं संपत्ति का स्वामी कहने में लज्जित होना चाहिए। संन्यासी को संपत्ति से क्या वास्ता ? अगर सर्व-साधारण में इनके प्रति बुरे भाव फैल रहे हैं, अगर लोग तीर्थों या देवालयों पर इनका आधिपत्य नहीं चाहते, और ये वास्तव में दुराचारी या विलासी नहीं हैं, तो इन्हें फ़ौरन् गद्दी पर से हट जाना चाहिए। इन्हें भोजन-वस्त्र की क्या चिंता है ? संन्यासी जिस गृहस्थ के द्वार पर खड़ा हो जायगा, वहीं उसे भोजन मिल जायगा। रहा वस्त्र, सो एक लँगोटी में भी काम चल सकता है। संन्यासी के लिये राजसी ठाट-बाट की क्या ज़रूरत ? अच्छा भोजन, राजसी ठाट, संपत्ति का संचय इत्यादि तो ऐसी बातें हैं कि गृहस्थों के ही दिमाग़ सही नहीं रहते; फिर संन्यासी अगर इन बातों से बिगड़ जायँ, आचार-भ्रष्ट हो जायँ, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। सर्व-साधारण की इच्छा के विरुद्ध, लोक-मत की उपेक्षा करके, अदालत की शरण लेकर, गुंडे नौकर रखकर ये संन्यासी कब तक टिक सकते हैं ? इनके ऐसे दुराग्रह और जघन्य कृत्यों से लोगों की अश्रद्धा और बढ़ने के सिवा कोई अच्छा परिणाम नहीं हो सकता। पक्षांतर में हमें सुधार करने के लिये उद्यत कार्य-कर्ताओं से भी एक निवेदन करना है। उनको इतनी उतावली न करनी चाहिए, जिसमें अशांति उत्पन्न हो, या खून-ख़राबी का ख़तरा हो। सत्याग्रह एक ऐसा अस्त्र है, जिसका प्रयोग बिलकुल लाचार होने पर, सबके अंत में, करना चाहिए। यह वह ब्रह्मास्त्र है, जिसे प्रयोग करनेवाला भी लौटा नहीं सकता। तारकेश्वर में सत्याग्रह आरंभ करनेवालों को पहले मित्र-भाव से कार्यारंभ करना चाहिए था। देश के अग्रगण्य धर्माचार्यों, नेताओं और धनियों का एक प्रतिनिधि-दल संगठित करके महंत से मिलना था। उन्हें समझाकर कहना था—लोक-मत का आदेश है कि आप इस देव-स्थान का प्रबंध सर्व-साधारण को सौंप दें। फिर भी अगर महंत न मानते, तो उनके प्रति विरोध का भाव और भी तीव्र हो जाता, और सुधार करनेवालों को और भी अधिक सहानुभूति एवं सहायता प्राप्त होती। इसके उपरांत मंदिर पर अधिकार कर लिया जाता; जैसा किया भी गया है। अब मंदिर पर अधिकार करके उसकी आय सर्व-साधारण के चुने हुए प्रतिनिधियों की कमेटी के हाथ में सौंप देनी चाहिए। इस प्रकार मंदिर का सुधार हो चुकने पर यात्रियों की सब शिकायतें दूर करना उचित है। सुनते हैं, स्त्रियों से भी सत्याग्रह कराया जाता है। कुछ स्त्रियाँ घायल भी हो गई हैं। यह ठीक नहीं। मर्दों के रहते स्त्रियों को, उनके आग्रह करने पर भी, सत्याग्रह न करने देना चाहिए। तत्काल ही महंत के महल पर क़ब्ज़ा करने की चेष्टा करना, सरकार के द्वारा नियुक्त रिसीवर को काम न करने देना, महंत की वास्तव में जो निजी संपत्ति हो, उस पर भी अधिकार करने के लिये अग्रसर होना और सरकार की भी सहानुभूति खो बैठना ठीक नहीं है। स्वामी सच्चिदानंद या स्वामी विश्वानंद ने क्या सर्व-साधारण की सम्मति से रिसीवर का विरोध किया है, या महंत के महल और निजी संपत्ति पर अधिकार की चेष्टा की है ? अगर अपनी इच्छा के अनुसार उन्होंने ये बातें की हैं, तो उनका अनुमोदन नहीं किया जा सकता। तीर्थों और देवालयों के सुधार की बड़ी ज़रूरत है। इस बारे में दो रायें नहीं हो सकतीं; किंतु इस तरह भिड़ना, उतावलेपन से काम करना कि खून-ख़राबी की आशंका उपस्थित हो, सरकार शांति-रक्षा के ख़याल से कार्य-क्रम का विरोध करने को बाध्य हो, कदापि दूरदर्शिता नहीं है। हमारी तो राय यही है कि पूज्यपाद श्री १०८ शंकराचार्यजी, महात्माजी, महामना मालवीयजी, देशबंधु दास तथा ऐसे ही अन्य बड़े-बड़े लोगों का एक प्रतिनिधि-मंडल या कार्य-कारिणी समिति बनाई जाय, और उसके उपदेशानुसार मित्र-भाव से तीर्थों और देवालयों के सुधार का कार्य किया जाय। कम-से-कम शिरोमणि-कमेटी के समान एक कमेटी बनाकर देश के कार्य-कर्ता इस आंदोलन को अग्रसर करें, तभी सफलता होगी। एक-दो स्वामी अकेले अगुआ बनकर अगर ऐसी कार्य-पद्धति से काम लेंगे, तो लाभ के बदले हानि ही होने की अधिक संभावना है।

× × ×

६. बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा

गत दिसंबर-जनवरी में, कलकत्ते में, साम्राज्य-प्रदर्शिनी हुई थी। उसके कला-कौशल-विभाग में भारत के बड़े-बड़े प्रसिद्ध चित्रकारों के चित्र दिखलाए गए थे। हिंदी-संसार के प्रसिद्ध सिद्धहस्त और माधुरी-पाठकों के सुपरिचित चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने भी

अलकसीदा

अपने दो चित्र वहाँ प्रदर्शनार्थ भेजे थे । पहला चित्र 'उमर ख़ैयाम' माधुरी में निकल चुका है; दूसरा 'अलकसीदा' इस संख्या में, यहाँ, प्रकाशित किया जाता है । दोनों चित्रों पर आपको प्रथम एवं द्वितीय श्रेणी के पुरस्कार मिले हैं । प्रदर्शिनी में आए हुए चित्रों के चुनाव के लिये एक कमेटी बैठी थी । कमेटी ने वर्माजी के चित्रों को बहुत पसंद किया । कुछ और चित्र भी चुने गए थे । फिर दुबारा विलायत की प्रदर्शिनी में भेजने के लिये चित्र चुनने को जो एक कमेटी बैठी, उसने, चुने हुए चित्रों में से, लंदन की साम्राज्य-प्रदर्शिनी में भेजने के लिये, जो सर्वोत्तम चित्र छाँटा, वह वर्माजी का ही बनाया सर्वोत्कृष्ट चित्र अलकसीदा है । इस चित्र में वर्माजी ने सर रिचर्ड बर्टन के नीचे लिखे पद्य का भाव अंकित किया है—

"We dance along
death's icy brink,
But is the dance
less full of fun?"

माधुरी में प्रकाशित वर्माजी के सर्वांग-सुंदर चित्रों को देखकर अधिकांश पाठक

श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा

उनके दर्शन के लिये अतीव उत्सुक होंगे । अतएव वर्माजी का चित्र भी इसके साथ ही प्रकाशित किया जाता है। वर्माजी अब केवल भारत-प्रसिद्ध चित्रकार ही नहीं रहे, बल्कि जगत्प्रसिद्ध हो गए । आपके पिता प्रोफ़ेसर ईश्वरीप्रसाद वर्मा एक जगत्प्रसिद्ध चित्रकार हैं ही । उनके चित्र विदेशों में बहुमूल्य और आदरणीय समझे जाते हैं। उक्त वर्माजी अपने सुयोग्य पिता की सुयोग्य संतान हैं। आप बड़े हँसमुख, मिलनसार और चित्र-कला की बारीकियों के अनुभवी पारखी हैं । हर्ष का विषय है कि लंदन की साम्राज्य-प्रदर्शिनी में वर्माजी पाश्चात्य देशों

के धुरंधर चित्र-शिल्पियों की पंक्ति में सम्मान-पूर्वक स्थान प्राप्त करेंगे। हम वर्माजी को उनकी इस अपूर्व सफलता पर बधाई देते हैं।

× × ×

७. श्रीमती रमाबाई रानाडे का स्वर्गवास

हाल ही में श्रीयुत महादेव-गोविंद रानाडे की धर्मपत्नी श्रीमती रमाबाई का स्वर्गवास हो गया है। इस अमंगल समाचार को सारे भारत ने बड़े ही दुःख के साथ सुना। स्त्री-समाज का एक उज्ज्वल रत्न संसार से सदा के लिये उठ गया। महिला-सुधार की प्रगति को एक गहरी ठेस लगी। पूना का सेवा-सदन एक प्रकार से अनाथ हो गया। ऐसी भारी हानि के कारण भारत की आत्मा रो रही है। यहाँ पर हम श्रीमती का अत्यंत संक्षिप्त परिचय देते हैं।

श्रीमती रमाबाई रानाडे के पिता का नाम चिपलूनकर अथवा कुरलेकर था। उनका निवास-स्थान देवराष्ट्र में था। संवत् १९३० में श्रीरानाडे के साथ रमाबाई का विवाह हुआ। रानाडे की पहली पत्नी का देहांत हो जाने के बाद ही रमाबाई के साथ विवाह हुआ था। विवाह के पूर्व श्रीमती की शिक्षा बिलकुल साधारण थी; पर विवाह के बाद पति ने अपनी देख-रेख में इनको बहुत अच्छे ढंग की शिक्षा दिलवाई। अँगरेज़ी में भी इन्हें अच्छा अभ्यास हो गया था। इस भाषा में लिखने-पढ़ने में तो यह दक्ष थीं हीं, पर साथ-साथ इन्होंने व्याख्यान देने की भी अच्छी शक्ति प्राप्त कर ली थी। पति की यह यथार्थ अर्द्धांगिनी थीं। श्रीमान् रानाडे के पत्रों का उत्तर भी प्रायः यही दिया करती थीं। इनका गार्हस्थ्य जीवन सुखमय था। दांपत्य-प्रेम में किसी बात की कमी न थी। पति के आदेश से श्रीमती रमाबाई महिलाओं की दशा सुधारने के उद्योग में निरंतर लगी रहती थीं। विधवा होने के बाद से तो यही उनके जीवन का उद्देश्य हो गया था। श्रीचंदावरकर ने श्रीमती के विषय में क्या ही ठीक कहा था कि "किसी दूसरे से बढ़कर यदि रानाडे की हमें प्रशंसा करनी पड़ती है, तो इसीलिये कि वह श्रीमती रमाबाई-जैसी योग्य विधवा को छोड़ गए हैं, जो समस्त देश के लिये गर्व की वस्तु हैं।" सोशल कानफ्रेंस और भारत-महिला-परिषद्-जैसी अनेक संस्थाओं से श्रीमती का बड़ा घनिष्ठ

श्रीमती रमाबाई रानाडे

संबंध रहा। पूना के 'सेवा-सदन' और 'विधवाश्रम' का तो आप सर्वस्व ही थीं। जिस प्रकार सारा देश रमाबाई की सेवाओं के बोझ से दबा था, उसी प्रकार इनके संबंध में सरकार ने भी गुण-ग्राहकता का अच्छा परिचय दिया। यह यरवदा-जेल के ज़नाने-विभाग की विज़िटर थीं। संवत् १९७० में सरकार ने इनको 'क़ैसर-हिंद'-पदक देकर सम्मानित किया था। साहित्य-क्षेत्र में भी श्रीमती का अच्छा प्रवेश था। इन्होंने अपने पति के धार्मिक लेखों का जो संग्रह छपवाया है, उसकी भूमिका स्वयं लिखी है, और वह बहुत अच्छी है। "हमारे जीवन की कुछ बातें"-नामक जो एक पुस्तक इन्होंने लिखी है, उसकी भी बड़ी प्रशंसा हुई है। ऐसे महिला-रत्न का इस समय भारत-भूमि से उठ जाना सभी को दुःखद होगा।

× × ×

८. पं० गौरीशंकरजी भट्ट की कारीगरी के नमूने

हमने पिछली किसी संख्या में हिंदी के लिपि-शिल्पी पं० गौरीशंकरजी भट्ट का संक्षिप्त परिचय देते हुए पाठकों से यह वादा किया था कि हम समय-समय पर भट्टजी की कारीगरी के नमूने पाठकों की भेंट किया करेंगे। तदनुसार इस संख्या में भट्टजी के बनाए चार मोनोग्राम छापे जाते हैं। भट्टजी ने दिल्ली के साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर इनकी कल्पना बहुत जल्दी में—केवल एक ही दिन में—की थी। इनकी खूबी यह है कि फूल-पत्तियों में ही दो नाम संपूर्ण और दो नामों के
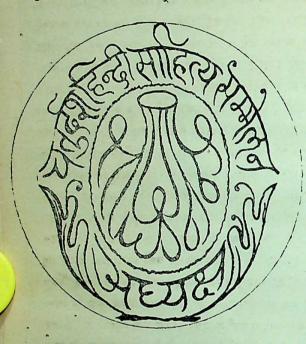
श्रद्धानन्द

अ० सिं० उ०

शंकर

के० ना० गो०

तीन टुकड़ों के तीन अक्षर निकाले गए हैं। बिना बतलाए आप इन्हें न देख पावेंगे; समझेंगे, फूल-पत्तियों का ही घुमाव-फिराव है। मगर बतलाते ही आपके आगे सब अक्षर स्पष्ट हो उठेंगे, गोया नज़र खुल जायगी। चारों मोनोग्रामों के बिल्ले दिल्ली के चारों पदाधिकारियों के शरीर पर शोभायमान थे। इनका परिचय इस प्रकार है—

१. श्रद्धानंद (स्वागतकारिणी के अध्यक्ष)

२. अ० सिं० उ० (अयोध्यासिंह उपाध्याय, सम्मेलन के सभापति)

३. शंकर (नाथूरामशंकर शर्मा, कवि-सम्मेलन के सभापति)

४. के० ना० गो० (केदारनाथ गोयनका, प्रधान मंत्री)

हमारे बहुत-से भाई अँगूठी, मुहर, चपरास, तमग़े आदि के लिये अँगरेज़ी में ही नाम के अक्षरों के मोनोग्राम बनवाते हैं। उन्हें चाहिए कि आइंदा नागराक्षरों में भट्टजी से ही बनवावें। देखिए, ये साधारण नमूने भी अँगरेज़ी के मोनोग्रामों से बुरे नहीं हैं। ऑर्डर देने पर भट्टजी इनसे कहीं अच्छे और ख़ूबसूरत बना सकते हैं। मोनोग्राम के संबंध में भट्टजी स्वयं अगली संख्या में, कुछ और नमूनों के साथ, अपना वक्तव्य प्रकाशित करवावेंगे।

× × ×

९. संवत् १७४५ की छपी शिवाजी की जीवनी

प्रोफ़ेसर यदुनाथ सरकार ने शिवाजी महाराज का एक बड़ा ही प्रामाणिक इतिहास लिखा है यह अँगरेज़ी-भाषा में है। इसका पहला संस्करण सब बिक गया। दूसरा संस्करण भी छप गया है। अब की बार सरकार महोदय ने इसमें और भी अनेकानेक नई बातों का समावेश कर दिया है। अब तक शिवाजी के संबंध में जितने इतिहास निकले हैं, उनमें सबसे अच्छा और प्रामाणिक यही समझा जाता है। पर यह ग्रंथ-रत्न लिख चुकने के बाद भी सरकार महोदय ने शिवाजी के संबंध की ऐतिहासिक छान-बीन बंद नहीं की है। हाल ही में उन्होंने मई-मास के 'मॉडर्न रिव्यू' में 'शिवाजी की सर्व-प्रथम छपी हुई जीवनी'-नामक एक लेख प्रकाशित किया है। इसके पढ़ने से जाना जाता है कि शिवाजी की जो जीवनी सबसे पहले छपी है, वह फ्रेंच-भाषा में है। वह सन् १६८८ ईसवी में, पेरिस में प्रकाशित हुई थी। उक्त जीवनी के लेखक हैं Pierre Joseph d'orleans de la Compagnie de Jesus। इसमें कुल ३७ पृष्ठ हैं। सरकार महोदय ने अपने लेख में इसी जीवनी का भाषांतर दिया है। इसमें शिवाजी के संबंध की बातें बहुत संक्षेप में दी गई हैं। अनेकानेक महत्त्व-पूर्ण घटनाओं का उल्लेख तक नहीं हुआ है। कौन घटना किस साल की है, इसका ब्योरा भी नहीं दिया गया है। इन्हीं सब कारणों से ऑरमी-जैसे इतिहासज्ञ ने इस जीवनी को प्रामाणिक नहीं माना है। फिर भी, यह स्वयं शिवाजी के जीवन-काल के बहुत निकट लिखी गई थी, इस कारण इसमें लिखी हुई बातों पर सहसा अविश्वास करने को जी नहीं चाहता। कई बातें इसमें ऐसी दी गई हैं, जिनको पढ़कर आश्चर्य होता है। उदाहरण के लिये शाइस्ताख़ाँ के शिविर में घुसकर शिवाजी ने जो पराक्रम दिखलाया था, उसका परिणाम इस जीवनी में दूसरे ही प्रकार का दिया हुआ है। इस पुस्तक के पढ़ने से जाना जाता है कि आक्रमण के अवसर पर शिवाजी ने केवल शाइस्ताख़ाँ के पुत्र का वध ही नहीं किया था, बल्कि वह 'ख़ाँ' को घायल करके उसकी पुत्री को भी अपने साथ ले गए थे, और बाद को कुछ रुपए लेकर उसे सम्मान-पूर्वक शाइस्ताख़ाँ के पास वापस भेज दिया था। इस जीवनी के लेखक ने लिखा है कि जब फ़ारस के बादशाह के साथ औरंगज़ेब का युद्ध छिड़ा था, तब उसने शिवाजी से सहायता माँगी थी, और शिवाजी भी मुग़लों की ओर से लड़ने के लिये दिल्ली गए थे।

जब शिवाजी दिल्ली पहुँचे, तो वहाँ शाइस्ताख़ाँ की स्त्री मौजूद थी। शिवाजी के द्वारा जिस प्रकार उसके पुत्र का वध, पुत्री का हरण एवं पति का पराभव हुआ था, सो वह भूली न थी। शिवाजी के आने की बात सुनकर उसके मन में प्रतिहिंसा की आग जल उठी। उसने औरंगज़ेब से प्रार्थना की कि शिवाजी क़ैद कर लिया जाय। प्रार्थना करके ही वह संतुष्ट नहीं हुई। उसने इसके लिये घोर आंदोलन भी किया। आख़िर औरंगज़ेब उसके प्रस्ताव पर राज़ी हो गया। उधर शिवाजी को भी इसकी ख़बर लग गई। एक दिन उन्होंने सरे-दरबार बादशाह के सामने इस विश्वास-घात की बात चलाई, और आत्महत्या के लिये हथियार उठाया। लोगों ने उन्हें रोक लिया। औरंगज़ेब ने शिवाजी को बहुत कुछ सांत्वना दी और कहा कि मेरे मन में तुम्हारी

ओर से किसी प्रकार का कपट नहीं है। इसके बाद शिवाजी धोका देकर दिल्ली से निकल गए। इस जीवनी के लेखक के मतानुसार शिवाजी को भाग जाने देने में औरंगज़ेब का भी हाथ था। एक ओर वह शाइस्ताख़ाँ की स्त्री को नाराज़ नहीं करना चाहता था, और दूसरी ओर उसे शिवाजी के साथ विश्वास-घात भी पसंद न था। कहा जाता है, शिवाजी को भगा देने में रामसिंह का भी हाथ था। यदि बात ऐसी ही थी, और औरंगज़ेब की इच्छा के प्रतिकूल शिवाजी को निकल भागने में रामसिंह ने सहायता दी होती, तो वह उसे अवश्य दंड देता। पर इतिहास इस बात का साक्षी है कि ऐसी कोई बात नहीं हुई। इससे निष्कर्ष निकलता है कि औरंगज़ेब शिवाजी का भाग जाना पसंद करता था। निदान इस छोटी-सी जीवनी में कई नई मनोरंजक बातें पढ़ने को मिलती हैं। सरकार महोदय ने इस जीवनी का अँगरेज़ी-भाषांतर प्रकाशित करके शिवाजी के इतिहास पर नवीन प्रकाश डाला है। उनका यह प्रयत्न अभिनंदनीय है।

× × ×

१०. व्रजभाषा की कविता में घटनाओं की कमी

कविता में जिन घटनाओं का वर्णन होता है, वे कुछ असाधारण-सी होती हैं। उनमें रमणीयता की कुछ विशेष सामग्री रहती है। किंतु संसार की सभी घटनाओं में यह बात नहीं होती। कविता के लिये उपयुक्त घटनाओं की संख्या बहुत थोड़ी है; पर जितनी है, वह अपूर्व ही है। ऐसी घटनाएँ सभी समय और सभी स्थानों के लिये उपयुक्त होती हैं। वे कभी पुरानी नहीं होतीं, इसीलिये उनका वर्णन बार-बार होने पर भी उनमें अरोचकता नहीं आती। एक उदाहरण लीजिए। नित्य ही संसार की रमणियों को अपने प्राणप्यारों से बिछुड़ना पड़ता है; नित्य ही वे इसके लिये दुःखित होती हैं; नित्य ही उनके प्रणय-संदेश चला करते हैं; नित्य ही उन संदेशों में करुणा, व्यंग्य और मान का सम्मिश्रण रहता है। यह सब होने पर भी, सभी रमणियों की विरह-व्यथामयी उन घटनाओं में वह बात नहीं है, जो वृंदावन के कृष्णचंद्र और गोपियों के विरह के कथानक में है—जो उद्धव के भ्रमर-संदेश में है। साधारण नर-नारियों का प्रेम दो दिन के बाद पुराना हो जायगा, सभी उसे भूल जायँगे। एक महीने के बाद उसका दुहराया जाना लोक किसी को न रुचेगा। पर कृष्ण और गोपियों का प्रेम, सहस्रों वर्षों का पुराना होने पर भी, नया ही बना हुआ है। बड़े-बड़े इतिहासों और काव्यों में उसका वर्णन हो चुका, फिर भी, वर्तमान काल के कवि भी उसी बात को दुहराकर अपनी वाणी को पुनीत करते रहते हैं; और हमारा विश्वास है कि भविष्य कवियों के लिये भी कृष्ण और गोपियों के मधुर प्रेम का वैसा ही अक्षय भांडार बना रहेगा। बस, इस प्रकार कुछ चुनी हुई घटनाएँ ही ऐसी हैं, जो कविता के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। कविता-देवी के प्राचीन आचार्यों ने—पूर्व में, और पश्चिम में भी—ऐसी अनेक घटनाओं की एक सूची-सी बना डाली है। उन्होंने एक प्रकार से यह आज्ञा दे रक्खी है कि बस, इन्हीं घटनाओं का आश्रय लेकर कविता करो। कुछ समालोचकों को यह बात पसंद नहीं है। वे नहीं चाहते कि कवि का विचार-क्षेत्र इस प्रकार संकुचित किया जाय। यह बात ठीक भी है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीनों ने जिन कविता में वर्णनीय विषयों को मनोनीत-सा कर दिया है, उनमें असाधारणता, विशेष रमणीयता तथा एक अनिर्वचनीय आनंद की सामग्री अवश्य है। व्रजभाषा की प्राचीन कविता का यदि विश्लेषण किया जाय, तो उसमें भी ऐसी घटनाएँ बहुत ही थोड़ी मिलेंगी। परंतु जितनी हैं, वे अपूर्व हैं। ऊपर जिस गोपी-उद्धव-संवाद की चर्चा की गई है, उसका कवितागत विकास व्रजभाषा की कविता में अत्यंत सुंदरता के साथ हुआ है। महाकवि सूरदास ने इस संवाद के वर्णन में कमाल किया है। फिर भी, उनके बाद के कवियों ने भी इस घटना का वर्णन किया ही। कुछ लोग व्रजभाषा की कविता पर यह दोष लगाया करते हैं कि उसमें वे ही दो-चार बातें बार-बार दुहराई जाती हैं। यह कथन बिलकुल ठीक है। पर निवेदन यह है कि जो बातें बार-बार दुहराई जाती हैं, उनमें कविता की सामग्री बहुत अधिक है। इसीलिये उनका इतना आदर है। इसीलिये उनको व्रजभाषा के कवि पुरानी मानते नहीं हैं। आप नवीन घटनाओं को लेकर अवश्य कविता कीजिए; पर इतना देख लेना तो परम आवश्यक पड़ता है कि उन घटनाओं में कोई विशेषता या अपूर्व रमणीयता भी है, या नहीं। यदि ऐसी घटनाएँ मिलें, तो प्राचीनों की निर्धारित घटना-सूची में उनका भी स-

वेश होना चाहिए ; उन पर भी कविता होनी चाहिए । पर प्राचीन घटनाओं को, केवल इस कारण कि वे प्राचीन हैं, बहिष्कृत नहीं कर सकते । जैसा कि ऊपर लिख आए हैं, गोपी-उद्धव-संवाद अमर घटना है । वह कभी पुरानी नहीं हो सकती । उसका बहिष्कार असंभव है । कहने का तात्पर्य यही है कि घटनाओं की कमी के कारण व्रजभाषा की कविता कोसी नहीं जा सकती । जब कुछ चुनी हुई घटनाएँ ही कविता के लिये उपयुक्त हैं, तब उनकी भरमार करने से क्या लाभ ?

× × ×

११. मिस मेरी कारेली की कुछ विशेष बातें

मिस मेरी कारेली की मृत्यु का समाचार माधुरी की गत संख्या में निकल चुका है । शीघ्र ही उनका विस्तृत जीवन-चरित्र और उनके ग्रंथों की आलोचना भी निकलेगी । तब तक उनके विषय की दो-चार और नई बातें लिखी जाती हैं ।

मिस मेरी कारेली

स्वर्गवासिनी महारानी विक्टोरिया मिस कारेली के ग्रंथों को बड़े ही चाव से पढ़ती थीं । स्वर्गवासी महाराज एडवर्ड से श्रीमती का भली भाँति परिचय था । इनके एक उपन्यास (Master Christian) का जितना प्रचार हुआ, उतना इधर ५० वर्षों के भीतर किसी भी उपन्यास का नहीं हुआ । इनके एक उपन्यास का नाम Sorrows of the Satan है । इसके ४० संस्करण हो चुके और एक लाख से ऊपर प्रतियाँ बिक चुकी हैं । इनकी पहली पुस्तक का नाम A romance of Two Worlds है । यह सन् १८८६ में प्रकाशित हुई थी । कहते हैं, इसके प्रत्येक पाठक ने पहले-पहल जो आलोचना की, वह प्रतिकूल ही थी । इस पुस्तक की केवल चार समालोचनाएँ निकलीं, और उन सभी में पुस्तक की निंदा की गई । इनका दूसरा उपन्यास Barabbas था । इसकी बुराई करने में तो किसी ने कुछ भी कसर नहीं रक्खी । पादरी लोगों ने तो घोर आंदोलन किया । हज़ारों गिरजाघरों में इस पुस्तक के विरुद्ध व्याख्यान दिए गए । पर परिणाम उलटा हुआ । सारे इँगलैंड में घर-घर इस ग्रंथ की चर्चा फैल गई, और लोगों ने इसे खूब पढ़ा । मिस कारेली का जितना प्रभाव पाठकों पर पड़ा है, उतना आधुनिक समय के किसी भी उपन्यास-लेखक का नहीं पड़ा । इनके पास ढेर-के-ढेर पत्र आया करते थे, जिनमें पाठक-गण अपना सारा हाल लिखकर अपने भविष्य जीवन के संबंध में इनसे राय पूछा करते थे । इनकी प्रकृति बड़ी ही तेजस्विनी थी । शारीरिक परिश्रम से यह कभी न थकती थीं । जो कुछ इन्हें नापसंद होता या जिसके विरुद्ध यह हो जातीं, उसके संबंध में तीव्र-से-तीव्र और कटु-से-कटु बात भी लिखने में नहीं हिचकती थीं । इस उग्र स्वभाव के कारण इनके बहुत-से शत्रु हो गए थे । एक बार एक मान-हानि के मुक़दमे में इन्हें क्षति-पूर्ति के लिये नाम-मात्र को आधा पेंस दिलाया गया । आपने ऐसी अल्प क्षति-पूर्ति लेना अस्वीकार कर दिया । आख़िर वह रक़म एक स्थानीय अस्पताल में जमा कर दी गई, और उसी के नाम पर एक 'फ़ारदिंग-फ़ंड' खोला गया, जिसमें खूब रुपया आया । इनके प्रथम उपन्यास को

मिस्टर जॉर्ज वेंटले ने छापा था ; परंतु अधिकांश पुस्तकों के प्रकाशक मेथुएंस ही थे।

× × ×

१२. दांपत्य-प्रेम और उससे संबंध रखनेवाली कविता

अँगरेज़ी के एक बहुत बड़े लेखक की राय है कि जीवन के सभी प्रगतिशील रूप नर-नारी के परस्पर आकर्षण पर अवलंबित हैं। महामना स्कीलर की राय है कि जीवन की इमारत प्रेम और क्षुधा की नींव पर उठी है ; यदि ये दोनों न हों, तो फिर जीवन में कुछ नहीं रह जाता। एक बहुत अच्छे समालोचक की राय है कि नर-नारी के बीच जिस समता के भाव का विकास हुआ है, उसके मूल में प्रेम ही प्रधान है। एक अमेरिकन लेखक की राय है कि विवाह के बाद पुरुष की जीवन-यात्रा केवल अपने लिये न रहकर अपनी स्त्री और बच्चों के लिये हो जाती है। वह भविष्य में भी अपना स्मारक बनाए रखने के लिये उत्सुक होता है। वह अपने बच्चों को अपनी आत्मीयता का प्रतिनिधि बनाकर भविष्य को भेंट करता है। स्वार्थपरता पर प्रेम की विजय होती है। इस लेखक की राय है कि संसार में जितनी उच्च और आनंददायक अवस्थाएँ हैं, उनमें वैवाहिक अवस्था ही सबसे बढ़कर है। मनुष्यता का जिन उच्च-से-उच्च और पवित्र-से-पवित्र प्रेरणाओं से संबंध है, वे सब इस वैवाहिक बंधन द्वारा और भी दृढ़ हो जाती हैं। सृजन-संबंधिनी प्रेरणाओं से जाग्रत् होकर ही मैदानों में घास लहलहाने लगती है ; फूलों में सौंदर्य और सुगंध का विकास होता है ; पक्षी चित्र-विचित्र रंगों से रंजित होकर मधुर कलरव करने लगते हैं। झिल्ली की झनकार, कोयल की कूक तथा पपीहा की पुकार में इस प्रेमाह्वान की प्रतिध्वनि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ये सब-के-सब असंख्य प्रेम के गीत हैं। कवियों ने इस प्रेम का भली भाँति सत्कार किया है। नर-नारी के प्रेम को लेकर विश्व-साहित्य का कलेवर बहुत अधिक सजाया गया है। बाइबिल में इस प्रेम का वर्णन है। Books of moses, Stories of amnon and Tamar, Lot and his daughters, Potiphar's wife and Joseph आदि इस कथन के सबूत में पेश किए जा सकते हैं। बाइबिल को कुछ लोग कवितामय मानते हैं, और वह भी ऐसी, जो सभी समय समान रूप से उपयोगी रहेगी। उसी में नर-नारी की प्रीति का ऐसा वर्णन है, जिसको पढ़कर आजकल के अनेक शुचिताश्रयी (Purist) नाक-भौं सिकोड़ सकते हैं। ग्रीस और रोम की प्राचीन कविता में भी प्रेम की वैसी ही झलक मौजूद है। शेक्सपियर का क्या कहना ! वहाँ तो नारी-प्रेम का, सभी रूपों में, खूब स्पष्ट वर्णन है। हमारे कालिदास ने भी नर-नारी-प्रेम को बड़े कौशल के साथ चित्रित किया है। अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि प्रेम का वर्णन अब तक संसार के कविता-क्षेत्र में खूब प्रधान रहा है। यहाँ तक कि संस्कृत और हिंदी के साहित्य में, प्रेम का स्थायी भाव होने के कारण ही, शृंगार-रस सब रसों का राजा माना गया है। नर-नारी-प्रीति को संसार के बहुत बड़े विद्वानों ने मनुष्यता के विकास के लिये उपयोगी भी बतलाया है। पर आज नर-नारी-प्रीति से संबंध रखनेवाली कविता के विरुद्ध कुछ लोगों ने आवाज़ उठाई है। हम साफ़-साफ़ कह देना चाहते हैं कि दांपत्य-प्रेम से संबंध रखनेवाली कविता के विरुद्ध हमें कोई भी मुनासिब दलील नहीं दिखाई पड़ती। स्वकीयाओं ने अपने पवित्र प्रेम से संसार को पवित्र किया है, कर रही हैं और करती रहेंगी। कविता में 'आदर्श-वाद' का जो विवाद उठाया गया है, वह भी स्वकीया के प्रेम के आगे फीका है। इस विषय पर हम कुछ अधिक विस्तार के साथ लिखना चाहते हैं ; पर वह और कभी लिखेंगे। यहाँ पर इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि स्वकीयाओं के प्रेम में शराबोर जो कविताएँ उपलब्ध हैं, वे 'कवित्व' के लिये अपेक्षित सभी गुणों से परिपूर्ण हैं। कदाचित् शृंगारी कविता पर आधुनिक आदर्शवादियों का एक यह भी अभियोग है कि वे दुश्चरित्रता की जननी होती हैं। इस अभियोग में सत्यता का कुछ अंश अवश्य है ; पर इसके साथ ही अनेक ऐसे वर्णन भी इस श्रेणी में गिन लिए गए हैं, जो इस अभियोग से सर्वथा मुक्त हैं। बात यह है कि शृंगार-रस से परिपूर्ण किसी भी ऐसे वर्णन को, जिसमें बात कुछ खुलकर कही गई हो, ये लोग दुश्चरित्रता-जनक मान बैठे हैं। ऐसे लोगों को ही लक्ष्य करके एक प्रसिद्ध अँगरेज़-लेखक ने लिखा है—" We must, indeed, always protest against the absurd

confusion whereby nakedness of speech is regarded as equivalent to immorality, and not the less because it is often adopted in what are regarded as intellectual quarters." अर्थात् जो लोग नग्न वर्णन को ही दुश्चरित्रता मान बैठे हैं, उनके ऐसे विचारों का तीव्र प्रतिवाद होना चाहिए, विशेष करके जब ऐसी धारणा उन लोगों की है, जो शिक्षित कहे जाते हैं।

सारांश यह कि दांपत्य-प्रेम से परिपूर्ण कविताओं को हम, आदर्श-वाद के विद्रोह की मौजूदगी में भी, बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं; जिन प्राचीन तथा नवीन कवियों ने ऐसे उच्च और विशुद्ध वर्णन किए हैं, उनकी भूरि-भूरि सराहना करते हैं; और मनुष्यता के विकास में उनका भी हाथ मानते हैं। इस संबंध में एक प्राचीन कवि का मत नीचे दिया जाता है—

'देव' सबै सुख-दायक संपति, संपति सोई जु दंपति जोरी;
दंपति दीपति प्रेम-प्रतीति, प्रतीति की प्रीति सनेह-निचोरी।
प्रीति तहाँ गुन-रीति-बिचार, बिचार की बानी सुधा-रस-बोरी;
बानी को सार बखानो सिंगार, सिंगार को सार किसोर-किसोरी।

दांपत्य-प्रेम का एक और विशुद्ध चित्र दिखाकर हम इस नोट को समाप्त करते हैं। यथासंभव इस विषय पर शीघ्र ही फिर लिखेंगे। वह चित्र देखिए—

सनमुख राखैं, भरि आँखैं रूप चाखैं, सुचि
रूप अभिलाखैं मुख माखैं किधौं मौन सो;
'देव' दया दासी करैं सेवकिनि केती हमैं,
सेवकिनि जानैं भूलि हैं न सेज भौन सो।
पतिनी कै मानै पति नीके तौ भलीयै, जो न
मानै अति नीके तौ बँधी हैं प्रान पौन सो;
बिपति-हरन, सुख-संपति-करन, प्रान-
पति परमेसुर सों साझो कहौ कौन सो?

× × ×

१३. हरदोई-ज़िले में भयंकर तूफ़ान

हरदोई-क़स्बे की उत्तर-पूर्व दिशा में, प्रायः २३ मील की दूरी पर, कई छोटे-छोटे गाँव हैं। इनके नाम दूलहापुर, जरेली, करौंदी, खटेली, धोबिया तथा बूढ़ागाँव आदि हैं। ये सभी गाँव एक दूसरे से प्रायः दो-तीन मील के फ़ासले पर आबाद हैं। यहाँ से प्रसिद्ध क़स्बा पिहानी प्रायः ६ मील की दूरी पर है। इन गाँवों में अधिकतर अहीर, गड़रिया, पासी तथा चमार आदि बसे हुए हैं। गाँव सभी छोटे-छोटे, कच्ची मिट्टी के बने तथा फूस के छप्परों से छाए हुए हैं। इनके निकट कोई पहाड़, बड़ी झील या जंगल इत्यादि भी नहीं है। जिस प्रकार अन्य गाँवों में साधारण वृक्ष और बाग़ होते हैं, वैसे ही यहाँ भी हैं।

ऊपर जिन गाँवों का उल्लेख हुआ है, उनमें से पहले तीन में गत २५ एप्रिल को एक ऐसा तूफ़ान आया, जैसा इधर इसके पहले कभी न आया था। इतिहास में भी इसकी जोड़ के तूफ़ान का उल्लेख नहीं मिलता। बड़ी ही विचित्र घटना है, बड़ी ही करुण कहानी है। हरदोई के डिप्टी-कमिश्नर मिस्टर शर्फ़ी, जिन्होंने इस दुर्घटना के एक ही दो दिन पहले ज़िले का चार्ज लिया था, तूफ़ान के दूसरे ही दिन घटना-स्थल पर पहुँच गए थे। उन्होंने पीड़ितों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया, और उनके प्रभाव से सहायता का भी प्रबंध अच्छा रहा। सुनते हैं, इस तूफ़ान के रहस्य को वह भी नहीं समझ सके। कहा जाता है, उन्होंने प्रांतीय सरकार को लिखा है कि कोई विशेष वैज्ञानिक भेजकर इस मामले की जाँच कराई जाय। तूफ़ान का सबसे अधिक ज़ोर दूलहापुर में रहा, और वह गाँव तीन चौथाई नष्ट हो गया। ३०० के लगभग पशु और ५० मनुष्य मर गए। बहुत-से अस्पतालों में घायल पड़े हैं। तूफ़ान का कुछ वर्णन नीचे दिया जाता है।

ता० २५ एप्रिल को, ४ और ५ बजे के बीच, आकाश में कुछ बादल दिखलाई पड़े। धीरे-धीरे ये बादल बढ़ने लगे। संध्या होने के $1\frac{1}{2}$ या २ घंटे पहले बादलों ने भयंकर रूप धारण किया। खटेली, धोबिया तथा बूढ़ागाँव में ओलों की वर्षा होने लगी। ओले वज़न में आध-आध सेर तक के थे। स्मरण रहे, यह उपल-वृष्टि दूलहापुर, जरेली और करौंदी में नहीं हुई। जिस समय पहले तीन गाँवों में पत्थर गिर रहे थे, उसी समय अंतिम तीन गाँवों में बड़े ज़ोर की आँधी आई। आँधी का ज़ोर इतना अधिक था कि उसके सामने जो चीज़ पड़ी, वह ठहर न सकी। मकानों के छप्पर और चार-पाइयाँ कनकव्वे के समान आसमान में उड़ने लगीं। बड़े-बड़े वृक्ष जड़ से उखड़कर मील-मील-भर की दूरी पर जा गिरे। मकानों की दीवारें गिर गईं, उनके नीचे मनुष्य और पशु दब गए। मनुष्य हवा के चक्कर में पड़कर बहुत ऊँचे आसमान में उड़ गए, और, वहाँ

से ज़मीन पर गिरकर मर गए। अगर किसी ने प्राण-रक्षा के लिये किसी वृक्ष की डाल या दीवाल आदि को हाथ या पैर से पकड़कर अपने को बचाना चाहा, तो उसका हाथ या पैर उखड़कर दूर जा गिरा। एक स्त्री खलिहान में चारपाई पर बैठी थी। वह चारपाई समेत उड़ी। चारपाई एक वृक्ष के ऊपर पाई गई, और उसका मृत शरीर वृक्ष के नीचे। कई कुएँ सूख गए। एक तालाब का पानी उछलकर खेतों में जा पड़ा, और जल-शून्य तालाब की सारी मछलियाँ मरी हुई पाई गईं। कदाचित् प्राण-रक्षा के लिये बहुत-से पशु तालाब की शरण में गए थे। उनकी लाशें तालाब में पड़ी मिलीं। दूल्हापुर में ही तूफ़ान का वेग सबसे अधिक रहा। वह तीन-चौथाई बिलकुल नष्ट हो गया। एक गड़रिए का सारा कुटुंब नष्ट हो गया! केवल ४ वर्ष की एक लड़की जीवित पाई गई। एक मुसलमान-कुटुंब में जितने स्त्री-पुरुष थे, सब मर गए। घायल लोग तूफ़ान की बाबत तरह-तरह की बातें कहते हैं। उनका कहना है कि जब वे वायु के वेग में ऊपर उड़ गए, तो उन्हें बड़ी गरमी मालूम हुई। शरीर झुलसा जाता था। जान पड़ता था, चारों ओर से आग लगी हुई है। ऐसा शब्द सुनाई पड़ता था, मानो तलवार और भाले चल रहे हैं। तूफ़ान का वेग घंटे-भर से अधिक नहीं रहा। २६ ता० को जिन लोगों ने इन गाँवों को देखा है, वे इस रोमांचकारी घटना को कभी नहीं भूल सकते। दो दिन पहले जिस गाँव में आनंद-नदी बहती थी, जहाँ बीसों सुखी कुटुंब चैन की वंशी बजाते थे, वही दूल्हापुर-गाँव श्मशान-रूप में परिणत हो गया था। कहीं फूले हुए मुर्दा पशु पड़े थे, कहीं मनुष्य का पूरा शव पड़ा था, कहीं उखड़ा हुआ हाथ पड़ा था, कहीं खंडित टाँग पड़ी थी। करुण क्रंदन मचा हुआ था। अंत्येष्टि संस्कार के लिये बचे-खुचे कुटुंबी लाश के टुकड़े इधर-उधर बटोर रहे थे, पर कुछ ठीक पता न चलता था। जो पशु जीवित थे, वे प्यास के मारे छटपटा रहे थे। तालाब में पानी नहीं था। जो वृक्ष गिरने से बच गए थे, वे ठूँठ खड़े थे। न उनमें पत्तियाँ रह गई थीं, और न छाल। जहाँ मकान थे, वहाँ मिट्टी के ढूह पड़े थे। जो एकआध बच गए थे, वे छप्परों से शून्य अपना नंगा भयानक रूप दिखला रहे थे। उधर ग्रामीण लोग तूफ़ान का कारण और ही बतला रहे हैं। वे कहते हैं, यहाँ दो प्रेतों में युद्ध हुआ है, और उसी का यह सारा परिणाम है। कुछ लोगों के मुँह से यह भी सुनने में आया है कि गाँव के कुछ पापात्माओं के पापों का फल ही सारे गाँव को भुगतना पड़ा है। जो हो, इस प्रकार का तूफ़ान इस प्रांत में अश्रुत-पूर्व है। यह और भी आश्चर्य की बात है कि तूफ़ान का सारा वेग तीन-चार मील के अंदर ही परिमित था। भूकंप तथा बिजली गिरने का कोई समाचार नहीं मिला। संभवतः इस तूफ़ान का समाचार सबसे पहले 'पायोनियर' में प्रकाशित हुआ था। हमारी राय में इस विषय के विशेषज्ञों को घटना-स्थल पर जाकर इसकी विशेष छान-बीन करनी चाहिए। ऐसी-ऐसी घटनाओं को देखकर कहना ही पड़ता है—

चाहै सुमेरु को छार करै अरु छार को चाहै सुमेरु बनावै;
चाहै तो रंक ते राव करै, चहै राव को द्वार-ही-द्वार फिरावै।
रीति यहै करुनानिधि की 'कवि देव' कहै बिनती मोहिं भावै;
चींटी के पाँय में बाँधि गयंदहि चाहै समुद्र के पार लगावै।

× × ×

१४. कालिदास की जन्म-भूमि

कालिदास की जन्म-भूमि के संबंध में बड़ा मतभेद है। कोई उन्हें काश्मीरी बतलाता है, तो कोई बंगाली। अभी हाल ही में लाला सीतारामजी ने 'माधुरी' में एक लेख छपाकर उन्हें (मज़ाक़िया) अवधवासी सिद्ध करने का उद्योग किया है। इधर जोधपुर (राजपूताना) से किन्हीं अज्ञातनामा सज्जन ने एक अँगरेज़ी पत्र हमारे पास भेजा है। इसमें उन्होंने कालिदास के काश्मीरी होने की कई दलीलें पेश की हैं। हम उन दलीलों का सारांश नीचे देते हैं—

१. कालिदास की कविता में जिन पहाड़ी दृश्यों का वर्णन है, वे काश्मीर में ही देखने को मिल सकते हैं, विंध्याचल पर नहीं।

२. कालिदास के बहुत-से वर्णन ऐसे हैं, जिन्हें अश्लील कह सकते हैं। काश्मीर के कवि ऐसे वर्णन निस्संकोच किया करते थे।

३. कालिदास ने केसर के फूलों का जो वर्णन किया है, वह ऐसा है, मानो उनका आँखों देखा हो। केसर काश्मीर में ही होती और नवंबर में फूलती है। उस समय काश्मीरियों को छोड़कर बाहरी आदमी उस ठंड में नहीं ठहर सकता।

४. कालिदास ने हूणों के विषय में लिखा है कि अभी तक वे आक्सस की घाटी में ही हैं। उस स्थान पर हूण सन् ४५० ईसवी में थे। कालिदास स्कंदगुप्त के समकालीन थे। हूणों के विषय में किसी बंगाली, विंध्यवासी अथवा अयोध्यावासी को कुछ लिखने की उतनी परवा न होगी, जितनी एक काश्मीरी को; क्योंकि काश्मीर ही हूणों का पड़ोसी देश था।

इन चार दलीलों को उद्धृत करके लेखक महोदय ने कालिदास को काश्मीर-देश का निवासी माना है। आपने यह लिखने की कृपा की है कि कालिदास का काश्मीर छोड़कर उज्जयिनी में बसना कुछ असंभव नहीं है; पर वह थे काश्मीरी ही। पत्र के अंत में लेखक ने हँसी-हँसी लालाजी से यह जिज्ञासा की है कि क्या वह इस बात का अनुसंधान नहीं कर सकते कि कालिदास मांस-भक्षी और पीतवर्ण थे या नहीं। यदि वह पीत चर्म के हों, तो निस्संदेह काश्मीरी थे।

× × ×

१५. डॉ० सन-याट-सेन

इस समय अपने-अपने देश की दुर्दशा पर आँसू ही न बहाकर उन्नति और उद्धार के लिये अनवरत चेष्टा करनेवाले महापुरुषों में चीन के डॉ० सन-याट-सेन भी हैं। स्व० लेनिन, डी वेलरा, कमालपाशा, जगलुलपाशा, मुसोलिनी आदि की तरह सन-याट-सेन भी चीन के उद्धार के लिये प्राणपण से चेष्टा कर रहे हैं। यह एशिया का महापुरुष देशभक्त योरप के साम्राज्यवादी पत्रों की आँखों में काँटे की तरह खटक रहा है। अभी हाल में रूटर ने ख़बर भेजी थी कि डॉ० सन-याट-सेन की मृत्यु हो गई। किंतु आनंद की बात है कि सन-याट-सेन की मृत्यु नहीं हुई। वह जीवित हैं, और रोग-मुक्त भी हो गए हैं। हम लोगों के यहाँ प्रवाद है कि जिसकी मृत्यु का समाचार झूठा निकले, वह चिरायु होता है। ईश्वर इस देशभक्त को चिरायु करें। यहाँ पर हम उक्त देशभक्त वीर का संक्षिप्त परिचय और चित्र प्रकाशित करते हैं। चीन में साधारण-तंत्र शासन की स्थापना करनेवाले सन-याट-सेन ही हैं। यह एक विप्लवपंथी और संस्कारक पुरुष हैं। यह असीम-शक्तिशाली राष्ट्र-वीर बहुत दिनों से अपने विपक्षियों से भिड़कर उन्हें परास्त कर रहे हैं। चीन के बाहर विदेशों में भी लोग इन्हें विशेष श्रद्धा
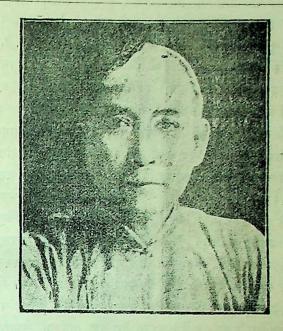
डॉ० सन-याट-सेन

की दृष्टि से देखते हैं। इनके शत्रु इनसे इतना डरते हैं कि एक बार इनका सिर काट लानेवाले को १५ लाख रुपए देने की घोषणा की जा चुकी है। यह नव्य चीन के पिता कहलाते हैं। इनका जन्म सन् १८६७ में, चीन के होनोलूलू-नगर में, हुआ था। इनके पिता ईसाई हो गए थे। वह ग़रीब थे। सन-याट-सेन साधारण शिक्षा प्राप्त कर कुछ दिन तक डॉक्टरी सीखते रहे। सन् १८९२ में मकाओ जाकर इन्होंने प्रैक्टिस करने का इरादा किया; किंतु पुर्तगीज़ों के सिवा, जिनके अधिकार में वह स्थान था, और कोई वहाँ डॉक्टरी नहीं करने पाता था। इन्होंने बड़ी कठिनाइयों का सामना करके डॉक्टरी शुरू की। वहाँ यंग-चाइना पार्टी नाम की एक गुप्त संस्था थी। यह उसमें शामिल हुए। चीन की दुर्दशा इनसे देखी न जाती थी। यह बड़े उत्साह से काम करने लगे। कुछ दिन बाद कैंटन चले गए। मकाओ में सन-याट-सेन के सब साथी गिरफ़्तार कर लिए गए। सन् १८९६ तक यह अज्ञातवास करते रहे। यह एक पक्के जासूस होने के कारण वेष बदलकर ज़रूरत के माफ़िक इधर-उधर जाते भी थे। सन् १८९६ में यह इँगलैंड गए। वहाँ चीनी राजदूत के आदमियों ने इन्हें गिरफ़्तार कर लिया। अंत को ब्रिटिश गवर्नमेंट के हस्तक्षेप से इन्हें रिहाई मिली। इस तरह कई बार यह गिरफ़्तार होते-होते बच गए। इस

तरह २० वर्ष घोर परिश्रम करके सन् १६११ में इन्होंने मंचू वंश का अंत करने में सफलता पाई । इस सन् में, २६ दिसंबर को, प्रजातंत्र की स्थापना हुई, और यह प्रथम राष्ट्र-पति निर्वाचित हुए । प्रजातंत्र और राजतंत्र के युद्ध में अंत को प्रजातंत्र की ही जीत हुई । इन्हें राष्ट्र-पति बनने की लालसा न थी । इन्होंने थोड़े दिन बाद युआन-शिकाई के लिये पद-त्याग कर दिया । उसके उपरांत से चीन में अब तक अशांति ही बनी हुई है । सन् १६२० ईसवीमें जनरल चेन-चुआंग-मिंग की सहायता से सन-याट-सेन फिर चीन के प्रेसीडेंट हुए थे ; किंतु राजवंश के पतन के साथ-साथ चीन में जो विशृंखला उपस्थित हुई, वह आज तक नहीं मिटी । सन् १६२२ में सन-याट-सेन के साथ चेन-चुआंग-मिंग का विरोध हो गया, और इन्हें फिर भागना पड़ा । इधर यह बीमार थे, अब अच्छे हो गए हैं । अदम्य देश-प्रेम, तत्परता, साहस, धैर्य आदि गुणों में यह अद्वितीय हैं । बार-बार विफल-मनोरथ होकर भी शुरू किए हुए काम को न छोड़ना ही इनकी सर्वोपरि विशेषता है । यह चीन या एशिया के ही नहीं, संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में गिने जाने योग्य हैं ।

× × ×

१६. कनाडा का बहिर्वाणिज्य

भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ का बहिर्वाणिज्य अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम लाभजनक है । तुलना के लिये हम एक छोटे-से उपनिवेश कनाडा के बहिर्वाणिज्य का विवरण पाठकों के आगे उपस्थित करते हैं । सन् १६२३ में कनाडा का बाहिर्वाणिज्य विशेष रूप से संतोष-जनक हुआ । रफ़्तनी की तादाद और मूल्य, दोनों में यथेष्ट वृद्धि हुई । सन् १६२० में सभी गत वर्षों की अपेक्षा अधिक लाभ हुआ था ; किंतु सन् १६२३ में यदि सामग्री का मूल्य पहले के तीन वर्षों की अपेक्षा कम न होता, तो इस साल सन् १६२० से भी अधिक मूल्यकी सामग्री बाहर जाती, और लाभ भी अधिक होता । सन् १६२३ में, आमदनी और रफ़्तनी मिलाकर, विदेशों के साथ कनाडा के वाणिज्य का मूल्य ४०,००,००,००० पौंड से अधिक था । कनाडा ने मँगाने की अपेक्षा रफ़्तनी ही अधिक की । सभी प्रधान-प्रधान सामग्रियों की रफ़्तनी अधिक हुई । खेती में पैदा होनेवाले जो पदार्थ बाहर भेजे गए, उनके मूल्य में पहले की अपेक्षा १,८८,२९,१६४ पौंड की वृद्धि हुई । पशु, वस्त्र, लकड़ी, काग़[ज़], लोहे का सामान, अन्य धातु-निर्मित सामग्री, खनिज द्र[व्य], रासायनिक पदार्थ आदि सभी की रफ़्तनी में परिम[ाण] और मूल्य की वृद्धि हुई । इधर बहुत वर्षों से उत्तर अ[मे]रिका से ही पृथ्वी के भिन्न-भिन्न स्थानों में अधिक मैदा जाया करता था । किंतु गत दो वर्षों में कन[ाडा] का मैदे काव्यापार इतना बढ़ गया है कि वह [इस] समय उतना ही मैदा बाहर भेजता है, जितना कि [यू]अमेरिका । सन् १६२३ में कनाडा से १,४०,०००००[पौंड] मूल्य के मैदे की रफ़्तनी हुई है। इस प्रकार कनाडा का[...] का व्यवसाय विशेष रूप से उल्लेख के योग्य हो [गया] है । कनाडा में सोना भी पैदा होता है । वहाँ के [सोना] निकालने के व्यापार की भी विशेष उन्नति हुई, और [हो] रही है । उत्तर ऑक्टोरिओ और प्रसिद्ध हलिंग[र] सोने की खानों में ऐसी व्यवस्था की गई है कि उ[सके] अनुसार काम करने से सन् १६२४ ई० में उक्त [खानों] में से प्रत्येक खान से उतना ही सोना निकाला जा सके जितना सन् १६२३ में दोनों खानों से निकाला [गया] था । इस प्रकार कनाडा के बहिर्वाणिज्य की उत्तरो[त्तर] उन्नति होती जा रही है, और उसका लाभ गोरे [अधि]वासी ही अपनी जेबों में भर रहे हैं । प्रवासी भा[रत]वासी तो वहाँ रहकर सुख की रोटी भी नहीं खाने पा[ते] ।

× × ×

१७. उत्तर-भारत में सरकारी खुफ़िया-विभाग का ख़[र्च]

भारत-सरकार की शायद यह धारणा है कि खुफ़ि[या-]विभाग की ही बदौलत भारत में अँगरेज़ी राज्य क़ा[यम] है । पिछले दिनों कदाचित् इसी धारणा के वश[ीभूत] होकर सरकार अपने खुफ़िया-विभाग को बढ़ाती [और] पुष्ट करती जाती थी । यह विभाग गवर्नमेंट का इ[तना] विश्वासपात्र है कि भारत के बड़े-से-बड़े आदमी [की] इज़्ज़त इसकी कृपा पर निर्भर है । यह विभाग [जिसे] जिसे राजद्रोही, षड्यंत्रकारी, बदमाश, भयानक [आदि] बताकर कड़ी-से-कड़ी सज़ा—यहाँ तक कि देश-नि[काला] भी—दिला सकता है । ऐसे सर्वशक्तिसंपन्न विभाग [के] पोषण में सरकार ने पिछले दस वर्षों में, उत्तर-भा[रत] में कितनी रक़म ख़र्च की है, यह पिछले दिनों [व्य]वस्थापक सभा के अधिवेशन में एक सदस्य के प्र[श्न के] उत्तर से मालूम हुआ है । वह विवरण इस प्रकार है

सन्	रुपए	सन्	रुपए
१६१४	४,२६,१२७	१६१६	६,३६,६२५
१६१५	५,६३,१४५	१६२०	७,७७,७७२
१६१६	५,६७,१४८	१६२१	८,२८,६०२
१६१७	६,६६,०१८	१६२२	६,४२,०२५
१६१८	६,६७,४०२	१६२३	५,४३,५२०

इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि राजनीतिक आंदोलन की गति के साथ ही इस विभाग का ख़र्च बढ़ा और घटा है। इससे जान पड़ता है कि ख़ुफ़िया-विभाग विशेष रूप से राजनीतिक आंदोलन पर ही दृष्टि रखना अपना लक्ष्य समझता है। देश में बढ़ती हुई डकैतियों का दमन, गुंडों का पता लगाकर उन्हें सज़ा दिलाना, चोरियों का पता लगाना शायद वह अपना कर्तव्य नहीं समझता। ख़ुफ़िया-विभाग का इतना ख़र्च तो केवल उत्तर-भारत में है। समग्र भारत के ख़ुफ़िया-विभाग के ख़र्च का अनुमान इसी से कर लेना चाहिए।

× × ×

१८. सूर्य की किरणें रोग नष्ट करने की शक्ति रखती हैं

यह बात हमारे पूर्वज जानते थे कि सूर्य की किरणें रोगनाशक शक्ति रखती हैं। इसीलिये प्रातःकाल सूर्य के सामने बैठकर संध्यावंदन आदि करने का विधान हमारे शास्त्रों में है। पुराणों में भी लिखा है कि सांब का कुष्ठ सूर्य की उपासना से दूर हुआ था। आजकल पाश्चात्य डॉक्टरों को भी सूर्य-किरणों की इस शक्ति का पता लगा है। प्रसिद्ध अस्त्र-चिकित्सक सर हर्बर्ट वाकर इस नवीन आविष्कार के लिये जाँच कर रहे हैं। डॉक्टर प्रभाकर नाम के एक अन्य भारतीय भी प्रसिद्ध अस्त्र-चिकित्सक हैं। आप जाड़े के दिनों में विलायत में नहीं रहते, अन्य दिनों में वहीं रहते हैं। डॉ० वाकर आप-से मिलने और अपने अनुसंधान के बारे में सलाह लेने के विचार से आपके पास, वेस्ट इंडीज़-टापू में, गए हैं। डॉ० वाकर वेस्ट इंडीज़ में यही परीक्षा करेंगे कि सूर्य की किरणों में क्या रोगनाशक शक्ति है, और अगर है, तो कितनी? आपने, कुछ दिन हुए, एक पत्र के प्रतिनिधि से कहा था कि दो साल पहले मैं अटलांटिक-महासागर के माइडेरा-टापू में कई महीने रहा। वहाँ बड़ी गरमी पड़ती है। मैं दिन-भर स्थल में टहलता या जल में तैरा करता था। यहाँ तक कि कड़ी धूप में मेरी खाल झुलस गई। यह सब मैंने पूर्वोक्त अनुसंधान ही के लिये किया। वहाँ मैं अपने शरीर में तनिक भी आलस्य नहीं देख पाता था। लड़कों की तरह अनायास दौड़ता-घूमता और तैरता था। जल में एक मील तक तैरना तो मेरे लिये एक खेल हो गया था। उक्त टापू से कुछ दूर पर एक मरु-द्वीप है। वहाँ जाने का विचार करके भी फिर नहीं गया। उस टापू में एक ऐसा पहाड़ है, जिस पर नाम को भी हरियाली नहीं है। प्रत्येक ऋतु में कड़ी धूप से पहाड़ जला करता है। वहीं जाकर अनुसंधान करने का विचार है। किंतु उससे पहले मैं वेस्ट इंडीज़-टापू में जाकर सूर्य-किरणों की रोगनाशक शक्ति का अनुसंधान करूँगा।

हमें आशा है, उक्त डॉक्टर साहब को इस अनुसंधान में अवश्य ही पूर्ण सफलता होगी, और जिस तथ्य को आर्य लोग हज़ारों वर्ष पहले जान चुके हैं, उसे जानकर वह अच्छा नाम भी कमा सकेंगे, एवं मौलिक गवेषणा का गर्व भी कर सकेंगे। उनकी प्रशंसा के पुल बाँधने-वाले आर्य-वंशधरों की कमी भी न होगी।

---

१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र 'शोभा' है। इसके चित्रकार हैं श्रीयुत हीरालाल-बब्बनजी। अहा! इस नख-शिख-समलंकृता यौवनाढ्या सुंदरी के अंग-प्रत्यंग से कैसी मनोमोहिनी छवि-छटा छिटक रही है? इस कुसुम-कोमलांगी कृशांगी कामिनी की किशोरावस्था कितनी कमनीय है? ललाम लोचनों में कितना लावण्य है? शृंगार-रचना में कितनी रमणीयता है? चितचोर चारु चितवन में कितनी मादकता है? चित्र-शिल्पी की निपुणता ने महाकवि विहारी के इस दोहे का भाव अंकित करने में कमाल किया है—

> भूषन-भार सँभार ही, क्यों यह तनु सुकुमार;
> सूधे पाँय न परत महि, 'सोभा' ही के भार।

दूसरा रंगीन चित्र 'मनन' है। इसके चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू हैं। ज़रा इस चित्र में एक विद्यानुरागिनी गृहदेवी की एकाग्रता का स्वाभाविक भाव तो देखिए। अध्ययन में कितनी दृढ़ निष्ठा है? एकांत में बैठी हुई इस मननशीला महिला का मुखमंडल ज्ञानानुशीलन की पवित्र चिंता से कितना उद्भासित हो उठा है? इस सरस्वती-सेविका विदुषी का चित्र अंकित करने में चित्रकार की कला-कुशलता खूब विकसित हुई है!

तीसरा रंगीन चित्र बाल गोपाल श्रीकृष्ण का है। इसके चित्रकार हैं काशी-निवासी श्रीयुत व्रजविलास महाशय। वंशी-वट के निकट बैठे हुए नंद-नंदन मुरली-मनोहर की साँवली सलोनी सूरत कैसी भोली-भाली मालूम होती है! विशाल लाल लोचनों में बाल-सुलभ चंचलता और प्रसन्नता का मनोज्ञ भाव झलक रहा है! वनमाली की यह मंजुल मूर्ति देखकर विहारीलाल का यह दोहा स्मरण हो आता है—

> सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल;
> इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला व्यंग्य-चित्र है 'रायबहादुर', जिसके चित्रकार श्रीयुत आर० घोष महाशय हैं। दूसरा व्यंग्य-चित्र है "प्रस्ताव", जिसे श्रीयुत मोहनलाल महत्तो (गयावाल) ने अंकित किया है। दोनों चित्रों का परिचय उनके नीचे देखिए। दोनों ही सामयिक और विनोद-पूर्ण हैं।

वर्ष २ ; खंड २] ज्येष्ठ, ३०० तुलसी-संवत् [संख्या ५ ; पूर्ण संख्या २३

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३॥)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

शीरीं-फ़रहाद

(पं० हनुमान शर्मा की कृपा से प्राप्त)

अनमिख नैन कहैं न कछु, समुझैं सुनै न कान ;
लखि पखान-आहत पियहिं, भई पखान-समान ।

N. K. Press, Lucknow.

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष २ — खंड २ | ज्येष्ठ-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८२ वि०)— ९ जून, १९२४ ई० | संख्या ५ — पूर्ण संख्या २३

'मारुत की लहरैं'

आगिवे बसंत बच्यौ चाव-चढ्यौ आवत है,
बिवस बियोगिनि करेजो थामि थहरैं ;
कहै 'रतनाकर' त्यौं किंसुक-प्रसून-जाल
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिए हहरैं ।
अब धौं उबारै कौन अबला बिचारिन कौं,
धीरज-धरा पै कहौ कैसे पग ठहरैं :
चारि चहुँ ओर भ्रमैं, एकौ पल नाहिं थमैं,
सीतल, सुगंध, मंद मारुत की लहरैं ।

"रत्नाकर"

'कुछ नहीं'

हँसी आती है मुझको तभी,
जब कि यह कहता कोई कहीं—
अरे सच, वह तो है कंगाल,
अमुक धन उसके पास नहीं ।
सकल निधियों का वह आधार,
प्रमाता अखिल विश्व का सत्य,
लिए सब उसके बैठा पास,
उसे आवश्यकता ही नहीं ;
और तुम लेकर फेकी वस्तु,
गर्व करते हो मन में तुच्छ ;
कभी जब ले लेगा वह उसे,
तुम्हारा तब सब होगा 'नहीं' ।
तुम्हीं तब हो जाओगे दीन;
और जिसका सब संचित किए ,
साथ बैठा है दीनानाथ,
उसे फिर कमी कहाँ की रही ?
शांत रत्नाकर का नाविक,
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष,
कर रहा वह देखो मृदु हास,
और तुम कहते हो 'कुछ नहीं' ।

जयशंकर "प्रसाद"

शीरीं-फ़रहाद

(पं० हनुमान शर्मा की कृपा से प्राप्त)

[illegible] बैन कहै न कछु, समुझै सुनै न कान ;
[illegible] पखान-चाहत पियहि, भई पखान-समान ।

N. K. Press, Lucknow.

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष २ खंड २ | ज्येष्ठ-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ९ जून, १९२४ ई० | संख्या ५ पूर्ण संख्या २३

'मारुत की लहरैं'

बारिधि बसंत बढ़्यो चाव-चढ़्यो आवत है,
बिबस बियोगिनि करेजो थामि थहरैं ;
कहै 'रतनाकर' त्यों किंसुक-प्रसून-जाल
ज्वाल बड़वानल की हेरि हिए हहरैं ।
अब धौं उबारै कौन अबला बिचारिन कौं,
धीरज-धरा पै कहौ कैसे पग ठहरैं ;
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं, एकौ पल नाहिं थमैं,
सीतल, सुगंध, मंद मारुत की लहरैं ।

"रत्नाकर"

'कुछ नहीं'

हँसी आती है मुझको तभी,
जब कि यह कहता कोई कहीं—
अरे सच, वह तो है कंगाल,
अमुक धन उसके पास नहीं ।
सकल निधियों का वह आधार,
प्रमाता अखिल विश्व का सत्य,
लिए सब उसके बैठा पास,
उसे आवश्यकता ही नहीं ।
और तुम लेकर फेंकी वस्तु,
गर्व करते हो मन में तुच्छ ;
कभी जब ले लेगा वह उसे,
तुम्हारा तब सब होगा 'नहीं' ।
तुम्हीं तब हो जाओगे दीन;
और जिसका सब संचित किए,
साथ बैठा है दीनानाथ,
उसे फिर कमी कहाँ की रही ?
शांत रत्नाकर का नाविक,
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष,
कर रहा वह देखो मृदु हास,
और तुम कहते हो 'कुछ नहीं' ।

जयशंकर "प्रसाद"

मानव-भाषा की उत्पत्ति और विकास

इस लेख के मुख्य विषय पर आने से पहले संसार की कुछ मौलिक समस्याओं पर प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है। सृष्टि-निर्माण के मूल-उपादान कारण से (चाहे वह कोई और किसी रूप में हो) लेकर आज तक की अवस्था किस प्रकार हुई, इसका उत्तर, तीन पाश्चात्य दार्शनिकों—लाप्लास, डार्विन और हर्बर्ट स्पेंसर—के उत्तरों को एक-साथ मिलाकर, एक शब्द में दिया जा सकता है कि 'विकास' से। लगभग यही उत्तर सांख्य-दर्शन (फ़िलासफ़ी) के प्रवर्तक कपिल ने हज़ारों वर्ष पहले दिया था। उन्होंने कहा—प्रकृति के लगातार परिणाम से ही जगत् का यह सारा खेल बना है। विकास-कल्पना का साम्य होते हुए भी पाश्चात्य और पौरस्त्य सिद्धांतों में भारी भेद है, और उसका विचार यहाँ अप्रासंगिक होगा। परंतु जिस विकास पर उपर्युक्त तीन पाश्चात्य दार्शनिकों ने विचार किया है, वह है—

तीन प्रकार का विकास

उन्हें एक विकास की तीन अवस्थाएँ या सीढ़ियाँ (Stages) भी कह सकते हैं। वे तीन प्रकार के विकास क्रमशः इस प्रकार हैं—

१. भौतिक विकास (Physical Evolution)
२. जीवन-विकास (Biological Evolution)
३. मानसिक विकास (Psychological Evolution)

इन्हीं तीनों विकासों में से क्रमशः भौतिक विकास के सिद्धांत को (यद्यपि वह पहले ही से चला आता था) निश्चित स्वरूप फ्रेंच तत्त्व-वेत्ता लाप्लास ने दिया; जीवन-विकास का जन्मदाता चार्ल्स डार्विन प्रसिद्ध ही है; और विकास की प्रक्रिया को मन अथवा बुद्धि तक पहुँचाना हर्बर्ट स्पेंसर का काम था। इनमें से प्रथम भौतिक विकास के विषय में बहुत मत-भेद नहीं हो सकता। विकास के प्रकार में सम्मति-भेद है; किंतु इस बात को लगभग सभी दार्शनिक स्वीकार करते हैं कि मूल-कारण में शनैः-शनैः परिणाम होने से ही यह सृष्टि बनती अथवा सृष्टि की प्राणियों के रहने योग्य अवस्था होती है। परंतु इसके आगे प्रश्न 'जीवन-विकास' का आता है। जीवन-विकास अर्थात् वनस्पति की प्रारंभिक अवस्था से क्रमशः विकास-पूर्वक सारे वनस्पति-जगत् का बनना और उसी विकास की अगली अवस्था में प्राणियों का प्रादुर्भाव होना, अर्थात् पहले 'अमीबा' की अवस्था से अत्यंत अमिश्र अर्थात् निरवयव (Most simple) और फिर क्रमशः विकास के साथ मनुष्य-शरीर की अत्यंत मिश्रित (Most complex) अवस्था तक पहुँचना। इस जीवन-विकास के विषय में मत-भेद है। अनेक विद्वान् इसे अभी स्वीकार नहीं करते। इसलिये इसे सर्वसम्मत नहीं कहा जा सकता। परंतु इसके विषय में सबसे पहला कठिन प्रश्न यह है कि जड़ भौतिक जगत् में 'जीवन' (Life) कहाँ से आ गया? जड़ जगत् (Inorganic) से जीवित जगत् (Organic) तक पहुँचने में एक ऐसी खाई है, जिसे भरने में विकास-वाद असमर्थ देख पड़ता है। इसी प्रकार वनस्पति-जगत् से प्राणिजगत् तक पहुँचने में भी एक ऐसी छलांग है, जिसका संतोषजनक उत्तर विकास-सिद्धांत के पास नहीं है। परंतु इस आलोचना को हम छोड़ते हैं। अब हम तीसरे विकास पर आते हैं, और तब पशु-जगत् की समाप्ति पर 'मनुष्य' तक पहुँचने में वे कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं, जो सबसे बढ़कर हैं। हम पशु-जगत् के उच्च-से-उच्च प्राणी—बंदर, चिंपांज़ी, गोरिल्ला या वनमानुस—को ले लें, परंतु मनुष्य में और उसमें ऐसा अंतर है कि विकास की श्रृंखला सर्वथा टूटती दिखाई देती है। साधारणतः—

मनुष्य का पशु-जगत् से भेद

दिखाने के लिये तीन बातें मनुष्य की विशेषता सूचित करनेवाली पेश की जाती हैं। वे हैं—

१. शस्त्र-व्यवहार (Use of tools)
२. अग्नि से काम लेना (Use of fire)
३. व्यक्त भाषा (Use of Language)

सबसे प्रथम कहा जाता है कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिसने अपनी शिकार करने की जंगली हालत में भी, पशुओं के समान, केवल अपने शरीर के अंगों से ही काम नहीं लिया, बल्कि हथियारों से भी काम लिया, चाहे वे हथियार प्राचीन प्रस्तर-काल (Paleolythic Period) में केवल भद्दे पत्थरों के ही बने हुए क्यों न रहे हों। विकास-वादी कहते हैं कि मनुष्य के शस्त्र-प्र

का विकास पशु-जगत् से समझना कुछ कठिन नहीं है। बंदर या बनमानुस भी कभी-कभी पत्थर आदि के ढेले फेकते हैं। ढेला उठाते समय बंदर भी यह देखता है कि ढेला छोटा या बड़ा नहीं, ठीक हो, और वह उसे इस प्रकार फेकता है कि निशाने पर लग जाय। अथवा बंदर जब अखरोट फोड़ना चाहता है, तब वह ऐसा पत्थर का टुकड़ा उठाता है, जो उसके कार्य के लिये उपयुक्त हो। मतलब यह कि अनेक में से एक को छाँटना (Selection) और उसे अपने कार्य के अनुकूल बनाना (Adaptation) ही मनुष्य के शस्त्र-प्रयोग की बुनियाद है, और वैसी समझ पशुओं में भी किसी अंश तक विद्यमान है। फलतः शस्त्र-प्रयोग के विषय में मनुष्य का धीरे-धीरे पशुओं की अवस्था से विकास समझ में आ सकता है। रही बात अग्नि के प्रयोग की, सो उसके विषय में इतना कहना ही काफ़ी होगा कि सृष्टि की प्रथमावस्था में—जब कि पृथ्वी के पेट में भरी हुई उष्णता अनेक रूपों में बाहरी सतह पर प्रकट होती होगी, और जगह-जगह मनुष्य आग को देखता होगा—यह कुछ बहुत कठिन नहीं कि मनुष्य ने आग का प्रयोग करना सीख लिया हो। मनुष्य को पशु-जगत् से भिन्न करनेवाली इन दो बातों के विषय में दिए गए ये दोनों समाधान कितने असंतोष-जनक हैं, यह स्पष्ट है। परंतु इन पर विस्तृत विचार करना हमारे लेख का प्रयोजन नहीं है।

पशु-जगत् और मनुष्य-जगत् के बीच में सबसे बड़ी खाई भाषा-संबंधी है। मनुष्य को कितनी भी जंगली अवस्था में ले लें, उसके पास व्यक्त भाषा (Articulate language) का अभाव सर्वथा असंभव है। इसके विपरीत पशु-जगत् की उच्च-से-उच्च अवस्था में भी भाषा का कोई चिह्न नहीं है। विकास-वादी यह अवश्य कहते हैं कि पशु-जगत् और मनुष्य के बीच विकास-शृंखला की दो-तीन कड़ियाँ (Links) इस समय नहीं मिलतीं। परंतु यदि वे मिलतीं भी, तो भाषा के प्रश्न पर उनसे अधिक प्रकाश पड़ना कठिन था; क्योंकि यदि साधारण पशुओं से बंदर, गोरिल्ला, चिंपांज़ी आदि में भाषा-संबंधी उन्नति के कुछ भी चिह्न नहीं पाए जाते, तो उन बीच की कड़ियों में भाषा-संबंधी कुछ विकास—मनुष्य और पशु के बीच का—हुआ होगा, यह सोचा नहीं जा सकता। अस्तु।

अब प्रश्न यह है कि मनुष्य को पशु-जगत् से भिन्न करनेवाली सबसे मुख्य रेखा जो भाषा-संबंधी है, वह मनुष्य को कैसे प्राप्त हुई? सबसे पहले विकास-वाद के किए हुए इसके समाधान का संक्षेप से उल्लेख किया जायगा। विकास-वादी अपनी प्रक्रिया के अनुसार यह मानते हैं कि पशु-जगत् की अवस्था से पशुओं की अव्यक्त आवाज़ (Cry) से ही धीरे-धीरे मनुष्य की भाषा का विकास हुआ है। मानव-भाषा के विकास में इस सिद्धांत के अनुसार—

प्रथम अवस्था (First stage)

अव्यक्त आवाज़ (Cry) की है, जो पशुओं में पाई जाती है। यह पुकार ही मनुष्य-भाषा का भी बीज है। यही प्रथम मनुष्य में होगी, जो अब तक भी मनुष्य में विद्यमान है, और इसी पुकार या अव्यक्त आवाज़ से मनुष्य भाषा तक पहुँचा। जीवन-विकास (Biological Evolution) सिद्ध करने के लिये डार्विन ने गर्भ-विज्ञान (Embryology) की सहायता ली थी। गर्भ की अवस्था में मनुष्य नव मास के भीतर उन सब रूपों में होकर अति संक्षेप से गुज़र जाता है, जिनमें से वह अपने आरंभिक विकास के समय करोड़ों वर्षों में गुज़रा होगा। इसका अर्थ यह है कि गर्भ की अवस्था में, गर्भ के आरंभिक बीज की वृद्धि में, वे रूप जल्दी-जल्दी होते चले जाते हैं, जो पशु-जगत् में पाए जाते हैं। इसी प्रकार यह 'अव्यक्त आवाज़' मनुष्य-भाषा के गर्भ-विकास का प्रथम रूप है। पैरिस के विकास-वादी लिफ़ीवर (Lefevre) ने अपनी पुस्तक—'Race and Language'—में भाषा के विकास पर विचार किया है। वह लिखता है—

"Now it seems that language also has in some sort its embryology. Not that we can ever be the spectators of the formation of the language; but we possess the germ nevertheless, the undoubted embryology of speech—the cry—which in most of the higher animals, even in man himself, exists as an independent utterance, and suffices for the expression of certain sentiments and even of a few ideas and

is consequently the first element of the crudest forms of speech".

(Race and Language, page 22)

अर्थात् "ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा भी एक प्रकार का अपना गर्भ-विज्ञान रखती है। यद्यपि यह नहीं है कि हम किसी प्रकार से मानव-भाषा-निर्माण के स्वयं साक्षी बन सकें, परंतु, फिर भी, हमारे पास भाषा का बीज है, जिसमें भाषा का गर्भ-विज्ञान विद्यमान है। यह बीज मनुष्य की अव्यक्त पुकार (Cry) है, जो कि बहुत-से उच्च पशुओं में, यहाँ तक कि मनुष्य में भी, एक विशेष उच्चारण है, जिससे कई मनोभाव (Sentiment), यहाँ तक कि कई प्रकार के विचार भी, प्रकट होते हैं, और जो (अव्यक्त आवाज़) फलतः मनुष्य-भाषा की सबसे प्रथम अवस्था का पहला रूप है।" इस प्रकार मनुष्य की आवाज़ या पुकार भाषा का पहला रूप है। यह पशुओं में भी है। इस आवाज़ को प्रारंभिक मनुष्य में मानने में कोई बड़ी कठिनाई नहीं उपस्थित होती। अब इस पुकार का धीरे-धीरे विकास हुआ। इसी पुकार को दुहराने से, लगातार करने से, उदात्त और अनुदात्त करने से, इसी प्रकार के बहुत-से रूप हो गए, जो दस-बीस से अधिक न होंगे। परंतु उस अवस्था में, जब मनुष्य के भाव और विचार अत्यंत सरल (Simplest) होंगे, पुकार के भिन्न-भिन्न रूप उन भावों को प्रकट करते होंगे। उस अवस्था में मानव-भाषा का कोष—जो आज किसी बड़ी-से-बड़ी डिक्शनरी की सीमा में भी नहीं आ सकता—इस आरंभिक पुकार के कतिपय रूपों से ही बना होगा। और, उन्हीं पुकार के कतिपय रूपों का विकास मनुष्य की भाषा के रूप में हुआ। इसका एक उदाहरण देना अतिरोचक होगा। पशुओं के अंदर हम बुलाने की पुकार (Summoning cry) पाते हैं, जिससे वे परस्पर एक दूसरे को बुलाते हैं। यह बुलाने की पुकार ही मनुष्य-भाषा के 'विधिलिङ्' (आज्ञा-बोधक लकार =Imperative mood) का आदि रूप है। इसी प्रकार कल्पना-शक्ति से अनेक बातें दिखाई जा सकती हैं।

पुकार के पश्चात् मानव-भाषा के विकास की—

दूसरी अवस्था (Second stage)

पशुओं के अनुकरण (Imitation) की है, जिसे भाषा-विकास की परिभाषा में 'Onomatopœia' कहते हैं। पहली अवस्था में मनुष्य अपनी ही आवाज़ निकालता है। पर इस दूसरी अवस्था में वह पशुओं की आवाज़ की नक़ल करता है। यह दूसरी अवस्था पहली अवस्था से आगे स्वयं आ जाती है; क्योंकि पहली अवस्था भी एक प्रकार से अनुकरण ही की अवस्था थी। उसमें वह स्वयं अपनी नक़ल करता था, और इस दूसरी अवस्था में वह पशुओं की भी नक़ल करता है। यह मनुष्य के लिये स्वाभाविक है कि वह किसी पशु का निर्देश करने के लिये उसकी आवाज़ की नक़ल करे। अब भी कभी-कभी 'म्याऊँ-म्याऊँ' कहकर बिल्ली को प्रकट किया जाता है। जब हम सोचते हैं कि अपने भाव प्रकट करने की उत्कट इच्छा, जो मनुष्य के अंदर पाई जाती है, भाषा-विकास की जड़ में है, और बोलने की शक्ति ही भाव प्रकट करने का मुख्य साधन है, तब यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि मनुष्य किसी पशु को प्रकट करने के लिये उसकी बोली का सहारा ले, और उसकी नक़ल करके उस पशु का निर्देश करे। एक और प्रकार से भी हम इसे स्पष्ट कर सकते हैं। मनुष्य के कोई विचार या भाव प्रकट करने के तीन मुख्य साधन प्रतीत होते हैं—

१. चित्रण (Picture)
२. संकेत (Gesture)
३. बोली (Voice)

अब यदि किन्हीं लोगों में प्रथम साधन प्रचलित है, अर्थात् वे अपने भावों को तसवीर के द्वारा प्रकट करने की आदत रखते हैं, तो वे कुत्ते के निर्देश के लिये उसकी 'आकृति' बनाकर अपना प्रयोजन सिद्ध करेंगे। इस प्रकार की लेख-कला प्राचीन मिसरी लोगों में प्रचलित थी, जिसे चित्र-लिपि (Hieroglyphic writing) कहते हैं। मिसर की उक्त लेख-कला में भिन्न-भिन्न जानवरों और वस्तुओं के चित्र बनाकर उन्हें प्रकट करते थे। दूसरा साधन संकेत के द्वारा हो सकता है। इसके अनुसार कुत्ते का निर्देश करने के लिये उसकी पूँछ हिलाने का अनुकरण किया जायगा, अथवा उसकी दूसरी चेष्टाओं से उसका बोध कराया जायगा। यह साधन बहुत थोड़े अंश तक ही भाव प्रकट करने

सहायक हो सकता है। अतः भाव प्रकट करने का सबसे मुख्य साधन बोली है। मानव-जाति की सारी भाषाएँ, जिनके द्वारा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भाव प्रकट किए जाते हैं, बोली पर ही निर्भर हैं। आधुनिक सब लेख-कलाएँ बोली पर निर्भर भाषा के ही भिन्न-भिन्न चित्र हैं, अर्थात् लेख में हम किसी वस्तु का सीधा निर्देश नहीं करते, प्रत्युत उस वस्तु का जो निर्दिष्ट नाम है, उसी का रूप अंकित करते हैं। उदाहरणार्थ मैं 'दावात' लिखता हूँ। यह लेख दा-वा-त इस उच्चारण के तीन अक्षरों का ही लेखन है, और यह उच्चारण उस वस्तु का नाम है, जिसका मुझे निर्देश करना है। प्रयोजन यह है कि इस समय मानव-जाति की भाषा सर्वथा बोलने ही की शक्ति के विकास से बनी हुई है। भाव और विचार प्रकट करने के लिये बोलना मनुष्य का सबसे मुख्य साधन है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि मनुष्य किसी पशु को प्रकट करने के लिये और बातें छोड़कर उसकी बोली की नक़ल करे। इस दशा में एक कुत्ते को प्रकट करने के लिये मनुष्य उसके भोंकने की नक़ल करता हुआ 'बो-वो' इत्यादि उच्चारण करेगा *। इस प्रकार यह 'अनुकरण-सिद्धांत' (Onomatopœtic Theory) भाषा के विकास में बहुत महत्त्व-पूर्ण है। भाषा-विकास के विषय में यही प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की 'बो-वो थ्योरी' (Bow Wow Theory) है।

इन दोनों अवस्थाओं—अर्थात् प्रथम मनुष्य का अपनी आवाज़ से काम लेना और द्वितीय यह कि पशुओं की नक़ल करना—के विषय में यह कहना कठिन है कि इनके विकास में कुछ सामयिक अंतर भी होगा। वस्तुतः एक के साथ ही दूसरी लगी हुई है। दोनों में जो अंतर है, वह काल्पनिक (Theoretical) ही है, वास्तविक नहीं; क्योंकि एक अवस्था के पश्चात् ही दूसरी अवस्था स्वयं उत्पन्न हो जायगी।

तीसरी अवस्था (Third stage)

रूढ़ीकरण (Convention) की है। विकास-वादी कहते हैं कि जब तक मनुष्य एक 'शिकारी' की अवस्था में था, और पशुओं को मारकर अपना पेट भरता था, तब तक उसका काम प्रथम दो बातों (आवाज़ और पशुओं के अनुकरण) से चल सकता था; परंतु जब सभ्यता में उन्नति हुई, और मनुष्य का व्यापार पशुपालन हुआ, तब इन आवाज़ों से उसका काम चलना असंभव हो गया। इसीलिये तीसरी अवस्था उत्पन्न हुई, जो कि रूढ़ीकरण की है। कुछ शब्दों को, जो कि पूर्वोक्त दोनों अवस्थाओं के विकास के पश्चात् थोड़े-से व्यक्तियों द्वारा किसी विशेष भाव या विचार को प्रकट करने के लिये व्यवहृत होते थे, समाज ने स्वीकार कर लिया, और लगातार व्यवहार के बाद वे उस अर्थ में रूढ़ हो गए, और इस प्रकार रूढ़ होने के उपरांत प्रचलित सिक्कों (Current coins) के समान सारे समाज के काम में आने लगे। इस तीसरी अवस्था में आकर मानव-भाषा को वास्तविक रूप प्राप्त हुआ, और अनेक भाषाओं के रूप में नाना प्रकार से उसकी उन्नति हुई।

मानव-भाषा की उत्पत्ति और विकास का यह एक सिद्धांत है, जिसे विकास-वाद हमारे आगे रखता है। बहुत-से लोग इस पर विश्वास या अर्ध-विश्वास करते हैं। भाषा की उत्पत्ति के संबंध में ऐसे विचार कि सृष्टि के प्रारंभिक मनुष्यों ने इकट्ठे होकर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट करने के लिये भिन्न-भिन्न शब्द निश्चित किए, बिलकुल ही हास्यास्पद हैं; क्योंकि ऐसे सामाजिक निश्चय और समाज-रचना के लिये भी भाषा की

---

* इस 'अनुकरण-सिद्धांत' पर प्राचीन भारतीय तत्त्वज्ञों ने भी विचार किया था। भाषा-विज्ञान के प्रथम सूत्रधार निरुक्त-प्रणेता यास्क ने 'काक' (कौआ)-शब्द पर विचार करते हुए लिखा है—

"काक इति शब्दानुकृतिस्तदिदं शकुनिषु बहुलम्।"

अर्थात् 'काक' यह शब्द कौए के (काँव-काँव) उच्चारण का अनुकरण है, और यह बात पक्षियों के नामों में बहुधा पाई जाती है; अर्थात् प्रायः पक्षियों के नाम उनके उच्चारण की नक़ल से ही बने हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य कौए का निर्देश करने के लिये पहले काँव-काँव की ध्वनि करता रहा होगा; पीछे उसी ध्वनि के आधार पर 'काक' नाम पड़ गया। यह कुछ स्वाभाविक भी मालूम पड़ता है; क्योंकि प्रारंभिक अवस्था में जंगल में रहनेवाले मनुष्य को तरह-तरह की पक्षियों की आवाजें ही सुनाई देती होंगी। इसलिये विशेषकर पक्षियों के नाम उनकी आवाज से ही बने होंगे।—लेखक

आवश्यकता है, और वह भाषा कहाँ से आई, यही तो मौलिक समस्या है।

धार्मिक जगत् की ओर से इसी समस्या का एक विशेष समाधान यह उपस्थित किया जाता है कि सृष्टि के प्रारंभ में मनुष्य की भाषा और उसके साथ संबद्ध ज्ञान ईश्वर की ओर से प्राप्त हुआ। इस प्रकार वे लोग सृष्टि के प्रारंभ में ईश्वरीय ज्ञान (Revelation) की आवश्यकता मानते हैं। आधुनिक समय में आर्यसमाज के प्रवर्तक श्रीदयानंद स्वामी ने वेदों के ईश्वरीय होने में यही युक्ति दी है कि सृष्टि के प्रारंभ में मनुष्य को पहले पहल भाषा और ज्ञान ईश्वर की ओर से मिलना आवश्यक है; क्योंकि ज्ञान आप ही नहीं हो सकता। अब प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य को सृष्टि के आरंभ में ईश्वर ने भाषा दी, या उसे क्रमशः विकास से प्राप्त हुई? यह स्पष्ट है कि धार्मिक जगत् का समाधान उसी दशा में अपेक्षित और आवश्यक होता है, जब विकास-वाद का दिया हुआ समाधान यथेष्ट और संतोष-जनक न हो; क्योंकि यदि क्रमशः विकास के द्वारा मनुष्य को भाषा मिल सकती हो, तो ईश्वरीय ज्ञान की कल्पना निरर्थक है, और उसमें गौरव-दोष भी आता है।

अब देखना है कि क्या विकास के सिद्धांत से काम चल सकता है? प्रथम ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि भाषा के साथ-साथ ज्ञान अथवा मानव-बुद्धि (Human Reason) की भी समस्या जुड़ी हुई है। प्रो० मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक 'Science of Language' में यह भली भाँति सिद्ध किया है कि भाषा विना ज्ञान के और ज्ञान विना भाषा के नहीं रह सकता। भाषा के विकास का इतिहास मनुष्य की विद्या और विज्ञान के विकास का भी इतिहास है। सारे विज्ञानों का, वे आज चाहे कितनी ही उन्नत अवस्था में हों, मूल भाषा में ही पाया जाता है। मानव-भाषा के एक-एक शब्द के साथ ज्ञान का पुंज जुड़ा हुआ है। एक उदाहरण से हमारा प्रयोजन स्पष्ट हो जायगा। भाषा में 'वृत्त' या 'गोल'-शब्द को एक साधारण मनुष्य भी बोलता है। उसे रेखा-गणित के इस सिद्धांत का ज्ञान नहीं है कि गोल वह रेखा है, जो इस प्रकार घूमे कि एक स्थिर बिंदु (केंद्र) से सदा बराबर की दूरी पर रहे; परंतु, फिर भी, वह जानता है कि गोल किसे कहते हैं। उसके मन में वही बात अव्यक्त या अस्पष्ट अवस्था में है, जिसे रेखा-गणित स्पष्ट शब्दों में सामने रख देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साइंस के मौलिक सिद्धांत बहुधा भाषा में छिपे होते हैं, और जब वे व्यक्त—स्पष्ट—हो जाते हैं, तब हम उन्हें विज्ञान का नाम देते हैं। ऐसी दशा में भाषा के साथ-साथ विज्ञान भी जुड़ा हुआ है। इससे एक बात और भी सिद्ध होती है—स्वामी दयानंद के सिद्धांत के अनुसार यदि यह मान लिया जाय कि वेद के द्वारा मनुष्य को भाषा मिली, तो वेद में सब विज्ञानों का मूल होना उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक हो जाता है।

प्रयोजन यह है कि भाषा के साथ ही 'ज्ञान' की समस्या भी जुड़ी हुई है। मनुष्य और पशु-जगत् के बीच बड़ा अंतर भाषा का ही नहीं, बल्कि ज्ञान-संबंधी भी है। मनोवैज्ञानिक (Psychologists) बतलाते हैं कि पशुओं के जितने कार्य हम बुद्धि-जनित देखते हैं, वे वस्तुतः मनुष्य के समान बुद्धि पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि नैसर्गिक प्रेरणा पर जिसे वे इंस्टिंक्ट (Instinct) कहते हैं, निर्भर हैं। इसे हम एक उदाहरण से स्पष्ट करेंगे। एक मनुष्य साँप को देखकर भय से भागता है। मनुष्य की इस चेष्टा से पहले बहुत-सा प्रत्यक्ष (जिसका ज्ञान स्वयं उसी मनुष्य के मन में होता है) बुद्धि-व्यापार (Conscious process) हुआ है। मनुष्य के मन के अंदर एक क्षण में ही ये सब बातें घूम जाती हैं कि साँप काटता है, उससे ज़हर चढ़ता है, ज़हर से मृत्यु हो जाती है, और मृत्यु भयानक वस्तु है। उधर मेंढक भी साँप को देखकर, डरकर, उससे बचता है; परंतु उसके मन में साँप निगल जायगा, और मैं मर जाऊँगा इत्यादि कोई भाव नहीं आता। उसके लिये यह स्वाभाविक है कि वह साँप को देखते ही बचे। इस स्वाभाविक चेष्टा को, जिसमें बुद्धि-पूर्वकता नहीं होती, मनोवैज्ञानिक 'इंस्टिंक्ट' कहते हैं। इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण दिया जा सकता है। एक कुत्ता जन्म से ही तैरने लगता है। यह नैसर्गिक है। उस कुत्ते का नैसर्गिक प्रेरणा 'इंस्टिंक्ट' पर निर्भर है। पर मनुष्य को तैरना बुद्धि-पूर्वक सीखना होता है। इस प्रकार मनुष्य में बुद्धि (Reason) है, और पशु में नैसर्गिक प्रेरणा

मात्र (Instinct)। इन दोनों से मनुष्य और पशु-जीवन के कार्य हो रहे हैं ; पर इन दोनों में महान् अंतर है। पशुओं का मानसिक जीवन सर्वथा अव्यक्त (Unconscious) है, और मनुष्य का व्यक्त (Self-conscious)। इन दोनों का भेद समझाने के लिये बहुत-सा मनोवैज्ञानिक विस्तार आवश्यक होगा, जिसमें इस समय हम नहीं जा सकते। ठीक यही व्यक्त और अव्यक्त का भेद मनुष्य और पशु की भाषा में है। पशु भी दूसरे पशु के प्रति अपना भाव प्रकट करने के लिये कुछ बोलता है; परंतु वह बोली अव्यक्त (Inarticulate) है। मनुष्य की भाषा की विशेषता यह है कि वह व्यक्त (Articulate) है। व्यक्त॰ या 'आर्टिकुलेट'-भाषा का अर्थ यह है कि यह भाषा बुद्धि-पूर्वक है। 'आर्टिकुलेट' का शब्दार्थ है 'अनेक जोड़ों (joints) से युक्त', अर्थात् जो अनेक टुकड़ों के मिलने से बनी हो। मनुष्य की भाषा वाक्यों और शब्दों से बनी है। उन शब्दों में भी अलग-अलग कई उच्चारण हैं, जो जुड़कर एक शब्द बनाते हैं। इस प्रकार हम मनुष्य और पशु के, भाषा और ज्ञान-संबंधी, अंतर को यों स्पष्ट रख सकते हैं—

मनुष्य	व्यक्त भाषा	बुद्धि
	Articulate Language	Reason
पशु	अव्यक्त पुकार	नैसर्गिक प्रेरणा
	Inarticulate cry	Instinct

ऊपर यह दिखलाया गया है कि मनुष्य और पशु-जगत् में व्यक्त और अव्यक्त भाषा तथा ज्ञान का महान् अंतर है। यह अंतर बहुत स्पष्ट है। पशु-जगत् की उच्च-से-उच्च अवस्था में 'व्यक्तता' का लेश नहीं है, और मनुष्य की जंगली-से-जंगली अवस्था में भी भाषा और ज्ञान की 'व्यक्तता' है। यह बड़ी खाई है, जिसे (१) पुकार (Cry), (२) पशु के अनुकरण (Onomatopœa), और (३) रूढ़ीकरण की तीन अवस्थाएँ, या ऐसी ही दस क्रमिक अवस्थाएँ भी, बतलाकर विकास का सिद्धांत नहीं भर सकता ; क्योंकि समस्या तो यह है कि अव्यक्त नैसर्गिक प्रेरणा और अव्यक्त पुकार के स्थान में बुद्धि या व्यक्त भाषा कहाँ से एकदम आ गई? इस महान् भेद या अंतर का समाधान क्रमिक विकास से होता नहीं दिखलाई देता। जिस प्रकार जड़-जगत् (Inorganic world) से जीव-जगत् (Organic world) में एक छलाँग मारते हुए विकास-वादियों की समझ में यह नहीं आता कि जीवन-तत्त्व कहाँ से आ गया, और वे इस प्रकार हास्यास्पद कल्पनाएँ करने लगते हैं कि जीवन-तत्त्व शायद तारों से पृथ्वी पर गिर पड़ा होगा, ठीक उसी प्रकार क्या उन्हें यह कल्पना भी न करनी पड़ेगी कि यह बुद्धि-तत्त्व भी कहीं आकाश से मनुष्य के मस्तिष्क में टपक पड़ा होगा? इस कल्पना और ईश्वरीय ज्ञान (Revelation) के सिद्धांत में क्या भेद रह जाता है? विकास-वादी और वैज्ञानिक, जो कि प्रत्येक बात को, चाहे वह अतींद्रिय ही क्यों न हो, आँखों से देखे बिना स्वीकार नहीं करना चाहते, ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धांत को मानने में अवश्य आनाकानी करेंगे। पर भाषा और बुद्धि की उत्पत्ति की समस्या मनुष्य को हैरान करती हुई पूछती है कि फिर भाषा और बुद्धि की उत्पत्ति कैसे और कहाँ से हुई?

धर्मेंद्रनाथ

क्षमा

(१)

मुसलमानों को स्पेन-देश पर राज्य करते कई शताब्दियाँ बीत चुकी थीं। कलीसाओं की जगह मसजिदें बनती जाती थीं; घंटों की जगह अज़ान की आवाज़ें सुनाई देती थीं। ग़रनाता और अलहमरा में वे समय की नश्वर गति पर हँसनेवाले प्रासाद बन चुके थे, जिनके खँडहर अब तक देखनेवालों को अपने पूर्व ऐश्वर्य की झलक दिखाते हैं। ईसाइयों के गण्य-मान्य स्त्री और पुरुष मसीह की शरण छोड़कर इसलामी भ्रातृत्व में सम्मिलित होते जाते थे, और आज तक इतिहासकारों को यह आश्चर्य है कि ईसाइयों का निशान वहाँ क्योंकर बाक़ी रहा। जो ईसाई नेता अब तक मुसलमानों के सामने सिर न झुकाते थे, और अपने देश में स्वराज्य

स्थापित करने का स्वप्न देख रहे थे, उनमें एक सौदागर दाऊद भी था। दाऊद विद्वान् और साहसी था। वह अपने इलाक़े में इसलाम को क़दम न जमाने देता था। दीन और निर्धन ईसाई विद्रोही देश के अन्य प्रांतों से आकर उसके शरणागत होते थे। वह बड़ी उदारता से उनका पालन-पोषण करता था। मुसलमान दाऊद से सशंक रहते थे। वे धर्म-बल से उस पर विजय न पाकर उसे शस्त्र-बल से परास्त करना चाहते थे। पर दाऊद कभी उनका सामना न करता था। हाँ, जहाँ कहीं ईसाइयों के मुसलमान होने की ख़बर पाता, वहाँ हवा की तरह पहुँच जाता, और तर्क या विनय से उन्हें अपने धर्म पर अचल रहने की प्रेरणा करता था। अंत में मुसलमानों ने चारों तरफ़ से घेरकर उसे गिरफ़्तार करने की तैयारी की। सेनाओं ने उसके इलाक़े को घेर लिया। दाऊद को प्राण-रक्षा के लिये अपने संबंधियों के साथ भागना पड़ा। वह घर से भागकर ग़रनाता में आया, जहाँ उन दिनों इसलामी राजधानी थी। वहाँ सबसे अलग रहकर वह अच्छे दिनों की प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत करने लगा। मुसलमानों के गुप्तचर उसका पता लगाने के लिये बहुत सिर मारते थे, उसे पकड़ लाने के लिये बड़े-बड़े इनामों की विज्ञप्ति निकाली जाती थी, पर दाऊद की टोह न मिलती थी।

(२)

एक दिन एकांत-वास से उकताकर दाऊद ग़रनाता के एक बाग़ में सैर करने चला गया। संध्या हो गई थी। मुसलमान नीची अबाएँ पहने, बड़े-बड़े अमामे सिर पर बाँधे, कमर से तलवार लटकाए रविशों में टहल रहे थे। स्त्रियाँ सफ़ेद बुरक़े ओढ़े, ज़री की जूतियाँ पहने बेंचों और कुरसियों पर बैठी हुई थीं। दाऊद सबसे अलग हरी-हरी घास पर लेटा हुआ सोच रहा था कि वह दिन कब आवेगा, जब हमारी जन्मभूमि इन अत्याचारियों के पंजे से छूटेगी! वह अतीत काल की कल्पना कर रहा था, जब ईसाई स्त्री और पुरुष इन रविशों में टहलते होंगे, जब यह स्थान ईसाइयों के परस्पर वार्तालाप से गुलज़ार होगा।

सहसा एक मुसलमान युवक आकर दाऊद के पास बैठ गया। वह इसे सिर से पाँव तक अपमान-सूचक दृष्टि से देखकर बोला—"क्या अभी तक तुम्हारा हृदय इसलाम की ज्योति से प्रकाशित नहीं हुआ?"

दाऊद ने गंभीर भाव से कहा—"इसलाम की ज्योति पर्वत-शृंगों को प्रकाशित कर सकती है। अँधेरी घाटियों में उसका प्रवेश नहीं हो सकता।"

उस मुसलमान अरबी का नाम जमाल था। यह आक्षेप सुनकर वह तीखे स्वर में बोला—"इससे तुम्हारा क्या मतलब है?"

दाऊद—"इससे मेरा मतलब यही है कि ईसाइयों में जो लोग उच्च श्रेणी के हैं, वे जागीरों और राज्याधिकारों के लोभ तथा राजदंड के भय से इसलाम की शरण में आ सकते हैं; पर दुर्बल और दीन ईसाइयों के लिये इसलाम में वह आसमान की बादशाहत कहाँ है, जो हज़रत मसीह के दामन में उन्हें नसीब होगी। इसलाम का प्रचार तलवार के बल से हुआ है, सेवा के बल से नहीं।"

जमाल अपने धर्म का अपमान सुनकर तिलमिला उठा। गरम होकर बोला—"यह सर्वथा मिथ्या है। इसलाम की शक्ति उसका आंतरिक भ्रातृत्व और साम्य है, तलवार नहीं।"

दाऊद—"इसलाम ने धर्म के नाम पर जितना रक्त बहाया है, उसमें उसकी सारी मसजिदें डूब जायँगी।"

जमाल—"तलवार ने सदा से सत्य की रक्षा की है।"

दाऊद ने अविचलित भाव से कहा—"जिसको तलवार का आश्रय लेना पड़े, वह सत्य ही नहीं है।"

जमाल जातीय गर्व से उन्मत्त होकर बोला—"जब तक मिथ्या के भक्त रहेंगे, तब तक तलवार की ज़रूरत भी रहेगी।"

दाऊद—"तलवार का मुँह ताकनेवाला सत्य ही मिथ्या है।"

अरब ने तलवार के क़ब्ज़े पर हाथ रखकर कहा—"ख़ुदा की क़सम, अगर तुम निहत्थे न होते, तो तुम्हें इसलाम की तौहीन करने का मज़ा चखा देता।"

दाऊद ने अपनी छाती में छिपाई हुई कटार निकालकर कहा—"नहीं, मैं निहत्था नहीं हूँ। मुसलमानों पर जिस दिन इतना विश्वास करूँगा, उस दिन ईसाई न रहूँगा। तुम अपने दिल के अरमान निकाल लो।"

दोनों ने तलवारें खींच लीं। एक दूसरे पर टूट पड़ा। अरब की भारी तलवार ईसाई की हलकी कटार के सामने शिथिल हो गई। एक सर्प की भाँति फन से चोट करती थी, दूसरी नागिन की भाँति उड़ती थी। एक लहरों की भाँति लपकती थी, दूसरी जल की मछलियों की भाँति चमकती थी। दोनों योद्धाओं में कुछ देर तक चोटें होती रहीं। सहसा एक बार नागिन उछलकर अरब के अंतस्तल में जा पहुँची। वह भूमि पर गिर पड़ा।

(३)

जमाल के गिरते ही चारों तरफ़ से लोग दौड़ पड़े। वे दाऊद को घेरने की चेष्टा करने लगे। दाऊद ने देखा, लोग तलवारें लिए दौड़े चले आ रहे हैं। प्राण लेकर भागा। पर जिधर जाता था, सामने बाग़ की दीवार रास्ता रोक लेती थी। दीवार ऊँची थी, उसे फाँदना मुशकिल था। यह जीवन और मृत्यु का संग्राम था। कहीं शरण की आशा नहीं, कहीं छिपने का स्थान नहीं। उधर अरबों की रक्त-पिपासा प्रतिक्षण तीव्र होती जाती थी। यह केवल एक अपराधी को दंड देने की चेष्टा न थी, जातीय अपमान का बदला था। एक विजित ईसाई की यह हिम्मत कि अरब पर हाथ उठावे! ऐसा अनर्थ!

जिस तरह पीछा करनेवाले कुत्तों के सामने गिलहरी इधर-उधर दौड़ती है, किसी वृक्ष पर चढ़ने की बार-बार चेष्टा करती है, पर हाथ-पाँव फूल जाने के कारण बार-बार गिर पड़ती है, वही दशा दाऊद की थी।

दौड़ते-दौड़ते उसका दम फूल गया; पैर मन-मन-भर के हो गए। कई बार जी में आया, इन सब पर टूट पड़े, और जितने महँगे प्राण बिक सकें, उतने महगे बेचे। पर शत्रुओं की संख्या देखकर हतोत्साह हो जाता था।

लेना, दौड़ना, पकड़ना का शोर मचा हुआ था। कभी-कभी पीछा करनेवाले इतने निकट आ जाते थे कि मालूम होता था, अब संग्राम का अंत हुआ, वह तलवार पड़ी; पर पैरों की एक ही गति थी। एक कावा, एक कन्नी उसे खून की प्यासी तलवारों से बाल-बाल बचा लेती थी।

दाऊद को अब इस संग्राम में खिलाड़ियों का-सा आनंद आने लगा। यह निश्चय था कि उसके प्राण नहीं बच सकते, मुसलमान दया करना नहीं जानते, इसलिये उसे अपने दाँव-पेंच में मज़ा आ रहा था। किसी वार से बचकर उसे अब इसकी खुशी न होती थी कि उसके प्राण बच गए, बल्कि इसका आनंद होता था कि उसने क़ातिल को कैसा ज़िच किया।

सहसा उसे अपनी दाहनी ओर बाग़ की दीवार कुछ नीची नज़र आई। आह! यह देखते ही उसके पैरों में एक नई शक्ति का संचार हो गया, धमनियों में नया रक्त दौड़ने लगा। वह हिरन की तरह उस तरफ़ दौड़ा, और एक छलाँग में बाग़ के उस पार पहुँच गया। ज़िंदगी और मौत में सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला था। पीछे मृत्यु थी, और आगे जीवन का विस्तृत क्षेत्र। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, झाड़ियाँ ही नज़र आती थीं। ज़मीन पथरीली थी, कहीं ऊँची, कहीं नीची। जगह-जगह पत्थर की शिलाएँ पड़ी हुई थीं। दाऊद एक शिला के नीचे छिपकर बैठ गया।

दम-भर में पीछा करनेवाले भी वहाँ आ पहुँचे, और इधर-उधर झाड़ियों में, वृक्षों पर, गड्ढों में, शिलाओं के नीचे तलाश करने लगे। एक अरब उस चट्टान पर आकर खड़ा हो गया, जिसके नीचे दाऊद छिपा हुआ था। दाऊद का कलेजा धक-धक कर रहा था। अब जान गई! अरब ने ज़रा नीचे को झाँका, और प्राणों का अंत हुआ। संयोग—केवल संयोग पर अब उसका जीवन निर्भर था। दाऊद ने साँस रोक ली; सन्नाटा खींच लिया। एक निगाह पर उसकी ज़िंदगी का फ़ैसला था। ज़िंदगी और मौत में कितना सामीप्य है!

मगर अरबों को इतना अवकाश कहाँ था कि वे सावधान होकर शिला के नीचे देखते। वहाँ तो हत्यारे को पकड़ने की जल्दी थी। दाऊद के सिर से बला टल गई। वे इधर-उधर ताक-झाँककर आगे बढ़ गए।

(४)

अँधेरा हो गया। आकाश में तारागण निकल आए, और तारों के साथ दाऊद भी शिला के नीचे से निकला। लेकिन देखा, तो उस समय भी चारों तरफ़ हलचल मची हुई है, शत्रुओं का दल मशालें लिए झाड़ियों में घूम रहा है; नाकों पर भी पहरा है, कहीं निकल भागने का रास्ता नहीं है। दाऊद एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर सोचने लगा कि अब क्योंकर जान बचे। उसे अपनी जान की वैसी पर्वा न थी। वह जीवन के सुख-दुःख सब भोग चुका था। अगर उसे जीवन की लालसा थी, तो केवल यही देखने के लिये कि इस संग्राम का

अंत क्या होगा। मेरे देशवासी हतोत्साह हो जायँगे, या अदम्य धैर्य के साथ संग्राम-क्षेत्र में अटल रहेंगे।

जब रात अधिक बीत गई, और शत्रुओं की घातक चेष्टा कुछ कम न होती देख पड़ी, तो दाऊद खुदा का नाम लेकर झाड़ियों से निकला, और दबे-पाँव, वृक्षों की आड़ में, आदमियों की नज़रें बचाता हुआ, एक तरफ़ को चला। वह इन झाड़ियों से निकलकर बस्ती में पहुँच जाना चाहता था। निर्जनता किसी की आड़ नहीं कर सकती। बस्ती का जन-बाहुल्य स्वयं आड़ है।

कुछ दूर तक तो दाऊद के मार्ग में कोई बाधा न उपस्थित हुई, वन के वृक्षों ने उसकी रक्षा की; किंतु जब वह असमतल भूमि से निकलकर समतल भूमि पर आया, तो एक अरब की निगाह उस पर पड़ गई। उसने ललकारा। दाऊद भागा। क़ातिल भागा जाता है, यह आवाज़ हवा में एक ही बार गूँजी, और क्षण-भर में चारों तरफ़ से अरबों ने उसका पीछा किया। सामने बहुत दूर तक आबादी का नामोनिशान न था। बहुत दूर पर एक धुँधला-सा दीपक टिमटिमा रहा था। किसी तरह वहाँ तक पहुँच जाऊँ! वह उस दीपक की ओर इतनी तेज़ी से दौड़ रहा था, मानो वहाँ पहुँचते ही अभय पा जायगा। आशा उसे उड़ाए लिए जाती थी। अरबों का समूह पीछे छूट गया, मशालों की ज्योति निष्प्रभ हो गई। केवल तारागण उसके साथ दौड़े चले आते थे। अंत को वह आशामय दीपक सामने आ पहुँचा। एक छोटा-सा फूस का मकान था। एक बूढ़ा अरब ज़मीन पर बैठा हुआ, रेहल पर कुरान रक्खे उसी दीपक के मंद प्रकाश में पढ़ रहा था। दाऊद आगे न जा सका। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। वह वहीं शिथिल होकर गिर पड़ा। रास्ते की थकन घर पहुँचने पर मालूम होती है।

अरब ने उठकर पूछा—"तू कौन है?"

दाऊद—"एक ग़रीब ईसाई। मुसीबत में फँस गया हूँ। अब आप ही शरण दें, तो मेरे प्राण बच सकते हैं।"

अरब—"खुदा-पाक तेरी मदद करेगा। तुझ पर क्या मुसीबत पड़ी हुई है?"

दाऊद—"डरता हूँ, कहीं कह दूँ, तो आप भी मेरे खून के प्यासे न हो जायँ।"

अरब—"जब तू मेरी शरण में आ गया, तो तुझे मुझसे कोई शंका न होनी चाहिए। हम मुसलमान हैं, जिसे एक बार अपनी शरण में ले लेते हैं, उसकी ज़िंदगी-भर रक्षा करते हैं।"

दाऊद—"मैंने एक मुसलमान युवक की हत्या कर डाली है।"

वृद्ध अरब का मुख क्रोध से विकृत हो गया। बोला—"उसका नाम?"

दाऊद—"उसका नाम जमाल था।"

अरब सिर पकड़कर वहीं बैठ गया। उसकी आँखें सुर्ख़ हो गईं; गरदन की नसें तन गईं; मुख पर अलौकिक तेजस्विता की आभा दिखाई दी; नथने फड़कने लगे। ऐसा मालूम होता था कि उसके मन में भीषण द्वंद्व हो रहा है, और वह समस्त विचार-शक्ति से अपने मनोभावों को दबा रहा है। दो-तीन मिनट तक वह इसी उग्र अवस्था में बैठा धरती की ओर ताकता रहा। अंत को अवरुद्ध कंठ से बोला—"नहीं, नहीं, शरणागत की रक्षा करनी ही पड़ेगी। —आह! ज़ालिम! तू जानता है, मैं कौन हूँ? मैं उसी युवक का अभागा पिता हूँ, जिसकी आज तूने इतनी निर्दयता से हत्या की है! तू जानता है, तूने मुझ पर कितना बड़ा अत्याचार किया है? तूने मेरे ख़ानदान का निशान मिटा दिया है! मेरा चिराग़ गुल कर दिया! आह, जमाल मेरा इकलौता बेटा था! मेरी सारी अभिलाषाएँ उसी पर निर्भर थीं। वही मेरी आँखों का उजाला, मुझ अंधे का सहारा, मेरे जीवन का आधार, मेरे जर्जर शरीर का प्राण था। अभी-अभी उसे क़ब्र की गोद में लिटाकर आया हूँ। आह, मेरा शेर आज ख़ाक के नीचे सो रहा है। ऐसा दिलेर, ऐसा दीनदार, ऐसा सजीला जवान मेरी क़ौम में दूसरा न था। ज़ालिम, तुझे उस पर तलवार चलाते ज़रा भी दया न आई! तेरा पत्थर का कलेजा ज़रा भी न पसीजा! तू जानता है, मुझे इस वक़्त तुझ पर कितना गुस्सा आ रहा है? मेरा जी चाहता है कि अपने दोनों हाथों से तेरी गरदन पकड़कर इस तरह दबाऊँ कि तेरी ज़बान बाहर निकल आवे, तेरी आँखें कौड़ियों की तरह बाहर निकल पड़ें। पर नहीं, तूने मेरी शरण ली है, कर्तव्य मेरे हाथों को बाँधे हुए है; क्योंकि हमारे रसूल-पाक ने हिदायत की है कि जो अपनी पनाह में आवे, उस पर हाथ न उठाओ। मैं नहीं चाहता कि नबी के हुक्म को तोड़कर दुनिया के साथ अपनी आक़बत भी बिगाड़ लूँ। दुनिया

तूने बिगाड़ी, दीन अपने हाथों बिगाड़ूँ? नहीं। सब्र करना मुश्किल है; पर सब्र करूँगा, ताकि नबी के सामने आँखें नीची न करनी पड़ें। आ, घर में आ। तेरा पीछा करनेवाले वह दौड़े आ रहे हैं। तुझे देख लेंगे, तो फिर मेरी सारी मिन्नत-समाजत तेरी जान न बचा सकेगी। तू नहीं जानता कि अरब लोग खून को कभी माफ़ नहीं करते।"

यह कहकर अरब ने दाऊद का हाथ पकड़ लिया, और उसे घर में ले जाकर एक कोठरी में छिपा दिया। वह घर से बाहर निकला ही था कि अरबों का एक दल उसके द्वार पर आ पहुँचा।

एक आदमी ने पूछा—"क्यों शेख़ हसन, तुमने इधर से किसी को भागते देखा है?"

"हाँ, देखा है।"

"उसे पकड़ क्यों न लिया? वही तो जमाल का क़ातिल था।"

"यह जानकर भी मैंने उसे छोड़ दिया।"

"एँ! ग़ज़ब खुदा का, यह तुमने क्या किया? जमाल हिसाब के दिन हमारा दामन पकड़ेगा, तो हम क्या जवाब देंगे?"

"तुम कह देना कि तेरे बाप ने तेरे क़ातिल को माफ़ कर दिया।"

"अरब ने कभी क़ातिल का खून नहीं माफ़ किया।"

"यह तुम्हारी ज़िम्मेदारी है, मैं उसे अपने सिर क्यों लूँ?"

अरबों ने शेख़ हसन से ज़्यादा हुज्जत न की, क़ातिल की तलाश में दौड़े। शेख़ हसन फिर चटाई पर बैठकर कुरान पढ़ने लगा। लेकिन उसका मन पढ़ने में न लगता था। शत्रु से बदला लेने की प्रवृत्ति अरबों की प्रकृति में बद्धमूल हो गई थी। खून का बदला खून था। इसके लिये खून की नदियाँ बह जाती थीं, क़बीले-के-क़बीले मर मिटते थे, शहर-के-शहर वीरान हो जाते थे। उस प्रवृत्ति पर विजय पाना शेख़ हसन को असाध्य-सा प्रतीत हो रहा था। बार-बार प्यारे पुत्र की सूरत उसकी आँखों के आगे फिरने लगती थी, बार-बार उसके मन में प्रबल उत्तेजना होती थी कि चलकर दाऊद के खून से अपने क्रोध की आग बुझाऊँ। अरब वीर होते थे। कटना-मरना उनके लिये कोई असाधारण बात न थी। मरनेवालों के लिये वे आँसुओं की कुछ बूँद बहाकर फिर अपने काम में प्रवृत्त हो जाते थे। वे मृत व्यक्ति की स्मृति को केवल उसी दशा में जीवित रखते थे, जब उसके खून का बदला लेना होता था। अंत को शेख़ हसन अधीर हो उठा। उसको भय हुआ कि अब मैं अपने ऊपर क़ाबू नहीं रख सकता। उसने तलवार म्यान से निकाल ली, और वह दबे-पाँव उस कोठरी के द्वार पर आकर खड़ा हो गया, जिसमें दाऊद छिपा हुआ था। तलवार को दामन में छिपाकर धीरे से द्वार खोला। दाऊद टहल रहा था। बूढ़े अरब का रौद्र रूप देखकर दाऊद उसके मनोवेग को ताड़ गया। उसे बूढ़े से सहानुभूति हो गई। उसने सोचा, यह धर्म का दोष नहीं, जाति का दोष है। मेरे पुत्र की किसी ने हत्या की होती, तो कदाचित् मैं भी उसके खून का प्यासा हो जाता। यही मानव-प्रकृति है।

अरब ने कहा—"दाऊद, तुम्हें मालूम है, बेटे की मौत का कितना ग़म होता है?"

दाऊद—"इसका अनुभव तो नहीं है, पर अनुमान कर सकता हूँ। अगर मेरी जान से आपके उस ग़म का एक हिस्सा भी मिट सके, तो लीजिए, यह सिर हाज़िर है। मैं इसे शौक़ से आपकी नज़र करता हूँ। आपने दाऊद का नाम सुना होगा।"

अरब—"क्या पीटर का बेटा?"

दाऊद—"जी हाँ। मैं वही बदनसीब दाऊद हूँ। मैं केवल आपके बेटे का घातक ही नहीं, इसलाम का दुश्मन हूँ। मेरी जान लेकर आप जमाल के खून का बदला ही न लेंगे, बल्कि अपनी जाति और धर्म की सच्ची सेवा भी करेंगे।"

शेख़ हसन ने गंभीर भाव से कहा—"दाऊद, मैंने तुम्हें माफ़ किया। मैं जानता हूँ, मुसलमानों के हाथों ईसाइयों को बहुत तकलीफ़ें पहुँची हैं; मुसलमानों ने उन पर बड़े-बड़े अत्याचार किए हैं, उनकी स्वाधीनता हर ली है। लेकिन यह इसलाम का नहीं, मुसलमानों का क़सूर है। विजय-गर्व ने मुसलमानों की मति हर ली है। हमारे पाक-नबी ने यह शिक्षा नहीं दी थी, जिस पर आज हम चल रहे हैं। वह स्वयं क्षमा और दया का सर्वोच्च आदर्श हैं। मैं इसलाम के नाम को बट्टा न लगाऊँगा। मेरी ऊँटनी ले लो, और रातारात जहाँ तक भागा जाय, भागो। कहीं एक क्षण के लिये भी

न ठहरना। अरबों को तुम्हारी बू भी मिल गई, तो तुम्हारी जान की ख़ैरियत नहीं है। जाओ, तुम्हें ख़ुदाए-पाक घर पहुँचावे। बूढ़े शेख़ हसन और उसके बेटे जमाल के लिये ख़ुदा से दुआ किया करना।"

* * *

दाऊद ख़ैरियत से घर पहुँच गया; किंतु अब वह वह दाऊद न था, जो इसलाम को जड़ से खोदकर फेंक देना चाहता था, उसके विचारों में गहरा परिवर्तन हो गया था। अब वह मुसलमानों का आदर करता और इसलाम का नाम इज़्ज़त से लेता था।

प्रेमचंद

संस्कृत में कोश-विद्या
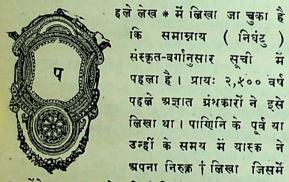
पहले लेख * में लिखा जा चुका है कि समाम्नाय (निघंटु) संस्कृत-वर्गानुसार सूची में पहला है। प्रायः २,५०० वर्ष पहले अज्ञात ग्रंथकारों ने इसे लिखा था। पाणिनि के पूर्व या उन्हीं के समय में यास्क ने अपना निरुक्त † लिखा जिसमें उन्होंने समाम्नाय के किसी-किसी स्थान से शब्दों की व्याख्या, वेद से उदाहरण उद्धृत कर, की है। समाम्नाय बहुत सरल है। इसमें केवल वैदिक पर्याय, अनेकार्थ शब्द और देवतों के नाम हैं। यह निरुक्त अपने समय के विचित्र संक्षिप्त रूप में लिखा गया है। अनंतर बहुत-सी टीकाएँ इस सूची पर लिखी गईं। इस सूची में प्रायः १२वीं शताब्दी (वि० सं०) तक बहुत-से परिवर्तन हुए। १२वीं शताब्दी के देवराज यज्वन्-नामक एक दाक्षिणात्य इस सूची को अपने पूर्ण पूर्व रूप में लाने का स्वत्व रखते हैं। इन्होंने संपूर्ण पुस्तक पर एक टीका लिखी है, जिसमें सब शब्दों पर व्याख्या और उनके उदाहरण देने का यत्न वैदिक उद्धरणों से किया गया है। इसमें ब्राह्मण के बहुत ही कम उद्धरण दिए गए हैं।

देवराज का पूर्ण परिचय विदित नहीं है, पर जैसा ऊपर लिखा गया है, यह प्रायः १२वीं शताब्दी में हुए थे; क्योंकि यह वेदों के प्रसिद्ध टीकाकार सायण को नहीं जानते थे, जो १३वीं शताब्दी (विक्रम-संवत्) के मध्य में हुए थे; पर ११वीं शताब्दी (वि० सं०) वाले भोज के समय में यजुर्वेद-भाष्य के लेखक भोज और उवट का नाम अपने ग्रंथ में लिखते हैं।

देवराज ने समाम्नाय की अपनी टीका की भूमिका में मूल-ग्रंथ का सविस्तर इतिहास लिखा है। इस विषय पर डॉक्टर लक्ष्मणस्वरूप ने भी निरुक्त के अपने लेख में बहुत-सी काम की बातें लिखी हैं। उत्सुक पाठक इस विषय की पूर्ण अभिज्ञता के लिये इन दोनों लेखों को पढ़ें। उक्त लेख में देवराज के द्वारा ठीक किए गए मूल-ग्रंथ और १८वीं शताब्दी (वि० सं०) के ग्रंथकर्ता भास्करराय के श्लोक-बद्ध ग्रंथ का विवरण दिया गया है। भास्करराय का छोटा वैदिक निघंटु * दुष्प्राप्य है। ऑफ़्रेक्ट ने अपनी सूची में इसका नाम नहीं दिया; और यद्यपि गोडबोले ने इसे हाल में छपवाया था, पर आजकल यह अलभ्य है। भाग्यवश मेरे पास एक लिखित प्रति है। मेरे कई (पोस्ट-ग्रेजुएट) विद्यार्थियों ने अपने व्यवहार के लिये इसकी कई प्रतियाँ कर ली हैं। इस तरह अब इसकी कई प्रतियाँ विद्यमान हैं। बहुत-से दुर्बोध शब्द, विशेषकर नैगम कांड के, इस छोटी-सी पुस्तिका में संक्षिप्त रूप में व्याख्यात हैं।

समाम्नाय पाँच अध्यायों में विभक्त है। उनमें से पहले के तीन अध्यायों में नैघंटुक कांड है (अर्थात् पर्यायवाची शब्द हैं), चौथे अध्याय में नैगम कांड है (अर्थात् नानार्थ शब्द हैं), पाँचवें अध्याय में दैवत कांड है (अर्थात् देवतों और उनकी स्त्रियों के नाम हैं)।

---

* देखो माधुरी वर्ष २, खंड १, संख्या २, पृष्ठ १५३।

† निरुक्त और समाम्नाय, दोनों के ग्रंथकर्ता भिन्न-भिन्न हैं। इस विषय को, मेरी समझ में, निरुक्त के टीकाकार भगवद्दुर्गाचार्य ने अपनी टीका में सदा के लिये निश्चित कर दिया है—"चूँकि यह मंत्र निरुक्त में 'अकूपारस्य दावने' लिखा हुआ है, और समाम्नाय में 'दावने अकूपारस्य' लिखा हुआ है, इसीलिये ज्ञात होता है कि समाम्नाय के लेखक दूसरे ऋषि हैं, और भाष्यकार दूसरा ही पुरुष।"—लेखक

* डॉ० लक्ष्मणस्वरूप गत वर्ष पटने आए थे, और उन्होंने इसकी स्थिति का अपना अपरिचय मुझसे कहा था।—लेखक

समाम्नाय की सूची

अध्याय १

(जगत्)	नाम
१ पृथ्वी	२१
२ सुवर्ण	१५
३ स्वर्ग	१६
४ सूर्य और स्वर्ग के एक नाम	४
५ किरण	१५
६ दिक्	८
७ प्रकाश	२३
८ उषा	१६
९ दिन	११
१० मेघ	३०
११ वाणी	५७
१२ जल	१०१
१३ नदी	३७
१४ अश्व	२६
१५ देवतों की सवारी के पशु	१०
१६ चमकना	११
१७ चमकता हुआ	११

* * *

अध्याय २

(मनुष्य और उसके अंग)	नाम
१ कर्म	२६
२ बालक	१६
३ मनुष्य	२५
४ बाहु	१२
५ अंगुलि	२२
६ इच्छा करना	१८
७ भोजन	२८
८ भाजन करना	१०
९ बल	२८
१० धन	२८
११ गो	९
१२ क्रुद्ध होना	१०
१३ क्रोध	११
१४ चलना	१२२
१५ शीघ्र	२६
१६ समीप	११
१७ युद्ध	४६
१८ पहुँचना	१०
१९ वध करना	३३
२० वज्र	१८
२१ प्रभु होना	४
२२ प्रभु	४

* * *

अध्याय ३

(गुण आदि)	नाम
१ बहुत	१२
२ लघु	११
३ बृहत्	२५
४ गृह	२२
५ सेवा करना	१०
६ आनंद	२०
७ रूप	१०
८ अच्छा	१०
९ बुद्धि	११
१० सत्य	६
११ देखना	८
१२ विस्मय-बोधक अव्यय	९
१३ उपमावाचक शब्द	१२
१४ पूजा करना	४०
१५ बुद्धिमान् मनुष्य	२४
१६ पूजक	१३
१७ यज्ञ	१५
१८ पुरोधस्	८
१९ याचना	१७
२० देना	१०
२१ नम्र स्तुति	४
२२ सोना	२
२३ कुआँ या तालाब	१४
२४ चोर	१४
२५ निश्चित या एकांत	६
२६ दूर	५
२७ पुराना	६
२८ नया	६
२९ अतिसमीप	२
३० थोड़ा	२
३१ अलभ्य, अप्राप्त	२
३२ आधा	२
३३ तारा	२
३४ चींटी	२
३५ अन्न की टोकरी	२
३६ छड़ी	२
३७ स्त्री	२
३८ इससे	२
३९ पुरुषेंद्रिय	२
४० सेवा करना	२
४१ डरना या काँपना	२
४२ द्यावापृथिवी	२

* * *

अध्याय ४

६२+८४+१३२ वैदिक शब्द, विशेषतः नानार्थ, जिनमें कुछ शब्द एक ही विषय के बोधक हैं।

* * *

अध्याय ५

३+१३+३६+३२+३६+३१ शब्द प्रायः देवतों के व्यक्तिगत नाम हैं।

* * *

संस्कृत-कोश का विशेष गुण यह है कि नाम प्रायः सार्थक होते हैं। दूसरी भाषाओं में पर्याय-शब्द बहुत कम होते हैं, और एक वस्तु का बोधक जो एक शब्द होता है, उसमें व्याकरण के अनुसार कुछ अर्थ नहीं होता। ये केवल वस्तु-बोधक शब्द होते हैं। जैसे Earth, sky, water। पर संस्कृत में पृथ्वी, जल, आकाश-जैसे साधारण शब्दों के भी कारण-युक्त व्याकरण के अनुसार विग्रह-वाक्य और अर्थ हैं। पृथ्वी का अर्थ विस्तृत, जल का अर्थ शीतल वस्तु और आकाश का अर्थ प्रकाश-पूर्ण विस्तार है। यदि हम लोग भिन्न पर्यायों पर विचार करें (और प्रायः सभी शब्दों के थोड़े या बहुत पर्याय हैं भी), तो हम लोग वक्ता के विशेष भाव, जो इन द्रव्य या क्रिया आदि के विषय में उनके मन में उपस्थित थे, समझ सकेंगे। ये अर्थ सदा एक नहीं होते। वैदिक लोगों के जो विचार पृथ्वी, जल और आकाश के विषय में थे, सब संस्कृत या मध्य-युग के लोगों को प्रस्तुत न हुए, और जो विचार वैदिककालीन लोगों के मन में न उत्पन्न हुए, वे बाद के लोगों को प्रस्तुत हुए। इस विचार से वैदिक शब्दों का संक्षिप्त अध्ययन इस लेख का मुख्य विषय है।

विस्तार—गौः, ग्मा, गातुः, * पृथ्वी, मही, उर्वी ;

* निरुक्त के लेखक गौः का अर्थ 'दूरं गता भवति' लिखते हैं। इस अर्थ से लोग समझ सकते हैं कि वैदिककालीन लोगों

वास—क्षमा, क्षिति ; स्थिति—अदिति, निर्ऋति ; भोजनदान–पूषा ; लेप–रिपः । पृथ्वी के विषय में वैदिक-कालीन मुख्य विचार ये सब हैं ।

गो, गा-शब्द का अर्थ या तो गा के ऐसा विस्तार है, या पशु का पालन । भू और भूमि का अर्थ स्वतः स्थित है । सोना आकर्षक है (हेम, अय, हिरण्य) ; चमकीला है (चंद्र, रुक्म, कनक) ; लाल है (लोह[2]) ; अविनाशी (अमृत); पतला तार खींचने लायक़ है (पेश[3], कृशन); रंग में नूतन है (कांचन और संभवतः हिरण्य भी); शोभायुत है (भर्म, जातरूप) ; लूट और मृत्यु का कारण है (मरुत्) ; और देय वस्तु है (दत्त) ।

आकाश व्यापी है आच्छादन करता है (अंबर, वियत्, व्योम, बर्हिष्) ; बहुत विस्तृत है (धन्व, पुष्कर, पृथिवी, अध्वर, अध्वा) ; चमकता और शून्य में देखा जाता है (आकाश, अंतरिक्ष) ; तरल है (अप्, समुद्र, सागर) ; स्वयंभू है (भू, स्वयंभू) । अध्वर[5] और अध्वा का अर्थ संभवतः अनश्वर भी है ।

सूर्य की किरणें खिन्न करनेवाली हैं (खेदि) ; अविच्छिन्न और दूरगामी हैं, रज्जु-सी हैं (अभीशु, रश्मि); ऊपर उठाती और धारण करती हैं (दीधिति, गभस्ति[6]) ; आकाश को आच्छादित करती हैं (उस्र वसु) ; तारों को ठेलती हैं (मयूख[7]) ; मृगतृष्णा-दर्शक हैं (मरीचिप) ; पक्षयुत हैं (सुपर्ण) ; और मनुष्य इनमें गरमाते हैं (साध्य[8]) ।

दिशाएँ व्यापी और दूर हटनेवाली हैं (आता, आशा, व्योम) ; ये चट्टान हैं, और देखने में लकड़ी की बनी मालूम पड़ती हैं (उपरा, काष्ठा) ; और ये सोखने वाली और प्रति वस्तु को लेनेवाली हैं (ककुभ[1], हरित्) ।

किंतु पृथिवी के बाद रात ऋषियों को प्रिय विषय है। ऋषि लोग इसे काली, शोषक, नाशक, स्निग्ध और तरंगयुक्त कहते हैं (श्यावी, तमस्वती, आमिक्नी, क्षपा, शर्वरी, अक्तुः, नक्ता, ऊर्म्या) ; यह तरल, और तुषार-युत है (पयः, पयस्वती, मोकी, ऊधः, घृताची, हिमा) ; यह सब वस्तुओं को रँगती है (रजनी) यह दिन का यमज है (याम्या, यम्या) ; यह विश्राम देनेवाली है, इसमें मनुष्य सब काम छोड़ विश्राम करता है (राम्या, नम्या) ; यह उग्र है (दोषा) ; गृह और महानस की गरमी और इंधन का प्रकाश भी रात्रि से संबद्ध है, इसलिये इसे शोकी कहते हैं ; यह सब वस्तुओं को आच्छादित करती है (वस्वी[3]) ।

वैदिक ऋषि लोग रात्रि और दिन के मध्यकालीन सुंदर दृश्य उषा का स्वागत करते और सुंदर ऋचाओं से इसकी स्तुति करते हैं । यह तुषार-युत है (ओदती) ; लाल है (अरुषी) ; (प्रकाश-युक्त है) (विभावरी[4], द्योतना, श्वेत्या, अर्जुनी, भास्वती) ; पक्षियों के सुंदर संगीत से युक्त होती है (सूनरी, सूनृता सूनृतावती सूनृतावरी, सुम्नावरी) । उषा के आगमन के साथ सब प्रकार की भोजन की सामग्री सुखी ऋषियों के सम्मुख उपस्थित होती है ; क्योंकि यथार्थ स्वर्ण-युग में वे दुर्भिक्ष को जानते ही न थे ; और इसलिये वे इसके चित्रा, मघा, वाजिनी और वाजिनीवती कहते हैं। उषा शाश्वत और सतत नूतन है (अहना[5]) ।

उषा की अपेक्षा दिन नीरस है । वह अपने का विस्तार करता है (स्वसर) ; आकाश को आच्छादित करता है

को पृथ्वी की दैनिक गति और सूर्य के चारों तरफ़ वार्षिक गति मालूम थी । पर यह संदिग्ध है कि स्कंदस्वामी ने दूरंगता का अर्थ 'दूर पर भी प्राप्य' लिखा है ।

१. हरि—चलना, प्रभाव डालना; हृ—मन हरना ।

२. लोहित और रोहित से संबद्ध है ।

३. रूप, आकृति ।

४. भृ—धारण करना ।

५. ध्व—नष्ट करना ।

६. ग्रह्—पकड़ना ।

७. मि—फेंकना ।

८. साध्—सेवा करना ।

१. कुंभ और कुंभक से संबद्ध है ।

२. उन्द्—भिगोना जैसे उदक ।

३. वस् आच्छादने—ढकने के अर्थ में (वसु, वासर)

४. संस्कृत-साहित्य में रात्रि-वाचक विभावरी-शब्द में प्रकाश और उष्णता की कल्पना है । वेद में विभावरी-शब्द उषा के लिये प्रयुक्त होता है, रात्रि के लिये नहीं ।

५. अहल्या (न हन्यते—जो न मारी जाय—अहल्या) रूपकात्मक उषादेवी, सूर्यदेव (इंद्र) की प्रिया ।

(दासर, वस्तोः); प्रकाशवान् और उष्ण है (दिव्, भानु, दिन, घ्रंस, धर्म)।

वैदिक आलोचक के लिये मेघ भी एक अद्भुत दृश्य है; पर संस्कृत-साहित्य के सुखी प्रेमी को जैसा हृदयंगम और अभागे विरही को जैसा दुःखदायी है, वैसा वैदिकों को नहीं। वैदिक ऋषियों को इसका रूप पैशाचिक, अवगुंठनकारी, राक्षसीय और प्रस्तरमय पर्वत-सा मालूम पड़ता है (अद्रि, ग्रावा, गोत्र, अश्न, अश्मा, पर्वत, गिरि, उपर, उपल, अभ्र); और इसका बल बृहत्काय दैत्य का-सा है—यह अनश्वर, उच्च, और सर्वाच्छादक है (असुर, अहि, रौहिण, शंबर, वृत्र, बलिशान, वराह, बलाहक); यह एक जल का थैला, एक बोरा, एक कोश, धनी, फलदायक, आर्द्रकारी और गमनशील है (दृति, कोश, पूलिगा, रैवत, ओदन, मेघ, वृषंधि); यह जल को खाता या सोखता है (चमस, पुरुभोजा)। संक्षेपतः वृष्टि देने के मृदु रूप में यह मेघ है, और भीषण रूप में वृत्र और असुर। अंतिम शब्द का अर्थ वज्र, विद्युत् और झंझावात है, जो प्रत्येक वस्तु को अपने मार्ग से हटाता है। कभी-कभी यह कृपण, बर्बर समझा जाता है, जो अपने जल-रूपी धन को सभ्य ऋषियों के लिये शीघ्र नहीं देना चाहता।

पांडेय रामावतार शर्मा

बंबई की सैर

तत्तद्यन्त्रसहस्रसूतसुमहाशब्दैर्भृताभ्यन्तरा
यातायातमुपाचरद्भिरधिकं लोकैर्निरुद्धा सदा ;
दिव्यद्रव्यसहस्रभासितमहारथ्योभयप्रान्तरा
सेयं सर्वपुरीनरेशसुषमा मुंबापुरी राजते ।
मार्गे मोटरघोरघोषचकितः पान्थः परावृत्य चे-
त्किञ्चित्पश्यति तावतैव शकटी शब्दायते सम्मुखे ;
संभ्राम्यद्धृदयः प्रयाति स हि चेत्पार्श्वे जना निर्दया-
स्तं रुन्धन्ति निरन्तरं पथिक हे त्वं सावधानो भव ।

विषय-प्रवेश

भूतल पर स्वर्ग की उपमा को प्राप्त करनेवाली 'बंबई' वास्तव में 'मोहमयी' है। म्यूज़ियम, विक्टोरिया-गार्डन, पेडर-रोड एवं बालकेश्वर और कोलाबा के धनिक व्यक्तियों के बँगले वास्तव में बड़े मनोमोहक हैं। कहीं भी जाइए, आप हर जगह नवीनता का अनुभव करेंगे। रविवार की शाम को 'चौपाटी' पर निकल जाइए, आपको वहाँ काफ़ी मनोरंजक सामग्री मिलेगी। कहीं बाज़ीगर तमाशा कर रहा है; कहीं नीम हकीम दवा-फ़रोश अद्भुत बाजीकरण की दवाइयाँ शौक़ीनों के गले मढ़ने के लिये गला फाड़कर चिल्ला रहा है; कहीं उस्तादजी हारमोनियम पर उँगलियाँ नचाकर सप्तम स्वर में अलापते हुए गान-विद्या का श्राद्ध कर रहे हैं; और कहीं ताशवाले अपने खेल को विशेष मनोरंजक बनाने के लिये बीच-बीच में कह उठते हैं—"ऐ छोकरा लोगो, बैठ जाओ; जो नहीं बैठेगा, उसका एक बाप रोज़ मर जायगा!"। फिर कहीं देखिए, तो खोंचेवालों की कोसों तक क़तार लगी हुई है। प्रत्यक्ष देख पड़ता है कि यहाँ अर्थ-लोलुपता ने मनुष्यत्व के विशिष्ट धर्म को ढक लिया है! जहाँ कहीं देखिए, एक ही बेंच पर बैठकर मुसलमान, पारसी, भंगी, हिंदू आदि पूरी, कचौरी उड़ा रहे हैं! ऐसे राष्ट्रीय भोज का दृश्य यहाँ सदैव देखा जाता है!

पुरातन बंबई

आजकल की बंबई पहले एक छोटा-सा टापू थी। उसी के चारों तरफ़ छोटे-छोटे छः उपद्वीप थे। कालांतर में उन्हीं सातों द्वीपों को परस्पर मिलाकर बंबई बनाई गई है। पहले उक्त द्वीप कोंकण-नरेश के अधिकार में थे; उसके बाद मुसलमानों के हाथ में आए। उसी समय से ये टापू गुजरात के सुलतान के प्रभुत्व में आए। अंत में पाश्चात्य वणिकों ने मुसलमानों से छीनकर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

अँगरेज़ों के प्रभुत्व में

सन् १६६२ ई० में इँगलैंड के राजा दूसरे चार्ल्स को यह द्वीप-समूह, दहेज़ में, मिला। तब से आज तक यहाँ

---

१. उन्द्—आर्द्र करना।
२. मिह्—सींचना, मूत्र करना।
३. अस्—फेंकना, चमकना आदि।

अँगरेज़ों की हुकूमत चली आ रही है। उस समय इस द्वीप की जन-संख्या केवल दस हज़ार थी; पर आमदनी कुछ भी नहीं। इसलिये, इँगलैंडेश्वर ने यह द्वीप १६६८ में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' को सौ रुपए सालाना भाड़े पर दे दिया। समय भी क्या ही विचित्र है! आज बंबई में सौ रुपए सालाना भाड़ा देने पर एक छोटी-सी कोठरी भी नहीं मिलती! इतना ही क्यों, सौ रुपए गज़ तो ज़मीन का एक टुकड़ा भी नहीं मिलता!

उस समय अँगरेज़ लोग भारतवर्ष में व्यापार करते थे। उनका मुख्य केंद्र सूरत था। परंतु बंबई के मिल जाने पर स्वतंत्रता-प्रिय अँगरेज़ों ने पराधीन रहना उचित न समझ, सन् १६८७ में, अपनी कोठी सूरत से उठाकर यहाँ स्थापित की। धीरे-धीरे इस द्वीप की उन्नति भी होती गई, और आज यहाँ जन-संख्या की असीम बाढ़ से एक दूसरी नई बंबई बसाने का आयोजन हो रहा है! सन् १९१० में एक भविष्यद्वक्ता ने अपनी भविष्य-वाणी स्थानीय पत्रों में छपाकर कहा था कि सन् २०१० में, अर्थात् पूरे सौ वर्ष में, बंबई 'पैरिस' हो जायगी, और यहाँ नाम-मात्र को भी हिंदू नहीं रहेंगे। ठीक ही तो है, जो जाति अर्थ-पिशाच बनकर अपने भाई का गला कटते देख सकती है, भिन्न-भिन्न संप्रदायों में विभक्त होकर भिन्न-भिन्न संप्रदायों से द्वेष बढ़ा रही है, दिन-दिन अकर्मण्य, हतोत्साह, कर्तव्यज्ञान-शून्य और स्वार्थपरायण बन रही है, वह जाति अवश्य ही रसातल चली जायगी, इसमें संदेह नहीं। ठीक है—

"निज पूर्वजों के सद्‌गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं।"

वर्तमान बंबई

आधुनिक बंबई का विस्तार कोलाबा से माहिम तक, लगभग बारह मील है और चौड़ाई में साढ़े तीन मील है। यद्यपि कोलाबा से माहिम तक बंबई का विस्तार है, तथापि लोग बंबई से परेल तक ही इस नगर का विस्तार मानते हैं। कोलाबा से मरिनलाइन्स—धोबीतलाव तक के भाग की गणना 'कोट' में और अवशिष्ट भाग की गणना 'बाहर कोट' में होती है।

बंबई की जन-संख्या

इस नगर की जन-संख्या का यथार्थ अनुमान करना बड़ा कठिन है। इस नगर में रात-दिन मनुष्यों की 'बाढ़' आया ही करती है। फिर भी इसकी जन-संख्या बीस-पचीस लाख से कम कभी कूती नहीं जा सकती। यहाँ के निवासियों में मुख्य पारसी, भाटिया, खोजा*, मेमण, दक्षिणी, बनिया और लुहाणा मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त बंबई में सभी जातियों के मनुष्य थोड़ी बहुत संख्या में अवश्य मिलेंगे।

बंबई का जल-वायु

समुद्र-तट पर स्थित होने से यहाँ की आब-हवा न बहुत गरम है, न बहुत सर्द। जाड़े में न ज़्यादा ठंडक पड़ती है, और न गरमी में "छाँहौ चाहत छाँह" की दशा होती है। कहने का मतलब यह कि जल-वायु की दृष्टि से यह शहर अनिष्टकर है। मुसलमान, पारसी तथा अन्य जाति के लोग, जो भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं रखते, यहाँ के जल-वायु में बड़े सुखी रहते हैं। देहाती मनुष्यों के लिये यहाँ का जल-वायु अनुकूल नहीं है। इसके कई मुख्य कारण हैं। जैसे—बँधे हुए तलाव का जल, दूषित घी, अपवित्र दूध, घनी बस्ती, स्वच्छ वायु, प्रकाश और अन्यान्य पौष्टिक पदार्थों का अभाव।

बंबई का जल-प्रबंध

बंबई में जल की सप्लाई करने के लिये चार बड़े-बड़े तालाब हैं, जिनमें से तीन तो बंबई के पास ही हैं—'बिहार', 'तुलसी' और 'पवाई'। चौथा तालाब बंबई से साठ मील दूर कोकण-प्रांत में है, जिसका नाम 'तानसा' है। इन तालाबों से नल के द्वारा जल लाकर नगर में घर-घर पहुँचाया जाता है। शहर के प्रायः सब कुएँ सरकार ने रोग-वृद्धि के बहाने बंद करा दिए हैं। अँधेरे के बहाने सब लालटेनें तुड़वाकर बिजली की बत्तियों की व्यवस्था कर दी है! आज यदि बंबई की प्रजा चूँ भी करे, तो हमारी दयामयी सरकार जल-कल और बिजली बंद कर सर्वांगसुंदर नगर को अंधकारमयी मरु-भूमि बना सकती है। जब कभी विद्युत् का प्रवाह बंद हो जाता है, तब नगर की दशा देखते ही बनती है!

---

* खोजा—एक नौ-मुसलिम जाति है। आज से चालीस-पचास वर्ष पहले इस जाति के लोग मुसलमान बना लिए गए थे। परंतु अभी तक इनके नाम हिंदुओं के-से रखे जाते हैं। यथा—नानजी, दयाल, झवेर, जयराज, प्रधान, खीमजी, शिवजी, विश्राम इत्यादि।

चारों ओर भीषण अंधकार का प्रगाढ़ आधिपत्य छा जाता है।

जहाँ अँगरेज़ी बस्ती है, वहाँ नल का जल दिन-रात आता ही रहता है। परंतु जहाँ हिंदुस्तानी रहते हैं, वहाँ सुबह-शाम ही आता है। यहाँ के हाईकोर्ट के कुएँ का जल

सहृदय पाठक, आइए, आपको हम इस मोहमयी नगरी का असली रूप दिखावें। इसके लिये आपको अव्वल दर्जे की पार्लर-कार से उतरकर और रॉल्स रॉइस मोटर में बैठकर किसी बढ़िया बँगले में नहीं जाना पड़ेगा; बल्कि एक साधारण मनुष्य की तरह हमारे साथ घूमना होगा।
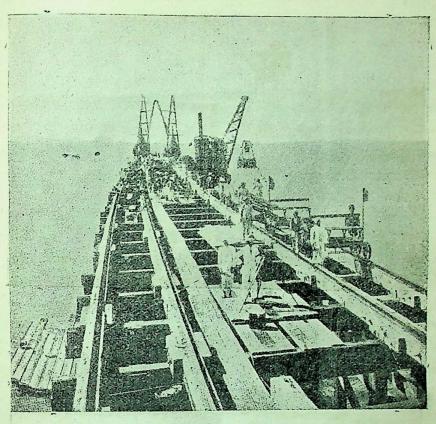
कुछ दूर तक समुद्र के अंदर गई हुई रेलवे-लाइन

उत्तम माना जाता है। धार्मिक धनिक हिंदू प्रायः इसी कुएँ का जल अपनी मोटरों में भरकर ले जाया करते हैं।

बंबई का जीवन

बंबई में स्वर्ग और नरक, दोनों प्रत्यक्ष मौजूद हैं। स्वर्ग तो यत्र-तत्र है, पर नरक सर्वत्र। फ़ी सदी नब्बे मनुष्य दुःख, दारिद्र्य एवं नाना रोगों से पीड़ित हैं। आश्चर्य तो यह है कि जहाँ आदमियों को रहने के लिये यथेष्ट स्थान और जल नहीं मिलता, उस बंबई-शहर की जन-संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही है। बंबई के संकट-मय एवं दुःखमय जीवन को जानते हुए भी बहुसंख्यक लोग प्रतिदिन यहाँ जीविका के लिये आया ही करते हैं। तभी तो बंबई का 'मोहमयी' नाम सार्थक होता है।

यह देखिए, कालबादेवी-रोड बहुत बड़ा गुलज़ार बाज़ार है। इसी रोड पर एक चतुष्कोण मकान है। मकान के मालिक हैं एक मारवाड़ी गृहस्थ सज्जन। मकान का किराया अधिक होने के कारण एक-एक कमरे में तीन-तीन गृहस्थ सकुटुंब निर्वाह करते हैं। आवश्यकतानुसार परदे या विभाजक दीवारें (Partitions) लगाकर अपना-अपना काम चलाते हैं। उनमें से दो गृहदेवियाँ (!) नित्य मकान के मालिक की स्त्री के पास, ऊपर की मंज़िल में, जाया करती हैं। मकान के मालिक नवयुवक हैं। युवतियों के आने से उनको किसी प्रकार का घाटा नहीं है!
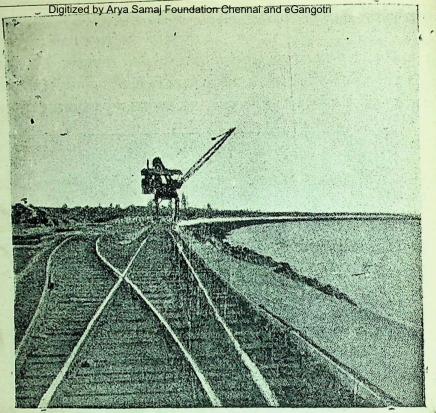
भारी बोझ उठानेवाला यंत्र जहाज़ पर माल लाद रहा है
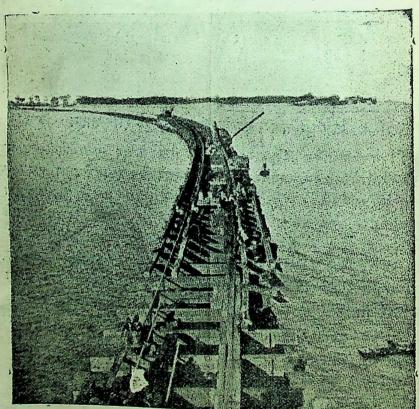
चौपाटी की ओर से नज़र आनेवाली समुद्र-तट की दीवार, और बोझ लादनेवाले यंत्र तक गई हुई
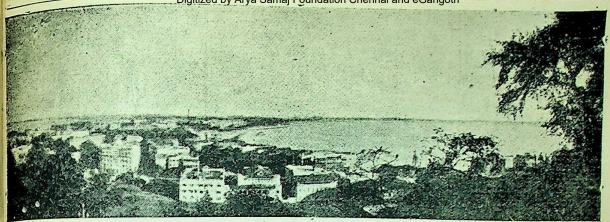
किंचित् अर्द्धचंद्राकार समुद्र-तट, जिसके एक पार्श्व भाग में बस्ती बसी हुई है
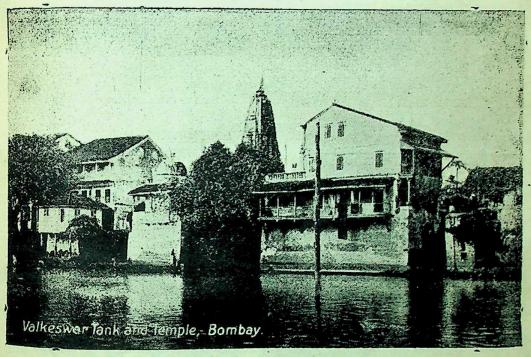
वालकेश्वर-तालाब और मंदिर

वालकेश्वर-रोड

इस रास्ते के दोनों तरफ़ धन-कुबेरों के बँगले हैं। इनमें से एक बँगले में हम आपको लिए चलते हैं। मकान के मालिक हैं एक भाटिया-गृहस्थ। व्यापार खूब ज़ोरों पर चलता है। लाखों की आय है। अवस्था अनुमानतः पचास वर्ष के ऊपर है। खूब मोटा शरीर, तोंद बेडौल, शरीर शिथिल! तीसरी शादी की सुंदरी, युवती और विलासिनी बीवी है। भद्दैया मेढ़क उसे ज़रा भी नहीं सुहाता! वह बच्चों की मा बनी ही रहती है।

पेडर-रोड

यह भी धनिकों का मुहल्ला है। यहाँ एक बाल-विधवा सेठानी का बँगला है। मा-बाप और समाज के अत्याचार से आठ वर्ष की अवस्था में ही बेचारी विधवा हुई थी। घर में कोई न था। एकाएक पचीस वर्ष की अवस्था में विधवा सेठानी की मृत्यु हो गई। मकान किसी दूसरे गृहस्थ ने ख़रीद लिया। मकान झाड़ा-बुहारा जाने लगा। जिस कोठरी में विधवा सेठानी पूजा किया करती थी, जिसमें और किसी का भी प्रवेश
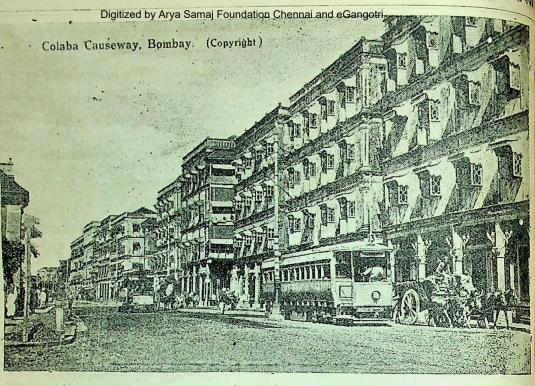
कोलाबा-रोड
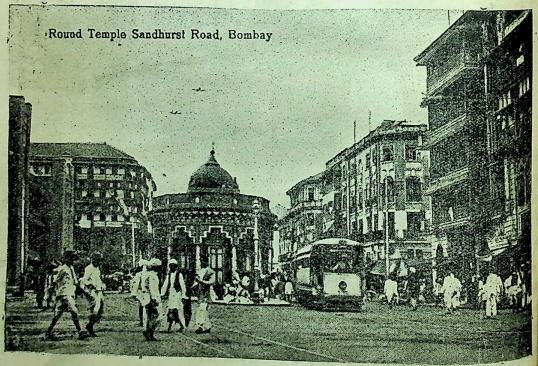
राउंड टेंपुल (गोल मंदिर)—सैंड्हर्स्ट-रोड

नहीं हो पाता था, उसी में से, सुना जाता है, कई बच्चों के अस्थि-पंजर निकले !

एक वकील स्त्री-पुत्र-विहीन हैं। उन्होंने अपने घर रसोई बनाने को, या उसी बहाने, एक युवती रख ली

मिसेज़ "अ" विधवा हैं। गर्भाधान होने पर तीर्थाटन करने चली गईं। फिर पाक-साफ़ होकर माला जपने लगीं!

श्रीयुत "क" एक विद्वान् हैं। जीविका-वश अकेले ही यहाँ रहते हैं। आपने अभी, हाल में ही, दूसरा विवाह किया है। अवस्था ५० वर्ष के ऊपर है। लेकिन जनाब, हर साल आप पुत्र-जन्म की बधाइयाँ पाते रहते हैं!

श्रीयुत "बी" एक ख़ुशामदी महापुरुष हैं। देखने में तो बड़े ही अच्छे हैं। अभाग्य-वश पुरुषार्थ-विहीन हैं। पत्नी मनमौजी है; पर पति को पता ही नहीं। ख़ुदा ख़ैर करे!

सहृदय पाठक, हम आपको कहाँ तक सुनावें? आप स्वयं विचार करें। हमारे देश में आजकल जो वेश्याओं की संख्या बढ़ रही है, वह ऐसी ही घटनाओं का भयंकर परिणाम है! इन वेश्याओं के जीवन-वृत्तांत के साथ-साथ लाखों हिंदू विधवाओं के गरम-गरम आँसुओं का इतिहास सम्मिलित है! इनमें से कोई बाल-विधवा है, कोई पति-वंचित है, कोई अत्याचार-पीड़ित है, कोई अनाथ और असहाय है, और कोई क्रूर समाज के कठोरतर दंड से दंडित है! भगवन्, यह दृश्य भला हम किन आँखों से देखें?

आइए पाठक, ज़रा इधर तो आइए। यह देखिए— फ़नसबाड़ी, गोलपीठा, सफ़ेद गली, फ़रास-रोड और गिरगाँव आदि मुहल्ले वेश्याओं के अड्डे हैं! उफ़, बड़ा ही बीभत्स दृश्य है! एक-एक कोठरी में दस-दस वेश्याएँ। उसी में उनका चूल्हा सुलग रहा है, और उसी में पलँग भी बिछा हुआ है! छोटी-छोटी लड़कियाँ ज़बरदस्ती आस्तीन पकड़कर लोगों को कोठरी के अंदर खींच ले जाती हैं! कैसी दयनीय दशा है! कितना करुणा-जनक दृश्य है! कैसी मर्मघातिनी कथा है! प्रिय पाठकगण, अब यह रोमांचकारी दृश्य देखने की हममें सामर्थ्य नहीं है। आप भी यहाँ से हट चलिए—

किस भाँति देखोगे यहाँ दर्शक, दृगों को मीच लो,
यह दृश्य है क्या देखने का दृष्टि अपनी खींच लो।

हाय! क्या यह वही 'मोहमयी' बंबई है, जिसका चित्र हम पाठकों के समक्ष चित्रित करना चाहते हैं! हाँ, यह वही बंबई है। इसके यथार्थ दर्शन मोटर में

ताजमहल-होटल
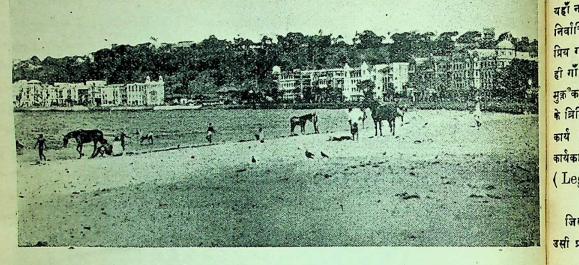
चौपाटी का समुद्र की ओर का दृश्य
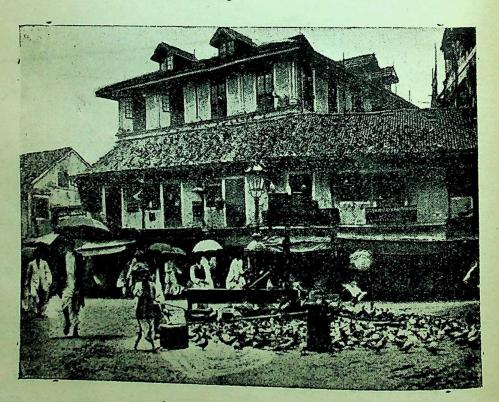
भूलेश्वर-स्ट्रीट का दृश्य

बैठकर हवा खाने से नहीं होते; मसनदों के सहारे पड़े रहने से भी नहीं होते। फिर होते कैसे हैं ? केवल हार्दिक सहानुभूति से।

बंबई की व्यवस्था

बंबई इँगलैंडेश्वर की सत्ता के अधीन है, परंतु उनके यहाँ न रहने के कारण उनकी तरफ़ से एक प्रतिनिधि निर्वाचित होता है। आजकल यहाँ के मनोनीत और लोकप्रिय गवर्नर सर लेस्ली विल्सन हैं, जिन्होंने यहाँ आते ही गाँधीजी को जेल से और बोरसद को कर-भार से मुक्त कर दिया है। बंबई के गवर्नर की सत्ता बंबई-इलाक़े के ब्रिटिश-प्रांतीय तमाम शहरों पर विराजमान है। इनके कार्य में सहायता पहुँचाने के लिये दो कौंसिलें हैं— कार्यकारिणी (Executive), और व्यवस्थापिका (Legislative)-सभा।

बंबई के महाशय

जिस प्रकार बंबई सारे भारतवर्ष में अद्वितीय है, उसी प्रकार यहाँ के 'महाशय' लोग भी बड़े प्रतिष्ठित और सभ्य हैं। धर्म का भी यह केंद्र गिना जाता है। यहाँ का 'बड़ा मंदिर' सुविख्यात है। इसके आचार्य पूज्यपाद गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी महाराज हैं, जो समस्त सद्गुण-विभूषित और धार्मिक जगत् में विशेष प्रसिद्ध हो चुके हैं। शुद्धाद्वैतभूषण, वेदांतभूषण, महामहोपदेशक, साहित्याचार्य, विद्या-वारिधि पंडित रमानाथ शास्त्री इन्हीं गोस्वामीजी के आश्रित हैं। इसके अतिरिक्त सेठ नरोत्तम-मुरारजी, प्रागजी-सूरजी, मूलजी-हारिदास, पुरुषोत्तमदास-ठाकुरदास, बिट्ठलदास-दामोदरदास आदि सज्जन प्रसिद्ध धनाढ्य व्यक्ति हैं। वैद्यों में त्र्यंबकलाल-जटाशंकर, पोपटलाल-प्रभुराम, भावनगरवाला, जादवजी और पं० हरिप्रपन्नजी आदि मुख्य हैं। प्रेसों में निर्णयसागर-प्रेस, श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस और कुलकर्णी-प्रेस मुख्य हैं। हिंदी-पत्रों में केवल एक साप्ताहिक 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार' ही है। हिंदी के प्रचार-क्षेत्र में "हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय" और "गाँधी-हिंदी-पुस्तक-भांडार", दोनों प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।
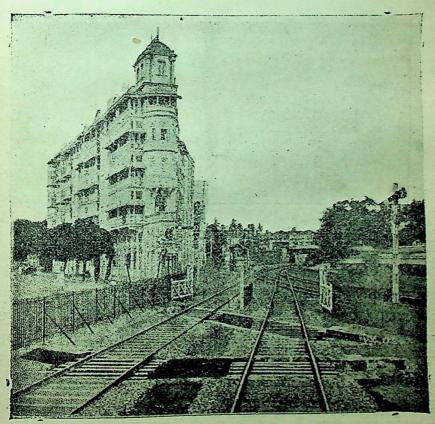
चौपाटी-रेलवे-जंकशन

म्यूज़ियम (अजायबघर)
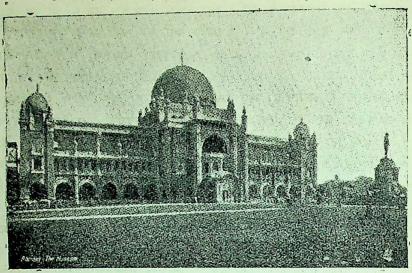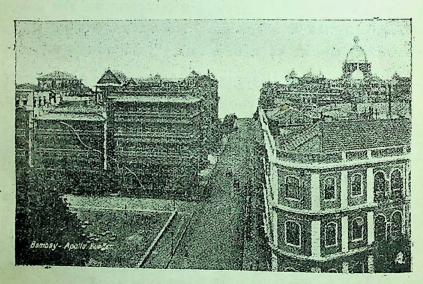
एपोलो-बंदर-स्ट्रीट

बंबई के दर्शनीय स्थान

बंबई की नई सड़कें और नई-नई भड़कीली इमारतें तो दर्शनीय हैं ही, उनके अलावा चौपाटी, एपोलो-बंदर, वालकेश्वर, मलावार-हिल, विक्टोरिया-गार्डन, हैंगिंग-गार्डन तथा महालक्ष्मी आदि स्थान भी परम आनंद-धाम हैं। बाबुलनाथ, वालकेश्वर, महालक्ष्मी, मुंबादेवी, भूलेश्वर, वैष्णव-संप्रदाय के कुछ मंदिर, माधव-बाग़ और नर-नारायण की मंजुल मूर्ति, हिंदुओं के लिये विशेष रूप से, दर्शनीय पदार्थ हैं।

गामदेवी, पेडर-रोड, कोलाबा-रिक्लेमेशन, वालकेश्वर-रोड, नेपियंसी-रोड, वार्डन रोड, एपोलो-पायर, चौपाटी, सी-फ्रेस, कफ़-परेड इत्यादि शांति-पूर्ण स्थानों में बंबई के श्रीमान् महानुभाव रहते हैं। क्वीन्स रोड, सैंडहर्स्ट रोड, भूलेश्वर, कालबादेवी, नलबाज़ार, पायधुनी, मांडवी, गिरगाँव, क्राफ़र्ड-मार्केट, हॉर्नबी-रोड आदि स्थलों पर मोटर, ट्राम, गाड़ी आदि की भरमार रहती है—सदैव मेला-सा लगा रहता है। बेचारे ग़रीबों की जान पर तो पद-पद पर संकट है।

म्युनिसिपल-ऑफ़िस, और बोरीबंदर-स्टेशन

जेनरल पोस्ट-ऑफ़िस
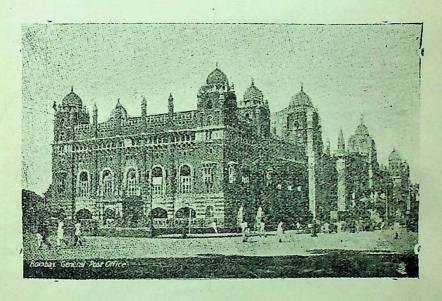
कोलाबा का नया और पुराना दीपक-स्तंभ (Light House), माच-क्लब, ताजमहल-होटल, म्यूज़ियम, राजाबाई-टावर, हाईकोर्ट, टाउनहाल, जनरल पोस्ट-ऑफ़िस, टेलीग्राफ़-ऑफ़िस, म्युनिसिपल-ऑफ़िस, क्रफ़र्ड-मार्केट, विक्टोरिया-टर्मिनस (स्टेशन), बोरीबंदर (स्टेशन), टकसाल, आर्ट-स्कूल, अस्पताल, मेडिकल-कॉलेज, अंध-शाला और जगह-जगह खड़ी की गई महापुरुषों की भव्य प्रतिमूर्तियाँ तथा विश्व-विख्यात व्यापारियों की सजीली दूकानें आदि स्थान ख़ास तौर से देखने के लायक़ हैं। कहने का मतलब यह कि भारतवर्ष के अन्यान्य प्रधान नगरों से बंबई की शोभा और महिमा निराली है।

व्रजनाथ-रमानाथ शास्त्री

समालोचक और ग्रंथकार

[चित्रकार—श्रीयुत मोहनलाल महत्तो "वियोगी"]

बिना पढ़े सर्वज्ञ, स्वयंभू आलोचक ताव खा रहे हैं ;
रचनाओं पर ग्रंथकार की कलम-कुल्हाड़ा चला रहे हैं ।

बूँद

देखकर दग्ध हृदय का दाह,
दिशाएँ कह उठती हैं 'आह',
आँख सारे आँसू रो चुकी ;
'आस' की 'इति' कब की हो चुकी !
और कब तक जी तरसेगा ?
बूँद वह घन कब बरसेगा ?
प्यास से कंठ रुद्ध हो गया,
कष्ट होता है हरदम नया ;
हृदय में तप्त श्वास है घिरी,
निराशा की नीरवता निरी—
भेद कब जलन मिटावेगी ?
बूँद सावन की आवेगी !
बूँद, यह पाई कहाँ मिठास,
नहीं जाती चातक की प्यास ;
भरे मुक्ताफल मानस-नीर,
देखकर होता नहीं अधीर ;
जभी घन नभ को घेरेगा,
पपीहा 'पी' कह टेरेगा।
कौन-सी बूँद उसे भा गई,
प्यास रहती है जो नित नई ?
जेठ की जलन, ज्वाल के जाल,
दोपहर की वह तृषा कराल—
पपीहा कैसे सहता है ?
'पिया' ही रटता रहता है !
घनों के घनघेरे में मूँद,
बनाई एक स्वाति की बूँद ;
लगाकर इतनी लंबी आस,
बनाई यह चातक की प्यास।
उसे जो यों तरसाना था,
न तो फिर नेह लगाना था !
कली अवलोक उषा का वेष,
गिराती है बूँदें अनिमेष ;
विकल किस अंतर्दुख ने किया ?
चटक जाता है कोमल हिया !
स्वप्न से उठकर रोती है ;
आँसुओं से मुँह धोती है !
रागमय था जब मुक्त मयंक,
सुमन हँसकर भरता था अंक ;
बूँद ! उस गोदी को छल गई,
क्रूर कर * में कैसे ढल गई !
उचित कुछ देर निभाना था ;
न यों चुपके से जाना था।

'कोई'

राष्ट्र-संघ और विश्व-राष्ट्र की कल्पना
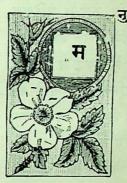
मनुष्य प्रगतिशील है। स्वस्थ मनुष्य और स्वतंत्र जातियाँ उन्नति और विकास की पराकाष्ठा तक ही पहुँचने की कोशिश करती हैं। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। धार्मिक प्रवृत्तियाँ चर्च या सार्वभौम चर्च के रूप में प्रकट हो रही हैं। हरएक धर्म का माननेवाला अपने धर्म को सार्वभौम धर्म कहता है। ईसाई-लोगों का रोमन कैथोलिक-संप्रदाय अपने नाम से ही अपने उद्देश्य को प्रकट कर रहा है।

इसका कारण यह है कि सब धर्मोंवाले परमात्मा की सर्वव्यापक, अप्रतिहत शक्ति में विश्वास रखते हैं। इस विश्वास के कारण वे समझते हैं कि एक शासक, एक नियंता के राष्ट्र में एक ही तरह का क़ानून चलना चाहिए ; राष्ट्र में रहनेवाले व्यक्ति एक ही धर्म के माननेवाले होने चाहिए।

मनुष्य-प्रकृति का विश्लेषण करनेवाले बताते हैं कि मनुष्य स्वभावतः राजनीतिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर पारस्परिक व्यवहार करता है। अरस्तू ने इस सचाई को कई सदी पहले इस प्रकार प्रकाशित किया था—

* किरण से तात्पर्य है।

"Man is by nature a political animal."

मनुष्य स्वभावतः एकता की ओर प्रवृत्त होता है। सामाजिक विकास के अनुशीलन से पता लगता है कि किस प्रकार, इसी प्रवृत्ति के कारण, आरंभिक परिवार नगर-राष्ट्र (City State) के रूप में परिणत होकर धीरे-धीरे देश-राष्ट्र बन गए। मनुष्य-समाज की इस सामान्य प्रवृत्ति को देखकर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या ये देश-राष्ट्र भी कभी विश्व-राष्ट्र के रूप में परिणत होंगे, या नहीं? देश-राष्ट्र तक विकसित होनेवाली प्रवृत्ति क्या विश्व-राष्ट्र के रूप में प्रकट न होगी? क्या मनुष्य-समाज अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों की तरह इन राजनीतिक प्रवृत्तियों को विश्व-राष्ट्र (Universal State) का रूप न देगा?

राजनीति-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् मि० ब्लंशली ने अपनी 'स्टेट' नाम की पुस्तक में यही आशंका इस प्रकार उपस्थित की है—

"× × × How then could the State be based upon the nation; without regard to a higher unity? and if mankind is in truth a whole, if it is animated by a common spirit, how can it avoid striving after the embodiment of its own proper essence i-e. seeking to become a State?"

अर्थात् देश-राष्ट्र विश्व-एकता के विचार को ओझल नहीं कर सकते। मनुष्य-समाज अपनी सामान्य प्रवृत्तियों के कारण "एकरूप", "समरूप" दिखाई देता है, अतः वह विश्व-राष्ट्र के रूप में प्रकट होकर ही रहेगा। तर्क और युक्तिवाद, दोनों हमें इसी ओर ले जाते हैं कि विश्व-राष्ट्र सामाजिक विकास की पूर्णता का अंतिम बिंदु है। यह कल्पना आजकल की ही नई कल्पना नहीं है। प्रत्येक देश में, भिन्न-भिन्न समयों में, इस कल्पना पर विचार करनेवाले दार्शनिक हो चुके हैं, और आज भी विद्यमान हैं। अमेरिका के भूतपूर्व प्रेसीडेंट विलसन * और भारत के कवि-सम्राट् रवींद्रनाथ विश्व-राष्ट्र की कल्पना के सजीव चित्र हैं। समय-समय पर महत्त्वाकांक्षियों ने इस कल्पना को कार्यरूप में परिणत करने का भी प्रयत्न किया है।

संसार का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भरा पड़ा है। इसी कल्पना के चमत्कार-पूर्ण प्रभाव से प्रेरित होकर सिकंदर ने मैसिडोनियन-साम्राज्य, रोमन-सम्राटों ने रोमन-साम्राज्य और प्रथम नेपोलियन ने फ्रेंच-साम्राज्य स्थापित कर विश्व-राष्ट्र की ओर पग बढ़ाया था।

सार्वभौम चर्च की कल्पना भी बहुत पुरानी है। शताब्दियों के अनवरत प्रयत्नों के बाद भी किसी धर्म के माननेवाले लोग अपने धर्म को सदा के लिये सार्वभौम धर्म नहीं बना सके। उसी प्रकार विश्व-राष्ट्र की कल्पना भी, महत्त्वाकांक्षियों के हज़ारों प्रयत्नों के होने पर भी, आज भी कोरी कल्पना-ही-कल्पना है। क्षणिक सफलताएँ तो कई ने प्राप्त कीं, परंतु चिरस्थायिनी, शांतिदायिनी सफलता किसी को नहीं मिल सकी।

भारत के कई सम्राटों ने इस विश्व-राष्ट्र की कल्पना को असलियत का जामा पहनाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया था। भारतीय राजनीतिक दार्शनिकों ने भी विश्व-राष्ट्र की मनोहर, आकर्षक कल्पनाओं से अनेक महत्त्वाकांक्षियों को उत्तेजित किया।

भारतीय राजनीतिक साहित्य के प्रसिद्ध ग्रंथ शुक्रनीति में इस विश्व-राष्ट्र की झलक दिखाई देती है। यथा—

* खेद है कि विलसन साहब का, कुछ दिन हुए, देहांत हो गया।—संपादक

"ततस्तु कोटिपर्यन्तः स्वराट् सम्राट् ततः परम् ;
दशकोटिमितो यावत् विराट् तु तदनन्तरम् ।
पञ्चाशत्कोटिपर्यन्तः सार्वभौमस्ततः परम् ;
सप्तद्वीपा च पृथिवी यस्य वश्या भवेत्सदा ।"
(शु० अ० १, १८७ श्लोक)

इसमें सामंत, मांडलिक आदि राजों का लक्षण देकर बताया है कि जिस राजा के राज्य की आय ५० करोड़ 'कष' हो, वह विराट् कहाता है। जो व्यक्ति इस सात द्वीपोंवाली सारी पृथ्वी पर निरंतर शासन करे, उसे सार्वभौम राजा कहना चाहिए।

इन श्लोकों के अनुसार विश्व-राष्ट्र के शासक को सार्वभौम सम्राट् का नाम दिया जाना चाहिए।

भारत के अपूर्ण, उपेक्षित इतिहास के अनुशीलन से पता लगता है कि भारत में विश्व-राष्ट्र की कल्पना को पर्याप्त मात्रा में कार्य-रूप में परिणत किया जा चुका था। भारतीय धार्मिक और राजनीतिक दंत-कथाएँ और रस्म-रवाज इसकी सचाई के सूचक हैं। संस्कृत-साहित्य में अश्वमेध-यज्ञ के वर्णन और महाभारत के ऐतिहासिक विश्व-विजय-वृत्तांत हमारी इस स्थापना के प्रबल पोषक हैं।

आश्चर्य की बात है कि किसी भी योरपियन विचारक ने इस ओर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा। ब्लंशली ने सिकंदर, प्रथम नेपोलियन और रोमन-सम्राटों के प्रयत्नों पर विचार करना आवश्यक समझा ; परंतु उक्त साम्राज्यों और सम्राटों को, बल और वैभव की दृष्टि से, नीचा दिखानेवाले चंद्रगुप्त मौर्य, सम्राट् अशोक और सम्राट् समुद्रगुप्त के विषय में एक शब्द लिखना भी आवश्यक नहीं समझा। आशा है, आगे आनेवाले खोजी विचारक भारतीय इतिहास का मंथन कर विश्व-राष्ट्र की कल्पना को सरल और क्रियात्मक बनाने के लिये अनुभूत उपायों का पता लगावेंगे।

इस विवेचन का सार यही है कि विश्व-राष्ट्र की कल्पना सार्वदेशिक और स्वाभाविक है। प्रथम नेपोलियन के अधःपात तक कोई भी योरपियन विजेता इस कार्य में सफल नहीं हो सका।

इस समय हम पाठकों के सामने विश्व-राष्ट्र की कल्पना को कार्य-रूप में परिणत करने का दम भरनेवाले, नवनिर्मित वर्तमान राष्ट्र-संघ (League of Nations) के संबंध में कुछ विचार उपस्थित करेंगे।

प्रकृति-विज्ञान की असाधारण उन्नति के कारण मनुष्य-समाज दिन-दिन समृद्ध हो रहा है। समुद्र और आकाश की दूरी अब अलंघनीय नहीं रही। बड़े-बड़े जहाज़ों, हवाई जहाज़ों और बेतार के तार ने—शासन की दृष्टि से न सही, कम-से-कम पारस्परिक व्यवहार की दृष्टि से ही—मनुष्य-मात्र को एक राष्ट्र बना दिया है। अंतर-जातीय व्यापार ने मनुष्य-समाज के हृदयों और दृष्टिकोणों को बदलकर अधिक विस्तृत बना दिया है। मनुष्य-प्रेम (Humanity) का भाव बढ़ रहा है। प्रत्येक देश दुःखित रूस और पीड़ित जापान की सहायता करना अपना कर्तव्य समझता है। इन परिवर्तनों को देखकर हमारे हृदय से यही उद्गार निकलता है कि अब पुराना सुखस्वप्न सिद्ध हुआ ; मनुष्य-समाज, प्राकृतिक और जातीय बाधाएँ नाँघकर, शांति के धाम—स्वर्गीय विश्व-राष्ट्र—के द्वार पर खड़ा है। श्रमियों और अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों के अंतर-जातीय संगठन, जातीय सरकारों की आज्ञाओं की उपेक्षा कर, भिन्न-भिन्न देशों को कई तरह से इसके लिये बाधित कर रहे हैं कि वे मनुष्य-

समाज के लिये हितकर नियमों को स्वीकार करें। इन घटनाओं को देखकर हरएक आशावादी का हृदय आनंद की उमंगों से भरपूर हो जाता है।

परंतु इसकी असलियत को जानने के लिये १९वीं तथा २०वीं सदी की ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार करना होगा। प्रस्तुत राष्ट्र-संघ का उद्देश्य संसार में शांति स्थापित करना कहा जाता है। इस संघ की विशेषता यह है कि इसके सब सभ्य जर्मनी के विजेता हैं। पराजित शत्रु इस संघ का सभ्य नहीं है। अमेरिका-जैसा शक्तिशाली राष्ट्र भी, अपनी ही इच्छा से, इसका सभ्य नहीं है। इतना ही नहीं, संघ के सदस्य पारस्परिक ईर्ष्या और अविश्वास के कारण इस राष्ट्र-संघ को राष्ट्र-संघ कहने की अपेक्षा ऐंग्लो-सैक्सन जातियों का गुट कहते हैं। इटली के प्रधान अमात्य वीर मुसोलिनी अपनी यह स्पष्ट घोषणा करने के कारण योरपियन राजनीति के केंद्र बन रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि विजय के मद से मस्त राष्ट्र-संघ मनुष्य-समाज की जगती हुई व्यापक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधि नहीं हो सकता। प्रथम नेपोलियन के अधःपात के अनंतर, और इस प्रस्तुत राष्ट्र-संघ से पूर्व भी, १९वीं सदी में, कई महत्त्वाकांक्षियों ने विश्व-राष्ट्र की कल्पना को कार्य-रूप में परिणत करने का यत्न किया था।

१८१५ ई० की विएना-कांग्रेस के साथ-साथ विजयी राष्ट्रों ने रूस के ज़ार अलेकज़ेंडर प्रथम के नेतृत्व में 'होली एलायंस' (पवित्र संगठन) का निर्माण किया था। संगठन में निश्चय किया गया था कि ईसाई-धर्म के सिद्धांतों के अनुसार ही राजों को परस्पर प्रेम-पूर्वक रहना चाहिए, प्रजाओं को पुत्रवत् समझना चाहिए। यह संगठन भी शांति न स्थापित कर सका। स्वेच्छाचारी राजों ने राजतंत्र-वाद की रक्षा के काम में इसका प्रयोग किया। जहाँ कहीं प्रजा राजा के विरुद्ध, स्वाधिकार-रक्षा के लिये, आंदोलन करती थी, वहीं स्वेच्छाचारी राजों के हिमायती मैटर्निच आदि कूट-नीतिज्ञ संगठन के ज़ोर पर उसका दमन करते थे। प्रजावर्ग में इस संगठन के प्रति असंतोष बराबर बढ़ता गया। देशों में पारस्परिक ईर्ष्या भी बढ़ती गई। क्रीमिया तथा फ़्रांस और प्रशिया के युद्धों ने संसार के सामने इस होली एलायंस की असारता तथा थोथापन प्रकाशित कर दिया।

१९वीं सदी के आख़री हिस्से में सब शक्तियाँ, एक दूसरे का मुक़ाबला करने के लिये, अपने-अपने सैनिक ख़र्च बढ़ा रही थीं। रूस भी इसी कोशिश में था। परंतु राजकोष में धन की कमी के कारण वह अन्य देशों के मुक़ाबले में, पुराने ढंग के अस्त्र-शस्त्र और जहाज़ आदि युद्ध-सामग्री की जगह, नई युद्ध-सामग्री का परिपूर्ण उपयोग न कर सकता था। इसलिये रूस के ज़ार निकोलस द्वितीय ने यही उपाय उचित समझा कि अन्य देशों को अपना सैनिक ख़र्च कम करने के लिये प्रेरित किया जाय। इसी उद्देश्य से, सन् १८९८ ई० के मई-मास में, हेग-नामक स्थान पर, भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई। आए हुए प्रतिनिधियों ने अनिवार्य अथवा बाध्यतामूलक सैनिक शिक्षा का नियम हटाने तथा सैनिक ख़र्च कम करने के बारे में अपने-अपने विचार प्रकट किए। उन प्रतिनिधियों में केवल जर्मन प्रतिनिधि ने ही अनिवार्य सैनिक शिक्षा और सैनिक ख़र्च की वृद्धि का समर्थन किया था।

मतभेद होने पर भी, सभा में युद्ध का ख़र्च कम करने के लिये प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। साथ ही अन्य राष्ट्रीय झगड़ों का निपटारा करने के लिये एक स्थायी न्यायालय (Permanent Court of Arbitration) की स्थापना की गई। प्रत्येक देश इस स्थायी अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के लिये अपने यहाँ के योग्य व्यक्तियों को जज बनाकर भेजता है। प्रत्येक देश चार व्यक्तियों से अधिक व्यक्तियों को जज बनाकर नहीं भेज सकता। ये जज छः साल के लिये नियुक्त होते हैं। चाहे जो देश इस कोर्ट से अपने पारस्परिक झगड़ों का फ़ैसला करा सकता है। राष्ट्रों को इस प्रकार इस कोर्ट की स्थापना करके, इस अंतरजातीय न्यायालय के द्वारा, मिलकर परस्पर शांति स्थापित करने के लिये प्रेरित किया गया।

इन सब यत्नों के होते हुए भी योरपियन देशों का सैनिक ख़र्च, सन् १८९८ से १९०६ तक, २५,००,००,००० पौंड से बढ़कर ३२,००,००,००० पौंड हो गया। अशांति और स्पर्धा की लहर बढ़ती गई। रूस के ज़ार निकोलस द्वितीय ने सन् १९०७ में द्वितीय हेग-कानफ़्रेंस को निमंत्रित किया।

इस कानफ़्रेंस में ४७ स्वतंत्र राष्ट्रों में से ४४ राष्ट्रों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। अमेरिका के प्रतिनिधियों की संख्या १९ थी। यह कानफ़्रेंस केवल योरप की कानफ़्रेंस न थी। यह अंतरजातीय कानफ़्रेंस थी। इसमें नान-योरपियन राष्ट्रों का बहुपक्ष था।

इस सभा में सन् १८९९ की हेग-कानफ़्रेंस के स्वीकृत प्रस्तावों का समर्थन किया गया। इस कानफ़्रेंस की यह भी एक विशेषता थी कि एकत्र हुए प्रतिनिधियों ने अंतरजातीय क़ानून (International Law) का निर्माण किया; परस्पर होनेवाले युद्धों के संबंध में नियम बनाए गए। कोई राष्ट्र युद्ध में ज़हरीली गैसों का प्रयोग न करे, यह भी एक नियम बना। इस प्रकार सन् १८९९ से लेकर १९०७ ई० तक योरप में शांति रही। परंतु यह शांति सशस्त्र शांति थी। यद्यपि इस अवसर में रूस और जापान के युद्ध के सिवा अन्य कोई भयंकर युद्ध नहीं हुआ, तथापि यह हाल था कि सब राष्ट्र प्रकट रूप से तो एक दूसरे को सहभोजों में निमंत्रित करते थे, किंतु गुप्त रूप से अपने-अपने शस्त्रागार में शस्त्र-संचय करते हुए युद्ध की भारी तैयारी भी करते जाते थे। इँगलैंड के सम्राट् सप्तम एडवर्ड पीसमेकर (शांति-स्थापक) का नाम कमा ले गए। परंतु उनकी मृत्यु के बाद कृत्रिम शांति की राख के नीचे सुलगती हुई युद्धाग्नि बालकन-युद्धों (१९१२-१९१३ के) तथा जर्मन-महासमर (१९१४ के) की प्रचंड प्रलयाग्नि के रूप में धधक उठी। संसार युद्ध की भयंकर ज्वालाओं की भट्ठी में जलने लगा। हेग-कानफ़्रेंस की किसी ने परवा न की। जर्मनी तथा मित्र-दल ने मौक़ा देखा। शत्रु को पराजित करने के लिये सब कुछ कर डाला। रूस के ज़ार का सुखस्वप्न टूट गया। स्वर्ग से उतरता हुआ विश्व-राष्ट्र तिरोहित हो गया। प्रलय-कांड मच गया।

प्राचीन तथा मध्य-काल में महत्त्वाकांक्षी विजेता लोग जिस प्रयत्न में असफल हुए, आज के प्रजा-तंत्र राष्ट्र भी उस कल्पना को कार्य-रूप में परिणत न कर सके।

फिर प्रजा-सत्ता-वाद के उपासकों ने महासमर के बाद, युद्धों से उद्विग्न होकर, सदा के लिये

युद्धों की कथा को समाप्त करने के वास्ते, राष्ट्र-संघ की स्थापना की। पर वहाँ भी सब राष्ट्रों के हृदयों में पारस्परिक ईर्ष्या और स्वार्थ की अग्नि जल रही है। मध्य-योरप में आज युद्ध के बादल मँडला रहे हैं। आज भी ब्रिटिश सल्तनत के पहरेदार शस्त्रागारों को अधिक पूर्ण कर रहे हैं। जल में, स्थल में, आकाश में, सभी जगह, युद्धों के सामान तैयार किए जा रहे हैं। शांति स्थापित करने के लिये विश्व-राष्ट्र की कल्पना को कार्य-रूप में परिणत करने के वास्ते किए गए प्रयत्न किसी काम के नहीं सिद्ध हुए।

इस असफलता का क्या कारण है ? हमारी सम्मति में इसके अनेक कारणों में से मुख्य कारण राष्ट्रों की पारस्परिक ईर्ष्या, स्पर्द्धा तथा अविश्वास है। राजों और सम्राटों के दिलों में पहले से अविश्वास की आग थी। इसी से आज सब राष्ट्र और प्रजा इस आग का शिकार हो रही है। कोई भी समय हो, कैसा भी संगठन क्यों न हो, जब तक मनुष्य-समाज को एक सूत्र में ग्रथित करनेवाला अध्यात्म-वाद धन-वाद तथा व्यवसाय-वाद पर विजय नहीं पाता, तब तक विश्व-राष्ट्र की कल्पना कोरी कल्पना ही रहेगी। स्वार्थ के भावों को बढ़ानेवाले प्राकृतिक-वाद के साम्राज्य में विश्व-राष्ट्र का स्थापित होना कठिन ही नहीं, असंभव है। विजय-मद से मत्त हुए स्वार्थी राष्ट्रों के गुट—होली एलायंस, शांति-सभा, राष्ट्र-संघ आदि—किसी भी रूप में सफल नहीं हो सकते। इस प्रकार हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं कि विश्व-राष्ट्र की कल्पना कोरी कल्पना ही है, उसकी कोई असलियत नहीं।

भीमसेन

'मित्रम्' का सुनम्र समाधान

धुरी की गत पौष-मास की संख्या में हमने संस्कृत के पाक्षिक पत्र 'मित्रम्' के संबंध में अपनी सम्मति प्रकट की थी।

हमने संस्कृत-पत्रों की आवश्यकता और 'मित्रम्' की उन्नति की अभ्यर्थना के साथ संस्कृत-पत्रों की एकआध त्रुटि दिखाई थी, और 'मित्रम्' की अनुवाद-शैली से अपना मत-भेद भी प्रकट किया था। फाल्गुन के 'मित्रम्' में श्रीयुत अंबिकादत्त शर्मा ने 'सुनम्र समाधान'-शीर्षक देकर हमारे मत-भेद के प्रतिवाद में एक लेख लिखा है, और अनुरोध किया है कि कम-से-कम एक बार हम इस बात पर फिर विचार करें।

हम शर्माजी की सौहार्द-पूर्ण भाषा और विचार-पूर्ण तर्क-शैली का अभिनंदन करते हैं। हमें खेद है कि आपके लेख को ध्यान-पूर्वक पढ़ने पर भी हम अपना मत नहीं बदल सके। इसके अतिरिक्त आप ही की तरह हमें भी अपनी स्वतंत्र सम्मति रखने का अधिकार है। तथापि आपके सौम्य भाव और सज्जनता-पूर्ण व्यवहार के कारण हम आपके सामने अपनी सम्मति को फिर एक बार स्पष्ट कर देने को प्रस्तुत हैं।

संस्कृत-पत्रों की अकाल-मृत्यु के संबंध में हमने कहा था कि संस्कृतज्ञ संपादकों में संपादन-कला के अनुभव की न्यूनता भी इसका एक कारण है। शर्माजी ने इस पर पूछा है कि "संपादन-कला क्या चीज़ है ? अगर 'माधुरी' और 'सरस्वती' की तरह मनोहर चित्र और गूढ़ लेख प्रकाशित करना ही संपादन-कला है, तो वैसे लेख तथा चित्र बिना दाम दिए मिलते नहीं, और दाम दे सकनेवाले मदांध धनी कहते हैं कि संस्कृत-भाषा मर चुकी। अब रहे संस्कृतज्ञ महामहोपाध्याय, वे कहते हैं कि यह तो 'यज्ञ-भाषा' है, इसमें पत्र निकालना व्यर्थ है। विद्यार्थी और अध्यापक संस्कृत के पत्रों को पढ़ते ही नहीं, इसीलिये संस्कृत-पत्रों की अकाल-मृत्यु होती है।" इसके आगे शर्माजी ने लिखा है कि "शास्त्रि-महोदयप्रदर्शितकारणमपि तत्र विद्यते किन्तु न केवलं

तदेव"—अर्थात् शास्त्री महोदय का दिखाया हुआ कारण (संपादन-कला का अननुभव) भी संस्कृत-पत्रों की अकाल-मृत्यु का कारण है, किंतु केवल यही एक कारण नहीं है।

इस पर हमें कुछ कहना नहीं है। हमने यह कभी नहीं कहा कि यही एक कारण है। शर्माजी हमारे नोट को फिर से ध्यान-पूर्वक पढ़ने की कृपा करें। हम मनोहर चित्र और गूढ़ लेख प्रकाशित कर देने-मात्र में संपादन-कला की 'इतिश्री' भी नहीं समझते। फिर, यदि यह मान ही लें, तो भी मदांध धनिकों की जो शिकायत शर्माजी ने की है, वह इस प्रकरण में अनुपयुक्त है। मान लीजिए कि मनोहर चित्रों और गूढ़ लेखों का प्रकाशन ही संपादन-कला है। अब यदि धनी लोग आपको पैसा नहीं देते, और संस्कृत को मृत भाषा कहते हैं, तो उक्त सिद्धांत पर इसका क्या असर पड़ सकता है? आप यदि पैसा न मिलने के कारण अच्छे लेख और चित्र प्रकाशित नहीं कर सकते, तो क्या इसके लिये 'संपादन-कला' का लक्षण बदला जायगा? क्या संस्कृत-पत्रों के संपादक जो कुछ कर सकेंगे, उसी का नाम संपादन-कला रखना होगा? यदि वे असामयिक, अनुपयुक्त या अनावश्यक दो-चार बातें प्रकाशित करके ही अपने कर्तव्य की समाप्ति समझें, तो क्या उसी को संपादन-कला की चरम सीमा मानना होगा?

शर्माजी का कहना है कि महामहोपाध्याय लोग संस्कृत-पत्र-प्रकाशन को व्यर्थ बताते हैं, और संस्कृत के अध्यापक तथा छात्र संस्कृत के पत्रों को, प्रार्थना करने पर भी, नहीं पढ़ते, बल्कि इसे घोर पाप समझते हैं, इसी से पत्रों की असामयिक मृत्यु होती है।

हम आपके कथन की सत्यता तो स्वीकार करते हैं, परंतु इस प्रकार इन ग़रीबों का कोसा जाना उचित नहीं समझते। शर्माजी हमें क्षमा करें, हम ही पूछते हैं कि आजकल के संस्कृत-पत्रों को लोग क्यों पढ़ें? उनमें कौन सी ऐसी बात है, जो अन्य पत्रों में सुलभ नहीं होती? क्या उनके निष्प्रयोजन बाँचने से कोई धर्म होता है? यदि धर्म-बुद्धि से ही पत्र पढ़ना है, तो उतनी देर चुपचाप बैठकर गायत्री का जप करने से अधिक धर्म होगा। हमारी धारणा है कि प्रत्येक वस्तु का आदर और प्रचार उसकी उपयोगिता पर निर्भर है। यदि आप संस्कृत-पत्रों का प्रचार चाहते हैं, तो उन्हें उपयोगी बनाइए—किसी को कोसने की ज़रूरत नहीं है। जब लोग उन्हें अपने मतलब का समझेंगे, तो विना कहे ही दौड़-दौड़कर पढ़ने लगेंगे। जब तक यह नहीं होता, तब तक आप हज़ार प्रार्थनाएँ कीजिए, फल कुछ न होगा।

हम श्रीशर्माजी को विश्वास दिलाना चाहते हैं कि हमने माधुरी में जो कुछ लिखा था, उसका संबंध एक सिद्धांत से है, किसी व्यक्ति से नहीं। यदि शर्माजी ने हमारे भाव को विपरीत समझा हो, तो उसके लिये हमें हार्दिक दुःख है। हम अपने को न तो धुरंधर लेखक या सिद्ध संपादक समझते हैं, जो संपादन-कला पर कोई पुस्तक लिखकर आपके या 'मित्र'-संपादक के पास भेज दें, और न हम इतने अनात्मज्ञ ही हैं, जो आपकी आज्ञा के अनुसार विना किसी धनी की सहायता के कोई संस्कृत-पत्र निकालना शुरू कर दें।

हमने लिखा था कि सामयिक शब्दों का अनुवाद करते समय अर्थ की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए, और शब्द-सारूप्य की ओर उससे कम। केवल शब्द-सारूप्य के नाम पर अर्थ का अनर्थ कर डालना उचित नहीं है। इसी बात के उदाहरण में हमने 'मित्रम्' के एक अंक से कुछ शब्द भी उद्धृत किए थे। यथा—'मालवीयमहोदयानां जोरधारभाषणम्', 'महिलासु जोपः', 'शल्यकारस्य हारः' 'हर्षिर्वदाक्षिता' इत्यादि।

श्रीयुक्त अंबिकादत्तजी शर्मा ने हमारे उल्लिखित शब्दों को व्याकरण के अनुसार सिद्ध करने की चेष्टा की है, और शक्तिग्रह के संबंध में कहा है कि आजकल पुरानी रीति से शक्तिग्रह नहीं होता, बल्कि अध्यापक लोग विद्यार्थियों को हिंदी-शब्दों के द्वारा संस्कृत-शब्दों का अर्थ बता दिया करते हैं। आपका तात्पर्य यह मालूम होता है कि जब इसी तरह संस्कृत का अर्थ-ज्ञान होता है, तो अध्यापक लोग 'जोरधार' का अर्थ 'ज़ोरदार', 'जोप' का अर्थ 'जोश' और 'शल्यकार' का अर्थ 'सरकार' बता देंगे इत्यादि। आपका यह भी कहना है कि आजकल हिंदी में संस्कृत के शब्दों का विकृत रूप प्रयुक्त होता है, अतः यदि उस विकार को दूर करके संस्कृत में उसी का शुद्ध रूप प्रयुक्त किया जाय, तो क्या हर्ज है? हम शर्माजी की इन बातों पर यथाक्रम विचार करेंगे।

संस्कृत के व्याकरण का क्षेत्र इतना विस्तृत और

विशाल है कि उससे अनंत शब्दों की सृष्टि की जा सकती है । यहाँ एक संप्रदाय ही ऐसा है, जो सब शब्दों को यौगिक मानता है । इसकी राय में कम-से-कम वैदिक शब्दों को तो अवश्य यौगिक मानना चाहिए । यह महर्षि यास्क और उनके अनुयायियों का संप्रदाय है । यास्क ने निरुक्त में लिखा है—

"यथा कथञ्चन निर्ब्रूयात्, न त्वेव न निर्ब्रूयात् ।"

अर्थात् चाहे किसी प्रकार हो, प्रत्येक शब्द का निर्वचन अवश्य करो; विना निर्वचन किए किसी शब्द को मत छोड़ो ।

एक पुरानी दंत-कथा है कि "उणादि से प्रत्यय लाए डुलक, डियँ, डोलना—मा धातु से सिद्ध किया मुलक, मियाँ, मोलना ।" जब संस्कृत-व्याकरण में इतनी गुंजाइश है, तो उसके अनुसार किसी शब्द की व्युत्पत्ति दिखा देना कोई असाधारण बात नहीं है ।

अब रही उन शब्दों से अभीष्ट अर्थ के बोध की [illegible] । उसके लिये शर्माजी का कहना है कि आज पुराने ढंगों से शब्द की शक्ति का ज्ञान नहीं होता । हम इस अंश में आपसे सहमत नहीं हैं । यह ठीक है कि आज संस्कृत व्यावहारिक भाषा नहीं है, परंतु शब्द की शक्ति का ज्ञान केवल व्यवहार से ही होता हो, यह बात नहीं है । दार्शनिक ग्रंथों में शक्तिग्रह के निम्न-लिखित प्रकार माने गए हैं—

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान-
कोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ;
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति
सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ।"

कौन शब्द किस अर्थ का प्रतिपादन करने में समर्थ है, यह बात जानने के ये साधन हैं—व्याकरण, उपमान कोष, आप्त-वाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवृति और सिद्धपद-सान्निध्य ।

अध्यापक लोग जो छात्रों को हिंदी आदि के द्वारा संस्कृत-शब्दों का अर्थ-ज्ञान कराते हैं, वह 'आप्तवाक्य' के अंतर्गत है । जैसे घोड़ा सामने दिखाकर 'अयमश्वः' कहने से अश्व-शब्द का शक्तिग्रह होता है, वैसे ही अश्वः=घोड़ा, गजः=हाथी इत्यादि उपदेश से होता है । इसके लिये शक्तिग्रह का नया प्रकार ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता नहीं है ।

यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि व्याकरण, कोष आदि से शब्दों की उन्हीं शक्तियों का ज्ञान होता है, जो उनमें पहले से विद्यमान हों । व्याकरण या कोष के बल से उन पर नई शक्ति नहीं लादी जा सकती; क्योंकि व्याकरणादि को शक्ति के ज्ञान का साधन बताया है, उसे शक्ति के उत्पादन का साधन नहीं माना है । अब शर्माजी के 'जोषः' को देखिए । आप लिखते हैं 'जुष्—घञ्—जोषः' । संस्कृत में जुष्-धातु का अर्थ है प्रीति और सेवा (जुषी प्रीतिसेवनयोः) । हम पूछते हैं, क्या फ़ारसी के 'जोश'-शब्द का अर्थ भी प्रीति और सेवा है ? यदि नहीं, तो जोश का अनुवाद जोष कैसे हुआ ? क्या व्याकरण से सिद्ध हो सकने के कारण ही यह उस का पर्याय हो जायगा ? जो शक्ति जोष-शब्द में नहीं है, उसे व्याकरण कैसे लाद देगा ? 'पाद' और 'दस्त'-शब्द व्याकरण से सिद्ध होते हैं, और संस्कृत में प्रयुक्त भी हैं, परंतु क्या उर्दू में इन शब्दों का वही अर्थ होता है, जो संस्कृत में ? यदि कोई उर्दू के गंदे भावों को संस्कृत में भी इन शब्दों के मत्थे मढ़ना चाहे—और वह भी इस लिये कि ये शब्द व्याकरण से सिद्ध हो सकते हैं—तो उसे आप क्या कहेंगे ?

हमने इस प्रकार के अनुवाद को वाहियात कहा था । शर्माजी ने हमारे वाहियात-शब्द का संस्कृत-अनुवाद 'बहिर्यात' कर मारा है । क्या शर्माजी 'वाहियात'-शब्द का अर्थ समझते हैं ? आप हमसे पूछते हैं—"किं वक्तुं प्रभवन्ति कथमिमे बहिर्याताः—किं शास्त्रप्रतिकूलतया होस्वित्शास्त्रिणो मनसोऽरोचकतया वा (?) मुखमस्मीति वक्तव्यम् × × ×"

हमारी बात के समर्थन के लिये यही एक उदाहरण काफ़ी है । वाहियात-शब्द फ़ारसी के वाही का बहु-वचन है । इससे निंदा बोधित होती है । पागल इसका वाच्यार्थ है । संस्कृत का 'बहिर्यात'-शब्द समस्त है । 'बहिर्'=बाहर, 'यात'=गया हुआ । इस शब्द से कोई निंदा नहीं सूचित होती । देवदत्त बाहर गया, इसके लिये 'देवदत्तो बहिर्यातः' बोला जा सकता है ।

हम पूछना चाहते हैं कि देवदत्तो बहिर्यातः, इस वाक्य का क्या शर्माजी यह अर्थ करेंगे कि देवदत्त वाहियात (आदमी) है ? जो निंदा 'वाहियात'-शब्द से प्रकट होती है, वह क्या 'बहिर्यात' में भी है ? यदि नहीं, तो आपने वाहियात का अनुवाद बहिर्यात कैसे किया ? यह हम मानते हैं कि वाहियात और बहिर्यात में शब्द-सारूप्य है । परंतु केवल शब्द-सारूप्य के आधार

पर अर्थ का अनर्थ कर डालने को ही तो हम वाहियात कहते हैं ।

हमने लिखा था कि खुदाबख़्श का अनुवाद ईश्वरदत्त और कालीचरण का तर्जुमा स्याहक़दम करना ठीक नहीं है। पीलीभीत को पीतभित्ति लिखने से व्यवहार में अड़चन पड़ती है। इस पर शर्माजी का कहना है कि "खुदाबख़्श आदि शब्दों का संस्कृत-अनुवाद न किया जायगा, तो उनसे विभक्ति न आवेगी। फिर जब संस्कृत में बनारस को वाराणसी और पटना को पाटलिपुत्र लिखा ही जाता है, तो मेरे 'व्याकरणानुकूल' शब्दों से क्यों कलेजा काँपता है ?" इस पर हमारा निवेदन है कि अन्य भाषाओं के अनेक शब्द समय-समय पर संस्कृत में मिलाए गए हैं, और उनसे विभक्तियाँ भी बराबर आती रही हैं। उदाहरण के लिये इसराफ़, मुसरिफ़, इत्थ (त्त) साल, मुत्थ (त्त) सिल, इंथि (त्ति)-हा आदि देखिए। ज्योतिष के अति प्रसिद्ध ग्रंथ ताजक-नीलकंठी में इन सबका (संस्कृत-श्लोकों में) प्रयोग मौजूद है। अनुकृत शब्दों से विभक्ति आने का नियम व्याकरण में अत्यंत प्रसिद्ध है। अतः शर्माजी को इसकी चर्चा ही नहीं चलानी चाहिए थी। अब रही बनारस और वाराणसी की बात। शर्माजी का यह दृष्टांत विषम है। बनारस के लिये वाराणसी और पटने के लिये पाटलिपुत्र उस समय से प्रयुक्त होते आ रहे हैं, जब 'बनारस' और 'पटना'-शब्दों का जन्म भी नहीं हुआ था। वाराणसी के आधार पर बनारस की रचना हुई है, न कि बनारस के आधार पर वाराणसी बना है। आप कोई ऐसा दृष्टांत दीजिए, जिसमें हिंदी आदि किसी भाषा के सरूप संस्कृत-शब्द की रचना उसी तरह हुई हो, जैसे आपने मुज़फ़्फ़रपुर का 'मोदफलपुरम्' बनाया है। संस्कृत के शब्दों को हिंदी में लाने का जो नियम है, उसी के अनुसार हिंदी के शब्दों का संस्कृत में परिवर्तन होना संभव नहीं है। प्रत्येक भाषा के परिवर्तन-नियम भिन्न-भिन्न होते हैं। अतः विपरीत उदाहरण देना बुद्धिमानी नहीं है।

हमने लिखा था कि श्रद्धेय मालवीयजी हिंदू-विश्व-विद्यालय के तथा बाहर के पंडितों की सहायता से यदि आजकल के व्यावहारिक शब्दों का संस्कृत-कोष तैयार करावें, तो एक बड़े अभाव की पूर्ति हो [illegible] कल हरएक आदमी मनमाने रूपांतर बनाता है, जिनमें बहुत-से उपहसनीय भी होते हैं। इस पर शर्माजी ने बेचारे संस्कृत के पंडितों को जली-कटी सुनाई है। आप कहते हैं—'अर्थबद्ध' (पैसे के लोभी), 'दक्षिणा-कांक्षी' (दक्षिणा के इच्छुक), 'व्ययकुंठ' (कंजूस), 'मिथोमत्सरी' (एक दूसरे को देखकर जलनेवाले), 'व्यर्थ-शब्द-विवादप्रौढ़' (व्यर्थ शब्दों के विवाद में प्रगल्भ) पंडितों का इकट्ठा होना ही कठिन है इत्यादि। हम समझते हैं, श्रीशर्माजी पूज्य विद्वानों को गालियाँ बिना दिए भी अपनी बात अच्छी तरह कह सकते थे। यदि अंतिम आक्षेप (व्यर्थ-शब्द-विवादप्रौढ़) करते समय आप अपनी ओर भी ज़रा नज़र डाल लेते, तो अच्छा होता।

शर्माजी समझते हैं कि आज हिंदी में जितने शब्द बोले जाते हैं, वे सब संस्कृत के 'तद्भव'—संस्कृत-शब्दों के अपभ्रंश—रूप हैं। इन सब शब्दों का मूल-शब्द संस्कृत में अवश्य होगा, अतः प्रत्येक हिंदी-शब्द के अनुवाद में उसका मूल संस्कृत-शब्द बोलना चाहिए। यथा—"सर्वेषामेव भाषा (?) शब्दानां मौलिकं विशुद्धं संस्कृतरूपं नूनं भवेत्—तत्र संजात-विकारं परिशोध्य विशुद्धसंस्कृतशब्दप्रयोगकरणे का विप्रतिपत्तिः"।

इस पर हमारा निवेदन है कि हिंदी या भारत की अन्य प्रचलित भाषाओं में जितने शब्द व्यवहृत होते हैं, वे सब संस्कृत से ही साक्षात् संबंध रखते हैं, यह सिद्धांत भ्रांतिमूलक है। मलयालम्, तैलगू प्रभृति कई अनार्य-भाषाएँ भी भारत में प्रचलित हैं, जिनका संस्कृत से कोई संबंध नहीं माना जाता। फिर जिनका संस्कृत से साजात्य संबंध है, उन भाषाओं के भी सब शब्द सीधे संस्कृत से आए हुए नहीं हैं। हिंदी को ही लीजिए। इसमें फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी आदि अनेक भाषाओं के शब्द विद्यमान हैं। बूट, कमीज़, कुर्सी, मेज़, चश्मा, तोता आदि शब्दों को संस्कृत से सीधा आया हुआ या तद्भव बताना साहस-मात्र है। यदि यह मान भी लिया जाय कि आर्य-जातीय समस्त भाषाओं का आदिम स्रोत संस्कृत में ही है, तो भी संस्कृत का कौन-कौन शब्द किस-किस क्रम से किस-किस भाषा में घूमता हुआ हिंदी में पहुँचा है, और उस चक्र में पड़कर उसने

कौन-कौन-सा रूपांतर धारण किया है, इस बात की विवेचना के लिये भाषा-विज्ञान की गंभीर सहायता की आवश्यकता है। भाषा-शास्त्र एक शास्त्र है। उसके अनेक नियम हैं। किस-किस भाषा के कौन-कौन शब्द अन्य भाषाओं में किस-किस नियम के अनुसार कौन-कौन-से आभ्यंतर और बाह्य परिवर्तन धारण करते हैं, यह जानने के लिये बहुत कुछ छानबीन और गहरी विवेचना की आवश्यकता हुआ करती है। यों ही विना कुछ सोचे-विचारे, आँखें मूँदकर वाहियात का 'बहिर्यात', ज़ोरदार का 'जोरधार' और मुज़फ़्फ़रपुर का 'मोदफल-पुरम्' नहीं बना दिया जाता। हम शर्माजी से गत पौष की माधुरी में निकले अग्रलेख—'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान'—को एक बार ध्यान-पूर्वक पढ़ जाने की नम्र प्रार्थना करते हैं। इसमें लिखा है—"जो शब्द बहुधा बाह्य रूप में समान प्रतीत होते हैं, वे एक नहीं हैं। प्रत्युत वे दूसरे शब्द के साथ एक हो सकते हैं, जो कि बाह्य रूप में उनसे भिन्न हैं। बहुत दिन हुए, एक महानुभाव ने, जिन्होंने शायद 'भाषा-विज्ञान' का 'ककहरा' भी न पढ़ा होगा, भाषाओं का तुलनात्मक विचार करते हुए लिख मारा था कि अँगरेज़ी का ट्री (Tree) संस्कृत के तरु-शब्द से निकला है। ऊपरी तौर से यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है......परंतु भाषा-विज्ञान-शास्त्री इस प्रकार की शाब्दिक तुलना पर हँसे विना नहीं रह सकता......इस प्रकार हमने देख लिया कि विना आंतरिक रचना और भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों को दृष्टि में रक्खे शब्दों की परस्पर तुलना करना एक व्यर्थ प्रयास है। जो लोग भाषा-विज्ञान को न जानते हुए, केवल बाह्य रूप को देखकर दो भाषाओं के शब्दों का मेल मिलाने लगते हैं, वे केवल अपना समय नष्ट करते हैं। इसी विषय में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर की यह उक्ति प्रसिद्ध है—'Sound Etymology is never based on sound' अर्थात् वास्तविक शब्दों का निर्वचन, उनके मूल-रूप और सदृश शब्दों की खोज, शब्द के बाह्य सादृश्य पर कभी निर्भर नहीं रहती।"

हमारी प्रार्थना है कि शर्माजी इस उक्ति पर ठंडे दिल से विचार करें, और बतावें कि उन्होंने जोरधार, जोष, बदलिता, शल्यकार, बहिर्यात आदि शब्दों में बाह्य रूप के सादृश्य के अतिरिक्त और किन-किन बातों पर विचार किया है? हमारी तो अब भी यही राय है कि शब्दों मूलान्वेषण का काम भाषा-शास्त्रियों के लिये छोड़ दे चाहिए, और संस्कृत का प्रचार चाहनेवालों को सामयि शब्दों का अनुवाद उनके अर्थ पर दृष्टि रखकर करना चाहि यदि उनके समानार्थक शब्द मिल जायँ, तो बहुत अच्छ अन्यथा प्रधान अर्थ पर दृष्टि रखते हुए व्याकरण के धा प्रत्ययों के सहारे यथेष्ट नवीन शब्द बना लेने चाहिए परंतु अर्थ से एकदम विमुख होकर, केवल शब्द-साह के भरोसे, बाइसिकिल का अनुवाद 'वायुशकल' का हम निंदनीय समझते हैं। साथ ही जब हम देखते कि शुद्ध हिंदी के पत्र तो ज़ोरदार का पर्याय प्रभावशा लिखते हैं, परंतु एक संस्कृत-पत्र उसके लिये 'जोरध शब्द की व्यर्थ कल्पना करता है, तो हमें आश्चर्य विना नहीं रहता। सबसे बड़ा मज़ा तो यह है शर्माजी इन कल्पित अनावश्यक शब्दों को नवीन भी न मानना चाहते। आप उलटे हमसे पूछते हैं कि "न पदेन किं साध्यते"। आपका कहना है कि अन्य पर्या वाचक शब्दों के होने से यदि किसी शब्द का बहिष्क किया जायगा, तो 'वह्नि'-शब्द का ही प्रयोग हो अग्नि आदि का नहीं। गोया आपका 'जोरधार' उसी तरह काव्य, कोष आदि में प्रयुक्त है, जैसे और अग्नि-शब्द। अपने कल्पना-प्रसूत अप्रयुक्त श को आप न नवीन मानना चाहते हैं, न अप्रयुक्त! कहते हैं, जब व्याकरण के अनुसार इनकी सिद्धि तो ये व्याकरण में ही प्रयुक्त हो चुके। फिर अप्र कैसे? क्या सचमुच शर्माजी व्याकरण को ही प्र स्थल समझते हैं? क्या संस्कृत में कोई शब्द ऐसा जो व्याकरण से सिद्ध न होता हो? यदि नहीं, तब सभी शब्द प्रयुक्त हो गए। फिर 'अप्रयुक्तत्व'-दोष रहेगा? क्या रामः, रामौ, रामाः सिद्ध कर जाने का ही प्रयोग है? यदि शर्माजी का यही निश्चय है, तो आपसे यही कहेंगे कि आप 'अस्त्यप्रयुक्तः' इस वार्तिक 'सन्ति चाप्रयुक्ताश्चेति विप्रतिषिद्धम्' इस महाभाष्य समाधान-भाष्य देखने की कृपा करें। शर्माजी ने 'जोष' और 'जोरधार' को प्रयुक्त सिद्ध करने के लि भाष्य-वार्तिक भी लिख दिए हैं—'सन्ति वै प्रयुक्ताः' और 'सर्वे देशान्तरे'। हम यह तो नहीं कह कि शर्माजी इन वार्तिकों को समझ नहीं हैं, सं

शास्त्रार्थ का प्राचीन पंडिताऊ अड़ंगा लगाने के लिये ही आपने इनका उल्लेख कर दिया है। पहले तो शर्माजी का "चक्रे इत्यस्यार्थे चक्र" यह लिखना ही निर्मूल है। महाभाष्यकार ने जिन चार शब्दों (ऊष, तेर, चक्र, पेच) को अप्रयुक्त बताया है, वे सब लिट्-लकार, मध्यम-पुरुष के बहुवचन हैं। अतएव उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि 'चक्र इत्यस्यार्थे क यूयं कृतवन्तः'। अतः 'चक्रे' के अर्थ में 'चक्र' बताना भ्रांतिमूलक है। दूसरे 'चक्र'-शब्द संस्कृत की अतिप्रसिद्ध धातु 'कृ' की रूप-माला के अंतर्गत है। आपके 'जोरधार' की तरह दूसरी भाषा के शब्द-सारूप्य के आधार पर गढ़ा हुआ नहीं है। फिर यह अप्रयुक्त भी नहीं है। महाभाष्यकार ने स्वयं 'यत्रानश्चक्राजरसंतनूनाम्' इस श्रुति में इसका प्रयोग दिखाया है। क्या शर्माजी किसी वेद, पुराण, काव्य आदि में ज़ोरदार के अर्थ में अपने 'जोरधार' का प्रयोग दिखावेंगे?

महाभाष्यकार ने जहाँ सर्वे देशान्तरे की बात चलाई है, वहाँ भी उन्होंने संस्कृत की धातुओं के देशांतरीय प्रयोग का स्पष्ट उल्लेख किया है—

"शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाषितो भवति। विकारे एनमार्या भाषन्ते शव इति। हम्मतिः सुराष्ट्रेषु, रंहतिः प्राच्यमध्येषु, गमिमेव त्वार्याः प्रयुञ्जते" इत्यादि।

क्या शर्माजी किसी देश का नाम बतावेंगे, जहाँ आपके 'जोरधार' और 'बदलिता' आदि का प्रयोग आपके निर्दिष्ट अर्थों में होता हो? जब स्वयं महाभाष्यकार अपनी बात की पुष्टि में प्रयोग-स्थल दिखाना आवश्यक समझते हैं, तो शर्माजी की बात विना प्रमाण के कैसे मानी जा सकती है? आप किसी देश का नाम लीजिए, जहाँ हम आपके 'जोरधार' को पा सकें—केवल 'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाः' के पाठ से काम न चलेगा।

शर्माजी ने जिस परिश्रम से 'जोरधार' आदि शब्दों को व्याकरण से सिद्ध करने का यत्न किया है, उसकी हम सराहना करते हैं। परंतु इतना अवश्य कहेंगे कि शर्माजी ने हमारा तात्पर्य समझने में भूल की है। हमने 'ज़ोर'-शब्द की सिद्धि में व्याकरण की अड़चन बताई थी, और शर्माजी 'जोर'-शब्द सिद्ध करके अपने श्रम को कृतार्थ समझते हैं। 'ज़' अक्षर को, जो संस्कृत में है ही नहीं, शर्माजी सत्रह व्याकरणों का जोर लगाने पर भी कहाँ से लावेंगे? फिर 'जोरधार' एवं 'शल्यकार' आदि की कल्पना भी हमारी दृष्टि में थोथी और अपुष्कल है। यदि यों ही अनुवाद करना था, तो 'धार' के स्थान में 'दार' रखते। अर्थ यों करते 'जोरं' (शत्रूणां बलं) दारयतीति जोरदारम्। शल्यकार में जब आपको शल्य का अर्थ बाण ही करना है, तो शल्य के स्थान में 'शर' कहा होता। शरकार और सरकार में बहुत कम अंतर है। आपके 'अज्ञ बालक' इसे और भी जल्दी समझेंगे। यदि हमसे कोई पूछे, तो हम तो 'शरकार' के स्थान में 'सरकार' को ही पसंद करेंगे। "सरम्='अमनकानूनयोः प्रसरं करोतीति सरकारः'—सृ—पुंसि संज्ञायां घः—सरं करोति—कर्मण्यण्" शायद शर्माजी 'अमन-कानून' पर कुछ एतराज़ करें; परंतु ये तो ज़रूरत से ज़्यादह संस्कृत-शब्द हैं। सुनिए—

'अम् गत्यादिषु—ल्युट्—अमनम्=शांतिः। 'कं'=सुखम्। 'अनूनम्'=न न्यूनम्—पूर्णं येन तत् 'कानूनम्'—अमन-कानूनयोः सरं करोतीति सरकारः।

शर्माजी के और शब्द भी इसी तरह सिद्ध हो सकते हैं। परंतु हम इसे बच्चों का खेल समझकर यहीं छोड़ते हैं।

शर्माजी का कहना है—हिंदीवालों को डर है कि कहीं 'सरल संस्कृत' का प्रचार हो गया, तो फिर हिंदी डूब जायगी, इसीलिये वे उक्त प्रकार की संस्कृत का विरोध करते हैं।

हिंदी के हिमायतियों को अब सावधान हो जाना चाहिए। श्रीयुत अंबिकादत्तजी शर्मा ने 'सरल संस्कृत' के प्रचार द्वारा हिंदी को हिंदोस्तान से जलावतन करने का बीड़ा उठाया है। खुदाः खैरं करोतु।

शर्माजी को मालूम रहे कि 'खुदाः खैरम्' बिलकुल संस्कृत है। सुनिए—खुड् शब्दे—भ्वादिः—खवते कुराणम् इति खुत्—कर्तरि क्विप्। अततीति अः—अततेर्डः—आ=समन्तात् अः आः। खुच्चासौ आः खुदाः। जो कुराण यानी कुरान को शब्दायित करे, और सर्व-व्यापक हो, वह खुदा हुआ। और खैरम्? 'खम्' आकाशरूपम् अवकाशम्—अथवा लक्षणया तद्गुणं निश्चेष्टताम्, आ=समन्तात् ईरयति प्रेरयतीति खैरः शांतिः—तम्। अवकाश या निश्चेष्टता को जो उत्पन्न करे, वह खैर यानी शांति। इस 'खैर' में 'आङ्' नहीं, बल्कि 'आ' है। अतएव पररूप वृद्धि का बाधक नहीं होता। कुराण भी संस्कृत है। देखिए—

कुर शब्दे=कुरणं कः—भावे क्विप्। कुरम् ईश्वरीयशब्दं

आनयति जीवयति' इति कुराणम्—इलहामिकिताबम् इत्यर्थः। इलहामि और किताबम् भी व्याकरणानुकूल है। यथा—इलं हन्ति—इलहम्—हन्तेर्डः—इलहम् आमयतीति इलहामि सुप्यजातौ णिनिः। कितम् आवयतीति किताबम् कर्मण्यण्। मालूम भी संस्कृत है। माम् लुनातीति मालूः—मापूर्वकात् लुनातेः कर्तरि क्विप्। मालवं मिर्मीते मिनोति वेति मालूमम्।

अंत में शर्माजी से हमारा नम्र निवेदन है कि हमने कोई शंका नहीं की थी, जिसके लिये आपको 'सुनम्र-समाधानम्' लिखने की आवश्यकता होती। हमने केवल अपनी सम्मति प्रकट की थी। हमें भी आपकी तरह अपनी स्वतंत्र सम्मति रखने का अधिकार होना चाहिए। हम समझते हैं, हमने शर्माजी की आज्ञा के अनुसार अपनी सम्मति काफ़ी स्पष्ट कर दी है। इसे मानने या न मानने का जनता को अधिकार है। हम इस पर अब कुछ वाद-विवाद न बढ़ावेंगे। 'येनेष्टं तेन गम्यताम्' *।

शालग्राम शास्त्री

हजरत आज़ाद अंसारी की कविता

कवि और कविता

ही एक जीवन-शक्ति है, जिसकी क्रीड़ा और कौतुक सारा संसार है। वही एक 'शब्द' है, जो विश्व-काव्य के रूप में प्रकट हो रहा है। कवि की वाणी उसी शब्द की उपासना है। इसी उपासना के भाव को जगाना कविता का काम है। कविवर शेली ने कहा है—"Poetry preserves from decay the visitations of Divinity in man." अर्थात् कविता मनुष्य में दिव्य भाव की प्रगतियों को निर्बल पड़ने से बचाती है। संसार एक ऐसा काव्य, एक ऐसा गान है, जिसकी ध्वनियाँ कवि अपनी कल्पना में पहले सुनता है। परमात्मा अपने आनंद से विह्वल होता है, और उसका आनंद अनेक आकाशों के विस्तार अपनी आड़ में छिपाए हुए विश्व-काव्य के रूप में नृत्य करने लगता है। कवि इस आनंदमय दृश्य से विह्वल होकर अपना आनंद अपनी कविता के रूप में परमात्मा के चरणों में समर्पित करता है—I touch thy feet with the wings of my song." अर्थात् मैं अपने गान के पंखों से तेरे चरण छूता हूँ।

कवि का हृदय सृष्टि-लीला की रंगभूमि है, और कविता सृष्टि के रहस्य का उद्घाटन। नित्य का अनित्य से, मौन का वाणी से, निराकार का साकार से और चपलता या निरंतर गति का विश्राम से यहीं मिलन होता है। कवि जिन चीज़ों का वर्णन करता है, वे इस दुनिया की होती हैं, लेकिन इस दुनिया की मालूम नहीं होतीं। और, कुछ किसी दूसरी दुनिया की होने पर भी इसी दुनिया की मालूम होती हैं। वे ही आँखें, वही गाल और वे ही ओठ हैं, लेकिन उनके कटाक्ष, उनकी मस्ती, उनकी कोमलता किसी दूसरी दुनिया की याद दिलाती है। संसार का स्वर्ग की ओर खिंचना और स्वर्गमें लीन होते जाना, स्वर्ग का पृथ्वी की ओर उतरना और साकार होते जाना—इसी का वर्णन कविता है। कवि एट्स ने कहा है—"Poetry is the ritual of the marriage of heaven and earth." अर्थात् कविता पृथ्वी और स्वर्ग का विवाह-संस्कार है। यही महान् संस्कार, यही महायज्ञ, यही महोत्सव कविता है। राम तथा सीता के विवाह की तरह संयोग और वियोग के अनेक रहस्य इस संस्कार में छिपे हुए हैं। यह नित्य की आँख-मिचौनी (the eternal game of hide and seek), यही निगाहों का लड़ना और फिर परदा पड़ जाना, यह दामन का हाथों में आ-आकर छूट जाना, ये इस दुनिया की दूसरी दुनिया से कुछ देर के लिये—आह, केवल कुछ देर के लिये—इशारेबाज़ियाँ हो जाना—इसी का नाम कविता है। वह प्रगाढ़ आलिंगन, जहाँ वियोग असंभव है, वह अवस्था है, जिसका भार कविता नहीं उठा सकती, और जिसका वर्णन करते हुए कवि के ओठ काँपकर रह जाते हैं, वाणी पर मौन की मोहर लग जाती है।

विश्व-गान अनेक और अनंत रागिनियों के द्वारा व्यक्त होता है। यद्यपि उसकी एक-एक लय, एक-एक टुकड़ा ऐसा चित्ताकर्षक और मोह लेनेवाला है

---

* खेद है, यह लेख तीन महीने पहले आ जाने पर भी, स्थानाभाव के कारण, देर से प्रकाशित हो रहा है।—संपादक

आदि-कवि वाल्मीकि से लेकर अब तक जितने सच्चे कवि हुए हैं, उनमें से हरएक के बारे में यह धोका होता था कि विश्व-गान का रहस्य उसने पा लिया है, बस, उसी ने पाया है ; मानो उसकी कविता उस गान का अंतिम शब्द है ; मानो उसने क़लम तोड़ दिया और शायरी उस पर ख़तम हो गई ; किसी भी वास्तविक कवि की कविता पढ़ते हुए ऐसा ही प्रतीत हुआ है—प्रत्येक ऐसे कवि की कविता पढ़ते समय ऐसा ही मालूम हुआ है—तथापि सृष्टि-वैचित्र्य अपनी रक्षा स्वयं करता है, विश्व-गान को पुराना और कुछ ही रागों में समाप्त हो जाने से बचाता है। अगर दुनिया को एक सितार मान लें, तो हम कह सकते हैं कि इस पुराने सितार—इस बहुत पुराने सितार—में अनेक और अगणित राग और स्वर छिपे हुए हैं। उनमें से बहुतों को मनुष्य-जाति सुन चुकी है, और उन्हीं को उसने बहुत जाना है। लेकिन इन्हीं जर्जर तारों में कितने ही राग अभी ऐसे छिपे पड़े हैं, जिन्हें उसने स्वप्न में भी नहीं सुना।

हज़रत आज़ाद का संक्षिप्त परिचय

हज़रत आज़ाद का असल नाम अल्ताफ़ अहमद है, और पिता का नाम मुहम्मदहसन। जन्म-स्थान ख़ास नागपुर है। वहाँ आपके पिता ओवरसियर थे। आपका निवासस्थान शहर सहारनपूर है। पर आज-कल आप दिल्ली में रहते हैं। आपका जन्म सन् १८७० ईसवी में हुआ था। शेर कहना आपने सन् १८६० ई० से, जब आपकी अवस्था १६-२० साल की थी, शुरू किया। जब कुछ अभ्यास हो गया, तो आप प्रसिद्ध कवि मौलाना हाली की सेवा में उपस्थित हुए, और उनके शिष्य हो गए।

आज़ाद की कविता और उनकी काव्य-शैली

यद्यपि आज़ाद की कविता में मीर की सादगी, करुण-रस और भावुकता, ग़ालिब के दार्शनिक विचार, भाव-वैचित्र्य, सूक्ष्म कल्पना, गहरी और बारीक निगाह, फ़ारसी शब्दों की तीव्र झनकार, या आतश का बाँकपन और मस्ती उतनी नहीं पाई जाती, जितनी कि उक्त उस्तादों की कविता में, तथापि ये सब ख़ूबियाँ एक अच्छी हद तक इनके कलाम में मौजूद हैं। उच्च और पवित्र भावों से आज़ाद का कलाम भरा पड़ा है। उनकी विशेष शैली और उनका ख़ास रंग उनके कलाम में एक ख़ास तरह का लुत्फ़ पैदा कर देता है। वह विशेषता है एक ही मिसरे या एक ही शेर में शब्दों को दुहरा देना, जिसे 'तकरारे-अल्फ़ाज़' कहते हैं। उर्दू में आज़ाद के पहले मोमिन और दाग़ ने इस अलंकार का अच्छा प्रयोग किया है। मोमिन ने ऐसा करके शेर में बारीकी और एक नई बात पैदा कर दी है। दाग़ ने शोख़ी, छेड़ और चोचलेबाज़ी में बाज़ी मारी है। लेकिन आज़ाद ने शब्दों को दुहराकर एक कैफ़ियत अपने कलाम में पैदा कर दी है। उनके कलाम में दर्द है, और कैफ़ियत भी। जैसे उन्मत्तावस्था में आदमी अक्सर एक ही रट लगाता है, जैसे बेबसी में आदमी अपनी ही बात दुहराकर और अपनी ही आवाज़ सुनकर रह जाता है, जैसे आश्चर्य में आदमी एक ही बात कई बार कहता है, जैसे सरल और भाव-पूर्ण हृदय से एक ही बात, एक ही प्रार्थना वारंवार निकलती है, जैसे किसी वस्तु को तुच्छ प्रमाणित करने के लिये हम उसके तुच्छ होने की बात को महज़ दुहरा दिया करते हैं, वैसे ही हज़रत आज़ाद अपनी कविता में तकरारे-अल्फ़ाज़ से ये सब काम लेते हैं, और पाठक के हृदय पर उसका गहरा असर हुए विना नहीं रहता। शब्दों को दुहराना आज़ाद को इतना पसंद है कि मुशकिल से उनका कोई शेर ऐसा मिलेगा, जिसमें एक मिसरे का लफ़्ज़ दूसरे मिसरे में, या उसी मिसरे में, दुहरा न दिया गया हो।

उदाहरण-स्वरूप यहाँ आपके कुछ शेर लिखे जाते हैं—

करे किसी की मुहब्बत, मुझे शिकार करे ;
करे, करे निगहे-मौत से दो-चार करे।

न समझ मुझको रायगाँ, न समझ ;
न सही, तेरे काम का न सही।

जो साकिने-साहिल हैं, साहिल की ख़बर जानें ;
जो डूब रहा होगा, वह डूब रहा होगा।

ज़ाहिर है कि बेबस हूँ, साबित है कि बेकस हूँ ;
जो ज़ुल्म किया होगा, बर्दाश्त किया होगा।

नामे-ख़ुदा जिधर गए, दिल में उतर-उतर गए;
ख़ंजरे-आबदार हो, दिश्नए-ताबदार हो।

हाय, मुझसे मेरे अर्मान-भरे दिल के सुलूक ;
वह भी दिन होगा कि अर्मान न होगा कोई !

इन शेरों को देखिए, किस क़दर भाव में डूबे हुए हैं। कितने सच्चे, कितने स्पष्ट, कितने सरल, कितने कोमल,

कितने दर्द-भरे और कितने प्रभावशाली भाव हैं ! आज़ाद अगर मीर की बराबरी नहीं कर सकते, तो उन्होंने कम-से-कम मीर का दामन ज़रूर छू-छू दिया है। ऊपर के चौथे और पाँचवें शेर में तो मीर की आवाज़ में अपनी आवाज़ मिला दी है। पाँचवें, छठें और सातवें शेर में एक और खूबी है। हर शेर चार टुकड़ों में और हर मिसरा दो टुकड़ों में बटा हुआ है। दूसरे टुकड़े में पहले टुकड़े की लय दुहराई गई है। इस अलंकार को फ़ारसी में 'सनअते-तरसीअ' कहते हैं। इन शेरों में वाणी लहरें लेती हुई-सी मालूम होती है। अँगरेज़ी में भी इस अलंकार के उदाहरण मौजूद हैं। जैसे—
The splendour falls on castle walls."
(Tennyson)

अरबी, फ़ारसी और उर्दू की कविता के लिये यह बात गर्व की है कि संक्षेप में वे बहुत कुछ कह जाती हैं। एक-एक शेर एक-एक मिसरे में एक-एक दुनिया बंद कर देता है। जो लोग ग़ज़ल में यह ऐब लगाते हैं कि पहले शेर का दूसरे शेर से संबंध नहीं रहता, वे यह नहीं सोचते कि उर्दू का शायर एक शेर में जो कह जाता है, उसके लिये साधारणतः एक काव्य की ज़रूरत है। एक-एक शेर अनंत और अपार भाव अपनी ओट में लिए रहता है; और अच्छे शेर की कसौटी यही है कि बार-बार पढ़िए, पर जी न ऊबे, बल्कि उत्तरोत्तर अधिक आनंद आवे। उर्दू और फ़ारसी की शायरी के इतिहास में ऐसे तो बेशुमार शेर हैं, जिन्हें सुनकर सुननेवाले ने कलेजा थाम लिया और देर तक सिर धुना, लेकिन ऐसी भी घटनाएँ हुई हैं कि शेर सुनकर सुननेवाला अनंदातिरेक के कारण मर गया। ग़ालिब ने जब ज़ौक़ का नीचे लिखा हुआ शेर सुना, तो कई दिन तक उनकी अजीब हालत रही—

अब तो घबराके यह कहते हैं कि मर जाएँगे;
मर के भी चैन न पाया, तो किधर जाएँगे ?

मोमिन के एक शेर के बदले में ग़ालिब अपना सारा उर्दू और फ़ारसी कलाम उन्हें दे देने को तैयार थे। उनका कहना था कि काश मोमिन मुझे अपना यह शेर दे देते, और मेरा सारा कलाम ले लेते ! वह शेर यह है—

तुम मेरे पास होते हो गोया ;
जब कोई दूसरा नहीं होता।

तात्पर्य यह कि ग़ज़ल में अगर एक शेर गुलोबुलबुल पर होगा, तो दूसरा वियोग की न कटनेवाली रात्रि पर, तीसरा शमा और परवाने पर, और अन्य शेर जीवन की किसी और ऐसी ही समस्या या दृश्य पर। लेकिन आज़ाद के काव्य में बहुत-सी ग़ज़लें ऐसी मिलती हैं, जिनमें श्रृंखलाबद्ध शेर हैं। आप अक्सर पहले दो शेरों में एक मज़मून, दूसरे दो शेरों में दूसरा मज़मून, और इसी तरह दो-दो शेरों में एक-एक मज़मून छंदोबद्ध करते चले जाते हैं। देखिए—

किसी दिन खुला रूए-ज़ेबा दिखा ;
छुपाकर दिखाने से क्या फ़ायदा ?
उठा परदए-शर्मे-बेजा, उठा ;
हक़ीक़त छुपाने से क्या फ़ायदा ?
थम ऐ गर्दिशे-चश्मे-मख़मूर, थम ;
पयापय पिलाने से क्या फ़ायदा ?
थम ऐ बारिशे बादए नूर, थम ;
दमादम छकाने से क्या फ़ायदा ?

कहीं तो एक शेर में एक पूरा मज़मून कह डाला और वह भी दो-चार शब्दों को दुहराकर (शब्दों के दुहराने की शैली आज़ाद ने ऊपर उद्धृत शेरों में भी रक्खी है), और कहीं उसी एक मज़मून के लिये दो-दो शेर, बल्कि ग़ज़ल-की-ग़ज़ल कह डाली है। कवि की गति कोई लख नहीं सका। कहीं तो वामन भगवान् की तरह तीनों लोक तीन पग में नाप डाले, और कहीं बालक कृष्ण की तरह एक-एक गज़ ज़मीन घुटनों के बल चल-चलकर तय की। नीचे एक तेरह शेरों की ग़ज़ल से कुछ शेर लिखे जाते हैं, जिनमें एक ही मज़मून अर्थात् दिल की दशा बदल जाने या अपनी क़िस्मत के पलट जाने का मज़मून बाँधते चले गए हैं—

हमारे दिल को सर्फ़े-यासे-कामिल देखते जाओ
हमारे बख़्ते-बेहासिल का हासिल देखते जाओ
वो तालिब, जो कभी बहरे तलब सर ता-ब-पादिल था
उसे सौ बेदिलों का एक बेदिल देखते जाओ
वो नज़रें, जो किसी दिन तुमसे लड़कर दिल में नाज़ाँ थीं
अब उनको अपनी बदबख़्ती का क़ायल देखते जाओ
वह बदबख़्ते-मुहब्बत, जिसकी फ़ितरत ही मुहब्बत थी
अब उसको सब कुछ लेने के क़ाबिल देखते जाओ

यह सब सही, लेकिन आज़ाद ने कैफ़ियत, दर्द, जलन, मस्ती और मतवालापन, किसी को हाथ से जाने नहीं दिया। शेर-पर-शेर कहते जाते हैं, अपनी बात दुहराते-तिहराते चले जाते हैं, लेकिन कविता की टेक और शायरी की शान भी निबाहते जाते हैं। भाव बल-पर-बल खाते चले जाते हैं, लेकिन बिलकुल गिर नहीं पड़ते। उनकी बात कभी नीरस और बेमज़ा नहीं होती; बल्कि जैसे एक दरिया है, जो उमड़ता, लहरें लेता चला जा रहा है, कभी आँसू बनकर, कभी मस्त कर देनेवाली शराब की मौजों की तरह।

मिसरे से मिसरा पैदा कर लेना

यह भी हज़रत आज़ाद की विशेषताओं में से है कि आप मिसरे से मिसरा निकाल लेते हैं। ऊपर के शेर इसका नमूना हैं। पहले मिसरे में जो बात कही है, उसी बात को दूसरे मिसरे में उलट दिया है। अपनी क़िस्मत का उलट-फेर किस तरह से बयान कर गए हैं! इस तरह के कुछ और शेर ये हैं—

बहारे-चमन, इस तरफ़ भी गुज़र कर;
चमन-का-चमन पायमाले-ख़िज़ाँ है।
आपने दर्द सुन लिया होता;
दर्द की कुछ दवा नहीं, न सही।

गद्यमय शब्द-क्रम

उर्दू-शायरी के उस्तादों ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया है कि कविता में शब्दों का क्रम वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि बोलचाल या गद्य में होता है। शेर वह है, जिसका गद्य हो ही न सके, ऐसा मालूम हो कि बात करते-करते शेर बन गया है। एक शब्द को अपने स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर बिठाने की ज़रूरत न हो; बिलकुल स्वाभाविक शब्द-क्रम हो। आज़ाद ने इस 'गुर' को समझ लिया है। मुशकिल से ऐसे शेर उनके यहाँ पाए जायँगे, जिनमें शब्दों का स्थान बदलना पड़े, या बदला जा सके। और, अगर ऐसे शेर कहीं हैं भी, तो छंद के बंधन से ऐसा हो गया होगा। ऊपर के शेरों में यह बात आप देख लेंगे। लेकिन अगर किसी को यह संदेह हो कि शेर ही ऐसे चुने गए हैं, जिनकी भाषा या शब्द-क्रम ऐसा था, तो नीचे की ग़ज़ल देखिए—

ऐ काश, ख़बर होती तू दिल से भुला देगा;
ऐ काश समझ सकते, तू मिल के दग़ा देगा।
सच है कि तेरा सौदा हर ख़ब्त मिटा देगा;
हक़ है कि तेरा मिलना अल्लाह से मिला देगा।
यक दिन गिलए-ग़फ़लत सुनने को तरसिएगा;
यक दिन अलमे-फ़ुरक़त कुछ देके सुला देगा।
तुम जब किए जाओ, हम सब किए जाएँ;
अल्लाह तो मुंसिफ़ है, अल्लाह जज़ा देगा।

कितने सादे और दर्द-भरे भाव हैं, और कवि किस सादगी से उन्हें बयान कर गया है! मालूम होता है, बातचीत में इत्तफ़ाक़ से शेर बन गए हैं। तीसरे और चौथे शेर में तो मालूम होता है, कोई सामने बैठा हुआ है, जिससे बातें कर रहे हैं। आज़ाद ने फिर कवि-सम्राट् मीर की याद दिला दी है।

रवानी और सफ़ाई

यद्यपि फ़ारसी-शब्दों और समासों का काफ़ी (और कहीं-कहीं काफ़ी से ज़्यादा) प्रयोग आज़ाद ने किया है (यह ग़ालिब के ख़ानदान में होने का असर है), फिर भी रवानी और सफ़ाई को हाथ से नहीं जाने दिया। लेकिन ऐसी रवानी और सफ़ाई नहीं अख़्तियार की है कि बाज़ारी शब्दों और महावरों का प्रयोग करें। संजीदगी और मतानत कहीं नहीं छोड़ी। भाव पवित्र हैं, और उच्च भी। लेकिन अक्सर, बल्कि ज़्यादातर, बहुत सुलझे हुए शब्दों में उन भावों को व्यक्त किया है। भला उस आदमी के कलाम की सफ़ाई और रवानी का क्या कहना, जिसके शेर का गद्य हो ही न सके। कहीं-कहीं तो बयान की यह सफ़ाई और रवानी उस सीमा तक पहुँच गई है, जिसे फ़ारसी में 'सहलुलमुम्तना', अर्थात् गहरे अर्थ को सीधे-सादे तौर से बयान कर जाना कहते हैं। देखिए, आप कहते हैं—

अगर हो सके, भूलकर याद फ़र्मा;
अगर शाद फ़र्मा सके, शाद फ़र्मा।
किसी की जुस्तजू है, और मैं हूँ;
तलाशे चारसू है और मैं हूँ।
तेरी महफ़िल में पुर्सिश तक नहीं है;
यह मेरी आबरू है, और मैं हूँ।
वह दिन न अब वह रात, वह उल्फ़त न अब वह बात;
वह मैं नहीं रहा कि वह क़िस्मत नहीं रही।

इन शेरों को देखिए, कितने बेबाक, बेलाग, स्वाभाविक और सरल हैं—"एक बात थी कि मुँह से हमारे निकल गई।"

शब्द-संग्रह और लालित्य

यह स्पष्ट है कि अगर सफ़ाई और रवानी के साथ शब्दों में लालित्य और उनके क्रम में एक तीव्र-कोमल और नम्र झनकार न पैदा हो, तो उच्च-से-उच्च विचार और कल्पना फीकी, बेमज़ा और पस्त मालूम होगी। कविता में जहाँ और बहुत-सी ख़ूबियाँ दरकार हैं, वहाँ उसका ललित और गानात्मक होना भी ज़रूरी है। जितने नामवर शायर गुज़रे हैं, वे सब इस गुर को जानते थे। हज़रत आज़ाद भी इस गुर से अपरिचित नहीं हैं। अब तक जितने शेर इस लेख में उद्धृत किए गए हैं, उनका शब्द-क्रम पाठकों के कानों में खटका न होगा। शब्द-संगीत यथेष्ट मात्रा में, इन शेरों में, मौजूद है। इसके साथ-साथ सिर्फ़ झनकार-ही-झनकार नहीं है। उनके कलाम को पढ़कर आप हैमलेट की तरह यह नहीं कह सकते कि words, words, words—उनका कलाम गहरे भावों और उच्च कल्पनाओं से भरा हुआ है। आप कहते हैं—

किसे फ़ुर्सत कि फ़र्ज़े-ख़िदमते-उल्फ़त बजा लावे ;
न तुम बेकार बैठे हो, न हम बेकार बैठे हैं।
जो उट्ठे भी तो गर्मे-जुस्तजूए दोस्त उट्ठे हैं ;
जो बैठे हैं, तो महवे-आरज़ूए-यार बैठे हैं।

तेरा गुलशन, वह गुलशन, जिसपै जन्नत की फ़िज़ा सदक़े ;
मेरा ख़िर्मन, वह ख़िर्मन, जिसमें अंगारे बरसते हैं।

दौरे-बहारे-आलमे-जानाना क्या कहूँ ;
एक जलवा था कि आठ पहर गुल-फ़रोश था।

वाक्य-निपुणता

सरल, स्वाभाविक और सच्ची बात कहना, मगर अनोखे और अनूठे तरीक़े से कहना, सबका काम नहीं है। व्यंग्य, जो कविता की जान है, वह साधारण बात को इस तरीक़े से कह देना है कि उधर फ़ौरन् ध्यान खिंच जाय, और बात दिल में उतर जाय। मामूली बात कहकर चौंका देना बड़ा मुशकिल काम है। आज़ाद के लगभग सभी शेरों में यह ख़ूबी है। कहते हैं—

तू, और चश्मे-लुत्फ़, नई वारदात है ;
मेरी निगाह ने मुझे धोका दिया न हो।
मुझसे जुदा सही, मगर उल्फ़त का वास्ता ;
दिल का क़रार छीन के दिल से जुदा न हो।
तू, और पासे-ख़ातिरे-अह्ले-वफ़ा करे ;
उम्मीद तो नहीं है, मगर, हाँ, ख़ुदा करे।
मैं और इनहराफ़, मगर बदनसीब दिल ;
मेरा कहा करे न तुम्हारा कहा करे।
सितमशआर सता, लेकिन इस क़दर न सता—
कि शुक्र शक्वे-शिकायात अख़्तियार करे।
ख़ुदा के वास्ते आ, और इससे पहले आ—
कि यास चारए-तकलीफ़े-इंतज़ार करे।

कहते हैं, ख़ुदा के वास्ते आ, और इससे पहले आ कि निराशा प्रतीक्षा के कष्ट-निवारण का उद्योग करे, अर्थात् प्रतीक्षा निराशा में बदल जाय। कहना तो महज़ इतना कि मेरे नाउम्मीद होने के पहले आ जा, लेकिन किस अंदाज़ से कहा है। फिर कहते हैं—

दिल और तेरे ख़याल से राहत न पा सके ?
शायद मरे नसीब में राहत नहीं रही।

करुण-रस

करुण-रस कविता की जान है। Our sweetest thoughts are our saddest thoughts (हमारे सबसे प्रिय भाव हमारे सबसे उदासीन भाव हैं)। इस लेख के उपक्रम के अंतिम भाग में कुछ इस बात की ओर इशारा किया गया है। करुणा क्या है, किसी बिछुड़ी दुनिया की याद, और उस बिछुड़ी दुनिया की याद दिलाना कविता का काम है। आज़ाद के कलाम में ऐसे दर्द-भरे शेर बहुत हैं, जो नश्तर का काम करते हैं। कहते हैं—

वह यकायक दिले-मरहूम का ध्यान आ जाना ;
वह उदासी का समा चार तरफ़ छा जाना।
आह, किसने मुझे दुनिया से मिटाना चाहा ;
आह, उसने कि जिसे हासिले-दुनिया जाना।
आह, कब तक दिल की बेताबाना हालत देखिए ;
और उस दिल की कि जिसका आसरा टूटा हुआ।
कभी दिन-रात रंगीं सुहबतें थीं ;
अब आँखें हैं, लहू है, और मैं हूँ।
एख़फ़ाय-क़लक़ बरहक़, लेकिन यँ गुज़ारिश है—
जब रहम किया होगा, जीने न दिया होगा।

कहते हैं, यह सच है कि तुमको मेरे क़लक़ का अनुभव है, लेकिन गुज़ारिश यह है कि जब तुमने रहम किया होगा, तब मेरे लिये जीना कठिन

हो गया होगा। आज़ाद ही के उस्ताद हाली का शेर है—

क़लक़ और जी का सिवा हो गया ;
दिलासा तुम्हारा बला हो गया।

आज़ाद ने "जब रहम किया होगा, जीने न दिया होगा।" इस टुकड़े में दर्द और व्यंग्य कूट-कूटकर भर दिया है। हाय, 'जब रहम किया होगा, जीने न दिया होगा।" एक-एक शब्द दुखते हुए दिल की धड़कन है।

शिकवा और शिकायत

माशूक़ से शिकवा और शिकायत और छेड़-छाड़ कविता की जान हैं। कोमलता, तीखेपन और व्यंग्य का आनंद यहीं आता है। करुणा भी यहीं आकर करुणा बनती है। सौंदर्य और प्रेम, रूठने की हालत में, मचलने की हालत में, और भी प्रिय, और भी सुंदर हो जाते हैं। सूर और मीरा की वे छेड़ें, जिन पर संसार की कविता निछावर हो जाय, इन्हीं अठखेलियों की, इसी रूठने और मनाने की राम-कहानी हैं। आज़ाद ने भी अपने रंग में इस तरह के अच्छे शेर निकाले हैं। कहते हैं—

यों याद आओगे हमें असली खबर न थी ;
यों भूल जाओगे हमें, वह्मो-गुमाँ न था।
उम्मीद के लिहाज़ से मेरा गुमाँ ग़लत;
बर्ताव के लिहाज से तू मेह्रबाँ न था।
सताना रवा है, तो बेशक सता ;
मगर भूल जाने से क्या फ़ायदा।
यक पायमाले जौर से उम्मीदे-शुक्र-जौर ;
जा, शुक्र कर, कि ताबे शिकायत नहीं रही।

कहते हैं, जो ज़ुल्म से पिसा हुआ है, उससे इसकी उम्मीद कि वह ज़ुल्म के लिये शुक्र करेगा ? जा, शुक्र कर कि अब मुझमें शिकायत करने की ताक़त नहीं रही, यही बहुत है। नीचे का शेर शिकायत और अपनी क़िसमत पर संतोष कर लेने का कितना अच्छा उदाहरण है—

तुम कि दर्दे-जहाँ के दर्माँ हो ;
मेरे दुख की दवा नहीं, न सही।

अध्यात्म-रस

फ़ारसी की शायरी अध्यात्म-रस में डूबी हुई और शराबोर है। उर्फ़ी, हाफ़िज़ और खुसरो ने इस मैदान में क़यामत की है। उर्फ़ी तो इतना ऊपर चला जाता है, ऐसी उड़ान भरता है कि उसकी परछाईं भी ज़मीन पर नहीं पड़ती। हाफ़िज़ की मस्ती भी इस दुनिया की नहीं मालूम होती। उसका नशा कुछ ऐसा चढ़ गया है, जो उतरना जानता ही नहीं। चूर है, लेकिन उसके एक तराने पर संसार के न्याय, दर्शन और विद्याएँ निछावर कर देने को जी चाहता है। उर्फ़ी के काव्य में दर्द और आसी के काव्य में यह रस चोखा है। आतश के भी आध्यात्मिक संकेत झुमा देते हैं। आज़ाद कुछ आध्यात्मिक शेर बहुत अच्छे कह गए हैं। कहते हैं—

निगाहे-शौक़ से अंधा भी देख सकता है ;
जमाले-दोस्त खुला हर तरफ़ झलकता है।

अब इस परदे से क्या हासिल, उठा भी दो कि लाहासिल ;
तुम्हीं परदे के बाहर हो, तुम्हीं परदे के अंदर हो।

तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं ;
दिल की आवाज़, ग़ैब की आवाज़।
यह एक शाने-ख़ुदा है, मैं नहीं हूँ ;
वही जलवानुमा है, मैं नहीं हूँ।

कोई दोनों जहाँ से हाथ उठा बैठा, तो क्या परवा ;
तुम इन मोलों भी सस्ते हो, तुम इन दामों भी अर्ज़ाँ हो ;
अगर आज़ाद-सा दर्वेश नज़रों में नहीं जँचता ;
तो जा, और जाके अह्लुल्लाह की पहचान पैदा कर।

ग़ैरमुमकिन है कि इस बज़्म में आज़ाद न हो ;
कि हमें बूए-नुफ़ूसे-फ़ुक़रा आती है।

अर्थात् असंभव है कि इस महफ़िल में आज़ाद न हो ; क्योंकि हमें फ़क़ीरों की पवित्र साँसों की महक आ रही है।

ये हैं कुछ नमूने आज़ाद के कलाम के, जो हमने पाठकों के अध्ययन और मनन के लिये पेश किए हैं। ये नमूने इस बात को सिद्ध करने के लिये काफ़ी हैं कि आज़ाद एक बहुत उच्च कोटि के कवि हैं ; उनकी एक शैली है, जिसमें वह बहुत अच्छे-अच्छे शेर कह जाते हैं ; उनकी कविता हमारे भावों को पवित्र, तीव्र, सूक्ष्म और उच्च बना सकती है, दिलों को बेचैन कर सकती और बेचैन दिलों को सांत्वना-प्रदान कर सकती है ; और इस बेचैनी में, इस सांत्वना में इस दुनिया और दूसरी दुनिया के गुप्त संबंधों का कुछ-कुछ पता चल

जाता हैं अगर आज़ाद मीर, ग़ालिब और आतश से कम हैं, तो बस, उन्हीं से कम हैं। हमारी कमज़ोर निगाहों के लिये तो यह सितारा भी कविता के आसमान पर काफ़ी ऊँचाई में चमक रहा है।

रघुपतिसहाय

आईनए-हिंद

हम अब क्या हैं ?

दफ़अतन्[1] रंग ज़माने का कुछ ऐसा बदला ;
भाई से भाई भिड़ा, बाप से बेटा बिगड़ा।
ख़ानाजंगी[2] से हुई घर में क़यामत[3] बरपा ;
एक को दूसरा खा जाने को तैयार हुआ।
　तीन-तेरह हुए जब हिंद में यों फूट पड़ी ;
　सारी दुनिया की मुसीबत भी यहीं टूट पड़ी।
जो ज़माना था कभी, फिर वो ज़माना न रहा ;
इल्मो-दौलत का यहाँ पर वो ख़ज़ाना न रहा।
साज़ वह ऐश का, इशरत का तराना न रहा ;
अपनी शौकत[4] का वो घर-घर में फ़साना न रहा।
　अब तो वो बातें सभी 'राम-कहानी' ठहरीं ;
　शायरी ठहरीं, तबीअत की रवानी ठहरीं।
ग़ैरों के हाथ पड़े, और हुई ज़िल्लत[5] अपनी ;
फिर तो रुख़सत हुई वह फ़हमो-फ़रासत[6] अपनी।
ख़्वाब-सी हो गई वह ताक़तो-कुदरत[7] अपनी ;
हाय, मिट्टी में मिली जुरअतो-हिम्मत[8] अपनी।
　खींचते नाले[11] हैं हरवक़्त जरस[12] की सूरत ;
　आशियाँ[13] हमको बना अब तो क़फ़स[14] की सूरत।
मिट गए सब वो हुनर, सनअतो[15]-हिरफ़त[16] न रही ;
हाथ में अपने किसी शय[17] की तिजारत न रही।
दिल में भी अहले-वतन[18] की वो मुहब्बत न रही ;
सिफ़लापन[19] सीख लिया हमने, शराफ़त न रही।
　जाके ग़ैरों की बजाई जो सलामी हमने ;
　शौक़ से डाल लिया तौक़े-गुलामी हमने।

कौन वह दुख है, नहीं हमको जो सहना पड़ता ;
बैल ही की तरह दिन-रात है बहना पड़ता।
ज़ुल्म सहते हुए ख़ामोश ही रहना पड़ता ;
नाक में आया है दम, है यही कहना पड़ता—
　हाय ईश्वर, ये जिलाने का क़रीना[1] क्या है ;
　मौत दे मौत, गुलामी में ये जीना क्या है।
रंजो-इफ़्लास ने घर अपना बना रक्खा है ;
दिन-दहाड़े लुटा, अब हिंद में क्या रक्खा है।
बेगुनाहों को सज़ावारे-सज़ा[3] रक्खा है ;
मुँह से कुछ बोले, तो बस, हुक्मे-क़ज़ा[4] रक्खा है।
　कैसा इंसाफ़ अजी साफ़ गुलामों के लिये ;
　साफ़ कहते हैं वो—इंसाफ़ गुलामों के लिये ?
सामने ग़म का है दरिया, नहीं जिसका साहिल[5] ;
और उधर कुवतें अपनी जो थीं, सब हैं बातिल[6]।
जोतें-बोएँ तो हम, और ग़ैर लें उसका हासिल[7] ;
है यही हाल, तो हो जायगा जीना मुशकिल।
　खाते हैं ख़ूने-जिगर, आँसू सदा पीते हैं ;
　जीते होंगे कोई, पर हम तो नहीं जीते हैं।
इस क़दर सनअतो-हिरफ़त की हुई पामाली[8] ;
है तिजारत भी, तो पाते हैं कमीशन ख़ाली।
ग़ैर के हाथों में कुल काम है मुल्की, माली ;
बेबसी ऐसी है अपनी कि बक़ौले हाली—
　"जा पड़ी ग़ैर के हाथों में हरयक बात अपनी ;
　अब न दिन अपना रहा, और न रही रात अपनी"।
हम तो वीरान[9] हुए, और वो गुलज़ार हुए ;
भेड़ बनकर जो मिले, भेड़िए ख़ूँख़्वार[10] हुए।
पार सीने[11] के हुए, ज़ुल्म के वह वार हुए ;
नाम आज़ादी का लेते ही गिरफ़्तार हुए।
　कैसा इंसाफ़ है, ग़ैरों की अदालत ठहरी ;
　जुर्म अपने लिये भारत की मुहब्बत ठहरी।
नौकरी के सिवा हमको कोई पेशा न रहा ;
कोई हथियार बजुज़[12] हाथ में तेशा, न रहा।
शेर हम कैसे रहें, जब कि वो बेशा[13] न रहा ;
हाय, अगला-सा ज़माना वो हमेशा न रहा।

---

१. अचानक। २. गृह-कलह। ३. प्रलय। ४. आतंक। ५. अपमान। ६. बुद्धिमत्ता। ७. विद्वत्ता। ८. स्वप्न। ९. शक्ति। १०. वीरता। ११. आह, विलाप। १२. घंटा-घड़ियाल। १३. कोटर, नीड़। १४. पिंजड़ा। १५. शिल्प-कला। १६. कला, पेशा। १७. वस्तु। १८. देश-वासी। १९. नीचता।

१. रीति। २. दीनता। ३. दंडनीय। ४. मृत्यु। ५. तट। ६. मिथ्या। ७. उपज। ८. पद-दलन। ९. उजाड़। १०. रक्त चूसनेवाले। ११. छाती। १२. सिवा, अतिरिक्त। १३. वन।

बेच दी हाथ में ग़ैरों के ज़हानत अपनी ;
चंद पैसों में बिके, है यही क़ीमत अपनी।
रह गई शान न वह अगली-सी शौकत बाक़ी ;
आई हिस्से में गुलामी, रही ज़िल्लत बाक़ी।
कैसे फिर रहती भला दौलतो-सरवत बाक़ी ;
कोई भी रह गई दुनिया में मुसीबत बाक़ी—
ख़ानएं-हिंद में आकर न जो मेहमान हुई ;
रोज़ गर्दिश रही, कब जान न हलकान हुई ?
छाई ग़फ़लत, तो उसे मुल्क ने मस्ती समझा ;
चीज़ बेहद जो गराँ थी, उसे सस्ती समझा।
होता वीरान गया बस्ती है बस्ती समझा ;
पस्त होता गया, लेकिन नहीं पस्ती समझा।
ग़ार में जाके पड़ा, अब है निकलना मुशकिल ;
ऐसा बीमार है, जिसका है सँभलना मुशकिल।
मादरे-हिंद के बच्चों पै मुसीबत आई ;
गोलियाँ गनँ से चलीं, और क़यामत आई।
खोले घूँघट गए, यों ख़तरे में इज़्ज़त आई ;
हाय अफ़सोस, नहीं फिर भी तो ग़ैरत आई।
उनके पैरों पै रही, रक्खी जो पगड़ी हमने ;
पेट के बल चले, और नाक भी रगड़ी हमने।

"त्रिशूल"

जमशेदपुर में ताता का लोह-कार्यालय

निवेदन

सभ्य-संसार की घुड़दौड़ में बाज़ी मारने के लिये इस युग में वही देश बीड़ा उठा सकता है, जो अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने का दावा रखता हो। इस कला-कौशल के युग में यदि भारतवर्ष अपना ख़ास स्थान चाहता है, तो इसे भी पश्चिमी देशों की प्रणाली ग्रहण करनी ही पड़ेगी। यद्यपि उन सभ्यता के ठेकेदारों की प्रणाली ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं थी, पर भाग्यवश कहिए या अभाग्यवश, शिक्षित भारत के रग-रग में अनुकरणरूपी संक्रामक रोग के कीटाणु घर करते जा रहे हैं। ऐसी दशा में स्वतंत्र विचार कैसे उत्पन्न हों ? कृषि की प्रधानता कैसे रहे ? 'रत्नगर्भा भारत-भूमि' दरिद्रता की क्रीड़ा-स्थली क्यों न बने ?

आज संसार में वही देश उन्नतिशाली है, जो दूसरे का रक्त-शोषण कर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। यदि आप भी इस संसार में अपना अस्तित्व क़ायम रखना, भारत-माता का मुखोज्ज्वल करना, सभ्य-संसार की पंक्ति में बैठना और अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करना चाहते हैं, तो देश में उद्योग-धंधों की धूम मचा दीजिए। भारतीय धनियों की आँखें खोलिए, और स्वयं कमर कसकर, परमात्मा का नाम ले, औद्योगिक मैदान में ताल ठोककर कूद पड़िए ; क्योंकि "गया वक़्त फिर हाथ आता नहीं।" जो काशी, प्रयाग, अयोध्या और मथुरा आदि पुण्य धामों की यात्रा करने जाते हैं, उनसे कहिए कि वे जमशेदपुर-सरीखे व्यवसाय-तीर्थों के दर्शन और अपने लड़कों को उद्योग-धंधे तथा कला-कौशल की शिक्षा के लिये उत्सर्ग करें। इसी में अपना तथा देश का हित है। समय ऐसा आ गया है कि अब बाबू बनने के बदले कुली बनना हमारे लिये विशेष लाभदायक है। इसी में हमारी तथा हमारे देश की सच्ची उन्नति है। दिन में दस बार 'पियर्स सोप' तथा नाना प्रकार के शृंगारोपादान (ear's Soap and other Toilets) व्यवहार करने के बदले कोयले की कालिख लगाना, पलँग-पालकी छोड़ क्रेन (Crane—बोझ उठाने का यंत्र) आदि के पास डटे रहना, पतली लचीली छड़ियों के बदले (भाग्यवश बंदूक़ और तलवार आदि हाथ में नहीं रहे !) हथौड़े और छेनी धारण करना भारत के प्रत्येक नौनिहाल का कर्तव्य होना चाहिए। स्वनामधन्य स्वर्गीय श्रीमान् जमशेदजी ताता कला-कौशल द्वारा देश की समृद्धि-वृद्धि का मार्ग दिखा गए हैं, साधन भी दे गए हैं ; सिर्फ़ मोह की नींद छोड़कर साहस-पूर्वक कार्य-क्षेत्र में कूदने-भर की देर है।

सन् १८७५ ईसवी से ही श्रीमान् ताता के हृदय में ऐसे विचार लहरा रहे थे कि भारत के कच्चे माल से यहीं पक्का माल बनाया जाय, ताकि देश का धन सात समुद्र पार न जाकर यहीं रहे। उन्होंने अनेक बार योरप तथा अमेरिका की यात्रा कर इन विचारों को

---

१. बुद्धिमत्ता। २. भारत-गृह। ३. महँगी। ४. नीचा। ५. गड्ढा। ६. भारत-माता। ७. बंदूक़। ८. लज्जा।

कार्य-रूप में परिणत करने का विचार किया था ; परंतु दुष्ट काल ने असमय में ही उन्हें भारत-माता की गोद से छीन लिया ! इसलिये उनके विचार, उनकी जीवितावस्था में, कार्य में परिणत न हो सके । यद्यपि वह अपने विचारों को कार्य में परिणत न कर सके, परंतु उनके सुपुत्रों (सर दोराबजी ताता तथा स्वर्गीय सर रतन ताता) ने अपने पूज्य देशभक्त पिता का जीवनोद्देश्य और मनोरथ पूर्ण कर देश को असीम लाभ पहुँचाया है ।

यह जमशेदपुर, जहाँ आज से लगभग १५ वर्ष पहले घोर जंगल था, जहाँ मनुष्यों का नाम-निशान तक नहीं था, आज भारत में ही नहीं, वरन् संसार में, एक प्रमुख वाणिज्य-केंद्र गिना जा रहा है । सभी सभ्य देशों के निवासी हमारे देश को अपनी उदर-पूर्ति का साधन बनाए बैठे हैं, और ऊपर से तुर्रा यह कि हमें ठोकरें भी मारते हैं ! फिर भी हमारी तंद्रा नहीं छूटती ! छूटे कैसे ? जिस देश ने समस्त संसार का पूज्य गुरु बनकर भूतकाल में कीर्ति और प्रतिष्ठा कमाई थी, उसी देश को अन्य देशों का शिष्य बनने के लिये वाम विधाता ने बाध्य किया है ! आलस्य तथा कर्तव्य-हीनता ने ऐसा धर दबाया है कि लाख धक्के खाने पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं, और कीड़े-मकोड़ों की तरह हम सभ्य-संसार के पैरों-तले रौंदे जा रहे हैं ! भगवन्, अब तो रक्षा करो । क्या इतने पर भी हम अपने दुष्कर्मों के फल नहीं पा चुके ?

भौगोलिक वर्णन

पाठक, आइए, अब आपको जमशेदपुर का कुछ वृत्तांत सुनावें, और दृश्य भी दिखावें । इस स्थान का नाम पहले 'साकची' था । गत महायुद्ध में, ताता-कंपनी ने लोहा-इस्पात आदि देकर सरकार की सहायता की थी । उसी के पुरस्कार में भारत के भूतपूर्व वायसराय लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड ने इसका नाम, स्वर्गीय देशभक्त श्रीमान् जमशेदजी नसरवानजी ताता की स्मृति-रक्षा के लिये, 'साकची' से 'जमशेदपुर' और रेलवे-स्टेशन का 'कालीमाटी' से 'तातानगर' कर दिया ।

'तातानगर' बंगाल-नागपुर-रेलवे लाइन पर, हवड़े (कलकत्ते) से १५५ मील पश्चिम है । रेलवे-स्टेशन से 'जमशेदपुर' तीन मील उत्तर है; पर यह तीन मील का फ़ासला, बस्तियों द्वारा, प्रायः मुख्य नगर से मिला हुआ है । स्टेशन से जमशेदपुर जाने के लिये प्रायः प्रत्येक गाड़ी (Train) के समय घोड़ा-गाड़ियाँ तथा मोटरें (Taxi cabs) किराए पर मिलती हैं ।

बिहार-उड़ीसा-प्रदेश में 'छोटा नागपुर' नाम का एक छोटा-सा प्रांत-विभाग है । उसी के सिंहभूमि-ज़िले में यह स्थान है । ज़िले का नाम सिंहभूमि क्यों पड़ा ? कहते हैं, मुग़ल-सम्राट् अकबर ने इस प्रांत को अधिकृत करने के लिये अपने प्रसिद्ध सेनापतियों को भेजा था; पर किसी से यह छोटा-सा प्रांत विजित न हो सका । तब उसने अपने मंत्रियों की मंत्रणा से वीर मानसिंह को भेजा । उन्होंने यहाँ आते ही विजय की दुंदुभि बजा मुग़ल-सम्राट् की अभिलाषा पूरी की । उनकी इस विजय से प्रसन्न होकर सम्राट् ने उनके द्वारा जीते हुए इस प्रांत को तीन भागों में विभक्त कर वीरभूमि, मानभूमि तथा सिंहभूमि के नाम से विख्यात कर दिया । मैं नहीं कह सकता कि ऐतिहासिक दृष्टि से ये बातें कहाँ तक सत्य हैं, पर मुझे तो सत्य प्रतीत होती हैं ।

प्राकृतिक दृश्य

ऊपर बतला चुके हैं कि आज से १५-१६ वर्ष पहले यह स्थान घनघोर जंगल से परिपूर्ण था । यहाँ रात-दिन बाघ, भालू और चीते आदि वन्य पशु क्रीड़ा किया करते थे । पर आज देखिए, तो यहाँ नए ढंग का, लक्ष्मी का लीलास्थल-स्वरूप, एक सुंदर नगर बसा हुआ है, जहाँ प्रायः ४०-४५ हज़ार श्रमजीवी अपनी जीविका का उपार्जन करते हैं । जमशेदपुर की जन-संख्या प्रायः ८० हज़ार है । यहाँ का दृश्य देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो प्रकृति-माता इस नवजात नगर-शिशु को अपनी गोद में खेला रही है । हरे-भरे जंगलों से परिपूर्ण रमणीय पहाड़ियाँ चारों ओर से श्रीमान् ताता की इस कीर्ति-वाटिका की संपन्न शोभा निरख रही हैं; पर भारत की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्था की तुलना करने में सकुचाती हैं, और इसलिये जहाँ-की-तहाँ ठिठकी हुई खड़ी हैं । पश्चिम में खड़खाई-नामक नदी बहती है, जो वर्षा-काल में उमड़ती और ग्रीष्म-काल में सूख जाती है । यदि एक दिन भी खूब वृष्टि हो जाय, तो फिर देखिए इसकी उमंग-तरंग !
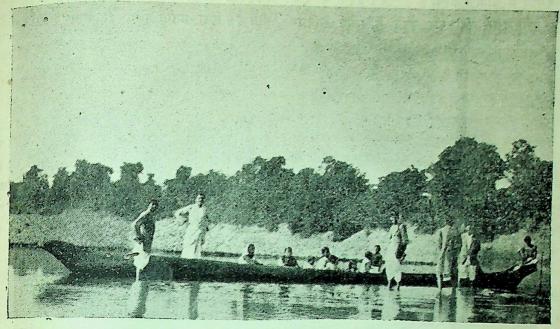
जमशेदपुर के आदि-निवासियों की बनाई हुई नौका, जो एक ही वृक्ष के धड़ से बनाई गई है (लेखक [बाईं ओर से दूसरा] और उसके मित्र वन-भोजन [Picnic] के लिये स्वर्णरेखा तथा खड़खाई के संगम-स्थल पर)

इसके पश्चिमी तट पर हरा-भरा एक छोटा-सा जंगल है, जो सराईकेला-रियासत के अधिकार में है । सराई-केला के महाराज वहाँ पर एक नगर बसाना चाहते हैं । बहुत लोगों ने भूमि ठेके पर ले भी ली है, परंतु नदी पर पुल न होने के कारण कोई घर नहीं बनाता । अफ़वाह है कि ताता-कंपनी नदी में पुल बनाने तथा
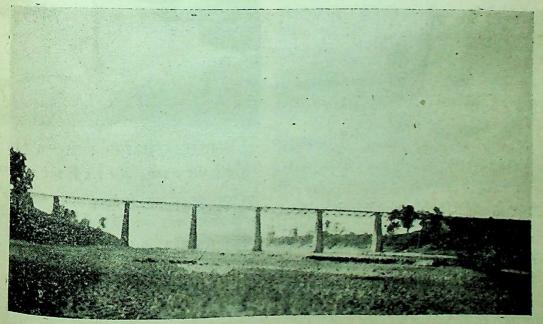
खड़खाई-नदी पर बी० एन्० आर० का पुल

नगर बसाने में आपत्ति करती हैं । रेलवे-कंपनी का एक पुल है; परंतु उससे नदी पार करने में यथेष्ट सुविधा
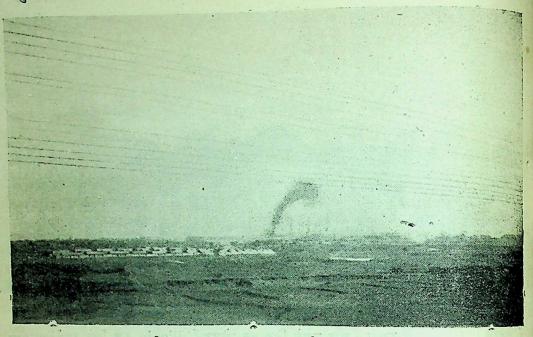
खड़खाई के पुल से नगर तथा कार्यालय का एक दृश्य

नहीं, वरन् ख़तरे का ख़ौफ़ है । उस पार के निवासी मज़दूर वर्षा-ऋतु में इसी पुल द्वारा नदी पार करते हैं।

जमशेदपुर के आदि-निवासी स्वर्णरेखा के उस पार से जलाने की लकड़ी काटकर ला रहे हैं

कारख़ाने से लगभग १½ मील उत्तर स्वर्णरेखा-नदी बहती है। इसी से कारख़ाने तथा नगर में पानी आता है। इसके दोनों तट पर हरे-भरे वृक्ष हैं, जिनसे इसकी नैसर्गिक शोभा बहुत बढ़ गई है। जहाँ खड़खाई तथा स्वर्णरेखा का संगम है, वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य अवर्णनीय है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो दोनों बहनें हुई
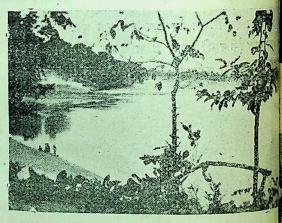
स्वर्णरेखा-खड़खाई-संगम का एक दृश्य

(बाईं ओर खड़खाई और दाहनी ओर स्वर्णरेखा)

निस्तब्ध वन में गले मिल रही हैं । यहाँ एक छोटा सा जंगल है, जहाँ जाते ही चित्त को शांति प्राप्त होती है। यहाँ से प्रायः एक मील दक्षिण-पूर्व पुराना सोनारी और नया सोनारी ग्राम हैं । कारख़ाने के पास से उक्त संगम स्थान तक एक सड़क गई है । गत तीसरे या चौथे साल जब छत्तीसगढ़ में दुर्भिक्ष पड़ा था, वहाँ के सहस्र-सहस्र नर-नारियों ने यहाँ आकर अपनी प्राण-रक्षा की थी,

स्वर्णरेखा तथा खड़खाई के संगम का दूसरा दृश्य
(लेखक की पिकनिक-पार्टी)
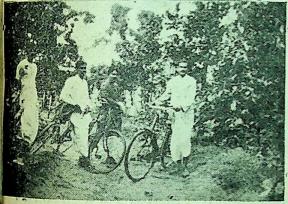
खड़खाई तथा स्वर्णरेखा के संगम पर जाने का पथ
(लेखक [दाहनी ओर से प्रथम] और उसके मित्र-गण)
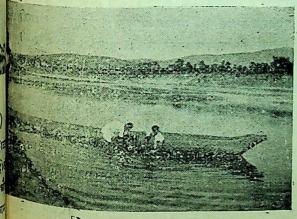
स्वर्णरेखा और दलमा का दृश्य
(वन-भोज के समय लेखक [बाईं ओर झुककर खड़ा हुआ] अपने मित्र बाबू यज्ञेश्वर मजूमदार के साथ केले के पत्ते धो रहा है)

कुछ तो आज तक कर रहे हैं। ये लोग अब बड़े सुखी हैं। जब शाम को कारख़ाने की छुट्टी होती है, और ये लोग गान करते हुए दल-के-दल अपने-अपने घर की ओर जाते हैं, उस समय इनके आनंद का दृश्य देखते ही बनता है। ये लोग उक्त नया 'सोनारी'-गाँव में निवास करते हैं। कुछ दूसरे प्रांत के निवासी भी हैं।

नदी का नाम स्वर्णरेखा पड़ने का कारण यह है कि उसकी बालू में कभी-कभी स्वर्ण-कण पाए जाते हैं। नदी से प्रायः ७-८ मील उत्तर 'दलमा'-नामक पहाड़ है। यह लगभग तीन हज़ार फ़ीट ऊँचा है। इस पहाड़ के जंगलों में प्रायः बाघ, हाथी और भालू आदि वन्य पशु पाए जाते हैं। इसके ऊपर एक सुंदर तालाब है। सुना जाता था कि इस पर्वत पर बिहार-उड़ीसा की सरकार तथा ताता-कंपनी के स्वास्थ्य-निकेतन (Sanitorium) बननेवाले हैं। जमशेदपुर से वहाँ तक ट्राम-लाइन (Tramway-Line) बनने की बातें भी सुन पड़ती थीं। देखें, ये सब विचार कब तक कार्य-रूप में परिणत होते हैं।

वर्षा-काल के श्याम मेघ जब इस पहाड़ से कुछ ऊँचाई पर रहते हैं, तो इसकी शोभा ही निराली हो जाती है।

उल्लेखनीय स्थान और कारख़ाने आदि

कारख़ाने से एक दूसरी सड़क इस नदी के उस स्थान तक गई है, जहाँ पंप-हाउस (Pump House) है। यहीं पर नदी की धारा एक पक्के बाँध से बाँध दी गई है। जब नदी में अधिक जल होता है, तब वह इस बाँध के ऊपर से निकल जाता है। जिस समय बाँध के ऊपर से जल निकलता है, तब जल-प्रपात का-सा मनोहर दृश्य दृष्टिगोचर होता है। बाँध के पश्चिम ओर जल जमा रहता है, और वही जल बिजली की शक्ति से खींचकर, ४८ इंच व्यासवाले नल (Pipe) द्वारा, कारख़ाने के पास एक सुबृहत् तालाब में पहुँचाया जाता है। इस तालाब से मिला हुआ एक और बहुत बड़ा तालाब लाखों रुपए की लागत से बन रहा है।

पंप-हाउस के पास ही जल-परिष्कारक कार्यालय (Filter Plant) है। यहाँ से जल स्वच्छ होकर

पंप-हाउस (स्वर्णरेखा)

रामदास- रामचरण- ऑयल-मिल्स (Ramdas Ramcharan Oil Mills) तथा पेनिनसुलर लोकोमोटिव कंपनी लिमिटेड (The Peninsular Locomotive Co., Ltd.) इत्यादि सहायक (Subsidiary) कंपनियों के कारख़ाने हैं। बर्मा-ज़िंक-कंपनी भी अपना कारख़ाना बना रही थी; पर कतिपय कारणों से न बना सकी। उसके कारख़ाने का भग्नावशेष अब भी मौजूद है। उसके बनाए बँगलों को ताता-कंपनी ने ख़रीद लिया है। इन सहायक कंपनियों के कारख़ानों के बाद हरे-भरे जंगलों से ढकी हुई छोटी-छोटी पहाड़ियाँ हैं, जो देखने में बड़ी सुहावनी मालूम होती हैं।
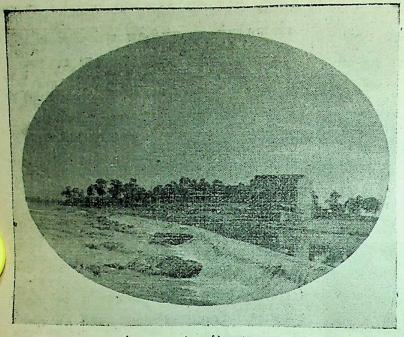
शहर में आता है। शहर में दो जल-भांडार (Water Reservoirs) हैं, एक कदमा में और दूसरा नगर के उत्तरी भाग (Northern Town) में। ये लगभग एक-एक सौ फ़ीट ऊँचे हैं। पहले जल यहीं आता है। फिर यहाँ से नलों द्वारा घर-घर पहुँचाया जाता है। पंप-हाउस के पास ही कचहरी और जेल आदि हैं। जमशेदपुर गत वर्ष से ज़िले का एक सब-डिवीज़न बन गया है। यहीं पर ताता-कंपनी का ईंटों का कारख़ाना है, जिसमें बालू और चूने से ईंटें तैयार होती हैं। ये ईंटें यंत्र द्वारा बनाई जाती हैं। ह्यूम-पाइप का कारख़ाना भी यहीं पर है। यह कंपनी सीमेंट (एक प्रकार की मिट्टी) से पाइप बनाती है, जिनका Cast Iron Pipes (लोहे के नल) की जगह व्यवहार किया जाता है।

ताता-कार्यालय के पूरब ओर एग्रिकल्चरल इंप्लिमेंट्स कंपनी लिमिटेड (Agricultural Implements Co., Ltd.), टिन-प्लेट-कंपनी लिमिटेड (Tin Plate Co., Ltd), इंडियन-केबल-कंपनी लिमिटेड (Indian Cable Co., Ltd.), किलबर्न-कंपनी (Kilburn & Co.), स्टील-वायर-प्रोडक्ट्स कंपनी लिमिटेड (Steel Wire Products Co., Ltd.) , कालमोनी-इंजीनियरिंग-वर्क्स (Colmoni Engineering Works),

विशेषकर प्रातःकाल जब सूर्य निकलते हैं, तब इन हरितांबरा पहाड़ियों की छटा ही अनोखी हो जाती है। ताता के कारख़ाने से मिला हुआ जोसेप एँड कंपनी लि० (Jossep & Co., Ltd.) का भी एक कारख़ाना है।

दक्षिण ओर बी० एन्० आर० (B. N. R.) की लाइन है। इस रेल-पथ से मिला हुआ दक्षिण ओर 'जुगसलाई'-नामक एक बाज़ार है। यह एक अच्छा व्यापारिक स्थान है। इसके आगे की ज़मीन पथरीली और कुछ दूर आगे पहाड़ियाँ हैं। धान के कुछ खेत भी हैं। जुगसलाई से पूर्व तातानगर-स्टेशन है। पहले यह बहुत छोटा था; परंतु अब इसकी भी वृद्धि हो रही है। रेलवे-कंपनी की बहुत-सी इमारतें बन रही हैं।

नगर के भिन्न-भिन्न विभाग

जमशेदपुर को (१) ताता का कारख़ाना, (२) उत्तरीय नगर-भाग (Northern Town), (३) दक्षिणीय नगर-भाग (Southern Town), (४) एन्० तथा एम्० टाइप के घर (N. and M. Type Houses) अथवा कदमा, (५) सोनारी, (६) एल्० टाउन (L. Town), (७) गोलमोरी, (८) सहायक कंपनियाँ (Subsidiary Companies) और उनके कर्मचारियों के बँगले तथा

(९) बर्मा-ज़िंक (Burma Zinc) आदि नव भिन्न-भिन्न भागों में बाँटा जा सकता है।

उत्तरीय नगर-भाग (N. Town) में विदेशी तथा कुछ भारतीय उच्च-पदस्थ कर्मचारी रहते हैं। इस भाग के सभी घरों में बिजली के पंखे तथा बत्तियाँ लगी हुई हैं। प्रत्येक चौराहे पर भी बिजली की बत्ती है।

कुछ सार्वजनिक संस्थाएँ

इसी भाग में टिस्को-इंस्टीट्यूट (Tisco Institute),
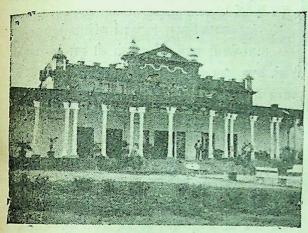
टिस्को-इंस्टीट्यूट

बेल्डी-क्लब (Beldi Club) तथा इंडियन एसोसिएशन (Indian Association) हैं। इंस्टीट्यूट का सभासद् हर-एक हो सकता है; पर ताता-कंपनी के कर्मचारियों को अपने वेतन के अनुसार, और अन्य लोगों को ५) रु० मासिक, चंदा देना पड़ता है। इसका प्रबंध पश्चिमी सभ्यता के अनुकूल है। इंडियन एसोसिएशन की भी यही अवस्था है। इसका चंदा भी सबके लिये ५) रु० मासिक ही है। एसोसिएशन के सभासद् सभी भारतीय नहीं हो सकते; क्योंकि इसका चंदा अधिक है, और सर्व-साधारण इससे कुछ लाभ भी नहीं उठा सकते। इंस्टीट्यूट को ताता-कंपनी ने अपने कर्मचारियों के विनोदार्थ बनाया है। एसोसिएशन यहाँ के गण्य-मान्य भारतीयों का है। बेल्डी-क्लब तो था केवल गोरों के लिये, पर जेनरल मैनेजर श्रीमान् टी० डब्ल्यू० टट्विलर साहब के अनुग्रह से कंपनी में काम करनेवाले भारतीय अफ़सर भी अब सभासद् बन सकते हैं।

दक्षिणीय नगर-भाग में भी टिस्को-इंस्टीट्यूट की एक शाखा है। इसका प्रबंध भी प्रायः वैसा ही है; परंतु इसमें हिंदी, बँगला और तेलगू आदि भाषाओं के भी कुछ सामयिक पत्र आते हैं, तथा पुस्तकालय में भी इन भाषाओं की कुछ पुस्तकें हैं।

इस नगर-भाग के घरों में बिजली की बत्ती आदि का प्रबंध नहीं है, केवल दो-चार ख़ास-ख़ास चौराहों पर तथा इने-गिने घरों में है।

बस्तियों का वर्णन

कदमा (M. and N. Type Buildings) के घर साधारण मज़दूरों के लिये हैं; परंतु यहाँ घरों का इतना अभाव है कि बाबू-श्रेणी के लोग भी इन घरों में रहते हैं। ताता-कंपनी ने प्रचुर धन व्यय कर अनेकों घर बनवाए हैं। अभी बहुत-से घर तो बन ही रहे हैं, परंतु तो भी यहाँ १०० में प्रायः ७०-७५ मनुष्य गृह-हीन हैं। ये लोग अपने मित्रों के साथ या इधर-उधर दिन बिताते हैं।

एल्० टाउन (L. Town) में भी साधारण स्थिति के लोग रहते हैं। यहाँ के कितने ही घरों में जल-कल (Wate pipe) नहीं है। यहाँ भी एक बाज़ार है, जो इस स्थान के पुराने नाम के अनुसार साकची-बाज़ार कहलाता है।

गोलमोरी में एग्रिकल्चरल इंप्लिमेंट्स् कंपनी लि० (Agricultural implements Co., Ltd.) और टिन-प्लेट कंपनी लि० (Tin Plate Co., Ltd.) के कार्यालय तथा उनके कर्मचारियों के निवास-गृह हैं। यहाँ भी एक बाज़ार है। अन्य सहायक कंपनियों के विषय में हम पहले लिख चुके हैं। ये सहायक कंपनियाँ अपने-अपने मुहल्लों की स्वास्थ्य-रक्षा की व्यवस्था के लिये आप ज़िम्मेदार हैं।

जमशेदपुर में सड़कों के दोनों ओर प्रायः एक ही तरह के मकान हैं। इन मकानों के आसपास यथेष्ट स्थान ख़ाली छोड़े गए हैं। सड़कों के किनारे वृक्ष लगे हुए हैं। दृश्य दर्शनीय है।

जल-वायु

यहाँ का जल-वायु साधारणतः उत्तम तथा शुष्क है। यहाँ प्रत्येक ऋतु अपना-अपना पूरा प्रभाव दिखाती है। वसंत तथा ग्रीष्म-काल में यहाँ पछियाव हवा बहुत तेज़ चलती है। बरसात में देखते-ही-देखते बादल उमड़ आते हैं। फिर अल्प समय में ही आकाश मेघहीन हो जाता
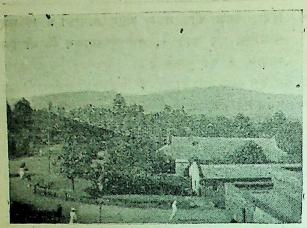
जमशेदपुर की एक सड़क का दृश्य

है। वर्षा-ऋतु में यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अतीव नेत्ररंजक एवं मनोमोहक हो जाता है। जब नीले-काले बादल पहाड़ों पर छा जाते हैं, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो पहाड़ियों के ऊँचे शिखरों के सहारे नीले मख़मल के तंबू तने हुए हैं!

यहाँ की जन-संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। कारख़ाने भी बढ़ रहे हैं। हज़ारों टन कोयला प्रतिदिन स्वाहा होता है। इन कारणों से जल-वायु में कुछ दोष अवश्य आने लगे हैं।

तात-कंपनी की उदारता और लोक-हितैषणा

पाठक, नगर-वर्णन तो आप बहुत-कुछ सुन चुके। अब ज़रा कृपा कर यह भी देखिए कि ताता-कंपनी अपने कर्मचारियों के हित के लिये क्या-क्या कर रही है। आमोद-शालाओं का वर्णन तो पहले ही कर आए हैं, अब स्वास्थ्य-रक्षा (Sanitation), चिकित्सा (Medical) तथा शिक्षा (Education) आदि की व्यवस्था के विषय में कुछ सुनिए।

स्वास्थ्य-विभाग (Sanitation)

ताता-कंपनी अपने कर्मचारियों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये प्रचुर द्रव्य व्यय करती है। हम कह सकते हैं कि भारत में ऐसी कोई भी कंपनी नहीं है, जो अपने कर्मचारियों के हित के लिये ताता-कंपनी की तरह धन व्यय करती हो। एक डॉक्टर महाशय, जो अपने विषय के विशेषज्ञ हैं, इस विभाग के अध्यक्ष (Health Officer) हैं। वास्तव में यहाँ का स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी प्रबंध अन्य नगरों से बहुत ही अच्छा है। कुछ दिन पहले प्रबंध और भी अच्छा था; पर जन-संख्या तथा नगर का आयतन प्रतिदिन बढ़ रहा है, इसलिये कुछ साधारण त्रुटियाँ अवश्य हैं, जो नहीं के बराबर हैं।
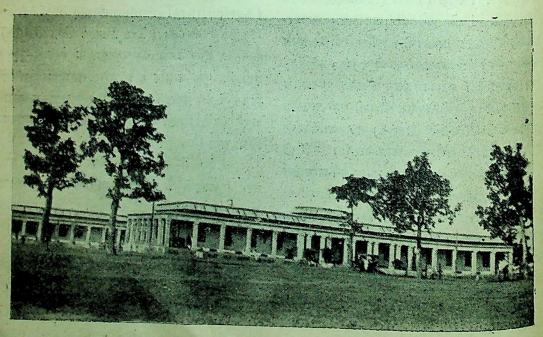
टिस्को-अस्पताल के एक भाग का दृश्य

चिकित्सालय (Hospitals)

कंपनी का एक ख़ास सुबृहत् चिकित्सालय है। इसकी चार शाखाएँ हैं, जिनमें कारख़ाने के आहत रोगियों की प्राथमिक चिकित्सा होती है, और अवस्था शोचनीय होने पर रोगी बड़े अस्पताल में भेज दिया जाता है। इन अस्पतालों में सर्व-साधारण को मुफ़्त दवाएँ दी जाती हैं, तथा उनकी निःशुल्क चिकित्सा होती है। घायल रोगियों को उनके वास-स्थान से लाने तथा उन्हें घर पहुँचाने के लिये एक बड़ी मोटर-गाड़ी (Ambulance Car) है कंपनी के कारख़ाने में जहाँ से खनिज पदार्थ आते हैं, उन सब खानों के पास भी चिकित्सालय बने हुए हैं। वहाँ भी दवा मुफ़्त दी जाती है। कंपनी के चिकित्सालयों में आधुनिक उन्नत प्रणालियों द्वारा चिकित्सा की जाती है। इस विभाग के लिये प्रतिवर्ष कंपनी प्रायः पौने दो लाख रुपए व्यय करती है। प्रधान डॉक्टर (Chief Medical Officer) श्रीयुत राय शांतिराम चक्रवर्ती महाशय हैं,

श्रीयुत रायसाहब डॉक्टर एस्० चक्रवर्ती

और उनके सहकारी (Deputy Chief Medical Officer) डॉक्टर जे० एन्० सेन। ये दोनों ही सज्जन बड़े मिलनसार, सर्वप्रिय तथा सरल स्वभाव के हैं। चिकित्सा तथा चीर-फाड़ (Operation) में आप लोग बड़े सिद्धहस्त हैं। अन्य डॉक्टर भी सुयोग्य एवं सहृदय हैं। यहाँ की जनता इन सुदक्ष चिकित्सकों के व्यवहार से बहुत संतुष्ट रहती है।

रायसाहब डॉक्टर शांतिराम चक्रवर्ती के नाम से यहाँ की जनता ने एक 'फ़ंड' खोल रक्खा है। उस सार्वजनिक कोष के सूद से मिसेज़ पेरिन-मेमोरिअल-हाई-स्कूल
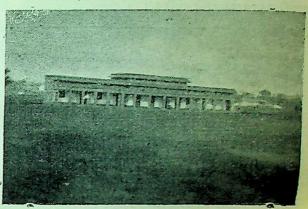
मिसेज़ पे० मे० हाई-स्कूल का एक भाग

(Mrs. Perin Memorial High School) की प्रवेशिका श्रेणी (Matriculation Class) को छोड़ शेष तीन उच्च कक्षाओं में प्रथम होनेवाले छात्रों को वृत्तियाँ (Scholarships) दी जाती हैं।

संक्रामक रोग से पीड़ित रोगियों के लिये गोलमोरी में एक बहुत ही सुंदर भवन बना हुआ है।

शिक्षा-विभाग (Education Department)

ताता-कंपनी अपने कर्मचारियों के लड़के-लड़कियों की शिक्षा के लिये भी प्रचुर धन व्यय करती है। मिसेज़ पेरिन के स्मारक में कंपनी ने 'मिसेज़ पेरिन-मेमोरिअल-हाई-स्कूल' स्थापित किया है। मिस्टर सी० पी० पेरिन ताता-कंपनी के परामर्शदाता इंजीनियर (Consulting Engineer) हैं। इन्हीं महोदय की पत्नी की स्मृति में उक्त विद्यालय स्थापित हुआ है। इसमें पटना-विश्वविद्यालय की प्रवेशिका तथा स्कूल-लीविंग (School Leaving)-परीक्षाओं के लिये छात्र तैयार किए जाते हैं। बिहार-उड़ीसा प्रांत में केवल यही एक ऐसा स्कूल है, जिसमें विज्ञान (Science) की शिक्षा का भी प्रबंध है। इसकी

निम्न श्रेणियों में हिंदी, बँगला तथा उर्दू के द्वारा शिक्षा दी जाती है। उड़िया-छात्रों को उड़िया-भाषा पढ़ाने का प्रबंध भी इस साल से हो गया है।

इस स्कूल की एक शाखा रात्रि-पाठशाला (Night School) है, जिसमें दफ़्तरों तथा कारख़ाने में काम करनेवाले बालकों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। खेद की बात है कि इसमें केवल अँगरेज़ी तथा गणित की ही शिक्षा दी जाती है । इनकी शिक्षा का माध्यम इनकी मातृभाषा होनी चाहिए।

श्रीयुत बाबू ज्ञानेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय बी० ए०

इस स्कूल के हेडमास्टर श्रीयुत ज्ञानेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय बड़े निर्भीक, शिक्षा-तत्त्व के ज्ञाता तथा उत्साही पुरुष हैं। आप ही के निरंतर परिश्रम से यहाँ के शिक्षा-विभाग की इतनी उन्नति हुई है । आपकी धर्मपत्नी भी कलकत्ता-विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट हैं, और यहाँ के बालिका-विद्यालय की प्रथमाध्यापिका (Head Mistress) भी।

इस स्कूल की दूसरी शाखा 'रात्रि-औद्योगिक विद्यालय' (Night Technical School) है । इसमें कारख़ाने के नवयुवक कर्मचारी संध्या-समय शिल्प-कला की शिक्षा प्राप्त करते हैं । यहाँ भी शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी-भाषा है। क्या ही अच्छा होता, यदि भारतीय युवकों को भारतीय भाषा द्वारा शिक्षा दी जाती। इससे वे लोग भी लाभ उठा सकते, जो केवल अपनी मातृभाषा ही जानते हैं । यह विभाग एक योरपियन महाशय के अधीन है। इस स्कूल में सप्ताह में केवल तीन ही दिन पढ़ाई होती है।

बालिका-विद्यालय (Girls' School)

इसमें हिंदी, बँगला तथा अँगरेज़ी द्वारा मध्यम श्रेणी
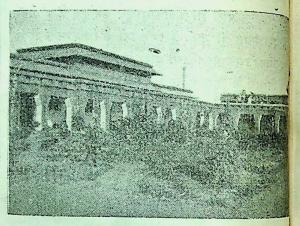
गर्ल्स स्कूल (बालिका-विद्यालय)

(Middle Class) तक की शिक्षा दी जाती है। हिंदी द्वारा शिक्षा तो दी जाती है, पर, खेद है, ऐसी कन्याएँ दो-चार ही हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी है। एक कारण इसका यह है कि यहाँ के हिंदी-भाषा-भाषी प्रायः अशिक्षित हैं। दूसरा कारण यह है कि इन लोगों का निवास-स्थान भी विद्यालय से प्रायः दूर है, जिससे इनकी लड़कियों को स्कूल आने में बड़ी असुविधा होती है । बंगाली कन्याओं के सिवा और सब प्रांतों की लड़कियाँ हिंदी पढ़ती हैं । इस स्कूल के प्रबंध का भार एक विदुषी महिला, श्रीमती शोभना चट्टोपाध्याय बी० ए०, के हाथ में है। इनके सुप्रबंध में इस स्कूल की बड़ी उन्नति हुई है। इनसे पहले एक अँगरेज़-महिला हेडमिस्ट्रेस थीं, जो भारतीय भाषाओं से अनभिज्ञ थीं।

कठिनाई तो यह है कि हिंदी पढ़ानेवाली अध्यापिकाएँ नहीं मिलतीं। अगर मिलती भी हैं, तो प्रायः भारतीय ईसाई-महिलाएँ ही मिलती हैं, जो हिंदी-भाषा तथा भार-

श्रीमती शोभना चट्टोपाध्याय बी० ए०

तीय वेष भूषा से घृणा करती हैं। हिंदू-महिलाएँ प्रायः अँगरेज़ी नहीं जानतीं, और उनके सिर पर परदे का भूत भी सवार रहता है! इसलिये, यहाँ न तो भारतीय ढंग से शिक्षा की व्यवस्था होने पाती है, और न हिंदी द्वारा शिक्षा की उत्तम व्यवस्था ही हो सकती है। अँगरेज़ी से अनभिज्ञ मनुष्य यहाँ के समाज में मुँह दिखाने योग्य नहीं समझा जाता! उक्त दोनों स्कूल बी० डी बैलन (Madam B. de Balan) महाशया के अथक परिश्रम तथा उद्योग के फल हैं। उन्हीं के अदम्य उत्साह तथा परिश्रम से ये दोनों स्कूल स्थापित हुए थे। उक्त महिला ने अपने स्वास्थ्य की आहुति देकर इन दोनों स्कूलों की प्राण-प्रतिष्ठा की थी। पर शोक है कि उनकी स्मृति-रक्षा के लिये यहाँ के शिक्षा-विभाग के महारथियों ने कुछ भी नहीं किया! पहले सुनते थे कि बालिका-विद्यालय का नामकरण उन्हीं के नाम पर होगा; किंतु न जाने क्यों ऐसा न हो पाया!

एल्० टाउन तथा दक्षिणीय नगर-भाग में भी एक-एक
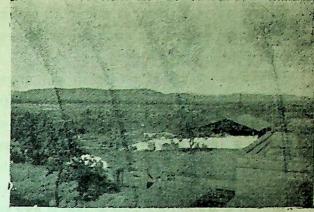
ऑफ़िस के ऊपर से एल्० टाउन और दलमा-पहाड़ का एक दृश्य

प्राथमिक पाठशाला (L. Town and G. Town Primary Schools) है। इन पाठशालाओं में हिंदी तथा बँगला द्वारा निम्न श्रेणी (Lower Primary) की प्राथमिक शिक्षा दी जाती है। एल्० टाउन-पाठशाला के साथ बंगाली लड़कियों की शिक्षा के लिये एक कन्या-पाठशाला भी है। यहाँ भी हिंदी पढ़ाने का प्रबंध होना आवश्यक है।

बालिका-विद्यालय के साथ एक अँगरेज़ी-स्कूल (English School) भी है, जिसमें ऐंग्लो-इंडियन बालिकाएँ तथा केवल अँगरेज़ी पढ़नेवाली लड़कियाँ ही पढ़ती हैं।

यहाँ एक रात्रि-वाणिज्य-विद्यालय भी है, जिसमें शॉर्ट-हैंड तथा टाइप-राइटिंग की शिक्षा दी जाती है।

एक स्कूल्स कमेटी (Schools' Committee) पूर्वोक्त स्कूलों की देख-भाल करती है। इस कमेटी में तीन महिलाएँ भी सदस्या हैं। इसके सभापति हैं मिस्टर एस्० के० सवडे (Mr. S. K. Sawday), और मंत्री मिस्टर जे० एन्० दस्तूर बी० ए० (Mr. J. N. Dastur, B. A.)। ये दोनों महाशय सदा स्कूलों की उन्नति के लिये प्रयत्न करते रहते हैं। इस कमेटी में कोई भी ऐसा सदस्य नहीं है, जिसे हिंदी से स्वाभाविक सहानुभूति हो!

इन स्कूलों को छोड़ और भी लोअर-प्राइमरी पाठशालाएँ हैं, जिनका प्रबंध कंपनी के हितकारी-विभाग (Welfare Department) के अधीन है। इन पाठशालाओं में निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। ऐसे स्कूलों

की संख्या १०-१२ है। कंपनी की खानों पर भी ऐसे-ऐसे स्कूल हैं। इन स्कूलों की देख-भाल के लिये एक निरीक्षक (Inspector) नियुक्त है।

विवेकानंद-सोसाइटी की ओर से भी यहाँ दो-एक पाठशालाएँ हैं, जिनमें अछूत बालकों को मुफ़्त में शिक्षा दी जाती है। कंपनी के सभी स्कूलों में अछूत जातियों के बालक बे-रोकटोक शिक्षा प्राप्त करते हैं। उक्त सोसाइटी का भवन तथा मंदिर शीघ्र ही बननेवाला है। स्वामी अभेदानंदजी ने उस दिन इसकी नींव रक्खी है। इस सोसाइटी के सभासदों ने गत हैज़े के दिनों में बहुत ही प्रशंसनीय कार्य किया था। भारत के प्रत्येक ग्राम में ऐसी सोसाइटियाँ संगठित होनी चाहिए। देहातों में ऐसी निस्स्वार्थ एवं वास्तविक सेवा करनेवाली सोसाइटियों की बड़ी आवश्यकता है।

उपर्युक्त स्कूलों के लिये कंपनी महीने में प्रायः ६ हज़ार रुपए व्यय करती है। इस काम में सरकार से भी ६००) रुपए की मासिक सहायता मिलती है।

भारतीय औद्योगिक कमीशन (Indian Industrial Commission) ने अपनी रिपोर्ट के १३०वें पैराग्राफ़ में यहाँ पर एक राजकीय धातु-तत्त्व-शोधन-विद्यालय (Imperial Metallurgical Research Institute) स्थापित करने की अनुमति दी है; परंतु यह अभी तक स्थापित नहीं हुआ। हाँ, उसी रिपोर्ट के १७२वें पैराग्राफ़ के अनुसार यहाँ पर प्रांतीय औद्योगिक विद्यालय स्थापित हुआ है, जिसका नाम टेक्निकल इंस्टीट्यूट (Technical Institute) है। इसमें प्रतिवर्ष कम-से-कम आइ॰ एस्-सी॰(I. Sc.)-परीक्षा में उत्तीर्ण २४ युवक भरती किए जाते हैं। ये तीन साल तक शिक्षा प्राप्त करते हैं। शिक्षा पाते समय इन्हें ६०) रु॰ की मासिक वृत्ति मिलती है, और महीने में दो सप्ताह कार्यालय में व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त करनी पड़ती है। तीन साल शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद ऐसे छात्रों को कारख़ाने में नौकरी मिलेगी। प्रारंभिक वेतन २००) रु॰ होगा। सन् १९२४ के अंत में प्रथम दल निकलेगा। तीन लाख रुपए की लागत से यह स्कूल खुला है, जिसमें बिहार-सरकार से एक लाख रुपए मिले हैं। साल में प्रायः पौने दो लाख रुपए का ख़र्च है, जिसमें १० वर्ष तक बिहार-सरकार से २५ हज़ार वार्षिक मिलेगा। भारत के अन्य प्रांतों की सरकारों से भी कुछ सहायता मिलने की आशा है। इसमें भरती होने के संबंध में जिन महाशयों को कुछ विशेष बातें जानने की इच्छा हो, वे कृपा कर इसके संचालक (Director) से पत्र-व्यवहार करें। इसमें भारत के सभी प्रांतों के विद्यार्थी लिए जाते हैं।
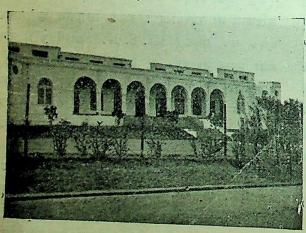
टेक्निकल इंस्टीट्यूट

सभा-समितियाँ

यहाँ पर भारत के प्रायः सभी प्रांतों के निवासी जीविकोपार्जन कर रहे हैं। जहाँ तक जिससे हो सका है, सबने अपने-अपने आमोद-प्रमोद का प्रबंध किया है; पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम हिंदी-भाषियों के मनोविनोद का यहाँ कोई भी साधन नहीं है, और न कुछ होने की आशा देख पड़ती है! न्यूनसंख्यक अन्य-प्रांत-वासियों ने अपनी भाषा तथा अपने समाज की उन्नति और अपने मन-बहलाव के लिये अनेक उपाय किए हैं। हमने एक बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलन से यहाँ पर एक उपदेशक भेजने के लिये प्रार्थना की थी, पर फल कुछ भी नहीं हुआ!!

यहाँ पर स्व॰ लोकमान्य तिलक महाराज का स्मारक-स्वरूप एक पुस्तकालय है। उसमें अँगरेज़ी, हिंदी तथा अन्य भाषाओं की थोड़ी-बहुत पुस्तकें मौजूद हैं। कुछ पत्र-पत्रिकाएँ भी आती हैं। ताता-कंपनी के जेनरल मैनेजर मिस्टर टी॰ डब्ल्यू॰ टट्विलर (Mr. T. W. Tutwiler) ने इसकी नींव रक्खी थी, और आर्थिक सहायता देकर स्वर्गीय लोकमान्य के प्रति

आदर्श श्रद्धा प्रकट की थी। श्रीयुत लाला बैजनाथ एम्० एल्० सी० इस पुस्तकालय की उन्नति के लिये बहुत परिश्रम करते हैं। आप ही इसके सभापति हैं।

यहाँ "मिलनी"-नामक एक वंगीय समिति है।
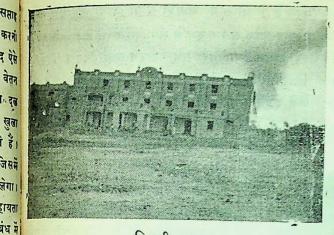
मिलनी-भवन

इसकी नवीन अभिनय-शाला बहुत ही उत्तम बनी है। इसका प्रधान उद्देश्य बँगला के नाटक खेलना तथा बँगला-साहित्य की उन्नति करना है। एक 'बँगला-साहित्य-सभा' भी है। यहाँ के निवासियों पर बँगला-साहित्य की उपयोगिता और महत्ता प्रकट करने के लिये यह सभा स्तुत्य कार्य कर रही है।

महाराष्ट्र-हितकारी-मंडल का प्रधान उद्देश्य उचित रीति से हिंदू-धर्मोत्सव मनाना तथा महाराष्ट्र-साहित्य की उन्नति करना है। हम हिंदीवालों को इस मंडल का कृतज्ञ होना चाहिए; क्योंकि इस मंडल के सभासद् हिंदी-नाटक खेलकर यहाँ हिंदी का अस्तित्व बनाए रखने का प्रयत्न किया करते हैं। इस मंडल के प्राण श्रीयुत वी० जे० साठे हैं। आप परोपकार के लिये तन-मन-धन से सदा कटिबद्ध रहते हैं। इनके-जैसे सच्चे कार्यकर्ता यहाँ पर बहुत कम हैं। आप बड़े ही स्वार्थत्यागी, निडर और उदाराशय पुरुष हैं।

यहाँ श्रमजीवियों का भी एक संघ है, जो सन् १९२० की हड़ताल के समय स्थापित हुआ था। यह भी इन्हीं श्रीयुत साठेजी की दृढ़ता का फल है कि इस संस्था का अस्तित्व आज तक बना हुआ है। और भी, अनेक छोटी-मोटी संस्थाएँ हैं।

श्रीयुत वी० जे० साठे

धर्म-स्थान (Religious places)

यहाँ पर ईसाइयों के तीन गिरजाघर (Churches) हैं। ४-५ मसजिदें भी हैं। हमारे सिख-भाइयों ने एक सुंदर 'गुरुद्वारा' भी बना लिया है। किंतु यद्यपि हिंदुओं की संख्या सबसे अधिक है, तथापि यहाँ उनका एक भी उल्लेखनीय मंदिर नहीं !! हाँ, दो-एक पुजारियों ने अपने उद्योग से, अपने भरण-पोषण के लिये, दो-एक छोटे-मोटे मंदिर बना लिए हैं। अब आप ही कहिए, हिंदू-धर्म तथा हिंदी की उन्नति की आशा कैसे की जा सकती है ? ईसाई मिशनरी यहाँ के आदि-निवासियों को धर्मच्युत कर रहे हैं; पर हम हिंदू कान में तेल डालकर ग़फ़लत की नींद सो रहे हैं। हम इन मिशनरियों के कृतज्ञ हैं; क्योंकि इन्हीं की कृपा से छोटा नागपुर के आदिम निवासियों ने हिंदी पढ़ना तथा कपड़ा पहनना सीखा है। उस दिन जब हम लोग एक निकटस्थ ग्राम में गए थे, तो देखा, इनके घरों की स्त्रियाँ कपड़े सीने की मशीन (Singer Sewing Machine) से कपड़े सी रही थीं। कहिए, हम लोग

अपने इन पिछड़े तथा बिछड़े हुए भाई-बहनों के लिये क्या कर रहे हैं ?

हमें किसी धर्म से घृणा नहीं । हम लोग सभी धर्मों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं; परंतु धर्म-परिवर्तन करानेवाली संस्थाओं (Agencies) के हम किसी दशा में पक्षपाती नहीं हैं ।

नगर-प्रबंध

यहाँ का नगर-प्रबंध प्रशंसनीय है । कंपनी इस कार्य के लिये भी जी खोलकर व्यय करती है । मिस्टर के० एस० पंडाले (Mr. K. S. Pandalai) वर्तमान प्रधान नगराध्यक्ष (Town Administrator) हैं । आप ट्रावंकोर-निवासी हैं । एक साधारण पद से उन्नति करते-करते इस प्रधान पद पर पहुँचे हैं । इनसे पहले इस पद पर एक अवसर-प्राप्त सिविलियन मिस्टर एस० के० सवडे (Mr. S. K. Sawday) थे । आप महाशय आजकल सेल्स-मैनेजर(Sales' Manager) हैं ।

मिस्टर के० एस० पंडाले

मिस्टर पंडाले बड़ी कुशलता से अपना कार्य-संपादन करते हैं । जो काम आपको सौंपा जाता है, उसे आप उत्साह-पूर्वक सुचारु रूप से संपादित करते हैं । आप पहले यहाँ टाउन-इंजीनियर तथा टाउन-सुपरिंटेंडेंट (Town Engineer and Town Superintendent) थे । पीछे इंजीनियरिंग तथा सिविल-विभाग पृथक्-पृथक् कर दिए गए थे । आजकल प्रधान टाउन इंजीनियर(Chief Town Engineer) मिस्टर एफ़० सी० टेंपल हैं । यह महाशय ६ महीने की छुट्टी पर हैं, और मिस्टर पंडाले ही इस विभाग की देख-रेख करते हैं । इनके समय में नगर की काफ़ी उन्नति हुई है । ताता-कंपनी भारतवासियों को भी ऊँचे-ऊँचे ओहदे भी दे रही है ।

कंपनी की एक गोशाला भी है । इससे नगर-निवासियों को दूध और मक्खन आदि उचित मूल्य पर मिलता है । इसी के साथ एक कृषि-विभाग भी है । यहाँ बाज़ार में साग-तरकारी बहुत ही महँगी मिलती है । इसका कारण यह है कि यहाँ पर ये सब चीज़ें पैदा नहीं होतीं, बाहर से आती हैं । अतएव कंपनी ने अपने कर्मचारियों के सुबीते के लिये ही यह कृषि-विभाग खोला है ।

नगर-प्रबंध के लिये बोर्ड ऑफ़ वर्क्स (Board of Works) नाम की एक संस्था है । यह ठीक म्युनिसिपैलिटी-सी है । अभी तक इस संस्था ने अपना कार्य यथेष्ट रूप से आरंभ नहीं किया है । किंतु उसमें जितना विलंब हो, उतना ही अच्छा ; क्योंकि सुनते हैं, जब यह अपना काम शुरू करेगी, तब इसका सबसे पहला काम हम ग़रीबों पर नाना प्रकार के 'कर' लगाना ही होगा

कंपनी के कर्मचारियों तथा यहाँ की सर्व-साधारण जनता का एक सहयोग-समिति-कोष (Co-operative Stores) है ; पर उससे केवल बड़े आदमी ही विशेष लाभ उठा सकते हैं ; क्योंकि उसमें प्रायः ऐसे ही सामान अधिक हैं, जिनसे केवल पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी ही लाभान्वित हो सकते हैं।

Tieso General Co-operative and other Departmental Credit Societies-नामक संस्थाओं से केवल पूर्वोक्त संस्था के हिस्सेदार ही सूद पर रुपए ऋण ले सकते हैं । ऐसी संस्था के स्थापित होने से बहुत-से लोगों ने काबुली महाजनों के सर्वनाशकारी पंजे से छुटकारा पाया है।

यहाँ के अन्य कार्यालयों के विषय में फिर कभी लिखेंगे ; क्योंकि यह लेख बहुत ही बढ़ गया है। यहाँ केवल यही कह देना चाहते हैं कि किस कारख़ाने में क्या बनता है—
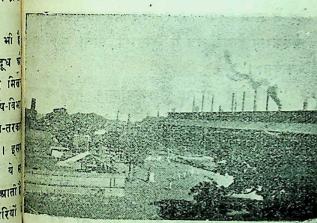
ताता-कंपनी के लोह-कार्यालय का एक भाग

(१) ताता के लोह-कार्यालय में रेल, गार्डर, छड़, बीम, चद्दरें तथा फिश-प्लेट (जो दो रेलों को जोड़ने के काम में आता है) बनते हैं । जब नए कारख़ाने तैयार हो जायँगे, तो लोहे तथा इस्पात की और वस्तुएँ भी बनने लगेंगी।

(२) ह्यूम-पाइप के विषय में पहले लिख चुके हैं ।

(३) एग्रिकल्चरल कंपनी के कारख़ाने में कृषि-संबंधी हथियार और खानों में काम आनेवाले फावड़े आदि भी बनते हैं । यह भी एक बड़ा कारख़ाना है।

(४) टिन-प्लेट-कंपनी के कारख़ाने में किरासन तेल के कनस्तरों के लिये टीन बनाया जाता है ।

(५) केबूल-कंपनी के कारख़ाने में बिजली के तार बनते हैं ।

(६) एनमिल-वर्क्स में तामचीनी के बर्तन बननेवाले हैं ।

(७) वायर प्रोडक्टस् कार्यालय में तार-काँटी (Wire nails) आदि चीज़ें बनती हैं । जब ताता-कंपनी अपने नए कारख़ाने में तार बनाने लगेगी, तब इसे सुविधा होगी । अभी तो यह कंपनी विदेश से ही तार मँगाती है ।

(८) लोकोमोटिव-कारख़ाने में रेलवे के एंजिन आदि बननेवाले हैं ।

(९) कालमोनी-वर्क्स में सब प्रकार के ढलाई के काम होते हैं । विशेषकर जूट-मिलों के लिये कलें अधिक बनती हैं ।

(१०) आर० आर० ऑयल-मिल्स में सरसों और तीसी आदि के तेल तैयार होते हैं । इसमें औटा (उबाला) हुआ तीसी का साफ़ तेल (Boiled Linseed Oil) तथा साबुन भी बननेवाला है ।

(११) जोसेप-कंपनी के कारख़ाने में स्थानीय कंपनियों के लिये लोहे का सामान बनता है ।

उक्त सहायक कंपनियों में एग्रिकल्चरल, केबूल तथा टिन-प्लेट नाम की कंपनियों की अवस्था अच्छी है । ये कारख़ाने भारत में प्रथम श्रेणी के हैं ; पर न-जाने क्यों यहाँ के बने हुए सामान विदेशी सामानों से महँगे पड़ते हैं !

भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक प्रांत के निवासी यहाँ कमाने-खाने के लिये आए हैं । यहाँ सब भाई-भाई की तरह मिल-जुलकर कार्य करते हैं । भारत में यही एक ऐसा स्थान है, जहाँ जाति-पाँति का बंधन ढीला करके ब्राह्मण और क्षत्रिय भी लुहार तथा कारीगर बन गए हैं । यह नगर श्रीजगन्नाथ-धाम के समीप होने के कारण स्वयं भी एक 'आधुनिक औद्योगिक धाम' बन गया है । सबसे बढ़कर संतोष की बात यह है कि यहाँ एक प्रांत की स्त्रियाँ दूसरे प्रांत की स्त्रियों से हिंदी में ही वार्तालाप करती हैं । वास्तव में यह स्थान हिंदी-प्रचार के लिये बहुत ही उपयुक्त है ।

यहाँ के टिस्को-होटल (Tisco Hotel) में बड़े लोग ठहरते हैं। साधारण भारतीयों के लिये भी कंपनी ने एक स्वदेशी पथिकाश्रम (Indian Rest House) बना दिया है। इसमें ठहरनेवालों को कुछ भाड़ा देना पड़ता है। पश्चिमी ढंग के होटल शहर के उत्तरीय भाग में तथा 'इंडियन रेस्ट हाउस' दक्षिणीय भाग में है। *

जोखू पांडेय

प्राचीन देवतों पर नई विपत्ति †

आज स्वर्गलोक से प्रायः सभी देवतों ने अपने-अपने इस्तीफ़े लिखकर पितामह ब्रह्मा के पास पेश किए। ब्रह्मा बड़े चकराए। उन्होंने सबको बुलाकर वैदिक भाषा में, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित के संयोग से, अपनी स्पीच शुरू की। वह अपने चारों सिर हिलाकर बोले—"भो भो देवगणाः शृणुत। यदि मैंने इस्तीफ़ा दिया, तो मेरी बात और है। आप लोग क्यों ऐसा करते हैं ? मैंने तो इस समस्त सृष्टि की रचना तथा वेदों का प्रणयन कर चुकने के बाद अब पेंशन ले ली है। यहाँ तक कि अब मुझसे कुछ फल पाने की आशा छोड़कर लोगों ने मेरी पूजा भी बंद कर दी है। लोगों ने मेरी पहली रचना विश्व और दूसरी रचना वेद, दोनों की, अपनी-अपनी भाषा में, समालोचना शुरू कर दी है। कोई कहता है—'रचना तो बुरी नहीं है, पर यदि कुछ काल बाद लिखी जाती, तो अच्छी था।' कोई कहता है—'अ[गर] प्रूफ़-संशोधन का भार मेरे ऊपर होता, तो ज[गह-] जगह छापे की इतनी ग़लतियाँ न होतीं।' मैं [चुप] होकर रह जाता हूँ। मन-ही-मन उन्हें संबोधन [कर] कहता हूँ—'बाबा, ज़रा यह भी तो सोचो [कि] यह मेरी प्रथम रचना है। तुम लोग मुझसे क[हीं] अधिक परिपक्व हो गए हो। मेरे समय में आ[ज-] कल की तरह विश्वविद्यालय तो थे ही नहीं, मुझे सब-का-सब अपने मन ही से गढ़ना प[ड़ा] है। अगर तुम लोग ज़रा समझ-बूझ[कर] जन्म-ग्रहण करते, तो तुम्हारी समालोचना सु[न-] कर मैं अनंत ज्ञान प्राप्त करता। तुम्हारे स्थापि[त] किए हुए आदर्श (Standard) पर चलने का [भी] प्रयत्न करता। पर दुर्भाग्य से तुम लोगों ने बहु[त] देर में जन्म लिया। ख़ैर, अब जब इसका दूस[रा] संस्करण होगा, तब मैं तुम्हारी बातों को या[द] रक्खूँगा।'

"कोई-कोई तो यह भी स्वीकार नहीं कर[ते] कि यह विश्व और ये वेद मेरी रचनाएँ हैं।

"राम-राम ! मैंने इस दीर्घ जीवन में ये दो [ही] महापाप किए थे, जिनके कारण यह सब सुन[ना] पड़ रहा है।

"अस्तु। जो कुछ हो। यह तो हुई मे[रे] अपमान की बात। किंतु तुम सब लोग कि[स] दुःख या किस अपमान के कारण अपने ब[हु-] कालीन पदों को छोड़ रहे हो, ख़ासकर जब [कि] तुम्हारी पेंशन का समय नज़दीक आ रहा है?"

तब वैदिक देवता, पौराणिक देवता और ग्रा[म-] देवता आदि सभी, कोई त्रिष्टुप्-छंद में और को[ई] अनुष्टुप्-छंद में, इस प्रकार कहने लगे— "भगवन् ! साइंस(विज्ञान)-नामक एक न[ए] दानव ने हम सब पर बड़ा भारी ज़ुल्म शुरू [किया]

* श्रीयुत शंकरराव कत्रे ने इस लेख के साथ प्रकाशित चित्रों का संग्रह कर देने की कृपा की है। एतदर्थ लेखक आपका बड़ा ही कृतज्ञ है।

† यह श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर के एक लेख का अनुवाद है।—संपादक

दिया है। इस दानव के सामने हमारे शत्रु वृत्रासुर आदि कोई चीज़ न थे। वे सब इसका पासंग हैं।"

वृद्ध पितामह मन-ही-मन हँसे, और सोचने लगे। फिर अपने चारों सिर हिलाकर वह बोले—"हाँ, फिर।"

इस पर सुर-गुरु बृहस्पति ने अपनी स्पीच इस तरह शुरू की—"आर्य, मैं शत्रु से उतना नहीं डरता, जितना मित्र से; क्योंकि मित्रों ही ने विपत्ति बढ़ा रक्खी है। उसी की चिंता है। साइंस या विज्ञान-नामक एक हमारा नया शत्रु खड़ा हो गया है। अभी तक हम लोग मनुष्य-हृदय के सिंहासन पर आरूढ़ थे। पर अब मनुष्यों ने विज्ञान से गुप्त संधि करके उसे प्रधान स्थान दे दिया है, और हम उस सिंहासन से च्युत करके एक बहुत ही गंदी और तंग जगह में रख दिए गए हैं। उन लोगों का हम पर से बिलकुल विश्वास ही उठ गया है। वे कहते हैं—'देखो तुम लोगों का कितना गौरव था। भाग्य-वश हम लोगों में से कुछ लोग बुद्धिमान् थे। नहीं तो स्वर्ग या मर्त्यलोक में, कहीं भी तुम्हारा स्थान न रह जाता। हम लोगों ने यह विचार कर लिया कि अगर तुम लोग और कहीं न रहोगे, तो कम-से-कम वैज्ञानिक व्याख्या में तो अवश्य होगे। प्रतिवाद करके तुम लोगों को उस स्थान से हटाने की सामर्थ्य रखनेवाला कोई भी बुद्धि-मान् पुरुष अभी तक नहीं पैदा हुआ। मीन, कूर्म वगैरह अवतारों को हमने अपने विकास-वाद (Evolution theory) में शामिल कर जीवित रक्खा है। देवतों के उद्धार के लिये हम लोग इस तरह प्राण-पण से चेष्टा करते हैं; फिर भी तुम लोगों को कुछ नहीं समझ पड़ता।'

"भगवन्, अभी तक तो ऐसा था कि कभी-कभी दैत्य लोग ज़रूर तंग किया करते थे; पर हमारा देव-पद तो स्थिर था। मगर अब तो हम विकास-वाद में शामिल कर लिए गए हैं।

"हे प्रभो, आपने हमारी सृष्टि की है, अतः आप अच्छी तरह जानते हैं कि हम लोग कौन हैं। परंतु जिन लोगों ने आजकल आपसे भी अधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उनसे हमारी रक्षा कीजिए। आपने हमें आशा दी थी कि तुम लोग अमर हो। पर यदि कुछ दिन और इसी तरह मनुष्य लोग हमारी व्याख्या करते रहेंगे, तो वह आशा व्यर्थ हो जायगी।"

गुरुराज बृहस्पति की इस स्पीच के उत्तर में पितामह ब्रह्मा कुछ न कह सके। वह केवल अपने चारों सिर झुकाकर बैठे रहे।

इसके बाद देवता लोग अपनी-अपनी तबदीली की प्रार्थना करने लगे। वे अपना-अपना पद छोड़कर दूसरे पदों पर बदल दिए जाने की दरख़्वास्त देने लगे। विज्ञ देवता प्रजापति और बाल-देवता मदन सभा में खड़े होकर बोले—"आप सब लोगों को मालूम है कि अभी तक विवाह-डिपार्टमेंट (विभाग) में हम लोगों का बहुत कुछ काम था। यद्यपि कुछ बँधा हुआ हिस्सा तो न मिलता था, पर इस विभाग में कुछ-न-कुछ मिल ही जाता था। किंतु टकसाल (Mint)-नामक स्थान से पूर्ण-चंद्राकार, शुक्ल-वर्ण मुद्रा-नामक देवता ने निकलकर एकदम हमारा स्थान छीन लिया है। अब विवाह-विभाग (Marriage Dept.) उसने अपने क़ब्ज़े में करके हम लोगों को निकाल बाहर कर दिया है। अतः आज से यह विभाग उसी के नाम लिख दिया जाय। मनुष्य लोग उस रौप्य-मुद्रा की इस प्रकार स्तुति करने लगे हैं—

"शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ;
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ।"

एक देवता—(बीच ही में छेड़कर) "व्याख्याता सज्जन ने मुद्रा महाशय को चतुर्भुज कहा, यह हम लोगों की समझ में न आया । देवतों में चतुर्भुज विष्णु ही हैं । रौप्य-मुद्रा उन्हीं का अवतार तो नहीं है ?"

मदन—"आपने बहुत ठीक समझा । आजकल विष्णु भगवान् के इसी ग्यारहवें अवतार की पूजा होने लगी है । इस युग का यही प्रधान अवतार और आराध्य देव है । इस अवतार में भगवान् ने चतुर्भुज के स्थान में अपने को चार चवन्नियों में विभक्त कर रक्खा है ।"

सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव पास हुआ कि अब से मुद्रा-देव उक्त पद के अधिकारी नियुक्त किए जायँ । लोग उन्हें elect कर (चुन) ही चुके हैं ; सिर्फ़ देव-समाज की general committee (साधारण सभा) की मंज़ूरी-भर चाहिए ।

जब देवगण ने देखा कि विना हमारी मंज़ूरी के भी वह देवता अपने पद पर स्थिर ही रहेंगे, तब अपना पद-गौरव (prestige) बनाए रखने के लिये उन्होंने मंज़ूरी दे दी ।

इसके बाद सुर-सेनापति षड़ानन ने उठकर कहा—"अभी तक संसार में केवल मैं ही भय का कारण था ; पर अब मेरा प्रतिद्वंद्वी एक और उत्पन्न हो गया है । उसने मेरा स्थान ले लिया है । अतः उस पुलीस के दारोग़ा को ही मेरा पद दे दिया जाय । मैं ख़ुशी से रिज़ाइन करने (इस्तीफ़ा देने) को तैयार हूँ । मुझे हर्ष है कि मेरा पद ऐसे सुयोग्य व्यक्ति ने अपने हाथ में लिया है । फिर आजकल संसार में अहिंसा के सिद्धांत का ख़ूब प्रचार हो रहा है । अभी मैंने सुरसमाचार-नामक पत्र में पढ़ा है कि हिंदुस्तान में एक वैश्य ने हमारे सिद्धांत को बिलकुल उलटकर अहिंसा के भाव लोगों के हृदयों में भर दिए हैं । वे लोग अब हथियारों से लड़ना आवश्यक न समझकर उनसे तरकारी काटने का काम ले रहे हैं । शत्रुओं से युद्ध करने के लिये उन लोगों ने सुदर्शनचक्र-नामक एक नए शस्त्र (चर्ख़े) का आविष्कार किया है, जिससे वे विपक्षियों को विना ऊपरी चोट पहुँचाए मार-भगाने की आशा करते हैं ।

"ऐसी दशा में मेरे इस युद्ध-विभाग की अब कोई ज़रूरत नहीं जान पड़ती । अच्छा हो कि यह post पद बिलकुल ही abolish कर दी (उठा दिया) जाय । और, यदि अभी इस पद को क़ायम रखना है, तो मेरे बताए हुए दारोग़ा या किसी क़लम-कुठार-धारी पत्र-संपादक को यह पद दे दिया जाय । उसके लिये अपना प्रिय वाहन मयूर भी छोड़ने को तैयार हूँ । वह उसके ख़ूब काम आवेगा ।"

सर्व-सम्मति से प्रस्ताव मंज़ूर हुआ । इसके बाद जलाधीश वरुण-देव ने खड़े होकर कहना शुरू किया । अश्रु-जल से वह भीग गए ; उनका गला भर आया । किसी तरह स्थिर होकर वह कहने लगे—"मर्त्यलोक में मेरा अब कुछ काम नहीं बाक़ी रहा । मेरा स्थान मेरी विरोधिनी वारुणी (मदिरा) ने ले लिया है । अब मेरी जगह उसी को लोग उदरस्थ करने में आनंद पाते हैं । पृथ्वी के अधिकारी भी इसी कार्य में सहायता देकर मेरा अपमान करते हैं ।

"एक और विपत्ति यह भी है कि मैं ही अब तक जलाधीश कहलाता था ; पर अब बड़े-बड़े जहाज़ों ने मेरा स्थान ले लिया है । अतः मैं अधिक अपमान न सहकर अपना इस्तीफ़ा पेश करता हूँ । आशा है, आप उसे स्वीकार करेंगे

देवगण ने संसार में वारुणी महारानी के Statistics (अंक) देखकर यह निश्चय किया कि अभी वरुण महाराज का कार्य बिलकुल समाप्त नहीं हुआ; क्योंकि मदिरा-मद से मत्त हुए लोगों को वही चेतना पहुँचाते हैं। फिर वरुण के शामिल हुए बिना वारुणी भी अपना राज्य विस्तृत नहीं कर सकती।

इसके बाद धर्म महाराज ने इस प्रकार अपना वक्तव्य सुनाना शुरू किया—"मैं तो अभी तक लोकाचार को अपना अधीनस्थ नौकर जानता था, पर अब उसने बिना मेरी सलाह लिए ही मनमानी शुरू कर दी है। मेरा नौकर होकर भी वह मेरे नाम से खुद ही राजा बन बैठा है। मेरा सिंहासन उसने छीन लिया है। इस दशा में, मैं अपने काम से इस्तीफ़ा देना ही उचित समझता हूँ। दूसरे, भिन्न-भिन्न धर्मवाले, इसी लोकाचार के कारण, मेरे नाम पर आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, जिसे देखकर मुझे बहुत दुःख होता है।"

सर्व-सम्मति से इस्तीफ़ा मंजूर हुआ।

तब दसो दिशाओं को अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हुए सूर्यनारायण ने कहा—"आजकल मानवों ने मेरे विरोधी बहुत-से विद्युत्-प्रकाश-रूप खद्योतों का आविष्कार कर लिया है। अब वे मेरे अभाव में भी अपना काम चला लेंगे। अतः नित्य पृथ्वी-मंडल पर मेरे चक्कर लगाने की ज़रूरत नहीं है। पृथ्वी के आरंभ से नित्य चक्कर लगाते-लगाते मैं थक गया हूँ। अतः पेंशन लेकर अपने अस्ताचल के महल में विश्राम करना चाहता हूँ। अब मेरा पहले का-सा आदर भी नहीं रहा। प्राचीन काल की तरह अब मेरी स्तुति नहीं की जाती; और न मुझे अर्घ्य ही दिया जाता है। मेरे चिरशत्रु साइंस के बहकाने से लोगों ने मुझे देव-पद से च्युत कर एक आग का गोला-भर मान रक्खा है। ऐसी अपमान-जनक स्थिति में कौन अपने पद पर रहना चाहेगा?"

देवतों ने करतल-ध्वनि से मरीचिमाली भगवान् दिवाकर का प्रस्ताव स्वीकार किया। सूर्यदेव उठकर चले गए।

चंद्रदेव, जो अभी तक मलिन मुख किए बैठे थे, सूर्य के चले जाने पर प्रसन्नता से जगमगा उठे। जब वह बोलने को उठे, तब उनकी सहज शांत, शीतल मूर्ति क्रोध के मारे कुछ लाल-सी हो उठी। उन्होंने इस प्रकार अपना वक्तव्य आरंभ किया—"अभी तक लोग रजनी-पति, निशा-नाथ आदि नामों से मेरा संबोधन किया करते थे, और ये नाम सार्थक भी थे। पर अब बिजली नाम के दैत्य ने मेरी प्रेयसी निशा पर अपना अधिकार जमा लिया है। भला यह कैसे सह्य हो सकता है? पृथ्वी के मनुष्यों ने मेरा जितना अपमान किया है, उतना किसी का नहीं। यहाँ तक कि हम देवतों के शत्रु विज्ञान का एक शिष्य मेरी हत्या करने के लिये एक यंत्र का आविष्कार कर रहा है।

"पृथ्वी के कवियों ने भी मुझे नहीं छोड़ा। हिंदी-कवियों ने तुच्छ-से-तुच्छ वस्तुओं के साथ मेरी उपमा देना शुरू कर दिया है।

"तुलसीदास ने तो मुझे 'रंक', 'मित्र-द्रोही', कुटिल', 'कलंकित' और 'निर्बल' आदि अनेक उपाधियों से विभूषित कर दिया है। सूरदास ने जो मेरी भगवान् के पद-नख से उपमा दी, वह किसी प्रकार सह्य भी हो सकती है; पर अन्य कवियों ने जो अपनी प्रेयसी के नख से मेरी उपमा दे डालने की धृष्टता की है, वह कदापि सही नहीं

जा सकती । इस अपमान के सहने से तो यही अच्छा कि मैं अपनी रोहिणी के साथ service से retire हो जाऊँ (पैंशन ले लूँ) ।"

देवगण ने चंद्र की इस शोचनीय अवस्था पर बहुत खेद प्रकट किया, और उन्हें एक लंबी पेंशन देकर उनका इस्तीफ़ा मंज़ूर कर लिया।

चंद्रदेव पेंशन लेकर भगवान् शंकर के जटा-जूट में विश्राम करने लगे। इसके बाद गाँजे का दम लगाते हुए शंकर ने कहा—"अब पृथ्वी पर गाँजा-भंग पीनेवाले मेरे बहुत-से अनुयायी हो गए हैं। अतः उन्हीं पर पृथ्वी के प्रलय का भार छोड़कर मैं भी पेंशन लेना चाहता हूँ। कार्य-भार के मारे मुझे दम लगाने का काफ़ी समय नहीं मिलता।

"पेंशन के संबंध में आप लोगों से मेरा यह निवेदन है कि मेरे बृहत् परिवार का पूरा ख़याल रखकर पेंशन निश्चित की जाय। मैं खुद पंचमुख हूँ। मेरे पुत्रों में एक तो गजानन और दूसरा षड़ानन है। हम लोगों की खुराक में क्या ख़र्च होता होगा, इसका आप लोग स्वयं विचार कर सकते हैं। फिर अनेक-मुखधारी मेरे गणों की, पार्वती के वाहन सिंह की, और मेरे वाहन नंदी की खुराक का भी विचार करना पड़ेगा। मेरे पुत्रों के वाहन मयूर और मूषक की भी कम खुराक नहीं है।"

इस पर कोषाध्यक्ष कुबेर ने उत्तर दिया कि "हमारे कोष में इस बृहत् परिवार के पालन के लिये काफ़ी रुपए नहीं हैं। अतः शंकरजी को किसी भारतीय मंदिर का महंत या किसी सार्वजनिक संस्था का कोषाध्यक्ष बना दिया जाय, जिससे इनका ख़र्च अच्छी तरह चलता रहेगा।"

सुरसभा ने कुबेर के इस amendment (संशोधन) को मंज़ूर कर लिया।

तदुपरांत शुक्लवसना, अमल-कमलासना, भगवती सरस्वती ने सभा को अपनी वीणा-ध्वनि से गुँजाते हुए यों कहना शुरू किया (सुरसभा इस की मधुर स्पीच बड़े ध्यान से सुनने लगी)—"अभी तक शिक्षा का कार्य मेरे ज़िम्मे था। पर अब मैं देखती हूँ कि वह काम मैं बिलकुल न चला सकूँगी। मेरा शासन सदा प्रेम का शासन रहा है। पर अब शिक्षा से प्रेम का संबंध बिलकुल दूर हो गया है। विदेशी भाषा में जो रूखी पुस्तकें बनी हैं, उन्हें पढ़ाकर मैं शिशुओं के कोमल मस्तिष्कों पर पत्थरों की वर्षा नहीं करना चाहती। मैं प्रस्ताव करती हूँ कि इस पद के लिये यमराज नियुक्त किए जायँ। वह इस कार्य को सुचारु रूप से चला सकेंगे।"

बीच ही में यमराज बोल उठे—"शोक है कि मैं इस कार्य को न चला सकूँगा। आप लोगों को यह सुनकर हर्ष होगा कि इस कार्य के लिये पृथ्वी पर शिक्षा-सचिव (Education Minister), इंस्पेक्टर, हेडमास्टर तथा मास्टर आदि नियुक्त हो चुके हैं। ये लोग इस कार्य को मुझसे अधिक अच्छी तरह चला सकेंगे।"

यमराज की सिफ़ारिश से शिक्षक लोगों की दमन-योग्यता में फिर किसी को कुछ संदेह न रह गया।

अधिक समय हो जाने के कारण सभापति ने सभा विसर्जित की। सब लोग करतल-ध्वनि करके अपने-अपने लोक को गए।

ब्यौहार राजेंद्रसिंह

जा सकती । इस अपमान के सहने से तो यही अच्छा कि मैं अपनी रोहिणी के साथ service से retire हो जाऊँ (पेंशन ले लूँ) ।"

देवगण ने चंद्र की इस शोचनीय अवस्था पर बहुत खेद प्रकट किया, और उन्हें एक लंबी पेंशन देकर उनका इस्तीफ़ा मंज़ूर कर लिया ।

चंद्रदेव पेंशन लेकर भगवान् शंकर के जटा-जूट में विश्राम करने लगे । इसके बाद गाँजे का दम लगाते हुए शंकर ने कहा—"अब पृथ्वी पर गाँजा-भंग पीनेवाले मेरे बहुत-से अनुयायी हो गए हैं । अतः उन्हीं पर पृथ्वी के प्रलय का भार छोड़कर मैं भी पेंशन लेना चाहता हूँ । कार्य-भार के मारे मुझे दम लगाने का काफ़ी समय नहीं मिलता ।

"पेंशन के संबंध में आप लोगों से मेरा यह निवेदन है कि मेरे वृहत् परिवार का पूरा ख़याल रखकर पेंशन निश्चित की जाय । मैं ख़ुद पंचमुख हूँ । मेरे पुत्रों में एक तो गजानन और दूसरा षडानन है । इन लोगों की ख़ुराक में क्या ख़र्च होता होगा, इसका आप लोग स्वयं विचार कर सकते हैं । फिर अनेक [illegible] मेरे गणों की, पार्वती के वाहन सिंह की, और मेरे वाहन नंदी की ख़ुराक का भी विचार करना पड़ेगा । मेरे पुत्रों के वाहन मयूर और मूषक की भी कम ख़ुराक नहीं है ।"

इस पर कोषाध्यक्ष कुबेर ने उज्र किया कि "हमारे कोष में इस वृहत् परिवार के पालन के लिये काफ़ी रुपया नहीं है । अतः शंकरजी को किसी [illegible] मंदिर का महंत या किसी धार्मिक संस्था का कोषाध्यक्ष बना दिया जाय, जिससे इनका ख़र्च अच्छी तरह चलता रहेगा ।"

सुरसभा ने कुबेर के इस amendment (संशोधन) को मंज़ूर कर लिया ।

तदुपरांत शुभ्रवसना, अमल-कमलासना, वीणा-धारिणी सरस्वती ने सभा को अपनी वीणा-ध्वनि से गुँजाते हुए यों कहना शुरू किया (सुरसभा उनकी मधुर स्पीच बड़े ध्यान से सुनने लगी) "अभी तक शिक्षा का कार्य मेरे ज़िम्मे था, पर अब मैं देखती हूँ कि वह काम मैं बिलकुल न चला सकूँगी । मेरा शासन सदा प्रेम का शासन रहा है । पर अब शिक्षा से प्रेम का संबंध बिलकुल दूर हो गया है । विदेशी भाषा में रूखी पुस्तकें बनी हैं, उन्हें पढ़ाकर मैं शिशुओं के कोमल मस्तिष्कों पर पत्थरों की वर्षा नहीं करना चाहती । मैं प्रस्ताव करती हूँ कि इस पद के लिये यमराज नियुक्त किए जायँ । वह इस कार्य को सुचारु रूप से चला सकेंगे ।"

बीच ही में यमराज बोल उठे—"शोक है कि मैं इस कार्य को न चला सकूँगा । आप लोगों को यह सुनकर हर्ष होगा कि इस कार्य के लिये पृथ्वी पर शिक्षा-सचिव (Education Minister), इंस्पेक्टर, हेडमास्टर तथा मास्टर आदि नियुक्त हो चुके हैं । ये लोग इस कार्य को मुझसे अधिक अच्छी तरह चला सकेंगे ।"

यमराज की सिफ़ारिश से शिक्षक लोगों की दमन-योग्यता में फिर किसी को कुछ संदेह न रह गया ।

अधिक समय हो जाने के कारण सभापति ने सभा विसर्जित की । सब लोग करतल-ध्वनि करके अपने-अपने लोक को गए ।

ब्योहार राजेंद्रसिंह

मुगल-सम्राट् जहांगीर

[चित्रकार—श्रीयुत रामनाथजी गोस्वामी]

जहाँगीर अकबर-सुवन, नूरजहाँ को प्रान ;
दिल्ली तखत बखत बड़ो, सुजसी मुगल महान ।

N. K. Press, Lucknow.

प्रेम का पापी

(१)

मुग़लसराय-पेशावर-मेल बरेली-स्टेशन पर आकर रुकी। मेल के रुकते ही तीन-चार टिकिट-कलेक्टर तथा स्टेशन के अन्य कर्मचारी ट्रेन से मुसाफ़िरों को उतारने लगे। यह देखकर सब मुसाफ़िर चौकन्ने हुए कि मामला क्या है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि लखनऊ से पैसेंजर आ रही थी, उसका एंजिन होम-सिगनेल के पास पटरी से उतर गया। अतएव, लाइन रुक जाने से, न मेल उधर जा सकती है, न पैसेंजर इधर आ सकती है। यह सुनकर लोगों के हवास उड़ गए। एक अँगरेज़ी-पढ़े-लिखे महाशय ने, जिनकी अवस्था २८-२९ वर्ष के लगभग थी, और जो सूरत-शकल से शरीफ़ आदमी मालूम होते थे, एक टिकिट-कलेक्टर से पूछा—क्यों साहब, क्या यहाँ पड़े रहना होगा?

टिकिट-कलेक्टर ने कहा—नहीं, पड़े रहने की कोई आवश्यकता नहीं। शाहजहाँपुर को तार गया है; वहाँ से एंजिन आता है, और वह पैसेंजर को लखनऊ लौटा ले जायगा।

वह—और यह मेल?

टि०-क०—यह फिर सहारनपुर लौट जायगी?

वह—और हम लोग कहाँ जायँगे?

टिकिट-कलेक्टर ने मुँह फिराकर कहा—आप कहाँ जाना चाहते हैं?

वह—लखनऊ।

टि०-क०—तो आप भी लखनऊ जा सकते हैं?

वह—कैसे? यह गाड़ी तो सहारनपुर लौट जायगी।

टि०-क०—आप अभी समझे नहीं। देखिए, मेल लखनऊ नहीं जा सकती; पर सहारनपुर लौट सकती है। इसी प्रकार पैसेंजर लखनऊ वापस जा सकती है। इसलिये यह प्रबंध किया गया है कि इस मेल को पैसेंजर बनाकर सहारनपुर लौटा दिया जाय, और उस पैसेंजर को मेल बनाकर लखनऊ लौटा दिया जाय। इसलिये इस मेल के मुसाफ़िर पैसेंजर में जायँगे, और पैसेंजर के मुसाफ़िर इस मेल में आवेंगे। अब आप समझ गए?

वह महाशय कुछ घबराकर बोले—हाँ, समझ तो गया, पर पैसेंजर कितनी दूर है?

टि०-क०—होम-सिगनेल के पास है—यहाँ से कोई डेढ़ फ़र्लांग का फ़ासला होगा।

वह—तो उतनी दूर असबाब कैसे जायगा? कोई कुली भी तो नहीं दिखाई पड़ता—न-जाने सब आज कहाँ मर गए!

टिकिट-कलेक्टर ने कहा—कुली तो एक भी ख़ाली नहीं है। वे इस ट्रेन की पार्सल और डाक ढो-ढोकर पैसेंजर में पहुँचा रहे और पैसेंजर के पार्सल इसमें ला रहे हैं।

वह महाशय कुछ बिगड़कर बोले—रेलवे कुलियों से अपना काम ले रही है; पर मुसाफ़िरों का कुछ ख़याल नहीं।

टिकिट-कलेक्टर ने कहा—वह काम बहुत ज़रूरी है जनाब, मेल का जाना नहीं रुक सकता। मुसाफ़िर तो आगे-पीछे भी जा सकते हैं। आप अगर असबाब ले जा सकते हों, तो ले जाइए, नहीं तो यहीं पड़े रहिए। जब लाइन साफ़ हो जाय, और कोई दूसरी ट्रेन उधर जाय, तब उसमें चले जाइएगा। परंतु लाइन आठ-दस घंटे के पहले साफ़ न हो सकेगी।

यह कहकर टिकिट-कलेक्टर एक ओर चला गया। वह महाशय बड़े परेशान हुए। क्या करें, क्या न करें। उन्होंने गाड़ी में बैठी हुई अपनी पत्नी से कहा—अब क्या करना चाहिए?—कुली कोई है नहीं, और असबाब काफ़ी है, वहाँ तक कैसे पहुँचेगा?

पत्नी—न हो, यहीं पड़े रहो। जब कोई दूसरी गाड़ी जाय, तब उसमें चले चलना।

वह—आठ-दस घंटे पड़े रहना पड़ेगा। इस तरह तो दस-ग्यारह बजे तक लखनऊ पहुँच जायँगे। ख़ाली असबाब की दिक़्क़त है—असबाब किसी तरह वहाँ तक पहुँच जाता, तो—अच्छा देखो, मैं किसी कुली को देखता हूँ।

यह कहकर वह प्लेटफ़ार्म पर इधर-उधर कुली की तलाश करने लगे। तीन-चार कुली फ़र्स्ट तथा सेकिंड क्लास के मुसाफ़िरों का असबाब ढो रहे थे। उनमें से

एक से उन्होंने कहा—क्यों भाई, हमारा असबाब भी पहुँचा दोगे ?

कुली—अभी छुट्टी नहीं है बाबू—साहब लोगों का असबाब पहले पहुँचा दें, तब देखा जायगा।

वह—अरे भाई, जो मज़दूरी साहब लोग दें, वही हमसे भी ले लेना।

कुली—मजूरी की कोई बात नहीं, टेसन-मास्टर खपा होंगे। उनका हुकुम है कि पहले साहब लोगों का असबाब पहुँचाओ।

उक्त महाशय मन-ही-मन बड़े क्रुद्ध हुए। स्टेशन-मास्टर की तो सूरत से उन्हें नफ़रत हो गई। साहब लोगों के सौभाग्य पर ईर्षा और अपने दुर्भाग्य पर क्षोभ भी हुआ। सोचने लगे—समय की बात है। रुपया-पैसा सब ख़र्चने को तैयार हैं, फिर भी कंबख़्त कुली नहीं नसीब होता। इस समय उन्हें उन लोगों पर भी ईर्षा होने लगी, जिनके इतनी हिम्मत और इतना बल था कि वे अपना असबाब सिर पर लादे दौड़े चले जा रहे थे। अपने मन में कहा—हमसे तो ये ही अच्छे! किसी की सहायता के मुहताज तो नहीं हैं। वह इधर-उधर घूमकर लौट आए, और पत्नी से बोले—कुली तो कोई नहीं है। जो दो-एक हैं भी, वे साहब लोगों का असबाब ढो रहे हैं। गोरे चमड़े के आगे काले हिंदोस्तानियों को कौन पूछता है। ख़ैर, गाड़ी से तो उतरो।

बेचारी स्त्री गाड़ी से उतरी। उसके साथ एक लड़की भी उतरी, जिसकी अवस्था १४-१५ वर्ष की होगी। लड़की अत्यंत रूपवती थी। उसके मुख की आकृति कुछ-कुछ उक्त महाशय से मिलती थी। लड़की ने कहा—भैयाजी, असबाब कैसे उतरेगा ?

वह महाशय जोश में आकर बोले—मैं ही उतारूँगा।

वह गाड़ी में चढ़ गए। काँख-कूँखकर तीन ट्रंक और एक बिस्तर का पुलिंदा नीचे प्लेटफ़ार्म पर रक्खा। असबाब उतारकर रूमाल से माथे का पसीना पोंछते हुए कहने लगे—क्या कहें, बेकार यहाँ पड़े रहना पड़ेगा। इस समय यह असबाब खल गया। उसी समय एक सुंदर तथा बलिष्ठ युवक, जिसकी उम्र २३-२४ वर्ष के लगभग होगी, दौड़ता हुआ आया, और बोला—महाशय, इस गाड़ी में मेरा छाता रह गया है—आपने तो नहीं देखा ?

वह—जी नहीं, मैंने तो नहीं देखा। आप गाड़ी में देख लीजिए।

नवयुवक गाड़ी में चढ़ गया, और ऊपर के एक बर्थ से छाता उठा लाया।

वह महाशय बोले—क्यों साहब, मिल गया ?

नवयुवक—जी हाँ। बड़ी ख़ैर हुई, किसी मुसाफ़िर की नज़र नहीं पड़ी, नहीं तो लेकर चल देता। कहिए आप कैसे खड़े हैं ? क्या पैसेंजर से आए हैं ?

वह महाशय तो भरे हुए खड़े ही थे। सहानुभूति की आशा से उन्होंने कहा—क्या कहें साहब, पैसेंजर से जाना चाहते हैं; पर असबाब ले जाने को कोई कुली नहीं मिलता।

नवयुवक—आप कहाँ जायँगे ?

वह—लखनऊ।

नवयुवक—लखनऊ तो मैं भी जा रहा हूँ। गाड़ी आधघंटे में छूट जायगी।

वह महाशय विषाद-पूर्ण स्वर से बोले—क्या करें मजबूरी है।

उसी समय पैसेंजर के मुसाफ़िर आकर मेल-ट्रेन भरने लगे।

नवयुवक कुछ देर तक खड़ा सोचता और उन महाशय के असबाब की ओर देखता रहा। तत्पश्चात् बोला—मैं आपका असबाब पहुँचा दूँगा। आप यहाँ स्त्रियों के पास खड़े रहें, मैं एक-एक करके सब चीज़ें पहुँचाए देता हूँ। मेरे एक मित्र वहाँ बैठे हैं। उनको असबाब ताकने के लिये खड़ा कर दूँगा। वह वहाँ रहेंगे, आप यहाँ रहिए, और मैं सब चीज़ें पहुँचा दूँगा। वह महाशय कुछ मुसकिराकर बोले—इस सहानुभूति के लिये आपको धन्यवाद देता हूँ; परंतु आप क्यों कष्ट करेंगे, दूसरी गाड़ी से चला आऊँगा।

नवयुवक—दूसरी गाड़ी कहीं रात को जायगी, तब तक आप यहाँ पड़े रहेंगे ? बड़ी तकलीफ़ होगी !

उन महाशय ने कहा—जी हाँ, तकलीफ़ तो होगी ही; पर क्या किया जाय ?

नवयुवक—तो आप तकलीफ़ क्यों उठावेंगे ? मैं असबाब ले जाने के लिये तैयार हूँ, तब आपको क्या आपत्ति है ? यह विश्वास रखिए, मुझे ज़रा भी कष्ट न होगा। मेरे शरीर में यथेष्ट बल है। हाँ, एक

अवश्य है। यदि आपको मुझ पर विश्वास न हो, तो दूसरी बात है।

बात भी यही थी। वह महाशय यही सोच रहे थे कि कौन जाने, यह कौन है। उठाईगीरे और ठग भी प्रायः भले आदमियों के वेष में रहते हैं। परंतु जब नवयुवक ने बहुत निर्भीकता-पूर्वक तथा भोलेपन के साथ उक्त बात कही, तो उन महाशय को कुछ-कुछ विश्वास हो गया। वह बोले— नहीं, विश्वास क्यों नहीं है। मैं यह सोच रहा हूँ कि आपको क्यों कष्ट दूँ।

'मुझे कोई कष्ट नहीं' कहकर नवयुवक ने तुरंत अपना छाता प्लेटफ़ार्म पर डाल दिया, झट एक ट्रंक उठाकर कंधे पर रख लिया, और लेकर चल दिया। वह महाशय मुँह ताकते रह गए।

पत्नी ने कहा—न-जाने कौन है, कौन नहीं। वाह, तुमने मना भी नहीं किया? कौन ऐसी जल्दी पड़ी है, रात को चले चलेंगे। अरे उसके पीछे जाओ, उस ट्रंक में मेरे और चमेली के गहने हैं। तुम्हारी तो जैसे सिट्टी-पिट्टी भूली हुई है। जल्दी दौड़ो, कहीं लेकर चल न दे।

पर उक्त महाशय ने भी दुनिया देखी थी। उन्होंने कहा— तुम तो सबको चोर ही समझती हो। यह कोई शरीफ़ आदमी है। ऐसा कभी नहीं कर सकता कि लेकर चल दे।

यद्यपि उन्हें विश्वास था कि नवयुवक कोई भला आदमी है, तथापि उनका हृदय धड़क रहा था। ईश्वर पर भरोसा किए चुपचाप खड़े देखते रहे। थोड़ी देर में नवयुवक लौट आया, और दूसरा ट्रंक ले गया। वह महाशय पत्नी से बोले—तुम समझती थीं, चोर है। यदि चोर होता, तो लौटकर आता?

पत्नी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर में नवयुवक फिर लौट आया, और तीसरा ट्रंक भी उठाकर ले गया। इस वार उक्त महाशय ने बिस्तर का पुलिंदा उठाकर अपने कंधे पर रख लिया, और अपनी पत्नी तथा बहन को साथ लेकर नवयुवक के पीछे चले।

(२)

उपर्युक्त घटना को हुए छः मास व्यतीत हो गए। ऊपर जिन महाशय का हाल लिखा गया है, उनका नाम मोहनलाल है। आप जाति के खत्री हैं। पढ़े-लिखे योग्य आदमी हैं। एक लिमिटेड-कंपनी में दो सौ रुपए मासिक वेतन पर काम करते हैं। आपके परिवार में इस समय आपके अतिरिक्त आपकी पत्नी, एक क्वाँरी बहन, आपकी माता, तथा एक पुत्र है, जिसे संसार में आए अभी केवल एक मास हुआ है।

रविवार का दिन था। बाबू मोहनलाल अपने कमरे में बैठे थे। उसी समय एक युवक आया। उसे देखते ही मोहनलाल कह उठे—आओ भाई श्यामाचरण, कहाँ रहे?

यह नवयुवक वही था, जिसने बरेली-स्टेशन पर मोहनलाल का असबाब पैसेंजर-ट्रेन में पहुँचाया था। उसी दिन से दोनों में घनिष्ठ मित्रता हो गई थी। श्यामाचरण ने एम्० ए० पास किया था। अब वह एक हाईस्कूल में, १२०) मासिक वेतन पर, सेकिंड मास्टर थे। श्यामाचरण सारस्वत-ब्राह्मण और अविवाहित थे। अपने परिवार में अकेले ही थे। उनके पिता का देहांत उस समय हो गया था, जब उनकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। जब वह बीस वर्ष के हुए, तब माता भी परम-धाम को चल दीं। वैसे बनारस में उनके चाचा-ताऊ इत्यादि रहते थे, पर श्यामाचरण उन सबसे अलग, लखनऊ में, आनंद-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे।

श्यामाचरण मोहनलाल के पास बैठ गए। मोहन ने पूछा—आजकल तुम दुबले बहुत हो रहे हो। क्या कारण है?

श्यामाचरण ने मुसकिराकर कहा—सच? मैं दुबला हो गया हूँ?

मोहन०—वाह, इसमें भी कोई मज़ाक़ की बात है?

श्यामाचरण—मुझे तो नहीं मालूम होता कि मैं दुबला हो रहा हूँ।

मोहन०—तुम्हें क्या मालूम होगा।

श्यामा०—आजकल गरमी अधिक पड़ रही है, इसी कारण कुछ खाया-पिया नहीं जाता।

मोहन०—तुम विवाह कर डालो। विना पत्नी के सुख नहीं मिलता।

विवाह का नाम सुनते ही श्यामाचरण का चेहरा कुछ उदास हो गया। उन्होंने एक दबी हुई लंबी साँस छोड़ी।

मोहन०—क्यों, विवाह का नाम सुनकर तुम उदास क्यों हो गए?

श्यामाचरण अपने को सँभालकर, मुँह पर ज़बरदस्ती

मुसकिराहट लाकर, बोले—नहीं, उदास होने की तो कोई बात नहीं है।

मोहन०—नहीं जी, कुछ बात तो अवश्य है।

श्यामा०—नहीं, बात कुछ भी नहीं है।

मोहन०—तो फिर विवाह क्यों नहीं करते ?

श्यामा०—अभी विवाह करने की इच्छा नहीं है।

मोहन०—क्यों ?

श्यामा०—ऐसे ही।

मोहन०—वाह, अच्छी 'ऐसे ही' है। कोई कारण तो अवश्य होगा।

श्यामा०—नहीं, कारण कुछ भी नहीं है।

मोहन०—कोई बात तो अवश्य है। तुम मुझसे उसे छिपाते हो। जब से मेरी-तुम्हारी मित्रता हुई, तब से मैंने कई बार तुमसे विवाह कर लेने के लिये कहा। पहले तो दो-चार बार तुमने मेरी बात पर ध्यान दिया था, और विवाह करने की इच्छा भी प्रकट की थी, परंतु इधर कुछ दिनों से विवाह का नाम सुनते ही तुम कुछ अप्रतिभ-से हो जाते हो। क्या बात है ?

श्यामा०—तुम तो बाल की खाल निकालने लगते हो। कह तो रहा हूँ, कारण केवल यही है कि अभी मेरी विवाह करने की इच्छा नहीं है, फिर भी तुमको विश्वास नहीं होता।

मोहन०—ख़ैर, तुम कहते हो, इसलिये विश्वास किए लेता हूँ।

श्यामा०—मैं कहता हूँ, इसलिये ?

मोहन०—हाँ, और क्या ?

श्यामा०—ख़ैर, मेरे कहने से ही सही; किसी तरह तो विश्वास करो।

मोहन०—चमेली के ब्याह की तिथि तो ठीक हो गई।

श्यामाचरण कुछ चौंक पड़े। कुछ सेकिंडों के लिये उनके मुख का वर्ण श्वेत हो गया; परंतु वह सँभलकर बोले—कौन तिथि निश्चित हुई ?

मोहन०—आषाढ़ में केवल एक लगन छठ की तो है ही—वही निश्चत हुई है।

श्यामा०—एक महीना समझो।

मोहन०—हाँ, और क्या।

श्यामा०—बड़ी प्रसन्नता की बात है।

× × ×

मोहनलाल की बहन चमेली का विवाह है। मोहनलाल उसी में दत्तचित्त हैं। श्यामाचरण भी उन्हें सहायता दे रहे हैं। मोहनलाल श्यामाचरण से प्रेम रखते हैं। श्यामाचरण की सज्जनता, उनके गुणों, विशेषकर उनकी सरलता तथा शुद्धहृदयता—ने मोहन को मुग्ध कर लिया है। मोहन यदि संसार में किसी को अपना सच्चा मित्र समझते हैं, तो केवल श्यामाचरण को। श्यामाचरण के लिये वह सब कुछ करने को तैयार हो सकते हैं। इधर श्यामाचरण भी मोहन से अत्यंत प्रेम रखते हैं। मोहन की मित्रता के कारण ही वह लखनऊ में केवल डेढ़ सौ मासिक वेतन पर पड़े हुए हैं। उन्हें बाहर ढाई-तीन सौ मासिक तक की नौकरी मिल रही थी; पर उन्होंने नामंज़ूर कर दिया। मोहन ने कहा भी कि अच्छा है, चले जाओ, वेतन अच्छा मिल रहा है, ऐसा अवसर क्यों खो रहे हो ?, परंतु श्यामाचरण ने यही उत्तर दिया कि मैं अकेला आदमी हूँ, मेरे लिये डेढ़ सौ ही यथेष्ट हैं। बाहर मुझे तुम्हारा-सा मित्र कहाँ मिलेगा ? यह मैं मानता हूँ कि चाहे मैं कहीं भी रहूँ, मेरी-तुम्हारी मित्रता में कभी फ़र्क़ नहीं पड़ सकता; पर मित्रता से जो सुख तथा आनंद मिलता है, वह तो दूर रहने पर नहीं मिल सकता।

चमेली के विवाह में श्यामाचरण ने खूब परिश्रम किया। एक दिन मोहन ने उनसे कहा—तुम इतना श्रम क्यों करते हो ? एक तो यों ही दुर्बल हो रहे हो, स्वास्थ्य ठीक नहीं है, उस पर इतना परिश्रम करते हो। परंतु श्यामाचरण ने मोहन की बात पर कोई ध्यान न दिया। चमेली का विवाह सकुशल हो गया।

चमेली के ससुराल चले जाने के दो दिन बाद श्यामाचरण ने मोहन से कहा—कहो, तो मैं भी कुछ दिनों के लिये बाहर घूम आऊँ। ज़रा बाहर का जलवायु मिले, तो शायद स्वास्थ्य कुछ ठीक हो जाय।

मोहन०—बड़ी अच्छी बात है। कहाँ जाओगे ?

श्यामा०—हरद्वार जाने की इच्छा है।

मोहन०—अच्छी बात है। स्थान अच्छा है, जलवायु भी अच्छा है। वहाँ कितने दिन रहोगे ?

श्यामा०—स्कूल खुलने तक वहीं रहूँगा। आठ तारीख़ को स्कूल खुलेगा। मैं छः-सात तारीख़ तक आ जाऊँगा।

मोहन०—अच्छी बात है।

(३)

चमेली का विवाह हुए छः मास व्यतीत हो गए। श्यामाचरण का स्वास्थ्य दिन-दिन बिगड़ता ही गया। यद्यपि मोहनलाल बराबर उन्हें उनके स्वास्थ्य की ओर से सचेत करते रहते थे, पर श्यामाचरण इस ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। प्रायः यही कहकर टाल देते थे कि दवा खाता हूँ, और उससे फ़ायदा भी है। परंतु यथार्थ में न तो उन्होंने किसी वैद्य अथवा डॉक्टर से अपने रोग की परीक्षा कराई, और न कभी कोई दवा ही खाई। नतीजा यह हुआ कि उन्हें शय्या की शरण लेनी पड़ी। उनकी यह दशा देखकर मोहन बड़े चिंतित हुए। वह श्यामाचरण को अपने ही घर में ले आए। डॉक्टर से उनके रोग की परीक्षा करवाई। डॉक्टर ने श्यामाचरण को भली भाँति देखा-भाला। तत्पश्चात् मोहनलाल को अलग ले जाकर उन्होंने कहा—रोग तो बड़ा भयंकर है।

मोहन ने घबराकर पूछा—क्या?

डॉक्टर—तपे-दिक़!

मोहन०—ओफ़्! फिर?

डॉक्टर—दिक़ की तीसरी अवस्था है। रोग प्रति-दिन असाध्य होता जा रहा है। पर आप घबराएँ नहीं, मैं पूरी चेष्टा करूँगा।

डॉक्टर साहब नुसख़ा लिखकर चले गए।

मोहन का चित्त बड़ा व्याकुल हुआ। उन्हें श्यामाचरण पर क्रोध भी आया कि लापरवाही करके इसने अपने हाथों अपना रोग बढ़ा लिया।

श्यामाचरण ने मोहन से पूछा—क्यों भाई, डॉक्टर ने क्या कहा?

मोहन०—कहा क्या, यही कहते थे कि जल्द आराम हो जायँगे। लापरवाही के कारण रोग कुछ बढ़ गया है।—भाई श्यामाचरण, मैं तुमसे कितने दिनों से कह रहा हूँ, पर तुम सदैव यही कहते रहे कि दवा खाता हूँ। अफ़सोस! यदि मैं ऐसा जानता, तो स्वयं अपने हाथ से तुम्हें दवा खिलाया करता। ख़ैर, कोई हर्ज नहीं—अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, तुम शीघ्र उठ खड़े होगे।

श्यामाचरण के मुख पर एक हलकी-सी मुसकिराहट दौड़ गई। दो मास तक लगातार मोहनलाल मित्र की चिकित्सा कराते रहे। वह और उनकी पत्नी, दोनों श्यामाचरण की यथेष्ट सेवा-सुश्रूषा भी करते रहे। मोहनलाल की बुरी दशा थी। वह यही समझते थे कि उनका सगा तथा परम प्रिय भाई बीमार है। मित्र की चिकित्सा में जो कुछ ख़र्च होता था, सो सब वह अपने पास से ख़र्च करते थे। यद्यपि श्यामाचरण के कुछ रुपए बैंक में जमा थे, और श्यामाचरण ने मोहन को अधिकार दे दिया था, कह दिया था कि बैंक से रुपए ले लो, परंतु मोहन ने उस रक़म में से एक पैसा भी नहीं लिया। श्यामाचरण से उन्होंने यही कह दिया कि बैंक से रुपए उठा लिए, और उन्हीं में से चिकित्सा का ख़र्च चल रहा है।

श्यामाचरण अपने प्रति मोहन का यह प्रेम देखकर कभी-कभी एकांत में रोया करते थे। कभी-कभी कह उठते थे—मोहन, तुम देवता हो, और मैं पिशाच!

इसी प्रकार कुछ दिन और व्यतीत हुए। श्यामाचरण की दशा रत्ती-भर भी नहीं सुधरी। उलटे प्रति-दिन बिगड़ती ही गई। अंत को एक दिन डॉक्टर ने मोहन से स्पष्ट कह दिया कि आप व्यर्थ इनकी चिकित्सा में रुपए नष्ट कर रहे हैं, यह अच्छे नहीं हो सकते। यह सुनकर मोहन को बड़ा दुःख हुआ। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे।

एक दिन मोहन शाम को ऑफ़िस से लौटे। पत्नी से भेंट होते ही उन्होंने पूछा—कहो, श्यामाचरण का क्या हाल है?

पत्नी ने कहा—हाल अच्छा नहीं है, घड़ियाँ टल रही हैं। आज मुझे एक बंद लिफ़ाफ़ा दिया, और बोले, भाई साहब को दे देना।

मोहनलाल बोले—कहाँ है—लाओ।

पत्नी ने मेज़ की दराज से एक बंद लिफ़ाफ़ा निकालकर पति को दिया।

मोहनलाल ने उसे तुरंत फाड़ डाला। उसमें से एक लंबा पत्र निकला। पत्र में लिखा था—

"प्यारे मोहन,

यद्यपि मैं यह पत्र अच्छी दशा में लिख रहा हूँ, परंतु तुम्हारे हाथों में उस समय पहुँचेगा, जब मेरा अंत-समय अत्यंत निकट होगा। मोहन, तुम मनुष्य नहीं, देवता हो। तुम्हारा-सा व्यक्ति जिसका मित्र हो, संसार में उसके बराबर भाग्यशाली और कौन हो सकता है? परंतु, मित्र,

चौंकना नहीं, तुमसे मित्रता करने के कारण ही आज मुझे यह संसार छोड़ना पड़ रहा है। विश्वास रक्खो, इसमें तुम्हारा लेश-मात्र दोष नहीं—दोष मेरे भाग्य का है। कारण जानने के लिये उत्सुक हो रहे होगे। कारण बताता हूँ। विचलित न होना। क्रोध न करना। शांत भाव से संपूर्ण पत्र पढ़ डालना; फिर मेरे संबंध में जो उद्‌गार तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हों, उन्हें निकाल लेना। साल-भर की बात है, जब बरेली में पैसेंजर-ट्रेन का डिरेलमेंट (पटरी से उतर जाना) हुआ था। मैं मेल-ट्रेन से लखनऊ आ रहा था। तुम भी उसी ट्रेन पर लखनऊ आ रहे थे। मैं ट्रेन में छाता भूल गया था—उसे लेने के लिये फिर लौटा। आह, मैं किस बुरी घड़ी में छाता गाड़ी में छोड़ गया था!—निस्संदेह वह मेरे जीवन की महाअशुभ घड़ी थी। कौन जानता था, छाता लेने के लिये लौटकर आना मेरी मृत्यु को इतनी जल्दी बुला लेगा। न मैं छाता लेने को लौटता, और न आज मुझे संसार से इतनी अल्प अवस्था में बिदा होना पड़ता। परंतु बिधना की रचना को कौन मिटा सकता है? छाता लेने को जाते समय मेरी तुमसे बातचीत हुई। तुम्हारी बेबसी और कष्ट देखकर मेरे हृदय पर चोट लगी। मैंने तुम्हारा असबाब ट्रेन में पहुँचाया। वही दिन—हाँ, वही अशुभ दिन था, जब मैं और तुम, दोनों मित्रता के सूत्र में बँध गए। तुमसे मित्रता होते ही मृत्यु की वक्र दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी, और उसने मुझे धीरे-धीरे अपनी ओर खींचना शुरू कर दिया।

"मोहन, मैं बड़ा पापी हूँ, इसीलिये तुम्हारे आगे अपना पाप प्रकट करते डरता हूँ। हाँ, यह जानते हुए भी कि तुम मुझसे बहुत प्रेम करते हो—यहाँ तक कि यदि मेरा पाप तुम पर प्रकट भी हो जाय, तो तुम मुझसे घृणा नहीं करोगे—मैं अपना पाप प्रकट करते डरता हूँ। परंतु उसे प्रकट किए बिना इस संसार से जाने में कष्ट होगा, इसलिये बताता हूँ—सुनो। तुमसे मित्रता होने के पश्चात् जब मेरी-तुम्हारी घनिष्ठता बढ़ी, और मैं तुम्हारे घर स्वतंत्रता-पूर्वक आने-जाने लगा, तब अचानक एक दिन मुझे ज्ञात हुआ कि मैं चमेली से प्रेम करता हूँ! देखो, विचलित मत होना, पहले पूरा पत्र पढ़ डालना। यह मेरी अंतिम भिक्षा—याचना है। हाँ, तो मुझे ज्ञात हुआ कि मैं चमेली से प्रेम क[रता] हूँ; क्योंकि जब मैं उसे देखता था, तब मेरा हृदय [मेरे] वश में नहीं रहता था। जिस दिन मुझे यह मा[लूम] हुआ, उस दिन मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। [मैंने] सोचा—एँ, यह क्या, मोहन की बहन के प्रति मेरे हृ[दय] में यह भावना! मैंने निश्चय कर लिया कि चाहे [कुछ] हो, हृदय से यह भावना निकालनी ही पड़ेगी। उ[सी] दिन से मैं हृदय से युद्ध करने लगा, और उसी युद्ध [के] परिणाम-स्वरूप आज तुमसे सदैव के लिये बि[दा] हो रहा हूँ। मोहन, तुम्हें नहीं मालूम कि मैंने कित[नी] रातें तारे गिनकर काटी हैं, कितने घंटे रो-रोकर व्यती[त] किए हैं। जो रातें तुमने सुख की नींद में व्यतीत कीं, वे ही रातें मैंने तड़प-तड़पकर बिताई हैं। परंतु इतने [पर] भी मैंने हृदय को वश में रक्खा। तुम्हारे सामने क[भी] कोई ऐसी बातचीत नहीं की, जिससे तुम कुछ सम[झ] सकते। यद्यपि मेरी शारीरिक अवस्था देखकर तुम्हें [यह] जान पड़ता था कि मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, परंतु इस[से] अधिक तुम कुछ नहीं जान सके। यह क्यों? इसीलि[ये] कि मैंने निश्चय कर लिया था, यदि हृदय किसी [...] ज़रा भी मचला, तो उसे चीरकर फेंक दूँगा, और [यदि] जिह्वा ने कोई बात कही, तो उसे काट डालूँगा। दो-[एक] बार मेरे जी में आया कि तुम्हारे चरणों पर सिर रख[कर] तुमसे सब बातें कह दूँ, और प्रार्थना करूँ [कि] यदि तुम मेरे प्राण बचाना चाहते हो, तो चमेली [का] विवाह मेरे साथ कर दो। परंतु मुझे स्वयं अपने [इस] विचार पर हँसी आती थी। सोचता था, यह कभी सं[भव] नहीं हो सकता। इस विचार को मन में लाना [भी] पागलपन है। मोहन खत्री हैं, मैं ब्राह्मण। ऐसा विवा[ह] होना कभी संभव नहीं हो सकता। ओफ़! कित[नी] वेदना, कितना कष्ट होता था। अपने जी की बात कि[सी] से कहना तो दूर रहा, उसका संकेत भी नहीं कर सक[ता] था। हृदय का दुःख कहने-सुनने से बहुत कुछ हलका [हो] जाता है; परंतु दुर्भाग्य ने मेरे साथ इतनी रियायत [भी] नहीं की। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं भीतर-ही-भी[तर] घुलता गया, और अब इस संसार से बिदा हो रहा [हूँ]। भाई मोहन, विश्वास रक्खो, मैंने बहुत चेष्टा की, हृद[य से] बड़ी लड़ाई लड़ी, परंतु प्रेम पर विजय न प्राप्त कर स[का]। मेरी पराजय हुई, और प्रेम की विजय। जिस सत[...]

आवेश में आकर प्रेम को परास्त करने के लिये ज़ोर लगाता था, उस समय निष्ठुर प्रेम, जानते हो, क्या करता था ? वह मेरी आँखों के सामने एक ऐसी मूर्ति लाकर खड़ी कर देता था, जिसे देखकर मेरे शरीर में कँपकँपी पैदा हो जाती थी, और मैं निर्बल होकर उसके सामने घुटने टेक देता था।

"मोहन, मैंने लाख चाहा कि मैं अपने जी की बात जी ही में लिए हुए चला जाऊँ ; पर नहीं, मैं इसमें भी सफल न हुआ। बिना किसी से कहे मरकर भी शांति न पीता। तुम मेरे एक-मात्र मित्र हो। हृदय की बात मित्र से न कहूँ, तो किससे कहूँ ? यही सोचकर तुमसे सब कहने के लिये विवश हो गया। मोहन, इस पत्र को तुम चमेली के भाई की दृष्टि से न पढ़ना, श्यामाचरण के मित्र की दृष्टि से पढ़ना। यदि तब भी तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति दया तथा सहानुभूति न उत्पन्न हो, घृणा तथा द्वेष ही उत्पन्न हो, तो समझ लेना, मैं महाअधम, मित्रद्रोही, तथा नारकी था, और मुझे भूल जाने की चेष्टा करना।

"मोहन, तुम सब जान गए। क्या अब भी तुम यह नहीं सोचते कि यदि मेरी-तुम्हारी मित्रता न हुई होती, तो अच्छा था। दुर्भाग्य अमृत को भी विष बना देता है। तुम्हारी मित्रता अमृत थी ; पर दुर्भाग्य ने मेरे लिये उसे विष बना दिया।

"बस, अधिक क्या कहूँ। तुमने मेरे साथ जैसा व्यवहार किया है, उससे मैं जन्म-जन्मांतर में भी तुमसे उरिन नहीं हो सकता। अंत में ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वह सबको तुम्हारा-सा मित्र दें, पर मेरा-सा दुर्भाग्य किसी को भी नहीं।

तुम्हारा अभागा मित्र
श्यामाचरण"

पत्र पढ़ते-पढ़ते मोहन की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। उन्होंने पत्र को समाप्त करके वहीं पटक दिया। दौड़ते हुए श्यामाचरण के पास पहुँचे। श्यामाचरण आँखें बंद किए पड़े थे। उनकी साँस उखड़ चुकी थी। मोहन ने उनके सिर के नीचे हाथ देकर उन्हें उठाया, और पुकारा—श्यामाचरण !

श्यामाचरण ने आँखें खोलीं, लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—मोहन !

मोहन ने श्यामाचरण के मुख पर अपना मुख रखकर कहा—भाई, मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ा।

यह सुनते ही कुछ सेकिंडों के लिये श्यामाचरण चैतन्य-से हो गए।

मोहन ने कहा—भाई, यदि तुम मुझसे पहले यह रहस्य बता देते, तो मैं चमेली का विवाह तुम्हारे ही साथ कर देता। चाहे समाज मुझे ठुकरा देता, चाहे मैं जाति-च्युत कर दिया जाता, पर तुम्हारे लिये सब सह लेता। ओफ़ ! तुमने मुझे मित्र समझकर भी मुझसे कपट किया।

श्यामाचरण ने नेत्र विस्फारित करके कहा—क्या तुम चमेली से मेरा विवाह कर देते ?

मोहन ने कहा—निश्चय कर देता।

श्यामाचरण ने एक 'आह' भरी। तत्पश्चात् अपना सिर उठाकर कहा—मोहन, तब तो मैं पापी नहीं हूँ ?

इतना कहने के पश्चात् श्यामाचरण का सिर ढलक गया। "प्रेम का पापी" शरीर-बंधन से मुक्त होकर परम-धाम को सिधार गया।

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

संसार

(१)

कोई पाकर खो देता है, कोई खोकर पाता ;
कोई सुख से हँसता, कोई निष्फल अश्रु बहाता।
कोई चिंता में निमग्न है, कोई दुख से रीता ;
कोई सोच रहा भविष्य, तो कोई अपना बीता।
अद्भुत है संसार !

(२)

कहीं उच्च प्रासाद खड़ा है, कहीं कुटीर पर्ण की ;
कहीं नित्य भोजन भी दुर्लभ, बहुता कहीं सुवर्ण की।
क्षण में रंग बदल जाता, जब रमा रूठ जाती है ;
सूना होता महल, कुटी तब कृपा-दृष्टि पाती है।
परिवर्ती संसार !

(३)

कोई भाग्य-अधीन, भाग्य का कोई स्वयं विधाता ;
कोई अलसित सोता, कोई जगकर लाभ उठाता।
होती है यदि वृद्धि एक की, अन्य देख जलता है ;
पर अपना यदि भाग्य फूटता, रिक्त हाथ मलता है।
कैसा है संसार !

(४)

कोई है परिवार मग्न, तो कोई यहाँ अकेला।
कोई देख रहा सतृष्ण-सा जग का सुंदर मेला।
कोई जीने को उत्सुक है, कोई मृत्यु बुलाता;
किंतु न वही अमर हो पाता, और न यह मर जाता।
मायामय संसार !

(५)

कोई सुख को खोज रहा है, कोई दुख से डरता;
कोई है यदि प्रेम-मग्न, तो कोई आहें भरता।
पर क्या उसको सुख मिलता है, और दुखी यह रहता?
वहाँ सदा संयोग न रहता, यहाँ वियोग न दहता।
भारी भ्रम संसार !

(६)

आशा कहीं लुभाती है, तो कहीं भाग्य है सोता;
हितकर समझ काम करते हैं, फल उलटा ही होता।
कोई कहता—यही ठीक है, कोई 'भूल' बताता;
अंत न होता मीमांसा का, तर्क मौन हो जाता।
है रहस्य संसार !

(७)

कहीं धर्म तो पीड़ा पाता, और पाप फलता है;
अन्यायी नर राज भोगते, निबल हाथ मलता है।
जिसके हुई हाथ में लाठी, वही लूट खाता है;
होता है बस, ढोंग न्याय का, स्वार्थ विजय पाता है।
उलटा है संसार !

(८)

दुख में कौन साथ देता है? साथी जगत् बने का;
कौन किसे अपना समझे? है कहाँ पता अपने का?
बाहर तो बंधुत्व झलकता, कपट छिपा है मन में;
रसना राम-राम रटती, चित् निरत स्वार्थ-चिंतन में।
स्वार्थी है संसार !

(९)

कोई कहता—'सब मिथ्या है, भ्रम है, केवल भ्रम है;
स्वार्थ, कपट, छल, लोभ, दंभ का छाया जग में तम है।
त्यागो इस माया को, चल दो किसी शून्य कानन में;
जहाँ प्रलोभन नहीं, न बाधा-विघ्न मुक्ति-साधन में।
झूठा है संसार !'

(१०)

कोई कहता—'भूलो यह सब, बढ़ो कर्म के पथ में;
यहीं परीक्षा-स्थल मानव का : यदि तम हुए विपथ में—
कुचल-कुचलकर मर जाओगे; जग उपहास करेगा;
यदि उत्तीर्ण हुए, तो सादर नाम तुम्हारा लेगा।
कर्मभूमि संसार !'

(११)

कोई कहता—'काम निरंतर करो, स्व-नाम न देखो।
हो चाहे कुछ भी फल उसका, पर परिणाम न देखो।
संभव है, तुम एक जन्म में सफल न हो, क्या भय है।
है अनंत जीवन, सत्कर्मों का फल भी निश्चय है।
है अनंत संसार !'

(१२)

पर क्या कहता कवि? भावों में डूबा केवल गाता;
सबमें प्रेम-भाव भरता है, जग को स्वर्ग बनाता।
कौन लोक में मौन हुए सुख से तब सभी विचरते!
कौन बतावे तब वे, मन में क्या हैं अनुभव करते!
छविमय है संसार !

भारती-मंदिर, कानपुर — मदनमोहन मिहिर

सोने और चाँदी का व्यापार

चौथा अध्याय ; सोने की उत्पत्ति

पहले अध्याय में यह कहा जा चुका है कि हमारा चाँदी और सोने का बाज़ार भी माँग और पूर्ति के सिद्धांत पर निर्भर है। विदेशी हुंडी का भाव इन दोनों धातुओं का स्थान-परिवर्तन कराने में बड़ा प्रभाव डालनेवाला है। अतएव पिछले अध्यायों में विदेशी हुंडी क्या है, यह समझाने की चेष्टा की जा चुकी है। अब इस अध्याय में हम सोने की माँग पर विचार करेंगे।

पौराणिक काल में ही नहीं, उसके बहुत पीछे तक भी, भारतवर्ष समस्त संसार को सोने का (शायद चाँदी, हीरे मानिक आदि मूल्यवान् वस्तुओं का भी) प्रधान दाता था। इसके कई ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं। दुर्भाग्य-वश आज का भारतवर्ष इन्हीं चीज़ों के लिये विदेशों के भरोसे है। इस देश में अब संसार की केवल एक-शतांश चाँदी और चालीसवाँ भाग सोना उत्पन्न होता है।

अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि इसके उत्पन्न करने का अधिकार भी यहाँ के निवासियों के हाथ में नहीं है; और न यहाँ उत्पन्न हुई चाँदी अथवा सोना यहीं रहता है। हमें अब यही देखना है कि संसार में कौन देश कितनी मात्रा में ये धातुएँ उत्पन्न करता है; इन धातुओं की पैदावार की क्या स्थिति अब तक रही है; इनकी पैदावार के साथ इनके भाव का संबंध कैसा रहा है इत्यादि। आगे के कई अध्यायों में इन्हीं प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् विचार किया जायगा।

भूगर्भ-विद्या-विशारदों का अनुमान है कि संसार के आदि में सिवा वाष्पमय भूत-पदार्थ के और कुछ विद्यमान न था। इसी वाष्पमय भूत-तत्त्व ने ताप-विकिरण द्वारा क्रमशः पृथ्वी आदि का आकार धारण किया। अनुसंधान से यह भी पता चला है कि पृथ्वी के केंद्र-स्थित भूत-पदार्थ अन्यत्र स्थित भूत-पदार्थों की अपेक्षा गुरु अर्थात् भारी हैं। फलतः यह अनुमान लगाया जाता है कि इन केंद्र-स्थित भूत-पदार्थों में अधिकतर सबसे भारी तत्त्व पदार्थ ही है; क्योंकि चाँदी और सोना गुरुत्व की अपेक्षा भारी पदार्थ हैं। अतएव ये भी उस वाष्पमय भूतांश में, जिससे कि हमारी पृथ्वी का जन्म हुआ है, प्रारंभ ही से विद्यमान थे।

भूगर्भ में इतने गहरे दबे हुए चाँदी-सोने-जैसे गुरु-तर पदार्थों को प्राप्त करना मनुष्य की शक्ति के लिये एक प्रकार से असंभव ही होता, यदि स्वयं उस प्रकृति ने, जिसने इन सब पदार्थों को जन्म दिया है, इन्हें ऊपर निकाल फेंकने का भार अपने ऊपर न लिया होता।

प्रकृति ने इस विषय में मनुष्य की असाधारण सहायता की, और कर रही है। उसकी इस सहायता के शस्त्र भूकंप, ज्वालामुखी आदि घटनाएँ हैं, जो क्षण-मात्र में जल के स्थान में स्थल और स्थल के स्थान में जल, पहाड़ के स्थान में गर्त और गर्त के स्थान में पहाड़ कर देती हैं। भूगर्भ-विशारदों के मत से हमारा हिमालय-पर्वत भी इसी प्रकार की एक घटना का प्रत्यक्ष उदाहरण है। ऐसी ही किसी दैवी घटना ने हमारी इन दोनों मूल्यवान् धातुओं को भूमि के केंद्रस्थ दबे हुए स्थान से निकालकर सतह पर फेंक दिया होगा, और भूगर्भ-शास्त्र के मत से यही अब इनकी खानों के पाए जाने का इतिहास है। अस्तु।

इस प्राचीन अनुसंधान के प्रश्न की उलझनों में समय नष्ट न करके यदि हम अपनी इन दोनों धातुओं के मानुषिक परिचय का इतिहास टटोलें, तो हमें जान पड़ेगा कि वह भी बड़ा प्राचीन और इतिहास के अंधकूप में डूबा पड़ा है। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' की कहावत बहुत प्राचीन है। कांचन की प्राप्ति के लिये मनुष्य ने कल्पनातीत साहस दिखाया है। यहाँ तक कि वह अपनी इंसानियत को छोड़कर कभी-कभी पाशविक ही नहीं, पैशाचिक आचरण करने में भी संकुचित नहीं हुआ। पिता, माता, भाई, स्त्री, पुत्र, पति एवं पत्नी तक इसी कांचन के फेर में पड़कर परस्पर विश्वासघात कर चुके हैं, और करते हैं ऐसे उदाहरणों से प्रत्येक देश का इतिहास भरा पड़ा है। यही नहीं, अच्छे-अच्छे दिग्गज पंडितों ने भी समय-समय पर इसकी महिमा गाई है। भौतिकता की साक्षात् मूर्ति योरप में तो इसकी उपासना ने आत्मिक उन्नति को बिलकुल ही दबा दिया है। इँगलैंड के सुप्रसिद्ध धातु-शोधक महामति अॅग्रीकोला ने अपनी पुस्तक में कई यूनानी विद्वानों की उपासनाएँ उद्धृत की हैं। उनमें से एक कहता है—"ऐ प्लूटस, तू ही सबके लिये देव है। तेरे सिवा सब मूर्खता है, वृथा वितंडा-वाद है।" दूसरा कहता है—"ऐ प्लूटस, तेरे सिवा इस संसार में और कौन सबसे सुंदर देवता है? जब तक मेरे ऊपर तेरा अनुग्रह है, तब तक चाहे मैं कितना ही दुष्ट होऊँ, सज्जन ही माना जाऊँगा।" तीसरा कहता है—"धन अर्थात् सुवर्ण ही आदमी बनाता है। जो निर्धन है, वह न तो आदमी है, और न उसकी कोई प्रतिष्ठा ही है।"

कहाँ तक कहें, यह कांचन ही मर्त्यलोक के मानवों का एक-मात्र आराध्य देव है, उनका प्राण है। जिसने इसका संग्रह नहीं किया, अथवा जो नहीं कर सका, वह इस संसार में जीवित ही मृतक समझा जाता है। भिन्न-भिन्न लोगों ने भिन्न-भिन्न वस्तुओं को अपना आराध्य देव माना है, और अब भी मानते हैं। परंतु एक विद्वान् कहता है—"मेरे विचार में वे सब भ्रम में पड़े हुए हैं। इस चराचर जगत् में मनुष्य के लिये आराधना के योग्य यदि कोई देवता है, तो केवल सोना और चाँदी ही। जो कोई अपने घर में इनकी स्थापना कर लेता है, वह सब कुछ कर सकता है। संसार के सभी पदार्थ उसके चरण-

तले रहते हैं। न्याय, सत्य, धर्म आदि सब हाथ बाँधे उसकी सेवा करते हैं।"

इसी सुवर्ण की चमचमाहट भारतवर्ष में सिकंदर-शाह, महमूद ग़ज़नवी, नादिरशाह, अहमदशाह दुर्रानी, तैमूरलंग, पोर्चुगीज़, फ़रासीसी और अँगरेज़ आदि के पदार्पण का कारण हुई है। इसी सुवर्ण की नित्य धधकती हुई तृष्णा ने अमेरिका और आफ़्रिका की असंख्य प्रजा का इस संसार से नामोनिशान मिटवाया है। इसी सुवर्ण का लोभ भारतवर्ष को अभी तक पैरों-तले दबाए हुए है, और उसे अपनी उन्नति नहीं करने देता। चीन की स्वतंत्रता का अपहरण करने के लिये भी इसी सुवर्ण का लोभ शक्तिशालियों को उसकी ओर निरंतर उभाड़ रहा है।

इस सुवर्ण का इतिहास बड़ा प्राचीन है। मनु आदि की स्मृतियों में भी सोने और चाँदी का वर्णन आया है। भारतवर्ष में हज़ारों वर्ष पहले सोने की खानों के अस्तित्व का पता चलता है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्लिनी ने अपने इतिहास में लिखा है कि डारडेनिया-निवासी ऐसे देश में निवास करते हैं, जो भारतवर्ष के सब प्रदेशों से अधिक सोने की खानोंवाला है। ऑस्सेलिया-निवासियों के पास चाँदी की खानें हैं। नारायणों के देश में, जो केपीटोलिया-पहाड़ के पश्चिम में है, चाँदी और सोने की कई खानें हैं, जिनको भारतवासी खोदते हैं। सिंधु-नदी के मुहाने पर ही क्राइसे और आरगाइरे (Chryse & Argyre) नाम के दो टापू अपनी सोने और चाँदी की खानों के कारण प्रसिद्ध हैं।

आधुनिक ऐतिहासिक यद्यपि प्लिनी के इस वृत्तांत के समय का ठीक निर्णय नहीं कर सके हैं, तथापि उपर्युक्त उदाहरण यह सिद्ध करने के लिये यथेष्ट है कि सोना और चाँदी अति प्राचीन काल से मनुष्य के व्यवहार में आ रही है। इतना ही नहीं, बरन् इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि उस प्राचीन समय में सोने की उत्पत्ति का मुख्य स्थान हमारा, आज का ग़रीब, यह भारत ही था। दक्षिण-देश, उड़ीसा, बरार एवं हिमालय से निकलने-वाली प्रत्येक नदी की रेणुका में सोने के रेणु प्रचुर परिमाण में मिलते थे, और यही उस समय सोने की प्राप्ति का एक-मात्र साधन था। सब प्रकार से समृद्धिशाली भारतवर्ष काल के प्रभाव से आज समृद्धि-शून्य हो रहा है। अब इसकी नदियों में तो कहाँ, तमाम भूमि पर भी केवल दो-तीन स्थानों में ही सोने की खानें पाई जाती हैं। बर्मा का भी शुमार अब इसी के अंदर है।

भारतवर्ष के अतिरिक्त थ्रेस में, स्पेन में और स्मर्ना में भी सोने की खानें पाए जाने का कई जगह उल्लेख मिलता है। प्राचीन फ़िनिशियों का इतिहास इन्हीं स्थानों को सुवर्ण-रहित करने के प्रयासों से भरा पड़ा है। प्रत्येक जाति ने अपनी उन्नति के समय समस्त संसार के प्रकट सुवर्ण-रौप्य-स्थानों पर अपना आधिपत्य जमाने की चेष्टा की थी। सोने एवं चाँदी का प्राचीन इतिहास बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। इस छोटे-से लेख में उसके उल्लेख के लिये यथेष्ट और उपयुक्त स्थान नहीं है।

मध्य-युग के इतिहास से पता चलता है कि पुर्तगाल में भी संवत् १२०५ विक्रमीय (सन् ११४८ ईसवी) तक अरब के लोग टागस-नदी से सोना निकालते थे। इस वर्ष पुर्तगाल-वासियों ने अरब-निवासियों को परास्त कर देश से निर्वासित कर दिया, और तब से १६०० विक्रमाब्द तक इस नदी से उन्हें लगभग ५७ लाख रुपए का सोना प्राप्त हुआ। स्पेन की गाडलकिवर, डोरा आदि नदियों में, राइन-नदी में, और हंगरी-देश में भी, यद्यपि थोड़ा-थोड़ा सोना मिलता था, परंतु वह भारतवर्ष एवं जापान की, उस समय की, सोने की पैदावार के सामने कुछ भी न था! इन पाश्चात्य लोगों को भारत और जापान के इस सुवर्ण-प्राचुर्य का परिचय वहाँ से जाने-वाले तिजारती जहाज़ों आदि से बराबर मिलता रहता था। अतएव एक विद्वान् का मत है कि कोलंबस जापान की सोने की खानों और भारतीय द्वीप-पुंजों के मसालों की प्राप्ति के ही सरल, सहज मार्ग की खोज में निकला था। वह मार्ग तो उसे प्राप्त न हुआ, परंतु बिना ढूँढ़े ही उसके परिश्रम के फल-स्वरूप अमेरिका-देश का आविष्कार हो गया।

अमेरिका का यह आकस्मिक आविष्कार उस समय किसी को इतना आश्चर्यजनक नहीं प्रतीत हुआ, और उस समय स्वप्न में भी कोई यह अनुमान नहीं करता था कि भविष्य में, इस नवाविष्कृत दुनिया के संबंध को दृढ़ करने के लिये, आजकल के ५० हज़ार टन के भारी जहाज़ भी इस दुनिया में बनाए जा सकेंगे। प्रत्युत ... इस दुनिया का प्रेम सबको फँसाता ...

गया। यह प्रेम-जाल इस दुनिया अथवा यहाँ के निवासियों से नहीं संबंध रखता था। जैसे-जैसे इस नई दुनिया में सोने-चाँदी की खानों का पता लगता गया, वैसे-ही-वैसे इधर लोग आकृष्ट होते गए। सच बात तो यह है कि इस आविष्कार ने इन दोनों, पीत और श्वेत, धातुओं के जीवन में युगांतर ही उपस्थित कर दिया। सोने और चाँदी के लालच से पाश्चात्य लोग इस नवाविष्कृत दुनिया की ओर पूर्ण रूप से आकृष्ट तो हुए, परंतु उनके उस समय के कृत्य इतने घोर पाशविक थे कि उनकी याद आज भी प्रत्येक सहृदय मनुष्य के शरीर में रोमांच उत्पन्न कर देती है। वे कृत्य इन जातियों के इतिहास में सदैव लांछन-रूप रहेंगे। सबसे बड़ा दुःख तो इस बात का है कि इन लोगों के धर्म-गुरुओं ने भी, धर्म की दुहाई देकर, इन नर-पिशाचों के कृत्यों का हृदय से अनुमोदन किया।

कोलंबस ने अमेरिका की जिस भूमि पर सबसे पहले अपना पैर रक्खा था, वह प्रांत 'हिस्पेनिओला' नाम से मशहूर है। पैर रखते ही वहाँ के निवासियों के सोने-चाँदी के गहनों की चमक से उसकी आँखें चौंधिया गईं, और वह ठीक उलूक की भाँति उस चमकते हुए सूर्य को अपने लंबे पर फैलाकर ढक देने के लिये व्याकुल हो उठा। वह चारों ओर चोर की भाँति घूर-घूरकर देखने लगा।

भोले-भाले वहाँ के आदिम-निवासी कोलंबस के साथियों की इस क्रूर दृष्टि से बेतहाशा भयविह्वल हो गए। ऐबा-प्रांत के एक स्थान में तो यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि वहाँ के राजा ने इनके आगमन की अशांति से घबराकर, अपनी समस्त प्रजा को एकत्र कर, यह उपदेश दिया कि गौरांग प्रभु जिस देव की उपासना करते हैं, उसी को प्रसन्न करने के लिये सब असह्य अत्याचार भी करते हैं। उनका वह देव कौन-सा है, यह बताने के लिये उसने चद्दर से ढकी और सोने से लबालब भरी हुई एक टोकरी खोलकर सब लोगों को दिखाई, और कहा कि यही उन सबका आराध्य देव है। इसी के लिये वे जीते और मरते हैं। इसी देवता की खोज में वे हमारे प्रांत की ओर भी आ निकले हैं। अतः इस देव को प्रसन्न करने के लिये हमें आज नाच-रंग से इसकी खूब भक्ति के साथ पूजा करनी चाहिए, जिसमें यह अपने पुजारियों से हमारी भक्ति और पूजा का वृत्तांत कहे, और हमें न सताने की सिफ़ारिश करे। इतना सुनते ही सब नाचने-कूदने लगे। जब वे सब नाच-कूदकर थक गए, तब उक्त राजा ने कहा कि ईसाइयों का यह देव यदि हमारे पास रहा, तो हमारी भी ख़ैर न होगी। अतएव इसे पत्थर बाँधकर नदी में डुबो देना ही ठीक है, जिसमें यह इतना गहरा डूब जाय कि इसकी खोज में फिर हम न सताए जायँ। यों कहने के बाद उसने सब सोने के गहने नदी में फेंक दिए।

इस हिस्पेनिओला-प्रांत से स्पेन और पुर्तगाल के निवासियों को यद्यपि १७ वर्ष में लगभग १५ लाख रुपए का ही सोना प्राप्त हुआ, परंतु हज़ारों स्पेन-निवासी मरे; और अमेरिका-निवासियों के ख़ून की तो नदियाँ ही बह गईं! कहा जाता है, इस अवधि में लगभग २२ लाख आदिम अमेरिकनों की आहुति दे दी गई। जैसे-जैसे अमेरिका के अन्य प्रांत आविष्कृत होते गए, वैसे-वैसे, उनकी सोने और चाँदी की खानों पर अधिकार जमाने के लिये, लाखों अमेरिका-वासियों की जानें ली गईं। और, सो भी उस समय, जब इन हत्याकारियों की सच्चरित्रता पर भोले अमेरिका-वासियों को पूर्ण विश्वास हो गया था। इन विश्वासघात के उदाहरणों ही से हमारा सोने और चाँदी का इतिहास बना हुआ है। परंतु लेखनी काँपती है। पनामा-प्रांत के हत्याकांड का हाल स्वयं एक पादरी ने, जो हत्या करनेवालों के साथ था, आँखों से देखकर लिखा है। उक्त पादरी साहब हत्याओं की भीषणता से इतने डर गए थे कि पाप को प्रकट किए बिना उनसे नहीं रहा गया। उनका कथन है—"एस्पीनोसा-नामक एक स्पेनिश योद्धा ने ८० हज़ार सुवर्ण-पीसो * के लिये उक्त प्रांत में ४० हज़ार अमेरिका-निवासियों की हत्या की; अर्थात् प्रत्येक क़त्ल किए गए मनुष्य से उसे केवल दो 'पीसो' प्राप्त हुए।"

'बेशक़ीमत धातुओं का इतिहास' लिखनेवाले विद्वान् लेखक डेलमर (Alex. Delmar) ने लिखा है—"जब स्पेनिशों का एक दल, सरदार पिज़ारो (Pizarro) के सेनापतित्व में, अमेरिका के एक टापू से होकर गुज़रा, तो वहाँ पर उसने एक मंदिर को लूटा, मूर्ति तोड़ डाली, और जो कुछ सोना या चाँदी मिली,

* १ पीसो लगभग ४७½ पेनी—३) रुपए—के बराबर होता है।

सब ले ली। फिर वे आगे टुंबेज़-शहर में गए। वहाँ उनकी बड़ी ख़ातिर की गई। परंतु सामने ही सात कोटवाले संगीन गढ़ को देखकर वे सहम गए, उसे एक-दम लूटने की हिम्मत न कर सके, और वहाँ अपने अनुकूल सुबीते के समय की प्रतीक्षा करते हुए अपना बल बढ़ाते रहे। दैव-संयोग से इसी अरसे में वहाँ का राजा मर गया। उसके लड़कों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। पिज़ारो ने एक का पक्ष लेकर झट पेरू-प्रांत पर चढ़ाई कर दी। जिसका पक्ष लिया था, उस राजकुँअर को मिलने की सूचना दी। बेचारा राजकुँअर ५,००० निःशस्त्र सिपाहियों के साथ मिलने गया। इन सिपाहियों के सोने-चाँदी से लदे हुए जिरह-बख़्तर देखकर पिज़ारो उनको लूटने का लोभ रोक न सका। उसने उनको लूट ही तो लिया। राजकुँअर को भी गिरफ़्तार कर लिया। राजकुमार ने यह जानकर कि इन लोगों का आराध्य देव सुवर्ण है, उस तहख़ाने को, जिसमें वह क़ैद किया गया था, अपनी ऊँचाई के बराबर सोने से भरकर अपने को छुड़ाया। कहते हैं, उस सोने की क़ीमत ५¾ करोड़ रुपए के लगभग थी।" स्पेन-निवासियों के आक्रमण के समय पेरू की जन-संख्या १½ करोड़ के लगभग थी; पर अब घटते-घटते केवल १० लाख ही रह गई है! क्या भारत पर नादिरशाह, महमूदशाह आदि के हमले इससे भी भयंकर थे?

सोने की पैदाइश में मेक्सिको, पनामा और पेरू के पश्चात् ब्रेज़िल-प्रांत का नंबर आया। यहाँ सोने के प्रथम आविष्कार के बाद लगभग १२५ वर्षों तक (स्पेन, पुर्तगाल और अन्यान्य योरपियन जातियों के पारस्परिक युद्ध के कारण) उसे प्राप्त करने का कोई निरंतर सतर्क उद्योग नहीं किया गया। परंतु जब यहाँ से बदमाशों के सिरताज लोग भी जहाज़-के-जहाज़ सोना भरकर ले जाने और अपनी मातृभूमि पुर्तगाल में पुनर्निवास करने लगे, तो सरकार ने भी करवट बदली। तभी से उक्त लूट के माल का एक-पंचमांश, बतौर राजकर के, उन लोगों से वसूल किया जाने लगा। इतना ही नहीं, किली (Kelly)-रचित मुद्रा-व्यवस्था-संबंधी पुस्तक में, इस संबंध में, इस प्रकार लिखा है कि "नदियों में पाई जानेवाली सुवर्ण-रेणु पर यद्यपि सभी का अधिकार था, परंतु उसे प्राप्त करते ही प्रत्येक मनुष्य सरकारी शोधन-गृहों में, जो हरएक प्रांत में सरकार की ओर से स्थापित थे, उसको शुद्ध करवाने के लिये क़ानूनन बाध्य था। यहाँ पर राजकर का पंचमांश रखकर बाक़ी रेणुका शुद्ध की जाती और उसका पाटला बना दिया जाता था। इस पाटले की तौल, टंच और नंबर आदि सब छापकर, बतौर प्रमाणपत्र के, मालिक को दे दिया जाता था। उस समय इस पाटले की क़ीमत १,५०० रीस प्रति $\frac{११}{१२}$ अंश शुद्ध आक्टेव की मानी जाती थी। यह पाटला फिर रियोडीज़नेरियो-शहर की सरकारी टकसाल में सिक्के ढालने के लिये भेजा जाता था। इस टकसाल में यह सोना ऊपर-लिखे भाव से लिया जाता था। परंतु लौटाते समय सिक्के १,६०० रीस प्रति $\frac{११}{१२}$ अंश आक्टेव के भाव से दिए जाते थे। इस प्रकार राजकोष में, सुवर्ण-रेणु के पंचमांश भाग के अतिरिक्त, लगभग ६२ प्रति-शत का और लाभ रहता था।" ब्रेज़िल की सुवर्णोत्पत्ति के संबंध में आबे रयनाल (Abbe Raynal) का मत है कि संवत् १७४७ से १८१३ विक्रमाब्द तक लगभग १ अरब ४४ करोड़ रुपए का सोना स्पेन पहुँच चुका था। इसी अनुमान पर एक और अर्थशास्त्रज्ञ ने अनुमान किया है कि संवत् १७३७ से १८६० तक ब्रेज़िल की सोने की पैदावार लगभग २७ अरब और ६६ करोड़ रुपए की होनी चाहिए। इतिहासज्ञ डेलमार के हिसाब से यह उत्पत्ति अत्युक्ति-पूर्ण है। वह संवत् १७२५ से १८३७ वि० तक की पैदावार कुल २७ अरब रुपए की आँकता है।

अमेरिका के आविष्कार ने जिस प्रकार, संवत् १५५[illegible] विक्रमाब्द में, सुवर्ण की पैदावार में युगांतर उपस्थित कर दिया था, ठीक उसी प्रकार संवत् १९०५ वि० की घटनाओं ने भी युगांतर कर दिया। उस समय तक सुवर्ण की वार्षिक आय लगभग १५ करोड़ रुपए की कूती जाती थी। इस वर्ष अमेरिका के केलीफ़ोर्निया-प्रांत और आस्ट्रेलिया में सोने की अक्षय खानें निकल आईं। अमेरिका की इन खानों का परिचय इस समय कोई नया नहीं मिला था। कोर्टीज़ योद्धा ने भी, जो संवत् १५७५ विक्रमी में स्पेन से काफ़ला लेकर अमेरिका आया था, इन खानों का वर्णन किया था। ये खानें उस समय तक न-जाने किस कारण से छिपी पड़ी रहीं। जिस कोर्टीज़ ने अपने चाँदी की खानों पर क़ब्ज़ा जमाने के लिये अत्याचार

की हद कर दी थी, उसी ने इन खानों को जानकर भी अपने अधिकार में लाने की चेष्टा नहीं की, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इन खानों में इतना माल निकला कि तीस ही वर्ष में इनकी सोने की कुल आमदनी लगभग ३३ करोड़ रुपए तक पहुँच गई। तब से ये खानें सुवर्ण-संसार में एक प्रधान उपजाऊ खानें रही हैं। अमेरिका की सभी खानों में, पैदावार में, इनका प्रथम स्थान है। इस देश की दूसरी उपजाऊ खानें कोलेरडो और अलास्का-प्रांतों में हैं। केलीफ़ोर्निया और अलास्का-प्रांतों की खानों की पैदावार बढ़ाने में इस प्रांतों की नदियों में डाले गए बड़े-बड़े यांत्रिक जाल, जैसे कि समुद्र में मछलियाँ पकड़ने को डाले जाते हैं, बड़े सहायक हुए हैं।

इसके यद्यपि कई प्रमाण हैं कि आस्ट्रेलिया की नदियों में सोना रेणु-रूप से प्राचीन काल ही से मिलता चला आता था, परंतु वहाँ के आदिम निवासियों ने लगकर उसे निकालने की कोई चेष्टा नहीं की। संवत् १८९७ विक्रमीय के लगभग काउंट स्ट्रेलेकी (Count Strgelecke) ने इन नदियों में सोना होने की सूचना सरकार को दी। परंतु वह उस समय चुप कर दिया गया। इसका कारण यह था कि वहाँ पर उपनिवेश बसाया जा रहा था, और उसके लिये लगभग ४५,००० आस्ट्रेलियन गिरफ़्तार किए जा चुके थे। इस समाचार से उन क़ैदियों में अशांति फैलने की पूरी आशंका थी। संवत् १९०८ विक्रमीय में श्रीयुत हारग्रीवस ने सिडनी-शहर के १०० मील पश्चिम बसे हुए बाथहर्स्ट-नामक गाँव के पास की कुछ धूल जमा की, और उसे धोकर सोना प्राप्त किया। बस, तभी से यह बात प्रसिद्ध हो गई। उसी वर्ष विक्टोरिया-प्रांत में भी सोना निकला। यह फ़रवरी की बात है। यह ख़बर कुछ ही महीनों में इतनी प्रसिद्ध हो गई कि इस साल के ऑक्टोबर तक लगभग ७,००० मज़दूर सोने की तलाश में लगा दिए गए। साल के अंत तक लगभग १६,००० मज़दूरों ने मिलकर १½ करोड़ रुपए का सोना वहाँ निकाला। दूसरे ही साल इन मज़दूरों की संख्या १½ लाख हो गई, और पैदावार ३० करोड़ रुपए के लगभग पहुँच गई। इतनी पैदावार फिर कभी इन खानों में नहीं हुई। यही नहीं, वह घटने लगी, और घटते-घटते संवत् १९७३ वि० तक प्रतिवर्ष १२½ करोड़ रुपए के लगभग ही रह गई।

इसी समय के लगभग रूस ने भी सुवर्ण की पैदावार बहुत बढ़ा ली। रूस की सोने की खानें लगभग १८३१ विक्रमाब्द से ज्ञात थीं। परंतु बहुत अरसे तक उनकी देख-रेख और क़ब्ज़ा सरकार ही के हाथ में रहा। नतीजा यह हुआ कि ये खानें लगभग १८४६ विक्रमाब्द तक कुछ विशेष उन्नति न कर सकीं। इस वर्ष सरकार की ओर से व्यापारियों को उन्हें खोदने के लिये प्रोत्साहित किया गया, और तभी से उनकी पैदावार बढ़ने लगी। सच पूछिए, तो रूस और ट्रांसवाल ही ऐसे देश हैं, जहाँ सोने की खानें खोदने का एक स्वतंत्र व्यवसाय है। अन्यत्र तो अन्य धातुओं के लिये खानें खोदी जाती हैं, और उनमें सोना भी मिल जाता है। रूस के युरल-प्रदेश और पश्चिमी तथा पूर्वी साइबेरिया-प्रांत में सोने की खानें हैं। पूर्वी साइबेरिया में रूस की सोने की पैदावार का तीन-चौथाई हिस्सा, युरल-प्रांत में एक-पष्ठांश और पश्चिमी साइबेरिया में लगभग एक-अष्टमांश आय है।

आफ़्रिका की सोने की खानों का इतिहास भी बड़ा रोचक है। वास्कोडिगामा के केप ऑफ़ गुड होप होकर भारतवर्ष का समुद्री मार्ग ढूँढ़ निकालने पर योरप की कई जातियाँ भारतवर्ष से अपना व्यापार बढ़ाने लगीं। उन जातियों में एक हालैंड-निवासी डच लोग भी थे। इन लोगों ने भारत के मार्ग में मिले हुए इस आफ़्रिका-महाद्वीप में, संवत् १७१० के लगभग, एक उपनिवेश बसाया। कालांतर में वे फ़रासीसी भी इन लोगों में आकर मिल गए, जो धार्मिक कारणों से फ़्रांस छोड़कर भागे थे। इन दोनों जातियों ने मिलकर एक नई जाति को जन्म दिया, जो पीछे से बोअर-जाति कहलाने लगी। इस जाति के अधिकांश आदमी खेतिहर थे, और वे नवागत जातियों से ज्यों-ज्यों हारते गए, त्यों-त्यों अंतर-आफ़्रिका में प्रवेश करते गए। इनकी राज्य-व्यवस्था पूर्ण प्रजातंत्र की थी। इस प्रकार समस्त दक्षिण-आफ़्रिका में यह जाति फैली हुई थी। यही जाति संवत् १९२५ के लगभग आफ़्रिका के रेंडे-नामक पहाड़ी-प्रदेश में, जिससे इस समय संसार को सबसे अधिक मात्रा में सोने की प्राप्ति होती है, निवास करती थी। इस प्रदेश में यह जाति अरसे तक स्वराज्य का सुख भोगती और खेती से अपनी जीविका चलाती रही। परंतु ये लोग आसपास

की जातियों पर अपना आधिपत्य न जमा सके। उलटे वे जातियाँ ही समय-समय पर इन्हें सताया करती थीं। उनके आक्रमणों से अपनी रक्षा करने के लिये ये लोग केपकालोनी-उपनिवेश के स्वामी अँगरेज़ प्रवासियों की सहायता लेने को सदा विवश रहा करते थे। यही कारण था कि समय पाकर अँगरेज़ों ने उनसे ऐसी संधि मनवा ली कि वे अँगरेज़ों को बीच में डाले बिना किसी भी विदेशी जाति से किसी प्रकार का संबंध बाला-बाला न कर सकेंगे। संवत् १९२५ की बात है कि बोअरों के प्रजातंत्र के सभापति ने, धनाभाव के कारण, अपने पूर्वजों की चाल के विपरीत, प्रजातंत्र की सीमा ही में, सोने की खोज कराना शुरू कर दिया। फल यह हुआ कि संवत् १९२६ में सदरलैंड-पहाड़ी में, और संवत् १९२७ में मुरचीसन-पहाड़ी में, सोने की अक्षय खानें देख पड़ीं। इनकी खुदाई के लिये विदेशियों को भी आज्ञा मिल गई। इस प्रकार विदेशी पूँजी से ये खानें खोदी जाने लगीं। दूसरे ही वर्ष खानों का एक जुदा महकमा क़ायम कर दिया गया, और सुवर्ण की खानों का एक आईन भी पास किया गया। परंतु संवत् १९४२ तक यह प्रयास सफल नहीं हुआ। जब इस वर्ष विटवाटर्सरेंड (Witwatersrand) की खानें निकलीं, तो इस व्यवसाय में एकदम हलचल मच गई। दूसरे ही वर्ष इन खानों के शेयरों का सौदा जोहांसबर्ग के बाज़ार में खूब धूमधाम के साथ होने लगा। संवत् १९४३ के नवंबर तक कोई ६८ कंपनियाँ, लगभग ४½ करोड़ रुपए की सम्मिलित पूँजी से, खड़ी हो गईं। यह पूँजी देश और विदेश के सभी धनियों ने मिलकर इकट्ठी की थी।

जिस उद्देश्य से खानें खोदना शुरू किया गया था, वह भी अच्छी तरह सिद्ध हुआ। प्रजातंत्र-राज्य की मालगुज़ारी, जो संवत् १९३९ में लगभग २६,६१,०६० रुपए की थी, संवत् १९५१ तक बढ़कर ३,३७,१५,९२० रुपए की हो गई। इतनी बड़ी मालगुज़ारी में इन सोने की खानों के राजकर की आय लगभग ४३ 'टका' थी।

प्रजातंत्र-सरकार ने इसी बुनियाद पर कि भूमि के नीचे की मिलकियत सरकार की है, वहाँ की खानों के लिये नया आईन बनाया। इससे सरकार को भी अच्छी आय रही, और सुवर्ण का व्यापार भी चलता रहा। रैंड-प्रदेश (प्रजातंत्र का यह प्रदेश इसी नाम से मशहूर है) की पैदावार, जो संवत् १९४४ में केवल १ लाख ८० हज़ार रुपए की थी, बढ़कर संवत् १९४६ ही में २२ करोड़ ३१ लाख २५ हज़ार रुपए की हो गई। (क्रमशः)

कस्तूरमल बाँठिया

साबरमती में महात्मा गाँधी का आश्रम

महात्मा गाँधी के साबरमती आश्रम का नाम कौन नहीं जानता? इसके अधिकांश वृत्तांत से भी देश के बहुत-से मनुष्य परिचित जान पड़ते हैं। फिर भी इसके संबंध में अधिक-से-अधिक जानने के लिये सब की अभिलाषा रहना स्वाभाविक है। १८ जनवरी को गाँधी-दिवस और प्रार्थना-दिवस था। उस दिन प्रातःकाल हमने इस आश्रम को देखा। साबरमती-आश्रम साबरमती के तट पर है। साबरमती-नदी अहमदाबाद के निकट बहती है। इसके एक तट पर, पूर्व की ओर, अहमदाबाद तथा पश्चिम-दिशा में, सामने ही, साबरमती-आश्रम है। यह आश्रम नगर के एक भाग के बिलकुल सामने है। जनवरी में पानी घुटनों तक होने के कारण नदी के बीच में से शीघ्र पहुँच सकते थे, और दिनों पुल पर से तीन मील का चक्कर काटना पड़ता है।

जब हम आश्रम में गए, तो उसकी पहले की-सी शोभा न थी। स्वामी के चले जाने पर घर की जो दशा होती है, वही दशा महात्माजी के बिना इस आश्रम की थी। विद्यार्थी प्रायः तीस के लगभग हैं। अध्यापक दो-तीन हैं। केलकरजी से बड़ा कोई विद्वान् नहीं है। इस आश्रम के साधारण नियम गुरुकुलों की भाँति हैं; परंतु

साबरमती-नदी के किनारे साबरमती-आश्रम

साबरमती-आश्रम

सादगी अधिक है, और उसे इसकी एक विशेष विशेषता समझना चाहिए। सब विद्यार्थी प्रातःकाल चार बजे उठते, और ४½ बजे एक मैदान में एकत्र होते हैं। वहाँ प्रथम प्रार्थना होती है। सब मिलकर ईश्वर-भक्ति के भजन गाते हैं। फिर कोई सज्जन गीता से थोड़ा-सा उपदेश करते हैं। साढ़े पाँच बजे तक यह उपदेश जारी रहता है। शौच, व्यायाम, स्नान आदि से निवृत्त होकर सात बजे तक पढ़ने के लिये तैयार होना पड़ता है।

शिक्षा के दो विभाग हैं। जो बड़े विद्यार्थी आते हैं, उनको केवल वस्त्र बुनने का काम सीखना होता है। उनके लिये पाठ्यक्रम एक वर्ष का है। इतने समय में वे कपास बेलने से लेकर वस्त्र बुनने तक के काम में निपुण हो जाते हैं। इस काम को कुछ स्त्रियाँ और कुछ जुलाहे भी करते हैं। वे औरों को इसकी शिक्षा भी देते रहते हैं। बड़े विद्यार्थियों में कोई संस्कृत या संगीत आदि पढ़ना चाहे, तो वह भी पढ़ सकता है। दूसरा भाग छोटे विद्यार्थियों का है। यहाँ उनको इस काम के अलावा गुजराती, हिंदी, अँगरेज़ी (जो कि चतुर्थ श्रेणी से शुरू होती है), गणित, भूगोल आदि पढ़ाया जाता है। इसका पाठ्यक्रम सात वर्ष का है। साढ़े सात से साढ़े दस बजे तक पढ़ाई होती है। इसके अनंतर भोजन और विश्राम का समय है। सायंकाल को फिर पढ़ाई होती है। उसके बाद फिर विद्यार्थी खेल-कूद में मग्न हो जाते हैं। प्रातःकाल के व्यायाम में छोटे विद्यार्थियों का आना आवश्यक है। बड़े विद्यार्थियों का, जो अपनी भलाई अच्छी तरह से समझते हैं, शरीक होना उतना, अर्थात् अनिवार्य रूप से, आवश्यक नहीं है। उनकी इच्छा पर निर्भर है, चाहे आवें, चाहे न आवें।

आश्रम के साथ १५० बीघे के लगभग भूमि भी है। उसमें खेती होती है। कुछ भूमि में विद्यार्थी और अधिकांश भूमि में किसान खेती करते हैं। गोशाला की गायों का पालन भी किसान ही करते हैं। गोबर जमा करने के लिये पक्के गढ़े बने हैं। उन गढ़ों के ऊपर छतें भी बनी हुई हैं। छतों के बनाने का कारण पूछने पर जो उत्तर मिला, वह ध्यान से सुनने योग्य है। कहा गया कि वर्षा का जल पड़ने से गोबर में बहुत-से जीव पैदा हो जाते हैं, और उनकी हत्या होती है, इसीलिये छतें डाली गई हैं। हमने कहा—रूखी खाद तो ठीक काम न देती होगी? उत्तर मिला—जब डालने लगते हैं, तो आवश्यकतानुसार जल मिला लिया जाता है। हमने पूछा—जीव तो फिर भी उत्पन्न हो जाते होंगे? उत्तर मिला—जीव उत्पन्न तो हो जाते हैं, परंतु बहुत कम। जितना हिंसा से बच सकें, उतना बचना हमारा कर्तव्य है।

आश्रम की विशेषता यह है कि सब विद्यार्थी स्वयं सब अपने काम करते हैं। यहाँ तक कि टट्टी साफ़ करने के लिये भी किसी भंगी की आवश्यकता नहीं समझी जाती। परंतु स्वच्छता इतनी है कि न कहीं दुर्गंध है, और न मक्खियाँ। हमने पूछा—क्या विद्यार्थी क्रम से बारी-बारी काम करते हैं? उत्तर मिला—विद्यार्थी स्वयं कह देते हैं कि यह काम मैं करूँगा। स्वच्छता का कारण यह है कि पाख़ाने के भीतर एक पात्र मल के लिये और एक मूत्र के लिये होता है। एक पात्र हर समय मिट्टी से भरा रहता है। हर आदमी शौच के बाद मिट्टी डाल जाता है। इससे दुर्गंध नहीं होती, और न मक्खियाँ ही आती हैं। भोजन के लिये जाते समय सब विद्यार्थी अपने-अपने

पात्रों को साथ ले जाते हैं। भोजन के पश्चात् अपने-अपने पात्रों को स्वयं साफ़ करके अपने-अपने स्थान में रख देते हैं। इसी प्रकार वे अपने सब काम स्वयं करते हैं।

महात्माजी और उनके घरवालों के निवास के लिये अलग कमरा है। महात्माजी जिस कमरे में बैठकर काम करते थे, उसे देखकर मेरे मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न हुए, जिनका वर्णन कठिन है। विद्यार्थियों के लिये फ़ीस का कोई विशेष नियम नहीं है। जो जितनी फ़ीस दे सकता है, उससे उतनी ही फ़ीस ली जाती है। जो बिलकुल असमर्थ है, वह वैसे ही भरती कर लिया जाता है। बहुत-से मकान हैं, जो आश्रम के दान और कांग्रेस के रुपए से बने हैं। आश्रम के लिये जो दान आता है, वह खादी-प्रचार-फ़ंड में रख दिया जाता है। प्रचार-कार्य की उन्नति के लिये यत्न हो रहा है। मोटे-से-मोटा, साधारण तथा उत्तम खद्दर हर समय तैयार रहता है। निवाड़, दरियाँ आदि भी बुनी जाती हैं। विद्यार्थियों से अगर कोई बात पूछी जाय, तो वे बड़े प्रेम और आदर के साथ उसका उत्तर देते हैं। एक बात अवश्य विचार के योग्य है। हम भारतवासियों के जितने काम हैं, उन सबका संबंध प्रायः एक ही मनुष्य के साथ होता है। यही दशा इस आश्रम की भी है आश्रम की शोभा तथा सफलता महात्माजी के व्यक्तित्व पर ही निर्भर मालूम होती थी। सच तो यह है कि यह एक बड़ा उत्तम आश्रम है, और इसी कारण इसके
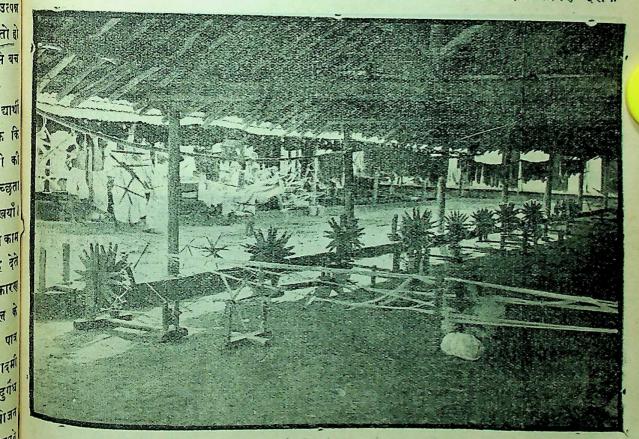
आश्रम का खादी-विभाग

लिये यह आवश्यक है कि इसे ऐसे नियमों से चलाया जाय कि महात्माजी (परमेश्वर इनको सौ वर्ष की आयु करे) के पीछे भी इसी तरह काम चलता रहे। इसके कार्यकर्ता लोग भी कदाचित् यह बात सोचते होंगे, और बहुत संभव है कि आगे चलकर ऐसे ही ढंग से काम किया जाय। भोजनशाला में भी सादगी और स्वच्छता थी। इसमें समय-समय पर देश के कई विशेष व्यक्ति भोजन कर गए हैं, इस स्थान को अपनी चरण-रज से पवित्र कर गए हैं। शोक है, हमें ऐसे तीर्थराज में भोजन करने का सौभाग्य न प्राप्त हो सका। कारण, आज १८वीं तारीख़ थी—व्रत का दिन था।

हाथ से कपड़ा बुनना सिखानेवाले इस आश्रम के सामने ही, नदी की दूसरी ओर, मिलों का नगर है। कपास की रुई बनानेवाले कारख़ानों के अलावा अहमदाबाद में सूत बनाने और वस्त्र बुननेवाली १०८ मिलें विद्यमान हैं। इनमें से ६५ इस समय काम कर रही हैं। एक मिल को हमने भीतर जाकर देखा। उसके भीतर प्रतिदिन दस हज़ार पौंड वज़न का कपड़ा तैयार होता है। वस्त्रों की खड्डियाँ जिस स्थान में लगी थीं, वहाँ सैकड़ों मशीनों को चलते देख हवास गुम हो जाते थे। मशीनरी क्या-क्या काम कर सकती है, और क्या-क्या कर रही है! चालीस हज़ार आदमी लग जायँ, तो संभव है, एक मिल के बराबर काम तैयार कर सकें। और, एक-दो नहीं, केवल अहमदाबाद में ही ऐसी

साबरमती-आश्रम के एक ओर मिलों का शहर अहमदाबाद
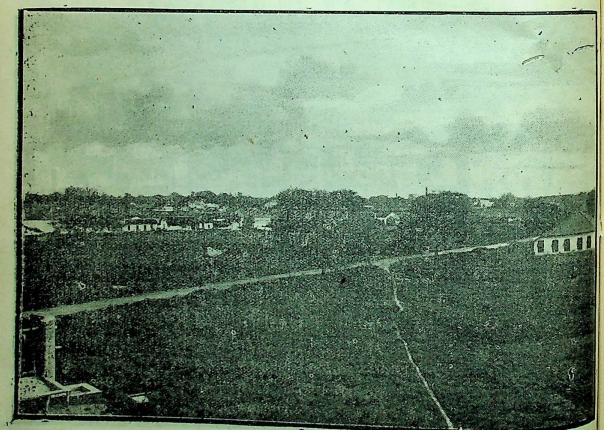
देसी ६५ मिलें हैं। बंबई में तो मिलों की संख्या बहुत अधिक है। गुजरात के और भी कई प्रसिद्ध नगरों में मिलें हैं। कुछ सूरत में भी हैं। भारतवर्ष के अन्य नगरों में भी अनेकानेक मिलें मौजूद हैं। पर खेद है कि इस मिल-मेड स्वदेशी वस्त्र को थोड़े-से स्त्री-पुरुष ही पहनते हैं। अभी तक विलायती वस्त्र ही अधिक परिमाण में पहने जा रहे हैं। एजेंट लोग सब स्थानों में बतलाते हैं कि मंचेस्टर को इस साल गत सब वर्षों से अधिक वस्त्रों के ऑर्डर गए हैं। हा! इस लापर्वाही और आत्मघात की भी कोई हद है! भारतवर्ष में बाहर से इतना वस्त्र आने का कारण यही है कि भारत में रईस लोग आवश्यकता से अधिक वस्त्र बनवाते हैं। परंतु उनको स्वदेशी नहीं, विलायती और फ़सी वस्त्र ही पसंद आते हैं। फिर ग़रीबों में खद्दर या स्वदेशी वस्त्र की कितनी खपत हो सकती है? लोग कहते हैं, जब अहमदाबाद में हड़ताल हुई थी, तब मज़दूरों ने अपना काम शुरू किया था; परंतु उससे उनका गुज़र नहीं हुआ। हाथ से कातने-बुनने में इतनी मज़दूरी भी नहीं मिलती। लोगों ने खद्दर पहनना शुरू किया, तो वह भी मिलों में तैयार होने लगा। हज़ार। मन खद्दर रोज़ भारत की मिलों में तैयार होता है, और हज़ारों मन नक़ली खद्दर अन्य देशों से भी आने लगा है। मिलों का खद्दर पायदार नहीं होता, शीघ्र ही फट जाता है। उससे अच्छा तो मिलों का दूसरा कपड़ा होता है। यदि मिल का खद्दर ही पहनना है, तो अन्य स्वदेशी वस्त्र पहनने चाहिए। क्या महात्माजी की यही आज्ञा है? क्या वह मिलों के द्वारा खद्दर का प्रचार करना चाहते हैं? नहीं। उनकी आज्ञा घर में काते हुए सूत से, खड्डी पर हाथ से बुने हुए खद्दर के व्यवहार के लिये है। स्त्री या पुरुष अवकाश के समय आवश्यकतानुसार वस्त्र बना लेते, जिससे और लोगों का काम भी चलता, और ग़रीबों के पेट का प्रश्न भी हल हो जाता। महात्माजी ने वस्त्र की आवश्यकता को कम करने के अभिप्राय से ही कुर्ता तक पहनना त्याग दिया है। स्वदेशी वस्त्र के नाम से हमको बाज़ार में क्या मिल रहा है, यह खोज करनेवाले ही जानते हैं। अहमदाबाद की मिलों में बारीक, उत्तम वस्त्र का धागा विलायती ही होता है। शुद्ध पवित्र हाथ से काते हुए सूत का खद्दर तैयार कराने का यत्न करना सभी प्रकार के नेताओं का कर्तव्य होना चाहिए।

ठाकुरदत्त शर्मा

बालू की बेला

आँख बचाकर न किरकिरा कर दो इस जीवन का मेला;
कहाँ मिलोगे? किसी विजन में, न हो भीड़ का जब रेला।
दूर! कहाँ तक दूर? थका भरपूर चूर सब संग हुआ,
दुर्गम पथ में विरथ दौड़कर खेल न था हमने खेला।
कहते हो 'कुछ दुःख नहीं' हाँ, ठीक! हँसी से पूछो तुम;
प्रश्न करो टेढ़ी चितवन से, किस-किसको किसने झेला?
आने दो मीठी मीड़ों से नूपुर की झनकार, रहो!
गलबाहीं दे हाथ बढ़ाओ, कह दो प्याला भर दे, ला।
निठुर इन्हीं चरणों में मैं रत्नाकर हृदय उलीच रहा,
पुलकित, प्लावित रहो, बनो मत सूखी बालू की बेला।

जयशंकर "प्रसाद"

प्रेमालिंगन

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

१ मिस्टर—अरे यार, अब तो मुलाक़ात ही नहीं होती। आओ, ज़रा गले तो मिल लें।
२ मिस्टर—हाँ भाई, मरने की फ़ुरसत नहीं रहती, मुलाक़ात कहाँ से हो।
गले मिलते में एक जेब काटकर मनीबेग घुमाता है, दूसरा घड़ी-चेन पर हाथ साफ़ करता है।

केदारा—ध्रुपद

स्वरकार—ज्योतिःस्वरूप भटनागर] [**शब्दकार**—ज्योतिःस्वरूप भटनागर

आरोह ... ... **स म रि प म॑ प नि ध नि सं**

अवरोह ... ... **सां नि ध नि॒ ध प म ग म रि स**

गीत

स्थाई—नाम जपत बिघन हरत भजन करत जगत तरत
नमन करत बिपत टरत ब्रज के बिहारी।

अंतरा—दीनबंधु दीनानाथ, बाम अंग राधा साथ
मधुर स्वर मुरली हाथ, मोर-मुकुटधारी।

संचारी—तू अनंत अरु अनादि न्यायकारी निर्विकल्प निर्विवाद
कर्मन के फल को देत भक्ति से युक्ति से शक्ति से—

अंतरा—शिव बिरंचि नित्य ध्यावें, माया को न अंत पावें
बेद जासु महिमा गावें, नेति-नेति चारी।

अंतरा—निर्विकार शक्तिमान, निराधार ज्योतिष्मान
निराकार मूर्तिमान, होय देहधारी।

स्थाई

सम ×१		०		२		०		३		४	
ना	—	म	ज	प	त	वि	घ	न	ह	र	त
स	—	म	म	म	म	म ग	म	ध	प	ग म	रि
भ	ज	न	क	र	त	ज	ग	त	त	र	त

स ग/म	ग प	मं प	ध नि̱	ध प	मं प
न म	न क	र त	बि प	त ट	र त
नि/सं ध	प ग/म	— ग	म ध	प म	रि स
व्र —	ज के	— बि	हा —	— री	— —
स म	ग मंप	ध नि सं रिं	गं रिं सं नि	ध प म ग	रि स नि̣ स

अंतरा

सम × १	०	२	०	३	४
दी —	न बं	— धु	दी —	ना ना	— थ
म —	म प	नि ध	सं —	सं सं	सं सं
बा —	म अं	— ग	रा —	धा सा	— थ
ध नि	सं रिं	नि सं	ध नि̱	ध प	— प
म धु	र स्व	अ र	मु र	ली हा	— थ
म म	म प	मं प	ध नि̱	ध प	मं प
मो —	र मु	कु ट	धा —	— री	— —

संचारी

सम × १	०	२	०	३	४
तू — अ नं — त	अ रु अ ना — दि	न्या — य का — री	नि र् वि क ल्प	नि र् वि वा आ द	क र् म न के —
स — स म — म	ग म म प — प	मंप — प ध — ध	प — प प — प	प ध प म — म	ग म ग ध प —
फ ल को दे — त	क र म न के —	फ ल को दे — त	भ अ क्त इ से —	यु उ क्त इ से —	श अ क्त इ से —
ग म रि स नि̣ स	गं म ग ध प —	ग म रि स नि̣ स	सं — — नि सं सं	ध — — प ध ध	ग — — स स स

अंतरे सब एक-से बजाने चाहिए। संचारी चाहे जिस अंतरे के पश्चात् या प्रत्येक के पश्चात् बजाना उचित है।

---

१. "हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण" की आलोचना

शी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने "हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का विवरण" नाम की एक पुस्तक हाल ही में प्रकाशित की है। उसके संपादक हैं सभा के मंत्री सुप्रसिद्ध बाबू श्यामसुंदरदासजी बी० ए०। सभा की ओर से हिंदी-पुस्तकों की खोज की जो ८ रिपोर्टें, सन् १९०० से सन् १९११ ईसवी तक, छपी थीं, उन्हीं के आधार पर यह संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया गया है। इस संक्षिप्त विवरण में १,४५० कवियों, उनके आश्रय-दाताओं तथा २,७५६ ग्रंथों का वर्णन है।

इसमें संदेह नहीं कि यह पुस्तक बड़े काम की है। प्राचीन हिंदी-पुस्तकों की खोज के काम में जिन लोगों की रुचि है, उनको अपने कार्य में इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी।

अब तक किस कवि के विषय में क्या-क्या हाल मालूम हो चुका है, कौन ग्रंथ किस कवि का बनाया हुआ है, कौन-कौन कवि किस काल में किस राजा के आश्रित हुए इत्यादि बातें इससे सहज ही मालूम हो सकेंगी। यह पुस्तक प्रकाशित करके सभा ने प्राचीन हिंदी-पुस्तकों की खोज का कार्य बहुत सुगम कर दिया है।

किंतु इस पुस्तक में कुछ भूलें रह गई हैं। इसलिये इस पुस्तक का उपयोग करते समय सावधानता से काम लेने की आवश्यकता होगी। भूलों का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पुस्तक की प्रस्तावना में संपादक महाशय ने स्वयं लिखा है—"जितनी ही खोज होती जायगी, उतने ही अधिक कवि और कविता-काल शुद्ध होते जायँगे। संभव है, इस 'संक्षिप्त विवरण' में बहुत-सी अशुद्धियाँ अब भी शेष हों, तथा जो संशोधन किए गए हैं, उनमें भी कुछ भूल हुई हो।

हमको खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस पुस्तक में कुछ अशुद्धियाँ ऐसी हैं, जो संपादन के कार्य में असावधानी के कारण ही हुई हैं। यदि थोड़े-से विचार के साथ संपादन का कार्य किया जाता, तो ऐसी भूलों का होना संभव नहीं था। हमको ऐसा कहने का साहस इस कारण हुआ कि ये भूलें ऐसी हैं, जिन्हें जानने के लिये कोई अन्य प्रमाण या ग्रंथ देखने की आवश्यकता नहीं है। इसी पुस्तक के देखने से वे भूलें आसानी से मालूम हो सकती हैं। अपने कथन के प्रमाण में हम कुछ भूलें नीचे (मूल विवरण से उद्धृत करके) लिखते हैं—

[१]

(अ) अनवरख़ाँ—रहतगढ़, राज्य भूपाल, के पठान सुलतान नवाब मुहम्मदख़ाँ के कनिष्ठ भ्राता और शुभकरन कवि के आश्रयदाता थे।

(आ) अनवर-चंद्रिका शुभकरन कवि-कृत ; निर्माण-काल संवत् १७१४, लिपि-काल संवत् १८५८ ; विवरण—विहारी-सतसई पर कुंडलियों में टीका ; कवि ने यह टीका अपने आश्रयदाता अनवरख़ाँ के नाम पर की ।

(इ) शुभकरन—संवत् १७८२ के लगभग वर्तमान; कर्नाटक के नवाब अनवरख़ाँ के आश्रित थे ; इन्होंने विहारी-सतसई पर टीका लिखी थी ।

अब देखिए, एक जगह अनवरख़ाँ को रहलगढ़ (भूपाल-राज्य) के नवाब का छोटा भाई और दूसरी जगह कर्नाटक का नवाब लिखा गया है । दोनों में से एक अशुद्ध है । इसी तरह, अनवर-चंद्रिका का निर्माण-काल संवत् १७१४ लिखकर, उसके कवि का काल संवत् १७८२ लिखा है । कवि और उसकी कृति में ६८ वर्ष का अंतर किस तरह संभव है ? पहला संवत् बिलकुल अशुद्ध है । उस समय तक तो विहारी-सतसई कदाचित् पूर्ण भी नहीं हुई होगी । फिर उसकी टीका कैसे बन गई ? अनवर-चंद्रिका का निर्माण-काल अनवर-चंद्रिका ही में इस तरह दिया हुआ है—

अनवरख़ाँ जु कविन सों आयसु कियौ सनेहु ;
कवित रीति सब सतसया मध्य प्रकट करि देहु ।
ससि रिषि[७] रिषि[७] ससि लिखि लिखौ संबत सरस बिलास ;
जामैं अनवर-चंद्रिका कीन्हौ बिमल बिकास ।

अनवर-चंद्रिका का निर्माण-काल संवत् १७१४ नहीं, बल्कि संवत् १७७१ है ।

[२]

(क) अष्टजाम—देव कवि (देवदत्त)-कृत ; लिखने काल संवत् १८८४ ; विवरण—राधाकृष्ण की आठ पहर की दिनचर्या । निर्माण-काल संवत् १६११ ।

(ख) सुजानविनोद—देवदत्त (देव कवि)-कृत ; निर्माण-काल संवत् १६७७ ; लिखने का काल संवत् १८५७ ; विवरण—श्रृंगार-रस और काव्य का वर्णन ।

(ग) देवदत्त—उपनाम देवकवि ; हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि ; जन्म-काल—संवत् १७३० । ये फफूँद (इटावा) के राजा मधुकरसाहि के पुत्र राजा कुशलसिंह के आश्रित थे ।

(घ) कुशलसिंह—फफूँद के राजा ; राजा मधुकरसाहि के पुत्र ; कवि देवदत्त के आश्रयदाता ; संवत् १६७७ के लगभग वर्तमान ।

जब देव कवि का जन्म ही संवत् १७३० में हुआ था, तो अपने जन्म से ११९ वर्ष पूर्व देवजी ने अष्टजाम किस तरह बनाया ? अथवा ५३ वर्ष पूर्व ही सुजान-विनोद का कैसे निर्माण किया ?

मिश्र-बंधु देव, गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास को बराबर समझते हैं । शायद संपादक महाशय ने इस बराबरी को पूर्णता का रूप देने के लिये ही, तीनों को समकालीन करने की चेष्टा से, संवत् १६११ तथा संवत् १६७७ में अष्टजाम तथा सुजान-विनोद का निर्माण होना लिखा है । कवि और उसके आश्रयदाता के समय में ५३ वर्ष का अंतर भी विचारणीय है ।

[३]

(च) आलम कवि—संवत् १७१३ के लगभग वर्तमान ; पहले हिंदू थे ; एक मुसलमान स्त्री पर, जिसका नाम शेख़ था, आसक्त होने के कारण, मुसलमान हो गए । बादशाह औरंगज़ेब के पुत्र मुअज़्ज़म के आश्रित थे । पश्चात् बहादुरशाह के पास रहे । ग्रंथ—

आलम केलि
आलम की कविता
माधवानलकामकंदला

(छ) माधवानलकामकंदला—आलम-कृत ; निर्माण-काल संवत् १६४० ; लिखने का काल संवत् १८५१ ; विवरण—माधवानल और कामकंदला की प्रेम-कथा ।

(ज) टोडरमल—बादशाह अकबर के माल-विभाग के मंत्री ; संवत् १६४६ में इनकी मृत्यु हुई ; आलम कवि इनका समकालीन था ।

(झ) बहादुरशाह—संवत् १७६४-६९ ; आलम कवि के आश्रयदाता थे ।

माधवानलकामकंदला के कर्ता आलम १२६ वर्ष पश्चात् बहादुरशाह और टोडरमल के आश्रित नहीं हो सकते । यदि आप आलम कवि दो मानते हैं, तो एक ही आलम का विवरण देकर उसी को माधवानलकामकंदला का ग्रंथकार मानने का क्या कारण है ? वास्तव में दो आलम नहीं हुए । मुअज़्ज़म के समय में आलम का मानना भूल है । मिश्रबंधु-विनोद में भी यह भूल की गई है । हमने इस विषय में एक लेख "मर्यादा" (भाग १०, संख्या ३, भाद्रपद, संवत् १९७२) में लिखा था । उसमें हमने सिद्ध किया है कि आलम अकबर के समय में हुए थे, मुअज़्ज़म के समय

में नहीं। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता मुंशी देवीप्रसादजी की भी यही राय थी।

[४]

(ट) गोपाल—संवत् १८७१ के लगभग वर्तमान; महाराजा भगवंतराय खींची के आश्रित।

भगवंतराय की विरुदावली

(ठ) भगवंतराय खींची—संवत् १७२७ के लगभग वर्तमान, असोथर (फ़तेहपुर) के जागीरदार; सआदत-ख़ाँ से इनका युद्ध हुआ था; सुखदेव मिश्र और गोपाल कवि के आश्रयदाता थे।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार कवि और उसके आश्रयदाता में १४४ वर्ष का अंतर पड़ता है! क्या यह संभव है? क्या यह किसी और युग में हुए थे, जिससे इनकी आयु इतनी मानी जाय? क्या संपादक महाशय इसका और कोई समाधान करेंगे?

[५]

(ड) जसवंतसिंह—महाराज गजसिंह के पुत्र और सूरसिंह के पौत्र; संवत् १६६२-१७३५ तक जोधपुर की गद्दी पर रहे; बादशाह ने अप्रसन्न हो इन्हें काबुल भेज दिया, जहाँ ६ वर्ष रहकर पठानों को दबाया, और वहीं जमुरुंद-नदी के तट पर संवत् १७३५ में शरीर-त्याग किया; सूरत मिश्र से इन्होंने कविता करना सीखा था; नरहरिदास और नवीन कवि के आश्रयदाता और स्वयं बड़े कवि थे; अजीतसिंह के पिता थे।

अपरोक्षसिद्धांत
अनुभवप्रकाश
आनंदविलासभाषाभूषण
सिद्धांतबोध
प्रबोधचंद्रोदय नाटक सिद्धांतसार—
ये महाराज के बनाए हुए ग्रंथ हैं।

(ढ) भाषाभूषण—राजा जसवंतसिंह-कृत; निर्माण-काल—संवत् १७१७।

(त) सूरत मिश्र—संवत् १७६८ के लगभग वर्तमान; जाति के कान्यकुब्ज-ब्राह्मण; आगरा-निवासी; जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह के शिक्षक; नसरुल्लाख़ाँ और दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के आश्रित थे।

(थ) रसरत्नमाला—सूरत मिश्र-कृत; निर्माण-काल—संवत् १८११; विवरण—नायिका-भेद और काव्य-भाव-वर्णन।

(द) नवीन—संवत् १७३० के लगभग वर्तमान; जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह के आश्रित।

यदि महाराज जसवंतसिंह ने सूरत मिश्र से कविता करना सीखा था, तो "भाषाभूषण" का निर्माण करने से पहले ही सीखा होगा। भाषाभूषण के समान परम उत्कृष्ट ग्रंथ बनाने के बाद महाराज जसवंतसिंह को सूरत मिश्र-जैसे कवि से कविता सीखने की आवश्यकता नहीं थी। भाषाभूषण का निर्माण-काल संवत् १७१७ लिखा है। उस समय सूरत मिश्र की आयु कम-से-कम ३५ वर्ष की होना चाहिए। इससे सूरत मिश्र का जन्म-काल संवत् १६८२ के पूर्व मानना पड़ेगा। सूरत मिश्र ने "रसरत्नमाला" संवत् १८११ में बनाई थी। तो क्या सूरत मिश्र की आयु १२९ वर्ष की हुई थी? हमको तो यह संभव नहीं मालूम होता कि सूरत मिश्र महाराज जसवंतसिंह के कविता-शिक्षक रहे हों। मालूम नहीं, संपादक महाशय ने यह बात किस आधार पर लिखी है।

नवीन कवि जोधपुर-नरेश महाराज जसवंतसिंह के आश्रित नहीं थे, बल्कि नाभा-नरेश महाराज जसवंतसिंह के आश्रित थे। दोनों महाराजों के समय में १६५ वर्ष का अंतर है।

इस लेख में हमने पूर्वापर-विरोध-संबंधी अशुद्धियाँ ही दिखलाने की चेष्टा की है। इस 'विवरण' में ऐसी भूलें भी हैं, जो दूसरे ग्रंथों के प्रमाण से सिद्ध हो सकती हैं। उनका वर्णन हम अपने किसी दूसरे लेख में करेंगे। हमने ये भूलें इसलिये दिखलाई हैं कि आगामी विवरणों के संपादन में सावधानता से काम लिया जाय।

इस पुस्तक की प्रस्तावना में एक नवीन बात कही गई है। वह यह है कि मतिराम और भूषण परस्पर भाई नहीं थे। और, भूषण छत्रपति महाराज शिवाजी के दरबार के कवि नहीं थे, बल्कि उनके पौत्र साहूजी के समय में हुए थे। इस विचित्र शंका का उत्तर हम अगली संख्या में देंगे।

मयाशंकर याज्ञिक बी० ए०
जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०
भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

२. कलम कहै कान में

जर से उखारि कै सुखाइ डारैं मोहिं, मेरे
प्राण घोटि डारैं धारि धुआँ के मकान में ;
मोरी गाँठ काटैं, मोहिं चाकू तैं तरासि डारैं,
अंतर में चीरि डारैं धरैं नहीं ध्यान में।
स्याही माहिं बोरि-बोरि करैं मुख कारो मेरो,
करौं मैं उज्यारो तौ हूँ ज्ञान के जहान में ;
परे हू पराए हाथ तजौं ना परोपकार ;
चाहै घिसि जाऊँ, यों कलम कहै कान में।

श्रीगिरिधर शर्मा

× × ×

३. भारत में सोने के सिक्कों का प्रचार

सन् १८६८ की करेंसी-कमेटी ने सोने के सिक्कों का प्रचार करने की सिफ़ारिश की थी। उसका यह भी मत था कि जब कभी नए रुपए ढालने की आवश्यकता हो, तब पहले सोने के सिक्कों का प्रचार करने का प्रयत्न किया जाय। और, यदि इतने पर भी रुपयों की माँग बनी रहे, तो नए रुपए ढाले जायँ। भारत-सरकार ने इस आदेश के अनुसार सिर्फ़ १८६६ ई० में सोने के सिक्कों का प्रचार करने का प्रयत्न किया। परंतु उस वर्ष अकाल पड़ जाने के कारण कुछ स्थानों में लोगों ने मुहर को पसंद नहीं किया, और वे सरकारी ख़ज़ानों में वापस आ गईं। उसके बाद सन् १९१७ के अंत तक फिर कभी भारत-सरकार ने सोने के सिक्कों का प्रचार करने का प्रयत्न नहीं किया। सन् १९१८ के आरंभ से बंबई की टकसाल में कुछ मुहरें ढाली जाने लगी थीं। परंतु अब वह भी बंद-सा हो गया है।

भारत में विनिमय की दर स्थिर करने का एक-मात्र सरल उपाय यह है कि यहाँ सोने के प्रामाणिक सिक्कों का स्वतंत्र रूप से प्रचार किया जाय, और जनता को भारतीय टकसालों से अपने सोने के बदले उसके सिक्के ढलवाने का अधिकार दिया जाय। इससे भारत में सोने की क़ीमत भी हमेशा के लिये स्थिर हो जायगी। उसमें फिर कभी तब तक अधिक घट-बढ़ न हो सकेगी, जब तक देश में काग़ज़ी मुद्राओं का, अत्यधिक परिमाण में, प्रचार न किया जायगा। दूसरा लाभ यह होगा कि विनिमय की दर हमेशा स्वर्ण की आयात और निर्यात की दरों के बीच में ही घटा-बढ़ा करेगी। तीसरा लाभ यह भी होगा कि विनिमय की दर स्थिर रखना सरकार के प्रयत्नों पर निर्भर न रहेगा।

अब हम यह बतलाते हैं कि सोने के प्रामाणिक सिक्कों का स्वतंत्र रूप से प्रचार किस प्रकार किया जा सकता है। भारत-सरकार को तुरंत यह घोषणा कर देनी चाहिए कि बंबई और कलकत्ते की टकसालों में जनता के लिये स्वतंत्र रूप से सोने की मुहरें ढाली जायँगी। मुहरों में उतना ही असली सोना होना चाहिए, जितना अँगरेज़ी पौंड में है, और मुहर की क़ीमत १५) निश्चित कर दी जानी चाहिए। जो व्यक्ति टकसाल में सोना लाय, उसके बदले में, उचित ढलाई देने पर, सोने की मुहरें उसके लिये ढाल दी जायँ। कुछ वर्षों तक, जब तक कि सोने के सिक्कों का काफ़ी परिमाण में प्रचार हो जाय, सोने की मुहर और रुपया, दोनों अपरिमित क़ानूनन् ग्राह्य सिक्के रहने चाहिए। उसके बाद रुपए को, चवन्नी-दुअन्नी-एकन्नी और पैसों के समान, परिमित क़ानूनन् ग्राह्य मुद्रा बना देना चाहिए। और, भारत-सरकार को काग़ज़ी मुद्राओं के बदले में आवश्यकतानुसार सोने के सिक्के (मुहरें) देने की व्यवस्था करनी चाहिए। साधारणतः भारत का आयात निर्यात से अधिक रहता है, और प्रतिवर्ष करोड़ों रुपयों का सोना भारत में आता है। इस सोने का बहुत-सा भाग, जनता द्वारा, टकसालों में, मुहरों के रूप में, ढाला जायगा। इस प्रकार प्रतिवर्ष धीरे-धीरे सोने के सिक्कों का प्रचार बढ़ता जायगा।

परंतु, यदि साथ-ही-साथ भारत-सरकार ने रुपयों का प्रचार कम करने का प्रयत्न नहीं किया, तो फिर देश में रुपए-पैसे के परिमाण की वृद्धि के कारण, वस्तुओं की क़ीमत में भी वृद्धि होती जायगी। इसलिये सरकार को प्रतिवर्ष उतने रुपयों को गलाकर चाँदी बनाकर बेचना पड़ेगा, जितने रुपयों की मुहरें उस वर्ष ढाली जायँ। इसमें सरकार को कुछ हानि अवश्य उठानी पड़ेगी, क्योंकि एक रुपए में जितनी चाँदी रहती है, उसकी क़ीमत प्रायः दस-ग्यारह आने होती है, और अब सरकार के चाँदी बेचने के कारण चाँदी की और भी क़ीमत गिर जाने की संभावना है। सरकार को यह हानि की रक़म सिक्का-ढलाई-लाभ-कोष (Gold Standard Reserve) से ले लेनी चाहिए। इसी कोष

रुपए की ढलाई का सब मुनाफ़ा जमा है । अतः जब रुपए को गलाने से हानि होगी, तो उस हानि की पूर्ति के लिये इसी कोष से वसूल किया जाना सर्वथा न्याय-संगत है । ३० एप्रिल, सन् १९२४ को इस कोष का हिसाब नीचे लिखे अनुसार था—

रुपया-ढलाई-लाभ-कोष

	पौंड	
भारत में सोना		
इँगलैंड के बैंक के पास नक़द गया	२,८३०	४२,४५०
ब्रिटिश सरकार की		
सिक्यूरिटी (ज़मानत)	४००,३७.३८७	६०,०५,६०,८०५
मीज़ान	४,००,४०,२१७	६०,०६.०३,२५५

इससे मालूम होता है कि भारत-सरकार के पास इस कोष में ६० करोड़ रुपयों से अधिक रक़म जमा है, और यह सब रक़म इँगलैंड में रक्खी हुई है । इस कोष की ६० करोड़ की रक़म से ही १५० करोड़ रुपए गलाने और चाँदी के रुपए बेचने से होनेवाली हानि की पूर्ति हो सकती है । आजकल क़रीब २५० करोड़ चाँदी के रुपए भारत में प्रचलित हैं । हमारी समझ में यदि सोने के सिक्के भारत में स्वतंत्र रूप से ढलवाने का अधिकार जनता को दे दिया जाय, तो लगभग पाँच वर्षों में १५० करोड़ रुपयों की मुहरों का प्रचार भारत में हो जायगा । उतने समय में भारत-सरकार को १५० करोड़ रुपयों के चाँदी के सिक्के गला देने पड़ेंगे । उसके बाद फिर चाँदी के रुपए गलाने की आवश्यकता न रहेगी । क़रीब १०० करोड़ रुपए के सिक्के तो साधारण लेन-देन के लिये आवश्यक होंगे । जब चाँदी के रुपयों का प्रचार १५० करोड़ रुपए तक हो जाय, तब रुपयों को दस रुपए तक क़ानूनन् ग्राह्य कर दिया जाना आवश्यक होगा । उसके बाद जनता को यह भी अधिकार दिया जाना आवश्यक है कि यदि वह चाहे तो काग़ज़ी मुद्रा के बदले में स्वर्ण-मुद्रा सरकार से ले ले । यदि उपर्युक्त योजना के अनुसार कार्य किया जाय, तो भारत में पाँच-सात वर्षों के अंदर स्वर्ण-मुद्रा का स्वतंत्र रूप से प्रचार हो जायगा, और मुद्रा-संबंधी एक बहुत बड़ी समस्या हल हो जायगी । जब तक देश में काग़ज़ी मुद्राओं का प्रचार अत्यधिक परिमाण में नहीं किया जायगा, तब तक विनिमय की दरें भी स्वर्ण के आयात और निर्यात की दरों के भीतर ही घटा-बढ़ा करेंगी : उनमें अत्यधिक घट-बढ़ फिर न होने पावेगी ।

दयाशंकर दुबे

× × ×

४. कृष्णाभिसारिका

कारी अँधियारी राति जाति अभिसार प्यारी,
सकल सिंगार साजे सजनी सुहाति है ;
कैधौं संग मूसा के महल मैं धरो है हीरो,
भौन मैं बिभावरी के कैधौं दीप-बाति है ।
कारे बादरन बीच बीजुरी-चमक, कैधौं
कानन मैं कोल-कामिनी के मोती-पाँति है ;
कैधौं घन कानन मैं फनी की दमकै मनि,
अमा की निसा मैं कैधौं चंद्र-कला जाति है ।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

× × ×

५. काश्मीर-नरेश के गुरु स्वामी नित्यानंदजी

"वंद्यः स पुंसां त्रिदशाभिनन्द्यः
कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभिः ;
संसारसारत्वमुपैति यस्य
परोपकाराभरणं शरीरम् ।"

प्रकृति-सुंदरी का ललित-ललाम लीलाधाम काश्मीर भारतवर्ष का नंदनोद्यान और नगराज हिमाचल का अमूल्य मुकुट-मणि है । वास्तव में वह नैसर्गिक सुषमा, स्वर्गीय सौरभ, नेत्ररंजिनी शोभा और शांति की खान है । वर्तमान काश्मीर-नरेश की ब्रह्मण्यता, आस्तिकता और प्रजारंजकता प्राचीन हिंदू-राजाओं का आदर्श स्मरण कराती है । धर्म में उनकी जैसी आस्था है, श्रीकाशीश्वर विश्वनाथ में उनकी जैसी भक्ति है, और गो-ब्राह्मणों में उनका जितना अनुराग है, वह वर्तमान काल के हिंदू-नरेशों में एक दुर्लभ पदार्थ-सा देख पड़ता है ।

महाराजा बहादुर की धर्मनिष्ठा और सदाचार-परायणता का अधिकांश श्रेय आपके गुरु पूज्यपाद राजगुरु योगिराज श्री १०८ स्वामी नित्यानंदजी को है । स्वामीजी साधना-सिद्धि, मानसिक शांति, तेजस्विता तथा प्रसन्नता की साक्षात् मूर्ति हैं । आपका भाषण सरल, गंभीर, शुद्ध एवं मधुर होता है । आपका स्वाभाविक निरभिमान और ओजस्वी उपदेश सभी को मुग्ध कर देता है ।

इस समय स्वामीजी की अवस्था लगभग ४०-४५ वर्ष की है। जंबू-रियासत के चटयाई-नामक गाँव में आपका शुभ जन्म हुआ था। शैशव से ही आपमें विरक्ति की सत्ता का आभास मिलने लगा। घर में जब कभी आपके विवाह की बातचीत होती थी, आपका हृदय घृणा और उदासीनता के भावों से भर जाता था। जब आपसे विवाह के लिये विशेष आग्रह किया गया, तो आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन करने की पवित्र भावना से प्रेरित होकर आपने गृह-त्याग कर दिया। आप काश्मीर-नरेश के तत्कालीन गुरु राजगुरु श्रीयुत गंगाधर शास्त्री से सांख्य, वेदांत और योग आदि दर्शन-शास्त्र पढ़ने लगे। वेद-वेदांग आदि का अध्ययन करके आप कपूरथला-निवासी एक महात्मा (ब्रह्मचारीजी) के पास चले गए। वहाँ से राज-योग और हठ-योग आदि सीखकर जंबू-रियासत के 'ज्ञानकोट'-नामक स्थि[त] वन में तपस्या करने के लिये चले गए। लगभग प[ंद्रह] वर्षों तक लगातार एकांत भाव से योगाभ्यास करते [हुए] सच्ची लगन और एकाग्रता के कारण योग-साधन [में] आपको अच्छी सफलता मिली। खेचरी मुद्रा में आपकी साधना परम सिद्धि तक पहुँच गई। आ[ज] आपकी समाधि चार घंटे तक स्थिर रहती है।

श्रीयुत गंगाधरजी शास्त्री के लोकांतरित होने [पर] काश्मीर-नरेश ने उपदेष्टा होने के लिये आपसे आग्रह किया; किंतु आपने अपने योगाचार्य ब्रह्म[चारी]जी से ही महाराजा बहादुर को उपदेश दिलाया। [जब] ब्रह्मचारीजी भी परम धाम सिधार गए, तब आ[पको] महाराजा साहब का आग्रह अंगीकार करना पड़ा। जंबू-शहर से एक मील की दूरी पर पर्वतोपांत में
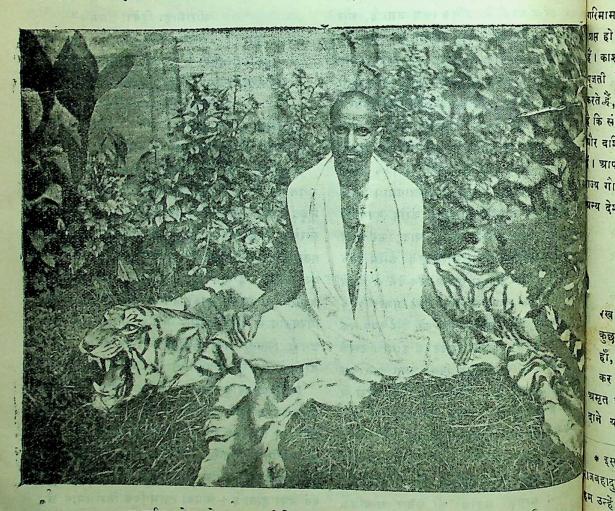
काश्मीर-नरेश के राजगुरु योगिराज श्री १०८ स्वामी नित्यानंदजी महाराज

हुई केवल एक छोटी-सी पर्ण-कुटी में ही निवास करना आपने स्वीकार किया। आज तक आप वहीं एकांत-वास करते हैं। प्रति रविवार को महाराजा बहादुर आपके दर्शनार्थ उक्त कुटी पर जाया करते हैं। हाल में आपके आदेश से जंबू में एक अनाथालय स्थापित किया गया है, जिसकी व्यवस्था का भार जंबू के जज पं० गंगारामजी और गवर्नर पं० रामचंद्रजी दुबे को सौंपा गया है।

जिस समय सिंहासन पर बैठकर आप श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करने लगते हैं, उस समय आपकी दिव्य शोभा देखते ही बनती है। काशी में माननीय पं० मदन-मोहन मालवीय ने भी आपके दर्शन पाकर प्रसन्नता प्रकट की थी। जिस किसी की दृष्टि आपके प्रकाशमान ललाट पर पड़ती है, वही आपकी आध्यात्मिक तेजस्विता से प्रभावान्वित हो जाता है। आपके ज्ञान-गरिमामय विमल विचार सुनने का आनंद जिन्हें प्राप्त हो चुका है, वे अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। काश्मीर-राज्य की प्रजा तो आपको इष्टदेव की तरह पूजती है। महाराजा बहादुर आपका जितना सम्मान करते हैं, उसे देखकर अनायास यह धारणा उत्पन्न होती है कि संप्रति काश्मीर में जनक और शतानंद, दशरथ और वशिष्ठ तथा पुरंदर और बृहस्पति अवतरित हुए हैं। आप-जैसे सिद्ध पुरुष को पाकर जिस प्रकार काश्मीर-राज्य गौरवान्वित और धन्य हुआ है, उसी प्रकार हमारे अन्य देशी राज्य भी हों, ईश्वर से यही प्रार्थना है। *

महामहोपाध्याय पंडित जयदेव मिश्र

× × ×

६. अन्योक्ति

(१)

रख आशा पर दृष्टि सरलता-वश तू आया ;
कुछ दाने अवलोक क्षुधा से गया सताया।
हाँ, दाने हैं पड़े ; किंतु वह जाल लगा है ;
कर ले अरे विचार, जगत में बहुत दग़ा है।
अमृत और विष-योग से बना जगत को जान ले ;
दाने यदि देखे कहीं, वहीं जाल अनुमान ले।

(२)

ओले से भर रहा मूढ़ यह आँगन तेरा ;
पूजन-समय बिसार बना ओलों का चेरा।
भ्रम हो गया सवार दीनता फिरता ओले ;
ओले किसके हुए बता दे मानव भोले।
दिया नहीं, खरचा नहीं, किया न पर-उपकार है ;
पानी बन बहता गया, ओला किसका यार है ?

"नयन"

× × ×

७. ताजमहल का निर्माण

शाहजहाँ के चार पुत्र और चार पुत्रियाँ थीं। बड़े लड़के का नाम दाराशिकोह (अर्थात् मर्यादा में श्रेष्ठ), दूसरे का नाम शाहसुजा (वीर राजा), तीसरे का नाम मुहम्मद मुरादबख़्श (मनोरथ पूर्ण करनेवाला) और चौथे का नाम औरंगज़ेब या आलमगीर (संसार-विजेता) था। लड़कियों में बड़ी लड़की का नाम अंजुमन-आरा (सभा की शोभा) बेगम ; उससे छोटी का नाम गिती-आरा (पृथ्वी-भूषण) बेगम, तीसरी का नाम जहान-आरा (संसार-शोभा) बेगम और सबसे छोटी (चौथी) का नाम दहरू-आरा बेगम था। यह लड़की जन्म लेने के पहले अपनी माता के पेट ही में रोने लगी थी ! पेट में बच्चे का रोना सुनकर उसकी मा मुमताजमहल अपने जीवन से हताश हो गई। उसने तुरंत शाहजहाँ को बुलाकर उनसे रोते-रोते कहा—"आज तुम्हारे पास से हमेशा के लिये चले जाने की मेरे लिये आज्ञा आ गई ! आज आख़िरी बिदाई और जुदाई का दिन है। मेरी क़िसमत में ग़म और जुदाई ही लिखी है। मुझे खुदा ने कुछ ही दिनों के लिये तुम्हारी ख़िदमत में भेजा था। आज खून के आँसू बहाओ। मा के पेट में बच्चे के रोने से मा की मौत होती है। इस दुनिया से रुख़सत होकर आज ही मुझे बिहिश्त में जाना है। मेरे क़ुसूरों को माफ़ करना।" अपनी प्यारी सम्राज्ञी की विषाद-पूर्ण करुणाजनक वाणी सुनकर सम्राट् अत्यंत विह्वल हो गए। वह मुमताजमहल को बहुत प्यार करते थे। इस दारुण दुःख के कारण बिलख-बिलखकर रोने लगे। सर्वांग-सुंदरी सम्राज्ञी रोती-रोती फिर बोली—"प्यारे, मेरी रूह जितने दिनों तक इस दुनिया में क़ैद थी, मैंने

* इस जीवनी की सामग्री मुलतान-निवासी ऑनरेबुल राजबहादुर हरिश्चंद्र की कृपा से प्राप्त हुई है। इसके लिये हम उन्हें कृतज्ञता-पूर्वक धन्यवाद देते हैं।—लेखक

सिर्फ़ तुम्हारी सूरत देख-देखकर सब्र किया । ख़ुदा के फ़ज़्ल से आज तुम सारे मुल्क को फ़तह कर चुके हो । आज तुम शाहंशाह हो । आज ख़ुशियाँ मनाने का दिन है, और आज ही मैं मर रही हूँ—अफ़सोस ! इस वक़्त भी मेरे दिल की दो मुरादें हैं । मुझे उम्मीद है, तुम उन्हें पूर्ण करोगे ।"

सम्राट् के पूछने पर सम्राज्ञी ने उत्तर दिया—"अल्लाहताला ने मुझे चार लड़के और चार लड़कियाँ दी हैं । ये ही दुनिया में मेरा नाम क़ायम रखने को काफ़ी हैं । फिर भी मेरी दिली ख़्वाहिश यह है कि मेरी क़ब्र पर एक ऐसी आलीशान इमारत खड़ी की जाय, जिसे देखकर सारे ख़ल्क़ के मुँह से आप-ही-आप वाह-वाह निकल पड़े ।"

सम्राट् ने मुमताज की दोनों मुरादें पूरी करने का वादा किया । इसके कुछ दिनों के बाद ही दहरू-आरा बेगम के पैदा होने के साथ ही उसकी मा (मुमताजमहल) चल बसी ।

सम्राज्ञी की मृत्यु के बाद छः महीने तक उनका शव एक चौकोने स्थान में सुरक्षित रक्खा रहा । बड़े-बड़े विश्व-विख्यात शिल्पी बादशाह के सामने समाधि-मंदिर के नक़्शे पेश करने लगे । बादशाह ने एक नक़्शा पसंद किया । उसी के अनुसार पहले लकड़ी का एक घर बना । फिर सुंदर और बहु-मूल्य पत्थरों से समाधि-मंदिर बनाने का काम शुरू हुआ । उसके बनवाने में १७ वर्ष लग गए । समाधि-मंदिर के पत्थरों पर फूल, पत्ती और लता आदि की रचना (Mosaic work) में जो बहु-मूल्य पत्थर लगे थे, उनकी एक सूची नीचे दी जाती है—

पत्थर का नाम	कहाँ से आया	पत्थर का परिमाण
कॉर्नेलियन	बग़दाद	६१० मन
कॉर्नेलियन	अरब, फेलिक्स	२४० ,,
वैडूर्य	तिब्बत	४४० ,,
लेपिसलज़ली	सिंहल	२८० ,,
प्रवाल	समुद्र	११० ,,
सुलेमानी और गोमेद	दाक्षिणात्य	५४० ,,
पक्के रंग का चीनी पत्थर	कनाडा	अपरिमित
लहसुनिया	नील-नदी (आफ़्रिका)	६१५ मन
नक़ली रूबी-पत्थर	गंगा-नदी	२४५ ,,
सुनहला पत्थर	पर्वतमाला	६७० ,,
पिल-ज़हूर	कुमायूँ	१०१० [illegible]
ग्वालियर का पत्थर	ग्वालियर	अपरि[illegible]
दुर्लभ पत्थर	सूरत	५०१० [illegible]
काला पत्थर	जेहरी	८५ [illegible]
दूधिया पत्थर	,,	४५ [illegible]
श्वेत पत्थर	मकरान	अपरि[illegible]
लाल पत्थर	अनेक स्थानों से	४५ [illegible]
सुलेमानी पत्थर	खमाच	[illegible]
संग नाखुद	,,	२२५ [illegible]

प्रति घन-गज़ में कौन पत्थर कितना लगा, इस[illegible] सूची—

संगमर्मर	४०
चीनी पत्थर	७६
काला पत्थर	४८
सूर्यकांत और सुलेमानी पत्थर	६५
लाल पत्थर	३०
पिल ज़हूर	४५
फ़्लिंट पत्थर	५७
अल्पाश्चर्य पत्थर	४२०
बिल्लौर	८५
संग खुतू	८५
लेपिसलज़ली	३१२
सुलेमानी पत्थर	२४
चितकबरे पत्थर	४२
चिकना पत्थर	२५
गुलाबी रंग का पत्थर	४५

अन्यान्य बहु-मूल्य पत्थरों की सूची—

रूबी	५४
ज़मुर्रद या पन्ना	६७
सब्ज़ पत्थर	१२५
नीलोपल	१४५
संगे-सिमाक	१०४
वैडूर्य	८५७
ग्वालियर का पत्थर	६४५
चमकीला पत्थर	७५
अयस्कांत या चुंबक पत्थर	७७
रूबी के-जैसा नक़ली पत्थर	१७५
पेटोनिका	४६

काश्मीरी पत्थर — अपरिमित

श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने निम्न-लिखित पत्थरों का भी अपने Historical Essays ग्रंथ में उल्लेख किया है—

अज़ूबा—कुमायूँ की पहाड़ी-नदी से संगृहीत।
मकियाना—बसरा से लाया गया।
सादा पत्थर—वामस नदी से आया।
यूनानी पत्थर—यूनान से लाया गया।
मूँगा—अटलैंटिक समुद्र से आया।
घर्ई—गौड़-देश से आया।
तमरा—गंडक-नदी से आया।
बेरिल—कांधार के बाबूबुद्दन-पर्वत आया।
मुसल—सिनेई पर्वत से आया।
ग्वालियर-पत्थर—ग्वालियर से आया।
लाल पत्थर—नाना देशों से आया।
सुलेमानी पत्थर—फ़ारस-देश से आया।
दालचना पत्थर—आसान-नदी से आया।

ताजमहल बनानेवाले कारीगरों और कार्याध्यक्षों के नाम और उनका मासिक वेतन—

१. रूम देश का क्रिस्तान—(यह नक़्शा बनाता था और चित्र बनाने में अद्वितीय था), वेतन १०००)
२. अमानतख़ाँ—(शीराज़-निवासी राजकीय लिपिकार), १०००)
३. मुहम्मद ज़ाफ़रख़ाँ—कार्य-संचालक, ५००)
४. मुहम्मद शरीफ़ (क्रिस्तान शिल्पी), ५००)
५. इस्माइलख़ाँ—(गुंबद-निर्माता), ५००)
६. मुहम्मदख़ाँ—(बग़दाद-निवासी लिपिकार), ६००)
७. मोहनलाल— पत्थरों पर बेल-बूटे खोदनेवाला नतराश, ५००)
८. मनोहरलाल—(लाहौर-निवासी), ५००)
९. मोहनलाल— ,, ६८०)
१०. ख़तमख़ाँ— ,, गुंबद-निर्माता, २००)

ताजमहल बनाने में कुल ख़र्च ४ करोड़ ११ लाख ८ हज़ार ८२६ रुपए ७ आने ६ पाई हुआ था।

श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने निम्न-लिखित शिल्पियों के नाम दिए हैं—

१. (कार्य-निरीक्षक) मुफ़ारदुआमतख़ाँ और मीर अबदुलकरीम।
२. शिल्पी—अमानतख़ाँ शीराज़ी (कंधार का)।
३. प्रधान मिस्त्री—ईशाक़ और आगरा-निवासी स्ववाति।
४. प्रधान बढ़ई—दिल्ली-निवासी पीरा।
५. तक्षणकार—बनुहार, जटमल और जोपा-ओयार।
६. गुंबद-निर्माता—इस्माइलख़ाँ रूमी।
७. उद्यान-रचयिता—रायमल काश्मीरी।

मुमताजमहल की मृत्यु के बारह वर्ष बाद सम्राट् शाहजहाँ ताजमहल देखने गए। सम्राट् ने उसकी रक्षा और वहाँ के रहनेवाले पीर-फ़क़ीरों के ख़र्च के लिये ३० गाँव जागीर दिए। इन गाँवों से प्रतिवर्ष एक लाख रुपए कर के वसूल होते थे। ताजमहल के आस-पास की सरायों और दूकानों की आमदनी भी इसी काम में लगती थी। इन सरायों और दूकानों से भी एक लाख की वार्षिक आय थी।

सन् १६४८ ई० में एक रुपए का मूल्य ३ शिलिंग ३ पेंस था। श्रीयुत यदुनाथ सरकार ने अपनी Historical Essays-नामक पुस्तक के १५७ पृष्ठ में लिखा है कि ताजमहल बनवाने में ५० लाख रुपए ख़र्च हुए थे। पादिशा-नामा और मुंतख़ुब-उल्-लुबा आदि ग्रंथों में ताजमहल का सारा ख़र्च इतना ही लिखा है। दीवान अफ़रीदी की राय में ९ करोड़ १७ लाख रुपए इसके बनाने में ख़र्च हुए थे। ठीक नहीं कहा जा सकता कि उपर्युक्त अंकों में कौन अंक ठीक है।*

श्रीउमेशप्रसादसिंह

× × ×

८. याद

याद उसकी हर घड़ी आती मुझे,
रूप उसका चित्त में बसता सदा;
प्रेम की वह मूर्ति हरदम सामने—
चित्र-सी है नृत्य करती सर्वदा।
वह सरलता, वह सरसता-सारता,
माधुरी की परम-सीमा, क्या कहीं—
देखने को फिर मिलेगी विश्व में?
हाँ, मिलेगी—किंतु उसके साथ ही।

* कर्नल आर० पी० ऐंडर्सन की एक हस्त-लिखित पुस्तक के आधार पर 'Calcutta Review' (कलकत्ता-रिव्यू) में प्रकाशित एक लेख का सारांश।—लेखक

प्रथम दर्शन के समय मैंने उसे—
दे दिया सर्वस्व, क्या उन्माद है !
कुछ नहीं मेरा रहा संसार में,
शेष केवल एक उसकी याद है।
माधुरी-कटुता भरी कल्लोलिनी,
सुधा-विष का मेल लेकर है वही ;
सूर्यकन्या-जह्नुजा के साथ से,
है त्रिवेणी ज्यों तरंगित हो रही।
जब वसंत-समीर कहता कान में,
मलयगिरि की मंजु-मंजु कहानियाँ ;
परभृतों के भार से वन-बाग के
झुक पड़ीं प्रति वृक्ष की जब डालियाँ।
जब सुधाकर निज-सुधा-निष्यंद से
भुवन में भरता अलौकिक मधुरिमा ;
जगमगाती मूर्ति वह आलोक से,
स्मरण-पथ की दूर होती कालिमा।
क्षण छिपे, क्षण मंद मुसकाहट लिए,
उदय होती—हृदय की जड़ता हरे ;
नित्य ही इस भाँति वह लीलामयी,
मोहिनी, मायाविनी क्रीड़ा करे।

भूपनारायण दीक्षित

× × ×

९. विलाप और प्रबोध
(ठेठ हिंदी में)

विलाप—

वह सुख सब मेरे क्या हुए हा, विधाता !
दुख-बिपत-घटा क्यों छा गई आज ऐसी ?
दिवस-रजनि आठों याम आँसू बहाते,
कलप-कलप, हा, मैं यों बिता क्यों रहा हूँ ?
सुरत बँध रही है जागते और सोते,
अब तक उस मेरे लाल ही की मुझे तो।
अब फिर वह आके तोतली बोलियों से ;
हँस-हँसकर मेरा जी न क्या मोह लेगा ?

प्रबोध—

सुख सकल यहाँ तो हैं दुखों से घिरे ही ;
सब दिन दुख ही में हैं किसी के न जाते।
सुख, दुख, यह दोनों हैं मिले एक ही में ;
फिर तुम इतने क्यों हो रहे हो दुखारी ?
जिस पर पड़ता जो है, उसे सो सहेगा ;
बिपद भुगतनी ही मानुखों को पड़ेगी।
तिस पर अपने ही हाथ में है न भावी ;
वह टल न सकेगा, भाग में जो लिखा है।
जनम-भर यहाँ है कौन आँसू बहाता ?
हँस-हँस दिन बीते क्या किसी के सभी हैं ?
सुख-सहित रहा है कौन चारों पनों में ?
सब दिन सबके हैं एक-से बीतते क्या ?
जनम, मरन तो हैं जीव-पीछे लगे ही ;
अमर बन यहाँ है कौन आया, कहो तो ?
दस बरस गए पै, या अभी, या कभी हो,
जमपुर चलना क्या मानुखों को नहीं है ?
फिर जग सपना-सा झूठ है, देखते हो ;
मिल-बिछुड़न मानो है नदी-नाव-जैसा।
निज-निज करमों का हैं सभी भोग पाते ;
सब दिन अपनी तो देह भी है न होती।
कब तक पकड़ोगे यों कलेजा दुखी हो ?
कब तक अविवेकी-से रहोगे यहाँ पै ?
बनकर जब साधू, तोड़ के नेह-नाता,
बन-बन बिचरोगे, तो कहोगे वहाँ क्या ?
घर पर रहके औ झेल के भी दुखों को ;
जतन यह करो, हो भाइयों की भलाई।
दिन वह फिर लौटे, देश सारा सुखी हो ;
इस तरह न रोवे हो दुखी और कोई।
अनगिनत बड़ी ही प्रीति से नित्त पाली,
नुच-नुचकर सूखी बेलियाँ क्यारियों में।
बहुत अधखिले ही फूल रंगीन देखो,
गिरकर मुरझाए, फूलने भी न पाए।
यह गुन लख आँखों देस की रीति खोटी,
अवसर पर देना दुःखितों को सहारा।
पग-पग धन-लोभी, नीच, पापी, खलों से ;
कमर कस सदा ही बेबसों को बचाना।
बन इस धरती के बीच पूरे विवेकी,
मन पर-हित में दो पुन्न में जी लगाओ।
घर-घर दुखदाई पाप जो छा रहा है,
वह सब मिट जावे, यों करो लोक-सेवा।

"भुक्तभोगी"

× × ×

१०. ट्रांसवाल की सोने की पैदावार

गत दिसंबर-मास में ट्रांसवाल की सोने की खानों की पैदावार २०,७६,६३० तोले थी। यह पैदावार गत मास की पैदावार से ४,७७४ तोले और दिसंबर, १९२२ की पैदावार से ३१,६३५ तोले न्यून थी। सन् १९२३ की, पूरे वर्ष की, पैदावार २,४३,५४,८२७ तोले हुई है। यह आय गत वर्ष की आय से ५६,३४,५३२ तोले अधिक थी; क्योंकि गत वर्ष के प्रारंभ में वहाँ पर मज़दूरों की हड़ताल हुई थी। गत तीन वर्षों की मासिक उपज निम्न-लिखित है—

	१९२१	१९२२	१९२३
	तोले	तोले	तोले
जनवरी	१७,३७,५८१		२०,३७,५८४
फ़रवरी	१४,८८,३६५	१७,०५,९४१	१८,७९,९२०
मार्च	१७,८९,६६१		२०,३०,८९६
एप्रिल	१८,१७,०१९	१३,६३,५६७	१९,८३,०६९
मई	१८,३४,०६९	१६,७९,४३०	२०,९७,५०४
जून	१८,०९,३०७	१८,०१,८५८	२०,१४,१५७
जूलाई	१८,३८,८१३	१९,४८,३६०	२०,११,४८३
अगस्त	१८,९७,४०३	२०,०६,६४०	२०,५१,६५६
सितंबर	१८,४२,९२३	१९,९२,२३७	१९,७२,०११
ऑक्टोबर	१८,८७,५३३	२०,७५,०९०	२१,१३,९१२
नवंबर	१८,७७,९६२	२०,३८,६०६	२०,८१,७०५
दिसंबर	१८,१८,२५९	२१,०८,५६५	२०,७६,९३०
कुल जोड़	२,१६,३८,८९५	१,८७,२०,२९५	२,४३,५४,८२७

गत वर्ष की पैदावार से सन् १९१६ की पैदावार भी अधिक हुई थी। इस वर्ष की पैदावार २,४७,९०,९८० तोले थी। हाँ, गत सन् १९२३ की पैदावार मार्के की हुई है।

कस्तूरमल बाँठिया

× × ×

११. बच्चों के खिलौने

भारतीय बच्चों के खिलौने आज भी वैसे ही हैं, जैसे सौ-दो सौ वर्ष पहले थे। जिस समय भारतवर्ष स्वतंत्र था, उस समय ढाल, तलवार, तीर और धनुष आदि ही खिलौने के रूप में बालकों के आगे रक्खे जाते थे। परंतु भारत में अँगरेज़ों का पदार्पण होते ही भारतीय निस्तेज हो गए। तब से विदेशों में बने हुए बाजे, बाँसुरी, चाबी देने से चलनेवाली रेलगाड़ियाँ, रबर के गेंद आदि खिलौनों से भारतीय बाज़ार पट गया। किंतु इस वैज्ञानिक युग में बालकों को ऐसे ही खिलौने खेलने के लिये दिए जाने चाहिएँ, जिनसे कल्पना-शक्ति की वृद्धि होने के साथ ही उनको कला-कौशल की भी शिक्षा प्राप्त हो।

पाश्चात्य देशों में बच्चों के खिलौनों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाता है। इन खिलौनों की सहायता से, बालकों को, शिल्प-शास्त्र और यंत्र-शास्त्र की शिक्षा किस प्रकार मिलती है, यह बात नीचे के चित्र से अच्छी तरह ध्यान में आ जायगी।

योरप में भिन्न-भिन्न रंग एवं भिन्न-भिन्न आकार की धातुएँ, अथवा लकड़ी आदि के टुकड़े और नल, स्क्रू (पेंच)
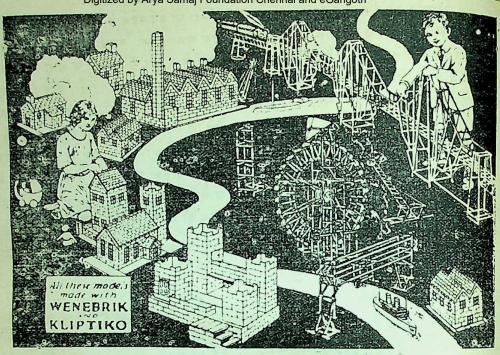
भिन्न-भिन्न रंग और आकार के धातु और लकड़ी के छोटे-बड़े टुकड़ों और पेंच आदि की सहायता से लड़के पुल और मकान आदि बना रहे हैं

आदि चीज़ें बालकों को दी जाती हैं, और उनसे नाव, पुल, मकान आदि बनाने के लिये लड़कों से कहा जाता है। बालक उनको जोड़कर मकान आदि किस प्रकार बनाते हैं, यह बात चित्र में साफ़ दिखाई देती है।

शंकरराव जोशी

× × ×

१२. क्या देखा

शास्त्र पुराण दिव्य ग्रंथादिक लोगों को पढ़ते देखा;
किंतु धर्म के विकट पंथ पर, बिरले को चढ़ते देखा।
करके बाल-व्याह विधवा को, कलप-कलप रोते देखा;
पढ़े-लिखे शिक्षित समाज को, आँख मूँद सोते देखा।
सभा-भवन में पधारने पर, जिन्हें लिए खद्दर देखा;
घर पर उनके सभी विदेशी, बूट, सूट, चद्दर देखा।
देश-भक्ति पर यों लोगों को, करते आडंबर देखा;
चुगल, निठल्ले, चोरों को भी, ओढ़े बाघंबर देखा।
जहाँ देशरक्षा-हित कुछ को, द्रव्य दान करते देखा;
वहाँ उसी में से बहुतों को, अपना घर भरते देखा।
बेटी बेंच बहुत लोगों को, स्वमुख व्याह करते देखा;
रोगी, वृद्ध, नपुंसक तक को, यहाँ व्याह करते देखा।
उच्च-वंश-संभूत युवक को, संगति-फल पाते देखा;
चॉकलेट, काफ़ी, अंडा, मुर्ग़ी भी खा जाते देखा।
ग़ैरों की चोरी कर उनको, [illegible] लेते देखा।
गृह-देवी से गहने लेकर, रंडी को देते देखा।
सुंदर बड़ी-बड़ी दूकानें, कोठे के नीचे देखा;
ऊपर बैठी वेश्याओं को, इत्र-तेल सींचे देखा।
इसी तरह अधिकांश जनों को, पाप-कर्म करते देखा;
त्यों ही जूड़ी, हैज़ा, डेंगू, चेचक से मरते देखा।

चंद्रबली मिश्र

× × ×

१३. कवि शिवनाथ

शिवनाथ कवि की कुछ रचनाएँ, प्राचीन का[व्य] संग्रहों में, स्फुट रूप में ही मिलती थीं। जहाँ त[क] हमें मालूम है, इनका रचा हुआ कोई काव्य-ग्रंथ अ[ब] तक हिंदी में प्रकाशित नहीं हुआ। संभव है, कि[सी] काव्य-प्रेमी के पास इनका कोई ग्रंथ मौजूद हो। इन[की] फुटकर कृतियों में से "षट्-ऋतु-हज़ारा" में केवल [...] कवित्त पाए जाते हैं।

हाल में हमें अपने एक प्रिय बंधु से शिव[नाथ]

कवि के "रस-वृष्टि"-नामक ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति मिली है।

"रस-वृष्टि" की जो प्रति हमें प्राप्त हुई है, उसमें ६२ पृष्ठ हैं। प्रथम पृष्ठ ग़ायब है। प्रस्तुत पुस्तक सुवाच्य अक्षरों में मोटे काग़ज़ पर लिखी गई है। ग्रंथ के अंत में पुस्तक की नक़ल करनेवाले ने अपना नाम तथा पुस्तक की लिखावट समाप्त करने की तिथि का खुलासा वर्णन किया है। यह पुस्तक विक्रम संवत् १८२८ की वैशाख-कृष्ण सप्तमी, रविवार को तैयार हुई थी। प्रतिलिपिकार हैं तुलाराम दीक्षित। ग्रंथ के अंत में तुलाराम ने लिखा है—

"संवत् विक्रमादित्ते १८२८ शाके शालिवाहन १६६३ वैशाखमासे कृष्णपक्षे तिथौ सप्तम रविवासरे का लिखितं तुलाराम दीक्षित"

लेख सुपाठ्य होते हुए भी बहुत अशुद्ध है। प्रति देखकर ज्ञात होता है कि दीक्षित महाशय संस्कृत बहुत कम जानते थे। पुस्तकावसान के समय लिखे गए इस श्लोक से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है—

"यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा तादृशं लिखितं मया;
यदि शुद्ध विद्धं वा मम दोषं न दीयते।"

कवि ने इस पुस्तक में काव्य के विविध अंगों पर विचार किया है। नायक-नायिका-भेद और रस आदि विषयों को अपने ही बनाए हुए उदाहरणों द्वारा पुष्ट किया है। इसमें परिच्छेद, उल्लास और प्रकरण की जगह 'रहस्य' लिखा गया है। पहले के छंदों में कृष्ण, शिव और अंबिका की स्तुति की गई है। ग्रंथकार ने श्रीकृष्ण की स्तुति से ग्रंथारंभ करके अपनी कृष्ण-भक्ति का परिचय दिया है। मूल-पुस्तक में भी कवि ने अनेक स्थलों पर कृष्ण और राधिका का शृंगारात्मक वर्णन किया है। कृष्ण ही कवि के इष्टदेव प्रतीत होते हैं।

शिवनाथ दुबे कात्यायन-गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम झाऊलाल था। अपने वंश का वर्णन करते हुए आपने अपने पूर्वजों की ख़ासी प्रशंसा की है; और सात पीढ़ी तक के पुरुषों के नाम गिना दिए हैं। इससे मालूम होता है कि वे लोग और कुछ नहीं, तो विद्या-व्यसनी अवश्य थे। पूर्वजों की प्रशंसा में कवि ने जो कुछ अतिशयोक्ति की हो, वह क्षम्य हो सकती है, पर उसने स्वयं अपने लिये भी जो "पंडित कवि" और "कवि-राज" का प्रयोग किया है, सो कविता देखकर तो कवि का यह अभिमान ही प्रतीत होता है।

अस्तु। नगर पवाएँ के सिरमौर श्रीकुशलसिंह कवि शिवनाथ के आश्रयदाता थे। कवि ने स्वामी की प्रशंसा इतनी बढ़ाकर की है कि उसमें अस्वाभाविकता आ गई है। उनके पूर्वजों की उत्पत्ति प्रसिद्ध महाराज श्रीशालवाहन से बताई है, एवं कर्ण के बराबर उनकी दान-वीरता को सिद्ध किया है। यह बात प्रथम रहस्य के दोहों से स्पष्ट झलकती है। अतिशयोक्ति इनकी दृष्टि में साधारण अलंकार है। कहीं कवित्व-दोष भी हैं। तो भी पुस्तक उपादेय एवं साहित्य की श्री-वृद्धि करनेवाली है। यदि किसी महोदय के पास शिवनाथ कवि की कोई और कृति हो, या जिन्हें उपर्युक्त पुस्तक के विषय में विशेष जानकारी हो, वे कृपा-पूर्वक हमें सूचना दें। हम 'रस-वृष्टि' का संपादन करके शीघ्र ही प्रकाशित करने का विचार कर रहे हैं।

उदयशंकर भट्ट शास्त्री

× × ×

१४. पत्नी ... माला

सब अर्पण कर चुकी,
नहीं अब शेष रहा कुछ;
फिर भी कहते यही,
कि "तुमने दिया नहीं कुछ।"
श्रद्धा, भक्ति, सनेह,
प्रेम के पुष्प हमारे;
अब तो केवल यही,
शेष हैं प्राण-पियारे।
यह हार बनाकर उन्हीं का,
अर्पण करती हैं तुम्हें;
इस पुष्प-माल्य को ग्रहणकर,
प्रभु, कृतार्थ करना हमें।

पं० रामगोपाल मिश्र की धर्मपत्नी

१. जले हुए प्रमाण-पत्रों या सनदों को फिर उपयोगी बना लेना

भी-कभी आग लग जाने से ऐसे बहुमूल्य प्रमाण-पत्र और सनदें जल जाती हैं कि हानि का ठिकाना नहीं रहता। विज्ञान की कृपा से, विशेष कर रसायन-विज्ञान और फ़ोटोग्राफ़ी की सहायता से, ऐसे बहुमूल्य प्रमाण-पत्रों को फिर उपयोगी बना लेना अब बहुत आसान हो गया है। इस युक्ति से टोकियो और अन्य जापानी शहरों की राख से करोड़ों रुपए लौटा लिए जा सकते हैं। यदि यह युक्ति उस समय मालूम होती, जिस समय पंपियाई-नगर मिट्टी के नीचे से खोदकर निकाला गया था, तो उसके बृहत् पुस्तकालय की सब पुस्तकें पढ़कर लिख ली जा सकतीं।

अमेरिका के कैलीफ़ोर्निया-विश्वविद्यालय में अपराधियों का पता लगाने की विद्या सिखाई जाती है, जिसके एक प्रोफ़ेसर का नाम है डॉक्टर एडवर्ड ओ० हेनरिच। कुछ ही महीने हुए, इन्होंने ऐसी रासायनिक चीज़ें तैयार की हैं, जिसमें जले हुए काले काग़ज़ को, जो हाथ में लेते ही चूर-चूर हो जाता है, पुष्ट बना दिया जाता है, और उस पर लिखे हुए अक्षर भी स्पष्ट हो उठते हैं।

इसका कारण यह है कि जो प्रमाण-पत्र बंद संदूक़ों में रक्खे जाते हैं, उनको आग जलाकर राख नहीं कर देती। हाँ, वे जलकर काले ज़रूर हो जाते हैं। उनमें से हाइड्रोज़न तथा अन्य यौगिक पदार्थ भी उड़ जाते हैं। परंतु काग़ज़ का कार्बन, स्याही, बल्कि पेंसिल की लिखावट भी, उसी काले काग़ज़ में छिपी रहती है। यदि संदूक़ भलीभाँति ठंडा हो जाने से पहले ही खोल दिया जाय, तो भीतर का काग़ज़ जलकर ख़ाक हो जायगा, और फिर किसी काम का नहीं रहेगा। परंतु, यदि संदूक़ अच्छी तरह ठंडा हो जाय, तो उसे सावधानता-पूर्वक खोलकर प्रत्येक प्रमाण-पत्र बचाया जा सकता है।

कार्बन का पर्चा एक ऐसे घोल में रक्खा जाता है, जिससे वह कुछ पुष्ट हो जाता और कुछ चिकना पड़ जाता है। ऐसा करने से स्याही या पेंसिल की लिखी हुई लकीरें उभर आती हैं। फिर तो बिना किसी यंत्र या ख़ुर्दबीन के बहुत-से प्रमाण-पत्र पढ़े जा सकते हैं। परंतु यदि काग़ज़ में शिकन पड़ी हुई हो, पर्चे बहुत पतले हों, या धीमी स्याही से लिखा गया हो, तो पहले एन-लार्जिंग कॅमेरा या फोटो-माइक्रोस्कोपिक-यंत्र से काम लेना पड़ता है, जिससे लिखावट या छापे के अक्षर इतने बड़े हो जाते हैं कि उन्हें हर कोई आसानी से पढ़ सकता है। डॉक्टर हेनरिच कहते हैं कि छापे के अक्षरों या लिखावट का पढ़ना चतुर आदमी का काम है, जो काले रंग के विविध भेदों को समझ सके। घास के बने हुए काग़ज़ की राख भूरी होती है। परंतु जिस स्याही में लोहे का अंश होता है, जैसा कि लिखने या छापे की स्याही में होता है, उसकी राख का रंग बहुत काला होता है। किंतु लिनेन के काग़ज़ की राख भी बहुत काली होती है। इसलिये ऐसे काग़ज़ पर की लिखावट या छापा पढ़ने के लिये [illegible] करना पड़ता है कि अक्षर

लगें और देख पड़ें। सस्ते काग़ज़ की राख ख़ाकी रंग की होती है, जिस पर पड़ी हुई स्याही की काली रेखाएँ सहज ही पढ़ी जा सकती हैं। काली पेंसिल की लिखावट आग पर पड़ने से सफ़ेद ख़ाकी रंग की हो जाती है, जो आसानी से पढ़ी जा सकती है : परंतु शर्त यह है कि पहले की लिखावट स्पष्ट रही हो।

हेनरिच महोदय कहते हैं कि अस्टोरिया की आग में जो प्रमाण-पत्र जल गए थे, उनको पढ़ते समय एक अद्भुत बात प्रकट हुई। वह यह कि जब उँगली को मुँह में रखकर लार से गीली करते और गीली उँगली जले काग़ज़ पर रखते थे, तो काग़ज़ और स्याही दोनों के रंग बदल जाते थे, और पढ़ने में भी बड़ी सुविधा होती थी।

अस्टोरिया की आग से एक अनोखी बात और मालूम हुई कि सादे मनिला (Manila) के लिफ़ाफ़े में जो प्रमाण-पत्र रक्खे हुए थे, वे काम के निकले; परंतु जो नोट या प्रमाण-पत्र चमड़े के थैलों में थे, वे आग लगने पर बेकार हो गए; क्योंकि आग के ताप से चमड़ा दूध की तरह उबाल आ गया था, और उसने गोंद की तरह काग़ज़ों को चिपका दिया था, जिससे उनका अलग करना असंभव हो गया।

× × ×

२. काग़ज़ से खेत की उपज बढ़ाना

३ फ़ीट चौड़े और एक इंच के ३२वें भाग से भी कम मोटे काग़ज़ के टुकड़ों से हवाई-नामक टापू में 'पाइन-एपिल' (अनन्नास) की उपज ४० प्रतिशत से अधिक हो गई; फ़्लोरिडा में सुमात्रा की तंबाकू बोकर ऐसे ही काग़ज़ से ढक देने पर तंबाकू की उपज ५० प्रतिशत से अधिक हो गई; और कैलीफ़ोर्निया में भी टमाटो के खेत को काग़ज़ से ढक देने पर उसकी उपज ६० प्रतिशत के लगभग हो गई। पास-ही-पास के दो खेतों में स्ट्राबेरी बोई गई। एक को काग़ज़ से ढक दिया, और दूसरा यों ही खुला छोड़ दिया गया। जो खेत काग़ज़ से ढक दिया गया था, उसकी पैदावार ४० प्रति शत अधिक हो गई।

यह युक्ति सी० एफ़० एकार्ट महोदय की बुद्धि की उपज है, जो हवाई टापुओं के बर बंक कहलाते हैं। काग़ज़ एक विशेष रीति से बनाया जाता और खेतों में क़तार-की-क़तार बिछा दिया जाता है। काग़ज़ों के किनारे से छः-छः इंच की दूरी पर छेद बना दिए जाते हैं, जो एक दूसरे से २ फ़ीट के अंतर पर रहते हैं। इन्हीं छेदों से पाइन-एपिल की क़लमें धरती में गाड़ दी जाती हैं। जब काग़ज़ बिछा दिए जाते हैं, तब उनके किनारे मिट्टी से ढक या दबा दिए जाते हैं, ताकि वे उड़ न जायँ। पौदे बग़ल की क़तार में इस तरह लगाए जाते हैं कि वे अपनी ही क़तार में एक सीध में खड़े देख पड़ें, न कि बग़ल की क़तारों के पौदों की सीध में।
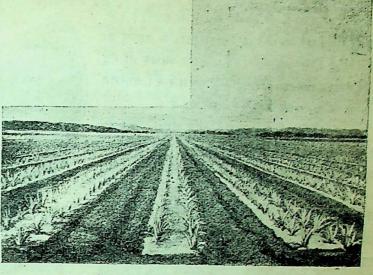
काग़ज़ के छेदों से बाहर उग आए हुए अनन्नास के पौदे

अब इस बात का अनुभव किया जा रहा है कि अंगूर और फूल देनेवाले तथा आय बढ़ानेवाले पौदों पर काग़ज़ का क्या प्रभाव पड़ता है। हवाई के टापुओं में तो ऊख के पौदों के साथ भी काग़ज़ का प्रयोग किया जा रहा है। इससे हरएक पौदे की उपज ही नहीं बढ़ जाती, वरन् फलों और पत्तियों का आकार, उनकी संख्या और ताज़गी भी बढ़ जाती है।

इसका कारण यह है कि काग़ज़ से पौदा ऐसा ढक जाता है कि उसकी जड़ें प्रायः समान ताप पर रहती हैं; छाया भी रहती है, और गरमी तथा नमी भी बनी रहती है, जो पौदों की बाढ़ के लिये अत्यंत आवश्यक है। एक लाभ और भी होता है। पौदे तो छेदों में से बाहर

निकलकर हवा खाते रहते हैं, परंतु उनको हानि करनेवाली घासें दबकर मर जाती हैं, जिससे खेत निराने की भी आवश्यकता नहीं रहती। हवाई के टापुओं में पाइन-एपिल की खेती वहीं होती थी, जहाँ गरमी बहुत पड़ती थी। परंतु अब ठंडे पहाड़ों पर भी खेती की जा सकती है; क्योंकि काग़ज़ की बदौलत सरदी का कोई डर नहीं रहता, जड़ों की गरमी और नमी (तरी) प्रायः एक-सी सदैव बनी रहती है। फ़्लोरिडा में तमाखू की उपज किसी-किसी खेत में ७१ प्रतिशत अधिक हो गई है। टमाटो की उपज परिस्थिति के अनुसार २१ प्रतिशत से १६८ प्रतिशत तक बढ़ी हुई देखी गई है।

एक लाभ और भी होता है। यदि धरती खुली हो, तो उसमें से नमी सदैव उड़ा करती है। परंतु काग़ज़ से ढकने पर नमी प्रायः ज्यों-की-त्यों बनी रहती और पौदों के ही काम आती है। इस कारण बार-बार सींचने का झंझट ही नहीं मिट जाता, बरन् गोड़ने का काम भी कम हो जाता है; क्योंकि मिट्टी पर पपड़ी नहीं उठती। जब खेत की नमी न उड़ेगी, तो उसके उड़ने से जो गरमी चली जाती है, वह भी बनी रहेगी, जो पौदे की बाढ़ के लिये बहुत आवश्यक होती है। यदि पानी बरसता है, तो उसकी बूँदें काग़ज़ पर पड़ती हैं, जिससे यह लाभ होता है कि मिट्टी इकट्ठी नहीं होने पाती। किसी-किसी काग़ज़ में बहुत नन्हे-नन्हे छेद होते हैं, जिनसे ओस, कुहरा और बरसाती पानी धीरे-धीरे धरती में पहुँचता और खेत में इकट्ठा होकर पौदों को लाभ पहुँचाता है। काग़ज़ बिछाने के लिये कई तरकीबें हैं। लोहे की छड़ों में काग़ज़ लपेटकर एक आदमी बिछाता जाता है,
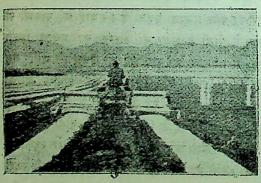
लोहे की छड़ों में काग़ज़ लपेटकर खेत में बिछाया जा रहा है

उसके पीछे और दूसरे आदमी कुदाल से मिट्टी खोदते और काग़ज़ के किनारों को दबाते जाते हैं। मशीन से भी काग़ज़ बिछाया जाता है, जिनको घोड़े खींचते हैं।
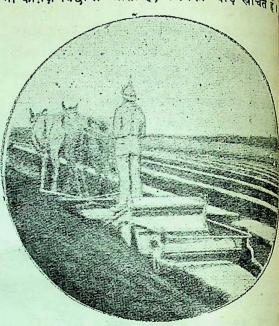
घोड़ों से खींची जानेवाली मशीन से काग़ज़ बिछाया जाता है

इनमें ऐसा यंत्र लगा रहता है कि मिट्टी आप-ही-आप खुदकर किनारों को दबा देती है। यदि चौरस खेत हो, तो मशीन से दो क़तारों में एक साथ ही काग़ज़ बिछता चला जाता है।

× × ×

३. दस्ताने से बोलना

योरप में गूँगे और बहरे आदमियों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वे संकेत करके अपने सब भाव प्रकट कर
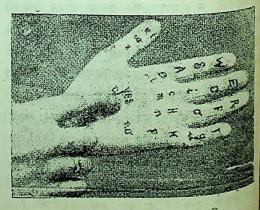
अक्षर-युक्त दस्ताना

सकते हैं। परंतु यह समझने के लिये बोलनेवाले मनुष्यों को भी सांकेतिक भाषा का परिचय होना चाहिए। इस असुविधा को दूर करने के लिये गूँगे और बहरे आदमियों को ऐसा दस्ताना दिया जाता है, जिसमें सब अक्षर लिखे रहते हैं, और एक जगह 'हाँ' और 'नहीं' भी लिखा रहता है। गूँगों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वे अक्षरों पर उँगली रखकर शब्द प्रकट करते हैं। इस रीति से कोई भी पढ़ा-लिखा मनुष्य गूँगों से बात-चीत कर सकता है। अक्षरों का क्रम वैसा ही रहता है, जैसा अमेरिकन टाइप-राइटर के बोर्ड में होता है। यदि 'हाँ' या 'नहीं' कहना होता है, तो इन्हीं शब्दों पर उँगली रख दी जाती है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

× × ×

४. एक उपयोगी धातु

एलुमिनियम एक प्रकार की हलकी धातु है। किंतु वह मज़बूत नहीं होती। लोहा मज़बूत तो होता है, किंतु भारी होता है। इसलिये वैज्ञानिक बहुत दिनों से एक ऐसी धातु की खोज में थे, जो एलुमिनियम-जैसी हलकी और लोहे-जैसी मज़बूत हो। इतने दिनों के बाद उन्होंने एक धातु-सम्मिश्रण (alloy) तैयार किया है, जिसका नाम डुरेलुमिन (Duralumin) रक्खा है। इसमें उक्त दोनों गुण हैं। अन्य धातुओं की अपेक्षा इस पर पालिश जल्दी चढ़ती है। यह एलुमिनियम से भी आसानी से कटती है। साधारण जल-वायु में ख़राब भी नहीं होती। आग लगने पर एलुमिनियम की भाँति जल्दी गलती भी नहीं।

इस धातु के बने हुए वायुयान, मोटर और जहाज़ आदि बड़े हलके होंगे। हलके होने के कारण चाल में भी तेज़ होंगे। वैज्ञानिक लोग इसी धातु से ऐसी बड़ी-बड़ी मशीनें बनाने की चेष्टा कर रहे हैं, जो एक स्थान से दूसरे स्थान को आसानी से हटाई जा सकें। इस धातु का भविष्य उज्ज्वल जान पड़ता है।

× × ×

५. सूर्य और नक्षत्र

संसार में हम लोग अपनेको ही सबसे बड़ा समझते हैं। अपने सामने हम लोग सभी वस्तुओं को तुच्छ मानते हैं। किंतु हम यदि अपनी थोड़ी-सी भी विचार-शक्ति से काम लें, तो हमें जान पड़ेगा कि इस विश्व-ब्रह्मांड में हम नगण्य हैं। दरअसल हममें से बहुत कम ही आकाश के विस्तार को ठीक तरह से समझते हैं। इस अनंत आकाश में कितने सूर्य, नक्षत्र, और ग्रह आदि हैं, और वे एक दूसरे से कितनी दूरी पर हैं, यह ठीक-ठीक कोई नहीं बतला सकता। उनके बीच के फ़ासले का अंदाज़ा हम इतने ही से लगा सकते हैं कि आकाश-स्थित सबसे बड़ा पदार्थ सूर्य हमें केवल एक बिंदु-मात्र दिखलाई देता है, पर उससे प्रकाश आने में कई वर्ष लग जाते हैं।

गत कई वर्षों में ज्योतिष-शास्त्र की बड़ी उन्नति हुई है। जो काम दूरवीक्षण-यंत्र नहीं कर सकता, उसे आजकल स्पेक्ट्रोस्कोप (Spectroscope) और इंटरफ़ेरोमिटर (Interferometer) कर रहे हैं। दस वर्ष हुए, ज्योतिषियों ने कहा था कि दूरवीक्षण-यंत्र प्रायः अपनी पूरी शक्ति हासिल कर चुका है। आजकल जो सबसे बड़ा टेलिस्कोप (दूरबीन) है, उससे अधिक शक्तिशाली यंत्र शायद ही बनेगा। इसलिये उसके भरोसे पर बैठे न रहकर वैज्ञानिकों ने उक्त दो यंत्रों की सहायता ली है।

डॉ० हरलन स्टटसन ने कुछ चमकीले तारों का परिमाण दिया है। वे तारों के नापने का काम बहुत दिनों से कर रहे हैं। उन्होंने जो सूची तैयार की है, वह संग्रहणीय है *

* तारे का नाम		पृथ्वी से उसकी दूरी	व्यास-मील	
एंटरेस (Antares)	प्रायः	२१,००० अरब मील	३८,२०,०० ,०००	प्रायः
बिटालगेयस (Betalgeuse)	,,	१०,४४० ,, ,,	२४,२०,००,०००	,,
बिटा-हरक्युलिस (Beta Herculis)	,,	१२,६६० ,, ,,	१८,४८,००,०००	,,
गामा ऐंड्रो मेडी (Gamma Andromedæ)	,,	४७,४०० ,, ,,	१६,३०,००,०००	,,
बिटा-पेगासी (Bata Pegasi)	,,	४,४१० ,, ,,	७,४४,००,०००	,,

इतने बड़े-बड़े पदार्थों की तुलना करना मनुष्य-शक्ति के परे है। इन कल्पनातीत वस्तुओं का ज्ञान केवल एक दृष्टांत द्वारा कराया जा सकता है। पहाड़ की तुलना में जैसे एक बालू का कण है, वैसे ही इनमें से किसी एक की तुलना में हमारी पृथ्वी है। पदार्थ (Matter) के सामने जैसे अणु हैं, वैसे ही हमारी पृथ्वी नक्षत्रों के सामने है। हम मनुष्यों की तो बात ही क्या? हम कितने छोटे और कितने नगण्य हैं, एक बार ऊपर की संख्याओं पर विचार करने से भली भाँति जान सकते हैं।

× × ×

६. क्या ज़िंदगी से मौत अधिक प्यारी है?

प्रोफ़ेसर सिगमंड फ़्रेंड मनोविज्ञान के बड़े भारी विद्वान् गिने जाते हैं। हाल ही में, जर्मन-भाषा में; उनकी एक पुस्तक—Das Ich and dases, अर्थात् The I and the It—प्रकाशित हुई है। उसमें आपने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि मनुष्य के मन में अपने को प्यार करने की अपेक्षा अपनी मृत्यु की अभिलाषा अधिक है। यद्यपि मनुष्य की ऊपरी चेष्टाएँ उसकी मृत्यु की इच्छा को छिपाए रखती हैं, तथापि मौक़ा पाते ही वह किसी न-किसी रूप में अवश्य प्रकट होती है। तो क्या मनुष्य जीने की अपेक्षा मरना ही अधिक पसंद करता है?

श्रीरमेशप्रसाद

ऐप्सिलन जर्मिनोरम (Epsilon Germinorum)	प्रायः २७,००० अरब मील	४,००,००,००० प्रायः
ऐल्डेबरन (Aldebaran)	,, ३,०६० ,, ,,	३,२०,००,००० ,,
बिटा-ऐंड्रोमेडी (Beta Andromedæ)	,, ३,१६० ,, ,,	२,३०,००,००० ,,
बिटा-आफ़ियुची (Beta Ophiuchi)	,, ८,२६० ,, ,,	२,०२,००,००० ,,
आर्कटरस (Arcturus)	,, २,००० ,, ,,	१,७०,००,००० ,,
पोलक्स (Pollux)	,, ३,१६० ,, ,,	१,४०,[illegible],००० ,,
अल्फ़ा एरिटिस (Alpha Arietis)	,, ५,१०० ,, ,,	१,००,००,००० ,,
अल्फ़ा-पर्सी (Alpha Persei)	,, ९,५०० ,, ,,	९०,००,००० ,,
कैपेला (Capella)	,, २,४४० ,, ,,	८३,६०,००० ,,
पोलारिस (Polaris)	,, २,४०० ,, ,,	८१,७०,००० ,,
रेगुलस (Regulus)	,, ६,३०० ,, ,,	३०,००,००० ,,
गामा सरपेंटिस (Gamma Serpentis)	,, २,६०० ,, ,,	२४,००,००० ,,
सिरियस (Serius)	,, ५०० ,, ,,	१०,३०,००० ,,
हम लोगों का सूर्य	,, ९२० लाख ,,	८,८६,००० ,,
पृथ्वी	× × ×	८,००० ,,

१. अंतर-राष्ट्रीय महिला-परिषद्

तर-राष्ट्रीय महिला-परिषद् की चौथी वार्षिक बैठक वाशिंगटन (अमेरिका) में होगी । अध्यक्ष का स्थान मिस जेन आदम्स सुशोभित करेंगी । योरप के सब देशों के अतिरिक्त इसमें हिंदुस्तान, चीन, जापान, कनाडा, दक्षिण-अमेरिका और मैक्सिको की महिलाएँ भी प्रतिनिधि-रूप में सम्मिलित होंगी ।

परिषद् का मुख्य उद्देश्य संसार के सब देशों की प्रजा में पारस्परिक मैत्री तथा सहयोग के भाव स्थापित कर युद्ध का अंत करना है । इसके लिये उक्त परिषद् महिलाओं को राजकीय, सामाजिक और नैतिक विषयों में पुरुषों के समान ही अधिकार दिलाने का यत्न कर रही है, और शिक्षा की सब योजनाओं में इन सिद्धांतों का समावेश कराना चाहती है । संसार के विभिन्न देशों में अब तक इसने अपनी २१ शाखाएँ स्थापित की हैं । जिस देश में इसकी शाखा नहीं है, वहाँ की भी कितनी ही स्त्रियाँ इसकी सदस्या हैं । यह परिषद् संसार को यह दिखा देना चाहती है कि युद्ध से युद्ध करनेवाले ही का नाश होता है ; उससे संसार को किसी प्रकार का लाभ नहीं हो सकता, बल्कि उलटी हानि ही होती है । अनुभव और इतिहास इसके साक्षी हैं । किसी देश से यदि किसी देश का किसी प्रकार का विरोध हो, तो वह युद्ध के अलावा अन्य प्रकारों से भी उसे शांत कर सकता है ।

इस परिषद् की मनोनीत अध्यक्षा मिस जेन आदम्स गत वर्ष भारत में भी आई थीं । भारतवर्ष की स्त्रियाँ संसार में शांति स्थापित करने के लिये कितनी आतुर हैं, इसका उस यात्रा में उनको पूरा अनुभव हो गया था । हिंदुस्तान की स्त्रियाँ स्वभावतः शांति-प्रिय हैं । आशा है, इस कार्य में उनकी सहायता अमूल्य होगी ।

× × ×

२. सुंदरता

जापान की स्त्रियाँ अपने दाँत सुनहले बनाने में अपनी सुंदरता की वृद्धि समझती हैं ।

ग्रीनलैंड की अबलाओं को अपना चेहरा पीला तथा भूरा रँगने का शौक़ है ।

तुर्किस्तान में लाल बालोंवाली स्त्री ख़ूबसूरत मानी जाती है ।

चीनी महिलाएँ गोलमटोल आँखों ही को सुंदरता का लक्षण समझती हैं ।

आफ़्रिका में जिस स्त्री की आँखें छोटी, ओठ मोटे, नाक लंबी और चिपटी तथा शरीर का रंग आबनूस को मात करनेवाला होता है, वही सबसे अधिक सुंदर समझी जाती है । सौंदर्य भी रुचि-वैचित्र्य पर निर्भर है ।

× × ×

३. ऊँची एड़ी के जूतों से हानि

पेरिस-नगर की सड़कें लकड़ी और ईंटों की बनी हैं । वे बहुत जल्द ख़राब हो जाती हैं । इसका कारण

ढूँढ़ने के लिये कुछ इंजीनियर नियुक्त किए गए थे। उन्होंने विचार करके यही निश्चित किया कि वहाँ की ललनाओं के ऊँची एड़ीवाले जूतों ही के कारण ईंटों में गढ़े पड़ जाते हैं, और उनमें पानी भरने से सड़कें ख़राब हो जाती हैं।

× × ×

४. एक अंधी युवती को १५००) की छात्र-वृत्ति

लंदन-विश्वविद्यालय की बी० ए०-परीक्षा में २२ वर्ष की मिस ऐसाक्स नाम की एक अंधी युवती प्रथम हुई है। वह आठ ही वर्ष की अवस्था में अपने नेत्र खो बैठी थी; पर अपने कठिन परिश्रम और अदम्य उत्साह के कारण ही उसने यह योग्यता प्राप्त कर ली। परीक्षा में प्रथम होने से उसको एक सौ पौंड—१५००) रुपए—की एक छात्र-वृत्ति मिली है।

× × ×

५. जालंधर में प्रदर्शिनी

कन्या-महाविद्यालय, जालंधर ने स्त्रियों की दस्तकारी के नमूनों की एक प्रदर्शिनी करने का निश्चय किया है। इसमें हिंदुस्तान की कोई भी स्त्री अपनी दस्तकारी के नमूने भेज सकती है। अच्छी दस्तकारी के लिये चाँद, इनाम और प्रमाण-पत्र आदि दिए जायँगे। जिनको अपनी दस्तकारी के नमूने भेजने हों, वे इस पते से पत्र-व्यवहार कर सकती हैं—

मंत्री, कन्या-महाविद्यालय, जालंधर (पंजाब)

× × ×

६. नारी नर की खान

पीटर्सबर्ग की मिसेज़ रॉलिंसन नाम की एक स्त्री ने चार वर्षों में ६ बालक उत्पन्न किए थे। ख़ैर, यह तो एक साधारण बात है। मिसेज़ ऑर्म्सबी नाम की एक महिला ने सात वर्ष में अपने पति को १४ बालक भेंट किए थे। पर मैडम फ़रनेस नाम की एक बेल्जियन स्त्री ने मिसेज़ ऑर्म्सबी को भी मात कर दिया। उसने बारह महीने में ६ लड़के जने। पहले भी इसके आठ-दस लड़के थे। किंतु पेरिस के एक भठियारे की स्त्री इससे भी बाज़ी मार ले गई। उसने सात वर्ष में २१ लड़के उत्पन्न किए। प्रत्येक वर्ष तीन-तीन लड़के हुए थे। जब ये इक्कीस लड़के बड़े हुए, और इनका विवाह हुआ, तो इनकी स्त्रियों ने भी एक साथ ही तीन-तीन लड़के जने थे। कंबरलैंड के एक दंपति के ३१ लड़के हुए थे। क्लर्कनवेल के एक सालिसिटर के ३२ लड़के थे। योरप की बनिस्बत अमेरिका में ऐसे बड़े-बड़े कुटुंब अधिक देखे जाते हैं। कनाडा के एक दंपति के हाल में इकतालीसवाँ बालक हुआ है। जेसेका किंगस्टन के तीन बहनें हैं। उनके लड़कों की संख्या इस समय ६४ है।

सबसे अधिक आश्चर्य-जनक बात दो भाई और उनकी एक बहन की है। ये तीनों अभी जीवित हैं। इन तीनों की संतान-संख्या लगभग १,०७६ है। बड़े भाई के ४४४, छोटे भाई के ४०२ और बहन के १३० लड़के-लड़कियाँ हैं।

इन बातों पर विचार करने से यह मालूम होता है कि महाभारत-काल में एक माता के एक सौ बालक उत्पन्न होने की बात अतिशयोक्ति नहीं है। पौराणिक कथाओं में भी कहा गया है कि कलियुग में पृथ्वी का भार बढ़ जायगा। मालूम होता है, विदेशी स्त्रियाँ भू-भार-भंजन भगवान् को शीघ्र ही अवतार लेने के लिये बाध्य करना चाहती हैं।

× × ×

७. बहु-संतान-निषेध-संस्था

लंदन की श्रीमती मेरी स्टोप्स और उनके पति ने बच्चों की अत्यधिक उत्पत्ति रोकने के लिये एक "कांस्ट्रक्टिव बर्थ कंट्रोल" (Constructive Birth Controal) नाम की सोसाइटी स्थापित की है। यह सोसाइटी अधिक बच्चे उत्पन्न होने तथा कमज़ोर और रोगी बच्चों की पैदाइश रोकने के लिये उपाय सोच रही है। इस संस्था को स्थापित हुए दो वर्ष हो गए। इसकी संचालिका मिसेज़ स्टोप्स ने विज्ञान, तत्त्वज्ञान और अन्य विषयों की उच्च उपाधि प्राप्त की है। उनका स्त्री-शरीर-रचना-संबंधी ज्ञान बहुत अधिक है। 'दांपत्य-प्रेम' और 'गर्भाधान' पर उन्होंने कितनी ही प्रामाणिक पुस्तकें लिखी हैं।

× × ×

८. कोरिया में स्त्री-सुधार

"कोरियन मिशन फ़ील्ड"-पत्र के महिला-अंक में एक महाशया लिखती हैं—"कोरिया में स्त्रियों की अधिकार-संबंधी प्रवृत्ति ने दस ही वर्ष में आश्चर्य-जनक उन्नति की है। आज से दस वर्ष पूर्व प्राथमिक पाठशालाओं में कुल ४,००० कन्याएँ पढ़ने के लिये जाती थीं। आज ऐसी

कन्याओं की संख्या ४२,००० हो गई है। पहले विवाह के संबंध में कन्या की अनुमति नहीं ली जाती थी ; पर अब कन्या की स्वीकृति लिए विना विवाह नहीं होता। वहाँ अब सास के ज़ुल्म भी कम हो गए हैं। पहले चीज़ ख़रीदने के लिये स्त्रियाँ बाज़ार में नहीं जा सकती थीं ; पर अब वे बराबर जाती हैं। अब उनको यात्रा करने की भी स्वतंत्रता मिल गई है। सभा-सोसाइटियों में पहले स्त्रियों के लिये परदे का प्रबंध रहता था ; पर अब वह बात नहीं है। अब तो स्त्रियाँ दूकानदारी भी करती हैं, और कारख़ानों में काम करने भी जाती हैं। यहाँ तक कि वे मिशनरियों में धर्मोपदेशिका का भी काम करती हैं। पहले स्त्रियों की कोई एक भी संस्था न थी ; पर अब लगभग ४८ संस्थाएँ हैं।"

× × ×

९. संसार-व्यापी मातृसंघ

इँगलैंड के मज़दूर-दल की स्त्रियाँ एक संसार-व्यापी मातृसंघ स्थापित करने का आंदोलन कर रही हैं। उनका कहना है कि प्रजा को ज़मीन के एक टुकड़े के लिये परस्पर लड़कर रुपए बरबाद करने के बदले अपने भूखे बालकों का पालन और उनको योग्य नागरिक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

× × ×

१०. स्त्रियों की अधोगति के कारण पुरुष ही हैं

पुरुष सदा स्त्रियों ही के सिर सब दोष मढ़ते हैं। अपनी भूल की तरफ़ तो वे ध्यान ही नहीं देते। कितने समय से पुरुषों ने उनकी आकांक्षाएँ दबा रक्खी हैं, उनकी रक्षा का भार अपने सिर ले लिया है। रक्षा की कौन कहे, अपने रंच-मात्र स्वार्थ के लिये उनके अनेक अधिकार छीन लिए हैं। उनको अशिक्षिता और मूर्खा बना रक्खा है। उनकी बुद्धि को विकसित होने का ज़रा भी मौक़ा नहीं देते। अपनी विलास-प्रियता के लिये उनको पशु से भी अधम बना डाला है। इतने पर भी यदि पुरुष उनसे श्रद्धा, भक्ति, प्रीति, और पातिव्रत की आशा करें, तो क्या यह उनकी मूर्खता नहीं है ?

कोई यदि हमारा धन-धान्य लूट ले जाता है, तो हम ब्रिटिश सरकार को नीची-ऊँची सुनाते हैं ; क्योंकि उसने हमारे हथियार छीन लिए हैं, और हमको निर्जीव बना डाला है। परंतु स्त्रियों को इस प्रकार अबला बनाकर क्या पुरुष अपने को दोषभागी नहीं समझते ?

पुरुष चाहता है कि उसकी स्त्री पर-पुरुष की ओर देखे भी नहीं ; पर वह इसके लिये स्त्री को कोई साधन नहीं देता। प्रत्युत उसको अशिक्षिता ही रखकर उस पर प्रभुत्व बनाए रखना चाहता है, और उसके साथ अपमान-जनक तथा कुत्सित व्यवहार करता है। इतना ही नहीं, लात-जूते मारकर उसमें जो कुछ थोड़ी-बहुत प्रीति रहती है, उसको भी नष्ट कर डालता है। ऐसी हालत में स्त्रियों में स्वामिभक्ति कहाँ से हो सकती है ? वफ़ादारी एक तरफ़ से नहीं होती। प्रीति परस्पर की सच्ची और पक्की होती है। एक हाथ से ताली नहीं बजती। पुरुष को यदि स्त्री के प्रेम की चाह हो, तो उसे स्त्री के हृदय में अपनी शुद्ध प्रीति का बीज बोना चाहिए।

× × ×

११. एक महान् कार्य

'विमन-सिटिज़न''-नामक पत्रिका में जेम्स एम्० वूड्स लिखते हैं—"बीसवीं सदी के लोगों के आगे यदि कोई महत्त्व-पूर्ण कार्य है, तो वह नारी-जाति को उचित एवं पर्याप्त शिक्षा देना है। इसी पर उनकी सामाजिक और नैतिक उन्नति निर्भर है। व्यक्तिगत, सामाजिक, जातीय तथा देशीय बुराइयों को दूर करने के लिये स्त्री-शिक्षा ही एक-मात्र रामबाण औषधि है। पर इस ओर न तो सुशिक्षित समाज ही यथेष्ट ध्यान देता है, और न व्यापारी-मंडल ही। स्त्री-समाज का तो कहना ही क्या है। वह तो स्वयं अंधकार में पड़ा है ! इधर के कई वर्षों में शिक्षा-संबंधी आश्चर्य-जनक उन्नति हुई है ; पर ऐसी कोई भी संस्था नज़र नहीं आती, जो स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देती हो, जिससे उनकी आवश्यकता पूरी हो सके, और उनका भविष्य समुज्ज्वल हो।"

× × ×

१२. स्त्रियों की अधम दशा

गुजरात के एक सुप्रसिद्ध नेता और अपूर्व स्वार्थत्यागी दरबार श्रीगोपालदास देसाई ने हाल ही में बोरसद की सत्याग्रह-छावनी से एक पत्रिका प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने गुजरात के गाँवों में रहनेवाली कितनी ही जातियों की स्त्रियों की अधम दशा का दिग्दर्शन कराया है। वह लिखते हैं—"वारिया और धाराला-जातियों में

स्त्रियों की कोई इज़्ज़त ही नहीं है। वे बाज़ारू चीज़ की तरह नाचीज़ समझी जाती हैं। इन जातियों के पति-पत्नी में जहाँ कुछ अनबन हुई कि दोनों ने एक दूसरे को तलाक़ दिया, और झट दूसरा विवाह कर लिया। विवाह तो इनके लिये एक खिलवाड़ जान पड़ता है। इनमें यहाँ तक देखा गया है कि एक पुरुष किसी दूसरे की स्त्री को फुसलाकर आसानी से अपने घर ले जाकर रख लेता है। अक्सर स्त्रियाँ स्वेच्छा-पूर्वक घर से निकल जाती हैं।

"इन जातियों में कन्या-विक्रय का भी खूब ज़ोर है। माता-पिता अपनी विवाहिता लड़की को सयानी हो जाने पर भी ससुराल नहीं भेजते। उसका पहला संबंध तोड़े बिना ही रुपए लेकर दूसरे के साथ विवाह कर देते हैं। फल यह होता है कि इन जातियों के लोगों में निरंतर लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं—वैर-विरोध और खून-ख़राबी होती ही रहती है।

"स्त्रियों की ऐसी अधम दशा देखकर किसका हृदय खिन्न न होगा? जो स्त्री महामाया का अवतार और जगत् की जननी है, उसकी ऐसी भयंकर दशा! वह केवल विलास-वासना की तृप्ति का साधन ही समझी जाती है! मनुष्य में तो उसकी गिनती ही नहीं होती। दरवाज़े पर बँधे हुए पशु उससे कहीं अच्छी दशा में हैं।

"जब से कौरवों ने द्रौपदी पर कुदृष्टि डाली और भरी सभा के बीच उसका चीर खींचने का प्रयत्न किया, तभी से हिंदुस्तान की अधोगति का आरंभ हुआ। अभी तक स्त्रियों के प्रति पुरुषों का व्यवहार सुधरा नहीं है। पुरुषों की नीच और विकार-पूर्ण दृष्टि स्त्रियों की ओर प्रवृत्त ही रहती है। पर-स्त्री को घूरने में, जान या अनजान में उनका स्पर्श करने में, और उनको फाँसने में ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं! इसी में उनके लिये स्वर्गीय सुख है। ऐसे ही पतित पुरुषों के कारण हिंदुस्तान की दशा नहीं सुधरती। हम स्वराज्य के लिये लालायित हो रहे हैं; पर आत्म-शुद्धि के बिना हमें क्या अधिकार है कि हम सच्चा स्वराज्य प्राप्त कर सकें? क्या स्त्रियों के साथ पशु-तुल्य व्यवहार करने से कभी आत्म-शुद्धि हो सकती है? कदापि नहीं।"

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

९—आदर्श पातिव्रत

सन् ११४१ ईसवी की बात है। जर्मनी में राजविद्रोह की आग बड़ी भयंकरता से भड़क रही थी। सम्राट् कोनार्ड ने बवेरिया के ग्यूल्फ़स् काउंट को बेंसबर्ग के क़िले में घेर लिया। काउंट की सेना ने बहुत समय तक दुर्ग की रक्षा की, और बड़ी वीरता के साथ शत्रुओं का सामना किया। पर जब अंत में भोजन की सामग्री बिलकुल चुक गई, तो उन्हें विवश होकर सम्राट् की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सम्राट् कोनार्ड यह देखकर कि काउंट की सेना ने उनकी अधीनता स्वीकार करने में इतना हठ किया और बराबर उनकी सेना के साथ भिड़े रहे, बड़े ही क्रुद्ध हुए। उन्होंने क़सम खाई कि हम आग लगाकर उस दुर्ग का नाश करेंगे, और स्त्रियों को छोड़ प्रत्येक पुरुष का संहार कर डालेंगे। उन्होंने स्त्रियों को वहाँ से निर्विघ्न चले जाने की आज्ञा दे दी। जब काउंट की पत्नी ने यह समाचार सुना, तो वह बड़ी दुःखित हुई, और सम्राट् के पास कहला भेजा कि आपने जो हम स्त्रियों पर अतुलनीय कृपा की है, उसके लिये हम आपकी बड़ी कृतज्ञ हैं। किंतु आपसे एक प्रार्थना है। जैसे आपने हम पर इतनी कृपा की है, वैसे ही हमारे ऊपर एक और कृपा कीजिए। हमें आज्ञा दीजिए कि हम अपने साथ अपनी सारी मूल्यवान् वस्तुएँ सुगमता से ले जा सकें।

सम्राट् ने अपने मान और अपनी बात का गौरव विचार कर उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय दुर्ग का फाटक खोला गया। सम्राट् ने देखा कि हरएक स्त्री की पीठ पर उसके पति और बाल-बच्चे तथा अन्य संबंधी लदे हुए हैं। यह दृश्य देखकर सम्राट् बड़े विस्मित हुए। उन पर इस अनुपम दृश्य का बड़ा भारी असर पड़ा। वह प्रेम-गद्गद हो गए। उन्होंने मन-ही-मन उन प्रेम की असली मूर्तियों—स्त्रियों—की प्रशंसा की।

फल यह हुआ कि ग्यूल्फ़स् काउंट को स्वतंत्रता और प्राण-दान मिला। उनको सदा के लिये गढ़ बख़्श दिया गया। उसी दिन से काउंट और उनकी पत्नी पर सम्राट् की असीम कृपादृष्टि रहने लगी। बेंसबर्ग भी पातिव्रत की महिमा से जगत्-प्रसिद्ध हो गया।

निर्मलचंद्र चतुर्वेदी
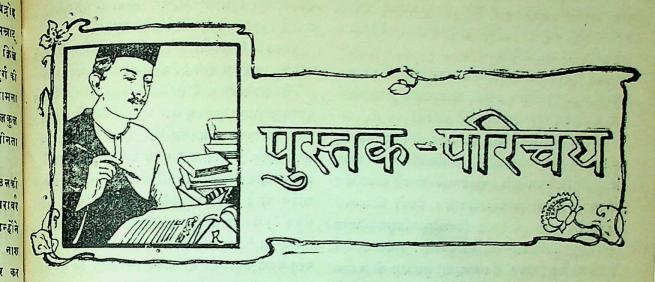
१. वैद्यक

गुप्त-प्रकाश (प्रथम भाग)—संग्रहकर्ता, पं० ठाकुरदत्त शर्मा, कविविनोद, वैद्यभूषण । पृ० सं० २४८ ; छपाई-सफ़ाई और कागज़ संतोषजनक । मूल्य २॥)

अमृतधारा के कारण लाहौर के पं० ठाकुरदत्तजी शर्मा को बहुत अधिक लोग जानते हैं। यह पुस्तक आप ही की संगृहीत है। इसमें अनेक वैद्य-हकीमों के चित्र, चरित्र और प्रयोग आपने लिखे हैं। ख़ासकर वैद्यों में आजकल नुसख़ेबाज़ी का रोग बहुत बढ़ गया है। इन दिनों अधिकांश वैद्य ऐसे दिखते हैं, जिन्हें न तो व्याकरणादि शास्त्रों का कुछ ज्ञान होता है, न चिकित्सा-शास्त्र के अच्छे ग्रंथों का। वे लोग इसकी खोज में रहते हैं कि कहीं से किसी वैद्य का अनुभूत प्रयोग मिल जाय। रोगी का यथावत् निदान करके उसके अनुसार प्रयोग-कल्पना करने की योग्यता बहुत कम वैद्यों में है। जो प्रयोग पुस्तकों में लिखे हैं, उनमें ऊहापोह भी बहुत कम वैद्य करते हैं। अधिकांश ऐसे ही हैं, जो किताबों के प्रयोगों को उसी रूप में रोगियों के गले में उतारते हैं।

पं० ठाकुरदत्तजी शर्मा सुचतुर व्यापारी हैं। उन्होंने आजकल के वैद्यों के नुसख़ेबाज़ी के रोग को पहचानकर यह पुस्तक तैयार की है। जिन-जिन वैद्यों-हकीमों के 'गुप्त प्रयोग' आपने छापे हैं, उनके चित्र और संक्षिप्त जीवन-चरित भी दिए हैं। संभव है, इस चित्र और चरित्र-प्रकाशन के लोभ से ही बहुतों ने प्रयोग भेजे हों। जिनके चित्र इस पुस्तक में हैं, उनमें से कई सज्जनों को हम भी जानते हैं, जो अत्यंत साधारण हैं। इनमें कई अच्छे चिकित्सक भी होंगे। इतने प्रयोगों में कुछ का अच्छा होना भी संभव है। परंतु उनका निर्णय करना सबका काम नहीं। जो विवेचना-शून्य चिकित्सक किताबी नुसख़ों को दे देना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, उनसे इस कार्य की आशा नहीं है। साधारण जनता की तो बात ही क्या? वह इससे हानि भी उठा सकती है। पृष्ठ ४६ पर "स्तंभन पर अनुभूत योग" लिखा है। इसकी एक मात्रा में डेढ़ माशे से अधिक अफ़ीम पड़ती है, जो साधारण स्वास्थ्य और कमज़ोर दिल के आदमी को मार डालने के लिये काफ़ी है। यदि किसी मनचले नौजवान पर इस पुस्तक के "अनुभूत" का भूत सवार हुआ, तो फिर उसका काम तमाम ही समझिए।

× × ×

तमाखू—लेखक, साहित्य-रत्न विश्वनाथ सारस्वत। प्रकाशक, राष्ट्रीय साहित्य-भवन, यवतमाल (बरार)। आकार छोटा; पृ० सं० १८। मूल्य लिखा नहीं।

इसमें तमाखू खाने और पीने से उत्पन्न होनेवाले दोषों का अच्छा वर्णन है। लेखन शैली सुंदर और विचार-पूर्ण है। बहुत-से प्रसिद्ध लोगों के मत भी उद्धृत किए गए हैं। लेखक महाशय तमाखू में कोई भी गुण स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। तमाखू का सेवन करनेवाले लोग जो गुण प्रायः बताया करते हैं, उनके निराकरण का भी आपने यत्न किया है।

× × ×

व्यायाम—लेखक, एक अज्ञात् (?)। प्रकाशक, प्रद्युम्न-कृष्ण गुलहरे, कर्मयोगी-पुस्तकमाला-कार्यालय, फ़र्रुख़ाबाद। पृ० सं० ४१; छपाई साधारण; मूल्य ।=)

इसमें प्राणायाम और व्यायाम का वर्णन है। प्राणायाम का उपयोग और उसकी आवश्यकता सरल भाषा में अच्छे ढंग से समझाई गई है। प्राणायाम करने की साधारण आरंभिक विधि का वर्णन भी किया गया है, जो केवल स्वास्थ्य-रक्षा के निमित्त प्राणायाम करनेवालों के लिये पर्याप्त है। व्यायाम के भी कई प्राच्य और पाश्चात्य प्रकारों का दिग्दर्शन है। डंबलों की कसरत का विशेष वर्णन है। अंत में क्षार-चिकित्सा—बारह क्षारों द्वारा चिकित्सा—की भी चर्चा है। पुस्तक उपादेय है, सबके पढ़ने योग्य है। 'अज्ञात्' महाशय को पुस्तक का संशोधन एक बार फिर से करना चाहिए।

"प्राण को लेने और अपान को छोड़ने के लिये (?) विधाता ने नाक को बनाया है" (पृ० १२) इत्यादि वाक्य शिक्षित समाज में उपहास और अप्रतिष्ठा के कारण हो सकते हैं।

× × ×

२. धर्म और दर्शन

प्रमाण पूर्ण प्राचीन धर्म—"जिसको श्रीमान् पं० पुरुषोत्तमदेव सत्यधारी (?) **ईश्वर स्थापित** (?) ने बनाया और मैनेजर वेद-विद्यासागर औषधालय, कटरा साहब खाँ, (इटावा) ने प्रकाशित किया है।" रॉयल आकार। काग़ज़, छपाई संतोषजनक। पृ० सं० ३६। मूल्य ।)।

इस ट्रैक्ट के लेखक का दावा है कि संसार—तमाम योरप, एशिया आदि—में उक्त धर्म का प्रचार करने के लिये "सर्व शक्तिमान (?) ने सृष्टि-उत्पत्ति के प्रथम ही मेरा (ग्रंथकार का) स्थापन किया था।" आपका कहना है, ईसा-मसीह और हज़रत मुहम्मद की तरह ही आपको ईश्वर ने संसार के उद्धारार्थ भेजा है! अपनी सचाई के सबूत में आप फ़र्माते हैं कि "और यदि आप इसको मनुष्य-कृत समझते हैं, तो इससे उत्तम या ऐसी ही कोई पुस्तक लिख दो, जिसमें किसी मनुष्य-लेख तथा ईश्वरीय ग्रंथ से सहायता न ली गई हो।" गोया आपने इस पुस्तक के लिखने में न किसी मनुष्य के लेख से सहायता ली है, न किसी ईश्वरीय ग्रंथ से। आपको आकाश-वाणी भी सुनाई देती है, और स्वप्न भी आगामी घटनाओं की सूचना दे जाते हैं। ऐसी अनेक बातें आपने लिखी हैं।

पुस्तक में हिंदी और उर्दू, दोनों भाषाएँ हैं। अँगरेज़ी नहीं है। उसके न होने का कोई कारण भी नहीं बताया गया है। हमारे-जैसे साधारण संसारी जीवों की दृष्टि में इस पुस्तक की भाषा असंबद्ध और परिमार्जनीय है। विचार इसके अस्तव्यस्त, अनर्गल और इधर-उधर से सुनी-सुनाई दस-पाँच शास्त्रीय बातों के भ्रष्ट रूपांतर-मात्र हैं। लेखक महाशय ने अपनी संक्षिप्त जीवनी से ही पुस्तक आरंभ की है। शायद पहले आप कहीं नौकर ('राज-संबंध'!) थे। जब घर के सब लोग एक-एक करके मर गए, तब आपने "लखनऊ में वैद्यक करना आरंभ किया"—परंतु वैद्यक की शिक्षा भी आपने कहीं प्राप्त की या नहीं, इसके बताने की आपने ज़रूरत नहीं समझी। इसके बाद "ईश्वरस्थापित" बनकर 'प्रमाण-पूर्ण प्राचीन धर्म' के प्रवर्तक हुए हैं!

× × ×

अष्टोपनिषदः—'ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तिरीय और ऐतरेय उपनिषदों का सरल भाषानुवाद'—लेखक, पं० बदरीदत्त जोशी। प्रकाशक, पं० शंकरदत्त शर्मा, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। काग़ज़-छपाई साधारण। पृ० सं० ३०१। मूल्य २)।

इसमें उक्त उपनिषदों का मूल, हिंदी-पदार्थ और भावार्थ दिया गया है। विषय का गांभीर्य देखते हुए भाषा अधिक कठिन नहीं है। अर्थ भी साधारण ही किया गया है। सर्व साधारण इससे लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

कंठी-जनेऊ का विवाह—लेखक, पं० रुद्रदत्त शर्मा संपादकाचार्य (?), और प्रकाशक, शंकरदत्त शर्मा, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। आकार छोटा। पृ० सं० २४; छपाई, काग़ज़ साधारण; मूल्य दो आने।

पुराणों पर आक्षेप करते हुए आर्यसमाजियों को अनेक लोगों ने देखा होगा। विवेक-हीन, ज्ञान-जड़, दुर्विदग्ध अनेक आर्यसमाजी लोग पुराणों के तत्त्व को न समझने के कारण जैसे अनेक अनुचित आक्रमण किया करते हैं, इस पुस्तिका में उसी प्रकार के कुरुचि-पूर्ण, देवतों की निंदा से भरे आक्षेपों को एक कथा का रूप दिया गया है। हमारी सम्मति में यह पुस्तक

धार्मिक जगत् में परस्पर विद्वेष और कलह के बीज बोनेवाली है। अब वह समय नहीं है, जब मत-मतांतर के लोग आपस में गाली-गलौज़ किया करते थे। अब तो ऐसा समय है कि एक मत और धर्म के अनुयायियों को दूसरे मत और धर्म के माननेवालों का समुचित आदर और प्रतिष्ठा करते हुए राष्ट्रीयता के एक सूत्र में समान भाव से ग्रथित हो जाना उचित है।

जो पुस्तकें धार्मिक असहिष्णुता को उत्तेजित करके परस्पर कलह का बीज बोती हों, हमारी सम्मति में, आज उन्हें नष्ट हो जाना चाहिए।

× × ×

बुद्ध-गीता—अनुवादक, स्वामी सत्यदेवजी। प्रकाशक, दी लवानियाँ पब्लिशिंग हाउस, आगरा। आकार छोटा। पृष्ठ-संख्या १००; कागज़-छपाई साधारण। मूल्य १२ आने।

प्राकृत में 'धम्मपद' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। हिंदी, उर्दू, महाराष्ट्री, गुजराती, बंगाली आदि अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हो चुके हैं। प्रकृत पुस्तक (बुद्ध-गीता) उसी का अनुवाद है। इसके बनाने में स्वामीजी ने "हिंदी, उर्दू, गुजराती और बंगाली अनुवादों से सहायता ली है"। मूल ग्रंथ से सहायता लेने की कोई बात आपने नहीं लिखी। शायद आप प्राकृत (पाली) जानते भी नहीं हैं। हाँ, यह ज़रूर लिखा है कि "मूल-पाली को बँगला-अक्षरों में रखकर बँगला-भाषा में जो अनुवाद * * किया है, उससे भी मुझे बहुत सहायता मिली है"; परंतु 'धम्मपद' के हिंदी-अनुवाद के रहते हुए आपको 'हिंदी-अनुवाद से सहायता लेकर' यह अनुवाद बनाने की क्यों आवश्यकता हुई? आपने मूल-पाठ नहीं रक्खा है, अतः यह कहना कठिन है कि आपका अनुवाद कहाँ तक अशुद्ध या शुद्ध है। 'धम्मपद' का असली नाम बदलने का कारण आप यों बताते हैं—'धम्मपद' का नाम मैंने 'बुद्ध-गीता' कर दिया है, ताकि जनसाधारण इसे शीघ्र अपना लें। आजकल भगवद्गीता की बिक्री बहुत अधिक होती है। उसी की देखा-देखी और भी बहुत-सी गीताएँ बनी हैं। स्वामीजी ने भी इसी कारण प्रकृत पुस्तक को 'गीता' नाम दे दिया। परंतु हमारी सम्मति में यह प्रवृत्ति एक 'स्वामी' कहानेवाले के योग्य नहीं है।

पुस्तक-परिचय के प्रारंभ में श्रीस्वामीजी फ़र्माते हैं—"सारे बौद्ध-साहित्य में 'धम्मपद' का दर्जा बहुत ऊँचा है। जैसे, हिंदी-साहित्य में भगवद्गीता..."। क्या सचमुच स्वामीजी भगवद्गीता को हिंदी-साहित्य का ग्रंथ समझते हैं? या इस 'हिंदी-साहित्य' का कोई ऐसा अर्थ है, जो हिंदी-साहित्य में व्यवहृत नहीं होता? आपका कहना है कि "श्रीगीता, कुरान और बाइबिल के माननेवाले उन पुस्तकों को इलहामी मानते हैं"। हम स्वामीजी को सलाह देना चाहते हैं कि वह अपने इन वाक्यों पर फिर से विचार करें। वस्तुतः न तो 'श्रीगीता' 'हिंदी-साहित्य' (?) में सबसे ऊँचा ग्रंथ है। और न उसके माननेवाले उसे कुरान आदि की तरह इलहामी ही मानते हैं, बल्कि सबसे ऊँचा दर्जा परा विद्या के प्रतिपादक उन वेदों को प्राप्त है, जिनके अनेक वचनों का सार भगवद्गीता में आदि से अंत तक ओत-प्रोत है। आपका कहना है कि "भगवान् बुद्ध के उपदेश पूर्णतया व्यावहारिक हैं। वे अत्यंत स्पष्ट और गंभीर हैं। उनके (?) पढ़नेवाला उनके समझने में भूल नहीं कर सकता"। साथ ही आप कुछ ऐसे 'श्लोकों' (?) का भी पता बताते हैं, "जिन पर विद्वानों ने भिन्न-भिन्न टीकाएँ की हैं।"

स्वामीजी कहते हैं—"जो त्रुटियाँ पाठक पुस्तक में पावें, उनका दोषी मुझे न समझें।" क्यों? इसलिये कि आप इसके प्रूफ़ नहीं देख सके, और हस्तलिपि नहीं पढ़ सके। आँखें ख़राब थीं। जब इस पुस्तक की त्रुटियों का कोई ज़िम्मेदार ही नहीं, तो हम भी उनके दिखाने का कष्ट क्यों उठावें? इसका मूल्य भी बहुत अधिक है।

× × ×

विवाह-समुद्देश्य—लेखक, "पंडित जुगल (?) किशोर मुख़्तार"। प्रकाशक, साहु मुकंदी (?) लाल जैन, नजीबाबाद, ज़िला बिजनौर। आकार छोटा। छपाई-सफ़ाई सुंदर। काग़ज़ उत्तम। पृ० सं० ३९। मूल्य लिखा नहीं।

यह पुस्तक विवाहित स्त्री-पुरुषों को संयम का उपदेश देने और सुसंगठित करने के अभिप्राय से लिखी गई है। पुस्तक का उद्देश्य स्तुत्य है। लिखने का ढंग जैन-मतानुयायी है। प्रमाणों का संग्रह जैन-ग्रंथों से ही किया गया है। बीच-बीच में हिंदू-धर्म का भी नाम ले लिया है। हमारी सम्मति में यदि वह न होता, तभी अच्छा था। आपने जिस क्रम से प्रमाण-संग्रह किया है, उससे पता चलता है कि प्राचीन जैनाचार्य लोग ठीक हिंदू-धर्म के

अनुसार ही वर्ण-व्यवस्था और अनुलोम-विवाह के पक्षपाती थे। वे लोग श्रुति और स्मृति का भी आदर करते थे। श्रीजिनसेनाचार्य-रचित 'आदिपुराण' के दो श्लोक आपने उद्धृत किए हैं, जो उक्त बातों के स्पष्ट पोषक हैं—

"शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वांतां च नैगमः ;
वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वांद्विजन्मा कचिच्चताः ।
सनातनोस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भावितः ।"

परंतु आगे चलकर ये लोग उच्छृंखल हो गए, जिसके आधार पर इस पुस्तक के लेखक का कथन है कि "विवाह के लिये वर्ण, जाति और कुल-गोत्र का कुछ भी नियम नहीं रहता।" आपने कुछ जैन-प्रमाणों से यह नतीजा निकाला है कि "विवाह-विधि गृहस्थों (?) का एक लौकिक धर्म है, और लोकाश्रित होने से परिवर्तनशील है।" इसका "कोई एक नियम हो ही नहीं सकता"। और "जैन शास्त्रों की तरह हिंदू-धर्म के ग्रंथों में भी ... ग्राह्य स्त्री-विषयक कोई एक नियम नहीं पाया जाता।" हमारी राय में हिंदू-धर्म की बात उठाने में आपने अनधिकार चेष्टा की है। आपके यहाँ विवाह के लिये "कुल-गोत्र का कुछ नियम नहीं", परंतु हिंदू-धर्म के अनुसार सगोत्र में विवाह करनेवाला 'चांडाल' हो जाता है। आपने कोष्ठों द्वारा शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने की खूब चेष्टा की है। यथा—"मजबूरन (लाचारी से)" "बाद को (पीछे से)" "ख़तरे में (जोखिम में)" "मज़ा (फल)" इत्यादि। यदि इस पुस्तक के 'प्रवर्तता है' 'अदेखसका भाव' और 'कथनी' आदि शब्दों पर आप कोष्ठ लगाते, तो अच्छा होता। आपके प्रमाण-संग्रह से सहमत न होने पर भी हम आपके उद्देश्य को वांछनीय समझते हैं। जैन-धर्म के अनुयायियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

३. कृषि और गोरक्षा

कृषिमित्र—लेखक और प्रकाशक, पं० गंगाप्रसादजी पांडेय एल्० ए० जी०, सुपरिंटेंडेंट ऑफ़् एग्रीकल्चर, कृषि-विभाग, कानपुर। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या ६४। छपाई-सफ़ाई साधारण। मूल्य केवल पाँच आने।

यद्यपि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, तथापि हमारे हिंदी-साहित्य में कृषि-संबंधी उत्तम पुस्तकों का बड़ा कुछ अभाव है। ऐसी पुस्तकों की तो बहुत ही कमी है, जो लेखक के खेती-संबंधी अनुभव के आधार पर लिखी गई हों। इसी कमी को, कुछ अंशों में, पूरा करने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक को पढ़ने से यह मालूम होता है कि लेखक को व्यावहारिक कृषि का अच्छा ज्ञान और अनुभव है।

पुस्तक इतनी सरल भाषा में लिखी गई है कि अपढ़ किसान भी उसे अच्छी तरह से समझ सकते हैं। भूमि, खाद, खेत, जुताई, बुवाई, गुड़ाई, सिंचाई, कटाई, खलिहान, बीज, खेती के औज़ार, मज़दूर, जानवर, फ़सलों का हेरफेर, फ़सली कीड़ों तथा जानवरों से रक्षा इत्यादि कृषि-संबंधी कई महत्त्व-पूर्ण बातों पर विचार किया गया है, और अनुभव-सिद्ध किसानी दवाएँ, जानवरों के रोग और उनकी दवाएँ भी बतलाई गई हैं। खेती-संबंधी कई महत्त्व-पूर्ण कहावतें भी इसमें दी गई हैं। पुस्तक के अंत में ऋतु-चक्र भी जोड़ दिया गया है। इस पुस्तक में जो खाद देने की तरकीब बतलाई गई है, उससे साधारण किसान भी लाभ उठा सकते हैं। ऐसी उत्तम पुस्तक लिखने के लिये हम श्रीमान् पांडेयजी को बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि वह ऐसी ही उत्तम पुस्तकें स्वयं लिखकर तथा कृषि-विभाग के अन्य अनुभवी सज्जनों से लिखाकर बेचारे ग़रीब भारतीय किसानों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करते रहेंगे।

यदि इस पुस्तक में खेती के नवीन उपयोगी औज़ारों तथा फ़सली कीड़ों के चित्र दे दिए जाते, तो पुस्तक का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता। खेतों के दूर-दूर पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बटे रहने के कारण किसानों को क्या हानियाँ होती हैं, इसका उल्लेख अधिक विस्तार से किया जाना, और इस असुविधा को दूर किए जाने के उपायों का बतलाया जाना भी, हमारी समझ में, बहुत आवश्यक था। यदि 'सहयोग-समितियों के संगठन और उनसे लाभ'-शीर्षक एक अध्याय भी इसमें जोड़ दिया जाय, तो अच्छा हो। यदि कुछ कठिन कहावतों के अर्थ दे दिए जाते, तो अशिक्षित किसानों को उन्हें समझने में बड़ी सुविधा हो जाती।

किसानों के लिये पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। ग्रामीण पाठशालाओं के तीसरे या चौथे दर्जे के विद्यार्थियों के लिये

[illegible]

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश बापू]

पिय के ध्यान गही गही, रही वही है नारि।
आपु आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि।
(महाकवि बिहारी)

N. K. Press, Lucknow.

अनुसार ही वर्ण-व्यवस्था और अनुलोम-विवाह के पक्ष-पाती थे। वे लोग श्रुति और स्मृति का भी आदर करते थे। श्रीजिनसेनाचार्य-रचित 'आदिपुराण' के दो श्लोक आपने उद्धृत किए हैं, जो उक्त बातों के स्पष्ट द्योतक हैं—

"शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः ;
वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः।
सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भाषितः।"

परंतु आगे चलकर ये लोग उच्छृंखल हो गए, जिसके आधार पर इस पुस्तक के लेखक का कथन है कि "विवाह के लिये वर्ण, जाति और कुल-गोत्र का कुछ भी नियम नहीं रहता।" आपने कुछ जैन-प्रमाणों से यह नतीजा निकाला है कि "विवाह-विधि गृहस्थों (?) का एक लौकिक धर्म है, और लोकाश्रित होने से परिवर्तनशील है।" इसका "कोई एक नियम हो ही नहीं सकता"। और "जैन शास्त्रों की तरह हिंदू-धर्म के ग्रंथों में भी ... ... ब्याह शादी-विषयक कोई एक नियम नहीं पाया जाता।" हमारी राय में हिंदू-धर्म की बात कहने में आपने अन-धिकार चेष्टा की है। आपके यहाँ विवाह के लिये "कुल-गोत्र का कुछ नियम नहीं", परंतु हिंदू-धर्म के अनुसार सगोत्र में विवाह करनेवाला 'चांडाल' हो जाता है। आपने कोष्ठों द्वारा शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने की खूब चेष्टा की है। यथा—"अजबूरन (लाचारी से)" "बाद को (पीछे से)" "खतरे में (जोखिम में)" "मजा (फल)" इत्यादि। यदि इस पुस्तक के 'प्रशंसा है' 'अहेलनका भाव' और 'कथनी' आदि शब्दों पर आप कोष्ठ लगाते, तो अच्छा होता। आपके प्रमाण-संग्रह से सहमत न होने पर भी हम आपके उद्देश्य को वांछनीय समझते हैं। जैन-धर्म के अनुयायियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

शालग्राम शास्त्री

× × ×

९. कृषि और गोरक्षा

कृषिमित्र—लेखक और प्रकाशक, पं० गयाप्रसादजी पांडेय एल० ए० जी०, सुपरिंटेंडेंट और एसोसियट, कृषि-विभाग, कानपुर। आकार २०×२० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या २४। छपाई-सफाई साधारण। मूल्य केवल तीन आने।

यद्यपि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, तथापि हमारे हिंदी-साहित्य में कृषि-संबंधी उत्तम पुस्तकों का कुछ अभाव है। ऐसी पुस्तकों की तो बहुत ही कमी जो लेखक के खेती-संबंधी अनुभव के आधार पर गई हों। इसी कमी को, कुछ अंशों में, पूरा करने के से यह पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक को पढ़ यह मालूम होता है कि लेखक को व्यावहारिक कृषि अच्छा ज्ञान और अनुभव है।

पुस्तक इतनी सरल भाषा में लिखी गई है कि किसान भी उसे अच्छी तरह से समझ सकते हैं। खाद, खेत, जुताई, बुवाई, गुड़ाई, सिंचाई, खलिहान, बीज, खेती के औज़ार, मज़दूर, फ़सलों का हेरफेर, फ़सली कीड़ों तथा जानवरों से इत्यादि कृषि-संबंधी कई महत्त्व-पूर्ण बातों पर किया गया है, और अनुभव-सिद्ध किसानी जानवरों के रोग और उनकी दवाएँ भी बतलाई गई। खेती-संबंधी कई महत्त्व-पूर्ण कहावतें भी इसमें हैं। पुस्तक के अंत में ऋतु-चक्र भी जोड़ दिया गया। इस पुस्तक में जो खाद देने की तरकीब बतलाई गई उससे साधारण किसान भी लाभ उठा सकते हैं। उत्तम पुस्तक लिखने के लिये हम श्रीमान् पांडेयजी को बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि वह ऐसी ही पुस्तकें स्वयं लिखकर तथा कृषि-विभाग के अन्य सज्जनों से लिखाकर बेचारे ग़रीब भारतीय किसानों को लाभ पहुँचाने का प्रयत्न करते रहेंगे।

यदि इस पुस्तक में खेती के नवीन उपयोगी औज़ारों तथा फ़सली कीड़ों के चित्र दे दिए जाते, तो पुस्तक का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता। खेतों के दूर-दूर पर छोटे-छोटे टुकड़ों में बटे रहने के कारण किसानों को क्या हानियाँ होती हैं, इसका उल्लेख अधिक विस्तार से किया जाना, और इस असुविधा को दूर किए जाने के उपायों का बतलाया जाना भी, हमारी समझ में, आवश्यक था। यदि 'सहयोग-समितियों के संगठन से उनसे लाभ'-शीर्षक एक अध्याय भी इसमें जोड़ दिया जाय, तो अच्छा हो। यदि कुछ कठिन कहावतों के अर्थ दे दिए जाते, तो अशिक्षित किसानों को उन्हें समझने में बड़ी सुविधा हो जाती।

किसानों के लिये पुस्तक अत्यंत उपयोगी है। चौथे दर्जे के विद्यार्थियों के

रूपगर्विता

[चित्रकार—श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू]

पिय के ध्यान गही गही, रही वही ह्वै नारि ;
आपु आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि ।
(महाकवि विहारी)

N. K. Press, Lucknow.

इसके पाठ्य पुस्तक नियत किए जाने की हम सिफ़ारिश करते हैं। देश के दान-वीर सज्जनों को यह पुस्तक किसानों में बिना मूल्य वितरण कराने की शीघ्र ही व्यवस्था कर देनी चाहिए। हम अपने किसान भाइयों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्तक से अवश्य लाभ उठावें।

× × ×

गौओं का पालन और उनसे लाभ—लेखक, पंडित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री, सागर, मध्यप्रदेश। प्रकाशक, गोवध-निवारक सभा, सागर। पृष्ठ-संख्या १८। मूल्य दो पैसे।

विद्या-वयोवृद्ध श्रीमान् पंडित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री से पाठक भलीभाँति परिचित हैं। हमें यह देखकर हर्ष होता है कि आपने अब भारतीय किसानों के लाभ के लिये छोटी-छोटी पुस्तकें लिखना आरंभ किया है। पुस्तक बहुत सरल भाषा में लिखी गई है, और उसमें गो-पालन के लाभ बहुत अच्छी तरह से समझाए गए हैं। किसानों के लिये तो यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। हम गोवध-निवारक सभा से अनुरोध करते हैं कि वह इस पुस्तक की हज़ारों प्रतियाँ छपवाकर किसानों में प्रचार करने का प्रयत्न करे। यदि इसको बिना मूल्य बाँटने की व्यवस्था कर दी जाय, तो और भी अच्छा हो।

दयाशंकर दुबे

× × ×

४. व्यापार

"हिसाब की कुंजी"—यह छोटी-सी पुस्तक Book-Kieeping के तरीक़े और क़ायदे पर, सरल भाव से, हिंदी जाननेवालों के लिये, लिखी गई है। मेरे मित्र कोठारीजी ने इसकी भूमिका लिखी है। इसके रचयिता हैं गवालियर के असिस्टंट कमर्शीयल आडिटर हकीम हबीबउल्लाख़ाँ। क़ीमत १) बहुत अधिक है। इस किताब में कुछ त्रुटियाँ हैं।

(क) हिंदुस्तान में वे लोग, जो पश्चिमी तरीक़े से तिजारत नहीं करते, अपना हिसाब बही-खाते पर लिखते हैं, जो केवल Single Entry के क़ायदों पर ही लिखा जाता है। इसलिये, बही-खातों को Double Entry के क़ायदों में परिवर्तित करने का पूरा-पूरा ब्योरा देना भी अत्यावश्यक था।

(ख) Departmental Accounts वा Branch Accounts के बारे में बहुत खुलासा तौर से एक अलग अध्याय का होना निहायत ज़रूरी था; क्योंकि आजकल बहुत-से कार्यालयों (Firms) की शाखाएँ खुलने लग गई हैं।

(ग) Income Tax ('आय' पर 'कर') के बारे में एक खुलासा अध्याय होना ज़रूरी था; क्योंकि आजकल तमाम हिंदुस्तानी फ़र्मों (कार्यालयों) को नए क़ायदे बरतने पड़ते हैं।

(घ) भाषा बड़ी क्लिष्ट है। कहीं-कहीं तो ठेठ अरबी और फ़ारसी के शब्द भी हैं। किताब हिंदी में है, इसलिये भाषा भी हिंदी ही होनी चाहिए थी।

आशा है, अब जो संस्करण निकलेंगे, उनमें ये त्रुटियाँ दूर कर दी जावेंगी। आरंभिक पाठ्य पुस्तक के ढंग पर यह छोटी-सी "हिसाब की कुंजी" उन लोगों के वास्ते एक अच्छी चीज़ है, जो Double Entry के तरीक़े पर अपने बही-खाते रखना चाहते हैं।

देवीदत्त पंत

× × ×

५. जीवनी

ग्यारीबाल्डी—अनुवादक, पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-प्रचारक ग्रंथमाला, नरसिंहपुर (सी० पी०)। पृष्ठ-संख्या २४३। छपाई और काग़ज़ सामान्य। मूल्य १।), सजिल्द १॥)

यह 'इटली के एक-मात्र उद्धारकर्ता' की जीवनी भारत-विख्यात श्रीयुत नरसिंह चिंतामणि केलकर-लिखित मराठी पुस्तक का अनुवाद है। इसमें २२ परिच्छेद हैं। अधिकांश परिच्छेदों के आरंभ में चुनी हुई सूक्तियाँ दी गई हैं। परिच्छेदों का विषय-सूचक शीर्षक दे देने से सूक्तियाँ खिल उठी हैं। आरंभ में दो पृष्ठों का एक शुद्धि-पत्र है, और ग्रंथमाला के संपादक "निर्बल" जी का एक छोटा-सा वक्तव्य भी, जिसकी भाषा में कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। संपादकजी के कथनानुसार, अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित ग्यारीबाल्डी की जीवनियों से इस जीवनी में कुछ अधिक विशेषताएँ हैं। किंतु उन विशेषताओं का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। निर्णय का भार पाठकों पर छोड़ दिया गया है। परंतु हिंदी के पाठकों को इतना अवकाश ही कहाँ है। हाँ, समालोचकों को इस तरह के निर्णय करने का अवकाश अवश्य है। किंतु ग्यारीबाल्डी-जैसे विश्व-विख्यात महापुरुष की जीवनी चाहे किसी भी भाषा में प्रकाशित की जाय, उसमें ऊपर से कोई

विशेषता नहीं लाई जा सकती । वह तो स्वयमेव अनेक विशेषताओं से विभूषित है। हाँ, इस पुस्तक के मूल-लेखक और अनुवादक दोनों ही विद्वान् हैं—चरितनायक का तो कहना ही क्या है—इसलिये, चरित्र-चित्रण-प्रणाली में साधारण-सी विशेषता का आ जाना स्वाभाविक है। जो हो, पुस्तक है बड़े काम की। पढ़ने में कहानी की-सी है ही, शिक्षा भी कूट-कूटकर भरी हुई है। ऐसी जीवनियों का जितना प्रचार हो, उतना ही अच्छा। देश को उद्बुद्ध करनेवाली पुस्तकों में इसकी गिनती हो सकती है।

× × ×

६. काव्य

वीर हमीर—लेखक, रामकुमार वर्मा साहित्य-रत्नाकर। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-प्रचारक कार्यालय, नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश); पृष्ठ-संख्या ५०; छपाई और काग़ज़ साधारणतः साफ़। मूल्य ।)

यह पद्यबद्ध पुस्तक दस अध्यायों में समाप्त हुई है। आरंभ में आनंदिप्रसाद श्रीवास्तव-लिखित पद्यमयी भूमिका है। लेखक ने उपसंहार भी पद्यबद्ध ही लिखा है। भूमिका के बाद दो पृष्ठों का शुद्धिपत्र है। पद्यों की भाषा सरल और शुद्ध है। उनके भाव ओजस्वी और सुगम हैं। वर्णनशैली की धारा उन्मुक्त है। इसमें महाराणा हमीर की कीर्ति-गाथा गाई गई है। प्रत्येक पृष्ठ में क्षात्र तेज का प्रभावशाली चित्र अंकित है। ऐसी छोटी-मोटी पद्यबद्ध पुस्तकों से अल्पवयस्क छात्रों का विशेष मनोरंजन और उपकार हो सकता है। बालकों में वीरता, निर्भीकता, दृढ़ता और देशभक्ति का भाव भरने के लिये यह पुस्तक एक सफल साधन है। इसे पढ़कर नवयुवक भी स्वदेशाभिमान का सबक़ सीख सकते हैं। शरणागत, वाग्युद्ध, तैयारी, उत्कर्ष, युद्ध, निराशा, मिलन और बिदा, विजय और भूल, जौहर तथा सर्वनाश—इन दस अध्यायों में चौथे, सातवें और नवें अध्याय के पद्य बड़े ज़ोरदार हैं। दूसरे, पाँचवें, आठवें और दसवें अध्याय के कुछ पद्यों में शिथिलता और कुछ पद्यों में भावोत्तेजना का प्रवाह है।

× × ×

७. नीति और शिक्षा

भाग्य-निर्माण—लेखक, आदित्यप्रसाद ... प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-प्रचारक-कार्यालय, नरसिंहपुर (मध्यप्रदेश)। सुंदर काग़ज़ पर संतोषजनक स्वच्छ छपाई; पृष्ठ-संख्या २७२; मूल्य १।≈), सजिल्द १॥।)

यह पुस्तक 'ओरिजन स्वेट मार्डन'-कृत 'Architects of Fate'-नामक अँगरेज़ी-पुस्तक के आधार पर भारतीय ढंग से लिखी गई है। निस्संदेह लेखक ने इस पुस्तक पर स्वदेशी रंग चढ़ाने में प्रशंसनीय प्रयास किया है। मूल-लेखक की भूमिका आरंभ में दी गई है। आवश्यकता है—मनुष्य की, साहस, जहाँ चाह वहाँ राह, कठिनाई में सफलता प्राप्त करना, बाधाओं का उपयोग, निश्चल उद्देश्य, कर्म और फल, स्वावलंबन, कर्म और धैर्य, अदम्य दृढ़ता, संसार में सर्वोत्कृष्ट कार्य, मितव्ययता से संपत्ति-संग्रह, विना संपत्ति धनवान्, सुअवसर कहाँ है, क्षुद्र वस्तुओं का महत्त्व और आत्मसंयम—इन्हीं शिक्षा-पूर्ण परिच्छेदों में पुस्तक विभक्त है। प्रत्येक परिच्छेद के आरंभ में भिन्न-भिन्न महात्माओं के चुने हुए सिद्धांत-वाक्य दिए गए हैं। सोलहों निबंध सोलहो आने सुपाठ्य हैं। निबंधों में ठौर-ठौर नए और पुराने हिंदी-कवियों की उपर्युक्त कविताएँ चस्पाँ कर दी गई हैं। इससे पुस्तक की उपयोगिता और मनोरंजकता बढ़ गई है। इस पुस्तक का प्रत्येक वाक्य मनन करने योग्य है। हिंदी में ऐसी उपदेश-पूर्ण पुस्तकों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। हिंदी-संसार में ऐसी पुस्तकों का जितना ही प्रचार होगा, पाठक उतने ही लाभान्वित होंगे। इस पुस्तक से होनहार विद्यार्थियों का बड़ा कल्याण हो सकता है। हमारे देश के अधिकांश नवयुवकों में अकर्मण्यता, दुश्चरित्रता, कायरता और परमुखापेक्षिता का रोग बढ़ रहा है। यह पुस्तक ऐसे सब रोगों की रामबाण महौषधि हो सकती है। यत्र-तत्र इसकी भाषा में कुछ संशोधन की आवश्यकता है; क्योंकि कुछ स्थलों में कितने ज़बरदस्त भाव भाषा की शिथिलता के कारण स्पष्ट विकसित नहीं हो सके हैं। अंत में ४ पृष्ठों का शुद्धिपत्र है, उसके बाद पुस्तक-गत विशिष्ट नामों की अक्षरानुक्रमणिका १६ पृष्ठों में दी गई है। प्रारब्ध के भरोसे हाथ पर हाथ रखकर हताश बैठे रहनेवाले निरुत्साही मनुष्यों के लिये इस पुस्तक में संजीवनी शक्ति भरी हुई है।

शिवपूजन सहाय

× ×

८. विविध

रेल से माल भेजने का क़ायदा—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत रघुनाथनरसिंह काले, हाईकोर्ट वकील, उज्जैन। आकार २०×३० सोलहपेजी। छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ४८५। मूल्य तीन रुपए।

इस पुस्तक में मालगाड़ी से माल भेजने के प्रायः सब आवश्यक क़ायदे, नियम, शर्तें और हिदायतें हिंदी में दी हुई हैं। रेलवे-कंपनियों द्वारा ये सब बातें अँगरेज़ी में ही प्रकाशित की जाती हैं। इसलिये अँगरेज़ी न जानने-वाले व्यापारियों को इनका जानना बहुत कठिन हो जाता है। कभी-कभी इनकी अनभिज्ञता के कारण उनको बहुत नुक़सान उठाना पड़ता है। हिंदी में अभी तक अन्य एक भी ऐसी पुस्तक हमें देखने को नहीं मिली, जिसमें ये सब बातें अच्छी तरह से समझाई गई हों। इस कमी को दूर करने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है। लेखक का उद्देश यह है कि इस पुस्तक को पढ़कर व्यापारी लोग यह ठीक समझ लें कि उनके और रेलवे-कंपनियों के क्या-क्या हकूक़ और ज़िम्मेदारियाँ हैं, और वे रेलवे-गुड्स बुकिंग के संबंध में काफ़ी जानकारी प्राप्त कर लें। लेखक महाशय इस उद्देश की पूर्ति में बहुत कुछ सफल हुए हैं। हम उनको ऐसी उत्तम पुस्तक के लिये बधाई देते और आशा करते हैं कि ऐसी उत्तम पुस्तकें लिखकर वह हिंदी-साहित्य को बढ़ाने का हमेशा प्रयत्न करते रहेंगे।

यह पुस्तक छः भागों में विभक्त की गई है। रेलवे कॉन्फ़्रेंस-एसोसिएशन ने रेलवे-लाइनों पर थ्रू-बुकिंग के संबंध में कुछ नियम बनाए हैं, जो प्रायः सब लाइनों पर लागू होते हैं। प्रथम भाग में ये ही नियम समझाए गए हैं। यदि किसी ख़ास लाइन ने इन नियमों में, अपनी सुविधा के लिये, कुछ परिवर्तन किया है, तो वह भी बतला दिया गया है। किराए के रेट और उनकी क़िस्में, माल को नुक़सान पहुँचने पर उसके संबंध में क्या कार्रवाई करनी चाहिए, रिस्क नोट और डेमरेज़ तथा वार्फ़ेज़-संबंधी क़ायदे इत्यादि महत्त्व-पूर्ण बातों पर इसी भाग में प्रकाश डाला गया है। दूसरे भाग में जानवर और उनके बच्चों के बुकिंग करने के क़ायदे दिए गए हैं, और तीसरे भाग में आउट एजेंसियों के संबंध में आवश्यक बातें बतलाई गई हैं। चौथे भाग में उन ख़ास नियमों का दिग्दर्शन कराया गया है, जो बड़े-बड़े स्टेशनों से माल भेजने के संबंध में बनाए गए हैं। पाँचवें भाग में इंडियन रेलवे-ऐक्ट की माल भेजने से संबंध रखनेवाली धाराएँ, हाईकोर्टों की नज़ीरों सहित, समझाई गई हैं। आख़िरी भाग में रेलवे कंपनियों की सूची, उनके प्रधान अफ़सरों के हेडक्वार्टर्स सहित, दी गई है। इस पुस्तक में उन अँगरेज़ी शब्दों की सूची भी अर्थ-सहित दी गई है, जिनका उपयोग माल का बुकिंग करते समय माल-गुदाम या स्टेशन पर हमेशा किया जाता है।

पुस्तक उत्तम है, तो भी उसमें कुछ सुधार की गुंजायश है। कुछ दिन हुए, सरकार द्वारा रिस्क नोटों के फ़ार्मों पर विचार करने के लिये एक कमेटी नियुक्त की गई थी। उस कमेटी की मुख्य सिफ़ारिशों का उल्लेख इस पुस्तक में किया जाना, हमारी समझ में, आवश्यक था। यह सभी जानते हैं कि रेलवे-विभाग में घूसख़ोरी बहुत होती है। रेलवे-कमेटी ने भी इसे स्वीकार किया है। यह मानते हुए भी कि नियमों के बदलने से ही घूसख़ोरी बिलकुल बंद नहीं की जा सकती, ऐसे नियम बनाए जा सकते हैं, जिनसे वह बहुत कम की जा सके। यदि लेखक महाशय ऐसे नियमों पर विचार करते, तो और भी अच्छा होता। रेलवे-कंपनियों के संबंध में यह भी अक्सर कहा जाता है कि उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों को माल भेजने के लिये ऐसे रेट नियत किए हैं, जिनसे माल विदेश भेजने में सहूलियत होती है, और ख़र्च भी कम पड़ता है, पर देश के उद्योग-धंधों को उचित प्रोत्साहन नहीं मिल पाता। यदि लेखक महाशय यह भी बतलाने का प्रयत्न करते कि भारतीय उद्योग-धंधों की वृद्धि के लिये माल भेजने के किन-किन नियमों में परिवर्तन करने की आवश्यकता है, तो इस पुस्तक का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता। इस पुस्तक में जो नियम दिए गए हैं, उनमें समयानुसार हमेशा कुछ-न-कुछ परिवर्तन होते रहेंगे। इसलिये संभव है, कुछ ही वर्षों में इसकी उपयोगिता बहुत घट जाय। यदि प्रकाशक महाशय परिवर्तित नियमों की सूची प्रतिवर्ष अलग छपवाकर अपने ग्राहकों को कम मूल्य पर भेजने की व्यवस्था कर दें, और उसकी सूचना इसी पुस्तक में छपा दें, तो इस पुस्तक के ग्राहकों को बड़ा लाभ हो। इससे इस पुस्तक की बिक्री भी बढ़ जाने की संभावना है।

पुस्तक सरल भाषा में लिखी गई है। प्रत्येक पुस्तकालय में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। हम प्रत्येक व्यापारी से अनुरोध करते हैं कि वह इस पुस्तक की एक प्रति ख़रीदकर उससे अवश्य लाभ उठावे।

× × ×

खद्दर-शिक्षक—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत भगवतीसिंह, शिक्षक—बुनाई-विभाग, श्रीकाशी-विद्यापीठ, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। काग़ज़ और छपाई-सफ़ाई अच्छी। पृष्ठ-संख्या ९६+१२। मूल्य आठ आने।

इस पुस्तक में कपास की खेती से लेकर खद्दर तैयार करने और देशी रँगाई करने तक की प्रायः सब महत्त्व-पूर्ण बातों का समावेश कर दिया गया है। इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, वह लेखक के उस अनुभव के आधार पर लिखा गया है, जो उन्होंने श्रीगाँधी-आश्रम-विद्यापीठ में प्राप्त किया। इस पुस्तक में लिखे हुए तरीक़ों के अनुसार विद्यापीठ के कारख़ाने में पूरा-पूरा अमल हो रहा है। श्रीयुत भगवतीसिंहजी की निगरानी में इस समय शुद्ध खद्दर की दरियाँ, नेवाड़, धोतियाँ, और चादरें सफलता-पूर्वक तैयार की जा रही हैं, और उनकी बिक्री भी ख़ूब हो रही है। ऐसी सादी मशीनों और औज़ारों का उपयोग किया जा रहा है कि कोई भी सज्जन केवल २०) की पूँजी से ही अपना पूरा काम शुरू कर सकते हैं।

यह पुस्तक पाँच भागों में विभाजित की गई है। प्रथम भाग में कपास की खेती-संबंधी कई महत्त्व-पूर्ण बातें दी गई हैं। यदि इस भाग में काटन-कमिटी की मुख्य सिफ़ारिशें और दे दी जातीं, तो इसका महत्त्व अधिक बढ़ जाता। दूसरे भाग में कपास की ओटाई और धुनाई का वर्णन है। तीसरे भाग में सूत कातना बतलाया गया और चौथे भाग में कपड़ा बुनना समझाया गया है। कई तरह के कपड़ों के डिज़ाइन दिए गए हैं। आख़िरी भाग में मुख्य-मुख्य रंग तैयार करने के तरीक़े बतलाए गए हैं। रंगों के तैयार करने के ऐसे सरल नुसख़े बतलाए गए हैं, जो देहातों तक में आसानी से मिल सकते हैं।

यदि पुस्तक में कपास के कीड़ों, सूत कातने और कपड़े तैयार करने के प्रधान औज़ारों, मशीनों तथा डिज़ाइनों के चित्र भी दे दिए जाते, तो इसकी उपयोगिता बहुत बढ़ जाती। पुस्तक बहुत उपयोगी है। खद्दर तैयार करने वाले सज्जनों को तो इसे अवश्य ही पढ़ना चाहिए।

दयाशंकर दुबे

× × ×

९. पत्र-पत्रिकाएँ

जनार्दन—संपादक, जनार्दन त्रिपाठी। प्राप्ति-स्थान, जनार्दन-कार्यालय, विश्वेश्वरगंज, काशी। वार्षिक मूल्य ३)।

यह संस्कृत-भाषा का साप्ताहिक पत्र है। फ़ुलस्केप साइज़ के आठ पृष्ठ हैं। छपाई साधारण है। काग़ज़ सा[धारण] है। संपादन में कसर है। उन्नति की काफ़ी गुंजाइश है। छपाई की अशुद्धियाँ भरी पड़ी हैं। प्रूफ़-संशोधक [ने] संपादक की मिट्टी ख़राब कर दी है। यदि इसकी भा[षा] सरल बनाई जाय, तो इससे संस्कृत समझनेवा[ले] साधारण मनुष्य भी लाभ उठा सकते हैं। लंबे-लं[बे] लच्छेदार वाक्यों और जटिल तथा क्लिष्ट समस्त पदों [से] सर्व-साधारण का कुछ उपकार नहीं हो सकता; हाँ, संपा[द]क की विद्वत्ता भले ही प्रकट हो जाय। इसमें एक-स[ब] कालम व्यंग्य-विनोद आदि भी है, जो आजकल के न[व]जात पत्रों की ख़ास विशेषता और लोक-प्रियता [का] साधन बनता जा रहा है। किंतु संस्कृत के पत्र में जै[सा] निर्दोष परिहास रहना चाहिए, वैसा इसमें एक भी न[हीं] है। इस पत्र का प्रथमांक संभवतः एक महीना प[हले] निकला था, और यह दूसरा समालोच्य अंक प्रेस[-] कर्मचारियों की उदासीनता और संपादक की अस्वस्थ[ता] के कारण बड़ी देर से निकला है। हम इसकी उ[न्नति] चाहते हैं।

× × ×

देशबंधु—संपादक, श्रीशीतलासहाय और श्रीबुद्धि[धन] शर्मा। प्रकाशक, बुद्धिधन शर्मा बी० ए०, एम्० आर० एस्० (लंदन); २५, सीताराम घोष स्ट्रीट, कलकत्ता। डबल-क्राउन अठपेजी साइज़ के १६ पृष्ठों पर साफ़-सु[थरी] छपाई। कवर साधारण रंगीन। वार्षिक मूल्य ३), एक [प्रति] का मूल्य एक आना।

हम अपने इस नए ढंग के सुंदर साप्ताहिक सह[योगी] का सादर स्वागत करते हैं। इसका दूसरा अंक ह[मारे] सामने है। इसमें तीन साधारण कविताएँ, एक [सचित्र] चित्र, कुछ विचित्र बातें, भंग की तरंग और समा[चार]

सार-संग्रह है। दो-तीन लेख भी सामयिक और उपयोगी हैं। अमृत-बिंदु, टर्किश टोपी तथा चिनगारी-नामक तीनों लेख शिक्षाप्रद, सुंदर और रोचक हैं। स्पर्शास्पर्श-शीर्षक लेख महत्त्व-पूर्ण है। वैकोम-सत्याग्रह पर अग्र-लेख भी ज़ोरदार है। पत्र की भाषा कहीं-कहीं खटकती है, उसका सुधार आवश्यक है। देशबंधु हिंदू-संगठन का सच्चा समर्थक जान पड़ता है। यह संतोष की बात है। बंगाल के हिंदी-संसार का यह होनहार देशबंधु निर्विघ्नता-पूर्वक सफल जीवन निर्वाह करे, यही हमारी आंतरिक इच्छा है।

× × ×

१०. प्राप्ति-स्वीकार

निम्नलिखित पुस्तिकाएँ, रिपोर्टें और वस्तुएँ भी मिल गई हैं। प्रेषकों को धन्यवाद—

काव्य-कानन—लेखक और प्रकाशक, भगवान् श्री-स्वामी सुखानंदजी के शिष्य पं० रामलाल अग्निहोत्री विशारद, मक़बूल, लखनऊ। श्रीसुखानंद-ग्रंथ-माला का चौथा फूल। पृष्ठ-संख्या ३४। मूल्य ‒)॥, पुस्तक पद्यबद्ध है।

रसपुंज कुंडलिया—लेखक, पं० लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी (रसपुंज कवि)। प्रकाशक, पं० वेणीमाधव चतुर्वेदी, वर्धाँव, सहतवार, बलिया। मूल्य ≋)। पृष्ठ-संख्या ३८।

सुहराब और रुस्तम—लेखक, विद्याभूषण 'विभु'। प्रकाशक, कला-कार्यालय, प्रयाग। मूल्य ।)। पृष्ठ-संख्या ४०। प्रकाशक से प्राप्य। इस पुस्तक में प्रसिद्ध शाहनामा से सुहराब और रुस्तम के कथानक का पद्यानुवाद किया गया है।

धर्मवीर हक़ीक़तराय—लेखक, गदाधरसिंह भृगु-वंशी। मिलने का पता कदाचित् 'साहित्य-भूषण कार्यालय, बनारस सिटी'। पृष्ठ-संख्या ४६। मूल्य ।)। इस पुस्तक में धर्मवीर हक़ीक़तराय की पद्यमयी जीवनी है।

शांति प्रताप—रचयिता, श्रीअलगूराम (आनंद कुलभूषण), प्रकाशक, श्रीहरगोविंद भार्गव। मिलने का पता—भाषा-सेवा-सदन, लाहोरी टोला, बनारस सिटी। आनंदमाला का प्रथम पुष्प। पृष्ठ-संख्या १००। मूल्य ॥)। इसमें प्रताप और पद्मा की कथा पद्य में लिखी गई है।

भक्तिभेंट—लेखक और प्रकाशक, श्रीगोकुलानंद-प्रसाद वर्मा, रामानंद-सत्संगकुटी, मेंहदीचक, भागलपुर। भजनों और गायनों का संग्रह। मूल्य ।)

अकबर और जैनधर्म—मूल्य ≈)
जैनधर्म का अहिंसा तत्त्व—लेखक, मुनि श्रीजिनविजयजी। मूल्य ‒)
लाला लाजपतराय और जैनधर्म—लेखक, पं० हंसराजजी शास्त्री। मूल्य ≈)
(प्रकाशक, श्रीआत्मानंद-जैन-ट्रैक्ट-सोसाइटी, अंबाला।)

राष्ट्र की ध्वनि—लेखक, शुकदेवप्रसाद तिवारी "निर्बल"। प्रकाशक, हिंदी-साहित्य-प्रचारक-कार्यालय, नरसिंहपुर (म० प्र०), मूल्य देश-प्रेम।

भारत में अर्थशास्त्र और लगान—लेखक, अध्यापक शिवप्रसादसिंह विशारद। प्रकाशक, हिंदी-प्रचारिणी सभा, बलिया। मूल्य ≈)

अक़्ल की आज़मायश—लेखक, मोहनलाल राठी, जोधपुर। मूल्य ।)

भाषावाच्यविचार—लेखक, महावीरदास। मिलने का पता—शिवजतन पांडेय, बुक्सेलर, सूजागंज, भागलपुर।

नियमावली—बुंदेलखंड-मध्यप्रांतीय दिगंबर-जैन-शिक्षा-मंदिर, जबलपुर। प्रेषक, कनछेदीलाल जैन, मंत्री।

कार्यविवरण—काशी-सेवा-समिति, बनारस।

प्रॉस्पेक्टस—कमर्शियल हाई स्कूल, चरखावालाँ, दिल्ली।

वार्षिक रिपोर्ट—श्रीसनातनधर्म-महिला-परिषद्, कानपुर।

चतुर्थ वार्षिकविवरण—भारतवर्षीय जैसवाल-जैनसभा। प्रेषक, दीनदयाल जैन, सं० मंत्री, मानपाड़ा, आगरा।

वार्षिक रिपोर्ट—श्रीकृष्ण-कन्यापाठ०, अमृतसर।

द्वितीय वार्षिक रिपोर्ट—शिक्षकसंघ, बिलासपुर।

श्रीजुम्मा दादा व्यायाम मंदिर उद्घाटन-समारंभ के समय पढ़ा हुआ २२वाँ अहवाल (सचित्र)—माणिकराव व्यवस्थापक, बड़ौदा से प्राप्य।

पाँच वर्षों का कार्य-विवरण—नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा।

दंत-मंजन—आर०एस० वसंत ऐंड कंपनी (६४ गंधी-लेन, दिल्ली) ने हमारे पास 'दंतमंजन' की एक पुड़िया भेजी है। मंजन क्या है 'लवण-भास्कर-चूर्ण' है! इसमें तुर्शी ज़्यादा है। एक आने का टिकट भेजने पर नमूना मुफ़्त (?) मिलता है! एक बोतल का मूल्य ।)

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रति-मास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "संस्कार-चंद्रिका", पं० भीमसेन शर्मा और आत्माराम राधाकृष्ण-लिखित। तृतीयावृत्ति। मूल्य ३॥) सजिल्द ४)

(२) "पंच-भूत", देवबलीसिंह द्वारा अनुवादित। मूल्य सजिल्द १॥)

(३) "शरीर-शास्त्र", शिवदास मुकर्जी बी० ए०-लिखित। मूल्य −)॥

(४) "अमर-गीत", व्रजरत्नदास-संपादित। मू० ≡)

(५) "भिखारी से भगवान्", ठाकुर बाबू नंदनसिंह-अनुवादित। मूल्य १), सजिल्द १।)

(६) "सती", पं० जनार्दन मिश्र 'परमेश'-लिखित मूल्य ≡)

(७) "वर्षा और वनस्पति", श्रीशंकरराव जोशी-लिखित। मूल्य।)

(८) "हिंदी में इनकम-टैक्स-ऐक्ट", कन्हैयालाल गार्गीय-लिखित। मूल्य ॥)

(९) "ध्रुव और चिलया", पं० शिवदत्त वाजपेयी-अनुवादित। मूल्य।)

(१०) "मिथिला-बहार", ब्रह्मशंकर माथुर 'आनंद'-लिखित। मूल्य ॥≤)

(११) "राम-जन्म", द्वितीयावृत्ति, मूल्य ≡)
(१२) "धनुष-यज्ञ", ,, ,,
(१३) "वन-वास", ,, ,,
(१४) "दशरथ-विलाप", ,, ,,
(१५) "सीता-हरण", ,, ,,
(१६) "पुष्प-वाटिका", ,, ,,
(१७) "लंका-दहन", मूल्य ≡)
(१८) "भरत-मिलाप", ,, ≡)

ब्रह्मशंकर माथुर 'आनंद'

---

१. संयुक्त प्रदेश में कृषि की अवस्था

सन् १९२२-१९२३ की कृषि-विभाग की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उसके पढ़ने से कृषि से संबंध रखनेवाली बहुत-सी नई बातें मालूम होती हैं। इस रिपोर्ट में प्रायः ६० पृष्ठ हैं। रिपोर्ट अँगरेज़ी में है। इसमें एक व्यव-वेल, एक दुग्ध-शाला तथा ऊँख के एक खेत के चित्र भी हैं। रिपोर्ट को रोचक बनाने के लिये उसमें अधिकतर व्यापक रूप से ही विचार किया गया है। विशेष सांगोपांग वर्णन देने की ओर जान-बूझकर कम ध्यान दिया गया है। इसके लेखक हैं डॉक्टर लीक। आप कृषि-शास्त्र के विशेषज्ञ माने जाते हैं। स्थूल रूप से आपने इस रिपोर्ट में छः बातों पर विशेष विचार किया है—(१) ताल्लुक़ेदारों का काश्तकारी कराने में स्वयं उदासीन होना, (२) उगने योग्य अच्छे बीजों के मिलने का संतोषदायक प्रबंध न होना, (३) काश्तकारों के खेतों में जाकर कृषि-संबंधी सुधार, प्रयोग द्वारा, दिखलाकर उन्हें उत्साहित करने की आवश्यकता, (४) प्रयोग और अनुसंधान की कुछ बातें, (५) कृषि-शिक्षा की दशा, और (६) कृषि-शासन का कुप्रबंध।

उपर्युक्त बातों को लेकर डॉक्टर साहब ने बड़ा अच्छा विवेचन किया है। यह बात बिलकुल ठीक है कि बड़े ताल्लुक़ेदार अपने इलाक़ों में स्वयं काश्तकारी करने का बहुत कम प्रबंध करते हैं। अपनी आय का प्रधान मार्ग वे लगान को ही समझते हैं। फ़सल की उन्नति अथवा अवनति का हाल उन्हें बहुत कम मालूम रहता है; क्योंकि खुद काश्तकारी करने में उनकी रुचि नहीं है। डॉक्टर लीक की राय है कि कृषि-विभाग को ताल्लुक़ेदारों का ध्यान इस ओर अवश्य आकर्षित करना चाहिए। यदि वे लोग कम-से-कम १०० एकड़ भूमि के फ़ार्म अपने-अपने इलाक़ों में खोल दें, और सिंचाई का संतोषदायक प्रबंध कर दें, तो गन्ना, तमाखू और आलू की खेती में बहुत बड़ी उन्नति की जा सकती है। इससे इर्द-गिर्द के काश्तकारों को यथेष्ट प्रोत्साहन तो मिलेगा ही, साथ ही वे अपने खेतों को सींचने के लिये फ़ार्म के जल-प्रबंध से भी लाभ उठा सकते हैं। जल-प्रबंध के संबंध में डॉक्टर साहब ने बहुत अधिक ज़ोर दिया है। युक्त-प्रांत में इस समय सरकारी फ़ार्मों को छोड़कर ३६० ग़ैर-सरकारी फ़ार्म हैं। उनमें ३४ तो ऐसे हैं, जिनमें प्रत्येक में १०० एकड़ से अधिक भूमि लगी हुई है। कुछ फ़ार्म बहुत छोटे हैं। सन् १९२२ और २३ में कृषि-विभाग ने १६ पंपिंग-कुएँ बनवा डाले, और १८ और बन रहे हैं। इसके अतिरिक्त ४२० कुओं में सफलता-पूर्वक बोरिंग (लोहे की नली ठोंककर पृथ्वी-तल से पानी निकालना) किया गया। बेसारा के लिये भी लीक साहब ने कृषि-विभाग को अच्छी सलाह दी है। अच्छे बीज मिलने के लिये विशेष प्रबंध की बड़ी आवश्यकता है। योरप और अमेरिका में तो उगने योग्य बीजों के बेचने का एक अलग रोज़गार ही है। भारत में भी यदि यह रोज़गार चल जाय, तो बड़ा अच्छा हो। पर इसकी संभावना अभी बहुत कम है। कृषि-संबंधी प्रयोगों को स्वयं

काश्तकारों के खेतों में जाकर दिखलाने पर डॉक्टर साहब ने बड़ा ज़ोर दिया है। आपका कहना है कि कृषि-विभाग को यह काम अवश्य करना चाहिए। अब तक कृषि-विभाग की नीति यह रही है कि वह अच्छे-अच्छे फ़ार्म खोलता है, और वहाँ उपयोगी प्रयोग होते रहते हैं। वह आशा करता है कि काश्तकार वहाँ आकर उन प्रयोगों को देखें, और उनसे लाभ उठावें। पर काश्तकार एक तो वहाँ जाते ही नहीं, और जो जाते भी हैं, तो फ़ार्म की भव्यता तथा वहाँ के बहुमूल्य औज़ार देखकर ऐसे चकित हो जाते हैं कि उनके मन में अपने खेतों में उन प्रयोगों के कर सकने का भाव तक नहीं उत्पन्न होता। ऐसी दशा में डॉक्टर लीक की सलाह है कि कृषि-विभाग के नौकर स्वयं काश्तकारों के खेतों पर जायँ, और वहाँ प्रयोग करके कृषि-संबंधी नवीन उपायों की उपयोगिता दिखलावें।

प्रयोग और अनुसंधान की मद में गन्ने, कपास और आलू पर जो कुछ विचार किया गया है, वह विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। गन्ने के रस को औटकर गुड़ बनाने में ईंधन की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है। अब ऐसा प्रयोग हो रहा है कि रस निकल चुकने के बाद गन्ने की जो खोई (रस निकला हुआ ठेंठर) रह जाती है, एक-मात्र उसी को ईंधन-रूप में व्यवहृत करके औटने की क्रिया पूरी की जाय। इसके लिये विशेष प्रकार की भट्ठियाँ बनानी पड़ेंगी। यदि यह प्रयोग सफल हो गया, तो ईंधन की समस्या बहुत सहज में हल हो जायगी। आलुओं के संबंध में भी एक उपयोगी प्रयोग सफल हुआ है। उसके अनुसार ऐसी ठंडी खत्तियाँ बनाई जायँगी, जिनमें गरमी के महीने में भी आलू सड़ न सकें। इस समय तो यह दशा है कि गरमी के महीनों में ८४ प्रतिशत आलू सड़कर बरबाद हो जाता है। इसी कारण जिस आलू का भाव जाड़े में दो रुपए प्रति मन रहता है, वह बेसारे के अवसर पर दस-बारह रुपए प्रति मन बिकता है। ठंडी खत्तियों में प्रतिशत ·४ से अधिक आलू न सड़ सकेंगे। पर अभी यह हिसाब लगाना बाक़ी है कि इन खत्तियों के बनाने में जो व्यय पड़ेगा, वह दस रुपए प्रति मन के महँगेपन से भी अधिक ख़र्चीला तो न होगा। एक दूसरी कठिनता को हल करने की भी आवश्यकता है। गरमी में आलुओं में आप-ही-आप अँखुवा निकल आता है। उसके रोकने का उपाय अभी नहीं ढूँढ़ मिला है। कपास के संबंध में डॉक्टर साहब की राय है कि जब तक लंबे धागे की कपास की खेती न बढ़ाई जायगी, तब तक इसमें वैसा लाभ न हो सकेगा।

संयुक्त-प्रांत की कृषि-शिक्षा के लिये कानपूर में 'कृषि-कॉलेज' है, तथा छोटे ज़मींदारों के लड़कों के लिये बुलंदशहर में एक 'कृषि-स्कूल' भी है। इन दोनों की दशा बहुत अच्छी है, और छात्रों की संख्या बराबर बढ़ रही है। 'कृषि-कॉलेज' तो शीघ्र ही प्रयाग-विश्वविद्यालय से संबंधयुक्त कर दिया जानेवाला है। कृषि-विभाग के शासन-प्रबंध से डॉक्टर लीक संतुष्ट नहीं हैं। आजकल शासन-प्रबंध चलाने के लिये पद-पद पर कमेटियों की सृष्टि होती है। कृषि विभाग में भी इस कमेटी-शासन का प्राधान्य है। पर डॉक्टर लीक को कमेटियों का यह प्रबंध पसंद नहीं है। आपने कमेटी-शासन की निंदा की है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कृषि-विभाग की यह रिपोर्ट बहुत महत्त्व-पूर्ण है, तथा पढ़ने में रूखी भी नहीं जान पड़ती। पर तफ़सीलवार वर्णन न होने तथा अंकों की कमी होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि सन् १९२२-२३ में इस विभाग ने पहले की अपेक्षा उन्नति की या अवनति; और यदि उन्नति की, तो किन मदों में और कितनी-कितनी। हमारी राय में, ऐसी रिपोर्टों में, तफ़सील के साथ पूरा विवरण देना परमावश्यक है। फिर इन रिपोर्टों का मूल्य भी कम ही रखना चाहिए। इनका प्रकाशन तो देशीय भाषाओं में ही होना प्रत्येक दृष्टि से वांछनीय है। हमारा विश्वास है कि कृषि-विभाग भविष्य में हमारे इस सत्परामर्श पर अवश्य ध्यान देगा।

× × ×

२. महात्मा गाँधी और दांपत्य प्रेम

दंपति-प्रेम के संबंध में एक नोट वैशाख मास की माधुरी में निकल चुका है। वह नोट लिखने के बाद हमें १८ मई, सन् १९२४ के हिंदी-नवजीवन में दांपत्य प्रेम से संबंध रखनेवाले महात्मा गाँधी के विचार भी पढ़ने को मिले। आपने दांपत्य प्रेम के आदर्श को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। उसकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था में आप 'विषय के लिये गुंजाइश' नहीं स्वीकार करते तथा आपकी राय से तब 'शरीर-स्पर्श का ख़याल' तक नहीं रह जाता। आपने दंपति के ऐसे प्रेम को

'परमात्मा की कुछ झलक' स्वीकार की है। महात्माजी की सम्मति के अनुसार जिस दंपति-प्रेम में विषय तथा शरीर-स्पर्श का भाव न हो, जो निर्मल हो, जिसमें स्वार्थ की गंध भी न हो, जिसमें एक आत्मा दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाय, जो निर्विकार हो, वही आदर्श दांपत्य प्रेम है। महात्माजी ऐसे प्रेम को विरल बतलाते, पर हृदय से उसका आदर करते हैं। इस संबंध में महात्माजी ने जो कुछ लिखा है, उसे यहाँ उद्धृत कर देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते —

"दंपति-प्रेम जब बिलकुल निर्मल हो जाता है, तब प्रेम परा काष्ठा को पहुँचता है, तब उसमें विषय के लिये गुंजायश नहीं रहती है, स्वार्थ की तो उसमें गंध तक नहीं रह जाती है। इसी से कवियों ने दंपति-प्रेम का वर्णन करके आत्मा की परमात्मा के प्रति लगन को पहचाना है, और उसका परिचय कराया है। ऐसा प्रेम विरल ही हो सकता है। विवाह का बीज आसक्ति में होता है। तीव्र आसक्ति जब अनासक्ति के रूप में परिणत हो जाय और शरीर-स्पर्श का ख़्याल तक न लाकर—न करके—जब एक आत्मा दूसरी आत्मा में तल्लीन हो जाती है, तब उसके प्रेम में परमात्मा की कुछ झलक हो सकती है। यह वर्णन भी बहुत स्थूल है। जिस प्रेम की कल्पना मैं पाठकों को कराना चाहता हूँ वह निर्विकार होता है। मैं खुद अभी इतना विचार-शून्य नहीं हुआ जिससे मैं उसका यथावत् वर्णन कर सकूँ। इससे मैं जानता हूँ कि जिस भाषा के द्वारा मुझे उस प्रेम का वर्णन करना चाहिए वह मेरी क़लम से नहीं निकल रही है। तथापि शुद्ध हृदयवाले पाठक उस भाषा को अपने आप सोच लेंगे।"

महात्माजी ने ऊपर जिस आदर्श दांपत्य प्रेम का वर्णन किया है वह सचमुच विरल है। उसके उदाहरण भी कदाचित् ढूँढ़ने से ही मिल सकें। क्या ही अच्छा हो, यदि महात्माजी इस संबंध में अपने विचार कुछ विस्तार से प्रकट करें। महात्माजी का कहना है कि विवाह का बीज आसक्ति में होता है। वह आसक्ति जब अनासक्ति के रूप में बदल जाय, तब आदर्श दांपत्य प्रेम संभव है। तो क्या अनासक्ति के प्रादुर्भाव के पूर्व का दांपत्य प्रेम आदर्श नहीं है? क्या आसक्ति के बिना किसी भी अवस्था में विवाह-बंधन की ओर नर-नारी की रुचि नहीं हो सकती है? क्या पहले से ही अनासक्ति की संभावना नहीं हो सकती? पार्वती, सीता और शकुंतला—इन तीन के दांपत्य प्रेम में महात्माजी सबसे श्रेष्ठ प्रेम किसका मानते हैं, और किन कारणों से? फिर दंपति के आदर्श प्रेम में संतानोत्पत्ति का भी कुछ महत्त्व है या नहीं? यद्यपि महात्माजी के पास इतने अधिक काम हैं कि उनको इन विषयों के विवेचन का समय बहुत कम है, फिर भी जब उन्होंने इस विषय की चर्चा चलाई है, तो क्या कृपा करके वह इस पर कुछ और प्रकाश न डालेंगे?

× × ×

३. मतिराम और भूषण

श्रीयुत भागीरथप्रसादजी दीक्षित हिंदी के अच्छे लेखक हैं। हाल में आपने भूषण और मतिराम के संबंध में एक लेख लिखकर काशी की नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित कराया है। श्रीयुत बाबू श्यामसुंदर-दासजी बी० ए० ने 'हस्तलिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण'-नामक पुस्तक की भूमिका में भी इस लेख को उद्धृत कर दिया है। दीक्षितजी ने इस लेख द्वारा यह प्रमाणित करने का उद्योग किया है कि (१) मतिराम और भूषण सगे भाई न थे, तथा (२) भूषण शिवाजी के राजाश्रित कवि न होकर उनके पौत्र शाहूजी के आश्रित थे, और कदाचित् उन्हीं के कहने से उनके पितामह के लिये शिवराज-भूषण बना डाला। हिंदी-संसार के लिये ये दोनों ही बातें नई हैं। इसलिये लोग इन पर विशेष रूप से विचार कर रहे हैं। दीक्षितजी ने अपनी दोनों ही उक्तियों के समर्थन में जो प्रमाण पेश किए हैं, वे ये हैं कि हाल में 'वृत्तकौमुदी'-नामक एक ग्रंथ मिला है, उसके रचयिता मतिराम कवि हैं। उन्होंने अपना वंश-परिचय देते हुए अपने को वनपुर-निवासी वत्स-गोत्री त्रिपाठी और विश्वनाथ का पुत्र बतलाया है। उधर भूषणजी कश्यप-गोत्री त्रिपाठी थे, त्रिविक्रमपुर में रहते थे और रत्नाकरजी के पुत्र थे। वृत्तकौमुदी सं० १७५८ में बनी थी। पर इस प्रमाण से यह नहीं साबित होता कि 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता मतिराम वही मतिराम हैं, जो 'रसराज' और 'ललितललाम' के। एक ही समय में मतिराम-नाम के कई कवियों का होना

कोई असंभव बात नहीं है कि इस नाम के कई कवि एक ही समय में हुए हैं। 'वृत्तकौमुदी' पिंगल शास्त्र का ग्रंथ है। इसमें सवैया, घनाक्षरी, दोहा, सोरठा तथा छप्पै आदि छंदों के पिंगल-मतानुसार लक्षण और उदाहरण अवश्य होंगे। रसराज और ललितललाम के रचयिता ने अपने उभय ग्रंथों के अनेक छंदों का दोनों ही ग्रंथों में उपयोग किया है। बहुत-से छंद ललितललाम में भी हैं, और रसराज में भी। यही क्यों, उक्त ग्रंथों के बहुत-से दोहे उन्होंने अपनी सतसई में भी रक्खे हैं। क्या 'वृत्तकौमुदी' के कोई छंद 'रसराज' अथवा 'ललित-ललाम' में भी हैं, अथवा उक्त ग्रंथों के छंद 'वृत्त-कौमुदी' में हैं? यदि नहीं, तो क्या इससे दोनों का एक ही रचयिता मानने में कुछ संदेह नहीं उत्पन्न होता? इसको भी जाने दीजिए। हाल में एक फूल-मंजरी ग्रंथ मिला है। यह भी मतिराम-कृत बतलाया जाता है। यह जहाँगीर के राजत्व-काल में बना था। इसकी रचना संभवतः संवत् १६८२ में हुई होगी। यदि उस समय मतिराम की अवस्था केवल २५ वर्ष की मानें, तो उनका जन्म-संवत् १६५७ ठहरता है। यदि 'फूल-मंजरी', 'रसराज' और 'वृत्तकौमुदी' के बनानेवाले एक ही मतिराम हों, तो 'वृत्तकौमुदी' की रचना उस समय की ठहरती है, जब मतिराम संभवतः १०१ वर्ष के थे। क्या इस बात से भी 'मतिराम' नाम के कई कवियों के होने का सूक्ष्म आभास नहीं मिलता?

भूषण को जिस दलील से शिवाजी का राजाश्रित कवि नहीं माना गया है, वह भी इसी प्रकार निर्बल है। दीक्षितजी ने भगवंतराय खींची के राजत्व-काल में भूषण को जीवित माना है, और एक छंद उद्धृत किया है, जिसे वह भूषण-कृत बतलाते हैं। पर भूषण नाम के भी कई कवि हुए हैं, और यशवंतराय तथा भगवंतराय के नाम में भी भेद है। छंद यशवंतराय की प्रशंसा में है, भगवंतराय की प्रशंसा में नहीं। श्रद्धेय मिश्रबंधुओं ने भूषणजी की कविता से ही यह बात प्रमाणित की है कि वह शिवाजी के राजाश्रित कवि थे। उनकी दलीलें भी पुष्ट हैं। इसके अतिरिक्त बहुत-से कवियों ने—जिनमें खूबचंद, लोकनाथ आदि मुख्य हैं—अपने छंदों में भूषण का शिवाजी द्वारा पुरस्कृत होना स्वीकार किया है। लोकनाथ का कविता-काल भी संवत् १७६० है। अतः शिवराजभूषण बनने के तीस ही साल बाद का एक छंद मिलता है, जिसमें शिवाजी से भूषण का दान पाना लिखा है। देखिए—

> "भूषन निवाज्यो जैसे सिवा महराज जू ने,
> बारन दै बावन धरा पै जस छात्र है;
> दिल्लीसाह दिलिप भए हैं खानखाना जिन,
> गंग-से गुनी को लाखै मौज मन भाव है।
> अब कविराजन पै सकल समस्या हेत,
> हाथी, घोड़ा, तोड़ा दै बढ़ायो बहु नाव है;
> बुद्ध जू दिवान लोकनाथ कविराज कहै,
> दियो इकलौरा पुनि धौलपुर-गाँव है।"

सभी बातों पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट जान पड़ती है कि भूषणजी शिवाजी के आश्रित अवश्य थे।

तिकवाँपुर-निवासी बिहारीलाल नामक एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। यह अपने को मतिराम का वंशज मानते थे। बुंदेलखंड के महाराज विक्रमसाहि ने एक विक्रम-सतसई बनाई थी। बिहारीलाल ने उसका तिलक किया है। उसमें उन्होंने अपना वंश-परिचय दिया है। उसमें मतिराम को पूर्वपुरुष मानकर अपना वंश-वृक्ष दिखलाया है। अधिक पीढ़ियों का अंतर भी नहीं है। उसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने को कश्यप-गोत्री माना है। वह अंश भी द्रष्टव्य है—

> "बसत त्रिविक्रमपुर नगर कालिंदी के तीर,
> त्रिरच्यो भूप हमीर जनु मध्यदेश को हीर।
> भूखन, चिंतामनि तहाँ कबि भूखन, मतिराम,
> नृप हमीर सनमान ते कीन्हें निज-निज धाम।
> हैं पंती मतिराम के सुकबि बिहारीलाल,
> जगन्नाथ नाती बिदित सीतल सुत सुभ चाल।
> कस्यप-बंस कनौजिया बिदित त्रिपाठी गोत,
> कबिराजन के गोत मैं कोबिद सुमति उदोत।"

इस टीका की रचना संवत् १८७२ में हुई थी।

इस प्रकार सब बातों पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि मतिराम और भूषण भाई-भाई थे। दोनों कश्यप-गोत्री और टिकमापुर के रहनेवाले थे। 'वृत्तकौमुदी' के रचयिता वत्स-गोत्री और कश्यप गोत्री मतिराम से भिन्न थे। भूषण निश्चय ही शिवाजी के राजाश्रित कवि थे। इस नोट में जो बातें लिखी गई हैं, वे अत्यंत संक्षेप में हैं। गंगा-पुस्तकमाला से निकलनेवाले 'मति-

राम-मति-मुकुर' में इन पर विस्तार के साथ विचार किया गया है।

× × ×

४. ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी का दिग्दर्शन

विलायत में होनेवाली ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी एक अभूत-पूर्व व्यापार है। उसमें करोड़ों का ख़र्च हो रहा है। उसके विशाल विस्तार और दर्शक-संख्या का अनुमान लगाने के लिये यहाँ पर कुछ अंक प्रकाशित किए जाते हैं। प्रदर्शिनी में आनेवाले दर्शकों को आहार देने का भार मेसर्स जे० लायनर्स ऐंड कंपनी ने लिया है। भिन्न-भिन्न स्थानों में जो चाय की दूकानें, भोजनागार आदि हैं, वे १० एकड़ ज़मीन के ऊपर बने हैं। उनमें एक साथ २५,००० आदमियों के भोजन करने की व्यवस्था की गई है। भोजन भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के मिलते हैं। अपनी योग्यता, रुचि और ऐश्वर्य के अनुसार सबको भोजन मिल जाता है। पाचक और नौकर-चाकर सब मिलाकर ७,००० आदमी इन भोजनागारों में काम करते हैं। इन भोजनागारों में हर हफ़्ते इतनी रसद लगती है—५४ काफ़े (चाय की दूकानें) और रेस्टराँ (भोजनागारों) में ७५ टन (एक टन २७ मन से कुछ अधिक होता है) मांस; २६० टन रोटी और केक; ६ टन चाय, २००० उपनिवेशों के अनानास; ३००० टीन सार्डिन; ५,००,००० बोतल भरने का जल; ४० टन आलू; २००० गैलन सूप; १५०० बाक्स सूखे फलों के। दूध लाने के लिये रेल-लाइन की एक अलग साइडिंग खोली गई है। हर जगह पकाने और खाने की अलग व्यवस्था है। इस प्रदर्शिनी के कुछ चित्र भी अगली संख्या में देने का विचार है।

× × ×

५. सर आशुतोष चौधरी

सर आशुतोष मुकर्जी से पहले ही उन्हीं की तरह सर आशुतोष चौधरी की मृत्यु भी अकस्मात् हो गई। २३ मई, सन् १९२४ ईसवी को हृदय की गति रुक जाने के कारण एकाएक इनका स्वर्गवास हो गया। इधर एक मास के भीतर-भीतर भारत अपने कई सपूतों को खो चुका है। वह घोर शोक से संतप्त है। सर आशुतोष चौधरी राजशाही-ज़िले के धनी, मानी ज़मींदार-कुल में, सन् १८६१ ई० में, उत्पन्न हुए थे। इनकी कलकत्ता-विश्वविद्यालय में अच्छी ख्याति रही। इन्होंने इँगलैंड की भी यात्रा की थी, और प्रसिद्ध कैंब्रिज-विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। बैरिस्टरी पास करके यह स्वदेश को लौट आए, और सन् १८८६ ईसवी से बैरिस्टरी शुरू कर दी। उसमें इनको बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई। धीरे-धीरे इनकी आमदनी बहुत अधिक हो गई। कुछ समय के बाद यह हाई-कोर्ट के जज हो गए, और यही पहले भारत-वासी थे, जिन्होंने ओरिजिनल साइड के मुक़द्दमे करने का भी अधिकार प्राप्त किया। सन् १९२१ ईसवी में चौधरी महोदय ने जजी के काम से छुट्टी पाई। तब से आपने बैरिस्टरी का काम फिर शुरू कर दिया। इसी बीच में आपकी सहधर्मिणी का देहांत हो गया। चौधरी महोदय के स्वास्थ्य पर इस पत्नी-वियोग का भारी आघात पहुँचा।

आशुतोष चौधरी
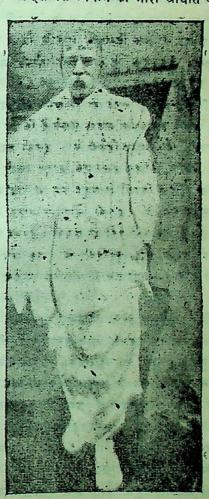
राजनीतिक आंदोलन में आप सच्चे राष्ट्रवादी थे। सन् १९०४ में, बंगाल की प्रांतीय कानफ़्रेंस में, आपने ठीक ही कहा था कि विजित जाति की राजनीति कुछ भी नहीं होती। साहित्य से भी आपको प्रगाढ़ प्रेम था। सन् १९१२ ईसवी में, दीनाजपुर में, जो वंगीय साहित्य-सम्मेलन हुआ था, उसके सभापति आप ही थे। बंगाल की ज़मींदार-एसोसिएशन के भी आप ही जन्मदाता थे। कलकत्ता-विश्वविद्यालय एवं राष्ट्रीय कॉलेज से भी आपका घनिष्ठ संबंध था। भारतीय कला से भी आपको प्रेम था। आपके प्रभाव से ही इंडियन सोसाइटी ऑफ़ ओरियंटल आर्ट को सरकार से एक अच्छी रक़म सहायता-रूप में मिली थी। आपने अपनी सहधर्मिणी, श्रीप्रतिभा चौधरानी, के सहयोग से एक 'संगीतसंघ' की भी स्थापना की थी। इस संघ ने भारतीय संगीत की शिक्षा का बड़ा अच्छा प्रबंध किया था। श्रीमती चौधरानी इस संघ की सेवा निस्स्वार्थ भाव से किया करती थीं। उनके स्वर्गवास के बाद भी चौधरी महोदय इस संघ को चलाते रहे।

चौधरी महोदय का ऊपर जो संक्षिप्त परिचय हमने दिया है, उससे पाठकगण समझ सकते हैं कि यह कितने प्रभावशाली और भारत-हितैषी थे। इनको राजनीति, साहित्य, संगीत, ललित कला एवं क़ानून आदि सदृश भिन्न भिन्न रुचि के विषयों से अपूर्व प्रेम था। यह भारतीयता के सच्चे भक्त थे। इनकी मृत्यु से भारत की जो हानि हुई है, वह पूरी नहीं हो सकती। ईश्वर आपकी आत्मा को शांति और कुटुंबियों को यह घोर शोक सहने की शक्ति दें—यही हमारी आंतरिक प्रार्थना है।

× × ×

६. परमहंस स्वामी आत्मानंद सरस्वती

जहाँ भारत में विलासी साधु-संन्यासियों की कमी नहीं है, वहाँ पहुँचे हुए महात्माओं का भी अभाव नहीं है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सात्त्विक साधना में प्रवृत्त रहकर लोकोपकार के लिये जीवन-यापन करनेवाले आदर्श महात्माओं से भगवती वसुमती का अंचल सर्वत्र अलंकृत नहीं है; क्योंकि विभूति-विशिष्ट आत्माएँ समय-समय पर ही वसुधा-तल को धन्य बनाने के लिये संसार में अवतीर्ण हुआ करती हैं। ऐसी ही एक पवित्र आत्मा, ७९ वर्ष तक इस देश को गौरवान्वित करके, मायावी संसार के मोह-प्रपंच में लिप्त लाखों जीवों को ज्ञान-राज्य का शांति-वैभव दिखलाकर, अभी हाल ही में परमपद को प्राप्त हुई है।

स्वामी आत्मानंदजी महाराज

अभी हाल में अजमेर के पंडित गौरीशंकर भार्गव के घर पर भारतीय दर्शन-शास्त्र के उद्भट विद्वान् श्री१०८ स्वामी आत्मानंदजी सरस्वती इस धरा-धाम को छोड़कर परम-धाम को चले गए। स्वामीजी का जन्म पटियाला-रियासत के कनोद-नामक स्थान में एक भार्गव-ब्राह्मण-कुल में हुआ था। शुरू में आप रियासत के एक ओहदेदार (अफ़सर) थे। किंतु आरंभ से ही आपकी चित्त-वृत्ति वैराग्य में लीन रहती थी। पचीस वर्ष की अवस्था में ही संसार से विरक्त होकर आप गिरनार-पर्वत के जंगलों में तपश्चर्या करने चले गए। तदनंतर आप संसारियों के कल्याण के निमित्त आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करने में लग गए। काठियावाड़ और गुजरात में तो महलों से लेकर झोपड़ों तक में आपकी पूजा होती थी। आपने कई दार्शनिक ग्रंथ लिखे हैं। अपने युक्ति-युक्त एवं उपदेश-पूर्ण भाषणों तथा कई महत्त्व-पूर्ण ग्रंथों के कारण पठित-समाज में हर जगह आप बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे। और, आज भी आपके श्रद्धालु भक्तों और अनुयायियों की संख्या कम नहीं है। आपके विचार बड़े उदार और स्वतंत्र थे। धार्मिक विवादों और अनावश्यक तर्क-वितर्कों से तो आप बिलकुल तटस्थ रहा करते थे। आपने प्रकृत धर्म और दर्शन-शास्त्र के मूल-सिद्धांतों पर प्रकाश

डालनेवाले अनेक ग्रंथों में तत्त्वदर्शन (संस्कृत और हिंदी), सांख्ययोग और कर्मयोग (अँगरेज़ी और हिंदी) तथा अद्वैतादर्श (वेदांत)-नामक ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से पहले के दो ग्रंथों को स्वामी भास्करानंद ने संपादित कर बंबई के हिंदुस्तान-प्रेस से प्रकाशित किया है। भगवान् करें, ऐसे-ऐसे महात्माओं से भारत-माता की गोद कभी ख़ाली न रहे।

× × ×

७. महात्मा गाँधी और देश पर उनका प्रभाव

महात्मा गाँधी को कारावास से मुक्त हुए काफ़ी समय हो चुका। जुहू में स्वास्थ्य सुधारने के लिये उन्होंने जो प्रवास-काल नियत किया था, वह भी समाप्त हो गया, और वह एक बार फिर अहमदाबाद में, अपने सत्याग्रह-आश्रम में, वापस आ गए। इधर एक मास के अंदर-अंदर महात्माजी के लेखों में कई ऐसी बातें निकलीं, जिनसे उनके देश-भाइयों में बड़ी हलचल

महात्मा गाँधी

मच गई है। यह बात तो सभी जानते थे कि संभवतः वह कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध होंगे, और इस कारण जुहू से उन्होंने अपना जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था, उसे पढ़कर किसी को भी आश्चर्य नहीं हुआ। बल्कि यह देखकर कि वह स्वराज्य-दलवालों के काम में रुकावट न डालेंगे, लोगों के चित्त से फूट का भय जाता रहा था। पर इसके बाद इधर उन्होंने एक पत्र के प्रतिनिधि से जो बात कह डाली है, उससे स्वराज्य-दल में खलबली मच गई है। कांग्रेस-संस्थाओं के सभी अधिकार के पदों पर से स्वराज्य-दलवालों को हट जाना चाहिए—यही महात्माजी की सलाह है। जान पड़ता है, स्वराज्य-दलवाले महात्माजी की इस सलाह को सहज में मानने के लिये तैयार नहीं हैं। शिमले में एक पत्र-प्रतिनिधि से पं० मोतीलालजी ने जो कुछ कहा है, उससे यही ध्वनि निकलती है। बंगाल में तो सिराजगंज की प्रांतीय राजनीतिक कानफ्रेंस में श्रीयुत देशबंधु दास ने यह बात बिलकुल स्पष्ट कर दी है कि स्वराज्य-दलवाले कांग्रेस के प्राप्त पदों को नहीं छोड़ेंगे। उधर महात्माजी भी अपनी बात पर दृढ़ हैं। वह कहते हैं, यदि स्वराज्य-दलवाले नहीं मानेंगे, तो हम कांग्रेस से भिन्न एक और संस्था स्थापित करके उसके द्वारा अपने मत का प्रचार करेंगे। नहीं जानते, यह उलझा हुआ मामला कैसे सुलझेगा। पर इतना तो निश्चित दिखलाई पड़ रहा है कि अब स्वराज्य-दलवालों के लिये महात्माजी के कथन वेद-वाक्य के सदृश नहीं रह गए। यह तो हुई स्वराज्य-दल की बात, उधर आर्य समाज के संबंध में भी महात्माजी ने कुछ बातें ऐसी कह दी हैं, जिससे सारे आर्य-समाज में भी तहलका मच गया है, और आर्य-समाजी लोग, अपनी समझ से, महात्माजी के आक्षेप-योग्य कथनों का खुल्लमखुल्ला खंडन कर रहे हैं। अछूत जातियों का पक्ष ग्रहण करने के कारण कदाचित् मदरास-प्रांत का ब्राह्मण-समाज भी महात्माजी से प्रसन्न नहीं है। मुसलमान भी अब निराश हो रहे हैं कि शायद महात्माजी इसलाम-धर्म नहीं स्वीकार करेंगे। महात्माजी के मन की बात टटोलने के लिये हसन निज़ामी ने उनके नाम एक खुली चिट्ठी भी छपवाई थी, जिसमें उन्हें इसलाम-धर्म स्वीकार करने के लिये निमंत्रित किया गया था। इस चिट्ठी का उत्तर महात्माजी ने अब तक कुछ भी नहीं

दिया है। हमारा ख़याल है, मुसलमान भी पहले के समान अब उन्हीं को अपना सब कुछ मानने के लिये नहीं तैयार हैं। सिखों ने यद्यपि महात्माजी के अहिंसात्मक सत्याग्रह को कार्य-रूप में परिणत करके दिखला दिया है; पर ऐसा दिखलाई पड़ रहा है कि महात्माजी से जिस प्रोत्साहन की उन्हें आशा थी, वह नहीं मिला है, जिससे उनमें भी कुछ विरक्ति के भाव आ गए हैं। इँगलैंड के माल के बहिष्कार के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण तथा मृत गोपीनाथ साहा के हिंसा-कार्य की घोर निंदा करने के कारण भी कुछ लोग महात्माजी से असंतुष्ट हैं। नौकरशाही, जी-हुजूरी एवं नरम दलवालों की तो बात ही क्या, वे तो उनका पहले से ही विरोध कर रहे हैं। अशिक्षित जनता में भी अब कदाचित् महात्माजी के प्रति पहले का-जैसा विश्वास नहीं रहा है। सारांश यह कि इस समय कदाचित् यह पहला ही अवसर है, जब महात्माजी को स्वदेश में इतने गहरे विरोध का सामना करना पड़ेगा। पर देखते हैं, स्वयं महात्माजी पर इन सब बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है। वह अपनी उसी पुरानी नीति से काम ले रहे हैं। सन् १९२१ और १९२४ के महात्मा गाँधी में कोई भी अंतर नहीं दिखलाई पड़ता। पहले अपने अनुयायियों के अधिक संख्या में होने का न उनको गर्व था, और न इस समय उनके कम होने का उनको दुःख है। वह सचाई और अहिंसा को अपनाए हुए दृढ़ता और स्थिरता-पूर्वक अपने मार्ग पर चल रहे हैं। इससे उनके चरित्र की उज्ज्वलता खिल उठी है; पर साथ ही यह मानना पड़ता है कि देश पर उनका प्रभाव कम होता जा रहा है।

× × ×

८. संसार में मोटरों की संख्या

सन् १९२३ के जनवरी-मास में यह हिसाब लगाया गया था कि सारे संसार में मोटर-गाड़ियों की संख्या कितनी है। हिसाब लगानेवालों का कहना है कि उस मास तक संसार में १,४५,०७,००० मोटर-गाड़ियाँ थीं। सन् १९२२ के जनवरी-मास में इस संख्या से २० लाख मोटरें कम थीं। चीन में शायद सबसे कम मोटर-गाड़ियाँ दौड़ती हैं; क्योंकि वहाँ उनकी संख्या केवल १० हज़ार बतलाई जाती है। रूस में कितनी मोटरें चलती हैं, इसका भी ठीक हिसाब नहीं लग सका। मोटरों की सबसे अधिक संख्या अमेरिका के हिस्से में पड़ती है। संसार की सारी मोटरों में ८४ प्रतिशत अमेरिका में मौजूद हैं। वहाँ की कुल मोटर-गाड़ियों की संख्या १,०७,९४,००० है। इस हिसाब से अमेरिका के प्रत्येक ९ आदमियों के हिस्से में एक मोटर पड़ती है। ग्रेट ब्रिटन के प्रत्येक ८५ मनुष्यों के पीछे एक मोटर का औसत पड़ता है। भारत में भी मोटरों का प्रचार द्रुत गति से बढ़ रहा है। शहरों में तो उनका आधिपत्य होता ही जाता है, पर देहात में भी राजे और ताल्लुक़ेदार लोग मोटरों को ही अपना रहे हैं। भारत के बंबई तथा बंगाल-प्रांतों में ही मोटरों की संख्या अधिक है। सन् १९२२ में मोटरों पर आयात-कर लग जाने से मोटरें कम आई थीं। पर इधर इनकी संख्या फिर बढ़ रही है। सन् १९२२ में ४,३०९ मोटरें आई थीं; सन् १९२३ में ६,६६७ आईं। अमेरिका और कनाडा से ही यहाँ अधिक मोटरें आती हैं। कारण, इन देशों की मोटरें सस्ती हैं। सन् १९२१ में भारत ने इँगलैंड से १,२४२ मोटरें ख़रीदी थीं; पर दूसरे साल केवल ५५५ ही ख़रीदीं। सन् १९२३ में ७२२ ख़रीदीं। इँगलैंड की मोटरों की क़ीमत ५०००) के लगभग होती है; पर कनाडा की मोटरें १९३०) रुपए के लगभग मूल्य में ही मिल जाती हैं। मोटर के व्यवसाय में लाभ भी बहुत है। काशी के हिंदू-विश्व-विद्यालय में मोटर बनाने की शिक्षा दी जाती है। फ़ोर्ड नाम से प्रसिद्ध मोटर का सबसे अधिक प्रचार है। इस मोटर को ईजाद करनेवाले महाशय की गणना संसार के कुछ चुने हुए धनिकों में की जाती है। विगत योरपियन महासमर में मोटरों से बड़ा काम निकला है। अब वे सेना का एक महत्त्व-पूर्ण अंग बन गई हैं। भारत में कुछ लोगों ने डाका डालने के काम में भी मोटर का सफलता-पूर्वक उपयोग किया है। रेल और ट्राम-गाड़ियों की अपेक्षा मोटरकार में कुछ विशेष सुविधाएँ भी हैं; पर मोटरों के कारण सड़क बहुत जल्द ख़राब हो जाती है।

× × ×

९. चित्रकूट में दुराचार

चित्रकूट हिंदुओं का एक पवित्र स्थान है। जिस

स्थान को वनवास के समय मर्यादापुरुषोत्तम महाराज रामचंद्र, लक्ष्मण और सती-शिरोमणि जानकीजी ने कुछ दिन रहकर पवित्र किया था, उसी को आज व्यभिचारी पाखंडी कलंकित कर रहे हैं, सो भी पूजनीय संत-महंत बनकर ! हिंदू-जाति के लिये यह बड़ी लज्जा की बात है । चित्रकूट में लगभग ४८ महंत हैं। अभी पत्रों में प्रकाशित हुआ है कि मुरारीदास नाम का एक महंत किसी विधवा युवती को वहाँ ले आया है। कामतानाथ सुधार-समिति (यह समिति ऐसे ही दुष्टों के पाप घटाने और उन्हें सुधारने के लिये बनी है) के मंत्री पं० गोदीन शर्मा और पं० चंद्रकांत मालवीयजी को जब यह ख़बर मिली, तो उन्होंने, कानपूर के तीन यात्रियों के साथ, जाकर लड़की का उद्धार किया। उस समय शाम हो गई थी, लड़की को रखने का कोई उचित प्रबंध नहीं हो सकता था, इसलिये उसे पं० वसंतलाल पंडा के यहाँ रख दिया। दूसरे ही दिन किसी विधवाश्रम में उसे भेजने का निश्चय किया गया था। प्रयाग से आए हुए स्वयंसेवक लक्ष्मीनारायण पर लड़की की रक्षा का भार छोड़ दिया गया था। लक्ष्मीनारायण दूसरे दिन जब भोजन के प्रबंध के लिये चले गए, और पंडाजी के आदमी सो रहे थे, तब मौक़ा पाकर निर्लज्ज मुरारीदास अन्य २-४ महंतों की सहायता से पंडे के घर में घुसकर लड़की को ले गया। उसके साथ लठबंद बदमाश भी थे, इस कारण बेचारे आसपास के लोग कुछ न कर सके। महंत मुरारीदास का कहना है कि चाहे पचास हज़ार रुपए ख़र्च हो जायँ, मैं इस औरत को अपने ही पास रक्खूँगा। ऐसे संत-महंतों को धन देकर स्वर्ग-प्राप्ति की आशा रखनेवाले हिंदू दानी आँखें खोलकर देखें कि उनके दान के धन का कैसा दुरुपयोग हो रहा है ! सुनते हैं, चित्रकूट के मंदिरों और देवालयों को हिंदू-राजों ने लाखों की संपत्ति दे रक्खी है। पन्ना-नरेश ने भी लाख-दो लाख की संपत्ति दे रक्खी है। हमारा आग्रह है कि पन्ना-नरेश, तथा अन्य दाता भी, शीघ्र ऐसे दुराचारी अधिकारियों को वहाँ से निकाल बाहर करने का प्रयत्न करें, जो हिंदुओं के ही धन से उनके पूजनीय स्थानों को कलुषित और प्राण-प्रिय धर्म को कलंकित कर रहे हैं। साधारण धर्म-प्राण हिंदू-जनता और उसके नेताओं से भी हमारी प्रार्थना है कि वे मुरारीदास के चंगुल से उस युवती का उद्धार करने में विलंब न करें। साथ ही अन्य ऐसे दुराचारी फ़क़ीरों या महंतों को भी वहाँ से निकाल बाहर करें। केवल चित्रकूट ही की नहीं, प्रायः सभी तीर्थों और देव-स्थानों की न्यूनाधिक यही स्थिति है। उन्हें कलुषित होने से बचाने का एक देशव्यापी स्थायी संगठन होना चाहिए, जिसकी ओर से कार्यकर्ता लोग सभी तीर्थों और देव-स्थानों की जाँच और पापियों को वहाँ से निकाल बाहर करने का आंदोलन करें। यदि इस कार्य में अब भी ढिलाई की गई, तो दिन-दिन हालत ख़राब ही होती जायगी, और हमारे देव-स्थान, तीर्थ-स्थान नरक बन जायँगे।

× × ×

१०. कृष्ण का अवतार आगाख़ाँ

हिंदू-जाति या तो इतनी भोली-भाली है कि वह अपनी हानि या लाभ नहीं समझती, और या फिर ऐसी काहिल या जड़ हो गई है कि सब समझ-बूझकर भी चुप है, और प्रतिपक्षियों के धर्म की आड़ में होनेवाले आक्रमणों से अपनी रक्षा करने की क्षमता ही उसमें नहीं रह गई है । हसन निज़ामी की स्कीम के अनुसार इधर हज़ारों मुसलमान फ़क़ीर हिंदू-साधुओं का वेष बनाए हमारे बच्चों, बहनों और भोले-भाले भाइयों के शिकार के लिये निकल पड़े हैं । वे अपने में तरह-तरह की करामातें बताकर हिंदुओं पर पहले अपना प्रभाव डालते और पीछे किसी-न-किसी तरह उनकी चोटी पर हाथ साफ़ करते हैं । अभी उस दिन हमें बाराबंकी में एक ऐसे ही हज़रत देख पड़े । हाल ही में आप वहाँ पहुँचे हैं, अपने को संन्यासी बताते हैं । आप तरह-तरह के रोग और अंगों में होनेवाला दर्द बात-की-बात में दूर कर देने का दावा करते हैं । भोले हिंदुओं की भीड़ भी कम नहीं रहती । एकांत में मिलकर हमने पूछा—आप संन्यासी हैं, तो किस संप्रदाय के ? किस संन्यासी के चेले हैं ? आपने वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि का अध्ययन कहाँ तक किया है ? संन्यासी महाराज चुप ! जो कुछ उत्तर भी दिया, वह अनाप-शनाप उर्दू-मिश्रित भाषा में । संस्कृत के शब्द भला आपके मुँह से कैसे निकल सकते थे । हम सब समझ गए । हमने उनसे कह दिया कि आप इस कुकार्य को छोड़ दीजिए, अन्यथा ये ही लोग, जो आज आपको पूजते हैं, कल भंडा-फोड़

होने पर दूसरी तरह की पूजा करने लगेंगे । ये बातें इतने विस्तार से लिखने का प्रयोजन यह है कि सरल-विश्वासी हिंदुओं को सब कुचक्र मालूम हो जाय, और ऐसे बने हुए हिंदू-वेषधारी मुसलमानों से अपने परिवार की रक्षा कर सकें । ख़ैर, यह तो अभी नया उद्योग है, और प्रच्छन्न आक्रमण है ; किंतु हमारे अधिकांश भाइयों को न मालूम होगा कि बहुत दिनों से खुलासा एक मुसलमान के चेले-चापड़, उसे हमारा ही एक अवतार बताकर, अपने भाइयों को मुसलमान बना रहे हैं । यह सब काम गुजरात में हो रहा है । हज़रत आग़ाख़ाँ का नाम सभी पढ़े-लिखे हिंदू जानते हैं । आप सुशिक्षित हैं, ख़ानदानी हैं, अक्सर विलायत में रहते हैं, लखपती हैं, आपके घोड़े विलायत की घुड़दौड़ों में दौड़ते हैं, और सबसे बड़ा परिचय आपका यह है कि लोगों का अनुमान है, मिस्टर मोहम्मद-अली की मारफ़त अछूत हिंदुओं को आधा-आधा बाँट लेने का प्रस्ताव शायद आप ही ने हिंदुओं के आगे उपस्थित किया था । ख़ाँ साहब खोजों के आचार्य हैं । ये खोजे बड़े-बड़े व्यापारी और लखपती हैं । इनसे अच्छी रक़म ख़ाँ साहब को मिला करती है । आपका मत आग़ाख़ानी मत कहलाता है । गुजरात में जगह-जगह आग़ाख़ानियों के अड्डे बन गए हैं, जिनका उद्देश्य एक-मात्र यही है कि हिंदुओं को जिस तरह हो, मुसलमान बनाया जाय । ईसाइयों की मुक्ति-फ़ौज के ढंग पर ये लोग भी मित्र बनकर वार करते हैं । शत्रु बनकर वार करनेवाले से मित्र बनकर चोट करनेवाला कहीं अधिक भयंकर होता है । कारण, शत्रु से सावधान रह सकते हैं, मित्र से नहीं । इन आग़ाख़ानियों ने अनाथालय, पाठशालाएँ, अस्पताल और आश्रम स्थापित कर दिए हैं । इनके कुछ बैंक भी हैं । उनसे हिंदू भी क़र्ज़ ले सकते हैं । ऋण से दबा हुआ हिंदू सहज ही इनके चंगुल में फँस जाता है । बंबई में इस समुदाय का एक प्रेस भी है, जिसका नाम है 'दि खोजा सिंधी प्रिंटिंग प्रेस'। इस प्रेस से ऐसी पुस्तकें, पंफ़्लेट, ट्रैक्ट आदि प्रकाशित होते रहते हैं, जिनमें हिंदुओं की पुस्तकों का मनमाना अर्थ करके उन्हीं से हज़रत आग़ाख़ाँ को कृष्ण का 'निष्कलंक'-अवतार सिद्ध किया जाता है । पं० ललिता-प्रसादजी मिश्र ने हाल में श्रीवेंकटेश्वर-समाचार और अभ्युदय आदि में इस लीला का भंडाफोड़ किया है। मिश्रजी के पास इस मत की ४० पुस्तकें हैं, जो सब गुजराती-भाषा में छपी हैं । उनके नाम वैदिक इस्लाम, निष्कलंकी गीता, अल्लोपनिषद्, निष्कलंक शास्त्र, इस्लामी चाबुक, सरताज हाज़िर इमाम आदि-आदि रक्खे गए हैं, जो कि हिंदुओं को भ्रम में डालनेवाले हैं । वैदिक इस्लाम में लिखा है—"पृथ्वी का भार उतारने व धर्म की रक्षा को मियाँसाहब ने गो......खाते हुए श्रीकृष्ण-अवतार के रूप में जन्म लिया ।" इस नीचता और निर्लज्जता की भी कोई हद है ! हज़रत आग़ाख़ाँ सुशिक्षित होकर भी इस अन्याय का प्रतिवाद नहीं करते, इससे जान पड़ता है, यह सब कुचक्र आपकी अनुमति से रचा गया है । हिंदुओं की गायत्री तक को नहीं छोड़ा । गायत्री लिखकर नीचे उसका अर्थ बतलाया गया है—"हाज़िर इस्लाम आग़ाख़ाँ की यह स्तुति है ।" निष्कलंकी गीता में आग़ाख़ाँ को ईश्वर मानकर उनको पूजने का उपदेश दिया गया है, और ओंकार लिखकर उसे अल्लाह बताया है । इस संप्रदाय की सभी पुस्तकों में ब्राह्मणों की, हिंदू धर्म की और हिंदू-देवतों की निंदा और आग़ाख़ाँ की प्रशंसा है । हम मानते हैं कि आग़ाख़ाँ क्या, एक भंगी को भी ईश्वरावतार मानने के लिये प्रत्येक मनुष्य स्वतंत्र है ; किंतु किसी दूसरे धर्म की आड़ में उसी धर्म पर हमला करने का किसी को अधिकार नहीं हो सकता। यह सरासर नीचता और अन्याय है । यदि हिंदू-जाति आज इतनी दीन-हीन न हो गई होती, तो ऐसी नीचता करने का साहस किसे होता ? हम सर्व-साधारण हिंदू भाइयों से—ख़ासकर गुजरात के धर्म-प्राण हिंदुओं से—अनुरोध करते हैं कि वे इस जाल को छिन्न-भिन्न कर उसका असली रूप प्रकट करने का प्रबल प्रयत्न शुरू कर दें । जो भाई इस जाल में फँस चुके हैं, उनके उद्धार का प्रयत्न किया जाय । ज़ोर-शोर से प्रचार-कार्य करके हिंदुओं को सावधान किया जाय, जिसमें आइंदा कोई इस जाल में अपना गला न फँसाने पावे । गुजरात में हिंदू धनियों की कमी नहीं है । उन्हें चाहिए कि इस संप्रदाय की भ्रामक पुस्तकों का खंडन छपाकर हिंदुओं में मुफ़्त बाँटने का प्रबंध करें । हिंदुओं द्वारा संचालित गुजराती पत्रों का कर्तव्य है कि वे इस मत के विरुद्ध ज़ोरदार आंदोलन करके इसकी असलियत ज़ाहिर कर दें ।

समाज से हमारी ख़ास तौर पर यह अपील है कि वह इस आसुरी मायाजाल से हिंदू-धर्म की रक्षा करने के लिये तत्परता के साथ अग्रसर हो। यह विषय उपेक्षणीय नहीं है; यह समय सोने का नहीं है। चालाक लोग हमारे घर में सेंध लगाकर, हमारे ही भाइयों को फोड़कर, उनके द्वारा हमारी संपत्ति, हमारा सर्वस्व—धन और धर्म—लूट रहे हैं! अब आत्मरक्षा में लग जाने का ही समय है। अन्यथा हिंदू-जाति, हिंदू-धर्म और हिंदुओं का गौरव कुछ ही समय में नामशेष रह जायगा। हज़रत हसन निज़ामी के आक्रमण का प्रतिरोध भी होना चाहिए। हिंदू-महासभा और हिंदू-संगठन के हामी कहाँ हैं?

× × ×

११. मिलों के देशी कपड़े का रोजगार

इधर खद्दर का प्रचार दिन-दिन घटता ही नज़र आता है, और उधर विदेशी कपड़े की भरमार होती जाती है। लंकाशायर और मंचेस्टर की मिलें दूने ज़ोर से चलने लगी हैं। देशद्रोही व्यापारी दनादन विलायती कपड़े के ऑर्डर भेज रहे हैं। विदेशी वस्त्र-व्यवसायियों की बाछें खिल उठी हैं। किंतु भारत में जो देशी कपड़ा बनानेवाली मिलें हैं, उनकी दशा दिन-दिन चिंताजनक हो रही है। उसके दिग्दर्शन के लिये कुछ अंक पेश किए जाते हैं। सन् १९२२ के फ़रवरी-मास में ब्रिटिश भारत की मिलों में ४,३२,८३,४४२ रुपए का कपड़ा देशी मिलों ने बनाया था; परंतु सन् १९२३ के फ़रवरी में २,९६,५०,२२८ रुपए का ही कपड़ा तैयार किया गया। कारण यही था कि बाज़ार में माल की माँग ही न थी, और तैयार माल स्टॉक में भरा पड़ा था। सन् १९२१-२२ में, एप्रिल से फ़रवरी तक, ग्यारह महीने में ५३,२४,४६,००३ रुपए का कपड़ा तैयार हुआ था; किंतु १९२३-२४ के इन्हीं ग्यारह महीनों में केवल ४६,६६,०६,४९१ रुपए का ही कपड़ा बना। सिर्फ़ क़ीमत में ही कमी नहीं हुई, तादाद में भी कमी हुई है। सन् १९२२ के फ़रवरी में १२,१६,१८,४५५ गज़ कपड़ा बना था; मगर सन् १९२४ के फ़रवरी में ९,४४,५८,१२७ गज़ ही बनाया गया। ये अंक स्पष्ट सूचित कर रहे हैं कि विदेशी वस्त्र की प्रतियोगिता स्वदेशी वस्त्र नहीं कर पाता। विदेशी वस्त्र-व्यवसाय, सरकार से मिली हुई सुविधा के कारण, स्वदेशी वस्त्र-व्यवसाय का गला घोट रहा है। सरकार ने देशी कपड़े पर जो कर लगा रक्खा है, उसे उठा देना ही इस समय उसका कर्तव्य है। उक्त कर से होनेवाली सरकार की आमदनी भी दिन-दिन घटती चली जा रही है। सन् २२ के फ़रवरी में इस कर से १७, ६१,०००) रुपए मिले थे; मगर गत फ़रवरी में केवल ९,३०,०००) रुपए ही वसूल हो सके। गत सन् १९२१-२२ के ग्यारह महीनों में दो करोड़ रुपए से भी अधिक कर वसूल हुआ था; लेकिन सन् १९२३-२४ के उन्हीं ग्यारह महीनों में १ करोड़ ३१ लाख ही मिले। अगर सरकार स्वदेशी वस्त्रों पर से कर उठा दे, और मिलों के मालिक भी माक़िक़ मुनाफ़ा लेकर माल की निकासी करने की बुद्धिमानी स्वीकार करें, तभी स्वदेशी वस्त्र-व्यवसाय की रक्षा हो सकती है, अन्यथा फिर विलायती वस्त्रों से भारत के सब बाज़ार पट जायँगे, और देश-भक्तों का किया-कराया सब चौपट हो जायगा।

× × ×

१२. कुछ जानने योग्य बातें

१—अभी हाल में विलायत के एक वृद्ध सज्जन का शतवार्षिक जन्म-उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया है। उनकी स्त्री की अवस्था ९९ वर्ष की है, और स्वयं उनकी पूरे १०० वर्ष की! इतनी अवस्था का पुरुष या स्त्री और कोई इस समय विलायत में नहीं है। इनका ब्याह हुए ६३ वर्ष हो गए। इनके दो लड़कों की अवस्था क्रमशः ६० और ६२ वर्ष की है। एक कन्या भी ५८ वर्ष की है।

२—प्रेटोरियो-राज्य की सरकार ने ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी में एक बहुत बड़ा चाँदी का पत्तर भेजा है। इतना बड़ा चाँदी का पत्तर ब्रिटिश-साम्राज्य के अंतर्गत किसी भी चाँदी की खान से कभी नहीं निकला। यह लंबाई में ३ फ़ीट, चौड़ाई में २ फ़ीट और ऊँचाई में भी ३ फ़ीट है। पत्तर में २,४११ औंस चाँदी है। इस पत्तर का मूल्य ३,००० पौंड निश्चित हुआ है। यह पत्तर उत्तर-प्रेटोरियो-राज्य की एक चाँदी की खान से निकाला गया है।

३—युराल-पर्वत और ओघाटास्क-सागर के बीच में एक बड़ा जंगल है। पृथ्वी के प्रधान और दुर्गम जंगलों

में इसकी भी गणना की जाती है। विचित्रता यह है कि इसका तल-देश सदैव बर्फ़ से ढका रहता है।

४—ज़ूलूलैंड की आब-हवा इतनी निर्मल है कि वहाँ ख़ाली आँखों से ७ मील दूर की चीज़ स्पष्ट देख पड़ती है।

५—लाल-सागर के १ टन जल में १८७ पौंड नमक रहता है। प्रशांत-महासागर के इतने ही जल में केवल ८१ पौंड नमक है।

६—वायस्कोप के लिये हृत्पिंड का चित्र लेने के वास्ते एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने एक नए ढंग के यंत्र का आविष्कार किया है।

७—बालीविया के एक ज़मींदार अपनी ज़मींदारी के अंतर्गत एक ज्वालामुखी-पहाड़ किराए पर उठाना चाहते हैं। इस आग्नेय गिरि के अग्न्युत्पात की सहायता से स्टीम और इलेक्ट्रिक कल-कब्ज़े चलाने की विशेष व्यवस्था है।

८—लंदन-शहर के प्रत्येक १६ नर-नारियों के व्यवहार के लिये १ टेलिफ़ोन का औसत पड़ता है। इसी हिसाब से काडिफ़ में प्रत्येक २२ आदमियों में और हाल-नगर में प्रत्येक २३ आदमियों में १ टेलीफ़ोन का व्यवहार होता है। गार्नेस-नगर में प्रत्येक बार टेलीफ़ोन का व्यवहार करने की फ़ीस एक पेनी के हिसाब से देनी पड़ती है। टर्फ़-नगर में ६ पौंड १५ शिलिंग जमा कर देने से ३,२०० बार विना महसूल के टेलीफ़ोन का इस्तेमाल किया जा सकता है। उसके बाद हर चार बार व्यवहार करने की दर १ पेनी है। (शिशिर)

९—अमेरिका में नित्य तीस लाख रुपए के मूल्य के पाँच करोड़ डाक के टिकट ख़र्च होते हैं। इन टिकटों के बनाने में तीन हज़ार पौंड काग़ज़ और बाईस सौ पौंड स्याही सर्फ़ होती है।

१०—रूस के एक वैज्ञानिक ने सेंधा नमक से ऐसा तार बनाया है, जो फ़ौलादी तार से भी मज़बूत है।

११—योरप में एक ऐसी मशीन बनी है, जिससे यह बताया जा सकता है कि एक बार उँगली रगड़ने से रुपया कितना घिसता है।

१२—जापान के भयानक भूकंप के बाद से वैज्ञानिक लोग एक नए प्रकार का भूकंप-सूचक यंत्र बनाने की कोशिश में लगे हुए हैं। इस समय जो भूकंप-सूचक यंत्र प्रचलित हैं, उनसे केवल इतना ही जाना जा सकता है कि भूकंप कहाँ हुआ। किंतु भविष्य में ऐसा यंत्र बनाने की चेष्टा चल रही है कि कहाँ और कितनी दूर पर भूकंप होगा, यह पहले ही से मालूम हो जाय। आशा है, शीघ्र ही इस ढंग का नया यंत्र तैयार हो जायगा। वैज्ञानिक उपाय से भूकंप के जानने का कौशल बहुत प्राचीन है। ईसा के जन्म के पहले भी जब रोमन लोग ब्रिटन-विजय करने में लगे थे, तब चीन में भूकंप जानने के लिये एक प्रकार के वैज्ञानिक उपाय से काम लिया जाता था।

१३—भारत में गो-रक्षकों की संख्या इस प्रकार है—हिंदू २१,६७,३४,५८६ ; जैनी १,१५,७१,२३८ ; सिख ११,७०,५९६ ; पारसी १,०१,७७८। गो-भक्षकों की संख्या इस प्रकार है—मुसलमान ६,६७,२५,३३० ईसाई ४,७५,४०६ ; यहूदी २१,७७८। गो-रक्षक कुल हैं—२२,९५,७८,१९८ ; और गो-भक्षक कुल हैं—७२,२२,५१४।

(वें० स०)

१४—अमेरिका के एक अजायबघर में १,१०,००,००० वर्ष के पुराने कुछ पक्षियों के अंडे रक्खे हैं। उनमें से हाल में एक अंडा १०,००० पौंड का बिका है।

१५—लंदन-शहर में नित्य प्रायः तीन लाख आदमी ५ मील तक, पाँच लाख आदमी १० मील तक और पचास हज़ार आदमी २० मील तक घोड़े की सवारी पर घूमते हैं।

१६—प्रकाश और टेलीग्राफ़ में वार्ताप्रवाह की गति १ सेकिंड में १,८६,००० मील के हिसाब से होती है।

१७—गत १९२३ सन् में अमेरिका के संयुक्त राष्ट्रों में ४०० लाख पौंड, वहाँ के युक्तप्रांत में ९५ लाख पौंड और आस्ट्रेलिया में ५० लाख पौंड एवं कनाड़ा में लाख पौंड चाय ख़र्च हुई थी।

१८—पृथ्वी पर रहनेवाले मनुष्यों की संख्या मिलाकर १,८४,९५,००,००० है।

१९—इँगलैंड में टेलीग्राफ़-लाइनों की संख्या लगभग १०,००० के है। इनमें से १,२०० लाइनें लंदन के हेड टेलीग्राफ़ ऑफ़िस से संयुक्त हैं।

२०—हाल में एक नए प्रकार का शीशा तैयार

गया है। उस पर आठ फ़ीट ऊँचे से एक लोहे का गेंद फेंकने से भी वह नहीं टूटता।

२१—लंदन और अमेरिका के वकील शतरंज की एक बाज़ी चार बरस से खेल रहे थे। वह अब जाकर ख़तम हुई है।

२२—ममाखी के जीवन के संबंध में अभिज्ञ एक आदमी का कहना है कि एक पौंड शहद इकट्ठा करने में एक ममाखी को प्रायः २७,४०,००० फूलों पर जाना पड़ता है।

२३—लंदन के हाउस ऑफ़ कामंस के मेंबरों को अपने कर्तव्य-पालन के लिये बहुत शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है। एक नमूना लीजिए। इस सभा के मेंबर कुल ६१५ हैं। प्रत्येक सभ्य को अपने सहयोगी सभ्यों के पूरे नाम याद रखने पड़ते हैं, और उन्हें पहचान रखने की भी आवश्यकता होती है। कारण, बोलते समय अक्सर भिन्न-भिन्न सभ्यों को नाम लेकर संबोधन करना पड़ता है। पार्लियामेंट की उक्त सभा में भिन्न-भिन्न देशों के और भिन्न-भिन्न श्रेणी के सभ्य होते हैं। उनके नामों के उच्चारण भी भिन्न-भिन्न देशों के अनुसार होते हैं। मतलब यह कि उनके नाम याद रखना और पहचानना साधारण धारणा-शक्ति का काम नहीं है। इसके लिये पार्लियामेंट में एक अलबम टँगा रहता है, जिसमें प्रत्येक सभ्य का चित्र और नाम रहता है। अलबम बोलने के प्लेटफ़ार्म पर सामने ही रहता है। साधारणतः सब सभ्य अन्य सभ्यों को पहचाने रहते हैं। हाँ, अगर कभी अपरिचित नए सभ्य का सामना पड़ा, तो उक्त अलबम से काम लिया जाता है।

२४—विलायत की १९२२ की मनुष्य-गणना से मालूम होता है, वहाँ मर्दों की अपेक्षा स्त्रियाँ २० लाख के लगभग अधिक हैं। कहीं-कहीं तो स्त्रियों की संख्या दूनी के लगभग है। डिवनशायर के अंतर्गत फ़िटन-नामक स्थान में मर्द तो ८४४, मगर स्त्रियाँ १,४५१ हैं। बेक्सहिल में मर्द ७,५१० ही हैं, परंतु स्त्रियाँ १२,८५३ हैं! किंतु कहीं-कहीं इसके विपरीत भी हैं। टिलबेरी में ५,९५६ मर्द हैं, और स्त्रियाँ केवल २,६५१ ही। कैंट के चेरिटन-नामक स्थान में ४,२६० मर्द और २,७३४ स्त्रियाँ हैं। ससेक्स में एक हज़ार मर्दों के हिस्से में १,२७४ स्त्रियों का औसत पड़ता है।

× × ×

१३. पृथ्वी-परिक्रमा

इधर समाचारपत्रों में पाठकों ने फ़्रांस, अमेरिका और पुर्तगाल के उड़ाकों के विमान द्वारा पृथ्वी-पर्यटन की ख़बरें पढ़ी होंगी। ३८½ घंटे में पेरिस से भारत में आकर एक फ्रेंच उड़ाके ने लोगों को चकित कर दिया है। विज्ञान की क्रमोन्नति ने महीनों की राह घंटों में तय करना सहज-साध्य कर दिया है। इन दिनों मि० मैकलरेन और मि० मार्टिन आदि उड़ाके इस विमान द्वारा पृथ्वी-पर्यटन करनेवाले समुदाय के अग्रणी हैं। इनके विमान सर्वश्रेष्ठ हैं, और ये भी उड़ने की कलाओं में सबसे निपुण और साहसी समझे जाते हैं। जितने दिनों में ये संपूर्ण पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर सकेंगे, वही पृथ्वी-पर्यटन का सबसे कम समय माना जायगा। हाँ, जब और कोई उड़ाका इनसे अच्छे विमान और साधन प्राप्त कर और भी कम समय में पृथ्वी-पर्यटन कर दिखावेगा, तो वह इनसे भी बाज़ी मार ले जायगा। किंतु मि० मार्टिन का इस समय कोई पता नहीं है। अपने विमान के साथ वह न-जानें किस विपत्ति में पड़ गए हैं। आज-कल विज्ञान की पूर्ण उन्नति का युग है। इस समय पृथ्वी-प्रदक्षिणा करने का मुख्य वाहन और सहज साधन विमान ही है। किंतु विमान तो अभी कल बने हैं, और पृथ्वी-पर्यटन का शौक़ बहुत पुराना है। विमान-युग के पहले पृथ्वी-पर्यटन करनेवाले रेलगाड़ी पर ही सफ़र करते थे। बीच-बीच में स्टीमर पर भी उन्हें चढ़ना पड़ता था। इस युग के भी पहले ड्रेक, कुक, वास्कोडि-गामा आदि ने बड़ी नावों के द्वारा ही पृथ्वी-पर्यटन की चेष्टा की थी। इन सब इतिहास-प्रसिद्ध नाविकों के पहले पृथ्वी-पर्यटन की चेष्टा केवल अपने पैरों के भरोसे की जाती थी, और ऐसी चेष्टा करनेवाले आजकल के विमान-वीरों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रशंसा के पात्र हैं, इसमें संदेह नहीं। इस युग में भी समय-समय पर एक आध साहसी पर्यटक पैदल ही पृथ्वी-परिक्रमा करने निकलता है। भारत में एक बंगाली युवक—परागरंजन दे—बंगाल से पेशावर तक पैदल यात्रा कर रहा है। अँगरेज़ी-भाषा में एक उपन्यास है—Round the world in

Eighty days—अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा। लेखक ने कल्पना-शक्ति के द्वारा नायक को ८० दिन में पृथ्वी-भर की परिक्रमा करा दी है। यह पुस्तक जिस समय प्रकाशित हुई थी, तब तक इतने दिन में सारी पृथ्वी का पर्यटन असंभव और केवल कपोल-कल्पना माना जाता था। किंतु उन दिनों कल्पना भी जिसको असंभव समझी जाती थी, वही क्रमशः प्रत्यक्ष-सिद्ध होने लगा। ८० दिन तो बहुत थे, ऐंडर जेगर स्मिथ (Ander Jaeger Schmidt) नाम के एक सज्जन ३६ दिन, २४ मिनिट और कई सेकिंडों में ही पृथ्वी-परिक्रमा कर आए। किंतु सन् १६१३ में उनसे भी कम समय में जे० एच्० मेयर्स (J. H. Meares)-नामक एक अमेरिकन सज्जन ने पृथ्वी-पर्यटन कर दिखाया। ३५ दिन, २१ घंटे, ३५ मिनिट और ४/५ सेकिंड इनकी पृथ्वी-परिक्रमा में लगे। मिस्टर मेयर्स ने एक अमेरिकन समाचार-पत्र की सहायता से पृथ्वी-पर्यटन किया था। उन्हें पृथ्वी-पर्यटन के लिये ३५ दिन, २३ घंटे, ३० मिनिट का समय दिया गया था। २ जुलाई, सन् १६१३ को वह न्यूयार्क से पेरिस की ओर रवाना हुए थे। पेरिस से Trans Siberian-रेल पर चढ़कर यात्रा की। बीच में बहिया के कारण उन्हें ट्रेन पर ही १८ घंटे रुकना पड़ा। इस समय की पूर्ति के लिये, पूरी स्पीड से चलने के वास्ते, उन्होंने एंजिन चलानेवाले को काफ़ी रक़म घूस दी थी। ऐसा न करते, तो निर्दिष्ट समय पर पहुँचना असंभव हो जाता। इस व्यवस्था से भी वह केवल ६ घंटे की घटी पूरी कर सके। मि० मेयर्स अंत को २१,०६६ मील यात्रा करके, निश्चित समय से दो घंटे पहले ही, ६ अगस्त को न्यूयार्क लौट आए। औसत हिसाब से उन्होंने रोज़ाना ५८७ मील की यात्रा की थी। इस यात्रा में उनके २५२०) रुपए ख़र्च हुए थे। मि० मेयर्स के पहले, सन् १८८६ में, चार्ल्स किजमोरिए नाम का एक स्कूली विद्यार्थी, एक अमेरिकन अख़बार के दिए हुए पुरस्कार को प्राप्त करने के लिये, ६० दिन १३½ घंटे में पृथ्वी-परिभ्रमण कर चुका था। इसके पहले इतने कम समय में कोई यह कार्य नहीं कर सका था। नेली ब्लाई नाम की एक महिला (यह एक समाचार-पत्र का संपादन करती थी) ने भी इसी वर्ष ७२ दिन में पृथ्वी-परिक्रमा की थी। इतिहास के अनुसार सन् १५१६-२२ ईसवी में मि० मैगलन ने ही सबसे पहले पृथ्वी-प्रदक्षिणा की थी। मग उसे इस कार्य में तीन वर्ष लगे थे। बहुत लोगों का ख़याल है कि सन् १६१३ में जब मि० मेयर्स ३६ दि के लगभग समय में पृथ्वी-प्रदक्षिणा कर सके थे, तब अब ११ वर्ष के उपरांत, इस विज्ञान की पूर्ण उन्नति के युग में, अवश्य ही इससे कहीं कम समय में पृथ्वी प्रदक्षिणा की जा सकती है। पर साधारण हिसाब से तो इस समय पहले की अपेक्षा अधिक ही समय लगना चाहिए। कारण, उस समय के पर्यटकों को Trans Siberian-रेल की सहायता नहीं मिल सकती। इस समय रूस की आंतरिक गड़बड़ के कारण यह रेल-लाइन बंद है। अतएव इस समय के पर्यटकों को पहले के पर्यटकों की तरह भूमध्य-सागर, स्वेज़-सागर, भारत महासागर और चीन होकर यात्रा करनी पड़ेगी, और इसी में कम-से-कम ५४ दिन लग जायँगे। आजकल की यात्रा का साधारण हिसाब इस प्रकार होगा— न्यूयार्क से किसी तेज़ चलनेवाले जहाज़ को लंदन तक पहुँचने में ६ दिन लगेंगे। लंदन से पेरिस और वहाँ से मार्सेल्स की यात्रा में, हवाई जहाज़ से, १ दिन लगेगा। वहाँ से पी० ऐंड ओ०-कंपनी के मेल-जहाज़ से हांगकांग २६ दिन में पहुँचेंगे। वहाँ से ५ दिन में याकोहामा और ६ दिन में बैंकोवर पहुँचेंगे। बैंकोवर से ट्रेन पर सवार होकर ४ दिन में न्यूयार्क पहुँचेंगे। मगर वर्तमान विमान-युग में यह जाँच हो रही है कि विमान पर बैठकर कितने समय में पृथ्वी की प्रदक्षिणा की जा सकती है। कुछ दिन पहले हिसाब लगाया गया था कि अगर ऐसा कोई विमान तैयार किया जाय, जो रास्ते में कहीं न रुककर बराबर १५ दिन उड़ता रहे, तो केवल १ दिन में ही सारी पृथ्वी की प्रदक्षिणा की जा सकती है। किंतु ऐसा विमान कहीं भी न होने के कारण इस विषय के जानकारों की राय है कि विमान द्वारा पृथ्वी के चारों ओर घूम आने में कुल ३ महीने लगेंगे। सर रॉज़ स्मिथ साहब ऐसा हिसाब लगाकर परिक्रमा करनेवाले थे, पर उनकी अचानक मृत्यु हो गई। अब यह काम कितने दिन में हो सकता है, यह कप्तान ओ' डेसी आदि की यात्रा से बहुत शीघ्र मालूम हो जायगा। हाँ, अमेरिका के एक कप्तान वांडरवेल (Wanderwell) एक फ़ोर्ड मोटर पर चढ़कर पृथ्वी-प्रदक्षिणा के इरादे से, चा

महाद्वीपों में होते हुए १,९३,००० मील तय करके गत १९ मई को करांची पहुँचे थे। उनके साथ उनकी बहन, एक फ़ोटोग्राफ़र और एक मिस्त्री भी है। देखें, इनकी यात्रा में कितना समय लगता है।

× × ×

१४. अरब में गो-वध नहीं होता

भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच शत्रुता या मनोमालिन्य का मुख्य कारण गो-वध है। यहाँ के मुसलमान गो-वध को अपने धर्म का एक अंग बतलाते हैं। पर उनका यह कथन ठीक नहीं है, और इस बात को वे भी जानते हैं। अँगरेज़ों और मुसलमानों में गो-हत्या होने का कारण एक ही है, अर्थात् दोनों खाद्य के रूप में उसका उपयोग करते हैं। अमीर काबुल ने भारत आने पर यहाँ के मुसलमानों से गो-वध न करने के लिये अपील की थी, और संभवतः काबुल में गो-वध नहीं होता। कुछ दिन हुए, अभ्युदय में पं० देवीदत्त द्विवेदी का एक पत्र छपा था, जिससे मालूम होता है कि ख़ास अरब में भी गो-वध नहीं होता। द्विवेदीजी लिखते हैं कि प्रयाग-स्टेशन पर उनकी एक डॉक्टर से बातचीत हुई, जो अरब से आए थे। द्विवेदीजी ने उनसे अरब के मुसलमानों के धार्मिक कट्टरपन और गो-वध आदि के बारे में पूछ-ताछ की। उक्त अरबी सज्जन ने उत्तर में कहा—"अरब में अब पहले की-सी जिहालत नहीं है। वहाँ केवल बद्दू-जाति ही लूट-मार और कुलीगीरी करती है। पर वह जाति न हिंदू है, न मुसलमान। उन लोगों ने मक्के शरीफ़ जाने-वाले एक मुसलमानों के दल को ही बहुत हैरान किया, और फ़ी आदमी २०) रु० लेकर जान छोड़ी। और गोहत्या? तोबा-तोबा! ऐसा तो वहाँ हर्गिज़ नहीं होता। कुर्बानी गाय की नहीं, बल्कि ऊँट, भेंड़ या बकरी की ही की जाती है। क्या यहाँ के मुसलमान दीनदार नहीं हैं, जो गाय को मारते और अपने हमवतनों का दिल दुखाते हैं? अब ज़माना मिलकर काम करने का है। मज़हबी कट्टरपन से मुल्क की बेहतरी रुकती है। इसीलिये तो तुर्कों ने ख़िलाफ़त का ख़ातमा कर डाला है। मज़हबी कट्टरपन छोड़ देने से ही तुम्हारा मुल्क आज़ाद होगा।" ये वाक्य हैं एक धर्मभीरु सच्चे मुसलमान के। इन पर टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है। हमारे भारत-निवासी मुसलमान भाई अगर शांत चित्त से देश की भलाई पर विचार करें, और गो-वध का दुराग्रह छोड़ दें, तो बहुत शीघ्र देश का उद्धार हो जाय। गो-वध से दोनों ही जातियों की हानि है। परंतु हमारे मुसलमान भाई न-जाने क्यों इस पर ध्यान नहीं देते। देखें, ईश्वर कब इन्हें सुमति देते हैं।

× × ×

१५. विलायत का नए वर्ष का बजट

गत ३० एप्रिल को विलायती पार्लियामेंट की कामंस-सभा में मज़दूर-दल के अर्थ-सचिव मि० स्नोडेन ने नए वर्ष का बजट उपस्थित किया, और लिबरलों के साथ ही कंज़र्वेटिवों ने भी उसका समर्थन किया। मज़दूर-दल के शासन-काल का यह पहला बजट होने के कारण इसका महत्त्व अधिक था। अर्थ-सचिव ने बजट पेश करते समय कहा—इस वर्ष अनुमान से १,२४२ करोड़ रुपए राजस्व में प्राप्त होंगे, और ख़र्च १,१८५ करोड़ का अंदाज़ा गया है। इस प्रकार ख़र्च निकालकर ४७ करोड़ रुपए की बचत का अनुमान किया जाता है। मैं इस बचत के रुपए के अनुसार प्रजा के ऊपर से कुछ टैक्स घटा देना चाहता हूँ। मसलन चीनी का टैक्स घटा-कर फ़ी पौंड १ शिलिंग ¾ पेंस कर दिया जायगा। चाय पर फ़ी पौंड ८ पेंस टैक्स था। वह आधा घटा दिया जायगा। सूखे फलों पर जो टैक्स था, वह पहली अगस्त से बिलकुल उठा दिया जायगा। खनिज जल पर अब टैक्स नहीं रहेगा। थिएटर, बायस्कोप आदि का टैक्स भी बहुत कुछ घटा दिया जायगा। इसके अलावा अर्थ-सचिव ने यह भी कहा कि सन् १९१५ में उस समय के अर्थ-सचिव मि० मेकेन्ना ने मोटरगाड़ी, बाय-स्कोप के फ़ीते और घड़ी आदि पर जो आयात-शुल्क लगा दिया था, वह भी १ अगस्त से उठा दिया जायगा। उन्होंने यह भी कहा कि इस समय बाहरी क़र्ज़ हम पर केवल अमेरिका का है। हमने भी और लोगों को युद्ध के समय ऋण दिया है। उन लोगों से सूद की रक़म मिलने पर हम और भी टैक्स कम कर सकेंगे। हमने गत ४ वर्षों में ६,९०० करोड़ पौंड क़र्ज़ अदा कर दिया है। इसके उपरांत लिबरलों के नेता मि० ऐस्क्विथ ने बजट का समर्थन किया। कंज़र्वेटिवों की ओर से भूत-पूर्व अर्थ-सचिव सर राबर्ट हार्न ने समर्थन के साथ ही कहा कि मज़दूर-सरकार ने जैसा अच्छा बजट उपस्थित किया है, वैसा ही लिबरलों या कंज़र्वेटिवों की सरकार भी

उपस्थित करती। पाठकों को विलायत के बजट से भारत के बजट की तुलना करके देखना चाहिए—कितना अंतर है! वहाँ कुछ भी बचत होते ही ग़रीबों की सुविधा पर ध्यान दिया जाता है; पर यहाँ हर साल क़र्ज़-पर-क़र्ज़ लेकर शासन का ख़र्च बढ़ाया जाता और कर-पर-कर लगाने का मौक़ा ढूँढ़ा जाता है। उस पर सोने में सुहागा ली-कमीशन की सिफ़ारिशें उपस्थित हैं। अब १$\frac{१}{४}$ करोड़ के लगभग और ख़र्च, सिविलियनों की सुविधा के लिये, अवश्यमेव बढ़ाया जायगा, फिर चाहे नए कर से ग़रीब प्रजा का गला ही क्यों न घुट जाय। स्वतंत्रता और पर-तंत्रता के ये दोनों उज्ज्वल चित्र हैं।

× × ×

१९. भारत की भिन्न-भिन्न जातियों में पढ़े-लिखे

गत सन् १९२१ की मनुष्य-गणना की रिपोर्ट में यह दिखलाया गया है कि औसत हिसाब से भारत के प्रत्येक प्रांत और रियासत में, हज़ार पीछे, कितने आदमी पढ़े-लिखे हैं। यह हिसाब मनोरंजक और ज्ञानवर्द्धक होने के कारण यहाँ उद्धृत किया जाता है। मदरास, मैसूर, हैदराबाद, उड़ीसा, बंगाल, मदरास आदि में कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं, जिनके नाम भी पाठकों ने न सुने होंगे। उनका हिसाब अनावश्यक समझकर और विस्तार-भय से छोड़ दिया गया है—

यू० पी०

जाति	मर्द	औरत
कायस्थ	५२३	९०
बनिया (अग्रवाल)	३९८	४९
सैयद	२१०	३८
ब्राह्मण	१९१	१३
राजपूत	११४	१२
जाट	५१	२
जुलाहा	३०	३
बढ़ई	२७	२
कुर्मी	३०	१
तेली	२२	०
लुहार	२०	१
गूजर	१९	१
नाई	१७	२
लोध	१३	१
अहीर	१२	०
डोम	१२	०
कहार	१७	१
मल्लाह	१०	०
गड़रिए	६	०
कुम्हार	६	०
भंगी	५	०
भड़	४	०
धोबी	३	०
पासी	३	०
चमार	२	०

[इस प्रांत की खत्री, भुइँहार, कलवार, हलवाई, लुनिए, कोरी, भाट, तमोली, बारी आदि जातियों का कुछ भी हिसाब नहीं दिया गया। मालूम नहीं, वे जातियाँ अन्य जातियों के अंतर्गत कर दी गई हैं, या इनमें पढ़े-लिखे आदमी हैं ही नहीं। पर दोनों ही बातें असंभव प्रतीत होती हैं।]

* * *

बिहार-उड़ीसा

जाति	मर्द	औरत
कायस्थ	५९१	८४
ब्राह्मण	३०४	१९
बाँभन (भूमिहार)	२२२	२०
राजपूत	२०८	९
खंडैत	१६०	७
तेली	९३	२
कुर्मी	७६	२
चासा	७५	२
काँदू	५५	१
जुलाहा	५०	७
कोइरी	५०	१
कहार	४३	०
ताँती	३९	१
केवट	३७	१
गौरा	३५	१
हज्जाम (हिंदू)	३२	१
कुम्हार	३२	१
ग्वाला (अहीर)	२६	१

धानुक	२५	१
नोनिया	२१	१
धोबी (हिंदू)	२०	१
संथाल (हिंदू)	१२	०
दुसाध	८	१
चमार	८	०
मुसहर	३	०

* * *

बंगाल

जाति	मर्द	औरत
वैद्य	७१४	४३१
ब्राह्मण	६५४	१६६
कायस्थ	५५६	१५४
स्वर्णवणिक्	५५२	११२
तेली	३५२	२६
सद्गोप	३२७	२३
जोगी	२६०	१४
नापित	२४५	१६
पोद	२३२	७
सूत्रधार (बढ़ई)	१६५	१२
ग्वाला	१८१	१२
धोबी	१४२	८
नमःशूद्र	११०	६
जुलाहा	८१	४
बागदी	४०	२
हाड़ी	३६	१
मोची	३४	२

* * *

बंबई

जाति	मर्द	औरत
ब्राह्मण	६५२	१४४
बोहार्नी	३४३	२३१
लिंगायत	२३१	१५
मराठा	५८	३
आगरी	४१	३
महर, होलिया या ढेढ़	२३	१
कुनबी	११	१
भरवाड़	१०	१

भील	४	०

* * *

सी० पी० और बरार

जाति	मर्द	औरत
बनिया	४३०	४१
ब्राह्मण	३८६	६३
राजपूत	१३७	११
कलार	१२७	६
कुर्मी	८२	३
कुनबी	७८	२
माली	६६	३
लोधी	६१	३
तेली	५६	४
लोहार	५५	६
धोबी	३६	४
अहीर	३१	४
महार	२७	१
धीमर	२३	३
गोंड़	१०	१
चमार	८	१

* * *

मद्रास

जाति	मर्द	औरत
ब्राह्मण	६०८	१५२
नायर	४६१	१५
कोमार्टी	३८७	२५
बनियान	२६८	२१
क्षत्रिय	२४४	३८
थिया	२१०	४०
सैयद	२०१	३४
शेख़	१८१	१६
चेरमन	८	१

* * *

पंजाब और दिल्ली

जाति	मर्द	औरत
बनिया (अग्रवाल)	३८६	२०
खत्री	३७७	६१
अरोड़ा	२६४	३०

ब्राह्मण	२१४	१९
सैयद	१७२	२६
शेख़	१४१	२४
पठान	१००	१३
कश्मीरी	६४	११
राजपूत	५८	६
तरख़ान	३८	५
कनेट	३६	१
अवाँ	३६	१
जाट	३२	२
अड़ैन	२८	३
नाई	२८	२
मीरासी	२८	१
लुहार	०	२
अहीर	०	१
झीवर	२२	८
जुलाहा	२०	१
बिलोच	१६	१
तेली	१३	१
मोची	१०	१
कुम्हार	९	१
चमार	९	०
माछी	७	१
चूहड़	४	०

* * *

बड़ोदा-राज्य

जाति	मर्द	औरत
ब्राह्मण	६००	१५८
कुनबी	२६७	३८
कोली	५९	६

* * *

मध्य-भारत

जाति	मर्द	औरत
बनिया	३३३	१९
ब्राह्मण	१४०	११
राजपूत	७६	१४
गूजर	२५	२
भील (हिंदू)	७	०

गोंड (हिंदू)	६	

* * *

हैदराबाद-राज्य

जाति	मर्द	औरत
ब्राह्मण	४३७	
कोमाटी	२७०	
लिंगायत	७६	
शेख़	७०	
सैयद	५५	
कायू	४७	

* * *

मैसूर-राज्य

जाति	मर्द	औरत
ब्राह्मण	७०७	
शेख़	२०६	
लिंगायत	२०३	

* * *

राजपूताना

जाति	मर्द	औरत
बनिया	४४२	
ब्राह्मण	१६१	
राजपूत	५२	
नाई	१७	
माली	११	
जाट	१०	
गूजर	७	
मीना	६	
कुम्हार	५	
मेव	५	

× × ×

१७. विज्ञानाचार्य सर जगदीशचंद्र वसु

हमारे पाठक वसु महोदय से अच्छी तरह परिचित होंगे । आप लगभग आठ महीने योरप-पर्यटन करके भारत लौटे हैं । वसु बाबू बंबई-मेल से हावड़ा-स्टेशन पर जब पहुँचे, तब आप ही के द्वारा स्थापित वसु-विज्ञान-मंदिर के सदस्य और विद्यार्थी तथा अन्य गण्य-मान्य सज्जन स्वागतार्थ वहाँ उपस्थित थे । छात्रों और सदस्यों ने एक अभिनंदन-पत्र आपको दिया, जिसमें भारतीय विज्ञान

डॉक्टर सर जगदीशचंद्र वसु

की उन्नति और प्रचार के लिये आपके परिश्रम की प्रशंसा करते हुए आपको धन्यवाद दिया गया था। उत्तर में जगदीश बाबू ने सब को धन्यवाद देकर कहा—भारत का विज्ञान ईश्वर की कृपा से योरप में सम्मान और उच्च आसन प्राप्त कर चुका है। वसु महोदय ने योरप-भ्रमण के समय प्रेग में अपने द्वारा आविष्कृत यंत्रों की सहायता से फ़ोटो-विश्लेषण और एसेंट आफ़ सैप के संबंध में दो गवेषणा-पूर्ण वक्तृताएँ दी थीं। श्रीपकी

वक्तृताएँ सुनकर प्रो० नीम, प्रो० स्कीम और जर्मनी के अन्यान्य विद्वान् प्रोफ़ेसर बहुत संतुष्ट और विस्मित भी हुए। प्रो० नीम ने आचार्य की अत्यंत प्रशंसा करके उनको भारत-सचिव के नाम एक पत्र भी दिया था। आचार्य महोदय ने हालैंड, नार्वे, स्वीडन और लंदन में व्याख्यान दिए थे। लंदन के एक व्याख्यान में प्रधान मंत्री मैकडोनल्ड, लार्ड ओलिवियर तथा अन्यान्य बड़े-बड़े लोग उपस्थित थे। सबने आपकी प्रशंसा की। आचार्य उन इने-गिने नर-रत्नों में हैं, जिनके कारण इस समय भी विदेशों में भारत का नाम आदर से लिया जाता है। आचार्य ने अपनी मौलिक गवेषणाओं से योरप के वैज्ञानिकों को विस्मय-विमुग्ध बना दिया है। आशा है, आचार्य वसु के उद्योग से भारत में वैज्ञानिक विद्वानों का अभाव अधिकांश दूर हो जायगा। ईश्वर आपको चिरजीवी करें। वसु महाशय विश्राम के लिये दार्जिलिंग गए हैं। सुन पड़ता है, आप फिर योरप के अन्य देशों के लिये यात्रा करेंगे। हम भी कहते हैं—शिवास्ते सन्तु पन्थानः।

× × ×

१८. सर आशुतोष का स्वर्गवास

बड़ा ही अमंगल समाचार है। बड़ी ही हृदय को विदीर्ण करनेवाली वार्ता है। देश का घोर अनिष्ट हो गया। भारत का भाग्य फूट गया।

शिक्षा-प्रचार के विशाल मंदिर का सर्वोच्च शिखर ढह पड़ा। क़ानूनी ज्ञान के सुंदर उपवन का एक मधुर आमोदमय सुमन मुरझा गया। समाज-सुधार के कंटकाकीर्ण मार्ग को आलोकित करनेवाले उज्ज्वल दीपकों में से एक परम प्रकाशमान दीपक बुझ गया। सुशीलता, सज्जनता, दानप्रियता, चरित्र की निर्मलता, दृढ़ता तथा निर्भयता अपने एक बहुत बड़े आश्रयदाता को खोकर आज विलख-विलखकर रो रही हैं। इस घोर शोक के कारण भारत की आत्मा तिलमिला उठी है। वंग-देश निर्जीव-सा हो गया है। हाय, कैसे लिखें कि भारत के गौरव, वंग-केसरी सर आशुतोष मुकर्जी अब

स्व० सर आशुतोष मुकर्जी

इस संसार में नहीं हैं। सर आशुतोष को खोकर भारत ने बहुत कुछ गँवा दिया है। शिक्षा के संबंध में आज भारत का सर्वोत्कृष्ट ज्ञाता उठ गया। सर बामफ़ील्ड फुलर और लॉर्ड लिटन की कुटिल चालों से, विकट परिस्थिति के रहते भी, कलकत्ता विश्व-विद्यालय की रक्षा करनेवाला संसार से सदा के लिये बिदा हो गया। हाईकोर्ट के जज की हैसियत से उन अथाह क़ानूनी ज्ञान से भरे हुए फ़ैसलों को अब कौन लिखेगा, जिनकी प्रत्येक पंक्ति में न्यायप्रियता और निर्भयता टपकती थी? क्या मिदना-पुर का वह मुक़द्दमा कभी भूला जा सकता है, जिसमें राजा नाराजोल तक फाँसे गए थे, और जिसके अभियुक्तों को छोड़ते हुए सर आशुतोष ने पुलिस

हथकंडों का निर्भयता के साथ भंडाफोड़ किया था? समाजसुधार के मामले में हमारे विचार सर आशुतोष से भले ही न मिलते हों, पर हम यह स्वीकार करते हैं कि अपनी विधवा कन्या का पुनर्विवाह करके उन्होंने इस बात का स्पष्ट परिचय दिया कि उनके लिये किसी बात का कहना और करना एक ही बात थी। ज़बानी जमा-ख़र्च करनेवाले सुधारकों में वह न थे। सर आशुतोष का जीवन-चरित्र लिखने के लिये यह उपयुक्त स्थान नहीं है। परंतु बहुत शीघ्र उनकी जीवनी माधुरी में प्रकाशित होगी। इस समय तो हम इतने शोकाभिभूत हैं कि नहीं जानते ऐसे पुरुष-सिंह के इस स्वर्गारोहण-समाचार को किन शब्दों द्वारा प्रकट करें? आज सारा बंगाल अपने प्यारे 'आसू' बाबू के लिये आँसू बहा रहा है। हम भी अपनी इस जड़ लेखनी द्वारा यही कहने को विवश हैं कि हे ईश्वर, देश की इस विकट अवस्था में हमसे सर आशुतोष को छीनकर तूने हमें मर्मांतक वेदना पहुँचाई है; हमारी बहुत ही कठोर परीक्षा ली है। बस, अब इस अवसर पर तुझसे एक-मात्र प्रार्थना यही है कि हमें इस असह्य दुःख सहने की शक्ति दे, और सर आशुतोष की आत्मा को परलोक में शांति।

× × ×

१९. सर शंकरन नायर की पराजय

सर शंकरन नायर की गणना भारत के प्रतिष्ठित पुरुषों में है। आप बहुत समय तक मदरास-हाईकोर्ट के जज रह चुके हैं। जिस समय पंजाब में मार्शल-लॉ जारी था, तथा जलियानवाला-बाग़ का हत्या-कांड हुआ था, उस समय आप वायसराय की कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य थे। इसके पूर्व आप भारत के राजनीतिक आंदोलन में भी भाग लेते थे, और कांग्रेस से भी आपका संबंध था। आपके चरित्र में निर्भयता और दृढ़ता की मात्रा बहुत अधिक है। पंजाब में मार्शल-लॉ के जारी रखने या न रखने के संबंध में वायसराय से आपका मतभेद हो गया। बस, इसी बात पर आपने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। यह वह समय था, जब महात्मा गाँधी के द्वारा संचालित असहयोग-आंदोलन पूरे ज़ोरों पर था। उधर भारत में सम्राट् के पुत्र युवराज आनेवाले थे। महात्माजी ने लोगों को सलाह दी थी कि युवराज का स्वागत न किया जाय। तदनुसार लोग उनके स्वागत का बहिष्कार कर रहे थे। इधर इस समस्या के कारण वायसराय बहुत विचलित हो रहे थे, और चाहते थे कि भारतीय नेताओं से किसी प्रकार का समझौता हो जाय। पर समझौता न हो सका। भारतीय नेताओं में भी मतभेद था। पूज्यवर मालवीयजी ने इस मतभेद को मिटाने के लिये बंबई में नेताओं की एक सभा की थी। उस सभा के सभापति सर शंकरन नायर ही बनाए गए थे; पर इस सभा का भी कोई प्रतिफल न हुआ। सर शंकरन महात्माजी से बहुत असंतुष्ट हो गए, और एक प्रकार से उनके विरोधी बन गए। संभवतः सरकार ने गाँधी-आंदोलन के विरुद्ध कुछ लिखने के लिये उनको प्रोत्साहित किया। वह राज़ी हो गए। कई प्रांतीय सरकारों ने उन्हें पुस्तक लिखने के लिये भरपूर मसाला दिया। उन्होंने भी जी खोलकर Gandhi and anarchy-नामक पुस्तक में महात्माजी की निंदा की। उनके विरुद्ध जो कुछ भी लिखा जा सकता था, वह आपने लिखा। जिन लोगों ने इस पुस्तक को पढ़ा है, वे कह

सर शंकरन नायर

सकते हैं कि महात्माजी के प्रति इसमें कैसी अशिष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है। सर. शंकरन ने उन्हें देश का शत्रु तक प्रमाणित करने की चेष्टा की है। जिस समय यह पुस्तक प्रकाशित हुई, उस समय महात्माजी जेल जा चुके थे। पुस्तक की बिक्री भी ख़ूब ही हुई। प्रांतीय

सरकारों ने इसकी बहुत सी प्रतियाँ ख़रीदीं। इँगलैंड में भी इसकी ख़ासी बिक्री हुई। कुछ समय के बाद इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भी निकल गया। सर शंकरन ने जहाँ इस पुस्तक में महात्माजी के विरुद्ध अपने हृदयोद्गार निकाले थे, वहाँ पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर माइकेल ओ' डायर के विरुद्ध भी कुछ बातें लिखकर उनके शासन की निंदा की थी, तथा उन पर प्रजा के प्रति अत्याचार करने का दोष लगाया था। पुस्तक के दूसरे संस्करण में सर माइकेल ओ' डायर के विरुद्ध की अनेक बातें निकाल भी डाली गई थीं।

साल-भर के लगभग हुआ, जब सर माइकेल ओ' डायर ने सर शंकरन नायर को नोटिस दिया कि मेरे विरुद्ध जो-जो बातें आपने अपनी पुस्तक में लिखी हैं, वे सब निकाल डालें, और माफ़ी माँगें; अन्यथा आप पर मान-हानि का दावा दायर किया जायगा। सर शंकरन ने नोटिस के अनुसार कार्य करने से इनकार कर दिया। सर माइकेल ओ' डायर ने भी अविलंब इँगलैंड में उन पर हरजाने का दावा दायर कर दिया। इस मुक़द्दमे को लेकर भारत और इँगलैंड, दोनों ही देशों में ख़ूब सनसनी फैली। लोग इसके परिणाम को जानने के लिये अधीर हो उठे। सर शंकरन की ओर से जवाब-दावा दाख़िल हुआ। आपने उसमें कहा कि सर माइकेल ओ' डायर के विरुद्ध मैंने जो कुछ लिखा है, वह सत्य है, और उस संबंध में मैंने जो कुछ आलोचना की है, वह सर्व-साधारण के हित के विचार से। इसके बाद गवाहियाँ गुज़रने लगीं। भारत में भी इस अभिप्राय से कमीशन नियुक्त किया गया, और दोनों सरों की ओर से सैकड़ों गवाहों की गवाहियाँ गुज़रीं। इधर दो-ढाई महीने से इँगलैंड में जस्टिस मैकार्डी के इजलास में इस मुक़द्दमे की पेशियाँ हो रही थीं। रंग-ढंग से पहले से ही यह जान पड़ता था कि जीत सर माइकेल ओ' डायर की ही होगी। न्यायाधीश जिस ढंग से प्रश्न पूछते थे, उससे भी इस अनुमान की पुष्टि होती थी। अंत में जब जूरी को मुक़द्दमा समझाने का समय आया, तो जस्टिस मैकार्डी ने ७ घंटे तक बराबर मुक़द्दमे को समझाया। आपका समझाने का ढंग ऐसा था, मानो सर माइकेल ओ' डायर का बैरिस्टर अपने मुवक्किल की ओर से पैरवी कर रहा हो। अंत में वही हुआ, जो होने को था। १२ जूरियों में से ११ ने मुक़द्दमा साबित बतलाया और सर ओ' डायर के पक्ष में मत दिया, तथा १ ने सर शंकरन के पक्ष में। जज ने बहुमत की राय मानकर सर शंकरन पर ५०० पाउंड की डिक्री कर दी, और मुक़द्दमे का ख़र्च भी मुद्दई को दिलवाया। इस प्रकार से ५ जून, सन् १९२४ ई० को इस मुक़द्दमे का अंत हुआ, और सर शंकरन हार गए। विलायत के 'मार्निंग पोस्ट' और 'टाइम्स'-जैसे अनुदार-दल के पत्र इस मुक़द्दमे में सर माइकेल ओ' डायर को जीतते देखकर परम प्रसन्न हुए हैं; पर उदार-दल के पत्र इस बात से बहुत भयभीत हैं कि इस फ़ैसले का प्रभाव भारत पर बहुत बुरा पड़ेगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रिटिश न्याय पर विश्वास रखनेवाले भारतीयों को इस मुक़द्दमे का परिणाम देखकर आश्चर्य होगा; पर जिन लोगों का उस न्याय से विश्वास हट गया है, उनके लिये यह एक साधारण बात है। लोकमान्य तिलकजी को सर शिरोल ने क्या-क्या नहीं लिखा था; पर वह सब ठीक माना गया, और उनका दावा ख़ारिज कर दिया गया। इधर उस मुक़द्दमे में सर शंकरन ने जो कुछ लिखा था, वह सच नहीं माना गया, और उन पर डिक्री कर दी गई। मुक़द्दमा दो अँगरेज़ों के बीच नहीं था, एक भारतीय और एक अँगरेज़ के मुक़ाबिले में था। भारतीयता के नाते सर शंकरन की इस पराजय से हम दुखी हैं। हमें इस बात का खेद है कि ब्रिटिश न्याय के प्रति भारत में जो अविश्वास के भाव उत्पन्न हो गए हैं, वे बढ़ रहे हैं, और इस वृद्धि के कारण भी मिलते जाते हैं। हमें भय है कि इस मुक़द्दमे का परिणाम देखकर बड़े-बड़े धुरंधर विश्वास-व्रत-धारियों का भी विश्वास डिग जायगा। इँगलैंड की मुक़द्दमेबाज़ी में, ख़र्च की मद में, लाखों रुपए पर पानी पड़ता है। सर शंकरन को मुद्दई के मुक़द्दमे का ख़र्च भी (कोई तीन लाख रुपए) देना पड़ेगा। अपने मुक़द्दमे की पैरवी में उनका जो कुछ ख़र्च हुआ, वह तो हुआ ही। ऐसी दशा में उन पर मुक़द्दमा हारने के दुःख के अतिरिक्त आर्थिक संकट भी पड़ा है। सर शंकरन के साथ हमारी सहानुभूति है; पर महात्मा गाँधी-जैसे वास्तविक महात्मा के विरुद्ध उन्होंने जो अंट-संट लिख मारा है, उसकी हम घोर निंदा करते हैं। न-जाने क्यों हृदय से बार-बार यही बात निकलती

है कि सर शंकरन को यह मिथ्या साधु-निंदा का फल भुगतना पड़ रहा है।

× × ×

२०. भारत में विदेशी रुई, सूत और कपड़े की आमदनी

भारत में १९२२ की पहली सितंबर से १९२४ की २२ मई तक रुई की ३०८००० गाँठें आईं। एक गाँठ में ४०० पौंड अथवा रतल माल होता है। गत सन् १९२२-२३ के इन्हीं दिनों में ३२१७००० गाँठें आई थीं। १८ से २४ मई तक (१९२४) के सप्ताह में रेल और समुद्र के मार्ग से ७१२२ टन रुई बंबई में आई थी। सन् १९२३ के इसी सप्ताह में ९३१९ टन आई थी। १८ से २४ मई (१९९४) तक कराची में रेल से ५४५ टन और कलकत्ते में रेल तथा स्टीमर से ३०९ टन रुई आई थी। सन् १९२३ के इसी सप्ताह में कराची में ९८२ टन और कलकत्ते में ९०९ टन आई थी।

पूर्वोक्त १८ से २४ मई तक (१९२४) के सप्ताह में विदेश का बना सूत इस प्रकार आया—कलकत्ते में १४४००० पौंड, बंबई में २७६००० पौंड और मदरास में ३५६००० पौंड। सन् १९२३ के इसी सप्ताह में विदेशी सूत की आमदनी इस प्रकार हुई थी—कलकत्ते में १७५००० पौंड, बंबई में ८०४००० पौंड और मदरास से ३०२०००पौंड।

पूर्वोक्त सप्ताह में भारत में आनेवाले विदेशी कपड़े का ब्योरा इस प्रकार है—कलकत्ते में कोरा कपड़ा १०५१३००० गज़, धुला हुआ ४१३४००० गज़, छपा हुआ और रंगीन वग़ैरह ९५२००० गज़। बंबई में कोरा कपड़ा २९१७००० गज़, धुला हुआ ८४५००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का २३३७००० गज़। कराची में कोरा कपड़ा २३६००० गज़, धुला हुआ ८५९००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ८०१००० गज़। मदरास में कोरा कपड़ा १३४३००० गज़, धुला हुआ १४३९००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ११५८००० गज़। रंगून में कोरा कपड़ा ४३८००० गज़, धुला हुआ ८९००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ८४९०००० गज़। तुलना के लिये सन् १९२३ की इसी सप्ताह की आमदनी का ब्योरा भी यहाँ दिया जाता है। १९२३ के इसी सप्ताह में भारत के पूर्वोक्त पाँचों बंदरगाहों में विदेशी कपड़ा इस प्रकार आया था—कलकत्ते में कोरा कपड़ा १३६९३००० गज़, धुला हुआ २०४९००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का २५२००० गज़। बंबई में कोरा १२७५७०० गज़, धुला ११४६००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का २२४५०००गज़। कराची में कोरा ६५००० गज़, धुला १९९३००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ३४४००० गज़। मदरास में कोरा ६०६००० गज़, धुला ३४४००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ५१००० गज़। रंगून में कोरा ६८३००० गज़, धुला १९६००० गज़, भिन्न-भिन्न प्रकार का ६५१००० गज़।

× × ×

२१. भारत का चावल और गेहूँ का व्यापार तथा फ़सल

इधर पहली जनवरी १९२४ से २४ मई तक साफ़ किए हुए चावल के व्यापार का ब्योरा इस प्रकार है—रेल और स्टीमर द्वारा कलकत्ते में २१७४३० टन, बेसिन में २२७३००० टन और रंगून में १२४४६००० टन माल आया। इसी तरह रंगून से ७७४४०१ टन और कलकत्ते से १८४५०८ टन चावल विदेशों को और रंगून से भारत के विभिन्न स्थानों को १२२१०८ टन चावल रवाना किया गया।

पहली एप्रिल से २४ मई (१९२४) तक कलकत्ते में २७०१४ टन, बंबई में ३९११७ टन देशी गेहूँ और २४६६ टन विदेशी गेहूँ आया। इन्हीं दिनों कराची में ४३४५९ टन गेहूँ की आमदनी हुई। इसी समय में गेहूँ की रफ़्तनी का ब्योरा इस प्रकार है—कलकत्ते से २५ टन, बंबई से २८२ टन और कराची से ५३०४ टन गेहूँ विदेशों को रवाना किया गया।

गेहूँ की फ़सल के संबंध में विशेषज्ञों का अनुमान है कि इस वर्ष रुपए में आठ-नव आने ही फ़सल होगी, अतः भाव चढ़ जाने की अधिक संभावना है। फ़सल के बारे में सरकार की ओर से चौथी बार का अनुमान इस प्रकार है—सन् १९२३-२४ में भारत में औसत हिसाब से फ़ी सैकड़े ९० एकड़ ज़मीन में गेहूँ की खेती की गई है। इस प्रकार इस वर्ष कुल ३०९१९००० एकड़ ज़मीन में गेहूँ बोए गए हैं। इससे पहले वर्ष ३०१३१०० एकड़ में गेहूँ की खेती की गई थी। इस हिसाब से इस साल फ़ी सैकड़े एक एकड़ अधिक ज़मीन में गेहूँ की खेती हुई है। इस वर्ष ९६८९००० टन गेहूँ पैदा होने का अनुमान किया जाता है। पहले साल १०७७०००० टन गेहूँ पैदा हुआ था। फ़सल की दशा उतनी बुरी नहीं है। इस वर्ष गत वर्ष की अपेक्षा गेहूँ की उपज में कहाँ कितनी कमी होने का अनुमान किया गया है, इसका

ब्योरा इस प्रकार है—बंबई में ४१ फ़ी सैकड़े, अजमेर में २५ फ़ी सैकड़े, मेरवाड़े में २५ फ़ी सैकड़े, बंगाल, सी० पी० और बरार में, प्रत्येक में, २१ फ़ी सैकड़े, मध्य-भारत में १७ फ़ी सैकड़े, पंजाब में १३ फ़ी सैकड़े, बिहार-उड़ीसा और हैदराबाद में, प्रत्येक में, १० फ़ी सैकड़े, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत-प्राविंस में ६ फ़ी सैकड़े। किंतु बड़ोदे में १६ फ़ी सैकड़े, ग्वालियर में १३ फ़ी सैकड़े, राजपूताने में १० फ़ी सैकड़े, दिल्ली में ८ फ़ी सैकड़े और यू० पी० में २) फ़ी सैकड़े अधिक फ़सल होने का अनुमान किया जाता है। यह तो हुई भारत की गेहूँ की फ़सल। अमेरिका में (१९२३-२४ की) जाड़े की गेहूँ की फ़सल १४८१३००० टन कूती जाती है। गत वर्ष वहाँ १५४६०००० टन गेहूँ पैदा हुआ था। आस्ट्रेलिया में इस वर्ष ३३७०००० टन गेहूँ पैदा होने का अनुमान किया जाता है। इसमें से २ लाख टन तक वह बाहर विदेश को भेज सकेगा। अर्जेंटाइन में इस वर्ष गेहूँ की उपज ६९३२००० टन कूती जाती है। यह उपज पिछले साल की उपज से ३७ फ़ी सदी अधिक है।

× × ×

२२. युक्तप्रांत में ख़ूनी जानवरों के द्वारा जन-नाश

भारतवासी निःशस्त्र होने के कारण पौरुष-हीन होने के साथ ही आत्मरक्षा का साहस भी खो बैठे हैं। इसका परिचय प्रति दिन उन पर होनेवाले डाकुओं, चोरों, यहाँ तक कि ख़ूनी जानवरों के हमलों की संख्या से प्राप्त होता है। यू० पी० की सरकारी रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ है कि सन् १९२३ में इस प्रांत के ६१४३ आदमी तेंदुओं, भालुओं भेड़ियों, साँपों आदि के द्वारा मारे गए। इनमें १ आदमी को हाथी ने मारा, १०१ को चीते खा गए और ६८८ भेड़ियों के शिकार बने। ६६ आदमियों की हत्या अन्य ख़ूनी जानवरों ने की। ५२३४ आदमी साँपों के काटने से मरे। इन्हीं ख़ूनी जानवरों ने गत सन् १९२१ में ५४१२ आदमियों को और सन् १९२२ में ५३२७ आदमियों को यमपुर पहुँचाया था। किंतु गत वर्ष निहत मनुष्यों की संख्या बहुत अधिक हो गई है। अगर साहस न नष्ट हो गया होता, तो भला चीते वग़ैरह को मारने के लिये तो बंदूक़ या तमंचे वग़ैरह की ज़रूरत होती है, मगर साँपों को तो हिम्मतवाला आदमी, होश-हवास दुरुस्त रहने पर, केवल लाठी से ही मार सकता है। निहत मनुष्यों में अधिकतर संख्या साँप के काटे से मरनेवालों की ही है। रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि सन् १९२३ में ८० चीते, ४८९ तेंदुए, १६४ भालू, १२०२ भेड़िए, ८१०४ साँप और १२४२ अन्य ख़ूनी जानवर मारे गए—अर्थात् कुल ११३४३ हत्यारे जानवरों का शिकार किया गया, और १५०६९) रुपए शिकारियों को पुरस्कार-स्वरूप बाँटे गए।

× × ×

२३. कपड़े सीने की देशी मशीन

मालूम हुआ है कि गोरखपुर के गवर्नमेंट टेकनिकल स्कूल के प्रिंसिपल श्रीयुत अजयपालसिंह की सहायता से उक्त स्कूल में काम सीखनेवाले लड़कों ने एक कपड़े सीने की देशी मशीन तैयार की है। यह मशीन वहाँ के ज़िला-बोर्ड-प्रदर्शिनी में दिखाई गई थी। मशीन के भीतर के पुर्ज़े खोलकर और उससे कपड़े सीकर सहयोगी 'आज' के प्रतिनिधि को दिखलाए गए थे। उक्त प्रतिनिधि की रिपोर्ट है कि सिंगर की मशीन की तरह इससे भी बख़िया होती है। यदि उक्त प्रिंसिपल साहब इस मशीन को सर्व-साधारण के लिये सुलभ कर देने की चेष्टा करें, तो देश का बहुत-सा धन बच सकता है, जो कि सिंगर कंपनी ले जाती है। संभव है, पहले-पहल यह मशीन उतना अच्छा काम न कर सके, जितना अच्छा सिंगर की मशीन करती है। पर हमें आशा है कि धीरे-धीरे इसकी त्रुटियाँ दूर हो जायँगी, और देशवासियों से इस मशीन के आविष्कारक को यथेष्ट सहायता भी मिलेगी। आज दिन सिंगर की मशीन छोटे-छोटे गाँवों तक में विराजमान है। उसके दाम भी काम के देखते अधिक नहीं हैं। दाम और काम में अगर यह देशी मशीन सिंगर की मशीन का मुक़ाबिला कर सके, तो इसके प्रचलन का शीघ्र प्रबंध होना चाहिए। इस मशीन के यथेष्ट संख्या में निर्माण के लिये अच्छी पूँजी से एक कंपनी खड़ी करना प्रिंसिपल साहब का ध्येय होना चाहिए। आशा है, हमें शीघ्रता से यह सुसमाचार सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा। तथास्तु।

× × ×

२४. लखनऊ में असाधारण गरमी

जून-मास के प्रारंभ से ग्रीष्म-ऋतु ने अपना प्रचंड रूप धारण किया है। प्रातःकाल घंटे-दो घंटे तो कुछ अच्छी रहती है, पर इसके बाद घोर गरमी का आतंक

हो जाता है। नव बजते-बजते धूप में यथेष्ट उग्रता आ जाती है, और दस बजे के बाद तो घर के बाहर निकलना साहस का काम हो जाता है। शरीर से पसीने की धाराएँ निकलती हैं, और पानी पीने की इच्छा तो मिटती ही नहीं। आजकल निदाघ की इस विकरालता से लखनऊवासी बड़ा कष्ट पा रहे हैं। जल-कल के प्रताप से नगर के अधिकांश कुएँ नष्ट हो चुके हैं, इसलिये लखनऊवासियों को कूप-जल सहज सुलभ नहीं है। पंप-जल की यह दशा है कि रात को भी वह इतना गरम रहता है, जितना जाड़े के महीनों में स्नान के लिये गरम किया जाता है। जल की इस दुखदाई उष्णता का प्रभाव बरफ़ के द्वारा दूर किया जा सकता था, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि नगर में बरफ़ की तीन-तीन कलों के रहते हुए भी आजकल वह चार आने सेर के भाव से बिक रही है। यह स्पष्ट है कि ऐसी दशा में ग़रीबों के लिये बरफ़ पीना असंभव है। मध्य-श्रेणी के लोग भी उसका उपयोग कठिनता से कर सकते हैं। नगर में ख़बर है कि शीघ्र ही बरफ़ आठ आने सेर बिकेगी। कदाचित् भारत-भर में और कहीं भी इस भाव से बरफ़ नहीं बिकती। ख़ैर, जल-कष्ट की जैसी कुछ करुण कहानी है, वह तो है ही, पर इस वर्ष गरमी का रौद्र रूप बड़ा ही विकराल है। बिजली के पंखों से भी जो हवा निकलती है, वह लू के समान शरीर को झुलसा देती है। दो ही चार बरस की बात है, जब लखनऊ में मई और जून के महीनों का ताप-मान ११२ डिग्री के ऊपर नहीं जाता था, पर अब धीरे-धीरे वह बढ़ रहा है। फिर भी ११४ के ऊपर वह कभी नहीं गया। पर इस वर्ष १० जून को वह ११६ डिग्री तक पहुँच गया था, और सुनते हैं, तब से १५ तारीख़ के बीच में वह और भी बढ़ा है। विशेषज्ञों का कहना है कि लखनऊ में वृक्षों की कमी के कारण ही ताप-मान इस प्रकार से उठ रहा है। लखनऊ के निकट न तो कोई बड़ा जंगल है, और न उसके आसपास कोई बड़ी झील या तालाब। इस कारण ऋतु की क्रूरता का निवारण नहीं हो रहा है। लखनऊ की म्युनिसिपलिटी तथा इंप्रूवमेंट ट्रस्ट ने सड़कों के किनारे वृक्षों के लगवाने का प्रबंध बहुत कम किया है, उलटे बहुत-से वृक्ष कटवा डाले हैं। आज विक्टोरिया-स्ट्रीट, नादानमहल-रोड, गंगाप्रसाद-रोड, लाटूश-रोड, हीवेट-राड, कचहरी-रोड आदि पर वृक्षों के दर्शन दुर्लभ हैं। इंप्रूवमेंट ट्रस्ट की ओर से सुनते हैं, एक प्रस्ताव यह था कि नगर के दक्षिण-पश्चिम में थोड़ी-सी भूमि लेकर उसमें वृक्ष-मालाएँ आरोपित कर दी जायँ, तथा नगर के इर्द-गिर्द पहले समय में जो तालाब थे, और अब बहाव की मिट्टी से तुप गए हैं, वे फिर से साफ़ करा दिए जायँ। ग्रीष्म ऋतु में उनमें जल मौजूद रहने का प्रबंध करा दिया जाय। यह प्रस्ताव बहुत ही उपयोगी है, और इससे नगर के ताप-मान को कम करने में अवश्य सहायता मिलेगी। पर नहीं जानते, अधिकारी लोग इस कष्ट को दूर करने का प्रबंध कब करेंगे? जो हो, इस समय लखनऊ-वासी ग्रीष्म-ऋतु की प्रचंडता से व्याकुल हैं। अधिक गरमी से उत्पन्न होनेवाले रोग सर उठा रहे हैं। कई लोग लू लग जाने से पीड़ित हैं। निदाघ का भीषण साम्राज्य कब दूर होगा, इसकी लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं। ग्रीष्म की विकरालता का किसी कवि ने कैसा अच्छा वर्णन किया है—

जीवन को त्रासकर, ज्वाला को प्रकासकर,
भोर ही ते भासकर आसमान छायो है;
धमका धमक धूप सूखत तलाब कूप,
पौन को न गौन भौन आगि मैं तचायो है;
तकि, थकि रहे, जकि सकल विहाल हाल,
ग्रीषम अचर, चर, खचर सतायो है;
मेरे जान काहू बृष-भान जग मोचन को,
तीसरे त्रिलोचन को लोचन खुलायो है।

× × ×

२५. चैत्र की संख्या का माधुरी-पुरस्कार

चैत्र की संख्या का ५०) रुपए का माधुरी-पुरस्कार प्रोफ़ेसर पं० रामचंद्र शुक्ल को दिया गया है। इस बार निर्णयकर्ता थे पं० गणेशविहारी मिश्र, पं० कृष्णविहारी मिश्र, और बा० शिवपूजनसहाय। तीनों सज्जन शुक्लजी की 'प्रकृति'-प्रबोध-नामक कविता पर पुरस्कार देने के लिये सहमत हुए। इस बार कंपिटीशन में वसंत, व्यथित कोकिला, प्रकृति-प्रबोध, काला हृदय, अनुरोध, चंद्रमा की कालिमा, माया, छवि, सुख, सुखी और दुखी, सूरदास, और दीप-दर्प, ये १३ कविताएँ रक्खी गई थीं।
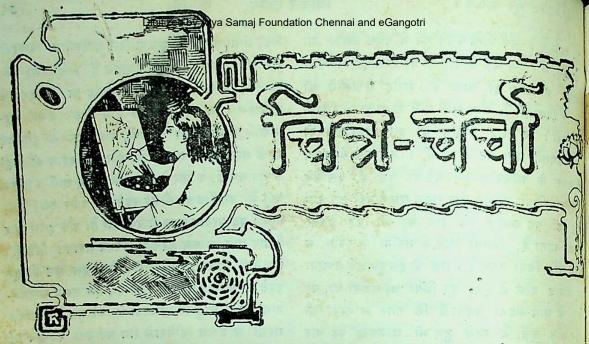
१. रंगीन चित्र

किसी प्राचीन चित्रकार का अंकित किया हुआ पहला रंगीन चित्र 'शीरीं-फ़रहाद' हमें जयपुर-निवासी पं० हनुमान शर्मा की कृपा से प्राप्त हुआ है। शीरीं-फ़रहाद की प्रेम-कथा लैला-मजनू की प्रेम-कथा से कम जगत्प्रसिद्ध नहीं है। इस भावमय मनोहर चित्र में नयनाभिराम नैसर्गिक शोभा का जो रमणीय दृश्य देख पड़ता है, उससे कहीं अधिक हृदयस्पर्शी दृश्य है प्रेम और करुणा का। देखिए, सुशोभना शाहज़ादी शीरीं को पाने के लिये फ़रहाद ने प्राणों का मोह छोड़ पहाड़ तोड़कर नदी निकाल दी है। प्रेमिका शीरीं भी प्रेम की बलि-वेदी पर अपने प्राणाधिक प्रिय फ़रहाद का प्राणोत्सर्ग करना देखकर शोकाश्रुधारा बहा रही है। अतृप्त मिलनोत्कंठा और असह्य वियोग-व्यथा को मूर्तिमान अंकित करने में चित्रकार ने अच्छी कुशलता दिखाई है। ज़रा अपनी सहृदयता पर भार देकर विचार कीजिए कि एक प्रणयी की प्रवाहित की हुई प्रेम-नदी में मिलकर विरह-विह्वला प्रणयिनी की उष्ण अश्रु-धारा किस अनंत की ओर जा रही है!

दूसरा रंगीन चित्र जहाँगीर का है। यह मुग़ल-सम्राट् बड़ा सौभाग्यशाली था। इसके पिता अकबर जगत्प्रसिद्ध भारत-सम्राट्, माता क्षत्राणी जोधाबाई, मामा प्रधान सेनापति मानसिंह और पत्नी भूलोक-दुर्लभ सुंदरी नूरजहाँ (जगज्ज्योति) थी। अपने पिता और मामा के प्रताप से इसने बड़ी शांति के साथ हुकूमत की। सच पूछिए, तो असल में नूरजहाँ बादशाहत करती थी, और यह तो उसके हाथ की कठपुतली था। देखिए, इसके चेहरे से कैसी शांति-प्रियता और निश्चिंतता टपक रही है।

तीसरा रंगीन चित्र रूप-गर्विता का है। अहा! चित्र में देखिए, एक सुसज्जित कमरे में स्फटिक-स्वच्छ दर्पण के सामने एक लावण्य-यष्टिका खड़ी है। नहीं, एक रूप-गर्विता रमणी मुकुर में मुख निरखते ही अपने अनूप रूप की माधुरी पर मुग्ध होकर निर्वात गृह की दीपशिखा-सी अचंचल हो गई है! कुसुम-कोमल कमनीय कलेवर यौवन-वसंत की महिमा से खिल उठा है। सौंदर्य-सौरभ से सजीला कमरा नंदन-वन बन गया है। अपने ही लावण्य पर आप ही लट्टू होनेवाली इस प्रसन्न-वदना सुंदरी का चित्र अंकित करने में चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ गणेश खातू ने अपनी कारीगरी का कैसा चमत्कार दिखाया है।

२. व्यंग्य चित्र

पहला व्यंग्य चित्र 'समालोचक और ग्रंथकार' है, जिसे श्रीयुत मोहनलाल महत्तो "वियोगी" ने अंकित किया है। चित्र के नीचे परिचय पढ़िए।

दूसरा व्यंग्य चित्र 'प्रेमालिंगन' बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्मा का है। चित्र परिचय उसके नीचे देखिए।

वर्ष २ ; खंड २] आषाढ़, ३०० तुलसी-संवत [संख्या ६ ; पूर्ण संख्या २४

संपादक—

श्रीदुलारेलाल भार्गव

श्रीरूपनारायण पांडेय

वार्षिक मूल्य ६॥)

छमाही मूल्य ३।)

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

कुछ श्रीमतियों की सहायता से तथा कुछ अपनी हानि उठाकर बहुत-से ग्राहकों के आग्रह से
१०,००० दस हज़ार ग्राहकों को ।॥) में मुफ़्त दिया जायगा।

सात हज़ार ग्राहक हो चुके हैं:—

स्त्री-शिक्षा का नवीन पत्र मुफ़्त

कुछ और श्रीमतियों की उदारता।

१०,००० स्त्री ग्राहिकाओं को मुफ़्त मिलेगा
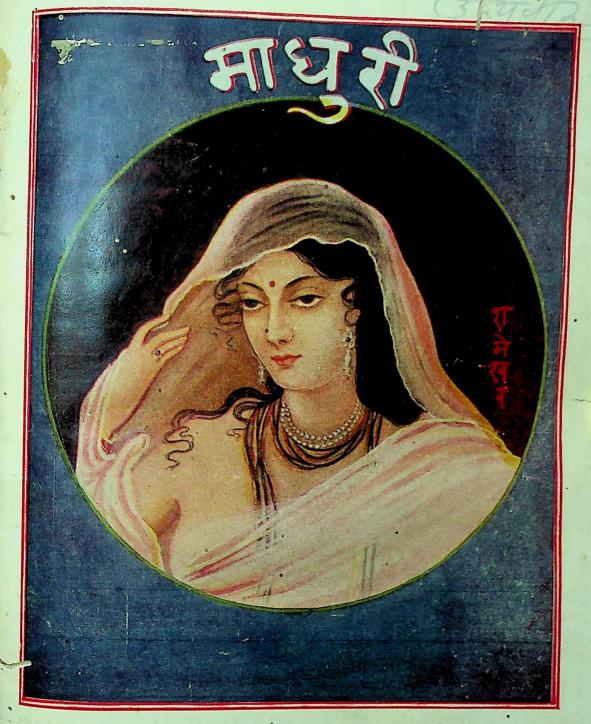
स्त्री-पुरुष सबके लिये वैद्यक-विद्या का भारतवर्ष में अत्यंत उपयोगी यही एक पत्र है। नमूना ।) में मिलता है।
मनुष्य-मात्र के हित के लिये १०,००० ग्राहकों को ।॥) में दिया जायगा।

७,००० ग्राहक हो चुके } **स्त्री-चिकित्सक** { १०,००० नाम मुफ़्ती ग्राहकों में लिखे जायँगे

स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक चिकित्सा का वैद्यक-विद्या-संबंधी, कर्तव्यों में स्त्रियों को सर्वगुणसंपन्ना बनानेवाला सचित्र मासिक पत्र।

संपादिका—श्रीमती यशोदादेवी, संपादिका स्त्री-धर्मशिक्षक, इलाहाबाद

पुरुषों के लिये भी वैद्यक-संबंधी अत्यंत उपयोगी विषय इसमें रहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) परंतु १०,००० दस हज़ार ग्राहकों को एक वर्ष के लिये केवल डाक-ख़र्च व पैकिंग-ख़र्च का ।॥) वार्षिक लेकर मुफ़्त दिया जायगा।

१०,००० ग्राहक पूरे हो जाने पर ३) वार्षिक लिया जायगा।

गत वर्ष श्रीमती यशोदादेवी के स्त्री-औषधालय में कई रानी-महारानियाँ अपना इलाज कराने आईं जो अनेक प्रकार के भयंकर गुप्त रोगों में ग्रसित थीं, हज़ारों डॉक्टर और वैद्य-हकीमों का इलाज कर हैरान व परेशान हो गई थीं। पचासों हज़ार रुपया ख़र्च हो चुका था, परंतु कुछ भी फ़ायदा नहीं हुआ तब यहीं, श्रीमती यशोदादेवी के स्त्री-औषधालय में, आकर श्रीमती के इलाज से उनकी सब शिकायतें दूर हो गईं, सब रोगों से छुटकारा पाकर यहाँ से हृष्ट-पुष्ट होकर गईं—

इस बीच में उन्होंने अनेक दूर-दूर नगरों से आई हुई सैकड़ों रोगी स्त्रियों को स्त्री-औषधालय में रहकर श्रीमती यशोदादेवी के इलाज से आराम होकर जाते देखा और हज़ारों स्त्रियों ने पत्र द्वारा पारसल से औषधियाँ मँगाकर फ़ायदा उठाया, अतएव यह सब उन श्रीमतियों ने स्वयं देखा और अनुभव किया। श्रीमती यशोदादेवी की अपूर्व स्त्री-चिकित्सा-शक्ति के चमत्कार तथा देशी औषधियों का अपूर्व गुण देखकर तथा स्वयं फ़ायदा उठाकर उन श्रीमतियों ने स्त्री-जाति के उपकारार्थ स्त्री-औषधालय को ५,००० पाँच हज़ार रुपए की सहायता देकर स्त्रियों के लिये एक ऐसा पत्र निकालकर भारतवर्ष में घर-घर प्रचार करने के लिये उत्साह बढ़ाया, जिसे पढ़-सुनकर बड़ी सरलता से पढ़ी-लिखी और मूर्ख-से-मूर्ख स्त्रियाँ भी रोगों के उत्पन्न होने के कारणों को जानकर अनेक रोगों से बचें। अपनी संतान और पति तथा अन्य घरवालों का स्वास्थ्य ठीक रख सकें तथा वैद्यक-विद्या-संबंधी अपने कर्तव्यों में सर्वगुणसंपन्ना बनकर मनुष्य-जीवन का सच्चा सुख प्राप्त करें और हृष्ट-पुष्ट तथा नीरोग संतान उत्पन्न कर सकें। इस एक ही स्त्री-शिक्षा के पत्र को पढ़-सुनकर स्त्रियाँ शारीरिक और मानसिक चिकित्सा में सर्वगुण-संपन्ना बन जायँगी और भी अनेक प्रकार के स्त्री-गुणों में गुणवती बनेंगी। इसीलिये स्त्री-जाति के उपकारार्थ समस्त भारतवर्ष में इसके प्रचार के लिये एक वर्ष के लिये ।॥) वार्षिक मूल्य रक्खा है। इस समय केवल १०,००० हज़ार ग्राहकों को ।॥) में दिया जायगा। शीघ्र ही ग्राहक बनिए—१०,००० ग्राहक हो जाने पर ३) वार्षिक देने पड़ेंगे। शीघ्र ही ग्राहक बनकर मँगा लीजिए।

यशोदादेवी स्त्री-चिकित्सक, कर्नलगंज, इलाहाबाद।
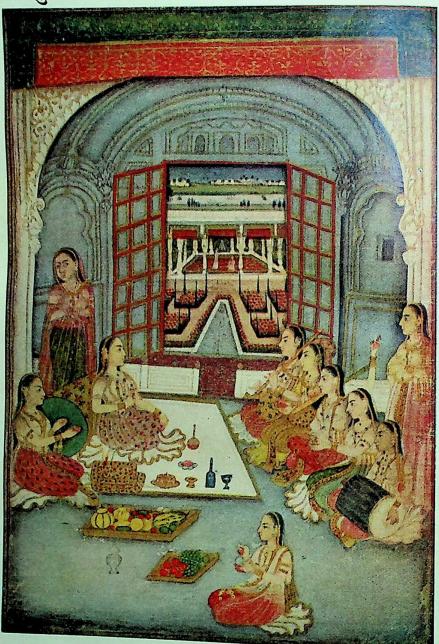
मनोरंजन

[श्रीयुत पं० हनूमान शर्मा की कृपा से प्राप्त]

सखि सौहैं गायन करैं, मधुर-मधुर धुनि होति ;
राग-रँगी प्यारी लसै, जगमग जोबन-जोति ।

N. K. Press, Lucknow.
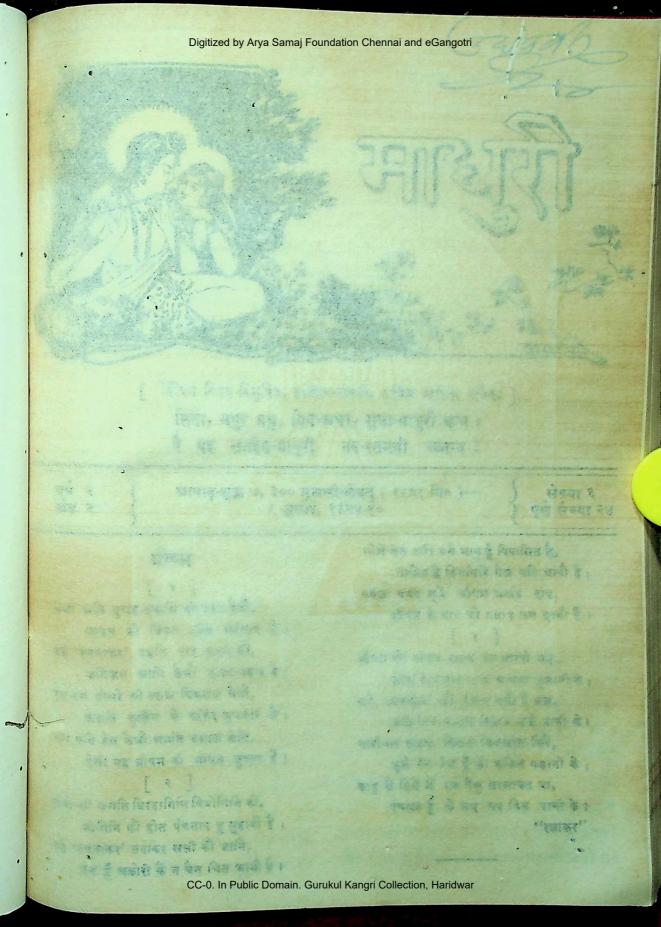
[illegible]

[श्रीयुत पं० हनुमान शर्मा की कृपा से प्राप्त]

लखि लीनैं पावन जरी, मधुर-मधुर धुनि होति ;
राग-रँगी प्यारी लगै, पावन जीवन-जोति ।

N. K. Press, Lucknow

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, तिय-अधर, सुधा-माधुरी धन्य ;
पै यह साहित-माधुरी नव-रसमयी अनन्य !

वर्ष २ खंड २ | आषाढ़-शुक्ल ७, ३०० तुलसी-संवत् (१९८१ वि०)— ९ जुलाई, १९२४ ई० | संख्या ६ पूर्ण संख्या २४

ग्रीष्म

[१]

कैधौं अति दुसह दवागि की दपेट कैधौं,
बाड़व की बिषम झपेट झरझार है ;
कहै 'रतनाकर' दहकि दाह दारुन सौं,
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है।
रुद्र-दृग तीसरे की ज्वाल बिकराल कैधौं,
फेकति फुलिंग कै फनिंद-फुफकार है ;
बीर पति हेत कैधौं अवनि उसास लेति,
ऐसी यह ग्रीषम की भीषम लुआर है।

[२]

सीरी-सी लगति बिरहागिनि बियोगिनि कौं,
जोगिनि कौं होत पंचताप हू सुहायौ है ;
कहै 'रतनाकर' तपाकर ससी कौं जानि,
रैन हूँ चकोरी कैं न चैन चित आयौ है।
सोखे लेत बारि सबै भानु हूँ पिपासित ह्वै,
त्रासित ह्वै हिमगिरि गैल धरि धायौ है ;
प्रबल प्रचंड भूरि भीषम अखंड दाप,
ग्रीषम के ताप कौ प्रताप जग छायौ है।

[३]

ग्रीषम कौ भीषम प्रताप जग जाग्यौ भए,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के ;
कहै 'रतनाकर' त्यौं जीवन भयौ है जल,
जाके बिन मानस थिरात नाहिं प्रानी के।
नारी-नर सकल बिकल बिललात फिरैं,
भूले नेम प्रेम हूँ की कलित कहानी के ;
काहू कैं हियैं मैं रस नैंकु सरसावत ना,
पंचसर हूँ के भए सर बिन पानी के।

"रत्नाकर"

हिंदू-संगठन का आधार

हर एक जाति के संगठन का कोई-न-कोई आधार होना चाहिए। निराधार संगठन असंभव है। जातियों के संगठन के कई प्रकार के आधार होते हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य ये हैं—

(१) धर्म, (२) राज्य, (३) भाषा, (४) इतिहास, (५) समान हिताहित, और (६) सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture)

इन आधारों में से किसी एक या एक से अधिक के आश्रय पर जाति का निर्माण हो सकता है, अन्यथा नहीं। मुसलमानों का संगठन धर्म और संस्कृति पर आश्रित है। अँगरेज़ या फ्रेंच-जाति की भित्ति एक राज्य, एक भाषा, एक इतिहास और एक संस्कृति पर बनाई गई। स्विस-जाति एक राज्य और हिताहित की समता के बंधनों से बँधी हुई है। यहूदी एक धर्म और एक संस्कृति के तागे में पिरोए हुए हैं। इसी प्रकार जहाँ कहीं भी जातीय संगठन है, वहाँ उसके आधार ढूँढ़े जा सकते हैं। इस समय हिंदू-जाति के संगठन की चर्चा चारों ओर व्याप रही है। जाति के हितचिंतक इस बुढ़िया को लठिया का सहारा देकर खड़ा करने के उद्योग में लगे हुए हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम गंभीरता-पूर्वक विचार करें कि हिंदू-संगठन का कोई आधार भी है या नहीं। यदि संगठन का कोई आधार है, तो शायद जाति के नाम को सार्थक किया जा सके; परंतु यदि परिणाम यह निकले कि हिंद-संगठन का कोई आधार है ही नहीं, और यदि है भी, तो इतना निर्बल है कि उस पर जाति का भवन खड़ा नहीं किया जा सकता, तो बुद्धि-मत्ता का तक़ाज़ा है कि निष्फल प्रयत्न से बचा जाय, और पानी पर चित्र बनाने का यत्न न किया जाय।

हम धर्म से आरंभ करते हैं। क्या धर्म हिंदू-संगठन का आधार हो सकता है? अधिकांश लोग सहज ही उत्तर देंगे कि "हाँ, धर्म ही संगठन का सर्वोत्तम आधार हो सकता है।" हिंदू-जाति धर्म-प्रधान है, हिंदू-धर्म सर्वोत्तम है। संगठन के लिये उससे बढ़िया आधार कहाँ प्राप्त हो सकता है? परंतु कुछ गंभीरता से विचार कीजिए, तो मालूम हो जायगा कि हिंदू-धर्म को हिंदू-संगठन का आधार बनाना उतना सहज नहीं है। कारण, वही धर्म संगठन का आधार बन सकता है, जिसको निश्चय से जान सकें और कह सकें। विविध शाखा-प्रशाखाओं में विभक्त हिंदू-धर्म के संबंध में निश्चय के साथ कुछ कहना कठिन है। हिंदू-धर्म का आवश्यक अंग कौन-सा है? क्या ईश्वर-विश्वास हिंदू-धर्म का आवश्यक अंग है? उत्तर मिलता है कि 'नहीं'। यदि ईश्वर-विश्वास विद्यमान हिंदू-धर्म का आवश्यक अंग हो, तो बौद्ध-मतानुयायियों को हिंदू-संगठन में शामिल नहीं किया जा सकता। बौद्ध लोग ईश्वर में विश्वास नहीं रखते। बौद्धों के अतिरिक्त अन्य हिंदुओं में भी ऐसे सज्जनों की यथेष्ट संख्या है, जो ईश्वर में विश्वास रखना आवश्यक नहीं समझते। चार्वाक-मतानुयायियों या नास्तिकों का हिंदू-संगठन से निर्वासन नहीं हो सकता।

'वेदों में विश्वास' को हिंदू-धर्म का दूसरा अंग कह सकते हैं। परंतु उसे हम और भी अधिक निर्बल पाते हैं। बौद्ध, जैन, ब्राह्मो आदि लोग वेदों की अपौरुषेयता या प्रामाणिकता में विश्वास नहीं

रखते। साधारणतः किसी धर्म के दो ही आधार-स्तंभ होते हैं। उपास्य देव, और धर्म-पुस्तक। इन दो के अभाव में धर्म की एकता स्वीकार करना कठिन है। हिंदू-धर्म में उपास्य देवों की अनेकता है। कहीं-कहीं अभाव भी है। और, एक धर्म-पुस्तक का आदर भी नहीं है। ऐसी दशा में धर्म के आधार पर संगठन कैसे किया जा सकता है? हिंदू-धर्म का लक्षण करने के बहुत-से यत्न किए गए; परंतु उनमें से एक भी सफल नहीं हुआ। चोटी हिंदू का लक्षण नहीं है। न यज्ञोपवीत ही हिंदू-मात्र का चिह्न है। जो सिद्धांत एक हिंदू के लिये आवश्यक है, वही दूसरे के लिये अनावश्यक या त्याज्य। जो कार्य एक के लिये पुण्य है, वही दूसरे के लिये पाप। जब यह दशा है, तब हिंदू-धर्म को हिंदू-संगठन का आधार कैसे बनाया जा सकता है? जो स्वयं अनिश्चित है, उससे निश्चित वस्तु नहीं पैदा हो सकती।

जाति के निर्माण में एक राज्य भी कारण होता है। चिरकाल तक एक राज्य में रहने से एकता की भावना दृढ़ हो जाती है। एकत्व-भावना का दृढ़ हो जाना जाति की और जाति के द्वारा राष्ट्र की एकता का कारण बनता है। जाति के संगठन में चिरकाल तक एक राज्य के अधीन रहना बहुत सहायक होता है। परंतु दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। यदि जिस जाति की प्रजा है, उसी जाति का राजा हो, और सारी-की-सारी प्रजा एक ही धर्म को माननेवाली हो, तो जाति का निर्माण शीघ्र हो जाता है, और संगठन भी मज़बूत होता है। हिंदू-जाति को एक राज्य की छत्रच्छाया में रहने का सौभाग्य लगभग ८ या ९ सौ वर्ष तक तो हुआ ही नहीं। जब हुआ, तब ऐसी दशा में कि राज्य में इनको अधीन बन-कर रहना पड़ा। अधीन रहकर भी एकत्व की भावना दृढ़ हो जाती; परंतु देश में केवल एक ही जाति नहीं है, दो जातियाँ हैं। दोनों को देशवासी की हैसियत से एक होकर रहना पड़ता है। यही कारण है कि एक राज्य की अधीनता एक जाति के लिये नहीं, प्रत्युत एक राष्ट्र के लिये साधन बन रही है। एक राज्य जाति के संगठन में सहायक नहीं हो सकता; क्योंकि (१) जाति को राजनीतिक दृष्टि से अन्य जातियों के समकक्ष होकर रहना पड़ता है; (२) राज्य में एक से अधिक जातियाँ हैं; (३) जाति के निर्माण में राज्य सहायक नहीं हो रहा है; और (४) जाति के साथ-ही-साथ राष्ट्र का निर्माण भी हो रहा है। राष्ट्र-निर्माण की व्याप्ति जाति से अधिक है, और इस कारण जाति का संगठन आवश्यकता से अधिक ढीला हो रहा है।

एक भाषा जाति के निर्माण में सहायक हो सकती है। इधर भाषा-भेद के रहते भी स्विस-जाति में राष्ट्र की एकता के कारण संगठन बना हुआ है, उधर जर्मनी और आस्ट्रिया में निवास करनेवाली जर्मन-जातियों को एकता के सूत्र में पिरोनेवाली एक भाषा ही है। इँगलैंड और अमेरिका में राष्ट्र-भेद होते हुए भी जातीय एकता की रक्षा एक भाषा के कारण ही हुई है। हिंदू-जाति को परस्पर एकता के सूत्र में बाँधने का साधन एक भाषा है भी, और नहीं भी। है तो इस प्रकार कि सारी हिंदू-जाति संस्कृत-भाषा *

* संस्कृत की अपेक्षा राष्ट्र-भाषा हिंदी ही सहज साधन हमें समझ पड़ती है। संस्कृत की अपेक्षा हिंदी बोलने और समझनेवाले हिंदू अधिक हैं, और उत्तरोत्तर होते जायँगे। अतः उसी को हिंदू-संगठन का एक मुख्य आधार बनाना चाहिए।—संपादक

की पवित्रता को स्वीकार करती है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक शायद ही कोई टुकड़ा ऐसा होगा, जहाँ के हिंदू संस्कृत-भाषा को धर्म या तत्त्व-ज्ञान की भाषा न मानते हों। इतिहास के लिये भी उसी भाषा के गुप्त ख़ज़ानों की तलाश करनी पड़ती है। यद्यपि भाव प्रकाशित करने के लिये एक भाषा का अभाव एक जाति के निर्माण में बाधक प्रतीत होता है, परंतु भाव बनाने के लिये जिस ख़ज़ाने में तलाश की जाती है, वह एक है। भारत के राष्ट्र-निर्माण और हिंदू-जाति के संगठन-निर्माण की बहुत-सी समस्याएँ समान हैं ; परंतु एक यह भिन्न समस्या है। जहाँ राष्ट्र के लिये किसी एक भाषा का नितांत अभाव है, वहाँ केवल हिंदू-जाति के संगठन के लिये एक भाषा—संस्कृत-भाषा—विद्यमान है, जो यद्यपि प्रचलित नहीं है, परंतु मान्य अवश्य है। आर्य-जाति को संस्कृत-भाषा की स्वर्ण-शृंखला से बाँधा जा सकता है। आज भी आर्य-जाति में यदि एकता की कुछ छाया पाई जाती है, तो उसका एक मुख्य कारण जाति-मात्र की संस्कृत-भाषा में भक्ति की भावना है।

जाति के निर्माण और संगठन में इतिहास का बड़ा भाग है। इतिहास की एकता हृदयों की एकता को पैदा करती है। यदि एक ही पूर्व-पुरुष के नाम पर अपील हो सके, यदि घर की औरतें एक ही-से क़िस्से कहती हों, यदि ऐतिहासिक स्थानों में जाति के पुरुषों की समान श्रद्धा हो, तो जातीय एकता का एक बड़ा कारण विद्यमान है। हिंदुओं में एकता और बंधु-भाव पैदा करने का सबसे उत्कृष्ट साधन आर्य-जाति का इतिहास है। राम, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी आदि नाम आर्य-जाति के लिये अमृत का कार्य कर सकते और करते हैं। जो थोड़ी-सी धार्मिक एकता प्रतीत होती है, वह भी ऐतिहासिक एकता का ही एक भाग है। जो लोग जाति के संगठन को पसंद करते हैं, उन्हें इतिहास का महत्त्व अपने सामने रखना चाहिए। ऐतिहासिक एकता की उपेक्षा कर देने पर भिन्नता पैदा करनेवाले अनेक कारणों को दबाने का कोई साधन हमारे पास नहीं रहता।

समान हिताहित स्वार्थ का नामांतर है। संधि और विग्रह का सबसे मोटा कारण स्वार्थ ही माना गया है। माघ कवि ने कहा है—

"उपकर्त्रारिणा संधिर्न मित्रेणापकारिणा।"

जिससे अपना उपकार होता है, वह यदि ग़ैर या शत्रु हो, तो उससे संधि की जाती है, और मित्र से अपकार होने पर उसे भी त्याग दिया जाता है। बंधु-भाव का स्वाभाविक निमित्त समान हिताहित का निश्चय ही है। इस समय हिंदू-संगठन में जो सबसे बड़ी कठिनाई उपस्थित हो रही है, वह यह है कि हिंदू-मात्र को समान हिताहित का निश्चय नहीं है। इसका मुख्य कारण राजनीतिक परिस्थिति ही है। हमारी राजनीतिक भलाई हिंदुओं से आगे भी जाती है। इस राजनीतिक युग में राजनीतिक अंश को भुला देना बहुत कठिन है। राजनीतिक स्वतंत्रता की माँग अपने हिताहित को हिंदू-जाति तक परिमित समझने में बाधक होती है। इस समय हिंदू विचारकों के सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित है। एक ओर राजनीतिक स्वाधीनता की अभिलाषा है, और दूसरी ओर हिंदू-संगठन की पुकार। दोनों हिताहित आपस में टकराते-से दिखाई देते हैं। इस समस्या को हल करने का उपाय वही मनुष्य बतला सकेगा, जो कोई ऐसी व्यवस्था बतावेगा, जिसमें राजनीतिक और

जातीय हितों का परस्पर संघर्ष न हो। यह कुछ असंभव भी नहीं है। हिंदू भारतवासी भी हैं। देश की स्वाधीनता उनके लिये वैसे ही आवश्यक है, जैसे अन्य जातियों के लिये। राजनीतिक स्वाधीनता सभी भारतवासियों को प्राप्त हो सकती है, केवल हिंदुओं को ही नहीं। राजनीतिक क्षेत्र में जाति लुप्त हो जाती है, राष्ट्र रह जाता है। परंतु इसके अतिरिक्त धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्र में जाति के हिताहित समान हो सकते हैं। इतिहास की समता उसमें समर्थक होती है, और फलतः हिंदू-जाति का जुदा संगठन सार्थक बन जाता है।

अंतिम, परंतु सबसे आवश्यक, ज़ंजीर, जो हिंदू-मात्र को एक क्रम में बाँधती है, सभ्यता और संस्कृति की है। हिंदू-धर्म की व्याख्या कठिन है, परंतु हिंदू-सभ्यता और हिंदू-संस्कृति की व्याख्या सरल है। शायद यह कहना ठीक होगा कि जिसे हिंदू-धर्म कहा जाता है, वह हिंदू-सभ्यता ही है। पृथ्वी पर सभ्यता के जितने प्रकार हैं, उनमें हिंदू-सभ्यता का स्थान अपना ही है। धर्म से हिंदू-मात्र भले ही एक न हों, पर सभ्यता की श्रेणी की दृष्टि से वे निस्संदेह एक हैं। हिंदू पृथ्वी के किसी भी भाग में पहुँच जाय, वह अपनी संस्कृति से पहचाना जा सकता है। यह हिंदू-संस्कृति इस परिवर्तनशील संसार में कम-से-कम एक हज़ार वर्ष की पुरानी है। वेद से आरंभ होकर महात्मा गाँधी के यंगइंडिया तक यह सभ्यता या संस्कृति फैली हुई है। हिंदू-मात्र को और कोई वस्तु एक सूत्र में बाँध सके, या न बाँध सके, किंतु हिंदू-संस्कृति अवश्य बाँध सकती है।

इस प्रकार हमने संक्षेप में हिंदू-जाति की एकता के आधारों का विवेचन किया है। यह विवेचन हमें बतावेगा कि हिंदू-जाति की एकता के लिये एक नहीं, कई आधार विद्यमान हैं। वे आधार हैं—एक प्राचीन भाषा, एक इतिहास, एक सामाजिक हिताहित और एक सभ्यता या संस्कृति। इन चार साधनों को परिपुष्ट करके हिंदू-संगठन मज़बूत किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अशुद्ध आधारों पर ज़ोर देने से केवल संगठन ही कठिन नहीं हो जाता, बल्कि कभी-कभी उलटा ही असर होता है।

इंद्र

पुनर्जन्म

(१)

धन तृष्णा का ईंधन है। ज्यों-ज्यों रुपया आता-जाता है, त्यों-त्यों तृष्णा बढ़ती जाती है। सहारनपुर के लाला अयोध्यानाथ जब तक निर्धन थे, तब तक उन्हें रुपयों की लालसा न थी। परंतु जब चार पैसे हो गए, तो दिन-रात उन्हें बढ़ाने की चिंता हुई। सोचते थे, कोई ऐसी युक्ति निकल आवे, जिससे कुछ ही दिनों में लाखों रुपए इकट्ठे हो जायँ। कभी वह रुपए-पैसे को हाथ का मैल समझते थे। उस समय वह मूर्ख थे। परंतु अब पैसे-पैसे के लिये उनके प्राण निकलते थे। अब उनकी आँखें खुल गई थीं। साधु-महंतों की सेवा के लिये कभी वह बड़ी श्रद्धा रखते थे। उस समय वह निर्धन मनुष्य थे। परंतु अब उसे वह सबसे बड़ी भूल समझने लगे थे। बैंक में चार पैसे इकट्ठे हो गए थे। इतना ही नहीं, तृष्णा की धधकती हुई ज्वाला ने उनके शेष गुणों को भी उसी प्रकार भस्म कर दिया था, जिस प्रकार दावानल वन के साथ गाँवों को भी जलाकर राख कर देती है। मगर यह बात न थी कि अंतःकरण सर्वथा नष्ट हो गया हो। कभी-कभी पुरानी प्रकृति का दौरा हो जाता था, जिस प्रकार युवावस्था के चेहरे में कभी-कभी बचपन का रूप-रंग झलकने लगता है। परंतु यह अवस्था चिरस्थायी नहीं रहती थी। नए स्वभाव के सामने पुराने विचार इस प्रकार दब जाते थे, जिस प्रकार बुढ़ापा यौवन को पछाड़

देता है। लाला अयोध्यानाथ के द्वार पर कोई साधु-महंत आ जाता, तो उनका मुख फूल की तरह खिल जाता था; परंतु आदर-सत्कार के समय वह श्रद्धा न रहती थी। चंद्रमा को ग्रहण लग जाता था।

(२)

संध्या का समय था। लाला अयोध्यानाथ के द्वार पर एक साधु आकर रुका, और एक विशेष गौरव के साथ बोला—"क्यों बाबा, रात काटने के लिये साधु को स्थान मिल जायगा?"

साधु का मुख संतोष की मूर्ति था, और आँखें अमृत के कटोरे। लाला अयोध्यानाथ के हृदय में भक्ति-भाव भर गया। सादर झुककर बोले—"सिर आँखों पर!"

साधु ने मुसकिराकर कहा—"बेटा, आजकल के समय में तुम्हारे-जैसे भक्त पुरुष कहीं-कहीं बिरले ही रह गए हैं। संसार से तो धर्म का भाव ही जैसे उठ गया है।"

अयोध्यानाथ का हृदय खिल गया। अपनी प्रशंसा साधु के मुख से सुनकर उनको ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन्हें स्वर्ग मिल गया हो। हँसी होठों तक आ गई, परंतु उसे दबाकर बोले—"महाराज, यदि साधु-संतों की सेवा न की, तो इस मनुष्य-देह से लाभ ही क्या?"

साधु अंदर पहुँचा। लाला अयोध्यानाथ ने आदर-सत्कार में कोई बात उठा न रक्खी। बासमती के चावल बनवाए। मीठे दही के बड़े भी थे। दालों और भाजियों में घी इस तरह तैरता था, जिस तरह वर्षा के समय नदी-नालों में जल। लाला अयोध्यानाथ साधुओं को ऐसे अच्छे और पुष्टिकारक पदार्थ खिलाने के पक्षपाती न थे। परंतु इस साधु की बातों में न-जाने कैसी शक्ति थी कि उनके वर्षों के विचार क्षण-भर में बदल गए, जिस प्रकार गरमी की सूखी हुई पृथ्वी एक ही दिन की वर्षा से हरी-भरी हो जाती है। इस भक्ति-भाव से साधु का हृदय प्रसन्न हो गया। रात को देर तक बातें होती रहीं। ज्ञान और भक्ति के दफ़्तर खुल गए। अंत में अयोध्यानाथ ने पूछा—"महाराज, आप साधु कैसे हुए?"

साधु ने हँसकर उत्तर दिया—"बेटा, बुढ़ापा आ गया है, अब क्या सारी आयु गृहस्थी ही में फँसा रहूँ? कुछ हरि-भजन भी तो करना चाहिए। तुम्हारी कृपा से बहुत रुपया कमाया। पाँच पुत्र हैं, एक कन्या। अब रुपया-पैसा सब उन्हें बाँट दिया है, और तीर्थ-यात्रा को जा रहा हूँ।"

अयोध्यानाथ ने साधु के मुख की ओर देखा, और पूछा—"तो आपने अपना सब कुछ बच्चों को दे दिया, या अपने पास भी कुछ रक्खा है?"

साधु ने उत्तर दिया—"मेरे हाथ में जो लोहे की लाठी देखते हो, यह अंदर से खोखली है। इसमें मैंने एक सौ मुहरें डाल रखी हैं। यात्रा में कभी-कभी धन की आवश्यकता पड़ जाती है।"

यह कहते-कहते साधु को नींद आ गई। परंतु अयोध्यानाथ की आँखों में नींद न थी। वह बार-बार सतृष्ण नेत्रों से लाठी की ओर देखते, और मन-ही-मन कुछ सोचते थे। लोभ धर्म के पीछे छिपा हुआ था। कुछ समय तक यह संग्राम होता रहा। अंत में लोभ ने धर्म को पछाड़ दिया। अयोध्यानाथ ने लाठी उठा ली। परंतु हाथ-पैर काँप रहे थे। अंतःकरण ने फिर फड़फड़ाना शुरू किया। परंतु लोभ के दृढ़ हाथों ने उसका गला घोट ही तो दिया। अयोध्यानाथ ने कमानी दबाई। लाठी खोलकर मुहरें निकालीं, और उनके स्थान में पैसे भर दिए। पाप का मंत्र सिद्ध हो गया।

(३)

प्रातःकाल हुआ। साधु हरद्वार जाने को तैयार हुआ। अयोध्यानाथ का हृदय बैठता जाता था। उन्हें डर था कि कहीं साधु को संदेह न हो जाय। इस विचार से उनके चेहरे का रंग उड़ा जाता था। परंतु साधु को इस घटना की कुछ भी ख़बर न थी। वह मुसकिरा-मुसकिराकर बातें करता और रात के आदर-सत्कार के लिये बार-बार धन्यवाद देता था। चलते समय अयोध्यानाथ ने कहा—"महाराज, मेरे यहाँ संतान नहीं है। आप ईश्वर से प्रार्थना करें। हम पापी लोग हैं। हमारी प्रार्थना में असर नहीं है। आप महात्मा हैं। परमात्मा आपकी सुनेगा।"

साधु ने उत्तर दिया—"सुनेगा या नहीं, यह तो वही जाने। परंतु मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि भगवान् तुम्हें संतान दे।"

यह कहकर साधु चला गया। अयोध्यानाथ के सिर से बोझ उतर गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो साधु के जाने के साथ ही उनके हृदय से पत्थर हट गया। वह इस चोरी के फल से नहीं बच सकते थे, यह उनका मन और मस्तिष्क अनुभव कर रहा था। परंतु वह इस चोरी के प्रकट होने से बहुत डरते थे। चोरी का प्रकट होना प्रत्यक्ष

था, किंतु उसका फल भविष्य के परदे में था। मनुष्य वर्तमान समय के सामने भविष्य की पर्वा नहीं करता।

उधर साधु हरद्वार पहुँचा, तो हृदय प्रसन्न हो गया। यहाँ साधु-संतों को देखकर उसे ऐसी प्रसन्नता हुई, मानो स्वयं भगवान् के दर्शन हो गए हों। उसका मन ब्रह्मानंद में लीन हो गया। एक हलवाई को बुलाकर बोला—"मैं एक महायज्ञ करना चाहता हूँ, जिसमें हरद्वार के समस्त साधुओं को भोजन कराया जायगा। उसमें सारा ख़र्च कितना बैठेगा?"

हलवाई ने अंदाज़ लगाकर उत्तर दिया—"साढ़े सात सौ रुपए।"

"इसमें सब कुछ हो जायगा?"

"बहुत अच्छी तरह।"

साधु ने क्षण-भर सोचा, और फिर कहा—"तुम यह प्रबंध कर सकोगे?"

"कर सकेंगे।"

"तो सब प्रबंध तुम ही करो। जो ख़र्च होगा, मैं दूँगा।"

यह कहते-कहते उसने एक भाव-भरी दृष्टि से अपनी लाठी की ओर देखा।

हलवाई ने उत्तर दिया—"आप निश्चिंत रहें, सब प्रबंध हो जायगा।"

दूसरे दिन यज्ञ हुआ। हरद्वार-भर में धूम मच गई। लोग देखते थे, और आनंद से झूमते थे। कहते थे, यज्ञ बहुत देखे हैं, परंतु इस उदारता और भक्ति-भावना से रुपए पानी की तरह बहाते किसी को नहीं देखा। ऐसे धनाढ्यों की कमी नहीं, जिनके पास मुहरों की देगें हैं। वे मुक़द्दमेबाज़ी में लाखों लुटा देते हैं, बेटे के ब्याह में लाखों उड़ा देते हैं; परंतु धर्म की राह पर पैसा ख़र्च करते समय उनके दिल छोटे हो जाते हैं। यह मनुष्य है, जिसने अपना सच्चा धर्म समझा है, और धर्म के सामने पैसे का मुँह नहीं देखा। साधु का दिमाग़ आसमान पर पहुँच गया, और उसका हृदय आनंद के हिलोरे लेने लगा। साधु तो प्रसन्न हो रहा था, परंतु प्रारब्ध का पाँसा उलटा पड़ रहा था।

(४)

शाम हुई। साधु ने अपने कमरे का दरवाज़ा बंद किया, और लाठी की कमानी दबाई। उसके अंदर पैसे देखकर उसका हृदय काँप गया! उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह कोई भयानक स्वप्न देख रहा है। उसे अपने नेत्रों पर विश्वास न होता था। वह चाहता था कि यह स्वप्न जितनी जल्दी हो सके, समाप्त हो जाय। परंतु यह स्वप्न ऐसा न था, जिसके पश्चात् जागृति आती है। उसने पैसों को आँखें मल-मलकर देखा। उसे ख़याल था कि अब भी मेरी भूल दूर हो जायगी। परंतु प्रत्येक पैसा वही पैसा था। साधु के मुख पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। हलवाई का हिसाब थोड़ी देर बाद देना था। सोचा, अब क्या होगा! अपमान का चित्र आँखों के सामने खिंच गया। साधु काँपकर खड़ा हो गया। अपमान का विचार अपमान से अधिक भयानक है। साधु में उसके सहन करने की शक्ति न थी। उसने कुछ देर विचार किया, जिस प्रकार निराश मनुष्य समुद्र में कूदने से पहले विचार करता है, फिर दरवाज़ा बंद कर दिया। साथ ही उसकी आशा के दरवाज़े भी बंद हो गए। साधु ने चारपाई की पाँइती निकाली, और उसे छत से लटका दिया। मृत्यु दरवाज़े पर खड़ी थी। अंतःकरण ने उपदेश दिया, मस्तिष्क ने युक्तियाँ दीं। परंतु निराशा ने सब ओर अँधेरा फैला दिया। साधु का मुख मृतक के समान सफ़ेद हो गया। तब उसने चारपाई पर खड़े होकर रस्सी का फंदा गले में डाला, और थरथराते हुए पाँवों की अंतिम चेष्टा से चारपाई को ठोकर मारकर गिरा दिया। मृत्यु अंदर आ गई।

कैसा आनंदमय प्रभात था, परंतु किसे पता था कि उसकी शाम ऐसी दुःखमयी होगी। थोड़े समय के पश्चात् यह घटना बच्चे-बच्चे के मुख पर थी।

(५)

साधु मर गया, परंतु उसका आशीर्वाद ज़िंदा था। वर्ष के भीतर ही अयोध्यानाथ के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। मरी हुई आशाओं में जान पड़ गई। अयोध्यानाथ ऐसे प्रसन्न थे, मानो सारे संसार का धन मिल गया हो। अँधेरे घर में प्रकाश हो गया था। उनके पैर भूमि पर न पड़ते थे। बालक का नामकरण-संस्कार बड़ी धूमधाम से किया गया। इस उत्सव के अवसर पर एक बड़ा भोज दिया गया। उस दिन अयोध्यानाथ ने सारी आयु की कृपणता की कोर-कसर निकाल दी; रुपए-पैसे पानी की तरह बहाए। बालक का नाम द्वारकानाथ रक्खा गया। ज्यों-ज्यों वह आयु में बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों अयोध्यानाथ

की कामनाएँ पह्ल्ला पसारती जाती थीं। द्वारकानाथ बहुत सुशील बालक था। उसकी बुद्धि देखकर आश्चर्य होता था। लोग कहते थे, यह कुल का नाम बढ़ावेगा। अयोध्या-नाथ यह सुनते, तो फूले न समाते। उसकी शरारतों और चंचलताओं को देखकर उनका प्यार बढ़ता जाता था। इसी प्रकार छः वर्ष बीत गए। द्वारकानाथ स्कूल में पढ़ने गया। वहाँ उसके गुणों का विकास होने लगा। सोना कुंदन बन गया। वह सदैव अपनी श्रेणी में प्रथम रहा करता था। अयोध्यानाथ यह देखते और परमात्मा को धन्यवाद देते थे।

परंतु कभी-कभी जब उन्हें साधु के साथ अपना दुर्व्यवहार स्मरण आ जाता, तो उनके जिगर में भाले चुभ जाते थे, और उनकी आत्मा पर एक अज्ञात-सा भय छा जाता था। उन्हें अब रह-रहकर अपने ऊपर क्रोध आता था। वह बहुधा मन-ही-मन दुखी होते थे कि मेरी बुद्धि पर कैसा परदा पड़ गया, जो ऐसी मूर्खता कर बैठा। वह गुज़रा हुआ समय उनके हाथ न आनेवाला था। उन्होंने वे मुहरें एक रूमाल में बाँधकर एक संदूक़ में रख दीं, और निश्चय कर लिया कि उस साधु को दे देंगे। उसकी खोज में उन्होंने कई मनुष्य भेजे; परंतु उनकी साधु तक पहुँच न हो सकी। यहाँ तक कि यह घटना अयोध्यानाथ को भूल गई। परंतु वह मुहरों की पोटली उसी तरह पड़ी रही।

(६)

द्वारकानाथ अठारह वर्ष का हो गया।

वसंत के दिन थे। खेतों में सरसों फूली हुई थी। अयोध्यानाथ द्वारकानाथ और धर्मपत्नी के साथ अयोध्या को चले। वहाँ पहुँचकर अयोध्यानाथ को एक नया रहस्य मालूम हुआ। द्वारकानाथ की प्रकृति साधुओं की-सी थी। वह दिन-रात साधुओं के डेरों में घूमता रहता था। अयोध्यानाथ यह देखकर कुढ़ते थे; परंतु कुछ न कर सकते थे। द्वारकानाथ का मुख देखकर उनका क्रोध तत्काल उतर जाता था। वह बहुतेरा सोचते थे, परंतु उन्हें द्वारका-नाथ की इस प्रकृति का कारण समझ नहीं पड़ता था।

सायंकाल था। द्वारकानाथ अपने डेरे को लौट रहा था कि रास्ते में एक मनुष्य रोता हुआ मिला। द्वारकानाथ ने आश्चर्य से पूछा—"क्यों, रोते क्यों हो?"

"क्या कहूँ, कहते लज्जा आती है।"

"फिर भी।"

"व्यापार में घाटा हो गया है।"

"यह तो एक मामूली बात है।"

आगंतुक ने विचित्र भाव से द्वारकानाथ की ओर देखकर कहा—"मुझे ऋण चुकाना है। वह मुझ पर नालिश करनेवाले हैं।"

द्वारकानाथ कुछ देर चुप रहा। यह मौन आगंतुक के लिये आशा बन गया। बहते हुए आँसू रुक गए। द्वारकानाथ ने पूछा—"कितने रुपयों से तुम्हारा काम चल सकेगा?"

जब मनुष्य निराश हो जाता है, तो उसे पग-पग पर आशा दिखाई देती है। आगंतुक को भी साहस हो गया। उसने हिसाब लगाकर उत्तर दिया—"मेरे सिर चौदह सौ रुपए के लगभग ऋण चढ़ा हुआ है।"

"चौदह सौ रुपए!"

"हाँ, चौदह सौ रुपए।"

द्वारकानाथ कुछ देर चुप रहा। फिर सहसा उसने कहा—"चिंता न करो, प्रबंध हो जायगा।"

आगंतुक ने पूछा—"तो कब तक?"

"आज ही रात तक। तुम्हारी दूकान कहाँ है?"

"चौक में जो हलवाई की बड़ी दूकान है, वह मेरी ही है।"

द्वारकानाथ उड़ता हुआ घर पहुँचा। उस समय उसके हृदय में हलचल मची हुई थी। उसका चित्त व्याकुल था। वह चाहता था कि जितनी जल्दी हो सके, हलवाई का संकट दूर कर दे। उसे किसी दिव्य शक्ति ने विश्वास दिला दिया था कि इसकी सहायता करना मेरा ही धर्म है। वह एक विशेष भावुकता के साथ घर गया। माता और पिता, दोनों कहीं बाहर थे। द्वारकानाथ का रास्ता साफ़ हो गया। उसने नौकर से चाबियाँ लीं, और कमरे के अंदर गया। परंतु संदूक़ में ताला लगा था। द्वारकानाथ पर भूत-सा सवार था। उसने पत्थर लेकर दरवाज़ा तोड़ डाला। फिर संदूक़ टटोलने लगा। निराशा ने पैर फैलाए, हृदय ने अपना सिर ऊँचा किया। एकाएक आशा की चमक दिखाई दी। द्वारकानाथ के हाथ में एक रूमाल आ गया। उसने काँपते हुए हाथों से उसे जल्दी से खोला। हृदय कमल की तरह खिल गया। ये वे ही मुहरें थीं। गिना, पूरी सौ निकलीं। हृदय प्रफुल्लित हो गया। वह उन्हें जेब में रख-कर इस तरह भागा, जैसे कोई पुलिस का कर्मचारी पीछे लगा हो। द्वारकानाथ ने भलाई के लिये बुराई की परंतु ऐसी बुराई करनेवालों की संख्या कितनी है?

रात का समय था। द्वारकानाथ अपने डेरे को वापस आया। परंतु अभी आकर बैठा ही था कि पेट में पीड़ा होने लगी। द्वारकानाथ जियाला नवयुवक था। बड़े-से-बड़े कष्ट में भी वह हिम्मत न हारता था। परंतु यह पीड़ा न-जाने किस प्रकार की थी कि उसके मुख से एक चीख़ निकल गई। अयोध्यानाथ को ऐसा जान पड़ा, जैसे कोई विपत्ति फट पड़नेवाली है। यह आनेवाली विपत्ति का पूर्व रूप था। वह दौड़े हुए डॉक्टर के पास गए; परंतु अभी वापस न आए थे कि द्वारकानाथ ने प्राण त्याग दिए। अयोध्यानाथ ने यह सुना, तो पछाड़ खाकर गिर पड़े, और कई दिन तक बीमार रहे। परंतु द्वारकानाथ को क्या हो गया, यह आज तक उनकी समझ में न आया। एक दिन संदूक़ में किसी चीज़ के लिये हाथ डाला, तो मुहरोंवाला रूमाल न था। एकाएक उनको कई वर्षों की भूली हुई घटना याद आ गई। परंतु उन मुहरों का चला जाना और द्वारकानाथ का अचानक मरना, इन दोनों घटनाओं में क्या संबंध है, इसे वह अभी न समझ सके। द्वारकानाथ वास्तव में उसी साधु के पुनर्जन्म का प्रत्यक्ष प्रमाण था।

सुदर्शन

शांति-निकेतन

बहुत दिनों से महाकवि रवींद्रनाथ की रचनाएँ पढ़कर उन पर मनन करते-करते मन में विश्व-प्रेम-संबंधी उनके आदर्श पर दृढ़ विश्वास तथा भक्ति उत्पन्न हो गई थी। संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों की स्वार्थपरता के कारण होनेवाले रक्तपात तथा राष्ट्रीयता और धर्म के नाम पर होनेवाले अत्याचारों से खिन्न हृदय किसी ऐसे उपाय की तलाश में था, जो अशांति-पूर्ण मानव-समाज को शांति-सुधा पिलाकर प्रसन्न कर सके।

विश्व-मैत्री के द्वारा विश्व-हृदय को मिलानेवाले उक्त महापुरुष ने हमारी पुण्य-भूमि ही में जन्म लेकर अपना प्रेम-शांति का संदेश सारे संसार को सुनाया तथा संसार के सामने शांति तथा मैत्री का एक-मात्र उपाय उपस्थित किया है।

बहुत दिनों से हृदय में प्रबल इच्छा थी कि महापुरुष रवि बाबू तथा उनके उस पवित्र आश्रम शांति-निकेतन के दर्शन कर मन को शांत करूँ, जिसकी शांतिमय छाया तथा प्रशांत वातावरण में से वह विश्व-कवि अपनी भारती के शांत गंभीर मधुर स्वर में विश्व-भारती का आह्वान करते हैं, और जहाँ समग्र विश्व की भारती एकत्र होकर विश्व-भारती की साधना एवं आराधना करती है। हृदय उस विश्व-हृदय के संगम-स्थल के शांति-सागर में ग़ोते लगाने के लिये चिरकाल से अशांत था। कविवर की कविता के अंतस्तल में जितना ही प्रवेश होता जाता था, उतना ही उक्त अद्भुत प्रतिभाशाली महापुरुष के दर्शन की लालसा बढ़ती जाती थी।

साथ ही प्राचीन ऋषियों की-सी स्वाभाविक, सरल तथा उच्च शिक्षा-प्रणाली के निरीक्षण की भी इच्छा थी, जिसके द्वारा प्रकृति-माता की गोद में बैठकर सरल जीवन बितानेवाले जिज्ञासु विद्यार्थी ज्ञान को केवल मस्तिष्क ही तक नहीं, किंतु आत्मा तक पहुँचाकर विश्व-भारती के सच्चे वर-पुत्र बनते हैं।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारतवर्ष के लिये सबसे महत्त्व-पूर्ण प्रश्न ग्राम-जीवन का सुधार तथा ग्राम-संगठन ही है। कविवर के विशाल हृदय ने भी इस प्रश्न की महत्ता का अनुभव किया है। यह जानकर हृदय में प्रसन्नता के साथ ही यह जानने की इच्छा भी उत्पन्न हुई कि इस समस्या की पूर्ति के लिये कविवर किन उपाय-रूपी छंदों का प्रयोग कर रहे हैं।

इन सब इच्छाओं की पूर्ति के लिये चिरवांछित यात्रा का सुअवसर, बहुत प्रतीक्षा के बाद, मिल ही गया। शांति-निकेतन आश्रम बंगाल के वीर-भूमि-ज़िले में है। वहाँ जाने के लिये ई० आई० आर०-लाइन के बर्दवान या उसके पास के रवाना-नामक स्टेशन से गाड़ी बदलकर, छोटी लाइन के द्वारा, बोलपुर-स्टेशन पर उतरना पड़ता है। पहले से ख़बर देने से, शांति-निकेतन को जाने के लिये, स्टेशन पर मोटर उपस्थित हो जाती है। अन्यथा गाड़ियों की सवारी मिलती है।

बर्दवान में मालूम हुआ कि कविवर अभी यात्रा से नहीं लौटे हैं। यहाँ गाड़ी भी बदलती थी, और कुछ-कत्ते से आनेवाली गाड़ी में बैठकर बोलपुर जाना था। न-जाने क्यों, अचानक मन में यह विचार आया कि

कहीं इसी गाड़ी से कविवर भी न आते हों । अगर ऐसा हुआ, तो बड़ा आनंद रहेगा। आश्चर्य तो तब हुआ, जब मन की यह कल्पना सच निकली। उसी गाड़ी में कविवर भी कलकत्ते से बोलपुर जा रहे थे! रास्ते-भर अपार आनंद रहा। उन्हीं के साथ बोलपुर से मोटर पर शांति-निकेतन गया। जिन महापुरुष के दर्शनों के लिये इतनी लंबी यात्रा की थी, उन्हीं के साथ हो जाने से हृदय उछलने लगा। शांति-निकेतन के प्रति मेरा वही भाव था, जो किसी पवित्र तीर्थ-स्थान की ओर होता है। अतः मैं उसे साधारण रीति से देखने के लिये एक दर्शक के रूप से नहीं, बल्कि, पियर्सन साहब के शब्दों में, एक ऋषि-मंदिर के दर्शनों के लिये एक तीर्थ-यात्री के रूप में जा रहा था।

रवि बाबू श्रीमान् प्रोफ़ेसर लेवी और उनकी धर्मपत्नी से मिल रहे हैं

पहले मन में अनेकों भक्ति-भावनाएँ उठ रही थीं। साथ ही, अपरिचित होने के कारण, एक प्रकार का आश्चर्य तथा संदेह का भाव भी उसमें मिश्रित था। गुरुदेव-(रवींद्र बाबू)-सरीखे महापुरुषों के सामने किस प्रकार जाऊँगा, क्या बातें करूँगा, सब लोग किस भाव से मिलेंगे आदि अनेक प्रकार की शंकाएँ उठ रही थीं। किंतु गुरुदेव के दर्शनों ही से सब कुतर्क मिट गए, और उनकी सरलता पर आश्चर्य होने लगा।

आश्रम में पहुँचते-पहुँचते बहुत रात हो गई। रात के चंद्रमा के धुँधले प्रकाश में निद्रित आश्रम योगनिद्रा-मग्न ऋषि-सा जान पड़ता था। ऋषियों ही के समान उसने अपने वृक्ष-लतारूपी अंगों को हिला-हिलाकर मूक भाव से हम निशीथ के क्षुद्र अतिथियों का स्वागत कर अपनी अतिथि-शाला में आश्रय दिया। चंद्र ही आश्रम का स्वाभाविक प्रकृति-दत्त लैंप था; किंतु हम अजनबी लोग कहीं आश्रम-ऋषि की योगनिद्रा-मग्न मूर्त्ति के दर्शन न कर लें, इसीलिये वह अपने ऊपर बारीक मेघों का परदा डाले हुए था। तथापि इससे आश्रम की शोभा कम होने के बदले और भी बढ़ गई थी। स्तब्ध होकर मैं उसी शोभा को निरखता रहा। इस शोभा को देखते हुए मुझे उस समय का स्मरण हो आया, जब रवींद्र बाबू अपनी बाल्यावस्था में अपने पिता के साथ यात्रा करते हुए यहाँ पहले-पहल आए थे। वह भी रात को यहाँ पहुँचे थे। उन्होंने लिखा है, उस वन-स्थली की शोभा देखते ही उन्होंने उस चित्र को अपनी आँखों के परदे पर खींचकर पलकें बंद कर ली थीं कि कहीं वह शोभा बिगड़ न जाय! कविवर के समान भावुकता अपने में पाकर मैंने आँखें खोलकर खूब जी भरकर उस सुंदर शांति-शोभा-सुधा का पान किया।

चारों ओर अखंड शांति विराजमान थी। आश्रम उस समय मानो पूर्ण शांति का निकेतन बनकर अपने नाम को सार्थक कर रहा था। यदि उस अखंड शांति को कोई तोड़ रहा था, तो वह थी एक सुमधुर संगीत-तान, जो एक पास की कुटी से निकल शांति-सागर

तरंगित करती हुई मेरे कानों के तट पर टकरा रही थी । वह कितनी मधुर तान थी ! किसी कल-कंठी के कोमल कंठ से निर्गत वह राग कोकिल-कूजन से किसी भाँति कम न था । वह स्वर शांति को नष्ट करने के बदले और भी प्रगाढ़ कर रहा था, मानो अर्ध-निद्रित आश्रम को लोरी गाकर सुला रहा था । ऐसा जान पड़ता था, मानो आश्रम की देवी अपने मधुर राग से हम श्रांत पथिकों का आह्वान और स्वागत कर रही है ।

इसी प्रशांत शांति में हृदय को तन्मय कर उस विश्व-शांति-निकेतन परमात्मा के शांतिमय रूप की प्रार्थना कर मैंने अपने श्रम-श्रांत शरीर को निद्रा-देवी के शांतिमय अंक में शायित किया । सवेरे आश्रम की मंद वायु की हिलोरों के साथ-साथ आश्रम-वासी विद्यार्थियों की प्रार्थना के मंत्र तथा प्रभात-संगीत ने हम लोगों की निद्रा नष्ट की । सूर्य भगवान् ने अपनी अरुण किरणों से आश्रम के पेड़-पौदों को अनुरंजित कर दिया । मैं कविवर-कृत गान गुनगुनाने लगा—

"अयि भुवनमनोमोहिनी !—
प्रथम प्रभात उदय तव गगने,
प्रथम साम-रव तव तपोवने,
प्रथम प्रचारित तव तप-भवने,
ज्ञान धर्म कत पुण्य-काहिनी ।"

आश्रम की प्रातःकालीन सुंदरता में कविवर के गान अपूर्व आनंद देते हैं । मानो उस बाह्य सौंदर्य को हृदय के चित्रपट पर सुंदर रंगों से अंकित कर आत्मा को उसी सौंदर्य का रूप बना देते हैं । जिस आश्रम के दिव्य आलोक में ये गीत कवि के अंतःकरण से निकले हैं, उसी के दिव्य प्रभात में उनका यथार्थ अर्थ प्रकाशित होता है ।

रात्रि के धुँधले प्रकाश में जो वन-श्री अज्ञात परदे में छिपी थी, उसी को भगवान् भास्कर की किरणों ने अनुरंजित कर परम शोभायुक्त बना दिया ।

आज आश्रम की छुट्टी है । आज ही के दिन ब्रह्म-समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने ब्रह्म-समाज की स्थापना की थी । अतः उक्त समाज के अनुयायियों में यह दिन अत्यंत पवित्र माना जाता है । इसी के उपलक्ष में आज उपासना-मंदिर में विशेष प्रार्थना होनेवाली थी, जिसमें गुरुदेव (आश्रम में सब लोग कविवर के लिये इसी पूज्य नाम का प्रयोग करते हैं) सम्मिलित होकर कुछ उपदेश देनेवाले थे । ऐसे शुभ अवसर पर यहाँ उपस्थित होने के कारण मैंने अपने को भाग्य शाली समझा । सबके साथ मंदिर में प्रवेश किया ।

रवि बाबू कुछ लिख रहे हैं
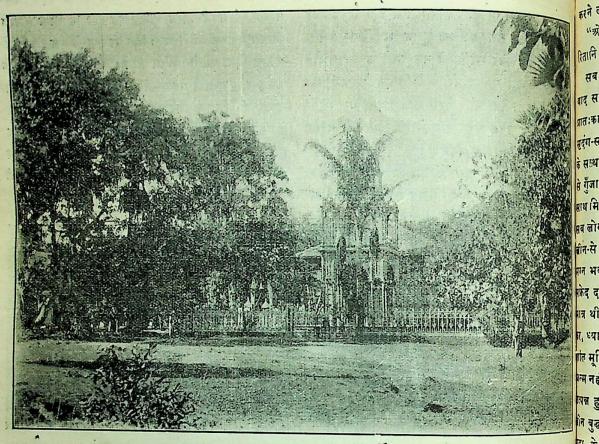
शांति-निकेतन का मंदिर

मंदिर आश्रम के उत्तर-कोण पर बना हुआ है। मंदिर क्या है, एक छोटा-सा काच-जटित बँगला-सा है, जिसके चारों ओर पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। भीतर का फ़र्श संगमरमर का बना हुआ है। दीवारों में रंगीन शीशे जड़े हुए हैं, तथा छत में शीशे के फ़ानूस लटक रहे हैं। इसी कारण आस-पास के गाँववालों में यह काँच-बँगले के नाम से प्रसिद्ध है, और ज़रा ऊँची ज़मीन पर होने के कारण दूर से दिखाई भी देता है। मंदिर का मुख पूर्व की ओर है, और सामने एक लोहे का ऊँचा गुंबद बना हुआ है, जिसके कारण इसे मंदिर का कुछ आकार प्राप्त है। दक्षिण फाटक पर गोलाकार यह उपनिषद्-वाक्य लिखा हुआ है—

"ओं सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति; यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्यो- मित्येतत् ।"

दोनों खंभों में से एक पर वैदिक मंत्रों में ब्रह्म का वर्णन तथा दूसरे पर उसका बँगला में अनुवाद खुदा हुआ है।

गिरजाघरों के समान इस मंदिर के दक्षिण दरवाज़े पर एक घंटा लटकता है, जो बजकर सबको प्रार्थना के लिये एकत्र होने की सूचना देता है। थोड़ी देर तक घंटा बजते ही बालक-बालिकाएँ तथा शिक्षक-शिक्षिकाएँ, सब जमा हो गए, और शांत भाव से बैठ गए। नंगे सिर शाल ओढ़े बालक ऋषि-पुत्रों के समान तथा शुभ्र-स्वच्छ वसनाच्छादित बालिकाएँ देवकन्याओं के समान सुंदर देख पड़ती थीं। गुरुदेव के आसन की ओर मुख करके एक ओर पुरुष तथा दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठ गईं।

ऋषि-कल्प गुरुदेव के मंदिर में प्रवेश करते ही सब लोग उठ खड़े हुए, तथा निश्चल भाव से ध्यानावस्था में हाथ जोड़कर खड़े रहे। गुरुदेव अपने आसन पर पूर्व

की ओर मुख कर हाथ जोड़ आँखें बंद किए खड़े हो गए, तथा धीरे-धीरे आश्रम की नित्य प्रार्थना के मंत्र उच्चारण करने लगे—

"ओम् पिता नोऽसि पिता नो बोधि। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ; यद् भद्रं तन्न आविश।" इत्यादि

सब लोगों ने इन्हीं मंत्रों को फिर दुहराया। इसके बाद सब बैठ गए, और संगीत का आरंभ हुआ। उस प्रातःकालीन, शीतल, मंद वायु के साथ मिलकर वीणा-मृदंग-समन्वित स्वर-लहरी ने प्रार्थना-मंदिर को गुंजाने के साथ ही मेरे हृदय-मंदिर को भी आनंदमय स्वरों से गुँजा दिया। गुरुदेव के मंत्र-समान शब्दों ने वीणा के साथ मिलकर मेरी हृदय-वीणा को भी झंकृत कर दिया। सब लोग विमुग्ध भाव तथा निश्चल मुद्रा से उसी स्वर में लीन-से जान पड़ने लगे। उस समय गुरुदेव की ध्यान-मग्न भव्य प्रशांत मूर्ति दर्शनीय थी। वक्षःस्थल-लंबित सफ़ेद दाढ़ी मानो हृदय की शुभ्रता का बाह्य प्रतिबिंब-मात्र थी। अश्रुयुक्त, प्रशांत मुख-मंडल, नेत्र निमीलित थे, ध्यान-सागर में मग्न था। जिसने उस ध्यानावस्थित शांत मूर्ति के एक बार भी दर्शन किए हैं, वह उसे आजन्म नहीं भूल सकता, तथा उसके हृदय में भक्ति-भाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता। मेरे सामने तो ध्यान-लीन बुद्ध भगवान् की प्रशस्त मूर्ति नाचने लगी। उस मुद्रा के द्वारा मैंने उसमें अनंत अंतरतम में निहित विश्वात्मा का कुछ आभास पाया, तथा उसी की भक्ति में तन्मय हो गया।

गान समाप्त होते ही वह भव्य मूर्ति ध्यान से कुछ जागी, तथा निमीलित नेत्रों ही से कुछ अस्फुट शब्दों का उच्चारण करने लगी। मालूम होता था, अभी उनकी आत्मा उस अंतरतम परमात्मा के चरणों ही में लीन है, तथा वह उसी को अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर आत्मनिवेदन-सा कर रहे हैं। फिर वह धीरे-धीरे बात-चीत-सी करने लगे। यह उपदेश नहीं था ; प्रार्थना भी नहीं थी ; केवल एक भक्त का अपने हृदय-सिंहासनस्थ भगवान् से संभाषण-मात्र था। उन हार्दिक उद्गारों में कितनी एकांत भक्ति, कितनी श्रद्धा, कितनी तन्मयता, कितना अपार आनंद तथा कितना आत्मप्रकाश प्रकट होता है, इसका वे ही अनुभव कर सकते हैं, जिन्होंने कभी उस सुख से वे उद्गार सुनकर अपने मन और प्राणों को पवित्र किया हो, तथा केवल ऊपरी कानों को न खोलकर हृदय के कानों द्वारा उस मधुर सुधा से आत्मा को पवित्र, आनंदित तथा भक्तिमय किया हो। मैंने बहुत चाहा कि नोट ले लूँ ; किंतु उन शब्दों का आनंद छोड़कर यह कष्टप्रद कार्य करने की इच्छा न हुई। मुझ-सरीखा अपवित्र-हृदय भी उतनी देर के लिये सच्चे भक्ति-सुख में तन्मय होकर, बहुत रोकने पर भी, अश्रुपात को न रोक सका। मानो उन महापुरुष के दर्शन-मात्र से सारी अपवित्रता धुल-सी गई। "शान्तं शिवमद्वैतम्" तथा "आनन्दरूपममृतं यद्विभाति", इन्हीं दो मंत्रों के चारों ओर उन महाभक्त कवि के वाक्य गुँथे हुए थे। वह इन्हीं मंत्रों में निहित तत्वों का विवेचन कर रहे थे। किंतु यह सब उपदेश रूप से न होकर स्वाभाविक भक्त हृदय के सरल उद्गारों के रूप में था, और इसीलिये सीधे जाकर हृदय पर असर करता था।

इसके बाद मेरे पास बैठी हुई कुछ बहनों ने एक गीत गाया। इस गीत से भी अपार आनंद प्राप्त हुआ। उस गीत में निहित भक्ति का प्रत्यक्ष रूप सामने बैठे हुए ध्यानावस्थित गुरुदेव की मूर्ति में मूर्तिमान् हो रहा था।

गीत के पश्चात् गुरुदेव ने जो शब्द कहे, वे अवश्य ही उपदेश या भाषण-रूप में थे ; किंतु उनमें भी आत्मविस्मृति तथा भक्ति-तल्लीनता का अनुभव होता था। उपदेश सांप्रदायिकता के विषय में था। भिन्न-भिन्न धर्मों में कट्टरपन के कारण जो अत्याचार होते हैं, उनके लिये कविवर का हृदय कितना दुःखित हो रहा है, यह अच्छी तरह प्रकट हो रहा था। सब धर्मों के मूलभूत, एक, अनंत, आनंद-रूप परमात्मा की उपासना का असली अर्थ यदि संप्रदायों के कट्टर पक्ष-पाती समझें, तो कभी ऐसे काम न करें। अंत में गुरुदेव ने ज़ोरदार शब्दों में कहा—"ईश्वर के सामने न तुम हिंदू हो, न मुसलमान हो, और न ब्राह्मण हो, किंतु मनुष्य-मात्र हो।"

धार्मिक साम्य स्थापित करनेवाले नानक, कबीर, चैतन्य तथा राममोहन राय की प्रशंसा करके अंतिम महापुरुष के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि धार्मिक एकता का आदर करने ही के कारण हम राममोहन राय को याद कर रहे हैं। उनकी स्मृति मनाना है पक्षपात और अंधविश्वास को छोड़कर।
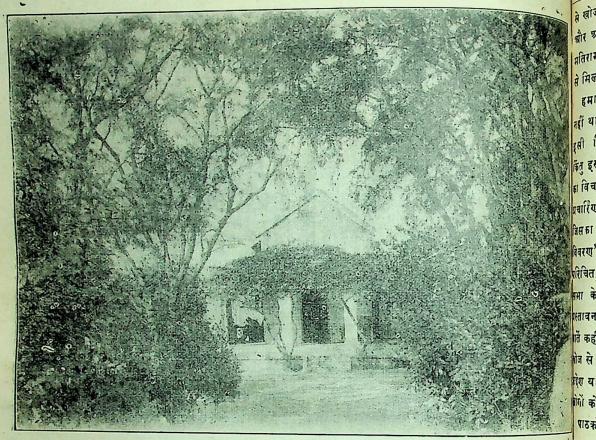
महाकवि जिज्ञासुओं को उपदेश दे रहे हैं

उन्होंने अंत में विश्व-मैत्री के आदर्श के अनुसरण का उपदेश देकर अपना उपदेश समाप्त किया।

उपासना पूर्ण भी न होने पाई थी कि एकाएक घंटा (Alarm bell) बजने लगा। मालूम हुआ, किसी पास के गाँव में आग लगी है। सब लोग मंदिर की उपासना छोड़कर उस उपासना को कार्य में परिणत करने को, अर्थात् मानव-मंदिर-स्थित परमात्मा की सेवा करने को, ग्राम-निवासियों की सहायता के लिये दौड़ पड़े, और अपनी सामयिक सहायता से अनेकों की प्राण-रक्षा करके लौटे। उन्हें अपनी ईश्वरोपासना को मानव-सेवा के द्वारा इस प्रकार चरितार्थ करते देख अपार आनंद हुआ।

आज का दिन मेरे जीवन के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। आज का संगीत, आज की उपासना, आज का मधुर उपदेश हृदय-पटल पर उस अनुराग के पक्के रंग से चित्रित हो गया है, जिसे समय के हाथ मरणांत-प्रयत्न करने पर भी नहीं मिटा सकते। प्रार्थना करते समय अब भी वही मूर्ति हृदय-पटल पर अंकित हो जाती, और वही भक्ति-भाव भर देती है।

ब्यौहार राजेंद्रसिंह

मतिराम और भूषण *

मतिराम और भूषण के परस्पर संबंध और कविता-काल के विषय में अभी तक विद्वानों में मत-भेद चला आता है। खोज से जो सामग्री अभी तक प्राप्त हुई है, उससे भी कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। इधर कुछ लोगों ने अपने अनुमान को ही सत्य समझकर भ्रांति फैला दी है। ऐतिहासिक दृ

* वैशाख के अंक में प्रकाशित मिश्रबंधुओं के लेख के पहले पृष्ठ। —संपादक

से खोज करना और सप्रमाण बात कहना एक बात है, और अनुमान-मात्र को प्रमाण मान लेना दूसरी बात। मतिराम और भूषण के संबंध की जो बातें हमको खोज से मिली हैं, उनका उल्लेख यहाँ करते हैं।

हमारा विचार इस विषय पर अभी कुछ लिखने का नहीं था ; क्योंकि खोज अधूरी है, और कुछ नई सामग्री इसी विषय पर और भी मिलने की आशा है। किंतु इस विषय पर अभी कुछ बातें प्रकाशित करने का विचार हमने इस कारण किया है कि हाल में नागरी-प्रचारिणी-सभा की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसका नाम है "हस्त-लिखित हिंदी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण"। पुस्तक के संपादक हैं हिंदी-संसार के चिर-परिचित, सुप्रसिद्ध लेखक, काशी की नागरी-प्रचारिणी-सभा के मंत्री बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए०। इसकी प्रस्तावना में मतिराम तथा भूषण के संबंध में कुछ नई बातें कही गई हैं। इसी कारण हमको भी जो बातें खोज से ज्ञात हुई हैं, उनको हम यहाँ प्रकाशित करते हैं। उद्देश यह है कि अंतिम निश्चय पर पहुँचने के लिये लोगों को सुगमता हो।

पाठकों की सुगमता के लिये इस लेख के संबंध के कुछ ज्ञातव्य संवत् यहाँ दिए जाते हैं—

छत्रपति शिवाजी,	जन्म	१६८४, मृत्यु १७३७
छत्रसाल बुँदेला,	,,	१७०६, ,, १७८८
राव भावसिंह बूँदी-नरेश,	राज्य-काल	१७१६, ,, १७४५
जहाँगीर	,,	१६६२-१६८४
शाहजहाँ	,,	१६८४-१७१३
औरंगज़ेब	,,	१७१३-१७६४
दाराशाह	मृत्यु	१७१६
शाहशुजा	,,	१७१७
साहूजी		राज्य-काल १७६५ से

पूर्वोक्त पुस्तक की प्रस्तावना में संपादक महाशय ने पंडित भागीरथप्रसाद दीक्षित का लिखा हुआ एक विवरण उद्धृत किया है। उस विवरण का महत्त्व दिखाते हुए लिखा है कि "इस अनुसंधान के अत्यंत महत्त्व-पूर्ण होने के कारण तथा इस खोज से अत्यंत प्रचलित बातों का कैसे संशोधन होता है, इसे दिखाने के उद्देश से हम इस बात का उल्लेख यहाँ करते हैं।"

दीक्षितजी ने इस विवरण में दो नवीन बातों का उल्लेख किया है। वे हैं—

(१) मतिराम, भूषण, नीलकंठ तथा चिंतामणि परस्पर भाई नहीं थे ; हिंदी-संसार में जो इन्हें भाई माना जाता है, यह भूल है।

(२) भूषण छत्रपति शिवाजी के राजकवि नहीं थे, किंतु उनके पौत्र साहूजी के दरबार में थे। भूषण ने 'शिवराजभूषण' शिवाजी के नाम पर बनाकर साहूजी को भेंट किया था।

मतिराम और भूषण के परस्पर भाई न होने का यह प्रमाण दिया है कि उनको असनी-निवासी पं० कन्हैयालाल भट्ट महापात्र के यहाँ, जो महाकवि नरहरि महापात्र के वंशज हैं, 'वृत्तकौमुदी'-नामक एक ग्रंथ खोज में मिला है। यह ग्रंथ महाकवि मतिराम का रचा हुआ है। इसका निर्माण-काल संवत् १७५८ वि० है। इस ग्रंथ में मतिराम ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वह बनपुरा-निवासी वत्स-गोत्रीय पं० चक्रमणि त्रिपाठी के पुत्र-रत्न पं० गिरिधर के प्रपौत्र, पं० बलभद्र के पौत्र, पं० विश्वनाथ के पुत्र और पं० श्रुतिधर के भतीजे थे।

उधर महाकवि भूषण ने अपने 'शिवराजभूषण' में अपने को त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर-कानपुर)-निवासी, कश्यप-गोत्रीय पं० रत्नाकर का पुत्र लिखा है।

अतः मतिराम और भूषण सहोदर भाई नहीं हो सकते। कारण, उनका गोत्र तथा पिता का नाम भिन्न-भिन्न है।

दीक्षितजी ने यह भी लिखा है कि नीलकंठ (जटाशंकर) भी भूषण के भाई नहीं प्रतीत होते। इसके दो कारण बताए हैं—

(१) पं० नंदकुमारदेव शर्मा ने अपने ग्रंथ 'वीर-केसरी शिवाजी' में चिंतामणि, भूषण और मतिराम, इन तीन ही भाइयों का वर्णन किया है।

(२) 'मिश्रबंधुविनोद' में वर्णित है कि नीलकंठ ने संवत् १६९८ में 'अमरेशविलास' रचा था ; उस समय उनकी अवस्था २८-३० वर्ष से कम न होगी। इस कारण उनका जन्म-संवत् १६७० के लगभग पड़ता है। भूषण यदि नीलकंठ के बड़े भाई थे, तो उनका जन्म-संवत् १६६८ से पूर्व ही होना चाहिए। भूषण का संवत् १७६७

तक जीवित रहना दीक्षितजी प्रमाण-सिद्ध मानते हैं, और लिखते हैं कि यह कभी संभव नहीं कि भूषण १३० वर्ष जीवित रहकर वैसी ही ओजस्विनी भाषा में कविता करते रहे हों, जैसी उन्होंने 'शिवराजभूषण' में की है, और इसीलिये भूषण और नीलकंठ परस्पर भाई नहीं थे।

दीक्षितजी ने भूषण और चिंतामणि को भी परस्पर भाई नहीं माना है। कारण यह बतलाया है कि भूषण का जन्म 'शिवसिंहसरोज' के अनुसार सं० १७३८ है, और 'मिश्रबंधुविनोद' के अनुसार चिंतामणि का जन्म सं० १६६६ में हुआ था। इस प्रकार दोनों भाइयों के जन्म-काल में ७२ वर्ष का अंतर होता है, जो दो सहोदर भाइयों में संभव नहीं है।

इस तरह मतिराम, भूषण, चिंतामणि और नीलकंठ को दीक्षितजी ने परस्पर सहोदर भाई नहीं माना।

प्रश्न यह होता है कि यदि मतिराम, भूषण और चिंतामणि सहोदर भाई नहीं थे, तो सर्वसाधारण में ऐसा विश्वास कैसे उत्पन्न हुआ? इसका उत्तर दीक्षितजी ने यह दिया है कि ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने अपने ग्रंथ शिवसिंहसरोज में चिंतामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर का देवी के प्रसाद से उत्पन्न होना और उन्हें सहोदर भाई लिखा है। यही कारण है, जिससे यह भ्रम-मूलक विश्वास फैल गया।

शिवसिंहसरोज सं० १६४० में छपा है। इससे प्राचीन कोई ग्रंथ दीक्षितजी के देखने में नहीं आया, जिससे इन चारों कवियों का सहोदर होना प्रमाणित होता। इसी कारण इनके सहोदर होने की किंवदंती, दीक्षितजी के मतानुसार, शिवसिंहसरोज से आरंभ हुई है।

हम शिवसिंहसरोज से भी प्राचीन दो ग्रंथों का प्रमाण पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं, जिससे विदित होगा कि शिवसिंहजी से बहुत पहले लोग चिंतामणि, मतिराम और भूषण का परस्पर भाई होना जानते थे। पहला ग्रंथ है बूँदी-निवासी प्रसिद्ध विद्वान् सूर्यमल्लजी का बनाया हुआ 'वंशभास्कर'। यह ग्रंथ सं० १८९७ में, अर्थात् शिवसिंहसरोज के छपने से ४३ वर्ष पूर्व, बना था। सूर्यमल्लजी का स्वर्गवास शिवसिंहसरोज प्रकाशित होने के २३ वर्ष पहले हो गया था। 'वंशभास्कर' में नीलकंठ का नाम ही नहीं है। बड़ा भाई भूषण को, मध्यम भाई मतिराम को, और कनिष्ठ भाई चिंतामणि को लिखा है। यथा—

"इन ही दिनन कछु पीछे पहिले वा इतर
बुंदेलन भूमै ब्रजभाषा कवि-विप्र तीन।
जेठौ भ्रात भूषण रु मध्य मतिराम तीजो
चिंतामणि विदित भए ये कविता-प्रवीन।"

अतः शिवसिंहजी से पूर्व ही ये तीनों कवि भाई माने जाते थे। दूसरा ग्रंथ है मीर गुलामअली का "तज़करए सर्व आज़ाद", जिसके बारे में स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी ने हमारे पत्र के उत्तर (मार्च, सन् १९२३) में इस प्रकार लिखा था—

"मतिराम औरंगज़ेब के समय में थे। 'तज़करए सर्व आज़ाद'—फ़ारसी—में, जो सन् ११६६ हिजरी का बना है, ऐसा लिखा है कि चिंतामणि 'कवित्त-विचार' का कर्ता कोंड़े-जहानाबाद का रहनेवाला था। इसके दो भाई भूषण और मतिराम थे, जो अच्छे शायर थे। चिंतामणि संस्कृत का बड़ा पंडित था, और शाहजहाँ के बेटे शाहशुजा की सरकार में बड़ी इज़्ज़त से रहता था। सन् ११६६ संवत् १८०८ में था। 'तज़करए सर्व आज़ाद' मीर गुलाम अली का बनाया हुआ है। वह भी बड़ा शायर और कवि था। बिलग्राम में कई मुसलमान सज्जन हिंदी के अच्छे कवि हुए हैं।" इत्यादि।

हमको भी चिंतामणि के कहे हुए शाहशुजा की प्रशंसा के दो छंद मिले हैं, जिनसे गुलामअली के इस कथन की पुष्टि होती है कि चिंतामणि शाहशुजा की सरकार में भी थे। ये छंद आगे दिए गए हैं।

मुंशीजी के उक्त लेख के अनुसार संवत् १८०८ में भूषण, मतिराम और चिंतामणि को लोग भाई-भाई जानते थे, अर्थात् शिवसिंहजी के १३२ वर्ष पूर्व से लोगों का ऐसा विश्वास था।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि यदि भूषण और मतिराम परस्पर भाई थे, तो 'वृत्तकौमुदी' में मतिराम ने अपने को कश्यप-गोत्रीय न लिखकर वत्स-गोत्रीय क्यों लिखा, और अपने पिता का नाम रत्नाकर न लिखकर विश्वनाथ क्यों लिखा? परंतु क्या यह संभव नहीं कि मतिराम को विश्वनाथ ने गोद ले लिया हो? अथवा दीक्षितजी के ही मतानुसार, वे ममेरे या फुफेरे भाई हों। 'वंशभास्कर' में नीलकंठ का नाम नहीं है, और गुलाम

जी ने भी उनको भूषण का भाई नहीं लिखा। इसलिये हम भी नीलकंठ को भूषण का भाई मानने के लिये कोई दृढ़ प्रमाण नहीं देखते।

चिंतामणि के भूषण का भाई होने में जो आपत्ति दीक्षितजी ने उठाई है, वह युक्ति-संगत नहीं है। भूषण का जन्म-संवत् शिवसिंहजी के मतानुसार सं० १७३८ और चिंतामणि का 'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार संवत् १६६६ मानकर ७२ वर्ष का अंतर दिखाना ठीक नहीं है। दोनों का जन्म-संवत् एक ही ग्रंथ के अनुसार मानकर आक्षेप करना उचित है। भिन्न-भिन्न आधारों पर जन्म-संवत् मानकर तर्क करना ठीक नहीं प्रतीत होता। हम आगे चलकर यह सिद्ध करेंगे कि भूषण का जन्म-संवत् १७३८ मानना नितांत अशुद्ध है। चिंतामणि के भूषण का भाई होने के विरुद्ध कोई दृढ़ प्रमाण नहीं मालूम होता।

केवल इन कवियों के परस्पर भाई होने के संबंध में ही मतभेद नहीं है, किंतु इनके कविता-काल के विषय में भी एक मत नहीं है। इस विषय में कितना अधिक मतभेद है, यह इसी से विदित होगा कि बाबू श्यामसुंदरदास-जैसे प्रसिद्ध और अनुभवी हिंदी-सेवी ने समस्त हिंदी-संसार की राय के विरुद्ध दीक्षितजी की इस उक्ति को कि भूषण शिवाजी के दरबार के कवि न होकर उनके पौत्र साहूजी के दरबार में थे, अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में आदर के साथ स्थान दिया है।

मिश्रबंधुओं की तो बात ही निराली है। उन्होंने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'भूषण-ग्रंथावली' की भूमिका में भूषण का जन्म-संवत् १६९२ के लगभग माना है, और बंगवासीवाली प्रति के संवत् को अशुद्ध बताते हुए लिखा है कि यदि बंगवासीवाली बात ठीक हो, तो भूषण का १०० वर्ष से अधिक जीवित रहना पाया जायगा, जो असंभव नहीं, तो संदिग्ध अवश्य है, और इन्हीं कारणों से 'हिंदी-नवरत्न' में भूषण का जन्म-संवत् १६९२ ही लिखा है। परंतु आश्चर्य की बात है कि 'मिश्रबंधु-विनोद' में भूषण का जन्म-संवत् १६७० मानकर उनकी अवस्था १०२ वर्ष की मान ली है। मालूम नहीं, भूषण-ग्रंथावली लिखने के समय भूषण की १०० वर्ष की आयु लिखने में क्यों संदेह हुआ, और 'विनोद' लिखने के समय १०२ वर्ष की आयु मानने में किस तरह वह संदेह दूर हो गया।

हमारा आशय यह है कि मतिराम, भूषण और चिंतामणि के कविता-काल के विषय में बड़े-बड़े धुरंधर लेखकों को भी अपनी राय बार-बार बदलनी पड़ती है। यदि इन त्रिपाठी कवित्रय का कविता-काल ठीक-ठीक निर्धारित हो जाय, तो इनके परस्पर के संबंध का निर्णय करने में बड़ी सुगमता हो। हमारी खोज से जिन नवीन बातों का पता चला है, उन्हें हम पाठकों के सम्मुख रखते और आशा करते हैं कि इस विषय पर हिंदी-संसार विचार करेगा।

मतिराम

भरतपुर-राज्य में हिंदी-पुस्तकों की खोज करने से हमको मतिराम का एक छोटा-सा ग्रंथ 'फूल-मंजरी' मिला है। कवि ने इस ग्रंथ में साठ दोहे लिखे हैं। प्रत्येक दोहा एक-एक फूल के नाम पर है, जिसमें उस फूल के साथ नायिका का या तत्संबंधी वर्णन है। इस पुस्तक की तीन प्रतियाँ मिली हैं। जिनमें से एक संवत् १८४० की लिखी हुई है। अंत के दोहे से विदित होता है कि यह पुस्तक जहाँगीर के लिये बनाई गई थी। वह दोहा यह है—

"हुकुम पाय जहँगीर को, नगर आगरे धाम;
फूलन की माला करी, मति सों कवि 'मतिराम'।"

काव्य की दृष्टि से यह ग्रंथ बड़े महत्त्व का नहीं प्रतीत होगा, परंतु मतिराम की कृति होने के कारण, तथा मतिराम का कविता-काल निर्धारित करने के लिये, अवश्य महत्त्व का माना जायगा। जहाँगीर का संवत् १६८३-८४ में परलोक-वास हुआ था। उस समय मतिराम की इतनी अवस्था थी कि उन्होंने जहाँगीर के दरबार तक पहुँचकर उसकी आज्ञा से 'फूल-मंजरी' ग्रंथ बनाया। यदि यह अवस्था २० वर्ष की भी मानी जाय, तो मतिराम का जन्म-संवत् १६६४ होता है। दीक्षितजी के लिखे-अनुसार 'वृत्तकौमुदी' संवत् १७४८ में बनी है। उस समय मतिराम की अवस्था कम-से-कम ८४ वर्ष की होगी। क्या कोई कवि इतनी अवस्था में ऐसा ग्रंथ लिख सकता है? दीक्षितजी ने स्वयं ही भूषण के विषय में लिखा है—"भूषण को महाराज शिवाजी के दरबार का राजकवि मानने से उनका कविता-काल ६० वर्ष से भी अधिक ठहरता

है; परंतु 'इतने समय तक कविता करना असंभव-सा प्रतीत होता है।" यदि भूषण इतने समय तक कविता नहीं कर सकते थे, तो मतिराम के लिये वही बात कैसे संभव हो सकती है?

मिश्रबंधु-विनोद में मतिराम का जन्म-संवत् १६७४, कविता-काल संवत् १७१०, और स्वर्ग-वास का संवत् १७७३ अनुमान किया गया है। फूल-मंजरी संवत् १६८३ या उससे पूर्व ही बनी थी। इस कारण मतिराम का कविता-काल संवत् १७१० की जगह संवत् १६८४ या उससे पूर्व मानना पड़ेगा। इसी तरह जन्म-संवत् भी १६७४ की जगह कम-से-कम १६६४ मानना होगा। स्वर्ग-वास का संवत् १७७३ भी क्या माननीय हो सकता है? ऐसा मानने से मतिराम की अवस्था १०९ वर्ष की हो जायगी!

हमारे विचार से मतिराम के संबंध में जो संवत् मिश्रबंधु-विनोद में दिए हैं, वे मिश्रबंधुओं के केवल अनुमान-मात्र हैं। उनके लिये कोई दृढ़ आधार नहीं है।

मिश्र महाशयों ने मतिराम के स्वर्ग-वास का संवत् १७७३ इस अनुमान से निर्धारित किया है कि मतिराम ने अपना प्रथम ग्रंथ ललितललाम बूँदी-नरेश रावराजा भाऊसिंह के यशोवर्णन में बनाया, और भाऊसिंह का राज्य-काल संवत् १७१६ से संवत् १७४५ तक है, अतः इसी बीच में यह ग्रंथ बना होगा। दूसरा ग्रंथ 'छंद-सार-पिंगल' शंभुनाथ सुलंकी के नाम पर उन्होंने बनाया। शंभुनाथ सुलंकी स्वयं भी कविता करते थे। उनका कविता-काल संवत् १७०७ के लगभग है। मतिराम ने अपना तीसरा ग्रंथ 'रसराज' किसी को भी समर्पित नहीं किया। मतिराम का संबंध बूँदी से राव बुद्ध के राजत्व-काल में छूटा। यह समय सं० १७६५ के लगभग है। इसलिये रसराज इस समय के पीछे बना होगा। इसलिये इनका स्वर्ग-वास संवत् १७७३ में होने का अनुमान किया गया है।

हमको नहीं मालूम होता कि मिश्रबंधुओं ने यह अनुमान किस आधार पर किया कि मतिराम का संबंध बूँदी से राव बुद्धसिंह के समय में छूटा। राव भाऊसिंह, जिनसे मतिराम का संबंध निर्विवाद है, संवत् १७४५ में स्वर्ग-वासी हो चुके थे। इसके पश्चात् बूँदी-राज्य से मति-राम का संबंध रहने का कोई प्रमाण 'विनोद' में नहीं मिलता है। फिर राव बुद्ध के समय में संवत् १७६५ तक उस संबंध को मानने के लिये कोई आधार नहीं देख पड़ता। मतिराम का बूँदी-राज्य से संबंध संवत् १७४५ या उससे पूर्व ही छूट गया होगा। हमारे विचार से 'रसराज' पहले बना है, और 'ललितललाम' पीछे। शायद 'रस-राज' के निर्माण के समय मतिराम का किसी दरबार से संबंध नहीं था, और इसी कारण वह किसी दरबार को समर्पित नहीं किया गया। 'रसराज' किसी को समर्पित न होने के कारण मतिराम का मृत्यु-संवत् १७६५ के बाद संवत् १७७४ तक मानना युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता। हमारे विचार से मतिराम का जन्म-संवत् १६६४ के लगभग हुआ, उनका कविता-काल सं० १६८४ के पूर्व ही है, और स्वर्ग-वास संवत् १७६० के लगभग, कोई ९६ वर्ष की अवस्था में, हुआ होगा।

भूषण

उक्त दीक्षितजी ने शिवसिंहसरोज के आधार पर भूषण का जन्म-काल संवत् १७३८ माना है, और इसी कारण उन्होंने भूषण को शिवाजी का राजकवि न मानकर उनके पौत्र साहूजी के दरबार का कवि माना और लिखा है कि भूषण ने अपना ग्रंथ शिवराजभूषण साहूजी के दरबार में पेश किया होगा।

किंतु दीक्षितजी का यह अनुमान नितांत अशुद्ध मालूम होता है; क्योंकि इसके विरुद्ध भूषण का संवत् १७३८ से पहले विद्यमान होना और 'भूषण' की उपाधि पाकर कविता करना प्रमाण-सिद्ध है।

जयपुर के महाराज मिर्ज़ा राजा जयसिंह शिवाजी को औरंगज़ेब के दरबार में ले गए थे। वहाँ शिवाजी का उचित सम्मान न होने के कारण शिवाजी क्रुद्ध हुए। औरंगज़ेब ने शिवाजी को क़ैद कर लिया। शिवाजी युक्ति से छुटकारा पाकर संवत् १७२३ में निकल भागे। इस कार्य में शिवाजी को मिर्ज़ा राजा जयसिंह के पुत्र, कुँवर रामसिंह, ने सहायता दी थी, जिसके कारण औरंगज़ेब रामसिंह और मिर्ज़ा राजा, दोनों से बहुत अप्रसन्न हुआ। मिर्ज़ा राजा जयसिंह का स्वर्ग-वास संवत् १७२[illegible] में हुआ, और उनके पुत्र रामसिंह ने सं० १७३२ तक राज्य किया। महाराज रामसिंह की प्रशंसा में भूषण का यह एक छंद मिलता है—

"अकबर पायो भगवंत के तनय जू सों,
. बहुरयों जगतसिंह महा मरदाने सों;
'भूषन' त्यों पायो जहाँगीर महासिंह जू सों,
साहिजहाँ पायो जयसिंह बर बाने सों।
अब अवरंगजेब पायो रामसिंह जू सों,
और दिन-दिन पै हैं कूरम के माने सों;
और राजा-राय मान पावैं पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान 'मान' के घराने सों।"*

इससे सिद्ध है कि भूषण कम-से-कम संवत् १७३२ में विद्यमान थे। अतः उनका जन्म-काल संवत् १७३८ नहीं हो सकता।

संवत् १७३२ में ही नहीं, किंतु इससे भी पहले भूषण के विद्यमान होने का प्रमाण यह है कि शाहजहाँ के पुत्र और औरंगज़ेब के भाई दाराशाह की प्रशंसा में भूषण के छंद मिलते हैं। नवीन कवि ने अपने ग्रंथ 'सुबोध-रस-सुधा-सागर' में एक छंद भूषण का दिया है, जिसमें दाराशाह की प्रशंसा है। वह छंद यों है—

"डंका के दिए ते डल डंबर उमंड्यो,
उडमंड्यो उड-मंडल लौं खुर की गरद है;
जहाँ दाराशाह बहादुर के चढ़त पैड़,
पैड़ में मड़त मारू-राग बंब नद्द है।
'भूषन' भनत घने घुम्मत हरौलवारे,
किम्मत अमोल बहु हिम्मत दुरद्द हैं;
हद्दन छपद्द महि मद्द फरनद्द होत,
कद्दन भनद्द सो जलद्द हलदद्द है।"

दाराशाह का मृत्यु-काल संवत् १७१६ है। भूषण ने यह छंद इससे दो-एक वर्ष पहले ही रचा होगा। अतएव भूषण का कविता-काल संवत् १७१४ से पहले ही हो जाता है। उस समय भूषण की अवस्था कम-से-कम ४० वर्ष की रही होगी; क्योंकि भूषण की भाभी ने, उन्हें, नमक माँगने पर, उलाहना ३० वर्ष से कम की उमर में न दिया होगा। फिर भूषण को कविता सीखने और रुद्रराम सुलंकी के यहाँ से 'भूषण' की उपाधि पाने में भी कुछ समय लगा होगा। इसलिये यह छंद भूषण ने ४० वर्ष से कम की अवस्था में नहीं कहा होगा। इस प्रकार भूषण का जन्म-काल संवत् १६७४ के लगभग होता है।

दीक्षितजी के लेख के अनुसार यदि भूषण का मृत्यु-काल संवत् १७९७ के बाद माना जाय, तो भूषण की आयु १२१ वर्ष की हो जायगी। इस कारण निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता कि भूषण का जन्म-काल और मृत्यु-काल ठीक-ठीक क्या है। १२३ वर्ष की अवस्था तक जीवित रहना असंभव नहीं है, और इस आयु में ऐसे पुरुष के लिये, जिसने जीवन-भर कविता की हो, दो-एक छंद की रचना कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

दीक्षितजी ने भूषण का जन्म-संवत् १७३८ माना है, और शिवाजी का कैलाश-वास संवत् १७३७ में हो चुका था। इसलिये उनको विवश होकर एक बिलकुल नई और विचित्र बात कहनी पड़ी है। वह बात ऐसी है, जिसको अब तक हिंदी-संसार में किसी ने नहीं कहा था, और जिसे मानने के लिये कदाचित् ही कोई मनुष्य तैयार होगा। सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि बाबू श्यामसुंदरदासजी ने भी इस विषय में, इसके विरुद्ध, प्रस्तावना में अपना कोई नोट नहीं लगाया। इससे मालूम होता है, शायद वह भी सहमत हैं। वह विचित्र और नई बात यह कही गई है कि महाकवि भूषण शिवाजी के दरबार के कवि नहीं थे, उनके पौत्र साहूजी के दरबार के कवि थे। इसके विरुद्ध अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। हमने सुदृढ़ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि भूषण संवत् १७१४ से पहले कविता करते थे, और उनका जन्म-संवत् १७३८ नहीं, १६७४ के लगभग है। इसलिये दीक्षितजी के उक्त कथन का मुख्य कारण दूर हो जाता है, और २०० वर्ष से भी पहले से अब तक जो बात हिंदी-संसार में प्रचलित है, उसके विरुद्ध मानने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

शिवराजभूषण और शिवाबावनी पढ़ने के पश्चात् थोड़ी-सी हिंदी जाननेवाला भी यह मानने को तैयार न होगा कि ये दोनों ग्रंथ किसी स्वर्ग-वासी महाराज के नाम पर बनाए गए हैं। शिवराजभूषण और शिवा-बावनी में अनेक छंद ऐसे हैं, जिनमें कवि ने वर्तमान-कालिक क्रिया का उपयोग किया है, और अपने नायक को संबोधन करके छंद कहे हैं। क्या इस रीति की ऐसी

* संवत् १८९५ की लिखी "जस-कवित्त-संग्रह" नामक पुस्तक से, जो भरतपुर-लाइब्रेरी में है, उद्धृत।

कविता, बल्कि पूरा ग्रंथ, कोई कवि ऐसी ज़ोरदार भाषा में किसी मृत मनुष्य के लिये बना सकता है ? उदाहरण के तौर पर हम कुछ पद्यांश उद्धृत करते हैं—

(१) "साहि-तनै सिवराज ऐसे देत गजराज
जिन पाय होत कबिराज बेफिकिरि हैं ।"
(शि० भू०, पृष्ठ १०९, का० ना० प्र० सभा)

(२) "पीरी-पीरी हुन्नै तुम देत हौ मँगाय हमैं,
सुबरन हमसों परखि करि लेत हौ ।"
(उसी का पृष्ठ ६०)

कवि-वंश का पहला दोहा ही इस बात को बतलाता है कि कवि ने शिवाजी के जीवन-काल ही में ग्रंथ को लिखा है । यथा—

"देसन-देसन ते गुनी, आवत जाचन ताहि ;
तिनमैं आयो एक कबि, भूषन कहियतु जाहि ।"

हम इस विषय पर कुछ अधिक लिखना आवश्यक नहीं समझते । हमको विश्वास है कि पाठकों को भली भाँति विदित हो गया होगा कि 'भूषण साहूजी के दरबार के कवि थे, शिवाजी के नहीं', यह दीक्षितजी की उक्ति या युक्ति एक असंभव कल्पना है ।

चिंतामणि (मणि अथवा लालमणि)

मीर गुलाम नबी ने शाहशुजा के दरबार में चिंतामणि का उपस्थित होना लिखा है । हमको भी चिंतामणि (मणि) के कहे हुए शाहशुजा की प्रशंसा के कुछ छंद मिले हैं । यथा—

(१)

"सहज सिकारि साहि 'मनि' साहि सुजाजू के,
छौनी पर छार है पहार पुंज छटि गए ;
कच्छ की मसकि पीठि धरनि धसकि गई,
जामि गए महामद, किरीटी हू कटि गए ।
प्रबल अभंग अति लगर उदंगल ज्यों,
जंगल भजत बैरी बाल-बृद्ध लटि गए ;
जंग बैरी नटि गे, समुद सातौ अटि गे,
सु दिग्गज दबटि गे, फनीस फन फटि गए ।"

(२)

"चौपरि खेलि खिलाइ हौं मौर-लौं,
आज उतै कल नेक लहौंगी ;
सोर मचाइ जगैबे को मोहिं जो,
आवैं, उन्हैं तो कुबोल कहौंगी ।
साहि सुजाहि सुनाइ कही 'मनि',
हौं न भटू करि यों सो गहौंगी ;
रैनि की जागी उनींदी अकेलियै,
जाइ अँटारी मैं पौढ़ि रहौंगी ।" *

शाहशुजा का संवत् १७१६ में औरंगज़ेब से युद्ध होना और संवत् १७१७ में, आराकान में, सिंह से मारा जाना इतिहास-सिद्ध है । इसलिये चिंतामणि का कविता-काल संवत् १७१७ से पीछे का नहीं, पहले का ही हो सकता है । यदि शाहशुजा की सरकार में पहुँचने तक चिंतामणि की आयु ३० वर्ष की हो, तो उनका जन्म-संवत् १६८७ के लगभग, अनुमान से, सिद्ध होता है । चिंतामणि के कुछ छंद साहूजी की प्रशंसा में मिलते हैं । साहूजी संवत् १७६४ में दिल्ली से छुटकारा पाकर सितारे पहुँचे थे ।

यदि चिंतामणि उनके यहाँ इसी समय गए हों, तो संवत् १७६४ तक उनकी आयु ७७ वर्ष की होती है। इसी कारण हमारे विचार से चिंतामणि भूषण से छोटे थे ।

साहूजी की प्रशंसा के छंद ये हैं—

(१)

"कबिन को राजा भोज, ओज को सरोज-बंधु,
दीन को दयाल, दान-सिंधु, सील को जहाज ;
कोटि काम-सुंदर हैं, साहिबी पुरंदर हैं,
मंदर हैं बैरि-बल-बारिधि-मथन काज ।
जंग माझि जालिम, अवलंब कुल आलम को,
बालम धरा को, सब सूरन को सिरताज ;
बिक्रम अपार, सत्य सुजस को पारावार,
भारी भार थंभन समत्थ साहू महाराज । †

(२)

सहज ही सैल को चढ़त साहू महाराज,
पुहुमी अलप महादल के पयान तें ;
कहै 'चिंतामनि' सुनि सघन निसान-धुनि,
बैरी बन बसत बिहीन खान-पान हैं ।
पब्बय पिसात मद दुरद धुकात धुकि,
कै कै किलकान भगे दिग्गज दिसान तें ;

* ... कवित्त-संग्रह नं० २ (भरतपुर-लाइब्रेरी) से।
† दलपतराय-बंसीधर-कृत 'अलंकार-रत्नाकर' से।

गरुए ह्वै गिरि सम गिरंद सौं भरि-भरि ,
गिरेई परत हैं बिमान आसमान तें ।"

(३)

"गाढ़े-गाढ़े गढ़ गज धक्कन ढहावत , न
पावत प्रताप-समताहि सक्र अक्कवै ;
'चिंतामनि' भनत गनत घने गुनगन ,
सारदा, गनेस, सेस थक्कत अथक्कवै ।
नीरधि ज्यों महिमा गँभीर, महाधीर, बीर ,
पावक प्रताप छीर-छीरधि को पक्कवै ;
थप्पन उथप्पन समत्थ पातसाहन को ,
साहू नरनाह चहूँ चक्कन को चक्कवै ।" *

हमको कुछ छंद ऐसे मिले हैं, जिनसे इन महाकवियों के समय-निर्धारण में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है, और जो अब तक की छपी हुई पुस्तकों में नहीं देखे गए—कम-से-कम हमने तो नहीं देखे । उन छंदों को हम यहाँ लिखते हैं । संभव है, इनसे लोगों को इन कवियों का समय निर्धारित करने में कुछ सहायता मिले—

मतिराम

भूषण का कुमायूँ के राजा उदोतचंद (अपने भाई मतिराम के आश्रयदाता) के यहाँ जाना और वहाँ अच्छी तरह से अपनी ख़ातिर न होने के कारण कुछ धन-रत्नादि भेंट लिए विना ही वहाँ से चले आना सर्व-सम्मत और प्रसिद्ध है । इस विषय में हमने एक 'किंवदंती' यह सुन रक्खी है कि भूषण के क्रुद्ध होकर चले आने पर कुमायूँ-पति उदोतचंद मतिराम से भी अप्रसन्न हो गए थे । मतिराम ने उदोतचंद को प्रसन्न करने के लिये एक छंद सुनाया था, जिसका भाव था कि यदि हाथी अंकुश न माने, तो राजे-महाराजे अपने यहाँ से सभी हाथियों को थोड़े ही निकाल देते हैं । छंद इस प्रकार है—

"करन के, बिक्रम के, भोज के प्रबंध सुनि ,
आछी भाँति कबिन को आगो लीजियतु है ;
कबि 'मतिराम' मजलिस के सिंगार राज-
बचन-पियूष आठौ जाम पीजियतु है ।
एक ही गुनाह नरनाह श्रीउदोतचंद ,
एतो कहा कबिन पै रोष दीजियतु है ;
काहू मतवारे एक अंकुस न मान्यो, तौ
दुरद दरवाजन ते दूरि कीजियतु है ?" *

क्या इस किंवदंती से मतिराम और भूषण का घनिष्ठ संबंध नहीं प्रतीत होता ?

मिश्रबंधुओं ने भूषण-ग्रंथावली में, अंतिम नोट में, लिखा है कि मतिराम का शिवाजी के दरबार में जाना कहीं नहीं लिखा, और इसीलिये उन्होंने "राखी हिंदु-आनी हिंदुआन को तिलक राख्यो" इत्यादि छंद भूषण के माने हैं ।

हमको मतिराम के बनाए, शिवाजी की प्रशंसा के कुछ छंद मिले हैं । उनको भी हम यहाँ उद्धृत करते हैं । उनसे विदित होगा कि मतिराम शिवाजी के दरबार में हाज़िर हुए थे । भूषण मतिराम को अपनी सरकार—शिवाजी के दरबार—में ले गए थे, और मतिराम भूषण को उदोतचंद के यहाँ ।

(१)

"मोह-मद-छाके बिरचे ते बर बाँके ऐसे ,
बकसे सिवा के कबिराज लिए जात हैं ;
धावत धरनि धराधर धुकि धक्कन सों ,
चिक्करत जिन्हैं देखि दिग्गज परात हैं ।
तामसी तरुन तामरस तोरि 'मतिराम' ,
गगन की गंगा में करत उतपात हैं ;
मंद-गति सिंधुर मदंध में बिलंदु बिंदु ,
ज्ञान अरबिंद-कंद चंदहि चबात हैं ।" †

(२)

"बान अरजुन को बखानै 'मतिराम' कबि ,
गदा भीमसेन की सदा ही जस काज की ;
बासव को बज्र, बासुदेवजू को चक्र ,
बलदेव को मुसल सदा कीरति है लाज की ।
दंड दंडधर को अदंडन के दंडिबे को ,
नखन की पाँति नरसिंह सिरताज की ;
संभु को त्रिसूल, संभु-सिस्य को कुठार ,
संभु-सुत की सकति, समसेर सिवराज की ।" ‡

* दलपतराय-बंसीधर के 'अलंकार-रत्नाकर' से उद्धृत ।

* नवीन कवि के 'प्रबोध-रस-सुधा-सर' से उद्धृत ।

† नवीन कवि के 'प्रबोध-रस-सुधा-सर' से उद्धृत ।

‡ अपने पास की हस्त-लिखित पुस्तक 'कवित्त-संग्रह' से उद्धृत ।

महाराज छत्रसाल बुँदेले की प्रशंसा का भी मतिराम-रचित एक कवित्त हम उद्धृत करते हैं, जिससे मतिराम का उनके दरबार में जाना सिद्ध होगा—

"कबि 'मतिराम' कहै रति ते अनूप बनी,
रूप धरे राजैं मानौ कोकन की कारिका ;
धार सुने बार-बार नीर भरि आवतु है,
नीरज-सी आँखिन नलिन-ऐसी तारिका।
आगरे-दिली में छत्रसाल तेरी धाकनि तैं,
आयो, आयो, बोलत मुखन सुक-सारिका ;
चौंकि चलि सकैं न चरन जुगलनि लाल,
गुलनि के रंग मुगुलनि की कुमारिका।" *

यह छंद बूँदी-पति हाड़ा छत्रसाल की प्रशंसा का नहीं हो सकता। कारण, वह तो 'दिल्ली की ढाल' थे, 'दिल्ली ढाहनवाल' नहीं, और दारा और औरंगज़ेब के युद्ध में, धौलपुर के पास, संवत् १७१५ में, मारे गए थे।

भूषण

"कै पहिले उमराव अमीरुल, फेरि कियो जसवंत अजूबा ;
फेरि कुतुब्बखाँ, दाउदखाँ पुनि, कीन्हों दलेल महामद डूबा।
'भूषन' कीन्हें बहादुरखाँ फिर, मेरु महाबतखाँ दत ऊबा ;
सूखत जानि सिवाजी के तेज सों, पान-से फेरत नौरँग सूबा।†

साँगन सों पेलि-पेलि खग्गन सों खेलि-खेलि,
समद-सा जीता सो समद लौं बखाना है ;
'भूषन' बुँदेले मन चंपति-सपूत धन्य,
जाकी धाक बचा एक मरद मिया ना है।
जंगल के बल से उदंगल प्रबल लूटा,
महमद अमीखाँ का कटक खजाना है ;
वीर-रस-मत्ता जाते काँपत चकत्ता यारो,
कत्ता ऐसा बाँधिए जो छत्ता बाँधि जाना है।‡

बड़ी औड़ी उमड़ी नदी-सी फौज छेकी जहाँ,
मेंड़ बेड़ी छत्रसाल मेरु-से खरे रहे ;
चंपति के चक्कवै मचायो घमासान बैरी,
मलियै मसानि आनि सौहैं जे अरे रहे।
'भूषन' भनत भक रुंड रहे रुंड-मुंड,
भव के भुसुंड तुंड लोहू सों भरे रहे :

कीन्हों जस-पाठ हरि पठनेटे ठाट पर,
काठ-लौं निहारे कोस साठ-लौं डरे रहे।

जुद्ध को चढ़त दल बुद्ध को जसत तब,
लंक-लौं अतंकन के पतरैं पतारे-से,
'भूषन' भनत भारे घूमत गयंद कारे,
बाजत नगारे जात अरि उर छारे-से।
धसि कै धरा के गाढ़े कौल की कड़ाके डाढ़े,
आवत तरारे दिगपालन तमारे-से ;
फेन-से फनीस-फन फूटि बिष छूटि जात,
उछरि-उछरि सिंह पुरवै भुआरे से।*

पौरच नरेस अमरेस जू के अनुरुद्ध,
तेरे जस सुने ते सुहात सौन सीतलैं ;
चंदन-सी, चाँदनी-सी, चादरैं-सी चहूँ दिसि,
पथ पर फैलती हैं परम पुनीत लैं।
'भूषन' बखानी कबि-मुखन प्रमानी सो तो,
बानी जू के बाहन हरख हंस हीतलैं ;
सरद के घन की घटान-सी घमंडती हैं,
मेडू तैं उमंडती हैं मंडती महीतलैं।†

देस दहवट्टि आयो आगरे-दिल्ली के मेंडे
बरगी बहरि मानौ दल जिमि देवा को ;
'भूषन' भनत छत्रसाल छितिपाल-मनि,
ताके ते कियो बिहाल जंग जीतिलेवा को।
खंड-खंड सोर यों अखंड महि-मंडल मैं,
मंडौ ते बुँदेल-खंड मंडल महेवा को ;
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहसबाहु ने प्रबाहु रोक्यो रेवा को।"‡

चिंतामणि

"इंद्र सम जैनदीमुहम्मद बिराजत है,
जंग जुरि दुज्जन सँघारे जोधा जंभ-से ;
'चिंतामनि' बरखा करी है महाबानन की
जहाँ-तहाँ नदी-नद लोहू भरे अंभ-से।
चपला की बाही तरवारि पर,
चाहि के चकित भए हरि-हर-ब्रंभ से (?) ;

* "कवित्त-संग्रह" नं० २ (भरतपुर-लाइब्रेरी) से उद्धृत।
† "जस-कवित्त-संग्रह" (भरतपुर-लाइब्रेरी) से उद्धृत।
‡ "जस-कवित्त-संग्रह" (भरतपुर-लाइब्रेरी) से उद्धृत।

* "कवित्त-संग्रह" नं० २ (भरतपुर-लाइब्रेरी)।
† नवीन कवि के 'प्रबोध-रस-सुधा-सर' से उद्धृत।
‡ अपने पास के फुटकर कवित्त-संग्रह से उद्धृत।

कट्टि-कट्टि मुट्टि जिमि ढहै मास कीच-बीच,
चारयो पाँय गज के गड़े ही रहे खंभ-से।
गज बकसत महाराज रामराज तिन्हैं,
पहुँचे जलद नहीं उपमा अखंड में;
वे तो 'चिंतामनि' जलनिधि तें जलद होत,
जलनिधि जात हाँ समाय सुंडादंड में।
मद-जल झरनि भरत फेरि जलनिधि,
जलद उड़ात सुंड-बात परचंड में;
धरा धसकाइ पाँइ छुअत पताल और,
अंग ककुभानि कुंभ लागे ब्रहमंड में। *
दरवर दुवन मुलुक पायमाल कर,
करे मद मोकल गरद गढ़ कोटि धाम;
जोरावर जंग में पहार जिमि भारे दिग
बैरिन को कारे काल-राति के कराल गाम।
संग लागी आवै भ्रमरावली जँजीरनि ज्यों,
तोरत जँजीरनि ज्यों तीरन दरम दाम;
प्रबल परिंद में, अरिंदनु के जैतवार,
बकसे करिंद ऐसे कूरम-नरिंद राम। †
तैनै छत्रसाल के हठीले हाड़ा भाऊसिंह,
रावरे गयंद बरनत कवि भटकैं;
कीच मचै मेदिनी चुवत मद-धारनि,
पहारनि उखारि पारावार पाटि पटकैं।
कहै कबि 'चिंतामनि' बाढ़ैं ठाढ़े बिंध्य सम,
आड़ैं आसमान में विमानगन अटकैं;
जाको भय मानि चलै बाएँ-दाएँ मारतंड,
मति सुंडादंड सों पकरि रथ झटकैं। †
प्रबल प्रचंड महाबाहु बाबू रुद्रसाहि,
तोसों बैर रचत बचत खल कत हैं;
गहि करबाल काटि काढ़त दुवन-दल,
सोनित-समुद्र छिति पर छलकत हैं।
'चिंतामनि' भनत भखत भूतगन मास,
मेद गूद गीदर औ गीध गलकत हैं;
फाटे करि-कुंभन में मोती दमकत, मानौ
कारे-लाल बादल में तारे झलकत हैं। ‡

* "कवित्त-संग्रह" नंबर २ (भरतपुर-लाइब्रेरी)।
† "कवित्त-संग्रह" नंबर २ (भरतपुर-लाइब्रेरी)।
‡ "जस-कवित्त-संग्रह" (भरतपुर-लाइब्रेरी)।

दारा-दल औरँग लरे हैं दोऊ दिल्ली काज,
केते मारि डारे केते भाजि गए चाल मैं;
दगाबाजी करि केते जीवन बचावत हैं
जीव कहाँ बचै वैसे महाप्रलै काल मैं।
हाथी ते उतरि हाड़ा लरयो कबि 'लालमनि'
एती लाज का मैं, जेती लाज छत्रसाल मैं;
तन तरवारिन मैं, मन परमेश्वर मैं,
पन स्वामि-कारज मैं, माथो हरमाल मैं।"

इस अंतिम छंद को मिश्रबंधुओं ने भूषण-ग्रंथावली में भूषण के नाम से दिया है, और इसके तृतीय चरण का पाठ ऐसा रक्खा है—

"हाथी ते उतरि हाड़ा जूझयो लोह-लंगर दै;
एती लाज का मैं, जेती लाज छत्रसाल मैं।"

हमने जो पाठ लिखा है, वह भरतपुर-राज्य के पुस्तकालय में रक्खी हुई और संवत् १८१५ की लिखी हुई 'जस-कवित्त'-नामक पुस्तक से दिया है। यही पाठ ठीक मालूम होता है; क्योंकि हाथी से उतरकर जूझने पर लोह-लंगर लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। कारण, ऐसी अवस्था में हाथी के भाग जाने से कोई हानि नहीं है। "लोह-लंगर दै"-पाठ भी शुद्ध नहीं है। उसके स्थान में "कबि लालमनि"-पाठ ही ठीक है।

अंत में भूषण के कुछ शृंगार-रस के भी छंद देते हैं। मिश्रबंधुओं ने भूषण-ग्रंथावली की भूमिका में लिखा है—"भूषण ने सिवा एक छंद के और शृंगार-रस के वर्णन में नहीं कहा, और उसमें भी मानो प्रायश्चित्तार्थ इन्होंने युद्ध का ही रूपक बाँधा है।" परंतु हमको कुछ छंद भूषण के ऐसे भी मिले हैं, जिनमें युद्ध का वर्णन नहीं है। पाठकों के विनोद और जानकारी के लिये हम उन्हें यहाँ उद्धृत करते हैं—

"जिन किरनन मेरो अंग छुयो तिनही सों,
पिय-अंग छुवै क्यों न मैन-दुख-दाह को;
'भूषन' भनत तू तो जगत को भूषन है,
हौं कहा सराहौं ऐसे जगत-सराहे को।
चंद-ऐसी चाँदनी में प्यारे पै बरसि उतै,
रहै न सकै मिलाय होय चित-चाहे को;

तू तो निसाकरै सब ही की निसा करै,
मेरी जो न निसा करै तो तू निसाकर काहे को।*

कारो जल जमुना को काल-सो लगत आली,
मानौ बिष भयो रोम-रोम कारे नाग को ;
तैसियै भई है कारी कोयल निगोड़ी ये सु,
तैसे ही भँवर सदा बासी बन-बाग को।
'भूषन' कहत कारे कान्ह को बियोग हमैं,
ऐसो ही सँजोग सब करि अनुराग को ;
कारो घन घेरि-घेरि मार्‌यो अब चाहत है,
तापै तू भरोसो री करत कारे काग को। †

सौंधे भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आय रही अलकैं ;
कबि 'भूषन' अंग नबीन बिराजत मोतिन-माल हिए झलकैं।
दोउन की मनसा मनसी नित होत नई ललना ललकैं ;
भरि भाजन बाहिर जात मनौ मुसकानि किधौं छबि की छलकैं। ‡

बन-उपबन फूले अंबनि के झौर झूले,
अवनि सुहात सोभा और सरसाई है ;
अलि मदमत्त ह्वै कै केतकी बसंत फूले,
'भूषन' बखानै सोभा सबै सुखदाई है।
बिषम बिडारिबे को बहत समीर मंद,
कोकिला की कूक कान्ह कानन सुनाई है ;
इतनो सँदेसो है जू पथिक, तुम्हारे हाथ,
कहो जाय कंत सों बसंत-ऋतु आई है।+

मलय-समीर परलै को जो करत पति,
जम की दिसा ते आयो जम ही को गोतु है ;
साँपन को साथी न्याय चंदन छुए ते डसै,
सदा सहबासी बिष गुन को उदोतु है।
सिंधु को सपूत, कलपद्रुम को बंधु,
दीनबंधु को है लोचन, सुधा को तनु सोतु है ;
'भूषन' भनै रे भुव-भूषन द्विजेस है,
कलानिधि कहाय कै कसाई कत होतु है।

देह-देह देह फेरि पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइबो ;
जेते मन मानिक हैं ते ते मन मानिक हैं,
धराई में धरे ते तौ धराई धराइबो।

एक भूख राख, भूख राखै मत भूखन की,
यहि भूख राख भूप 'भूषन' बनाइबो ;
गगन के गौन जम न गिनन दैहैं,
नग नगन चलैगो साथ नग न चलाइबो।"*

अंत में हम पाठकों से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें इन महाकवियों के विषय में जो विशेष बातें मालूम हों, उनको प्रकाशित करा दें, जिससे इनके विषय में कोई निर्णय हो सके। हम भी और अनुसंधान कर रहे हैं। ठीक हाल मालूम होने पर हम उसे भी पाठकों के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करेंगे।

मयाशंकर याज्ञिक
जीवनशंकर याज्ञिक
भवानीशंकर याज्ञिक

हृदय का सौंदर्य

नदी की विस्तृत बेला शांत,
अरुण-मंडल का स्वर्ण-विलास ;
निशा का नीरव चंद्र-विनोद,
कुसुम का हँसते हुए विकास।
एक-से-एक मनोहर दृश्य,
प्रकृति की क्रीडा के सब छंद ;
सृष्टि में सब कुछ है अभिराम,
सभी में है उन्नति या ह्रास।
बना लो अपना हृदय प्रशांत,
तनिक तब देखो वह सौंदर्य ;
चंद्रिका से उज्ज्वल आलोक,
मल्लिका-सा मोहन मृदु हास।
अरुण हो सकल विश्व-अनुराग,
करुण हो निर्दय मानव-चित्त ;
उठे मधु-लहरी मानस में,
कूल पर मलयज का हो वास।

जयशंकर "प्रसाद"

---

* नवीन कवि के "प्रबोध-रस-सुधा-सर" से उद्धृत।
† अपने पास के "कवित्त-संग्रह" नं० २ से उद्धृत।
‡ अपने पास के "कवित्त-संग्रह" नं० १ से उद्धृत।
+ अपने पास के "कवित्त-संग्रह" नं० २ से उद्धृत।
* नवीन कवि के 'प्रबोध-रस-सुधा-सर' से उद्धृत।

कलियुग की सूपनखा

सौंदर्य परमात्मा का एक बहुत बड़ा दान है। इसीलिये सुंदर स्त्री और पुरुष सबकी दृष्टि सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। यद्यपि सौंदर्य भी, देश और रुचि के भेद से, भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखा जाता है, तथापि जो वास्तव में सुंदर है, उसे हर देश और हर तरह की रुचि के लोग सुंदर कहेंगे, इसमें संदेह नहीं। परंतु जहाँ संसार में एक-से-एक सुंदर पुरुष और स्त्री हुए हैं, होते हैं, और होते रहेंगे, वहाँ उनके विपरीत परमात्मा कभी-कभी बड़ी ही विचित्र सूरतें पैदा कर देता है, जिन्हें देखकर मनुष्य के मन में स्वभावतः घृणा, विरक्ति, उपेक्षा और भय का उद्रेक होता है।

रामायण में जहाँ राम आदि चारों भाइयों और जगज्जननी जानकी आदि परम सुंदरियों का वर्णन आया है, वहाँ सूपनखा (शूर्पणखा) के विचित्र भयदायक रूप का भी चित्र दिखाई देता है। यों तो लंका की सभी राक्षसियों के परम भयंकर रूप का चित्र अंकित किया गया है, परंतु शूर्पणखा तो कुरूपता का आदर्श मानी जाती है। आज भी रामलीला-मंडलीवाले सूपनखा की बड़ी ही विचित्र सूरत बनाया करते हैं। गोसाईं तुलसीदासजी ने सूपनखा का वर्णन करते हुए लिखा है—

> "बिथुरे केश, बदन बिकराला ;
> भृकुटी कुटिल, करनि लगि गाला।"

साथ ही यह भी लिखा है कि वह राम को देखते ही ऐसी मुग्ध हो गई कि जब तक उसके नाक-कान नहीं काट डाले गए, तब तक उसने उनका पिंड नहीं छोड़ा। इससे यह भी विदित होता है कि ऐसी कुरूपता की साक्षात् मूर्तियाँ भी सौंदर्य को देखकर मुह्यमान हो जाती हैं, अथवा उनमें स्वभावतः प्रबल काम-वासना होती है। इस बात की सत्यता एक आधुनिक कलियुगी सूपनखा के वृत्तांत को पढ़कर भी प्रकट होती है। इसका चित्र अन्यत्र प्रकाशित है। यह चित्र लंदन से प्रकाशित होनेवाले "The Burlington Magazine for Connoisseurs" पत्र के एप्रिल, १६२१ के अंक में प्रकाशित हुआ था। साथ ही उसका परिचय भी दिया हुआ था। उस दिन मेरे नाम-राशि, सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत ईश्वरीप्रसादजी वर्मा ने मुझे यह चित्र दिखाया, और पूछा—"जो लोग इस बात पर शंका करते हैं कि सूपनखा के इतने लंबे-लंबे नाक-कान और हाथ-पैर कैसे हो सकते हैं, वे यह चित्र देखकर क्या कहेंगे?" मैंने छूटते ही कहा—"इस ऐतिहासिक सूपनखा को देखकर वे पौराणिक सूपनखा के भयंकर रूप का अनुमान कर उसकी सत्यता निश्चय ही स्वीकार करेंगे।"

पाठक ही देखें, यह चित्र क्या मामूली तौर से किसी मनुष्य-जाति की स्त्री का मालूम होता है? यह तो साफ़ मालूम होता है, मानो किसी वन-मानुषी की प्रतिमूर्ति हो। पर सच जानिए, यह योरप की एक ऐतिहासिक नारी का चित्र है, जिसको हुए प्रायः सात सौ वर्ष हुए। मैं नीचे उसका संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत, अँगरेज़ी के उक्त मासिक पत्र के आधार पर ही, लिखता हूँ। आशा है, पाठकों को इससे निश्चय ही आश्चर्य-मिश्रित आनंद प्राप्त होगा।

यह चित्र टाइरोल (जर्मनी) की डचेज़ मार्गरेट का है। इसे क्विंटिन मैट सिस ने अंकित किया

कलियुग की सूपनखा

[डचेज़ मार्गरेट]

था। सैकड़ों वर्षों तक यह चित्र सीमूर-परिवार-वालों के घर में पड़ा रहा। गत २३वीं जनवरी, १६२० को उसी परिवार की एक लड़की ने इसे १५ हज़ार रुपए लेकर बेच डाला। यह राजकन्या अपने समय की सबसे बढ़कर कुरूप, दुश्चरित्र और महाकुटिल स्त्री थी। इसके पिता ड्यूक हेनरी बड़े भारी फ़िज़ूल-खर्च थे। इसका जन्म सन् १३१६ ई० में हुआ था।

लोग अक्सर इसके पिता से डरा-धमकाकर रुपए ऐंठा करते थे। इसकी माता बोहीमिया की राजकन्या थीं। इसीलिये इसके पिता वहाँ के भी राजा कहलाते थे। कारण, बोहीमिया के राजा के कोई पुत्र नहीं था। परंतु वास्तव में बोहीमिया-वाले इन्हें वहाँ के राज्य का संपूर्ण उपभोग नहीं करने देते थे, केवल नाम के लिये इन्हें राजा मानते थे।

दुर्भाग्यवश इनके भी मार्गरेट के सिवा और कोई संतान नहीं हुई। इसलिये उनके मरने पर यही उनकी समस्त संपत्ति की उत्तराधिकारिणी हुई। बोहीमिया का राज्य हाथ से न निकल जाय, इसी डर से इसके पिता ने, केवल बारह वर्ष की उमर में, इसकी शादी बोहीमिया के अंधे राजा जॉन के कमसिन लड़के राजकुमार जॉन के साथ कर दी। जॉन उमर में मार्गरेट से छोटा था।

मार्गरेट ने जवानी में पैर रखते ही अपने स्वामी और उसके समस्त सहचरों को देश से निकाल बाहर किया, और स्वामी को नपुंसक बतलाकर उससे संबंध-विच्छेद करने के लिये कोर्ट में मामला दायर कर दिया। इस मामले में बड़े-बड़े छिपे भेद प्रकट हुए। इसका निपटारा होने के पहले ही इसने जर्मनी के तात्कालिक सम्राट् के पुत्र, ब्राडनबर्ग के राजकुमार लुई के साथ विवाह कर लिया। यह बड़ा ही हट्टा-कट्टा और खूबसूरत जवान था। पर इससे भी उस दुष्टा कामिनी को संतोष न हुआ, इसलिये उसने कितने ही नीच कृषक-युवकों को अपना कृपा-पात्र बनाया, और उन्हें इनाम में जागीरें और ख़िताब तक दे डाले। अंत में इसने अपने स्वामी को विष देकर मार डाला, और बालिग़ होते ही अपने पुत्र को भी ज़हर दे दिया; क्योंकि वह शीघ्र ही गद्दी पर बैठने-वाला था। इसके बाद इसके कितने ही नाते-रिश्तेदार, जो पहले इसके विरोधी थे, इसकी कृपा प्राप्त कर राज्य पाने के लोभ से इसके पास पहुँचने लगे। उन सबकी आपस में खूब लड़ाई भी हो जाती थी। परंतु मार्गरेट उनसे अपनी वासना चरितार्थ करने तक मतलब रखती थी। अंत में हैप्सबर्ग (Hapsburg) वालों के ही भाग्य जगे, और ६ठी जनवरी, १३६३ ई० को मार्गरेट ने आस्ट्रिया के ड्यूक रुडॉल्फ (Duke Rudolph) के नाम राज्य का उत्तराधिकार-पत्र लिख दिया। तब से हाल तक यह सारी संपत्ति रुडॉल्फ के ही वंशधरों के पास रही।

इस वर्णन से पाठकों को अवश्य ही मालूम हो गया होगा कि मार्गरेट वास्तव में केवल रूप में ही सूपनखा न थी, बल्कि गुणों में भी उसके समान ही थी। हाँ, बेचारी पौराणिक सूपनखा की तरह इसकी दुश्चरित्रता के पुरस्कार-स्वरूप किसी ने इसके नाक-कान नहीं काटे। उलटे बहुतेरे इसके अपार धन को हथियाने के लिये इसी के पास आकर अपने नाक-कान कटवाते और मुँह काला कराते रहे। आख़िर, त्रेता और कलियुग में कुछ फ़र्क़ भी तो होना चाहिए!

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

"पारिजातहरण"

मिथिला

मिथिला-प्रदेश भारत का एक गौरवमय प्रांत है। भारत के धार्मिक तथा दार्शनिक इतिहास में मिथिला का नाम सुवर्णाक्षरों में लिखने के योग्य है। यह वही प्रदेश है, जिसमें कर्मयोगी महाराज जनक ने निष्काम कर्म का ज्वलंत दृष्टांत संसार के सामने उपस्थित किया था। इसी प्रदेश की धूलि को जनक नंदिनी जानकी ने अपने जन्म से पवित्र किया था। इसी देश में मैत्रेयी तथा गार्गी-जैसी ब्रह्मवादिनी महिलाएँ उत्पन्न हुई थीं। याज्ञवल्क्य-जैसे स्मृतिकारों को अपनी गोद में पालने का गौरव भी इसी भूमि को प्राप्त है। यह तो मिथिला की धार्मिक गरिमा की महिमा का परिचय है। दार्शनिक संसार में तो मिथिला का स्थान इससे भी बढ़कर है। यहाँ ऐसे-ऐसे दार्शनिक सूर्य उदय हुए हैं, जिन्होंने अपनी प्रखर किरणों से अज्ञानांधकार दूर हटाकर भटकनेवाले सांसारिक जिज्ञासुओं के लिये सरल मार्ग दिखलाया है। कौन ऐसा है, जिसने न्याय-सूत्रों के रचयिता महर्षि गौतम का नाम नहीं सुना? कौन ऐसा संस्कृतज्ञ है, जिसके कान सर्वतंत्र-स्वतंत्र वाचस्पति मिश्र का नाम सुनकर पवित्र न हो चुके हों? कौन ऐसा विद्वान् है, जिसने बौद्ध-मत-निरासक श्रीउदयनाचार्य की यह प्रसिद्ध प्रौढ़ोक्ति न सुनी हो—

"वयमिह पदविद्यां तर्कमान्वीक्षिकीं वा
यदि पथि विपथे वा वर्तयामः स पन्थाः ;
उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा
न हि तरणिरुदीते दिक्पराधीनवृत्ति।"

इन दार्शनिक-प्रवरों ने मिथिला-भूमि में ही जन्म लिया था। कौन ऐसा हिंदी जाननेवाला विद्वान् होगा, जिसने विद्यापति का नाम न सुना हो? विद्यापति भी इसी मिथिला के पाले-पोसे सपूत थे। इस प्रकार मिथिला स्मार्त-धर्म की जननी, दार्शनिक तत्त्वों की उद्भावयित्री और कोमल-कांत पदावली की गौरवमयी माता है। आज यहीं के एक विख्यात नाटक का परिचय भावुक पाठकों को दिया जाता है।

मिथिला की भाषा

नाटक का परिचय देने के पहले मैथिली भाषा तथा मैथिल-नाटकों के विषय में कुछ कहना अनुचित न होगा। आजकल के मैथिल-विद्वान् मैथिली भाषा को एक स्वतंत्र भाषा मानने लगे हैं। वे उसे हिंदी-भाषा के संपर्क से कोसों दूर रखना चाहते हैं।

उनकी लिपि भी देवनागरी से बिलकुल जुदी है। उसमें प्रधानतः बँगला-लिपि की छाया दृष्टि-गोचर होती है। मिथिला से बंगाल के निकटवर्ती होने तथा दोनों के परस्पर घनिष्ठ संबंध से मैथिली भाषा में बँगला का प्रभाव बहुत अधिक दृष्टि-गोचर हो रहा है। मैथिल-पंडितों ने इसकी स्वतंत्र स्थिति सिद्ध करने के लिये 'मिथिला-मिहिर'-नामक पत्र मैथिली भाषा में ही निकाला है। परंतु भाषा-तत्त्व के प्रकांड पंडितों की यह सर्वमान्य सम्मति है कि पूर्वी हिंदी के अनेक प्रभेदों—विविध बोलियों—में से मैथिली भाषा भी एक है। जिस प्रकार भोजपुरी, सरवरिया आदि बोलियाँ पूर्वी हिंदी से संबंध रखती हैं, उसी भाँति मैथिली भी एक प्रांतीय बोली है। इतना मानने के लिये हम सब उद्यत हैं कि अन्य बोलियों में साहित्य का कहीं नामोनिशान नहीं है; परंतु मैथिली में एक समुज्ज्वल तथा बहुमूल्य साहित्य अभी सुरक्षित है। अन्य बोलियों की अपेक्षा मैथिली बोलनेवालों की संख्या भी कहीं अधिक है। अतएव मैथिली को स्वतंत्र भाषा न मानकर पूर्वी हिंदी की एक समुन्नत बोली मानने में कोई आपत्ति नहीं देख पड़ती। यही कारण है कि यद्यपि विद्यापति की पदावली की भाषा को बंगालियों ने बँगला सिद्ध करने का निरंतर प्रयत्न किया, परंतु सब व्यर्थ हुआ। समय ने सिद्ध कर दिया कि पदावली की भाषा हिंदी ही है, अन्य नहीं।

मैथिल-नाटक

नाट्य-कला का जन्मस्थान यह भारतवर्ष ही है। इतने प्राचीन नाटक ग्रीक-भाषा में भी नहीं मिलते। संस्कृत-नाटक ही सबसे प्राचीन जान पड़ते हैं। पाणिनि के सूत्रों की आलोचना से जान पड़ता है कि ईसा से सात सौ वर्ष पूर्व भारत में नाट्य-कला की अच्छी उन्नति हो चुकी थी; नाट्य-शास्त्र के विषय में भी ग्रंथ तैयार हो चुके थे। पाणिनि ने कृशाश्व तथा शिलालि के रचे नट-सूत्रों का उल्लेख किया है। इस प्रकार यद्यपि भारत

को नाट्य-कला के उद्भावक का गौरव प्राप्त है, तथापि आधुनिक भारत की राष्ट्र-भाषा हिंदी में यथार्थ नाटकों का प्रायः अभाव ही है। यह देखकर किसी भी देशहितैषी को दुःख हुए बिना न रहेगा। हिंदी के नाटक केवल उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। हिंदी में यथार्थ नाटक का जन्म तो अभी-अभी, गत शताब्दी के अंतिम भाग में ही, हुआ है। हिंदी के नाटकों में संस्कृत-नाटकों से कुछ विभिन्नता या विशेषता नहीं दृष्टि-गोचर होती। सौभाग्य-वश हिंदी की एक शाखा मैथिली में नाटक की उत्पत्ति बहुत पहले हो चुकी है। जिस नाटक की चर्चा आगे की जायगी, उसी का रचना-काल ईसा की चौदहवीं सदी का प्रारंभिक वर्ष है। मैथिली के नाटकों में ऐसी विशेषताएँ हैं, जो उन्हें अन्य नाटकों से सर्वथा पृथक् किए हुए हैं। मैथिली भाषा का नाटक केवल एक अंक में समाप्त होता है*। पुरुष प्रायः संस्कृत में अपने हृद्गत भाव को प्रकट करते हैं, और स्त्रियाँ प्राकृत में। परंतु जो कुछ गीत दिए गए ह, और अच्छी तरह दिए गए हैं, वे सब मैथिली भाषा में हैं। नाटक की नायिका जो अभी प्राकृत में बोल रही थी, मैथिली में गाने लगती है। मैथिल-नाटकों की यही विशेषता है कि पात्रों की बातचीत में संस्कृत या प्राकृत का, परंतु गाने में मैथिली भाषा का प्रयोग होता है।

समालोच्य नाटक

अब हम प्रस्तुत विषय की ओर आते हैं। समालोच्य मैथिल-नाटक का नाम है "पारिजातहरण"। नाटक का कथानक हरिवंश आदि पुराणों में प्रसिद्ध कृष्ण-विषयक एक घटना है। संक्षेप में कथा यह है— श्रीकृष्ण वसंत की छटा निरखते हुए रुक्मिणी के साथ रैवतक-पर्वत पर टहल रहे हैं। इतने में महर्षि नारद भगवान् के दर्शन की उत्कट उत्कंठा से वहाँ पधारते हैं। श्रीकृष्ण का दर्शन पाकर नारद कृतकृत्य हो जाते हैं। आह्लाद की अधिकता से महर्षि नंदन-वन की शोभा बढ़ानेवाला पारिजात का फूल श्रीकृष्ण को अर्पण करते हैं। कृष्ण वह सुगंधित पुष्प रुक्मिणी को सादर दे डालते हैं। इतने में कृष्ण की प्राणप्रिया दयिता सत्यभामा की दृष्टि, जो उस समय वहाँ टहलने आई थी, अपने पति के इस अनुचित व्यवहार पर पड़ती है। व्यवहार के अनौचित्य से वह आग-बबूला हो जाती है। सोचती है, कृष्ण भी बड़े छलिया हैं, मुझे तो अपनी प्राणप्रिया कहा करते हैं, पर यह अनुपम फूल रुक्मिणी को दे दिया। जब कृष्ण को सत्यभामा के रूठने की ख़बर मिलती है, तब वह शीघ्र ही पधारते हैं। वह इंद्र के पास पारिजात का एक फूल भेजने के लिये कहला भेजते हैं। इंद्र के अस्वीकार करने पर कृष्ण धावा बोल देते हैं। फूल लाने की कौन कहे, पारिजात का वृक्ष ही उखाड़ लाकर पटरानी सत्यभामा के आँगन में लगाया जाता है। अक्षय पुण्य की लालसा से सत्यभामा अपने प्राणप्यारे कृष्ण को, पेड़ के नीचे, नारद को दान में देती और फिर मूल्य देकर उन्हें ख़रीद लेती है। बस, नाटक की कथा इतनी ही है।

नाटककार का समय

पारिजातहरण के कर्ता का नाम उमापति उपाध्याय है।

संस्कृत-साहित्य में उमापतिधर का नाम कुछ अप्रसिद्ध नहीं है। यद्यपि उनका कोई काव्य अभी तक नहीं मिला है, जिससे उनकी योग्यता और कवित्व-शक्ति का पता लगे, परंतु विश्व-विख्यात गीति-काव्य गीतगोविंद के रचयिता श्रीजयदेव के 'वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः' इस उल्लेख से हम उमापतिधर की समास-बहुल गौड़ी-रीति का अनुमान कर सकते हैं। यह उमापतिधर सेन-वंश के राजा विजयसेन के सभा-पंडित थे। उमापति की लिखी हुई एक प्रशस्ति अभी हाल में मिली है, जिसमें विजयसेन के द्वारा मिथिला के राजा नान्यदेव (१०९८—११३५) के पराजय की बात लिखी है। पर यह उमापतिधर पारिजातहरण के कर्ता उमापति से सर्वथा भिन्न व्यक्ति हैं। इनका उल्लेख यह बताने के लिये किया गया है कि जिस नान्यदेव को विजयसेन ने हराया था, उसी की चौथी पीढ़ी में उमापति के आश्रयदाता ने जन्म लिया था। मिथिला में यह किंवदंती है कि उमापति ने नान्यदेव से चौथे राजा हरिदेव (या हरदेव) के शासन-काल में इस

* संस्कृत में भी ऐसे एक अंक में समाप्त होनेवाले नाटक होते हैं; परंतु आलोचकों की राय में ऐसे छोटे रूपकों के लिये नाटक-जैसा श्लाघनीय नाम रखना ठीक नहीं। अतएव वे उन्हें 'छाया-नाटक' के नाम से पुकारकर अपने निष्पक्ष हृदय का परिचय देते हैं। 'दूतांगद'-नामक रूपक ऐसा ही एक प्रसिद्ध छाया-नाटक है।

नाटक की रचना की। पारिजातहरण की अंतरंग-परीक्षा से सर्वथा इसकी पुष्टि होती है। नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार कहता है—"महाराज हरिहरदेव की आज्ञा है कि उमापति के नाटक का अभिनय किया जाय। इससे स्पष्ट सूचित होता है कि उमापति हरिहर के आश्रय में रहते थे। हरिहर का राज्य-काल सन् १३०३ से १३२३ तक है। अतएव उमापति के आविर्भाव का समय भी चौदहवीं सदी का प्रथम चतुर्थांश है। इतिहास से उपर्युक्त कथन की सर्वथा पुष्टि होती है। उमापति के समय में मुहम्मद तुग़लक दिल्ली का बादशाह था। उसने बंगाल पर चढ़ाई करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। बंगाल जाते समय मिथिला से होकर जाना पड़ता है। इतिहास बंगाल पर विजय प्राप्त करने की कथा को रोचक शब्दों में उच्च स्वर से पुकारकर कह रहा है; परंतु मिथिला के बारे में वह सर्वथा मौन है। संभव है, बंगाल में जैसी सफलता मुहम्मद तुग़लक को प्राप्त हुई, वैसी मिथिला में न प्राप्त हुई हो। बहुत संभव है कि मिथिला-नरेश के हाथों दिल्ली की सेना को पराजय सहनी पड़ी हो। पारिजातहरण से इस दूसरी संभावना की सत्यता सिद्ध होती है। उमापति ने हरिहरदेव को 'यवन-वनच्छेदन कराल करवाल' (मुसलमानों के वन को काटनेवाली भयंकर तलवार) बतलाया है। अतः यद्यपि यह कथन आश्रित कवि की अत्युक्ति-सा जँचता है, परंतु इस अत्युक्ति का आधार कोई वास्तविक घटना अवश्य होगी। संभव है, तुग़लक की सेना पर हरिहरदेव ने कुछ विजय पाई हो। यद्यपि मुग़ल-सम्राट् की विशाल, वंग-विजयिनी सेना के एक प्रांतीय नरेश द्वारा पराजित किए जाने की बात हास्यकर प्रतीत होती है, तथापि मिथिला-विजय के विषय में मुसलमान इतिहासकारों का मौनावलंबन इस हास्यकर संदेह की ही पुष्टि कर रहा है। अतएव हमारे कविवर के आश्रयदाता हरिहरदेव तथा नान्यदेव से चतुर्थ मिथिला-नरेश हरदेव या हरिदेव (शायद पूरा नाम हरिहरदेव होगा) एक ही व्यक्ति हैं। अतः पारिजातहरण की रचना चौदहवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में, लगभग १३२० ई० में, हुई होगी।

कविता

पारिजातहरण की कविता-विवेचना से पहले कविता के स्वरूप का निदर्शन कुछ अप्रासंगिक न होगा। कविता में ऐसे चुने हुए शब्द होने चाहिए, जिनसे कवि का अभीष्ट अभिप्राय अनायास ही पाठकों के हृदयंगत हो जाय। अर्थ में भी कुछ वैचित्र्य होना आवश्यक है। वे अर्थ, जिनसे रस की अभिव्यक्ति शीघ्र हो जाती है, उत्तम कविता के आवश्यक साधन हैं। कविता की आत्मा रस है; अतएव रस के बिना कविता की क़ीमत उतनी ही है, जितनी एक चित्र-लिखित निर्जीव ललना की। तात्पर्य यह कि कविता में शब्द-लालित्य, अर्थ-चमत्कार तथा रस-व्यक्ति का होना सर्वथा आवश्यक है।

पारिजातहरण में कविता के आवश्यक साधन प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। छोटे-छोटे परिचित शब्दों में ग़ज़ब का माधुर्य भरा हुआ है। उसके मैथिली गीत माधुर्य से शराबोर हैं। माधुर्य के साथ-साथ प्रसाद की अधिकता सोने में सुगंध हो गई है। शब्दों का निवेश रस के अनुरूप ही है। अलंकारों की छटा ख़ूब ही मनोमोहिनी है। हाँ, जो बनावटी अलंकारों से, बाहरी पाउडर आदि से, शोभित ललना के मुख-मंडल को ही आदर्श सौंदर्य का निदर्शन समझते हैं, उन्हें इस कविता-कामिनी की छटा वास्तव में आकृष्ट नहीं कर सकती। परंतु जिन्हें ललना के स्वाभाविक रूप में सुंदरता का सच्चा स्वरूप दिखाई देता है, उन्हें यह कविता सचमुच मुग्ध कर देगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। तनिक कृष्ण के इस सुंदर चित्र पर दृष्टिपात कीजिए—

"सखि हे रभस रस चलु फुलवारी;
तहाँ मिलल मोर मदन मुरारी।
कनक मुकुटमणि भल भासा;
मेरु-शिखर जनि दिनमणि बासा।
सुंदर नयन, बदन सानंदा;
उगल जुगल कुबलय लय चंदा।
पीत वसन तनु भूषन मनी;
जनि नव घन उग दामिनी।
बनमाला उर उपर उदारा;
अंजन-गिरि जनि सुरसरि-धारा।"

वाह, कैसी सुंदर छटा है! कैसा मधुर शब्दों का निवेश है! कल्पना की स्वाभाविकता तथा नवीनता रसिकों के चित्त में कैसा आनंदमय कौतूहल पैदा कर रही है! जान पड़ता है, वनमाली हमारी इन

आँखों के सामने अपनी छटा दिखा रहे हैं ! कृष्ण के पीत वसन की सजल नील मेघों में दमकनेवाली बिजली के साथ उपमा कितनी अनुरूप है ! कृष्ण के गले में लटकनेवाली आजानु-लंबिनी माला का ध्यान कर किस सहृदय का चित्त अंजन-गिरि में बहनेवाली पवित्रसलिला सुरसरित् की उज्ज्वल धारा की नवीन उत्प्रेक्षा से सद्यः आनंद-निमग्न नहीं हो जाता !

यह तो हुआ कृष्ण की रूप-छटा का अलौकिक दृश्य, अब ज़रा रसिक पाठक कृष्ण की प्राणप्यारी सत्यभामा की छवि का दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल कीजिए—

"देखियत चानकलाक सँदेह ;
वसुधा बसि जनि बिजुली केह।
मणिमय भूषण अंग अमूल ;
कनकलता जनि फूलत फूल।"

कल्पना की कैसी ऊँची उड़ान है ! सत्यभामा की दीप्त मुखच्छटा के सामने बिजली या चंद्रमा का संदेह अकिंचित्कर ही प्रतीत होता है।

विरह-दशा

पारिजातहरण की कविता रस से भरी हुई है। नाटक की आवश्यकता के अनुसार कवि ने इसमें विप्रलंभ-शृंगार का ही वर्णन किया है। सत्यभामा की विरह-दशा के वर्णन को सुनकर पत्थर का कलेजा भी पानी-पानी हो जाता है, फिर सहृदय के हृदय की तो बात ही क्या ! पाठक, इस वर्णन को पढ़कर स्वयं अपने सहानुभूति-पूर्ण हृदय की दशा निरखिए—

"कि कहब माधव तनिक विशेशे ;
अपनुहु तनु धनि पाव कलेशे।
अपनुक आनन आरसि हेरी ;
चानक भरम कोप कत बेरी।
भरमहु निअ कर उर पर आनी ;
परसै तरस सरोरुह जानी।
चिकुर-निकर निअ नयन निहारी ;
जलधरजाल जानि हिय हारी।
अपन बचन पिकरव अनुमाने ;
हरिहरि तेहु परि तेजए पराने।"

वाह, ग़ज़ब की विरह-दशा है ! अपने ही शरीर से भय !—आश्चर्य ! दर्पण में अपना ही मुख देखकर सत्यभामा उसे चंद्र समझती और डर से काप उठती है। अपने ही केशपाश को देखकर नील घन घटा की भ्रांति से उसका हृदय बैठ जाता है ! अपने ही मधुर वचनों में कोकिला के कलरव की भ्रांति हो जाती है ! पाठक ही बतावें, विरह में ऐसी भ्रांति—ऐसा पागलपन—अपने प्यारे शरीर से ही भय खाना—क्या अलौकिक नहीं है ?

उपालंभ

अब ज़रा दूसरी ओर दृष्टि डालिए। जब कभी सत्यभामा को कुछ भी सुध आती है, वह छलिया कृष्ण की अनुचित करतूतों पर शोक प्रकट करती है : कृष्ण की मीठी बातों में आकर अपना दिल दे देने के लिये, छले जाने के लिये, अपने को भला बुरा कहती है—

"हरि सों प्रेम आस कय लाओल
पावल परिभव ठामे ;
जलधर छाहरि तर हम सुतलहु
आतप भेल परिनामे।
(सखि हे) मन जनु करिय मलाने ;
अपन करम फल हम उपभोगव
तोहें किय तेजह पराने।(ध्रुव)
पुरुब पिरीति रीति हुनियँ बिसख
तइओन हुनकर दोसे ;
कतेक जतन धरियँ परिपालिय
साँप न मानय पोसे।
कबहु नेह पुनि नहिं परगासब
केवल फल अपमाने ;
बोरि सहस दस अमिय भिजाविय
कोमल न होय पखाने।"

कितना मीठा उपालंभ है ! गोपी-भुजंग काले कृष्ण के ऊपर ये वचन कितने फबते हैं ! गोपियों के साथ रासलीला करनेवाले कृष्ण की कितने ही यत्न करने पर भी पोस न माननेवाले भुजंग के साथ उपमा क्या ही अनुरूप है ! पारिजातहरण में गीतगोविंद की छाया-कहीं-कहीं दृष्टि-गोचर होती है।

यह गीत गीतगोविंद के गीतों के ढंग का है। इसमें

तनिक भी संदेह नहीं कि उमापति के हृदय पर जयदेव ने अधिक प्रभाव डाला है। कई स्थानों पर इस प्रभाव की झलक स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। उमापति ही नहीं, पीछे के समग्र कृष्ण-भक्त कवियों के पदों में गीतगोविंद की छाया देख पड़ती है!

मानिनी-मनावन

साँवरे कृष्ण-जैसे रसिक-शिरोमणि का इस उपालंभ को भी सुनकर कानों पर हाथ रक्खे बैठे रहना कैसे संभव हो सकता है। झट आप सत्यभामा के महल में पधारे, और हाथ जोड़कर प्रियतमा को मनाने लगे—

"आज पुरुब दिसि बहलि सगर निसि
गगन मलिन भेल चंदा;
मुनि गेलि कुमुदनि तइअओ तोहर
धनि मूलन मुख अरबिंदा।
कमल बदन कुबलय दुह लोचन
अधर मधुरि निरमाने;
सगर सरीर कुसुम तुअ सिरजल
किए तुअ हृदय पखाने।
असकति कर कंकन नहि परिहसि
हृदय हार भेल भारे;
गिरि सम गरुअ मान नहि मुंचसि
अपरुप तव व्यवहारे।"

कृष्ण की समझ में सत्यभामा का व्यवहार बिलकुल बेढंगा है। हृदय में सफ़ेद मोतियों की माला तो भार-सी जान पड़ती है, परंतु गिरि के समान भारी (कठोर) मान अभी वह हृदय में छिपाए हुए है। क्या यह व्यवहार अपरूप नहीं? इस मनावन में दूसरा पद्य तो बड़े ही मार्के का है! देखिए, कितने मीठे शब्दों में एक रमणीय भाव प्रकट किया गया है। सत्यभामा का समग्र शरीर ही कुसुममय है। मुख कमल है, आँखें कुवलय हैं, और अधर भी तो माधुर्यमय फूल है। भला इतने कोमल शरीर में भी हृदय पत्थर का बना हुआ है। आश्चर्य है!

इतनी मनावन से भी अभीष्ट फल होते न देखकर कृष्ण नहीं रुकनेवाले थे। झट उन्होंने मनाना छोड़कर अपना दोष ही स्वीकार कर लिया। वह अब सत्यभामा से दोषी को उचित दंड देने के लिये हठ करने लग गए। भावुक पाठक, देखिए, कृष्ण के वचन कैसे चातुरी से भरे हैं! कितना सुंदर व्यंग्य इनमें भरा हुआ है—

"मानिनि मानह जओं मोर दोसे;
शास्ति करिअ बरु न करिअ रोसे।
भौंह कमान विलोकन बाने;
बेधह बिधुमुखी कय समधाने।
पीन पयोधर गिरिवर साधी,
बाहु फाँस धनि धरु मोहि बाँधी।
को परिणति भय परसनि होही
भूषण चरण कमल देह मोही।"

वाह-वाह! कैसे मधुरिमा-पगे व्यंग्य-वचन हैं! क्यों न हो, रसिक-शिरोमणि साँवरे ने ही जब इन वचनों को श्रीमुख से निकाला है! कृष्ण का यह कथन कितना उचित है कि जो मुझे दोषी समझो, तो मुझे दंड दो। मैं हर तरह तैयार हूँ। हे चंद्रवदनी, अपनी कमान-रूपी भौंहों से बाण-सदृश तीखे कटाक्ष छोड़ो। मैं उनसे बिध जाने के लिये उद्यत हूँ। हाँ, यदि केवल बाणों से बेधना तुम्हें अभीष्ट न हो, तो लो, मैं फाँस में बँधने के लिये भी आया हूँ। अपने भुजपाशों से मुझे जकड़ दो। वाह-वाह! देखिए, कैसी अनोखी उक्तियाँ हैं। कौन ऐसी मानिनी होगी, जिसका पत्थर का भी कलेजा इन वचनों से पिघल न जाय; जिसके मान की प्रबल दृढ़ ग्रंथि ढीली न पड़ जाय? कौन ऐसा सहृदय भावुक होगा, जिसके हृदय में ये व्यंग्य-वचन आनंद-पूर्ण कौतूहल की धारा न बहा देंगे?

ऊपर गीतगोविंद की छाया की बात कही गई है। कविवर को यह उक्ति गीतगोविंद के एक पद्य से सूझी है। जयदेव का वह मनोहर पद्य यह है—

"सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी
देहि खरनखरशरघातम्;
घटय भुजबंधनं जनय रदखंडनं
येन वा भवति सुखजातम्।"

इस पद्य से श्रीकृष्णचंद्र मानिनी राधा की मानग्रंथि खोलने का यत्न कर रहे हैं। मैथिली गीत का 'बाहु फाँस धनि धरु मोहि बाँधी' स्पष्ट ही 'घटय भुजबंधनम्' का अनुवाद जान पड़ता है।

उपसंहार

बस, पारिजातहरण की कविता का निदर्शन हो चुका। संक्षेप में; कविता रसमयी है; ठौर-ठौर अनोखी उक्तियाँ भरी पड़ी हैं; शब्दमाधुर्य के साथ-साथ प्रसाद-गुण का मेल अत्यंत आनंददायक है। नाटक की दृष्टि से भी इसे कुछ बुरा नहीं कह सकते। बाहरी घटनाओं को न दिखाकर केवल पारिजातहरण की ही घटना वर्णित है। भाषा की दृष्टि से तो यह नाटक अपना बड़ा मूल्य रखता है। कुछ लोगों का ख़याल है कि विद्यापति की पदावली ही मैथिली भाषा का सर्वप्रथम निदर्शन है। परंतु यह नाटक इस विचार को भ्रांत सिद्ध करता है। यह नाटक विद्यापति (लगभग १४०० ई०) से क़रीब ७५ वर्ष पहले लिखा गया है। अतएव भाषा-तत्त्व के पंडितों को मैथिली भाषा के शब्दों के संबंध में इस नाटक से बहुत कुछ मदद मिलेगी।

बलदेव उपाध्याय

राजनीतिक व्यक्ति-स्वातंत्र्य

स्वाधीनता का अर्थ है अपने ही अधीन रहने की स्थिति। स्वयं-निर्णय और उस निर्णय को, विना किसी बाहरी शक्ति से प्रभावित हुए, कार्य में परिणत कर सकने को हम स्वातंत्र्योपभोग कहेंगे। विचार और कार्य की निरंकुशता ही में सच्ची स्वाधीनता है। परंतु ऐसे व्यापक अर्थ में तो पूर्ण स्वेच्छाचार तभी संभव हो सकता है, जब सारे संसार में एक ही मनुष्य का अस्तित्व हो। वही एकाकी मनुष्य विना किसी बाहरी शक्ति से प्रभावित हुए स्वाधीन रह सकता है। परंतु उसके साथ ज्यों ही हम किसी दूसरे मनुष्य की कल्पना करने लगते हैं, त्यों ही स्वयं-निर्णय और स्वेच्छाचार, दोनों का क्षेत्र संकुचित होने लगता है।

मनुष्य-स्वभाव के मूल-अंगों में दो विशेषताएँ स्पष्ट देख पड़ती हैं। एक तो स्वातंत्र्य-प्रियता और दूसरी समाज-प्रियता। परंतु ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। कारण, पहली के पूर्णतया चरितार्थ होने के लिये संसार का एकाकी सार्वभौमत्व ही आवश्यक है; परंतु समाज-प्रियता लाखों और करोड़ों की संख्या में हिस्सेदार उत्पन्न करती है। ऐसी स्थिति में संस्कृत मानव-जीवन इन दो शक्तियों की कलह-भूमि बन जाता है। अत्यंत असभ्य जातियों में स्वेच्छाचार ही की मात्रा अधिक रहा करती है। सबसे अधिक शक्तिमान् मनुष्य 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के न्याय से अन्य लोगों पर, पाशविक क्रूरता के साथ, अत्याचार करता है। परंतु एक ही मनुष्य चिरकाल के लिये सवशक्तिमान् नहीं रहा करता; उसके प्रतिस्पर्द्धी उत्पन्न हो ही जाते हैं, और इस प्रकार आज एक के, तो कल दूसरे के दास होकर लोगों को रहना पड़ता है।

परंतु ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों सामाजिकता भी बढ़ती है। सामाजिक जीवन जितना अधिक विकसित होगा, उतना ही अधिक मनुष्य सभ्य माना जायगा। आजकल तो इन्हीं सामाजिक बंधनों की दृढ़ता सभ्यता की उन्नति या अवनति का एक-मात्र निदर्शन मानी जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि स्वाधीनता की लालसा कम होती जाती है। सच तो यह है कि इस भावना की तीव्रता भी बढ़ती खूब है; परंतु वह थोड़े-से भिन्न प्रवाहों में बहने लगती है। शासन-संस्थाओं का जन्म इन दो शक्तियों को मर्यादा-बद्ध रखने ही के लिये हुआ है। व्यक्तियों

का आपस का आततायीपन बंद करना सरकार का सबसे मुख्य कर्तव्य है।

इसीलिये स्वतंत्रता के स्वभाव का विचार करते समय हमें शासन-संस्था का विचार कर लेना आवश्यक हो उठता है। यह संस्था व्यक्तियों का एक छोटा-सा, परंतु सार्वभौम समुदाय ही है। इस समुदाय की व्यक्तियाँ आपके और हमारे समान मनुष्य ही हुआ करती हैं। इन घटकों के समान शासन-संस्था भी चेतनता और व्यक्तित्व से विभूषित रहा करती है। सार्वभौम होने के कारण, राज्य की स्वतंत्रता तभी संभव है, जब अन्य राज्य उसके विचार और कार्य की निरंकुशता में बाधा न डाल सकें। हमें यहाँ राज्य की स्वतंत्रता का विचार नहीं करना है। हमारा उद्देश्य तो है नागरिक स्वातंत्र्य। परंतु, हाँ, राज्य की स्वाधीनता या पराधीनता का व्यक्ति-स्वातंत्र्य पर बहुत ही प्रभाव पड़ता है।

बाहरी संबंधों में जिस प्रकार राज्य की पूर्ण स्वतंत्रता आवश्यक है, उसी प्रकार आंतरिक शासन में वह अहित-कारक होती है। सारी प्रजा का नियमन करने की जवाबदेही सिर पर होने के कारण, शासन-संस्था को व्यक्तियों के ऊपर भी सार्वभौमत्व के अधिकार होने चाहिए। परंतु इस अधिकार की मर्यादा का उल्लंघन करने की लालसा सदैव अनिवार्य हुआ करती है। इसलिये सरकार के आततायीपन से रक्षा तथा उसके अनुपयुक्त हस्तक्षेप में उचित बाधाएँ रहना आवश्यक हो उठता है।

इस तरह हम देखते हैं कि राजनीतिक व्यक्ति-स्वातंत्र्य का अर्थ होता है व्यक्ति, जन-समुदाय या राज्य के अनुचित हस्तक्षेप से रक्षा और उसके विरुद्ध उचित निर्बंधों का अस्तित्व।

राजनीतिक व्यक्ति-स्वातंत्र्य की उक्त परिभाषा को हम तब तक अच्छी तरह समझ नहीं सकते, जब तक अनुचित हस्तक्षेप और उचित निर्बंध का ठीक-ठीक अर्थ न मालूम कर लिया जाय। अनुचित हस्तक्षेप के कहने से ज्ञात होगा कि उचित हस्तक्षेप भी हुआ करता है। यदि हमें संसार में रहना है, तो समाज का बंधन मानना ही चाहिए। समाज-संगठन के विरुद्ध यदि हम जाने लगें, तो हमारे मार्ग में बाधाएँ अवश्य डाली जायँगी। कार्य की निरंकुशता का सहारा लेकर आप यदि किसी के घर में मालिक की आज्ञा लिए बिना घुस पड़ें, तो आपके मार्ग में अवश्य ही रुकावट हो सकती है। आत्मरक्षा के अतिरिक्त यदि आप किसी मनुष्य के ऊपर अपनी शक्ति का प्रयोग करें, तो आपकी स्वतंत्रता में बाधा अवश्य पड़ सकती है। इतना ही नहीं, अपने लड़कों को प्राथमिक शिक्षा भी न देना हस्तक्षेप का कारण हो सकता है, और यह हस्तक्षेप उचित ही होगा। लोग जैसे-जैसे सभ्य होते जाते हैं, वैसे वैसे उनके सामाजिक कर्तव्य भी बढ़ते जाते हैं और उनमें से जो सर्वसम्मति से स्वीकृत कर लिए जाते हैं, उनका न पालना समाज की दृष्टि में पाप है। पाप करने के पहले आपके मार्ग में बाधा और तदुपरांत उसके लिये दंड, दोनों अनिवार्य हैं।

सब तरह का हस्तक्षेप अनुचित नहीं हो सकता, यह तो हमने देख लिया। अब निर्बंध उचित या अनुचित कैसे होते हैं, यह देखना है। अच्छे संस्कारवाले मनुष्य निर्बंधों को सदा ही घृणा की दृष्टि से देखते हैं। स्वयं स्वाधीनता के प्रेमी होने के कारण वे दूसरों में भी इसी भाव की अपेक्षा करते हैं, और समझते हैं कि निर्बंधों का

होना स्वाधीनता का अभाव ही है। जिस प्रकार हम आप ही अपने स्वामी बने रहना चाहते हैं, उसी प्रकार, स्वभाव की समता के कारण, अन्य मनुष्य भी वही चाहते हैं। परंतु अन्य कई इच्छाओं के समान इस इच्छा का अतिरेक (सीमा से अधिक) हो जाना कुछ कठिन नहीं है।

एक रुपएवाला दस रुपए की इच्छा रखता है, दस रुपएवाला सौ रुपए की, सौ रुपएवाला हज़ार रुपए की, और हज़ार रुपएवाला लाख रुपए की। लक्षाधीश करोड़पती बनना चाहता है, और करोड़पती होने के बाद राजत्व की लालसा होती है। इसी प्रकार स्वाधीनता-रूपी धन को भी हरएक अपनी ही ओर खींचना चाहता है। अपनी इच्छा का अतिरेक हो जाना जितना अनिष्ट है, उतना ही दूसरों की इच्छा का मर्यादातीत हो जाना भी। अपने अतिरेक का उपाय हस्तक्षेप है, तो दूसरों के मर्यादातीत हो जाने का उपाय निर्बंध है। परंतु यदि आप चाहें कि अमुक एक व्यक्ति का वाक्स्वातंत्र्य केवल इसीलिये छीन लिया जाय कि वह हमारे दोष ही ढूँढ़ता रहता है, तो यह उचित निर्बंध नहीं कहा जा सकता। आपके दोष ढूँढ़ना शायद समाज के हित ही के लिये हो। फिर आप अपने दोष दूर करने में पूर्ण स्वतंत्र हैं। उन्हें दूर कीजिए। उक्त निर्बंध तो तभी न्याय-संगत होगा, जब आप यह प्रमाणित कर दें कि उसका दोष लगाना असत्य और द्वेष-मूलक है। शासन-संस्था व्यक्तित्व के विशेषण से विभूषित है। हमारे-तुम्हारे-जैसे गुण-दोष सरकार में भी हैं। उन गुण-दोषों का महत्त्व इसलिये बढ़ जाता है कि समाज की स्थिरता का उत्तरदायित्व सिर पर होने के कारण सरकार को सार्वभौम अधिकार ही देने पड़ते हैं। अपनी [illegible] अच्छी तरह निबाहने के लिये उसे स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त समाज का योग्य नियमन होना संभव नहीं। परंतु स्वातंत्र्य (बनाम अधिकार-लालसा) व्यक्ति के समान सरकार में भी मर्यादा का उल्लंघन करने को सदैव तुली रहा करती है। इसके लिये निर्बंधों की आवश्यकता है। परंतु यहाँ मर्यादा बाँध देना कुछ कठिन है, और निर्बंधों के औचित्य या अनौचित्य के विषय में सदैव झगड़ा रहता आया है। इस झगड़े में न्याय-निर्णय के अधिकार किसके हाथ में हों, यह देखना चाहिए। इसके लिये हमें क़ानून के स्वभाव का पूर्ण ज्ञान अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि क़ानून ही के रूप में उक्त निर्बंध प्रयोग में लाए जा सकते हैं। नेपोलियन के विषय में यह एक किंवदंती है कि एक बार सेंट हेलेना के कारा-गृह में उसने सुना कि लोग उसे स्वेच्छाचारी शासन के लिये दोष देते हैं। यह सुनकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह कह उठा—"मैं मैं स्वेच्छाचारी बादशाह हूँ? मैंने तो क़ानून के ख़िलाफ़ कभी कोई भी काम नहीं किया।" अब प्रश्न यह उठता है कि नेपोलियन के लिये 'क़ानून का क्या अर्थ था? अपने फ़र्मानों को ही वह क़ानून समझता रहा हो, तो निस्संदेह वह क़ायदे-क़ानून के बाहर न गया होगा। कोई भी घटना हो जाने के बाद यदि नया क़ानून बनाया जाय, और वह बीती घटना पर भी लागू किया जा सके, तो निस्संदेह उसने क़ानून के ख़िलाफ़ कोई काम न किया होगा। स्वतंत्रता और समाज के सर्वोच्च नियमों के विरुद्ध भी यदि कोई नया क़ानून बनाया जा सके, तो निस्संदेह नेपोलियन 'स्वेच्छाचारी बादशाह' न होकर प्रजातंत्र का अनुमोदक था। परंतु उसके दुर्भाग्य से क़ानून का अर्थ कुछ और ही

है । वैयक्तिक फ़र्मान या अधिकार-मत्त शासकों के निर्णय क़ानून का पवित्र पद नहीं पा सकते । मनुष्य के सामाजिक जीवन में तरह-तरह के अनुभव होते हैं । मनुष्य उन अनुभवों से शिक्षा ग्रहण कर विशिष्ट परिस्थिति में एक विशिष्ट प्रकार का आचरण करता है । धीरे-धीरे उसका यह कार्य रवाज में परिणत होता जाता है । स्वतंत्र मनुष्यों के क़ायदे उन लोगों के द्वारा, जिन्हें जन-समाज ने इस बात का अधिकार दे रक्खा है, इन्हीं रीति-रवाजों की नींव पर रचे गए हैं । ये क़ानून और कुछ नहीं, सामाजिक मतों के, संगठित रूप से, सार्वजनिक इच्छा में परिवर्तन ही हैं । लोगों के विचारों का संगठित प्रतिबिंब ही क़ानून कहा जा सकता है । सर्व-सम्मत, श्रेष्ठ नियमों या स्वतंत्रता के मूल-अंगों के विरुद्ध क़ानून नहीं बनाए जा सकते । फिर यह भी आवश्यक है कि सत्य और सरलता के साथ वे प्रकाशित किए जायँ । नए क़ानून बीती घटनाओं पर लागू नहीं किए जा सकते । ये सब बातें ध्यान में रखकर जो क़ायदे बनाए जाते हैं, उनका सारे समाज पर एक-सा बंधन-स्वरूप होना अत्यंत आवश्यक है। क़ानून का यह साम्राज्य कैसे स्थापित किया जा सकता है, यह फिर कभी बतलाया जायगा ।

गोविंद-रामचंद्र चांदे

ईस्पात पर टैक्स

ताता-कंपनी का इतिहास

हम लोग लौह-युग में रहते हैं । आज-कल की सभ्यता का मूलाधार लोहा और ईस्पात हैं ; इनके विना यह सभ्यता एक दिन भी नहीं टिक सकती । इसलिये इस उद्योग-धंधे को बड़े महत्त्व का स्थान मिला हुआ है । कोई ज़माना था, जब हिंदोस्तान लोहा ढालने और ईस्पात बनाने में अव्वल था ; इसका माल दूर-दूर देशों में भी बड़े चाव से ख़रीदा जाता था । जिस दमिश्क की फ़ौलादी तलवार का दुनिया में इतना मान था, वह हिंदोस्तानी ईस्पात से बनती थी । हिंदुओं के ज़माने की कुछ चीज़ें अब भी मिलती हैं, जो इस बीसवीं सदी के सभ्यों को चकित करने के लिये काफ़ी हैं । दिल्ली में जो लोहे की लाट गुप्तों के ज़माने की (आजकल कोई १५-१६ सौ वर्षों की कही जाती है) है, वह अब भी लोगों को चकित करती है। बड़े-बड़े इंजिनियरों का कहना है कि इतने बड़े लोहे के खंभे का ढालना आजकल भी मुशकिल है, और कुछ दिन पहले तक तो योरप के बड़े-से-बड़े कारख़ाने के लिये भी असंभव ही था । ख़ैर, पठानों और मुग़लों के ज़माने में भी अच्छी तरक़्क़ी रही । उस समय की जो दो-चार बड़ी-बड़ी तोपें रह गई हैं, वे आजकल भी देखनेवालों को अचंभे में डालती हैं । मालिक-ए-मैदान, जहाँ-कुशा और ज़मज़म की कारीगरी देखकर अब भी जी चाहता है कि बनानेवालों के हाथ चूम लें ।

यह तो पुराने ज़माने की बात है । पाश्चात्य देशों ने जिस तरह और बातों में तरक़्क़ी की है, उसी तरह लोहे-ईस्पात के विषय में भी उन्होंने हिंदोस्तान से बाज़ी मार ली है । उन देशों में जिस तरीक़े से काम लिया जाता है, उससे लोहा-ईस्पात सस्ता पड़ता और बहुत ज़्यादा बनता है । यह हिंदोस्तान के लिये एक नई चीज़ है। इस नए तरीक़े के सामने हम लोगों का पुराना ढर्रा न टिक सका । फल यह हुआ कि हिंदोस्तान में नए ढंग के विदेशी लोहे और ईस्पात घर-घर फैल गए । हिंदोस्तान में खनिज लोहे, कोयले, चूने इत्यादि के रहते हुए भी कोई लोहे-ईस्पात का कारख़ाना न था । हर साल लाखों का माल बाहर से मँगाकर काम चलाया जाता था । ज्यों-ज्यों कल-कारख़ाने बढ़ते जाते थे, नए पुतलीघर क़ायम होते जाते थे, त्यों-त्यों आयात लोहे का आयतन भी बढ़ता जाता था । सारे हिंदोस्तान में स्वर्गीय जमशेदजी ताता ही एक ऐसे आदमी थे, जिन्होंने एक लोहे-ईस्पात का कारख़ाना खड़ा करना आवश्यक समझा । उनके पहले मदरास और बंगाल में दो कारख़ाने खुल चुके थे, पर दोनों ही असफल हुए थे । ऐसी हालत में, किसी की भी हिम्मत न पड़ती थी कि

इस धंधे में पूँजी लगावे । जमशेदजी को भी देश में सहायता न मिली । उन्होंने योरप और अमेरिका छान-बीनकर, दुनिया-भर के बड़े-बड़े लोहे के कारख़ाने देखकर, दृढ़ निश्चय किया कि एक कारख़ाना अवश्य खोला जाय । ढूँढ़ते-ढूँढ़ते बिहार—छोटा नागपुर के सिंहभूम-ज़िले में कालीमाटी का स्थान चुना गया । वही आजकल जमशेदपुर के नाम से विख्यात है । यह जगह बड़े मौक़े पर है । कलकत्ते से कुल १५० मील पश्चिम है । यहाँ से सिर्फ़ पचास मील के फ़ासले पर वे खानें हैं, जहाँ से खनिज लोहा मँगाया जाता है । कोयले की खानें भी १०० मील से कुछ ही अधिक दूरी पर हैं । इस तरह लोहा-ईस्पात बनाने में जिन ख़ास चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, वे सब आसपास ही मिल जाती हैं । ऐसा सुबीता बहुत कम ही मिला करता है । सन् १९०७ में 'ताता आइरन ऐंड स्टील कंपनी' क़ायम हुई । १९०८ से मकानात बनने लगे, और १९११ में कच्चा लोहा तथा १९१३ में ईस्पात बनने लगा । उसके बाद ही लड़ाई छिड़ गई । लड़ाई में ताता-कंपनी को बहुत काम मिला (कोई तीन लाख टन लोहा सरकारी ऑर्डर का पूरा किया), और १९१६-१७ में तो कारख़ाना पूरी तरह से चलने लगा । अपने कार्य की सफलता तथा कारख़ाने की तरक़्क़ी के ख़याल से मालिकों ने कारख़ाना बढ़ाना निश्चय किया । उन्हें आशा थी कि १९२०-२१ तक नए कल-पुर्ज़े बैठ जायँगे, और नया काम भी जारी हो जायगा । पर लड़ाई और उसके बाद के झंझटों के कारण कल-पुर्ज़े ऑर्डर के माफ़िक़ नहीं पहुँच सके । अब आशा की जाती है कि १९२५ तक नया कारख़ाना भी पूरी तरह से चल निकलेगा । ताता के कारख़ाने में कच्चा लोहा, ईस्पात और ईस्पात की बनी चीज़ें—जैसे रेल, बीम, छड़, चद्दरें—बनाई जाती हैं । नीचे दिए अंकों से ताता-कंपनी की बनी चीज़ों का क्रमानुक्रम अनुमान हो जायगा—

ताता-कंपनी में बनी चीज़ें

	सन् १९१६-१७	सन् १९२१-२२	जब नया कारख़ाना भी चल निकलेगा, तब का अनुमान—
कच्चा लोहा	१४७,४९७ टन	२७०,२७०	६१०,०००
ईस्पात	१३९,४३३ ,,	१८२,१०७	५७०,०००
ईस्पात की चीज़ें	९८,७२६ ,,	१२५,८७१	४२२,०००

जब नया कारख़ाना चल निकलेगा, तब ईस्पात और उससे बनी चीज़ें तिगुनी हो जायँगी । पर इसमें अभी कोई तीन-चार साल की देर है । ताता-कंपनी को खुले आज प्रायः अठारह वर्ष होते हैं । इतने दिनों में इसने बहुत बड़ी उन्नति की है । कालीमाटी, जहाँ जंगल-ही-जंगल था और बाघ-भालू-जैसे हिंसक जंतु विचरते थे, अब एक बड़ा शहर बन गया है । वहाँ अब सभ्यता की अच्छी-से-अच्छी चीज़ें मिलती हैं । वहाँ अब दुनिया-भर के बाशिंदे काम करते हुए नज़र आते हैं । वहाँ अब कोई डेढ़-दो लाख की आबादी हो गई है । सिर्फ़ ताता-कंपनी में ही कोई चालीस हज़ार आदमी काम करते हैं । ताता-कंपनी के आसपास और भी कई कंपनियाँ खुल गई हैं, जो ताता से लोहा-ईस्पात लेकर तरह-तरह की चीज़ें बनाया करती हैं । इनमें टिनप्लेट, वायर प्रोडक्टस, एनीकीथ, एग्रिकलचरल इंप्लिमेंट्स आदि कंपनियाँ उल्लेख-योग्य हैं । सारांश यह कि यह कारख़ाना एक ऐसे शुभ मुहूर्त में खोला गया था कि आज तक बराबर तरक़्क़ी करता रहा है । जिसने कालीमाटी की पुरानी और वर्तमान अवस्थाओं को देखा है, वह चकित रह जाता है । पर फूल में काँटे होते हैं, उन्नति के मार्ग में रोड़े भी आ जाते हैं । वही हालत आजकल ताता-कंपनी की है । दो-तीन वर्षों से उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है । आजकल उसे घाटा-ही-घाटा उठाना पड़ता है । पहले जैसे मुनाफ़ा बँटता था, वैसे ही अब घाटा सहना पड़ता है । यदि यही स्थिति रही, तो कुछ ही दिनों में कंपनी उठ जायगी, कारख़ाना बिक जायगा, और हिंदोस्तानियों का यह सबसे पहला और सबसे बड़ा प्रयत्न असफल हो जायगा । फिर किसी की भी हिम्मत न पड़ेगी कि लोहे-ईस्पात का कारख़ाना खड़ा करे, और हिंदोस्तान के खनिज द्रव्यों का उपयोग कर देश को विदेशी माल से स्वतंत्र बनावे । इसी विपत्ति में फँसकर ताता-कंपनी ने १९२३ के

जुलाई-मास में भारत-सरकार से प्रार्थना की थी कि इस धंधे की रक्षा की जाय, और विदेश से आनेवाले फ़ौलादी माल पर कर बढ़ा दिया जाय।

टैरिफ़-बोर्ड की रिपोर्ट

आज चार वर्ष के लगभग हुए, सरकार ने 'फ़िस्कल-कमीशन' बिठाकर भारतीय उद्योग-धंधों के प्रति सरकार की क्या नीति होनी चाहिए, इसका निश्चय कराया था। कमीशन ने राय दी थी कि उद्योग-धंधों की उन्नति के लिये संरक्षण-नीति का अवलंबन आवश्यक होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए फ़रवरी, १९२३ में लेजिसलेटिव एसेंबली ने प्रस्ताव किया कि भारत-सरकार एक 'टैरिफ़-बोर्ड' स्थापित कर यह जाँच करावे कि कौन-से उद्योग-धंधों को कैसे और कितनी सहायता दी जा सकती है। सरकार ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया, और मि० जॉर्ज रेनी, प्रो० काले और मि० जिनवाला को लेकर एक टैरिफ़-बोर्ड बनाया। इस बोर्ड ने लोहे-ईस्पात के कारख़ानों की जाँच कर अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने पेश की। रिपोर्ट बहुत ही जाँच-पड़ताल और छान-बीन कर लिखी गई है। इसी रिपोर्ट के आधार पर 'स्टील-प्रोटेक्शन-बिल' एसेंबली में पेश किया गया, और हाल ही में, शिमलेवाले, अधिवेशन में पास होकर क़ानून बना है।

फ़िस्कल-कमीशन की रिपोर्ट में कहा गया था कि संरक्षण-नीति का अवलंबन तभी किया जायगा, जब उस धंधे में तीन बातें पाई जायँगी। पहली बात तो यह है कि धंधा ऐसा हो, जिसके लिये कच्चा माल प्रचुरता और आसानी से मिलता हो। दूसरी बात यह है कि वह धंधा देश के लिये नया और बाल्यावस्था में हो। तीसरी बात यह है कि बाल्यावस्था को पार कर जाने के बाद उस धंधे को अपने पैरों खड़े होने की पूरी ताक़त हो, जिसमें बड़े-से-बड़े प्रतिद्वंद्वी से भी वह मज़े में मोर्चा ले सके।

लोहा-ईस्पात बनाने में खनिज लोहे, कोक और पत्थर-चूने की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। हिंदोस्तान में जगह-जगह पर लाखों-करोड़ों टन खनिज लोहा पड़ा हुआ है। कोई तो उत्कृष्ट श्रेणी का है, और कोई घटिया। कहीं तो पास ही कोयला और चूना भी मिल जाता है, और कहीं इनके अभाव में काम करना ही कठिन है। ख़ैर, इतना होते हुए भी अभी छोटा नागपुर और उड़ीसे में इतना लोहा पाया जाता है कि यदि कंपनियाँ पंद्रह लाख टन कच्चा लोहा हर साल बनाती रहें, तो भी कम-से-कम एक हज़ार वर्ष तक तो यह ख़ज़ाना ख़ाली होने का नहीं। और, यह लोहा संसार के किसी भी खनिज लोहे से घटिया नहीं है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके बिलकुल नज़दीक ही हिंदोस्तान की अच्छी-से-अच्छी कोयले और चूने की खानें मौजूद हैं। कुल दो सौ मील के घेरे में सब चीज़ें मिल जाती हैं। दुनिया में बहुत ही कम ऐसी जगहें हैं, जहाँ इतना बढ़िया और सस्ता माल इस आसानी से आसपास ही मिल जाता हो। कोयले का नज़दीक ही मिल जाना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो लोहे की खानें बेकार पड़ी रह जाती हैं। यहीं हिंदोस्तान में ऐसी बहुत-सी खानें हैं, जहाँ का लोहा कोयले के अभाव में काम में नहीं आता। पर सौभाग्य से छोटा नागपुर और उड़ीसे में दोनों चीज़ें आसपास ही में हैं। हाँ, यह सच है कि यहाँ का कोयला ज़रा घटिया है। योरप-अमेरिका में बढ़िया कोयला मिलता है। पर फिर भी यह कोयला ईस्पात के काम के लिये उपयुक्त है, और दूसरे देशों से अभी तक सस्ता पड़ता है। कोयले के चिह्न तो बहुत जगह मिले हैं, पर उसका पूरा-पूरा अनुसंधान अब तक नहीं हुआ है। ख़ूब संभव है कि खोज करने पर और भी बढ़िया कोयला निकल आवे। पर जितना कुछ अभी है, वह थोड़ा होते हुए भी, लोहे-ईस्पात के लिये, कम-से-कम, डेढ़ सौ वर्षों तक, हर साल, चालीस लाख टन कोक दे सकता है। पत्थर-चूना भी काफ़ी और सस्ता पड़ता है, और जो दूसरी चीज़ें चाहिए, वे भी काफ़ी हैं। सारांश यह कि हिंदोस्तान और देशों की अपेक्षा सस्ता लोहा तैयार कर सकता है, और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी मौजूद है। आजकल भी हिंदोस्तानी कच्चा लोहा (Pig Iron) और देशों से सस्ता है, और जापान तथा पश्चिम-अमेरिका को प्रचुर परिमाण में भेजा जाता है। उस दिन एक पत्र ने लिखा था कि हिंदोस्तानी लोहा शेफ़ील्ड (इँगलैंड) के बाज़ार तक पहुँच गया है। रही ईस्पात की बात, सो यहाँ बढ़िया ईस्पात तैयार किया जा सकता है। इसका साक्षी ताता का कारख़ाना है। यह ठीक है कि ताता का फ़ौलाद महँगा पड़ता है; पर उसका कारण है बनाने के ढंग का दोष। पूरी आशा है कि ज्यों

ताता की नई मशीन ठीक हो जायगी, तब यह दोष भी दूर हो जायगा, और सस्ता माल तैयार होने लगेगा। सिर्फ़ कच्चे माल से ही क्या होगा, यदि उसको व्यवहार में लानेवाले कारीगर और मज़दूर ही न मिलते हों। हिंदोस्तान इस विषय में पिछड़ा हुआ है। मज़दूर तो काफ़ी मिल जाते हैं, और सस्ते भी हैं, पर उनका काम बढ़िया नहीं होता। इसलिये कम मज़दूरी में काम करने पर भी वे महँगे ही पड़ते हैं। ऊँचे दरजे के कारीगरों का तो टोटा ही है। इसलिये अभी विदेशी कारीगरों को ज़्यादा तनख़्वाह देकर मँगाना पड़ेगा। पर यह चंदरोज़ा है। कोशिश होती गई, तो यहीं, देश में, बढ़िया-से-बढ़िया कारीगर तैयार कर लिए जा सकते हैं। देखते-देखते अपढ़, असभ्य, जंगली संथालों ने जैसा हुनर सिखाया है, उन लोगों ने बरस-दो बरस की मेहनत से जिस तरह जर्मन-कारीगरों का स्थान लेकर ताता-कंपनी में काम करना शुरू किया है, उससे तो पूरा विश्वास होता है कि सब काम हिंदोस्तानियों पर छोड़ा जा सकता है। हाँ, इसके लिये सच्ची कोशिश चाहिए, मालिकों का विदेशी मोह भंग हो जाना चाहिए। हिंदोस्तान में ईस्पात की माँग भी काफ़ी है। योरप और अमेरिका की तरह तो नहीं, फिर भी यथेष्ट है, और उसके दिन-दिन बढ़ने की आशा है। यदि लड़ाई न छिड़ी होती, तो आज कहीं ज़्यादा ईस्पात खपा करता। टैरिफ़-बोर्ड को, अनुसंधान करने से, यह भी पता लगा है कि ईस्पात का कारख़ाना मज़े में चल सकता है। आजकल जो त्रुटियाँ हैं, वे आसानी से दूर कर दी जा सकती हैं; पर इसमें कुछ अरसा लगेगा। यदि इसी अरसे में कारख़ाने टूट गए, तो फिर भविष्य में अंधकार-ही-अंधकार रह जायगा। पर यदि इस विपत्ति से उद्धार हो—और यदि सरकार मदद करे, तब इससे उद्धार पाना मुशकिल भी नहीं है—तो फिर तो पौ-बारह हैं। इसके बाद तो यह धंधा किसी भी देश के धंधे से मोर्चा ले सकता है। आजकल ईस्पात बनाने में ज़्यादा ख़र्च होता है; पर तीन-चार वर्षों के अंदर ही यह ख़र्च कम हो जायगा, ऐसा टैरिफ़-बोर्ड का विश्वास है। यदि इस समय इसे बचा लिया गया, तो आइंदा सरकारी मदद की ज़रूरत न रहेगी। एक बात और है, जो इन सबसे ज़्यादा महत्त्व की है। हमारे देश में तो लोहा ईस्पात बनाने का सब तरह से सुबीता है। पर यदि यह सुबीता न होता, तो भी इस ज़रूरी धंधे को खड़ा करना और फिर सदैव जिलाए रखना देश का कर्तव्य होता। कारण, लोहा-ईस्पात राष्ट्रीय जीवन के लिये अत्यंत आवश्यक है। यह यदि न हुआ, तो देश को बाहरी शत्रुओं के आक्रमण से बचाना असंभव हो जायगा; स्वतंत्रता की रक्षा आकाश-कुसुमवत् हो जायगी। इसलिये इस धंधे की रक्षा करना हर तरह से मुनासिब ही नहीं, बल्कि परम कर्तव्य है।

टैरिफ़-बोर्ड की सिफ़ारिश

टैरिफ़-बोर्ड ने जाँच-पड़ताल करके राय दी कि ईस्पात और उसके साथ के और कई रोज़गार बचाए जायँ, और उनकी रक्षा के लिये उचित प्रबंध किया जाय। सरकारी मदद देने के पहले दो-तीन बातों का पूरा ख़याल रखना होगा। सबसे पहले यह जानना चाहिए कि विदेशी फ़ौलाद किस क़ीमत पर हिंदोस्तान में बिकता है, देशी कारख़ानेवाले वही फ़ौलाद बनाकर कितने पर बेच सकते हैं, और विदेशी माल से देशी माल कितना महँगा पड़ता है। अब जब संरक्षण-नीति का अवलंबन करना होगा, तो देशी माल को इतनी काफ़ी मदद देनी पड़ेगी कि वह विदेशी के मुक़ाबिले में बिक सके। पर यह सहायता उसी कारख़ाने को मिले, यह टैक्स उसी तरह की चीज़ पर लगाया जाय, जो कि हिंदोस्तान में बनती हो, और जो भविष्य में और भी सस्ती बनाकर विना टैक्स के भी विदेशी के मुक़ाबिले में बेची जा सकती हो। कुछ चीज़ें यहाँ नहीं बनतीं, और न उनके शीघ्र बनने की आशा ही है। वैसी चीज़ें तो बाहर से ज़रूर आवेंगी; उन पर टैक्स लगाना ज़रूरी नहीं है। इन सब बातों पर पूरा ध्यान रखते हुए बोर्ड ने विदेशी आयात माल की क़ीमत का पता लगाया। पता लगाने से मालूम हुआ कि इन दिनों योरप और अमेरिका में ईस्पात बहुत ज़ोरों पर बन रहा है। योरप के जो कारख़ाने लड़ाई में बरबाद हो गए थे, वे अब पूरी शक्ति से चलने लगे हैं। पर उन्हें चिंता इसी बात की है कि बाज़ार में माल की वह खपत नहीं है, जो पहले थी। इस कारण कारख़ानेवाला अपनी जान बचाने के लिये लागत-भर पर माल बेचने को तैयार रहता है। कभी-कभी लागत से भी कम ले लेता है, जिसमें कारख़ाना तो चलता रहे।

बंद करने की नौबत न आवे। इन दिनों बेलजियम का माल, जिसमें शायद जर्मनी का माल भी शामिल है, बहुतायत से आ रहा है। फ्रांसवालों के कारख़ाने धड़ाधड़ चलने लगे हैं। ताज्जब नहीं कि जर्मनी भी दो-चार महीनों में मैदान में आ जाय, और यदि रूहर का स्टॉक बाज़ार में आ गया, तो फिर भाव और भी मंदा हो जायगा। इसलिये सावधान रहना होगा कि देशी ईस्पात के कारबार को काफ़ी सहायता मिलती रहे। बोर्ड ने हिसाब लगाकर देखा है कि विदेशी ईस्पात के छड़, रेल, बीम, बरँगे, मामूली चद्दरें वग़ैरह १४० से १५० रु० टन के भाव पर हिंदोस्तान में पहुँचती हैं, और यही माल हिंदोस्तानी कारख़ाने में कम-से-कम १८० रु० टन के पड़ते में पड़ता है। इसलिये बोर्ड की राय है कि विदेशी माल पर तीस से चालीस रुपए टन टैक्स बिठा दिया जाय, जिसमें उसकी क़ीमत भी देशी माल के बराबर हो जाय। यदि विदेशी माल की दर और भी गिर जाय, तो भारत-सरकार को अधिकार मिले कि वह आवश्यकतानुसार टैक्स और भी बढ़ा दे। पर यह टैक्स केवल तीन वर्षों के लिये हो; क्योंकि एक तो तीन वर्षों के बाद बाज़ार का भाव क्या होगा, यह मालूम नहीं; दूसरे तीन वर्षों के बाद आशा की जाती है कि देशी ईस्पात के बनाने में ख़र्चा कम बैठने लगेगा। रेल की लाइनों और पटरियों के विषय में बोर्ड ने दूसरी सलाह दी है। हिंदोस्तान की रेल-कंपनियों और रेलवे-बोर्ड के साथ ताता-कंपनी का ठेका है। वह ठेका अभी दो-तीन वर्षों तक चलेगा। कंपनी ने कुछ ऐसी भूल की थी, जिसके कारण पड़ते से भी कम पर रेल बेचना क़बूल कर लिया था। पर आजकल बाज़ार-भाव बिलकुल दूसरा है। अब इस हालत में यदि बाहर से आई रेल पर टैक्स बिठा दें, तो ताता-कंपनी को कोई लाभ न होगा। उसे तो शर्त के मुताबिक़ सस्ते भाव में माल देना ही पड़ेगा। इसलिये बोर्ड ने राय दी है कि कंपनी को बाज़ार-भाव से जितना घाटा पड़ता हो, उतना सरकार पूरा कर दे। ऐसा करने में कोई विशेष हानि भी न होगी; क्योंकि रेल-कंपनियाँ जो सस्ती रेलें ख़रीद कर लाभ उठा रही हैं, उस लाभ का अधिकांश तो सरकार को ही मिल जाता है। कारण, ये लाइनें ज़्यादातर सरकारी ही हैं।

ताता-कंपनी के अलावा और भी कई नई कंपनियाँ हैं, जो ईस्पात का माल बनाया करती हैं। जैसे रेल का डब्बा बनानेवाली कंपनी, टीन, काँटी, कृषि-उपयोगी हल, फाल, और कुदाली बनानेवाली कंपनियाँ। ये सब कंपनियाँ नई खुली हैं, पर अभी मुशकिल से चल रही हैं। हाँ, यह ज़रूर है कि यदि अभी बरस-दो बरस बच गईं, तो भविष्य में मज़े में चलने लगेंगी, और सस्ता माल भी तयार करेंगी। बोर्ड ने इन धंधों को जिलाए रखना मुनासिब समझा है; क्योंकि इनके चल निकलने में किसी तरह की ख़ास बाधा नहीं है। इसलिये बोर्ड ने इनको बचाए रखने के वास्ते या तो टैक्स अथवा 'बाउंटी' (सरकारी मदद) की व्यवस्था की है। पर शर्त हमेशा यह है कि ये कंपनियाँ देशी माल का ही यथासाध्य व्यवहार करेंगी।

बोर्ड की राय की आलोचना

बोर्ड की राय पर चारों ओर से आलोचनाएँ हुईं। किसी को बोर्ड की राय अच्छी लगी, किसी को बुरी। इँगलैंड और भारत, दोनों जगह समालोचनाएँ निकलीं। इँगलैंड के व्यापारियों, व्यवसायियों ने पुकार लगानी शुरू की कि अँगरेज़ी धंधे को धक्का लगेगा। हिंदोस्तान अपनी ज़रूरतों के लिये जितना लोहा-ईस्पात मँगाता है, उसका आधे से भी ज़्यादा इँगलैंड से ही आया करता है। पर यदि आयात माल पर टैक्स लगा दिया जायगा, और हिंदोस्तानी अपना ईस्पात आप बनाने लगेंगे, तो फिर विलायती माल बिकेगा कहाँ? किसी ने कहा कि हिंदोस्तान कृषि-प्रधान देश है। वहाँ के लोग फावड़ा कुदाल ख़रीदते हैं। हम पर टैक्स बिठाकर ग़रीबों को कुचलने की जो चेष्टा की जाती है, सो सिर्फ़ पूँजीपतियों की चालाकी है। इसलिये भारत-सचिव को उचित है कि ग़रीब कृषकों की रक्षा करें, और विदेश से सस्ते कुदाल-फावड़े आने दें। किसी ने कहा कि देशी उद्योग-धंधों को खड़ा करना तो बहाना-भर है। असल बात तो यह है कि अब हिंदोस्तानी अँगरेज़ों से बदला लिया चाहते हैं। कोई कहता है कि इससे इँगलैंड के लोग बेकार हो जायँगे; प्रधान सचिव मि० रैम्से मैकडॉनल्ड इसका उत्तर दें। कोई कहता है कि अब भारत चलकर ही कारख़ाना खोला जाय, और वहीं देशी माल की बराबरी की जाय। कोई गुस्से में आकर बदला लेने की धमकी

देता है। कहता है कि हिंदोस्तानी माल की आमदनी भी रोकी जाय; विलायत-सरकार भी भारत-सरकार की तरह हिंदोस्तानी माल पर टैक्स लगा दे।

हिंदोस्तान में भी बोर्ड की राय की आलोचना हुई। सदा के समान ऐंग्लो-इंडियन और देशी लोगों की राय में मतभेद रहा। देशी लोगों ने ज़्यादातर बोर्ड की राय पसंद की। उनकी शिकायत यही थी कि टैक्स काफ़ी न होगा। यदि सचमुच इस धंधे को जिलाए रखना है, तो काफ़ी टैक्स बढ़ा दिया जाय। यह धंधा राष्ट्रीय दृष्टि से महत्त्व का है, इसलिये इसको जिलाए रखना ज़रूरी है, और इसके लिये जहाँ तक त्याग करना पड़े, किया जाय। कुछ देशी लोगों में से ऐसे भी थे, जिन्हें यह टैक्स पसंद न था। कुछ लोगों को ताता-कंपनी के प्रबंध, उसके मालिकों के पक्षपात-पूर्ण व्यवहार तथा मज़दूरों के प्रति विरक्ति से अप्रसन्नता हो गई थी। इधर ऐंग्लो-इंडियनों का कहना था कि टैक्स न बढ़ाकर बाउंटी, अर्थात् सरकारी मदद, दी जाय। असल मतलब तो ताता-कंपनी को मदद देना है। वह तो कंपनी की घटी पूरी कर दी जाने से भी पूरा हो जायगा। इसके लिये सारे देश के लोगों पर—जो ताता का लोहा इस्तेमाल करें और जो न करें, दोनों पर—टैक्स लगा देना अन्याय है। फिर भी टैक्स लगाने से कृषकों को तकलीफ़ होगी, जो कभी मुनासिब नहीं है। परंतु इससे एक बात होती। ताता-कंपनी तो शायद बच जाती, पर भावी ईस्पात बनानेवालों को कोई लाभ न होता। और, सरकार की इच्छा तो यह है कि देश में ईस्पात के कारख़ाने खुलें; ताता-जैसी और भी नई-नई कंपनियाँ चल निकलें। यह अभिप्राय सरकारी मदद से नहीं पूरा होता। फिर इस ख़र्च के लिये एक ख़ास कर लगाना पड़ता। वह नया कर आजकल के लिये युक्ति-संगत होता, या नहीं, यह बात पूर्ण रूप से संदिग्ध है।

स्टील-प्रोटेक्शन-बिल

टैरिफ़-बोर्ड की राय के मुताबिक़ ईस्पात और उससे संबंध रखनेवाले कई धंधों की रक्षा के लिये एक बिल, तारीख़ २७ मई, १९२४ को, लेजिसलेटिव एसेंबली में पेश किया गया। यह प्रस्ताव किया गया कि विदेशी ईस्पात पर टैक्स बढ़ाया जाय; और जहाँ टैक्स बढ़ाने से, जैसा कि रेल की पटरियों के विषय में कहा जा चुका है, धंधों को लाभ न पहुँचे, वहाँ सरकार की तरफ़ से, नक़द रुपए से, मदद की जाय। यह व्यवस्था अभी तीन वर्षों तक रहे; फिर उसके बाद जाँच होकर जैसी राय ठहरे, वैसी कारवाई की जाय। बिल सरकार की ओर से उपस्थित किया गया था। वरन् यों कहिए कि शिमले की यह बैठक ख़ास इसी काम के लिये हुई थी। कारण यह था कि ताता-कंपनी को मदद करना ज़रूरी था। उसकी हालत ऐसी ख़राब हो रही है कि जल्दी मदद न पहुँचने से कारख़ाना बंद करना पड़ता। ख़ैर, हमारे व्यवस्थापकों ने भी इसका महत्त्व समझा, और बड़ी मुस्तैदी से काम किया। स्वराज्य-पार्टी, नेशनल-पार्टी, लिबरल, इंडिपेंडेंट, ऐंग्लो-इंडियन वग़ैरह सभी पार्टियों ने इसमें भाग लिया। ताता-कंपनी के मालिक भी दल-बल समेत वहाँ मौजूद थे, और लोगों से मिल-जुलकर अपना पक्ष पुष्ट करा रहे थे। यों तो एक तरह से सब कोई सहायक ही थे, पर तीन-चार बातों में पूरा मतभेद था, और उन्हीं पर एसेंबली में वाद-विवाद भी ख़ूब हुआ। यह तो सभी लोग समझते थे कि यद्यपि यह क़ानून ईस्पात के धंधे की सहायता के लिये बनाया जा रहा है, पर वास्तव में ताता-कंपनी की सहायता के लिये ही यह सब हुआ है; उसी के लिये इतनी जल्दी, इतनी परेशानी और इतनी उत्सुकता है। कुछ लोगों ने, जिन्हें विदेशी रोज़गार से सरोकार है, इस क़ानून को व्यर्थ समझा—कम-से-कम टैक्स बढ़ाना फ़िज़ूल समझा। उन लोगों ने साफ़ कह दिया कि यदि ताता को मदद देना है, तो सरकार अपने ख़ज़ाने से रुपए निकालकर या टैक्स लगाकर दे; कंपनी को जितना घाटा हो रहा है, वह पूरा कर दे। समूचे हिंदोस्तान के लोगों को, जिन्हें ईस्पात का माल ख़रीदना है, तंग करना न्याय-विरुद्ध है। ख़ासकर कृषकों के साथ तो अन्याय ही किया जा रहा है। तातावालों ने भूलें की हैं, उन्होंने अपव्यय किया है, उन्होंने व्यवसाय की नीति के विरुद्ध काम किया है। उन्होंने अच्छे दिनों में तो ख़ूब मुनाफ़ा बाँटा, पर दुर्दिन के लिये कुछ रख न छोड़ा। उन्होंने कल-पुर्ज़ों के चुनाव में भूलें कीं, ख़रीदने में रुपया पानी में फेंक दिया, जिसके कारण आज इस हालत को पहुँचे हैं। यह तो उनकी करनी का फल है; यह भोग तो उन्हीं को भोगना चाहिए, न कि देश की प्रजा को। एक और दूसरा दल था, जो

इस क़ानून का विरोध करता था। कुछ दिनों तक लोग ताता-कंपनी को श्रद्धा और भक्ति की दृष्टि से देखते रहे। ताता के नाम पर देश को गर्व था, और है। पर अब लोगों को धीरे-धीरे अपना विचार बदलना पड़ रहा है। ताता की कई कोठियों का काम कुछ गड़बड़-सा रहा है; ताता-बैंक की अवस्था से लोगों को अफ़सोस ही हुआ है; दक्षिण-भारत में जो तेल का कारख़ाना था, उसकी भी अवस्था कुछ वैसी संतोषदायक न थी। इधर जमशेदपुर की बुरी हालत का पता चला। फिर ताता और उनके मज़दूरों में भी हमेशा अनबन ही रहा करती है, ताता-कंपनी और मुलशीपेठे के सत्याग्रह की ख़बर अभी नई ही है। लोगों की यह धारणा-सी हो गई है कि तातावाले देशी मज़दूरों के साथ तो सख़्ती करते हैं, पर विदेशी अमेरिकन तथा योरपियन नौकरों का पक्ष लेते हैं, उनकी ख़ातिरदारी करते हैं। इसीलिये एक दल ने इसका बिलकुल विरोध किया। दीवान चिम्मनलाल ने तो साफ़ कह दिया कि यह क़ानून पूँजीपतियों की रक्षा के लिये है, मज़दूरों के लिये नहीं। लोगों ने आग्रह किया कि क़ानून में यह साफ़ कर दिया जाय कि ईस्पात की कंपनियों को, जिन्हें इस क़ानून से लाभ होगा, मज़दूरों के प्रति अपना उत्तरदायित्व अवश्य समझना पड़ेगा। मज़दूरों का क़ानून और ईस्पात पर टैक्स एक में नहीं शामिल किया जा सकता था। पर सरकार ने आश्वासन दिया कि शीघ्र ही मज़दूरों की बात लेकर सरकार आंदोलन करेगी, और उधर तातावालों ने यह प्रतिज्ञा की कि हम मज़दूर-संगठन को स्वीकार करेंगे, तब कहीं यह विरोध हटा। एक दूसरा दल था, जो इस क़ानून से स्थायी परिणाम निकालना चाहता था। इस दल की इच्छा थी कि क़ानून में सबसे पहले यह स्वीकार कर लिया जाय कि ईस्पात का धंधा संरक्षण-नीति के बिना खड़ा नहीं हो सकता। हाँ, कब कितनी सहायता की ज़रूरत पड़ेगी, यह समय-समय पर जाँच करने की बात है। यदि आज की सहायता सिर्फ़ तीन ही वर्षों तक रही, और उसके बाद उठा दी गई, तो किसी को भी नया कारख़ाना खड़ा करने का साहस न होगा। यह बात एक तरह से स्वीकार कर ली गई, और बिल में उचित परिवर्तन भी हो गया। अब रही देशी पूँजी और देशी संचालन की बात। मान लिया कि संरक्षण की नीति पर सरकार चलने लगी, और विदेशी ईस्पात पर टैक्स बढ़ा दिया। इसका एक फल यह भी हो सकता है कि विदेशी पूँजीपति अपने कारख़ाने लाकर हिंदोस्तान में क़ायम कर दें, और फिर यहाँ माल बनाकर महँगे भाव पर बेचा करें। इससे देश को नुक़सान ही होगा, फ़ायदा नहीं। इसलिये प्रस्ताव किया गया कि सरकार यह नियम बना दे कि भविष्य में जो ईस्पात की कंपनी खड़ी होगी, उसकी पूँजी का ज़्यादा हिस्सा हिंदोस्तानियों का होगा, और उसके संचालक भी हिंदोस्तानी ही हुआ करेंगे। पं० मदनमोहन मालवीयजी ने इस पर खूब ज़ोर लगाया। योरपियन मेंबरों ने तो पंडितजी की संकीर्णता की हँसी उड़ाई, पर जब पंडितजी ने यह धमकी दी कि फ़ाइनेंस बिल की तरह यह 'टैरिफ़-बिल' भी गढ़े में डाल दिया जायगा, तब तो लोगों के कान खड़े हुए। इस पर मोतीलालजी ने मध्यस्थ बनकर प्रस्ताव किया कि भविष्य में जिस किसी लोहे-ईस्पात की कंपनी को इस क़ानून से लाभ उठाना हो, उसमें हिंदोस्तानी पूँजी और हिंदोस्तानी संचालक ज़रूर रहेंगे। हाँ, कितनी पूँजी और कितने संचालक हिंदोस्तानी होंगे, इसका निश्चय बड़े लाट और उनकी कौंसिल एसेंबली की राय से निश्चित करेगी। इसे सरकार ने स्वीकार किया, और तब कहीं विरोधी दल एक तरह से संतुष्ट किया जा सका। एक और दूसरा दल था, जो चाहता था कि ईस्पात के धंधे को सहायता तो मिले, पर साथ-ही-साथ ताता का कारख़ाना सरकार ले ले, और उसे राष्ट्रीय संपत्ति बना दे, अथवा कंपनी को सैकड़े पीछे पाँच से जितना ज़्यादा मुनाफ़ा हो, वह कुल सरकारी ख़ज़ाने में चला जाय। इसका बहुत ही विरोध हुआ, और अंत में इस दल के लोग नाकामियाब ही रहे। इसमें शक नहीं कि राष्ट्र की सहायता से ताता का कारख़ाना चलाया जायगा। प्रजा अपने ऊपर बोझ लेकर कारबार को सफल करेगी, और मुनाफ़ा लेंगे ताता के साझेदार। फिर भी ताता के प्रबंध पर किसी को कुछ अधिकार न होगा। चाहे तो तातावाले हिंदोस्तानियों की जगह पर अमेरिकन भर दें, और चाहे एक डालर की जगह दस डालर ख़र्च करें, कोई रोकनेवाला न होगा। हाँ, जब मामला गड़बड़ायगा, तब ज़रूर ही रोते-पीटते दिल्ली-शिमले पहुँचेंगे और स्वदेश-प्रेम की दुहाई देकर टैक्स बढ़वा लेंगे। यह

अवश्य ही संतोषप्रद नहीं है। पर साथ ही यह भी तो देखना है कि क्या राष्ट्र की ओर से यह कारोबार चलाया जा सकता है? अभी लक्षण तो वैसे नहीं हैं। इसलिये फ़िलहाल इसको ख़ास कंपनी के हाथ में ही छोड़ देना उचित है। फिर भविष्य में देखा जायगा।

स्टील-प्रोटेक्शन ऐक्ट पास हो गया। अब से तीन वर्षों तक बाहर से आनेवाले बीम, छड़, चद्दर इत्यादि पर टन पीछे तीस से चालीस रुपए की चुंगी लगा दी जायगी! ताता-कंपनी को अब हानि का डर न रहेगा। तीन वर्षों के बाद भी यदि कंपनी चाहेगी, तो रो-पीटकर या लोगों को ख़ुश कर टैक्स बढ़वा लेगी। सर्व-साधारण को, जिन्हें बीम या बरँगा लेना है, ज़रूरत से ज़्यादा दाम देने पड़ेंगे। उन्हें संतोष इसी बात का रहेगा कि यह कंपनी देश की है, और आइंदा चलकर देश में भी सस्ते दामों का काफ़ी ईस्पात बनने लगेगा। उन्हें इस बात का संतोष होगा कि यदि देश पर दुश्मन धावा करेंगे, तो उस समय लोहे-ईस्पात के लिये हमें दूसरों का दरवाज़ा न खटखटाना पड़ेगा—इत्यादि। पर क्या तातावाले इसका ख़याल करेंगे? क्या उन्हें यह याद दिलाने की ज़रूरत है कि देश में केवल कारख़ाना खोल देने से ही वह कारख़ाना राष्ट्रीय नहीं हो जाता। पूँजी के साथ-साथ मज़दूर भी देशी ही होने चाहिए। क्या उन्हें याद है कि लड़ाई छिड़ते ही जर्मन कारीगरों को हटाना पड़ा था? कल जो बात जर्मनों के साथ हुई थी, वही क्या भविष्य में दूसरे विदेशियों के साथ नहीं हो सकती? तब उनका कारख़ाना कौन चलावेगा? इसलिये उचित है कि जितना शीघ्र संभव हो, ऊपर से नीचे तक देशी कारीगर ही रक्खे जायँ। उन्हें अपने मज़दूरों का सदा ख़याल करना पड़ेगा, उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार करना पड़ेगा। उन्हें यह कभी नहीं भूलना होगा कि उनका कारख़ाना राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिये है। इसमें संदेह नहीं कि वहाँ पर मज़दूरों को तकलीफ़ें हो रही हैं। इन तकलीफ़ों के बढ़ने के कई कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि ताता-कंपनी एकसाथ ही मालिक, ज़मींदार, बनिया, महाजन, मकान-मालिक और म्युनिसिपल-कार्पोरेशन का काम करती है। उसका फल यह होता है कि ग़रीब मज़दूर उसके चंगुल से कभी निकल ही नहीं सकते। यदि कारख़ाने से बचे, तो ज़मींदारी घुड़कियों में आए, अथवा मकान से निकाल दिए गए, या पानी-रोशनी से वंचित कर दिए गए, अथवा खाने-पीने की चीज़ें ही न मिलने पाईं। ऐसी हालत में भला कब संभव है कि कोई मज़दूर अपना सिर उठावे, और कंपनी के ख़िलाफ़ आवाज़ बलंद करे। वह एक-न-एक तरह से ज़रूर गिराया जायगा। इसलिये मुनासिब है कि जिस मुस्तैदी के साथ व्यवस्थापकों ने ताता को डूबने से बचाया है, उसी मुस्तैदी से ग़रीब मज़दूरों को भी कुचलने से बचावें। तभी न्याय होगा, नहीं तो यह एकतरफ़ा न्याय किसी काम का नहीं।

"अर्थशास्त्री"

सती भगवती *

सजी नाव मिरज़ा साहब की गंगाजी में जाती थी;
उसी घाट पर लगी, भगवती जल में जहाँ नहाती थी।
उसका सुंदर रूप देखकर मिरज़ा का धीरज छूटा:
हुआ बड़ा बेचैन, किसी ने मानो धन, सरबस लूटा।
"इक तो परम सुंदरी श्यामा दूजे हिंदू-बाला है;
काफ़िर-धर्म नष्ट कर देने में सवाब भी आला है।
ऐयाशी है लुत्फ़-ज़िंदगी, हम क्यों उससे मुँह मोड़ें;
सौ-सौ हरम होयँ घर, तो भी हिंदू-बाला क्यों छोड़ें।"
काम-वेदना, धर्म-प्रेरणा, दोनों से होकर बेकल;
लगे सोचने "लेना चाहिए, जैसे हो, करके छल-बल।"
सखियों के सँग इतने ही में घर को चली गई वह बाल;
उसके जाते ही मिरज़ा का हुआ एकदम अबतर हाल।

* हिंदी-भाषा के प्रसिद्ध प्रेमी सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने इँगलैंड की स्कूल ऑफ़ ओरियंटल सीरीज़ में, सन् १९१८ में, उत्तर-भारत के साहित्य पर एक लेख पढ़ा था। उसमें बिहार का एक गीत दिया हुआ है। वह गीत बिहारी-भाषा में है, और उसमें एक राजकुमारी का चरित है, जिसने एक मुसलमान अत्याचारी से अपने सतीत्व की रक्षा की, अपने भाई को बचाया, और अपने कुल की मर्यादा रक्खी। प्रसिद्ध कवि सर एडविन अर्नाल्ड ने उस गीत का अँगरेज़ी में अनुवाद किया है। इस प्रांत के रहनेवाले अभी तक उससे वंचित हैं। इसलिये खड़ी बोली में, कुछ नमक-मिर्च लगाकर, उसकी छाया माधुरी के पाठकों की भेंट की जाती है।

पनिहारी से लगा पूछने मिरज़ा—"किसकी बारी है ?"
वह बोली—"यह इसी गाँव की, साहब, राजकुमारी है।
ठाकुर होरिलसिंह राजा है, यह सारा चक जिसका है ;
उसकी छोटी बहन यही है, नाम भगवती इसका है।"
भेज सिपाही को मिरज़ा ने होरिलसिंह को बुलवाया ;
रोब गाँठकर, धन दिखलाकर, उनसे फिर यह फ़रमाया।
"सुन ठाकुर, दिलज़ार हमारा तेरी बहन पर आया है ;
उस दिलवर की ज़ुल्फ़ों ने दिल बेढब मेरा फँसाया है।
उसको तुम हमको दे डालो, मिटें हमारे भी अरमान ;
तोड़े पाँच अशरफ़ी के लो, ऊपर से होगा इहसान।"
होरिल बोले—"क्या बकते हो, हम सोने पर मारें लात;
हैं छत्री, बस, ख़बरदार, तुम हमसे कहो न ऐसी बात।
तैश में आकर मिरज़ा बोले—"तू ना मानेगा, कमबख़्त।
कस लो चटपट मुश्कें इसकी, देंगे सज़ा इसे हम सख़्त।"
राजा होरिल की रानी ने जब यह सारा हाल सुना ;
गिरी पछाड़ खाय धरती पर, अपना सिर सौ बार धुना।
"गाज पड़े तेरी सूरत पर री ननदी, जिसके कारन
बाँधे गए तुम्हारे भाई, मेरे सरबस, जीवन-धन।
"हो न उदास" भगवती बोली—"भाभीजी, मैं जाती हूँ;
मिरज़ा साहब से भैया को जैसे बने, छुड़ाती हूँ।"
घर से चटपट निकल घाट पर पहुँची तुरत भगवती वाम;
खड़ी सामने हो मिरज़ा के उसने झुककर किया सलाम।
बोली—"लौंडी हाज़िर है, क्यों इतना आप हुए हैरान ;
छोड़ दीजिए भैया मेरा, मैं हुज़ूर पर हूँ कुरबान।
बेगम बनना हाकिम की, यह मेरे लिये बड़ाई है ;
ऐसी पदवी किसी-किसी ने बड़े भाग्य से पाई है।
एक अरज़ मेरी सुन लीजे, इस पर रहे आपका ध्यान ;
मैं हूँ राजपूत की बेटी, मेरा कुछ रख लीजे मान।
है जो मेरी चाह आपको, चूनर चटक रँगावें आप ;
सीसफूल से पायल तक सब गहने तुरत मँगावें आप।
बुलवाइए कहार, पालकी, अतलस का हो पड़ा उहार ;
जिसको देख लोग सब जानें, हैं बेगम साहिबा सवार।"
फूला नहीं समाया मिरज़ा, सुनकर बोला—"मेरी जान,
देने की है देर हुक्म के, फ़ौरन् होता है सामान।"
कुसुम-रंग की चूनर हँसकर मिरज़ा ने तब रँगवाई ;
कुँअरि भगवती ने रो-रोकर चूनर तन से लिपटाई।
हँस-हँसकर मिरज़ा ने चटपट मँगवाए बढ़िया गहने ;
कुँअरि भगवती ने रो-रोकर ठाँव-ठाँव गहने पहने।
हँस-हँसकर मिरज़ा साहब ने सजवाई सुंदर सुखपाल ;
सिसक-सिसक रो-रोकर उस पर हुई सवार भगवती बाल।
आध कोस गइ, एक कोस गइ, पहुँची इक तलाव के तीर,
जिसमें कमल खिले, पुरइन पर ढुलक रहा था निर्मल नीर।
कोने-कोने बुर्ज बने थे, तीन ओर सीढ़ी के घाट ;
गाय-बैल के जल पीने को एक ओर थी रपट सपाट।
उसे देख कह कुँअरि भगवती—"ऐ भैया तुम मेरे कहार,
प्यास लगी है मुझको, देना यहाँ तनिक सुखपाल उतार।"
लोटा लेकर मिरज़ा दौड़ा। बोली—"जब तक जीना है,
सदा इसी लोटे-गिलास से मुझको पानी पीना है।
मेरे बाप ने बड़े शौक़ से यह पुखरा बनवाया था ;
खेल-कूदकर मैंने सुख से बचपन यहीं बिताया था।
ताल-तलैया, बाग़, देस, सब अब तो छूटा जाता है ;
महल आपके पहुँच गई, तब फिर इनसे क्या नाता है।
दूर-दूर से मँगवा करके डाला है तीरथ का जल ;
दो चुल्लू पीकर मैं आई इसका जल मीठा निर्मल !"
यों कहकर वह झटपट उतरी सीढ़ी-सीढ़ी चली गई,
ताल देखकर उसके मन में मानो उठी उमंग नई।
ध्यान किया दुर्गा का—"माता, कन्या सरन तुम्हारी है ;
लज्जा रख ले, छत्री-कुल की सदा तुही रखवारी है।"
किया आचमन दो चुल्लू से बुर्जी पर चट हुई खड़ी।
"जय दुर्गा" कह इक छलाँग में गहरे जल में कूद पड़ी।
सूझी नहीं चाल कन्या की मिरज़ा साहब अंधे को ;
दास इंद्रियों के क्या जानें सत्य-धर्म के धंधे को।
धाड़ मारकर रोया मिरज़ा—"क्या तूने यह हाय किया ;
हाय, करूँ क्या, मुझको दिलवर, तूने धोका बड़ा दिया।"
धीमर बुलवाकर मिरज़ा ने जाल ताल में डलवाया ;
घोंघे और सिवार छोड़कर और न कुछ उसमें आया।
राजा होरिल समाचार सुन पान खाय हँसते आए ;
जाल डालने को तुरंत ही अपने सेवक बुलवाए।
ज्यों ही जाल पड़ा है जल में कुँअरि भगवती खिंच आई ;
प्रान नहीं हैं तन में, तो भी ज्योति वही मुख पर छाई।
"धन्य-धन्य" बोले होरिलसिंह "धन तू बहन हमारी है;
तीन पीढ़ियाँ तारीं तूने, सच्ची राजकुमारी है।"

श्रीअवधवासी सीताराम

डॉक्टर चंद्रशेखर वेंकट रमन, एफ़० आर० एस०

बीसवीं शताब्दी में अपने पूर्वजों की कोरी कीर्ति गाने से हम भारतीयों का—बल्कि यह कहिए कि किसी भी जाति अथवा देश का—कल्याण नहीं हो सकता। यदि वाल्मीकि और कालिदास अथवा गौतम और सुश्रुत ने इस देश में जन्म लेकर हमें कृतार्थ किया है, तो इसका यह अर्थ नहीं कि हमने सदा के लिये बड़प्पन का ठेका ले रक्खा है। पूर्वजों की कीर्ति अपनी बुराई को बुरा कर दिखाती है। उन्हीं के नाम बेचते फिरना, और जो कुछ वे कर गए हैं, उसी के बल पर आज भी सुस्त बैठे रहना, सर्वथा अनुचित तथा अनर्थकारी है। जब तक प्रत्येक क्षेत्र में कवींद्र रवींद्र एवं महात्मा गाँधी की भाँति अपूर्व पुरुष देश की सेवा करने को, समय-समय पर, आया न करेंगे, तब तक भारत की प्राचीन महिमा पाश्चात्यों के सम्मुख कुछ भी न रहेगी, और देश की उन्नति हमारी धर्म-पुस्तकों में ही रह जायगी।

आज हम देश के इसी कोटि के एक सपूत की चर्चा करेंगे। डॉक्टर चंद्रशेखर वेंकट रमन की अवस्था अभी ३६ वर्ष से भी कम है। इसी थोड़ी अवस्था में आपने जो नाम कमाया और विज्ञान की जो सेवा की है, वह अतुलनीय है; वैसा करने का गौरव लाखों में दो-एक को ही प्राप्त है। अभी तक आपको लेकर केवल तीन भारतवासी रॉयल सोसाइटी के सदस्य बनाए गए हैं। एक तो थे स्वर्गीय रामानुजम् महोदय, दूसरे हैं सर जगदीशचंद्र वसु, और तीसरे आप।

आपका जन्म ७ नवंबर, सन् १८८८ में हुआ था। केवल १६ वर्ष की अवस्था में आपने मदरास के प्रेसीडेंसी-कॉलेज से बी० ए० पास किया। इस परीक्षा में सर्व-प्रथम हुए, और दो वर्ष के पश्चात् एम्० ए० में भी योग्यता-पूर्वक उत्तीर्ण हुए। उसी वर्ष फ़िनांस-विभाग की अखिल-भारतीय परीक्षा में प्रथम आए, और सन् १९०७ ई० में इन्हें उसी विभाग में नौकरी मिल गई। पर आपकी रुचि विज्ञान की ओर थी, और भौतिक-शास्त्र ही आपका विशेष विषय था। बस, जब कलकत्ता-विश्वविद्यालय में इस शास्त्र की तारक पालित-प्रोफ़ेसरी खोली गई, तो यह इस पद पर बुलाए गए। यद्यपि वहाँ जाने में आपको बहुत आर्थिक हानि थी, पर आपका विद्या-व्यसन बहुत ही अपूर्व है। आप तुरंत उस पद पर चले गए। सरकारी नौकरी से आपने इस्तीफ़ा दे दिया, और सन् १९१७ ई० से उक्त विश्व-विद्यालय की सेवा में लग गए।

अध्यापक होने के पहले भी आपको विज्ञान में बड़ी रुचि थी, और Indian Association for the Cultivation of Science-नामक संस्था से आपका लगभग २० वर्ष से घनिष्ठ संबंध रहा है। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी अवस्था में ही आपको वैज्ञानिक अनुसंधान करने का सुयश प्राप्त हो चुका था। मदरास में पढ़ ही रहे थे, तभी Philosophical Magazine नाम की प्रसिद्ध पत्रिका में आपने एक बड़ा ही सारगर्भित मौलिक लेख लिखा था। आजकल अपनी वैज्ञानिक खोजों के अतिरिक्त आप और भी बहुत कुछ कार्य करते हैं। आप Indian Science Congress के जन्म-दाताओं में से हैं, कई बार उसके भौतिकशास्त्र-विभाग के सभापति भी रह चुके हैं, और अब भी उस संस्था के जेनरल सेक्रेटरी हैं। Indian Association for the Cultivation of Science के भी आप ऑनरेरी मंत्री हैं। कलकत्ते के कार्य से समय-समय पर छुट्टी पाकर आप हिंदू-विश्वविद्यालय में भी व्याख्यान-पाठन के काम में भाग लेते और अनुसंधान का निरीक्षण करते रहते हैं। आप वहाँ के भी ऑनरेरी प्रोफ़ेसर हैं।

फ़िनांस-विभाग के अनुभव का भी उपयोग आप करते रहते हैं; क्योंकि बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के आप कोषाध्यक्ष और कलकत्ता-विश्वविद्यालय के Board of Accounts के भी सदस्य हैं। मदरास और पंजाब के विश्वविद्यालयों ने भी आपको विशेष व्याख्यान देने के लिये निमंत्रित करके आपका सम्मान किया था। अभी तक डॉ० रमन ने एक सौ से ऊपर खोज-संबंधी मौलिक पेपर प्रकाशित किए हैं। इन्हीं सारे कार्यों के उपलक्ष में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के

में नहीं आई थी । यह उसी को समझने आए थे। उधर तो चीज़ें बँध रही थीं, इधर आपने उन्हें खोल-खोलकर एक-एक रहस्य समझाना शुरू किया । गाड़ी के लिये आध घंटा रह गया था, और स्टेशन ५-६ मील दूर था । हमने रमनजी से कितना ही कहा कि गाड़ी छूट जायगी; उस जिज्ञासु ने भी कहा कि दूसरे दिन समझ लूँगा; पर डॉक्टर महोदय को तो समझने-समझाने की ही संसार में परवा है ; आप क्योंकर मानते । निदान गाड़ी के लिये कुछ मिनट ही रह गए। हम लोग मोटर में बड़ी तेज़ी से चले । यहाँ तक कि रास्ते में मोटर भी बिगड़ गई, और स्टेशन पर पहुँचते-पहुँचते गाड़ी भी छूट ही गई थी । रमनजी तो ज्यों-त्यों करके ट्रेन में बैठ गए, पर सामान बाद को पार्सल से भेजना पड़ा। वास्तव में ज्ञान का प्रेम इसी को कहते हैं।

गर्व तो इन्हें छू भी नहीं गया है। जान पड़ता है, ज्ञान और गर्व में सचमुच स्वाभाविक वैर है । इतनी थोड़ी अवस्था में रमन महोदय ने जो ज्ञान तथा सम्मान प्राप्त किया है, वह संसार में बिरलों को ही नसीब होता है । आशा है, परमेश्वर इन्हें चिरायु करके बहुत दिन तक भारतवर्ष तथा संसार की सेवा करावेंगे ! ऐसे ही सपूतों से तो भारतमाता का मुख उज्ज्वल होगा ।

यद्यपि रॉयल सोसाइटी का फ़ेलो बनाकर पाश्चात्य संसार ने आपका कुछ कम आदर नहीं किया है, तथापि कुछ लोगों ने नोबेल-पुरस्कार के लिये भी आपका नाम लिया है। बहुत लोग कहेंगे कि उसके लिये यह अभी बहुत ही अल्प-वयस्क हैं ; पर हम तो कहते हैं—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ।"

जो कुछ हो, हमें विश्वास है कि यथासमय नोबेल-पुरस्कार से भी आप सम्मानित होंगे।

रमनजी के दो और भाई हैं । इनके बड़े भाई Indian Audit Account Service-विभाग में एक पदाधिकारी हैं । छोटा भाई अभी कॉलेज में पढ़ रहा है । इनके एक छोटा-सा पुत्र भी है । उसकी अवस्था अभी लगभग दो वर्ष की है ।

रमन महोदय गत मास में अभी फिर विलायत गए हैं । आशा है, इस बार उनका वहाँ विशेष आदर होगा।

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी

महाकवि कालिदास का काल-निर्णय

इतिहास में काल-ज्ञान का महत्त्व बहुत है । अँगरेज़ी-भाषा में "Chronology is the eye of History" (काल-ज्ञान इतिहास का नेत्र है) यह कहावत प्रसिद्ध है। जैसे बिना नेत्र के कुछ नहीं सूझता, वैसे काल-ज्ञान के बिना इतिहास की दशा है। हमारे भारतीय इतिहास में यह कमी तो पग-पग पर देख पड़ती है । हमारे इतिहास के कितने ही बड़े-बड़े व्यक्तियों और घटनाओं का समय अभी तक निश्चित नहीं हो पाया, जिससे हमारे इतिहास में, क्रमबद्धता न होने के कारण, बहुत त्रुटियाँ नज़र आती हैं । इस आपत्ति को अंशतः कुछ भी दूर करने के विचार से हमने सरस्वती की गत वर्ष की फ़रवरी, मई और जून की संख्याओं में कालिदास और विक्रमादित्य-जैसे सर्वमान्य और प्रसिद्ध व्यक्तियों के संबंध में आज तक की हुई खोजों का विहगावलोकन करते हुए यथामति उनके काल निर्णय का प्रयत्न किया था।

सरस्वती में प्रकाशित उक्त लेख में हमने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि कालिदास और विक्रमादित्य, ये दो जगन्मान्य विभूतियाँ ईसा की छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतवर्ष को विभूषित कर रही थीं । यहाँ उन सब प्रमाणों का उल्लेख करने की आवश्यकता, अवकाश और स्थान नहीं है। उनको पाठकगण सरस्वती की फ़ाइल में देख सकते हैं । सरस्वती में प्रकाशित लेख में कालिदास के महाकाव्यों में आए हुए ज्योतिष-विषयक उल्लेखों से कालिदास के काल-निर्णय के विषय में, आरंभ में, जो ज्योतिष-संबंधी चार प्रमाण दिए गए हैं, उनमें से केवल चौथे प्रमाण का अधिक समाधानकारक स्पष्टीकरण ही इस लेख में किया जायगा। वे चारों प्रमाण संक्षेप में यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

उस लेख में पहले प्रमाण में यह बतलाया गया है कि अपने भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों में मेषादि-राशियों का समावेश यूनानियों के संसर्ग से हुआ है । शक-काल से पहले के ज्योतिष-ग्रंथों में राशियों का उल्लेख नहीं पाया

से नहीं चाहते थे । वह अभी को समझने आए थे। [illegible] को [illegible] रही थी, इधर आपने उन्हें [illegible] खोलकर एक-एक रहस्य समझाना शुरू किया । गाड़ी के छूटने का [illegible] रह गया था, और स्टेशन ६-७ मील दूर था । हमने रमनजी से [illegible] कहा कि गाड़ी छूट जायगी, उस जिज्ञासु ने भी कहा कि दूसरे दिन समझ लूँगा; पर डॉक्टर महोदय को तो समझने-समझाने की ही संसार में परवा है; आप क्योंकर मानते । निदान गाड़ी के लिये कुछ मिनट ही रह गए। हम लोग मोटर में बड़ी तेज़ी से भागे । यहाँ तक कि रास्ते में मोटर भी बिगड़ गई, और स्टेशन पर पहुँचते-पहुँचते गाड़ी भी छूट ही गई थी । रमनजी तो [illegible] [illegible] बैठ गए पर [illegible] [illegible] को [illegible] में [illegible] पड़ा । [illegible] के ज्ञान का प्रेम इसी को कहते हैं ।

गर्व तो इन्हें छू भी नहीं गया है; जान पड़ता है, ज्ञान और गर्व में सचमुच स्वाभाविक वैर है । इतनी थोड़ी अवस्था में रमन महोदय ने जो ज्ञान तथा सम्मान प्राप्त किया है, वह संसार में बिरलों को ही नसीब होता है । आशा है, परमेश्वर इन्हें चिरायु करके बहुत दिन तक भारतवर्ष तथा संसार की सेवा करावेंगे ! ऐसे ही सपूतों से तो भारतमाता का मुख उज्ज्वल होगा ।

यद्यपि रॉयल सोसाइटी का फ़ेलो बनाकर पाश्चात्य संसार ने आपका कुछ कम आदर नहीं किया है, तथापि कुछ लोगों ने नोबेल-पुरस्कार के लिये भी आपका नाम लिया है । बहुत लोग कहेंगे कि उसके लिये यह अभी बहुत ही अल्प-वयस्क हैं; पर हम तो कहते हैं—

"[illegible]"

[illegible] है कि यथासमय नोबेल-पुरस्कार से भी आप सम्मानित होंगे ।

रमनजी के दो और भाई हैं । इनके बड़े भाई Indian Audit Account Service-विभाग में एक पदाधिकारी हैं । छोटा भाई अभी कॉलेज में पढ़ रहा है । इनके एक छोटा-सा पुत्र भी है । [illegible] अवस्था अभी [illegible] दो वर्ष की है ।

रमन महोदय इस मास में अभी फिर विलायत गए हैं । आशा है, इस बार उनका वहाँ विशेष आदर होगा ।

श्रीरामदास द्विवेदी

[महाक]वि कालिदास का काल-निर्णय

इतिहास में काल-ज्ञान का महत्त्व बहुत है । अँगरेज़ी-भाषा में "Chronology is the eye of History" (काल-ज्ञान इतिहास का नेत्र है) यह कहावत प्रसिद्ध है । जैसे बिना नेत्र के कुछ नहीं सूझता, वैसे काल-ज्ञान के बिना इतिहास की दशा है । हमारे भारतीय इतिहास में यह कमी तो पग-पग पर देख पड़ती है । हमारे इतिहास के कितने ही बड़े-बड़े व्यक्तियों और घटनाओं का समय अभी तक निश्चित नहीं हो पाया, जिससे हमारे इतिहास में, क्रमबद्धता न होने के कारण, बहुत त्रुटि नज़र आती है । इस आपत्ति को अंशतः कुछ तो दूर करने के विचार से हमने सरस्वती की गत वर्ष की फ़रवरी, मई और जून की संख्याओं में कालिदास और विक्रमादित्य-जैसे सर्वमान्य और प्रसिद्ध व्यक्तियों के संबंध में आज तक की हुई खोजों का सिंहावलोकन करके यथामति उनके काल-निर्णय का प्रयत्न किया था ।

सरस्वती में प्रकाशित उक्त लेख में हमने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया था कि कालिदास और विक्रमादित्य, ये दो जगन्मान्य विभूतियाँ ईसा की [illegible] शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतवर्ष को विभूषित कर रही थीं । यहाँ उन सब प्रमाणों का उल्लेख करने की आवश्यकता, अवकाश और स्थान नहीं है । उनको पाठकगण सरस्वती की फ़ाइल में देख सकते हैं । सरस्वती में प्रकाशित लेख में कालिदास के महाकाव्यों में आए हुए ज्योतिष-विषयक उल्लेखों से कालिदास के काल-निर्णय के विषय में, आरंभ में, जो ज्योतिष-संबंधी चार प्रमाण दिए गए हैं, उनमें से केवल चौथे प्रमाण का अधिक समाधानकारक स्पष्टीकरण ही इस लेख में किया जायगा । वे चारों प्रमाण संक्षेप में यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

उस लेख में पहले प्रमाण में यह बतलाया गया है कि अपने भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों में मेषादि-राशियों का समावेश यूनानियों के संसर्ग से हुआ है । [illegible] [illegible] के ज्योतिष-ग्रंथों में राशियों का उल्लेख नहीं [illegible]

माधुरी

महात्मा कवीरदासजी

[चित्रकार—श्रीयुत बाबू महावीरप्रसाद वर्मा]

झीनी-झीनी बीनी चदरिया,

काहे कौ ताना, काहे के भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ;

इँगला पिँगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया ।

आठ कँवल दल [illegible] डोलै, पाँच [illegible] बीनी चदरिया ;

साईं को सियँत मास दस लागैं, ठोक-ठोक कै बीनी चदरिया ।

जाता । हाँ, शक-काल के बाद के ग्रंथों में राशियों के नाम अवश्य पाए जाते हैं ; लेकिन वे भी ख़ास यूनानी-शब्दों या उनके संस्कृत-अनुवाद के रूप में ही पाए जाते हैं। नक्षत्रों के यूनानी और संस्कृत-नामों में जैसी अर्थ की भिन्नता है, वैसी राशियों के नामों में नहीं। यह बात भी विचार करने के योग्य है। फिर कालिदास का "ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंस्थितैः" (रघुवंश सर्ग ३, श्लोक १३) यह उल्लेख ऐसा नहीं है कि उस ज़माने में किया जा सके, जब जातक-शास्त्र में राशियों का आम तौर से उपयोग नहीं होने लगा था। अतएव कालिदास का अस्तित्व शक-पूर्व-काल में संभव नहीं है।

दूसरे प्रमाण में सूचित किया गया है कि जिस तरह हमारे देश में यूनानियों के सहवास से राशियों का प्रचार हुआ, ठीक उसी तरह कई ज्योतिष-विषयक यूनानी-शब्दों का भी। वराहमिहिर के ग्रंथ में यूनानी-शब्द बहुत पाए जाते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि वराहमिहिर के समय के लगभग ही हमारे देश में इन ज्योतिष-संबंधी यूनानी-शब्दों का अधिकता से प्रचार हुआ होगा। कविवर कालिदास अपने काव्य में जामित्र (Diameter), होरा (Hora) आदि यूनानी-शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे मालूम होता है कि कालिदास का काल वराहमिहिर के काल के आसपास ही होना चाहिए।

तीसरे प्रमाण में यह दिखलाया गया है कि ईसा की पाँचवीं और छठी शताब्दी में आर्यभट्ट और वराहमिहिर-जैसे बड़े-बड़े ज्योतिष-शास्त्र-वेत्ताओं ने अपने सिद्धांत-ग्रंथों का निर्माण किया। इसी से उस काल को सिद्धांत-काल की संज्ञा प्राप्त हुई। इस काल में चारों ओर ज्योतिष-शास्त्र की अधिक चर्चा आरंभ हुई। कालिदास के काव्य में ज्योतिष-विषयक उल्लेख बहुत पाए जाने से भी प्रतीत होता है कि कालिदास इस सिद्धांत-काल के पीछे के होंगे। इसके सिवा यह भी देख पड़ता है कि कालिदास ने अपने ग्रंथों में कई जगह वराहमिहिर का अनुकरण किया है। इसके उदाहरण सरस्वतीवाले लेख में दिए गए हैं। इससे भी यह अनुमान होता है कि कालिदास निःसंशय वराहमिहिर के अनुयायी थे ; शायद उनके समकालीन भी हों।

चौथा प्रमाण, जिसका स्पष्टीकरण इस लेख में विशेष रूप से ज्योतिष-चक्र के द्वारा किया जायगा, यहाँ पर अधिक विस्तार के साथ दिया जाता है। इस प्रमाण में कालिदास के मेघदूत-काव्य से, विशेष रूप से, यह बात स्पष्ट की गई है कि कालिदास वराहमिहिर के समय की अयन-प्रवृत्ति को माननेवाले थे। वराहमिहिर अपनी बृहत्संहिता और पंचसिद्धांतिका में पूर्वकालीन और स्वकालीन अयन-प्रवृत्ति के विषय में लिखते हैं—

"आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम् ;
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु।
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत् ;
उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः।"

(बृहत्संहिता, अध्याय ७३)

"आश्लेषार्द्धादासीद्यदा निवृत्तिः किलोष्णकिरणस्य ;
युक्तमयनं तदासीत् साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः।"

(पंचसिद्धांतिका)

इन वचनों में वराहमिहिर दो बार स्पष्ट रूप से विधान करते हैं कि पहले किसी ज़माने में जब सूर्य आश्लेषा-नक्षत्र के अर्ध में पहुँचते थे, तब दक्षिणायन का आरंभ होता था, और जब धनिष्ठा के आरंभ में पहुँचते थे, तब उत्तरायण का आरंभ होता था ; किंतु वर्तमान काल में सूर्य की दक्षिणायन-प्रवृत्ति पुनर्वसु (अर्थात् कर्का-रंभ) से होती है, और उत्तरायण की प्रवृत्ति उत्तराषाढ (अर्थात् मकरारंभ) से। किसी को इसमें शंका हो, तो वह प्रत्यक्ष वेध से निश्चय कर ले। वराहमिहिर की दी हुई पूर्वोक्त प्राचीन अयन-प्रवृत्ति वेदांग-ज्योतिष में वर्णित है। ये सब बातें इस लेख के साथ दिए हुए चक्र में स्पष्ट रूप से बतलाई गई हैं। नंबर १ में प्राचीन (अर्थात् वेदांग-ज्योतिष-कालीन) अयनों की प्रवृत्ति दिखलाई है। वहाँ "प्रपद्येते श्रविष्ठादौ (धनिष्ठादौ)" इत्यादि वेदांग-ज्योतिष का वचन भी उद्धृत किया है। वेदांग-ज्योतिष के वचन में यह भी कह दिया है कि दक्षिणायन और उत्तरायण श्रावण और माघ में अनुक्रम से होते हैं। वराहमिहिर कहते हैं, मेरे समय में यह अवस्था बदल गई है। अब दक्षिणायन का आरंभ अथवा वर्षा-काल की प्रवृत्ति तब होती है, जब सूर्य पुनर्वसु-नक्षत्र में पहुँचते हैं, अर्थात् कर्क-संक्रांति के अवसर पर। उन्होंने यह बात "साम्प्रतमयनं पुनर्वसुतः" और "साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यम्", इन दोनों वचनों से स्पष्ट की है। आगे दिए हुए चक्र में

यह बात नंबर २ में बतलाई गई है। मतलब यह कि वराहमिहिर के समय में दक्षिणायन का आरंभ पहले की अपेक्षा दो नक्षत्र (अर्थात् २६-२७ अंश) पीछे हट गया था। प्राचीन काल में दक्षिणायन का आरंभ श्रावण में होता था, और वराहमिहिर के समय में वह २६-२७ दिन पहले (अर्थात् आषाढ़ में) होने लगा था।

यदि कालिदास के मेघदूत-काव्य पर विचार किया जाय, तो यह जान पड़ता है कि कालिदास के समय में भी वर्षा-ऋतु का आरंभ आषाढ़-मास के आरंभ में ही हो जाया करता था। मेघदूत-काव्य से पूर्ण परिचित संस्कृतज्ञ पंडितों के लिये आवश्यकता न होने पर भी केवल हिंदी-पढ़े साधारण पाठकों के लिये यहाँ पर उक्त काव्य का थोड़ा-सा विवरण देना आवश्यक है, जिसमें उनको यह काल-निर्णायक चर्चा समझने में सुबीता हो।

मेघदूत के आरंभ में ही यह कहा गया है कि आषाढ़ के पहले दिन यक्ष ने मेघ को देखा, और उसके साथ अपनी प्रियतमा को संदेश भेजने का निश्चय किया। यक्ष को एक वर्ष के लिये शाप था, जिसमें आषाढ़ के आरंभ तक आठ महीने के लगभग समय बीत चुका था। यक्ष के शाप-मुक्त होने में केवल चार ही महीने और बाक़ी थे। मेघदूत-काव्य का मुख्य विषय यही है कि यक्ष अपनी प्रिया को मेघरूपी दूत के हाथ संदेश भेजता है कि "आषाढ़-शुक्ला एकादशी से लेकर कार्त्तिक-शुक्ला एकादशी तक, चार महीने, उसी तरह कड़ा जी करके बिताओ, और प्राण-धारण किए रहो। उसके बाद हम दोनों की भेंट होगी।*" इससे यह बिलकुल स्पष्ट है कि आषाढ़ की शुक्ला एकादशी (देवशयनी) के पहले ही यह संदेश पहुँच जाना चाहिए था। मेघ की यात्रा के मार्ग का जो वर्णन इस काव्य में किया गया है, उसमें यक्ष ने कहा है कि मार्ग में तुम्हें फल, फूल अथवा साथी मिलेंगे। इसमें जिन फल, फूल आदि का उल्लेख है, वे वर्षा-काल में ही उत्पन्न हो सकनेवाले हैं।†

इससे यह जान पड़ता है कि उस समय वर्षा-काल का आरंभ हो चुका था। यही बात नीचे के उद्धरणों से भी स्पष्ट है—

"आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।"

तथा—

"प्रत्यासन्ने **नभसि** दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्;"

इस उद्धरण के अंतर्गत "नभसि"-पद का अर्थ श्रावण-मास किया जाता है। परंतु, वास्तव में, उस स्थान पर इस पद का अर्थ 'श्रावण' न करके 'वर्षा-ऋतु' ही करना उचित है; क्योंकि आषाढ़ के बाद सदा श्रावण ही आता है। यदि कवि यह कहे कि आषाढ़ के बाद श्रावण आनेवाला है, तो उसमें कोई विशेषता या चमत्कार नहीं रहता। फिर कालिदास के समान मार्मिक कवि की ओर से ऐसे व्यर्थ पद की योजना होना भी संभव नहीं। अतएव यह मानना ही पड़ेगा कि इस पद की योजना में कोई-न-कोई विशेषता अवश्य है। वह विशेषता यही है कि कवि ने विशेष रूप से यह बतलाने के लिये कि वर्षा-काल में विरही जनों की अवस्था बहुत दुःख-दायिनी होती है, और वह काल अब बिलकुल समीप आ गया है, ऋतु-बोधक 'नभसि'-पद की योजना की, और उससे आषाढ़ के आरंभ में ही वर्षा-ऋतु का प्रत्यासन्न होना बतला दिया। मेघदूत में आगे चलकर जो वर्णन दिया गया है, उससे भी हमारे इस कथन की संगति अच्छी तरह बैठ जाती है। मधु, माधव, नभ, नभस्य आदि महीनों के नाम वास्तव में ऋतु-बोधक ही हैं; और जब जैसी आवश्यकता होती है, तब तदनुसार ही चैत्रादि मासों या वसंत-वर्षा आदि ऋतुओं के लिये उन नामों का उपयोग किया जाता है। इसलिये इस स्थान पर 'नभसि'-पद को ऋतु-संज्ञक ही मानना युक्ति-युक्त और हेतु-गर्भ है। आगे चलकर ग्यारहवें श्लोक में भी—"संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।"—फिर 'नभसि'-पद का प्रयोग किया गया है। इस स्थान पर भी वह ऋतु-बोधक ही है। कुछ टीकाकार इस श्लोक के 'नभसि'-पद का अर्थ 'आकाश में' करते हैं। पर इस स्थान पर कालिदास ने यक्ष के मुख से मेघ के प्रति यह कहलाया है कि

* "शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ,
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।"
(पूर्व-मेघ)

† उनके नाम आदि सरस्वती के लेख में मेघदूत के श्लोकों सहित उद्धृत किए गए हैं।

"वर्षा का आरंभ हो चुकने के कारण राजहंस मानस-सरोवर को लौट रहे हैं, अतः अनायास ही तुम्हारा और उनका साथ हो जायगा।" इसमें कालिदास का मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि वर्षा-ऋतु की परिस्थिति दिखला दी जाय। इसलिये इस पद का अर्थ 'वर्षा-ऋतु' करना ही युक्त होगा। उत्तर-मेघ के १०वें श्लोक से तो यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। वह श्लोक यों है—

"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ;
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमेवाभिलाषम्
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु।"

इसमें यक्ष ने अपनी प्रिया को यह संदेश भेजा है कि कार्त्तिक-शुक्ला एकादशी को शाप का अंत हो जायगा। तब तुम और मैं, दोनों पूर्णता को प्राप्त हुई शरद्-ऋतु की निर्मल चाँदनीवाली रातों में अपनी विरह-गुणित अर्थात् वियोग से बढ़कर कईगुनी हुई अभिलाषाओं को आनंद से पूर्ण करेंगे। इस स्थान पर यह दिखाया गया है कि कार्त्तिक-शुक्ला एकादशी के लगभग शरद्-ऋतु पूर्ण हो जायगी। इससे यह आप ही स्पष्ट हो जाता है कि आषाढ़-शुक्ला एकादशी के लगभग वर्षा-ऋतु का आरंभ हुआ था, और इसीलिये कालिदास ने "आषाढस्य प्रथमदिवसे" के पश्चात् "प्रत्यासन्ने नभसि" की योजना करके आषाढ़-मास के प्रारंभ में वर्षा-ऋतु का सान्निध्य सूचित किया है।

'नभसि'-पद का अर्थ श्रावण मानने से कुछ टीकाकारों को दूसरे और चौथे श्लोक की संगति मिलाने में बहुत अड़चन हुई है। उसे दूर करने के लिये उन्होंने "आषाढस्य प्रथमदिवसे" के स्थान पर "आषाढस्य प्रशमदिवसे," ऐसा पाठ मान लिया। एक टीकाकार ने तो यह अड़चन उपस्थित करनेवाला 'नभसि'-पद ही उड़ा देना चाहा, और इसलिये 'नभसि' के स्थान पर 'मनसि' पाठ की कल्पना की। परंतु, जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, 'नभसि'-पद से वर्षा-ऋतु का अर्थ ग्रहण करके उक्त श्लोकों की संगति मिलाई जाय, तो कोई भी अड़चन नहीं रहती, और न पाठ बदलने की उपहासास्पद चेष्टा ही करनी पड़ती है।

इस समग्र विवेचन से यह सिद्ध होता है कि कालिदास के समय में वर्षा-ऋतु का आरंभ आषाढ़ के आरंभ में ही हो जाता था। पहले के विवेचन में दिखलाया जा चुका है कि वराहमिहिर के समय में वर्षा-ऋतु का आरंभ या प्रवृत्ति आषाढ़ में मानी जाने लगी थी। वर्तमान काल के प्रचलित भारतीय पंचांगों में भी वर्षा का आरंभ आषाढ़-मास में ही बताया जाता है। इसका कारण यह है कि प्रचलित भारतीय पंचांग निरयण-मतानुसारी हैं। उनमें अयन-बिंदु के पीछे हटने से अयन-प्रवृत्ति की और ऋतुओं का आरंभ पीछे हटाने की सावधानता नहीं रक्खी जाती। वास्तव में आजकल वर्षा-ऋतु का आरंभ ज्येष्ठ-मास में (अर्थात् २१वीं जून को) ही हो जाता है। यह बात स्पष्ट रूप से पाठकों के ध्यान में आने के लिये यहाँ पर "अयनापक्रम-दर्शक क्रांति-चक्र" दिया गया है। यह चक्र देखकर यह बात पाठकों के ध्यान में ठीक-ठीक आ जायगी कि अयनों का अपक्रम (अर्थात् पीछे हटना) किस प्रकार होता है, और उसके हिसाब से कालिदास का काल-निर्णय करने में कैसी मदद मिलती है। इस चक्र में सबसे बाहर नक्षत्रपाद-वृत्त है। उसमें हरएक नक्षत्र के चार चरण बतलाए हैं। उसके भीतर नक्षत्र-वृत्त है, जिसमें अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र क्रम से दिए हैं। उसके भीतर राशि-वृत्त है, जिसमें २¼ नक्षत्र को एक राशि के परिमाण से मेष-वृष आदि राशियों के नाम यथाक्रम दिए हैं। ३६० अंश का क्रांति-वृत्त १२ राशि-विभागों में बाँटा जाय, तो हरएक राशि के ३० अंश होते हैं, और २७ नक्षत्र-विभागों में बाँटा जाय, तो हरएक नक्षत्र के १३-२० अंश और हरएक नक्षत्र-चरण के ३-२० अंश होते हैं। राशियों के अंश-चक्र में सबसे बाहर के वृत्त के अंतिम स्थान पर बतलाए गए नक्षत्रों और नक्षत्र-चरणों के अंश अलग नहीं दिखाए गए हैं ; तथापि ज़रूरत हो, तो दिए हुए हिसाब से उनका भी ज्ञान हो सकता है। राशि-वृत्त के भीतर मास-वृत्त है। उसमें यह बतलाया है कि कौन-सी राशि या नक्षत्र में सूर्य के होने पर कौन-सा महीना होता है। उसके भीतर जो तीन ऋतु-वृत्त हैं, उनमें से—पहले में वर्तमान-कालीन, दूसरे में वराहमिहिर-कालीन, और तीसरे में वराहमिहिर के पूर्व-काल की या वेदांग-ज्योतिष-कालीन वसंतादि ऋतुओं की स्थिति दिखलाई है ;
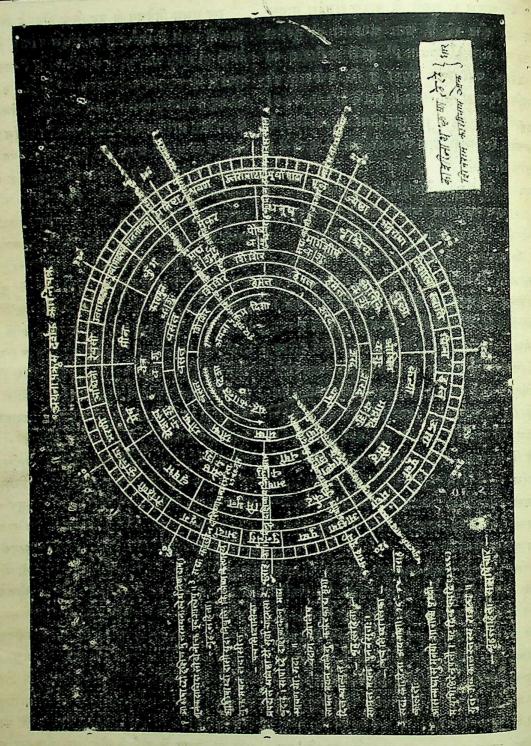
अर्थात् यह स्पष्ट करके बतलाया है कि उक्त भिन्न-भिन्न कालों में कौन-कौन-से नक्षत्रों, राशियों या मासों में वसंतादि ऋतुएँ होती थीं, या होती हैं।

बीच में जो वृत्त खाली है, उसमें भिन्न-भिन्न दिशाएँ सूचित करनेवाले दो बाण दिखलाए हैं। अश्विनी-भरणी आदि नक्षत्रों अथवा मेष-वृष इत्यादि राशियों में चंद्र-सूर्यादि ग्रह, अपनी गति के अनुसार दाहनी ओर से बाईं ओर, यानी पश्चिम से पूर्व की ओर, भ्रमण

करते हैं। बाईं ओर जानेवाला बाण उनकी गति की दिशा सूचित करता है, तथा दाहनी ओर जानेवाला बाण अयनापक्रम अर्थात् अयन-बिंदु का विलोम चलन या पीछे हटना प्रदर्शित करता है। मतलब यह कि ग्रहों की गति पश्चिम की ओर से पूर्व की ओर और अयन की गति उसके विपरीत (यानी पूर्व से पश्चिम की ओर) होती है। भारतीय युद्ध के काल से लेकर आज तक भिन्न-भिन्न कालों में इस अयन-बिंदु के चलन द्वारा अयन-स्थान बदलते गए हैं, और वही इस चक्र में बतलाया है। यद्यपि संपात-बिंदु के स्थान नहीं दिखलाए, लेकिन यह ध्यान में रखने से कि अयन-स्थान से बराबर ६० अंश पर संपात-बिंदु का स्थान होता है, उस-उस काल के संपात-बिंदु का स्थान भी थोड़े ही परिश्रम से ज्ञात हो सकता है। यदि ये अयन-बिंदु, यानी उत्तरायण और दक्षिणायन होने के स्थान, क्रांति-वृत्त पर स्थिर होते, तो ऋतुओं के आरंभ-काल में कभी हेर-फेर न होता। प्राचीन काल में जिन-जिन नक्षत्रों और राशियों में सूर्य की संक्रांति होने पर वसंतादि ऋतुएँ जिन-जिन मासों में प्रवृत्त होती थीं, उन्हीं नक्षत्रों या राशियों में सूर्य के आ जाने पर उन्हीं मासों में अब भी उन-उन ऋतुओं की प्रवृत्ति होनी चाहिए। परंतु वास्तविक स्थिति वैसी नहीं है, अर्थात् ये अयन-बिंदुओं के स्थान अस्थिर हैं। वे ग्रह-गति की दिशा की विपरीत दिशा में मंद गति से, ७१-७२ वर्ष में, एक अंश पीछे हटते हैं। इसी कारण ऋतुओं के प्रवृत्ति-काल में थोड़ा-थोड़ा अंतर होता जाता है, और वही कालांतर में बढ़कर प्रकट रूप से लोगों के अनुभव में आने लगता है। तब ज्योतिषियों को ऋतुओं के आरंभ के दिन बदलकर, अर्थात् पीछे हटाकर, बतलाने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसा अवसर स्वयं वराहमिहिर के सामने उपस्थित हुआ था, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने ग्रंथों में किया है, और हमें भी प्रस्तुत विषय में इधर पाठकों का ध्यान अच्छी तरह आकृष्ट करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है।

इस चक्र में १ का अंक यह सूचित करता है कि वराहमिहिर के पूर्व उनके और वेदांग-ज्योतिष के कथनानुसार अयनारंभ किस नक्षत्र, किस राशि या किस मास में हुआ करता था। २ का अंक यह बतलाता है कि वराहमिहिर के समय में यह अयनारंभ-स्थान कितना पीछे हट गया। इसके बाद ३ का अंक यह प्रदर्शित करता है कि वर्तमान काल में उसमें और कितना अंतर हो गया है। इससे यह स्पष्ट होगा कि वराहमिहिर के समय से आषाढ़ में दक्षिणायन (अर्थात् वर्षा-ऋतु का आरंभ) माना जाने लगा था। कालिदास ने मेघदूत में वर्षा-ऋतु का प्रवेश आषाढ़ के आरंभ में ही वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध है कि वराहमिहिर और कालिदास समकालीन होने चाहिए।

अयन की विलोम गति के कारण अयन-प्रवृत्ति में जो अंतर पड़ता है, उसके विषय में वर्तमान सूक्ष्म गणित के द्वारा यह स्थिर हो चुका है कि लगभग ७१ वर्ष में एक अंश का अंतर पड़ता है, और वराहमिहिरकालीन अयनारंभ-स्थान से अब अयन क़रीब १९ अंश पीछे हट गया है। इस बात को विचक्षण ज्योतिषज्ञ लोग मानते हैं।* ७१ वर्ष में १ अंश के अंतर के हिसाब से १९ अंश का अंतर १,३४९ वर्षों में पड़ सकता है। वर्तमान ईसवी सन् १९२४ में ये १,३४९ वर्ष घटा दिए जाने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईसवी सन् ५७५ के लगभग कालिदास और वराहमिहिर विद्यमान थे। वराहमिहिर का यही काल अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध है।

यह चक्र ख़ासकर कालिदास के काल का निर्णय करने के लिये यहाँ पर दिया गया है, और उसका विवरण यथामति ऊपर किया गया है। लेकिन इतिहास में और भी ऐसे ही काल-निर्णय-विषयक जो वादग्रस्त प्रश्न हैं, उन पर भी इस चक्र की सहायता से कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। पंडितों के विचार के लिये संक्षेप से अपने इस कथन की पुष्टि की जाती है।

वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में युधिष्ठिर-काल, वृद्धगर्ग के मतानुसार, इस प्रकार दिया है—

"आसन्मघासु मुनयो शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ;
षट्द्विक पंचद्वि (२५६६) युतः शककालस्तस्य राज्ञश्च।"

अर्थात् शक-काल में २,५६६ मिलाने से युधिष्ठिर-काल होगा, यह उनका कथन है। उसके अनुसार वर्तमान शकाब्द १८४६ में २,५६६ मिलाने से आजकल युधिष्ठिर-काल का ४,४१२वाँ वर्ष होता है। ७१ या ७२ वर्ष में

* कुछ वर्ष हुए, साँगली-संस्थान में ज्योतिष-सम्मेलन हुआ था। उसमें ज्योतिष-वेत्ताओं ने १९ के लगभग ही अयनांश ग्राह्य किए हैं।

X यह काल युक्त प्रतीत नहीं होता

एक अंश अयनारंभ-स्थान के पीछे हटने के हिसाब से ४,४१२ वर्ष में लगभग ६० से ६२ अंश अयनारंभ-स्थान में अंतर होना चाहिए। इस हिसाब से, वराहमिहिर और वृद्धगर्ग के मतानुसार, अयनारंभ-स्थान इस चक्र में ४ अंक से दिखलाया गया है। उससे भारतीय युद्ध में भीष्म-निर्याण के समय माघ-शुक्ला सप्तमी को उत्तरायण का प्रवेश होने में कोई बाधा नहीं मालूम होती। और, यह बात विचक्षण पाठकों की समझ में आ जायगी कि इस भारतकालीन अयनारंभ-स्थान से तत्कालीन संपात-स्थान का, जो कि इस अयनारंभ-स्थान से ९० अंश पर होगा, यदि वि- किया जाय, तो अनुशासनपर्व के अध्याय ६४ व ८९ में जो कृत्तिकादि-नक्षत्र-गणना दी है, उससे भी यह वराहमिहिर-दर्शित भारत-काल सुसंगत है। देहरादून-निवासी पंडित भगवानदास पाठक ने अपने Hindu Aryan Astronomy and antiquity of Aryan Race-नामक ग्रंथ में वराहमिहिर-दर्शित युधिष्ठिर-काल ही अन्य प्रमाणों से स्थापित किया है। पाठक उक्त ग्रंथ * में देख सकते हैं।

इस चक्र में अंक १ से जो वराहमिहिर के पूर्वकालीन और वेदांग-ज्योतिषकालीन अयनारंभ-स्थान दिखलाया है, उस स्थान से वर्तमानकालीन अयनारंभ-स्थान में (देखिए नं० ३) लगभग ४६ अंश का अंतर (पीछे हटना) हुआ है। ७१ वर्ष में एक अंश के हिसाब से ४६ अंश का अंतर होने में ३,२६६ वर्ष व्यतीत हो गए। इससे वेदांग-ज्योतिष का काल ईसा से पूर्व १,३४२ वर्ष (३२६६-१९२४) आता है, और स्वर्गवासी पंडित शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने अपने "भारतीय ज्योतिष-शास्त्र का इतिहास"-नामक, मराठी भाषा में लिखित, ग्रंथ के ८८वें पृष्ठ पर वेदांग-ज्योतिष का जो काल दिया है, उससे वह मिलता-जुलता है।

उक्त वेदांग-ज्योतिष-काल से वराहमिहिर और कालिदास के समय में, अयनारंभ-स्थान में, लगभग २७ अंश का अंतर हो गया था, जो कि इस चक्र से स्पष्ट दिखलाई देता है। ७१ वर्ष में १ अंश का जो हिसाब ऊपर दिया है, उससे इतना अंतर होने में १,९१७ वर्ष व्यतीत होते हैं, जिसमें से उक्त वेदांग-ज्योतिष-काल के १,३४२ वर्ष घटा दिए जायँ, तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि ईसवी सन् ५७५ के लगभग, यानी छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में, ही कालिदास का आविर्भाव-काल होना चाहिए। कालिदास का यही काल अन्य प्रमाणों से भी कैसे स्थापित होता है, यह बात सरस्वती में प्रकाशित पूर्वोक्त हमारे लेख में विस्तार के साथ बतलाई गई है। जिन पाठकों की इच्छा हो, सरस्वती की फ़ाइल में उन प्रमाणों को भी देख सकते हैं।

संपात-चलन से अयनारंभ-स्थान में कैसे-कैसे अंतर होता गया, यह इस चक्र में साधारण रीति से बतलाया गया है। योग्य साधनों के अभाव के कारण इसमें जितनी सूक्ष्मता आनी चाहिए थी, उतनी नहीं आई, यह हम जानते हैं। विज्ञ पाठक उसका सुधार करके दर्शित दिशा से काल-निर्णय के प्रश्नों पर विचार करें, और इस विवरण में जो त्रुटियाँ हों, या इस विषय में जो सूचना देना उचित जान पड़े, उसे कृपया सूचित कर हमको अनुगृहीत करें।

ज्योतिष के प्रमाण से महाकवि कालिदास के काल का निर्णय कैसे हो सकता है, यह इस लेख में चक्र के द्वारा मुख्य रूप से बतलाया गया है। ज्योतिष-शास्त्र के विषय में प्रसिद्ध ज्योतिर्वेत्ता भास्कराचार्यजी का कथन इस प्रकार है—"प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यस्य साक्षिणौ।" कालिदास के काल-निर्णय के विषय में अब ऐसे प्रत्यक्ष शास्त्र का पुराना प्रमाण और सूर्य-चंद्र-जैसे गवाहों की गवाही प्राप्त हुई है। ऐसी दशा में दृढ़ आशा की जाती है कि अब इस वादग्रस्त प्रश्न का पूरा निर्णय हो जायगा।

काशीनाथ-कृष्ण लेले
शिवराम-काशीनाथ ओक

---

* यह ग्रंथ इस पते से दो रुपए में प्राप्त हो सकता है—

Pandit Bhagwan Das Pathak,
Retired Head Clerk,
Jhanda Mohalla,
Dehra Dun (U. P.)

दो खोपड़ी

(१)

मुझे इतिहास से बहुत प्रेम है। जब कभी अवकाश मिलता है, लुटिया-डोरी उठाकर, भूतपूर्व राजधानियों तथा नगरों के निरीक्षण के लिये चल देता हूँ। पुराने खँडहरों की देख-भाल करने में मुझे बड़ा आनंद मिलता है। खँडहरों में शायद मुझे कोई शिला-लेख मिल जाय, कोई ताम्र-पत्र हाथ लग जाय, किसी कोने में दबे हुए प्राचीन सिक्कों के दर्शन हो जायँ, या किसी घर के कूड़े-कबाड़ में कोई हस्त-लिखित पुस्तक ही प्राप्त हो जाय, इस आशा से मैं सुदूर प्रदेशों में भ्रमण किया करता हूँ।

एक बार घूमते-घूमते मैं ग़ज़नी पहुँचा। प्राचीन समय में ग़ज़नी सुलतान महमूद की राजधानी थी। महमूद ने भारत पर कई आक्रमण किए थे, और विजयी होकर यहाँ से बहुत-सा धन लूट ले गया था। सोमनाथ के मंदिर के किवाड़े तो उसे इतने भले मालूम दिए कि वह उन्हें अपनी राजधानी ग़ज़नी को उठा ले गया, और उन्हें अपने दीवाने-ख़ास के द्वार पर लगवाया था। मेरे मन में यह विचार आया कि शायद वे किवाड़े अब भी विद्यमान हों, तो मैं उनको फिर भारत में वापस लाऊँ। यदि उन्हें लाना असंभव ही होगा, तो उनका फ़ोटो तो अवश्य ही ला सकूँगा। मेरे इस प्रयास से प्राचीन भारत के लकड़ी की अपूर्व कारीगरी का प्रदर्शन संभव होगा। साथ ही यदि कुछ चित्र अथवा बेल-बूटे या जाली आदि भी हाथ में आ जायँगे, तो चित्रकारी अथवा मूर्तिकारी के इतिहास की माला में एक और मनका पिरोया जा सकेगा। बस, किवाड़ों को देखने और उनका फ़ोटो लेने के उद्देश्य से ही मैंने ग़ज़नी की यात्रा ठान दी।

ग़ज़नी अब एक छोटा-सा गाँव है। चारों तरफ़ खँडहर ही दूर-दूर तक फैले हुए हैं। सूर्य भगवान् के अस्त होने में केवल एक घंटा शेष था। मैं बहुत देर से ग़ज़नी में घूम रहा था। अभी तक कोई पुरातन वस्तु हाथ नहीं लगी थी। महमूद के दीवाने-ख़ास का कुछ पता न चला। चित्त बहुत उदास हो रहा था कि हाय, कहीं यात्रा निष्फल तो नहीं हुई?

ये खँडहर एक घाटी में पड़े हुए थे। छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दृष्टि को बहुत दूर तक देखने नहीं देती थीं। मैं एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ गया। यात्रा की जल्दी में मैं अपना binocular घर भूल आया था, नहीं तो यहाँ दूर-दूर तक देखने में बहुत सहायता मिलती। ख़ैर, ख़ाली नेत्रों से देखने से जान पड़ा, थोड़ी दूर पर, एक पहाड़ी पर, कोई पुराना क़िला-सा बना है। अहा हा! मेरे हर्ष की सीमा न रही। मैंने समझा, यही महमूद का क़िला होगा। दीवाने-ख़ास भी ज़रूर इसके भीतर ही होगा। पेड़ से उतरा। तेज़ी से क़दम बढ़ाकर क़िले की ओर लपका। मार्ग बेढब, समय बहुत थोड़ा; पर जोश में कौन परवा करता है। चढ़ाई बहुत कठिन थी। पाँव उठते ही न थे। पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति मुझे पीछे खींच रही थी, पर उत्साह ऊपर दौड़ा रहा था। जब मैं क़िले के फाटक पर पहुँचा, तो मालूम हुआ, वह खँडहर नहीं, बल्कि किसी अमीर सरदार का घर है। दो-तीन सिपाही संगीनें चढ़ाए पहरा दे रहे थे। प्रभुता-संपत्ति-ऐश्वर्य के चिह्न विद्यमान थे। मैं

कुछ घबरा-सा गया। अब क्या करूँ ? ये पठान लोग मेरे साथ कैसा बर्ताव करेंगे ? वापस लौटना तो अब दुशवार है ! संध्या हो चुकी थी। अँधेरा धीरे-धीरे अपना दख़ल जमा रहा था। रात्रि को कहाँ रहूँगा, यह चिंता मुझे सताने लगी। निराशा ने आ घेरा। मेरा दिल टूट गया। फिर विचार उठा, जो होना है सो होगा, देखा जायगा। मेरे प्राण ले लेंगे ? इससे अधिक ये लोग क्या कर सकते हैं ? पर विना कुछ हुए ही क्यों रोते हो ? इस प्रकार मन को धीरज दे आगे बढ़ा। सिपाही से सलाम कर क़िले के मालिक का नाम पूछा, और रात्रि के विश्राम के लिये प्रार्थना की। मेरे विचार के अनुकूल, वह पठान सिपाही अनपढ़, उजड्ड या वहशी न था। बड़े शिष्टाचार से उसने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया। मुझे फाटक पर बिठलाकर आप भीतर चला गया। कुछ देर में वह लौटा और अपने पीछे आने का इशारा किया। मैं भी उसके साथ हो लिया।

(२)

इस क़िले का मालिक दाऊदख़ाँ था। वह पठानों की पहबल-जाति का सरदार था। बहुत रसिक तथा अतिथि-प्रिय था। उसने मेरा स्वागत और विशिष्ट अतिथि के समान आदर किया। भोजन इत्यादि से निश्चिंत होने के पश्चात् वह मुझे अपने ख़ास कमरे में ले गया। कमरा बहुत ही सुंदर और सजा हुआ था। सरदी बहुत थी। एक तरफ़ अँगीठी में आग जल रही थी। बहुत बढ़िया क़ालीन बिछा था। हम दोनों तकियों के सहारे बैठ गए। दीवार में एक आलमारी लगी हुई थी। उसमें शराब की दस-बारह बोतलें रक्खी हुई थीं। चारों तरफ़ दीवारों पर अनेकानेक जानवरों के सिर टँगे हुए थे। इन सबको उसने शिकार में मारा था। मुझे यह देखकर अचंभा हुआ कि एक कोने में घूमनेवाला काष्ठ-फलक भी था, जिस पर पुस्तकें लदी हुई थीं। इनमें बहुत-सी पुस्तकें इतिहास-संबंधी थीं। अँगीठी की चिमनी के ऊपर कुछ फ़ोटो रक्खे थे, और बीचो-बीच मृत मनुष्यों की दो खोपड़ियाँ विराजमान थीं।

वार्तालाप करते-करते मैंने किवाड़ों का ज़िक्र छेड़ा और उनका वृत्तांत पूछा। उसने बतलाया—"वे किवाड़ दीवाने-ख़ास के द्वार में लगाए गए थे। उनको लगाने के तीसरे दिन महमूद का युवा पुत्र मर गया, और एक महीने बाद उसकी प्यारी बीबी ज़माल बेगम का देहांत हो गया। एक दिन महमूद अपने मंत्रियों के साथ दीवाने-ख़ास में बैठा किसी गुप्त रहस्य पर विचार कर रहा था कि एकाएक तूफ़ान आ गया। बड़े ज़ोर से आँधी चली। बादल ऐसे गरजे कि तोबा! (कानों पर अँगुली रख लेता है) बिजली ने तो ग़ज़ब ढा दिया। एक बार ऐसी चमकी कि मानो प्रलय-काल है, और एकदम उन किवाड़ों पर टूट पड़ी। किवाड़ जल गए। फिर ऐसी वर्षा हुई कि वह पहाड़ी, जहाँ दीवाने-ख़ास बना था, गिर गई। अब तो उनका निशान भी नहीं बाक़ी रहा।"

उसने मुझे महमूद के जीवन की बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाएँ सुनाईं। मैं दिन-भर का थका हुआ था। सुनते-सुनते मुझे नींद आने लगी। मुझे ऊँघते देख उसने कहा—"आज सौभाग्य से एक इतिहास-प्रेमी अतिथि मिला है। मुझे भी इतिहास से दिलचस्पी है। अभी आपसे बहुत-सी बातें करनी हैं, सचेत होकर बैठिए।" साथ ही उसने नौकर को चाय लाने की आज्ञा दी। चाय आने पर उसने एक प्याला मुझे दिया, और मेरे मना करने पर भी चाय में शराब डाल-

दी। "इससे नींद खुल जायगी"—यह कहकर उसने भी शराव-मिली चाय पी ली। थोड़ी देर वाद मेरे नेत्र फिर बंद होने लगे। उसने फिर चाय का प्याला दिया, और शराव कुछ अधिक डाल दी। बातें होती रहीं। तीसरी बार फिर झोंके आने लगे। फिर वही चाय का प्याला और शराव। मैंने पी तो लिया, पर मुझसे बैठा न गया। मैंने कहा—"ख़ाँ साहब, आप आज्ञा दें, तो मैं इसी स्थान पर लेट जाऊँ। मैं विवश हूँ, मुझसे बैठा नहीं जाता।" उसने उत्तर दिया—"आपके सोने के लिये दूसरा कमरा है। आप इस कमरे में न सोवें; क्योंकि इस कमरे में भूतों का निवास है। वे रात को उपद्रव मचाते हैं। संभव है, आपको कष्ट हो। अगर आपका दिल कमज़ोर हुआ, तो उमर-भर के लिये रोगी बन जाइएगा।" मैंने कहा—"चाहे भूत हों या प्रेत, मुझसे तो हिला नहीं जाता।" यह कहकर मैं क़ालीन पर लेट गया।

ख़ाँ साहब—"मैं आपको फिर समझाता हूँ। आप दूसरे कमरे में विश्राम कीजिए। नहीं तो आप पछतायँगे।"

मैं—"आपने अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया। मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर यहाँ सोता हूँ। भूत क्या, भूतों के दादा भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

ख़ाँ साहब—"जैसी आपकी इच्छा।"

मैं—"आप कुछ चिंता न कीजिए।"

ख़ाँ साहब अपने कमरे में चले गए। मैंने उठकर द्वार बंद कर लिया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो मेरा ख़ून भीतर-ही-भीतर जमकर बरफ़ बना चाहता है। मैं थर-थर काँप रहा था। मैंने सोचा, यह क्या हुआ! मुझे याद आ गई। मैंने झट शराब की आलमारी खोली, और एक बोतल निकालकर सारी पी गया। जी कुछ ठिकाने हुआ। मगर ख़ून में अभी गरमी कम थी। दूसरी बोतल निकाली, और वह भी पी ली। अब मेरा ख़ून अपनी असली हालत में था। निश्चिंत होकर अब सो जाना चाहिए, यह सोचकर लेटा ही था कि मेरी दृष्टि अँगीठी पर पड़ी। आग धीमी हो चली थी। विचारा, सोने से पहले थोड़े कोयले डाल दूँ, जिसमें यह बुझ न जाय। उठा, कोयले आग में डाले। चिमटे से आग को ज़रा तेज़ कर दिया। लैंप अभी तक जल रहा था, उसे बुझाया। जब अपने स्थान पर जाकर लेटने लगा, तो क्या देखता हूँ कि दो युवा पठान मेरे तकिए के सहारे बैठे हैं, और बची हुई चाय और शराब को प्यालों में डाल-डालकर पी रहे हैं! मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। पहले तो मैंने उनको डपटना चाहा, पर उनकी आकृति ऐसी सुंदर थी, उनका वेश ऐसा मनोहर था कि उनके पास तक जाने का साहस न हुआ। दूर से उनकी बातें सुनने की इच्छा से मैं अलग ही बैठ गया। उन युवकों में वार्तालाप होने लगा—

एक—"भाई जान, महबूब ख़ाँ, सलाम-आलेकुम।"

महबूब—"वालेकुमस्सलाम अज़ीज़, मिज़ाज कैसा है?"

अज़ीज़—"आपका मिज़ाज? ओह! बहुत गरमी है, मेरे तो पसीना आ रहा है।"

महबूब—"असल में बात यह है कि यह क़िला बहुत छोटा है। दो के रहने के लिये काफ़ी जगह नहीं है।"

अज़ीज़—"अगर हम दोनों में से एक नीचे रहे, तो दूसरे के लिये काफ़ी जगह हो सकती है।"

महबूब—"नीचे कहाँ? तहख़ाने में?"

अज़ीज़—"नहीं। क़िले की नींव के नीचे, क़ब्रिस्तान के भीतर, ६ फ़ीट गहरी क़बर में।"

महबूब—(क्रोध से) "क्यों बे बेशऊर लड़के, अपने बड़े भाई के सामने ऐसी गुस्ताखी !"

अज़ीज़—(शांति से) भाई जान ! माफ़ कीजिए। पर यह मेरे सिर में धसी हुई ६ इंच लंबी लोहे की कील रह-रहकर मुझे आपके लासानी प्यार की याद दिला रही है। (उसने सिर से टोपी उतारी, तो मैंने देखा, चोटी के स्थान पर रुपए-भर चौड़ी कील गड़ी हुई है। देखकर मैं सुन्न-सा हो गया।)

महबूब—(मुसकिराते हुए) "पर तुम हो बड़े नाशुक्रगुज़ार ! कील ऐसी सफ़ाई से गाड़ी गई थी कि तुम्हें ज़रा तकलीफ़ नहीं हुई थी। मैंने सख़्त हुक्म दिया था कि कील गाड़ते वक़्त तुम्हें बिलकुल तकलीफ़ न होने पावे। सिर्फ़ तुम्हारी खातिर यह सब कुछ किया गया, और तुमने मेरा शुक्रिया तक अदा न किया।"

अज़ीज़—"क्या कहूँ, मेरा वार खाली गया। मैंने तो शराब में ज़हर मिला दिया था, पर साक़ी ने मेरे साथ दग़ा की, ऐन वक़्त पर आपको होशियार कर दिया; नहीं तो आप मेरी जगह क़बर में होते, और मेरा दिलरुबा बेगम से निकाह होता।"

महबूब—"अब भी दिलरुबा बेगम की चाह दिल से नहीं निकली ? खबरदार, अगर फिर उसका पाक नाम अपनी नापाक ज़बान पर लाया, तो ज़बान पकड़कर खींच लूँगा।"

अज़ीज़—"पर वह तो मुझे दिलोजान से चाहती थी। आपने उसे ज़बरदस्ती छीन लिया। उसका जिस्म भले ही आपके क़ब्ज़े में था, मगर उसका दिल तो मेरा ही था।"

महबूब—"झूठ, बिलकुल झूठ ! वह तो अपनी जान मेरे ऊपर कुरबान करती थी।"

अज़ीज़—"मगर मेरे मरने के बाद उस गुलबदन के चेहरे पर कभी मुसकिराहट नहीं आई।"

महबूब—"ग़रूर मत कर। उसके ग़म का सबब तेरी उल्फ़त न थी। तुझे शायद मालूम नहीं कि मेरे निकाह के थोड़ी देर बाद बलख के शाह ने मेरे क़िले पर हमला किया था। लड़ाई में मैं सख़्त घायल हुआ। कई महीने बीमार रहा। मेरी बीमारी के सबब से वह ग़मगीन रहा करती थी।"

अज़ीज़—"अच्छा तो आपके आराम होने पर भी वह खुश क्यों न हुई ?"

महबूब—"वह खुश तो ज़रूर थी, पर बाल-बच्चे की फ़िक्र से वह कुछ मुरझाई-सी रहती थी।"

अज़ीज़—"इसकी उसे फ़िक्र न थी। मेरे मरने से उसका दिल बुझ गया था। होना भी ऐसा ही चाहिए था। मेरे-जैसा चाहनेवाला दुनिया में न हुआ, न होगा।"

महबूब—"छोटा मुँह बड़ी बात ! अरे बेवक़ूफ़ तू मोहब्बत में मेरा मुक़ाबला करने की जुर्रत करता है ?"

अज़ीज़—"आप जाँच कर लें।"

महबूब—"यों ही सही। भला देखें, उसके नाम पर शराब के प्याले कौन ज़्यादह पीता है। जो ज़्यादह पिएगा, वही ज़्यादह होगा।"

अज़ीज़—बहुत अच्छा। (अज़ीज़ ने प्याला भरकर महबूब को दिया, और महबूब ने अज़ीज़ को)

अज़ीज़—"भाई जान, यह आपका जाम-ए-सेहत है।" (पी जाता है)

महबूब—"खुदा तुम्हें सलामत रक्खे। यह तुम्हारा जाम-ए-कामयाबी है।" (प्याला पी लेता है)

इसी प्रकार जाम भर-भरकर एक दूसरे को पिलाता रहा। एक दूसरे की सेहत या कामयाबी मनाता रहा। जब बहुत देर तक पीने के बाद किसी

पर कुछ असर न हुआ, तो अज़ीज़ ने जेब से एक पुड़िया निकाली, बड़ी फुरती से उसे प्याले में डालकर शराब भर दी, और महबूब को पीने को दी। महबूब ने ताड़ लिया। आँख बचाकर शराब फेंक दी। अज़ीज़ ने अब बेफ़िकरी के साथ छलकते हुए जाम पीने शुरू कर दिए। थोड़ी देर में वह चित लेट गया, सुध-बुध सब भूल गया। महबूब ने एक लंबी लोहे की कील निकाली। पास ही पड़ी हुई एक ईंट से कील को अज़ीज़ के सिर में ठोंक दिया। आग के धीमे-धीमे प्रकाश में उसका पीला और पतला चेहरा बहुत डरावना दिखाई देता था। बड़ी-बड़ी लाल आँखें ऐसी चमक रही थीं, मानो सबको भस्मसात् करनेवाली हैं। इस दुर्घटना को देखकर मैं थर-थर काँप रहा था। भागना चाहता था, पर पैर उठते ही न थे। मन ने कहा—हे भगवन्, अब कैसी होगी? कहीं मेरे भी सिर में तो कील नहीं ठुकेगी? मैं इसी विचार में पड़ा था कि ज़ोर से एकदम प्रकाश हुआ, फिर अँधेरा छा गया। यह आग के बुझने से पहले का अंतिम प्रकाश था, लेकिन उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, मानो बिजली चमकी। अँधेरे और भय से मेरा बुरा हाल था। मुझे ग़श-सा आने लगा। मैं बेसुध हो गया।

(३)

सूर्य भगवान् उदय हो चुके थे। उनका अरुण बालातप चारों तरफ़ फैल चुका था। कुछ आवाज़-सी कान में पड़ी। मैंने आँख खोली, तो देखा, दाऊदखाँ खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं। कहने लगे—"भई, खूब सोए! मैं दो घंटे से तुम्हारी राह देख रहा हूँ। कहो, रात कैसे गुज़री?" मैंने कहा—"कुछ न पूछो। जान बची, लाखों पाए।"

दाऊद—"मैंने तो आपसे पहले ही कह दिया था। पर आप ज़िद करके इसी कमरे में सोए। कुछ बताओ तो सही, रात को क्या हुआ? हम भी तो सुनें।"

मैंने सारा वृत्तांत कह सुनाया। सुनकर दाऊद ने करुणा-पूर्ण धीमे स्वर में कहा—"महमूद और अज़ीज़, जिनको तुमने रात को देखा है, मेरे पुरखे थे। दोनों सगे भाई थे। अज़ीज़ छोटा था, महमूद बड़ा। दोनों एक ही औरत पर आशिक़ थे। इन दोनों में बहुत वैर हो गया था। अज़ीज़ ने महमूद को ज़हर देने की कोशिश की थी। फिर महमूद के हाथों अज़ीज़ की बुरी मौत हुई। वह दुर्घटना, जो आपने रात को देखी है, सच्ची है, ऐतिहासिक है। चिमनी के ऊपर रक्खी हुई ये खोपड़ियाँ मेरे उन दोनों पुरखों की हैं। वह, जिसके सिर में सूराख़ है, अज़ीज़ की है, और दूसरी महमूद की। इनको मरे सौ बरस से ज़्यादह हो गए हैं, मगर अब भी इन खोपड़ियों में इतनी दुश्मनी है कि जो एक का मुँह दूसरे के सामने रक्खा जाय, तो दोनों झट अपना-अपना मुँह फेर लेती हैं।"

यह सुनकर मुझे अचंभा हुआ; पर विश्वास न आया। निर्जीव खोपड़ी कैसे अपना मुख फेर लेगी? मेरे भाव से दाऊदखाँ ताड़ गया कि मैं उसके कथन को सत्य नहीं समझता। बिना कुछ कहे, साक्षात् प्रमाण देने की इच्छा से, वह चिमनी के पास गया। खोपड़ी के ऊपर ढके हुए शीशे के ढकने को उठाया, मुझे दिखलाकर दोनों के मुख आमने-सामने कर दिए, और आप पीछे हटकर खड़ा हो गया। कैसा आश्चर्य! दोनों खोपड़ियों ने अपना-अपना मुख फेर लिया। अब तो दिन का समय था। सूर्य भगवान् का प्रकाश था। मैं जाग रहा था। सामने दाऊदखाँ खड़ा था।

स्वप्न नहीं हो सकता था। फिर ऐसी अविश्वास-योग्य बात पर कैसे विश्वास किया जाय? मैंने अच्छी तरह परीक्षा करनी चाही। मेरे कहने से दाऊदख़ाँ ने एक बार फिर खोपड़ियों के मुख को आमने-सामने रक्खा, और फिर देखते-देखते दोनों ने मुख फेर लिए। चकित होकर मैं देर तक टकटकी बाँधे रहा। अंत को हैरानी की हालत में लुटिया-डोर उठा वहाँ से भाग निकला। क़िले से दूर जाकर दम लिया। दाऊदख़ाँ पुकारता ही रहा।

लक्ष्मणस्वरूप

कसौली का कुत्ता-अस्पताल

परिचय

ईस्ट-इंडियन-रेलवे के कालका-स्टेशन से दाहने हाथ की ओर, उँचाई पर, लगभग तीन मील चलने के पश्चात्, एक पर्वत-माला दिखाई देती है। यह पर्वत-माला लगभग ३-४ हज़ार फ़ीट ऊँची है। इसी पर्वत-माला के दाहने भाग की ओर नाभा-राज्य और बाईं ओर पटियाला-राज्य है। इन दो राज्यों के मध्यवर्ती पर्वत-शिखरों पर एक हरित-वर्ण सुंदर नगर बसा हुआ दिखाई देता है। इसी नगर का नाम कसौली है।

पहले का इतिहास

कसौली का पहले का इतिहास बड़ा विचित्र है। ब्रिटिश-राज्य के अंतर्गत यह स्थान पर्वत-मालाओं से घिरा और उक्त दो देशी राज्यों के बीच बसा हुआ है। यह स्थान उक्त दोनों देशी राज्यों पर नियंत्रण रखने के लिये बसाया हुआ-सा जान पड़ता है। कसौली में एक फ़ौजी छावनी है, जहाँ गोरी पलटन रहा करती है। पहाड़ी स्थान होने के कारण अन्य स्थानों की पलटनें कभी-कभी यहाँ आ जाया करती हैं।

कसौली के वर्तमान निवासियों का कहना है कि यह नगर अधिक-से-अधिक सौ वर्ष का बसा हुआ है। पहले यहाँ एक साधारण-सी जंगली बस्ती थी, और नहीं भी थी। नहीं इसलिये कि केवल जंगली जाति के लोग ही उस समय यहाँ आ-जा सकते थे। सड़कें नहीं थीं; केवल पहाड़ी रास्ते थे। इसलिये वर्तमान सभ्यता से अपरिचित लोगों का ही आना-जाना होता था। जंगली लोग पर्वत-मालाओं और शिखरों पर वन्य फलों के लिये आया-जाया करते थे। सम्राट् औरंगज़ेब के समय में कुछ जातियाँ दिल्ली के आसपास से भगाई गईं। कहते हैं, वे यहीं आकर बस गईं। इस समय तीन प्रकार के आदमी कसौली में देखे जाते हैं। एक तो आदिम निवासी, दूसरे मुसलमान, और तीसरी श्रेणी में वे सब मिश्रित जातियाँ, जो किसी कारण से यहाँ आकर बस गई हैं। यहाँ के मूल-निवासी अभी तक पर्वत-मालाओं के अधोभाग में रहा करते हैं। बाक़ी कसौली-शिखर पर रहते हैं। मुसलमानों की संख्या इस मिश्रित जातिवालों के समूह से बहुत ही कम है।

कसौली-निवासियों की रहन-सहन

कसौली अंबाला (पंजाब)-ज़िले में है, अतएव यहाँ के निवासियों की रहन-सहन पंजाबियों की-सी है। स्त्री-पुरुष प्रायः देखने में पंजाबी जान पड़ते हैं। किंतु न तो बाहरी आगंतुकों पर आदिम निवासियों के आचार-विचार का कुछ प्रभाव पड़ा है, और न मूल-निवासियों पर नवागंतुक समालोचना का। अनुमान किया जाता है कि समयानुसार आचार-विचारों में हेर-फेर हो जायगा।

स्त्रियाँ बड़े-बड़े घाँघरे पहनती और पुरुषों की अपेक्षा मोटी होती हैं। लोगों का कहना है, यहाँ के जल-वायु में यह असर तो अवश्य है कि ऊपर से पुरुष कांतिमय जान पड़ता है, किंतु प्रायः उसमें पुरुष-शक्ति का अभाव रहता है। यहाँ के निवासी अपनी स्त्रियों के अधिक स्वच्छंद होने का यही कारण बतलाते हैं।

सामाजिक स्थिति

नाच-तमाशे और दंगल आदि देखने के लिये पुरुष और स्त्रियाँ, दोनों जाते हैं। यहाँ की स्त्रियाँ, सामाजिक मर्यादा को तिलांजलि देकर, अपने मनोनीत पर-पुरुषों से भी बातचीत कर सकती हैं। जान पड़ता है, यहाँ की स्त्रियों के ऊपर उनके पुरुषों का कोई अधिकार ही नहीं है। फ़ौजी छावनी होने के कारण कसौली में गोरों की
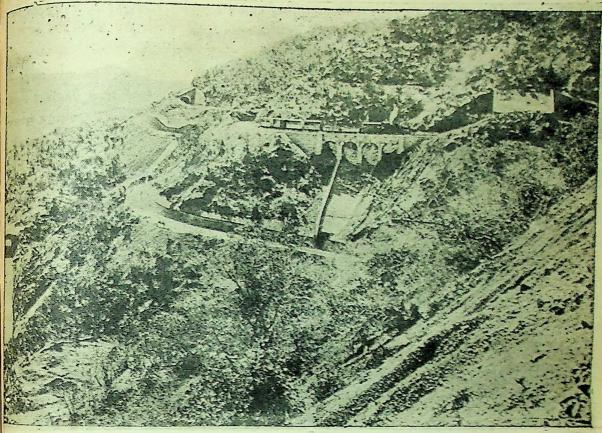
पर्वत पर रेल की चढ़ाई

अधिकता रहती है। अतएव यद्यपि चरित्र-हीन लोगों के लिये भी यहाँ दुराचार करना वर्जित है, तथापि नीचे की पर्वत-मालाएँ और कंदराएँ सदैव ऐसे निंद्य कार्यों के लिये निर्विघ्न और एकांत देखी जाती हैं। इसी कारण पर्वत-माला के अधोभाग में ऊपरी हिस्से की अपेक्षा अधिक व्यभिचार होता है। ऊपरी भाग में रहनेवाले स्त्री-पुरुष प्रायः देखने में सुंदर होते हैं; किंतु पर्वत-माला के नीचे रहनेवाले स्त्री-पुरुष देखने में काले रंग के होने पर भी उनके मुख पर एक विशेष प्रकार की कांति रहती है, जो यह प्रमाणित करती है कि ये ही यहाँ के मूल-निवासी हैं; और आज फ़ौजी छावनी में रहने के साधनों से विहीन होने के कारण अधोभाग में रहा करते हैं।

खान-पान

खान-पान सबका प्रायः मिश्रित-सा हो गया है। दोनों प्रकार के निवासियों में मांसाहार का अधिक प्रचार है; किंतु छुआछूत का विचार प्रायः कम देखने में आता है। पहाड़ी स्थान होने के कारण ऊपर के हिस्से में खेती-बारी नहीं हो सकती। इसीलिये नीचे के पहाड़ी स्थानों—पर्वत-माला के ढालू स्थानों—में शिलाखंड काट-काटकर खेती के लायक थोड़ी-बहुत ज़मीन बना ली गई है। इस प्रकार की भूमि से पैदा हुआ अन्न बहुत थोड़े आदमियों के लिये काफ़ी हो सकता है। खाने-पीने का सारा सामान प्रायः जंगली आदमी ही नीचे से ऊपर ले जाते हैं। जंगली फलों से भी गुज़र-बसर होती है; किंतु यह भोजन-सामग्री भी सुलभ नहीं है। जंगली लोग जो फल आदि ले आते हैं, उन पर चुंगी बैठाई जाती है। चुंगी आदि देने पर भी, बाहुल्य के कारण, जंगली सामान तो सस्ते मिलते हैं, पर अन्य खाद्य पदार्थ साधारणतः कुछ महँगे पड़ते हैं। पानी की बहुत बड़ी कमी है। फ़ौजी छावनी होने के कारण अब तो पानी नल के द्वारा ऊपर पहुँचा दिया गया है, किंतु पहले बावली, झरने और पानी के सोतों से ही काम चलता था। फिर भी पानी की इतनी क़िल्लत
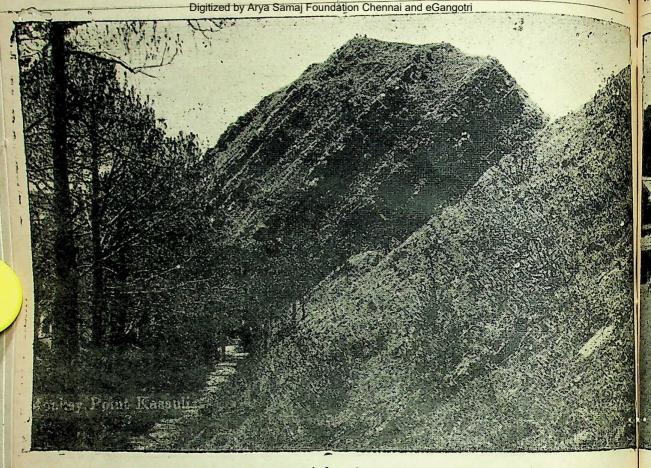
मंकी-प्वाइंट

है कि रात-दिन में केवल दो घंटे के लिये ही पानी की कल खुलती है, और इसी बीच में सारे शहर के निवासियों को अपने ख़र्च के लिये काफ़ी पानी रख छोड़ने का प्रबंध करना पड़ता है। पानी इतना क़ीमती समझा जाता है कि खाने के लिये माँगने से शायद भोजन मिल भी जाय, पर पानी देने में दाता को बड़ी हिचकिचाहट होती है। जो यात्री कसौली में पानी की कमी का रहस्य नहीं जानते, उन्हें पहले कष्ट उठाना पड़ता है।

ऋतु और जल-वायु

कसौली का जल-वायु प्रायः सम-शीतोष्ण है। ऑक्टोबर से फ़रवरी तक बर्फ़ गिरती है, और ग्रीष्म-ऋतु के दो महीने छोड़कर अक्सर जल-वृष्टि होती रहती है। वर्षा का यह हाल है कि आकाश देखकर जल-वृष्टि का अनुमान नहीं किया जा सकता; बल्कि जब कभी गरमी अधिक पड़ती है, तभी तराई से बादल के रूप में भाप उड़ती हुई दिखाई देती है। वायु-मंडल ठंडा हो जाता है, और उसी समय जल-वृष्टि के आसार नज़र आने लगते हैं।

प्रसिद्धि का कारण

यों तो फ़ौजी काम करनेवालों और पंजाब तथा युक्त-प्रांत के पहाड़ी ज़िलों में रहनेवालों के लिये कसौली की प्रसिद्धि नई नहीं है, किंतु इसकी प्रसिद्धि का सबसे भारी कारण इसका पास्टर-इंस्टीट्यूट है। पास्टर-इंस्टीट्यूट एक अस्पताल का नाम है। इस अस्पताल में कुत्ते, बंदर, स्यार, जंगली सुअर तथा अन्य ज़हरीले जानवर आदि के काटे का इलाज होता है। पहाड़ी ज़मीन काटकर यह अस्पताल बनाया गया है। इसमें भारत के धनी-मानी सज्जनों का भी धन लगा है। सन् १९०० ई० में यह अस्पताल खुला था। तब से आज तक इस अस्पताल में प्रतिवर्ष जितने मरीज़ आए, उनका ब्योरा इस प्रकार है—

ईसवी सन्	रोगियों की संख्या
१९००—०१	३२१
१९०१—०२	५४३
१९०२—०३	५८४

पास्टर-इंस्टीटयूट

१९०३—०४	६१२
१९०४—०५	८७७
१९०५—०६	१,१४५
१९०६—०७	१,३०८
अगस्त १९०७ से दिसंबर तक	५१८
१९०८	१,३८९
१९०९	१,९३७
१९१०	२,०७३
१९११	२,२६८
१९१२	३,५४८
१९१३	३,९०८
१९१४	४,५८५
१९१५	५,०४६
१९१६	५,३६०
१९१७	५,२०६
१९१८	५,६८०
१९१९	[illegible]
१९२०	७,५०६
१९२१	७,००४
१९२२	६,६७३
	७४,६७३

इन बाईस वर्षों में इतने रोगियों के लिये कितना ख़र्च किया गया, यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है; पर इसमें संदेह नहीं कि ख़र्च काफ़ी हुआ होगा। अब, ३० जून, १९२२ को, सन् १९२२ की रिपोर्ट के अनुसार, ३ लाख ६७ हज़ार ५७५ रुपए १२ आने ४ पाई की रक़म रोकड़ में बाक़ी है। यह अस्पताल ख़ासकर फ़ौजी अंगरेज़ों के लिये बनाया गया था। इसलिये भारत-सरकार की ओर से काफ़ी चंदा दिया जाता है। परंतु अब तो प्रांतीय सरकारों की ओर से भी सहायता की रक़में मिलती हैं। युक्त-प्रांत, पंजाब, बंबई, मध्य-प्रांत, बिहार-उड़ीसा आदि प्रांतों की सरकारों तथा ख़ैरपूर, कूचबिहार, कपूरथला, नाहन, मारवाड़ आदि राज्यों के अतिरिक्त [illegible] रेलवे की ओर से भी सहा-

यता मिलती है। लगभग पौने दो सौ म्युनिसिपलिटियों और ज़िला-बोर्डों की ओर से भी इस संस्था को सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार यह लोकोपकारिणी संस्था चल रही है। आजकल मेजर स्टिवेंसन इसके प्रधान डॉक्टर हैं। मि० लूनेरो और डॉक्टर लाहिड़ी भी इस अस्पताल में काम करते हैं।

रोगियों के लिये

जिन लोगों को कुत्ता, स्यार और जंगली सुअर अथवा कोई पागल जंतु काटे, उन्हें मजिस्ट्रेट के यहाँ दरख़्वास्त देने पर उसकी आज्ञा से कसौली जाने के लिये मुफ़्त पास मिलता है। जो लोग सरकारी कर्मचारी हैं, और जिनकी मासिक आय १००) माहवार से कम है, उन्हें सरकार की ओर से आने-जाने का ख़र्च मिलता है; किंतु अस्पताल में भोजन के लिये अलग भत्ता नहीं दिया जाता। इसके विपरीत छोटी तनख़ाहवालों को रेल का किराया और ख़ुराक का ख़र्च मिलता है। जो सरकारी कर्मचारी नहीं हैं, उन्हें मजिस्ट्रेट की सिफ़ारिश पर किराया और खाने का ख़र्च भी मिलता है। दूसरे प्रकार के रोगी भीतरी मरीज़ों (Indoor Patients) में गिने जाते हैं; पर वे स्थान न होने पर ही अस्पताल में रक्खे जाते हैं। कुत्ते या सुअर के काटने पर चौदह दिन के अंदर जितनी जल्दी जो लोग पहुँच जाते हैं, उतनी ही जल्दी उनके नीरोग होने की संभावना रहती है। इसलिये कुत्ते आदि के काटने के बाद शीघ्रातिशीघ्र कसौली पहुँच जाने का प्रयत्न करना चाहिए। अस्पताल के डॉक्टरों का कहना है कि उन विषाक्त जीवों का विष दो मास के भीतर तक असर करता है; परंतु असर होने पर फिर आदमी नहीं बचता। कुत्ते या सुअर का काटा हुआ आदमी यदि दो महीने के बाद भी जीता रहे, तो समझना चाहिए कि अब ज़हर का असर, और अस्पताल में इलाज कराने की ज़रूरत भी, नहीं है। किंतु अस्पताल के डॉक्टरों का यह दावा है कि विषाक्त-से-विषाक्त जंतु का काटा हुआ आदमी यदि १४ दिनों के अंदर आ जाय, तो बच सकता है। कुत्ते आदि जंतुओं का ज़हर फैलने पर मनुष्य का दिमाग़ बिलकुल उसी पगले जानवर के दिमाग़ की तरह हो जाता है। ऐसी स्थिति में ज़हर पहुँचने के पहले ही रोगी को अस्पताल पहुँच जाना चाहिए। कसौली जानेवाले रोगियों को गर्मी के दिनों में तो मामूली जाड़े का सामान और जाड़े के दिनों में सरदी रफ़ा करने का ख़ासा सामान अपने साथ ले जाना चाहिए; नहीं तो बड़ा कष्ट होता है। जो लोग अस्पताल में रहते हैं, उन्हें ओढ़ने-बिछाने के लिये कुछ कपड़े और खाने-पकाने के लिये कुछ बर्तन आदि मिल भी जाते हैं, पर जो लोग अस्पताल में भरती नहीं हो सकते, उन्हें अपने साथ काफ़ी कपड़े और बर्तन ले जाने चाहिए। जो अस्पताल में भरती न हो सकें, उन्हें सबसे पहले कालीचरण की धर्मशाला में पहुँचना चाहिए। यदि वहाँ भी स्थान ख़ाली न हो, तो फिर किराए का मकान लेना चाहिए। अपनी स्थिति के अनुसार, १०) महीने से ३०) महीने तक का, मकान किराए पर मिल सकता है; किंतु सब प्रकार के रोगियों को वहाँ जाते ही सबसे पहले पानी की चिंता करनी चाहिए। अन्यथा पानी के लिये दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है!

उपचार

जिनके कमर से ऊपर के हिस्से में विषाक्त जंतु काटता है, उनकी अवस्था साधारण रोगियों की अपेक्षा अधिक भयंकर और नाज़ुक होती है। काटा हुआ भाग मस्तिष्क के जितना समीप होता है, उतना ही अधिक शीघ्रता से विष दिमाग़ में पहुँच जाता है। अतएव कमर से ऊपर के हिस्सों में विषाक्त जंतुओं के काटे हुए रोगियों की ओर साधारण रोगियों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है। उन्हें अस्पताल में एक लाल टिकट मिलता है; दूसरे साधारण रोगियों को नहीं। लाल टिकटवालों की पुकार ठीक दस बजे, अस्पताल खुलते ही, होती है। उसके बाद जितने अधिक दिन का मरीज़ हो, उसी हिसाब से नंबर लगता है। जिन रोगियों के बदन पर घाव होते हैं, उनकी मरहम-पट्टी तो अलग की ही जाती है, पर सब रोगियों के समान उनके टीका भी लगाया जाता है। प्रथम श्रेणी के रोगियों को आवश्यकतानुसार प्रतिदिन दो से चार इंजेक्शन (टीका) तक दिए जाते हैं; पर साधारणतः प्रत्येक रोगी को रोज़ दो ही टीके, १३-१४ दिन तक, लगवाने पड़ते हैं। इस टीके की क्रिया से रोगी के रुधिर में विष मिश्रित कर दिया जाता है। वह विष कुत्ते, चूहे, सर्प आदि जंतुओं से निकाला जाता है। जब वह विष डॉक्टरी मत के अनुसार इस योग्य हो जाता है कि शरीर में उपग्र कुत्ते या जंगली जंतुओं के विष की मार सके,

तभी इंजेक्शन में दिया जाता है। कसौली में ही एक अलग वैज्ञानिक एवं रासायनिक संस्था है, जो रिसर्च-इंस्टीट्यूट के नाम से प्रसिद्ध है। इसी संस्था में इंजेक्शन-हानि की ही अधिक संभावना रहती है। इसलिये पास्टर-इंस्टीट्यूट में इलाज करानेवालों को सबसे पहले इन नियमों के पालन का भी ध्यान रखना चाहिए।
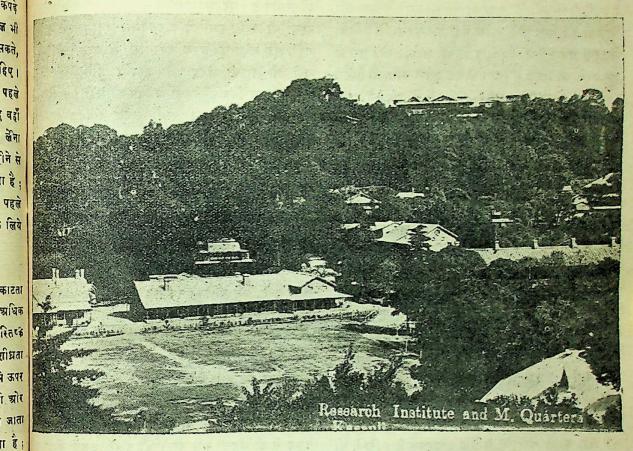
रिसर्च-इंस्टीटयूट और एम्० कार्टर्स

वाला ज़हर तैयार किया जाता है। टीका लगवाने के बाद सब रोगियों की हाज़िरी होती है। जो रोगी उस समय उपस्थित न रहे, अथवा टीका लगवाने के बाद चला जाय, उसे १४ दिन की जगह कुछ दिन और ठहरना पड़ता है; पर यह नियम बहुधा अमल में नहीं लाया जाता। टीके के १४ दिनों में, और उसके १० दिन बाद तक भी, गरम चीज़ें खाने की मनाही रहती है। शराब, Alcohol (निर्मल मदिरा) तथा मांस आदि भी वर्जित हैं। इन चीज़ों के सेवन से रोगी को गरमी मालूम होने लगती है। यहाँ तक कि वह कभी-कभी तो बहुत ही बेचैन हो जाता है। इसीलिये गरम पदार्थों का सेवन निषिद्ध है। इन निषेधों में व्यायाम करना भी शामिल है। डॉक्टरों का मत है कि उन दिनों व्यायाम करने से रोगी को लाभ के बदले

त्रुटियाँ

अस्पताल का प्रबंध जहाँ इतना अच्छा है, और दूर-दूर से लोग इलाज कराने के लिये आते हैं, वहाँ कुछ त्रुटियाँ भी हैं। इस अस्पताल में योरपियन रोगियों के बैठने के लिये तो अस्पताल का एक ख़ास सुंदर सुसज्जित कमरा रहता है, जो कुर्सियों और उपन्यासों से ख़ूब सजा हुआ है; किंतु बेचारे हिंदोस्तानियों के बैठने को सिर्फ़ बाहर का बरामदा है। हिंदोस्तानियों की अधिक संख्या होने के कारण उन बेचारों को खुले मैदान अथवा बरामदे में किसी प्रकार समय काटना पड़ता है। जैसे रेलवे के तीसरे दर्जे के डब्बों में भेड़िया-धसान रहता है, ठीक वैसे ही यहाँ इलाज कराने के लिये आनेवाले हिंदोस्तानियों की दुर्दशा होती है। योरपियन रोगी जिस

बड़े कमरे में बैठते हैं, वहाँ हिंदोस्तानियों का कदाचित् ही प्रवेश हो पाता है। अवश्य ही यह खेद और लज्जा की बात है। पास्टर-इंस्टीट्यूट को हिंदोस्तान के देशी राज्यों, धनी-मानियों तथा प्रांतीय सरकारों से सहायता मिलती है। अतः कोई कारण नहीं देख पड़ता कि रोगियों में इस प्रकार का भेद-भाव माना जाय, और उसको दूर करने का प्रयत्न न किया जाय। दूसरी बात जो विशेष ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि स्त्रियों के भी इन्हीं डॉक्टरों के हाथों टीका लगवाना पड़ता है। जब स्त्रियों को कुत्ता या जंगली जंतु काटते ही हैं, और वे इलाज कराने भी जाती हैं, तब यह अत्यंत हास्यास्पद जान पड़ता है कि जो स्त्रियाँ लज्जावश पुरुषों के सामने सिर खोलने में भी संकोच करती हों, उन्हें अपना पेट खोलकर डॉक्टरों से टीके लगवाने पड़ें, और एक दिन नहीं, लगातार चौदह दिन तक! यह बात भी नहीं है कि लेडी डॉक्टर रखने से अधिक ख़र्च हो। जिस संस्था में एक रोगी पर सैकड़ों रुपए ख़र्च किए जाते हैं, वह संस्था बहुत आसानी से फ़ी रोगी एक रुपया अधिक ख़र्च कर सकती है। पास्टर-इंस्टीट्यूट के सभापति, डाइरेक्टर जनरल तथा सेंट्रल कमेटी को इस ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा अत्यंत आवश्यक है, और यह संस्था इस कार्य को आसानी से कर सकती है। अस्पताल-सरीखे सार्वजनिक गमनागमन के स्थान में तो स्त्रियों की मर्यादा की रक्षा करना और भी अधिक आवश्यक है। स्त्रियों को इसके लिये क्या कहा जाय। वे तो प्राणों के मोह से लज्जा के घूँट पीकर टीके लगवाती हैं, और जब तक लेडी डॉक्टर की नियुक्ति नहीं होती, तब तक इसके लिये विवश रहेंगी। संस्था के संचालकों को इस ओर तो बहुत पहले ही ध्यान देना चाहिए था। सुनने में आया है, जब डॉक्टर यह जान लेते हैं कि रोगी के बचने की संभावना बिलकुल नहीं है, और वह कुछ समय में मर जायगा, तब उसे विष की अतिरिक्त डोज़ (मात्रा=ख़ूराक) देकर ख़तम कर देते हैं। यह ऐसी किंवदंती है, जो प्रायः अस्पताल के रोगियों के मुँह से ही सुनी जाती है। परंतु इस पर सहसा विश्वास करने को जी नहीं चाहता। डॉक्टर भला अपने सिर यह कलंक क्यों लेंगे? मरणासन्न रोगी का काम तमाम करने से डॉक्टरों को क्या लाभ?

सावधान

अधिकांश रोगी केवल संदेह पर आया करते हैं। यह सत्य है कि संदेह भी एक प्रकार से मृत्यु के ही समान है; पर ऐसी स्थिति में संदेह उत्पन्न हुए बिना रहता भी नहीं। इसलिये काटनेवाला जंतु पागल था या नहीं, यह संदेह दूर करके अस्पताल में आना चाहिए। नहीं तो ख़ाली संदेह की औषधि होती है—कुत्ते अथवा अन्य विषाक्त जंतुओं के विष की नहीं। अस्पताल में प्रायः प्रतिशत अस्सी रोगी केवल संदेहवाले रोगी होते हैं, जो पहले से यह निश्चित नहीं कर लेते कि काटनेवाला जंतु वास्तव में पागल था या नहीं। सियार, सुअर आदि जंतु जब विषैले हो जाते हैं, तभी काटते हैं। किंतु कुत्ता तो विना पागल हुए भी काट लेता है, अतः केवल संदेहवश ऐसे कुत्तों के काट लेने पर इतना कष्ट उठाना ठीक नहीं है। कुत्ते आदि के काटने पर उनके पागल होने के बारे में निश्चय करने का उपाय यह है कि जो कुत्ता काटे, उसे बाँधकर रक्खो। पागल कुत्ता अधिक-से-अधिक १० दिन तक जीवित रह सकता है। इसके बाद भी यदि वह जीवित रहे, तो समझ लो कि कुत्ता पागल नहीं है, और काटे का इलाज करना बिलकुल व्यर्थ है—नाहक़ का कष्ट है। पागल कुत्ता कुछ खाता-पीता नहीं, और सदा काटने को दौड़ा करता है। यह भी उसके पागलपन की पहचान है। सुअर आदि जंगली जंतु एक तो पकड़ में ही बहुत कम आते हैं, दूसरे उनके काटे हुए रोगी मुशकिल से कहीं १०० में १० आते हैं। इसलिये कुत्ता ही अधिकतर लोगों को इस अस्पताल में भेजता है, और कुत्ते के पागल होने या न होने की जानकारी बड़ी आसानी से हो सकती है।

अत्यंत आवश्यक प्रश्न

यह सब होते हुए भी एक अत्यंत आवश्यक प्रश्न यह उठता है कि कसौली का पास्टर-इंस्टीट्यूट खुलने के पहले क्या भारत में कुत्ते न थे? यदि थे, तो क्या वे पागल होते ही न थे? क्या पागल कुत्तों के काटे हुए अथवा पागल विषाक्त जंतुओं के काटे हुए लोग मर ही जाते थे? यह एक विकट प्रश्न है। यह तो मानी हुई बात है कि इस अस्पताल के खुलने से पहले भी कुत्ते इस देश में थे। महाभारत से जान पड़ता है कि राजा युधिष्ठिर के साथ एक कुत्ता हिमालय-पर्वत तक गया था। जब
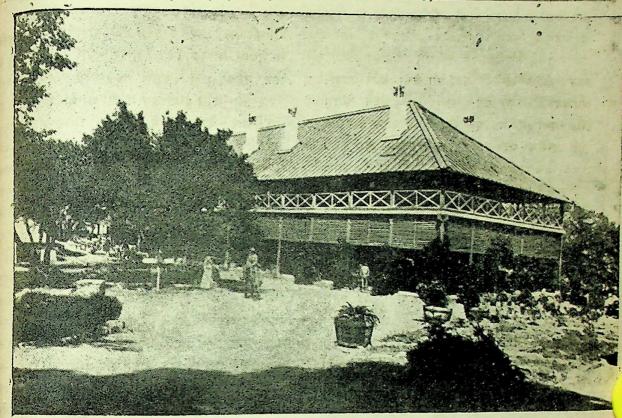
स्टेशन-हास्पिटल

कुत्ते पहले भी इस देश में थे ही, तो उनका पागल होना और लोगों को काटना भी (थोड़ी ही संख्या में सही) संभव है। तो क्या वे सब-के-सब मर ही जाते थे, अथवा कहीं उनका इलाज भी होता था? इसका उत्तर कुछ और ही है। हम भारतवासियों के हृदय से अपना, अपनी क्षमता का विश्वास उठ गया है। पाश्चात्य सभ्यता के रंग में इस देश के लोग इतना अधिक रँग गए हैं कि उसके सिवा अपनी ही सभ्यता पर उनको विश्वास नहीं होता। जहाँ ज़रा भी सिर में दर्द हुआ कि बस डॉक्टरी इलाज की शरण ली। मानो संसार से आयुर्वेद का लोप ही हो गया है! अपनी शक्ति और चिकित्सा से विश्वास उठ जाने के कारण ही आज कसौली के अस्पताल में १०० पीछे ८० रोगी संदेहवाले दिखाई देते हैं। ऐसी नाज़ुक परिस्थिति में आयुर्वेद के प्रेमियों का भी यह कर्तव्य है कि लोगों के विश्वास को अपने ऊपर फिर से स्थापित करें। दस-पाँच विशेषज्ञों की एक कमेटी बैठकर इस बात का विचार करे कि लोगों के हृदय से पाश्चात्य सभ्यता पर जमा हुआ विश्वास किस प्रकार हटाकर उन्हें अपनी ओर लाया जा सकता है, और वास्तव में विषाक्त जंतुओं के काटे का इलाज हमारे शास्त्रों में है या नहीं। यदि है, तो सार्वजनिक प्राण-रक्षा, राष्ट्र-रक्षा और आयुर्वेद की मर्यादा-रक्षा के लिये वे उसे सर्वसाधारण पर प्रकट करें। वैद्यों को यह सूचना दे दें कि ऐसे रोगियों का उपचार केवल इसी विधान के अनुकूल किया जा सकता है। वैद्यों को भी चाहिए कि बिना किसी द्वेष-भाव के वे परस्पर एक दूसरे को उस उपचार से परिचय करा दें, और सर्वसाधारण में अपने गुण का प्रचार तथा इस प्रकार अपनी सभ्यता की रक्षा करें। यह प्रश्न यदि रोज़ी कमाने का नहीं, लोकोपकार का समझा जाय, तो अधिक अच्छा हो। किंतु उपचार तभी अमल में लाया जाय, जब स्वयं आयुर्वेद के पंडितों को इस बात का विश्वास हो जाय कि उनकी चिकित्सा कसौली के अस्पताल के टीके से भी अधिक गुणकारी है, अन्यथा नहीं।

मातादीन शुक्ल

आईनए-हिंद

हम आगे क्या होनेवाले हैं ?

क़ौम की आँखों से परदा-सा लगा हटने अब ;
श्रीतिलकजी जो डटे, लोग लगे डटने अब।
ख़ौफ़े[1]-बेजा था जो दिल में वो लगा घटने अब ;
देखी हालत जो ये, ग़ैरत से लगे कटने अब।
जान आई, हुई फिर क़ौम में जुंबिश[2] पैदा ;
और आज़ादी की फिर से हुई ख़्वाहिश[3] पैदा।
मुल्क जब नश्शे में आज़ादी के सरशार[4] हुआ ;
आगे गाँधीजी बढ़े, प्रेम का अवतार हुआ।
दिल में फिर पैदा स्वदेशी के लिये प्यार हुआ ;
तारे-ज़र[5] फिर हमें चर्ख़े का कता तार हुआ।
सिक्का मलमल की जगह बैठ गया ख़ादी का ;
हर तरफ़ शोर मचा मुल्क में आज़ादी का।
देवता से भी ज़ियादा हुई इज़्ज़त उनकी ;
कोने-कोने में जहाँ के हुई शोहरत[6] उनकी।
शांति और प्रेम-भरी हाय, वो मूरत उनकी ;
राज ग़ैरों का है, पर दिल में हुकूमत उनकी।
वह जो सरदार हुए, क़ाफ़िला-सालार[7] हुए ;
वार जितने हुए सरकार के, बेकार हुए।
पहले थी कौंसिलों में सिर्फ़ सवालात की धूम ;
अब हुई काम की धूम, और कमालात[8] की धूम।
मच गई मुल्क में वह तर्के-मवालात[9] की धूम ;
जेल की धूम मची, और हवालात की धूम।
नौजवाँ मुल्क के चुन-चुन के गिरफ़्तार हुए ;
क़ौम के वास्ते सर देने को तैयार हुए।
मुत्तफ़िक़[10] होके मुक़ाबिल में जुज़ो कुल आए ;
कोई भी ईज़ा[11] हो, मरने के लिये तुल आए।
होंगे 'आज़ाद' यही करते हुए गुल आए ;
फूल काँटों में खिंचे, दाम[12] में बुलबुल आए।
पाँव रखना हुआ दुश्वार, हुआ वह रेला ;
लग गया जेल में याराने-वतन[13] का मेला।

१. व्यर्थ भय। २. गति। ३. इच्छा। ४. मत्त। ५. सोने का तार। ६. प्रसिद्धि। ७. समूहपति। ८. कौशल। ९. असहयोग। १०. सहमत। ११. कष्ट। १२. जाल। १३. देश-प्रेमी।

क़ौम पर कर दिए क़ुर्बान दिलो-जाँ जिसने ;
दिल में पैदा किए आज़ादी के अरमाँ जिसने।
आत्मबल से दी पलट गर्दिशे[1]-दौराँ जिसने ;
और मुहैया किए बेदारी[3] के सामाँ जिसने।
क़ैद में ले गई उस गाँधी को नौकरशाही ;
मादरे-हिंद तड़पती रही मिस्ले-माही[4]।
आसमाँ राह में फिर काँटे नए बोने लगा ;
जिसका अंदेशा था, हर सिम्त[5] वही होने लगा।
मुल्क को सोने की आदत थी, वो फिर सोने लगा ;
देखनेवालों का दिल देख के यह रोने लगा।
संगठन ही रहा वह, और न दुरुस्ती बाक़ी ;
चुस्ती जाती रही वह, रह गई सुस्ती बाक़ी।
है तो विश्वास, मगर है नहीं हिम्मत बाक़ी ;
शर्म कुछ है भी जो दिल में, कहाँ ग़ैरत बाक़ी।
काम तो कुछ नहीं, हाँ, सिर्फ़ है हुज्जत बाक़ी ;
और आपस में है, अफ़सोस, कुदूरत[6] बाक़ी।
दर्द वैसा ही रहा, कोई भी दरमाँ[7] न हुआ ;
है ग़ुलामी वही, आज़ादी का सामाँ न हुआ।
हो जो ग़ैरत, उठें भारत के दुलारे, उट्ठें ;
मुल्क की जान उठें, क़ौम के प्यारे उट्ठें।
अब हैं ले-दे के यही अपने सहारे उट्ठें ;
जोश के शोले न ठंडे हों, शरारे[9] उट्ठें।
फिर बुझाए न बुझे, आग लगा दें ऐसी ;
एक हो सबकी लगन, लाग लगा दें ऐसी।
देर है किस लिये, गर आते हों आएँ मिलकर ;
'हाथ' अपने वो ज़माने को दिखाएँ मिलकर।
हक़ मिटाते हैं जो वह, उनको मिटाएँ मिलकर ;
भाई भाई से मिलें माओं से माएँ मिलकर।
हक़ पै अड़ जायँ फिर ऐसे कि हटाए न हटें ;
हौसिले ऐसे बढ़ें दिल के, घटाए न घटें।
देगी मुँह-माँगी मुरादें[10] ये सिदाक़त[11] हमको ;
फिर हटा सकती नहीं कोई भी ताक़त हमको।
होगी मालूम मुसीबत न मुसीबत हमको ;
तब नज़र आएगी आज़ादी की सूरत हमको।

१. संसार-चक्र। २. एकत्र। ३. जागृति। ४. मछली। ५. ओर। ६. मालिन्य। ७. इलाज, चिकित्सा। ८. लपटें। ९. चिनगारियाँ। १०. मनोरथ। ११. सत्य।

खून से अपने सिंचे, खाद भी की खादी की ;
तब कहीं फूले-फले बेल ये आज़ादी की ।
देखना, नाम बुज़ुर्गों का मिटाना न कहीं ;
पैर आगे जो बढ़ा है, वो हटाना न कहीं ।
हौसिला दिल का बढ़ा है, तो घटाना न कहीं ;
तुम पै है सबकी नज़र, नाक कटाना न कहीं ।
मादरे-हिंद के फ़रज़ंदे[1]-दिलावर तुम हो ;
क़ौमे-बदबख़्त के तो बख़्त[2] के अख़्तर[3] तुम हो ।
ज़िंदगी मुफ़्त न अब क़ौम की बरबाद करो ;
शान वह अपने बुज़ुर्गों की ज़रा याद करो ।
अपनी उजड़ी हुई बस्ती को फिर आबाद करो ;
सुर्ख़रू दुनिया में हो, मुल्क को आज़ाद करो ।
दूर हो रंजे-गुलामी, न मुसीबत फिर हो ;
मुल्क अपना है, न क्यों अपनी हुकूमत फिर हो ।
क़ब्ज़े में जिनके कभी तख़्त रहें, ताज रहें ;
इल्मो-फ़न में भी ज़माने के जो सरताज रहें ।
वह गुलामी करें, और ग़ैरों के मोहताज रहें ;
नित नए ज़ुल्म बने कोढ़ में यों खाज रहें ।
जिस जगह जायँ, वहीं रोज़ हो ज़िल्लत अपनी ;
हाय ! मिट्टी में मिले इस तरह इज़्ज़त अपनी ।
तेग़े-[4]हिम्मत में हों जौहर जो, दिखाएँ अब तो ;
हस्ती[5] अपनी भी ज़माने को जताएँ अब तो ।
'मातरम् बंदे' की गूँज उट्ठे सदाएँ[6] अब तो ;
तान[7] आज़ादी की घर-घर में सुनाएँ अब तो ।
जोश दिल में हो भरा, प्रेम से हों तर आँखें ;
मारे हैरत के फ़लक़[8] की भी हों पत्थर आँखें ।
तब तो हम ज़ुल्म को दुनिया से उठाकर मानें ;
बेबसी और गुलामी को मिटाकर मानें ।
सिक्का आज़ादी का दुनिया में बिठाकर मानें ;
ज़ोर हिम्मत का, सदाक़त का दिखाकर मानें ।
दिल में हिंसा की जगह लुत्फ़ो-मुहब्बत भर दें ;
मादरे-हिंद का फिर और ही नक़्शा कर दें ।
शान यक चेहरे पै हो, ताज हो सर पर बाँका ;
बिजली की-सी हो चमक उसके बदन से पैदा ।
हाथ में उसके 'त्रिशूल', और हो हँसता चेहरा ;
पीठ पर हाथ धरे प्रेम से कहकर बेटा—
"जाऊँ क़ुर्बान मैं, क़ुर्बानी से दिलशाद हुई ;
हिम्मतें थीं ये तुम्हारी कि मैं आज़ाद हुई ।"

"त्रिशूल"

१. वीर पुत्र । २. भाग्य । ३. तारे । ४. साहस-खड्ग । ५. अस्तित्व । ६. शब्द । ७. आश्चर्य । ८. आकाश ।

संस्कृत-साहित्य में काम-शास्त्र का स्थान
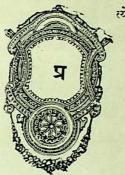
प्रत्येक समय में मनुष्य अर्थ के पश्चात् काम की प्राप्ति के लिये प्रचंड उद्योग करता है । जब से सृष्टि बनी है, तभी से तत्त्ववेत्ता लोग काम के वास्तविक स्वरूप प्रकट करने का यत्न करते आए हैं; और जब तक यह संसार है, प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति के विचारशील मनुष्य काम की समस्या को सुलझाने की चेष्टा करते रहेंगे । सभी जातियों के कवि कामदेव के क्षण-क्षण में बदलते रहनेवाले विश्व-विमोहन रूपों का वर्णन करते नहीं थकते । कहें, तो कह सकते हैं कि काम वह वस्तु है, जिसके विना मनुष्य का जीवन नीरस और संसार का अस्तित्व असंभव है । उसके विना कवियों के काव्य फीके, लेखकों के लेख नीरस, और संसार के व्यवहार शुष्क हैं । कामदेव का स्थान मानवीय आत्मा का गंभीरतम प्रदेश है । इसके स्वरूप को वही मनुष्य समझ सकता है, जिसने आत्मज्ञान के अथाह सागर में गहरी डुबकी लगाई हो । विषय-वासना में लिप्त और सांसारिक झगड़े-झमेलों में फँसे हुए व्यक्ति इसका यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते । इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि इसका जैसा अच्छा मनन हमारे पूर्वजों ने किया, वैसा संसार की अन्य कोई भी जाति नहीं कर सकती । सच तो यह है कि काव्य, संगीत, योग, वेदांत, अध्यात्म-विद्या, और काम-शास्त्र आदि सूक्ष्म विषयों के मनन तथा विकास के लिये जैसी अनुकूल अवस्था प्राचीन भारत में मौजूद थी, वैसी भूमंडल के किसी अन्य भाग में न थी । ललित कलाओं और सूक्ष्म विषयों का विकास तभी हो सकता है, जब देश में हर तरह से निश्चिंतता और सुख हो, खान-पान की सामग्री प्रचुर हो, बाह्य आक्रमणों का

१. प्रसन्न-चित्त ।

भय न हो, और सर्वत्र पूर्ण शांति हो। जिस देश में दिन-भर लहू-पसीना एक करने पर भी पेट-भर भोजन न प्राप्त हो सकता हो, जहाँ रेत और पत्थरों के सिवा कुछ न दिखाई पड़ता हो, जहाँ पानी के लिये भी लोग तरसते हों, और जहाँ लूट-खसोट पर ही जनता का निर्वाह हो, वहाँ भला मनुष्यों को ऐसी कलाओं के विकास का अवसर कैसे मिल सकता है? लुहार की भट्टी के सामने बैठकर कविता करना कठिन है। भूखों से भक्ति नहीं हो सकती। भारत में दूध-दही की नदियाँ बहती थीं; फल-फूल की कुछ कमी न थी; भूमि उर्वरा थी; गंगा और यमुना-जैसी नदियाँ अपने पवित्र प्रवाह से यहाँ की पृथ्वी को सींचती थीं। हिमालय और विंध्याचल के नैसर्गिक दृश्य मनुष्य की आत्मा को एकाग्र करने में भारी सहायता देते थे। काश्मीर भूतल पर नंदन वन का नमूना था। आर्यों का धर्म पर अवलंबित निष्कंटक राज्य था। बाहर से किसी शत्रु के आक्रमण की बहुत कम संभावना थी। थोड़ा-सा परिश्रम करने से ही पेट का प्रश्न हल हो जाता था। ऐसी सुखद परिस्थिति मिलने के कारण ही भारतीय लोग तपोवनों में बैठकर आत्मा, परमात्मा और मनुष्य-प्रकृति से संबंध रखनेवाले सूक्ष्म प्रश्नों पर गंभीर विचार करने में समर्थ हुए थे। पूज्यपाद आर्य ऋषियों ने जिस किसी विषय को लिया, उसकी इतनी खोज की कि उसे एक पूर्ण शास्त्र (साइंस) बनाकर छोड़ा। काम-शास्त्र भी ऐसा ही एक विषय है। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) में इसका तीसरा स्थान है। इसलिये इसका ज्ञान भी मनुष्य के लिये परमावश्यक माना गया है। काम-शास्त्र पर सबसे पुराना ग्रंथ जो इस समय मिलता है, वह वात्स्यायन मुनि का 'काम-सूत्र' है। वात्स्यायन कौन थे, और किस काल में थे, इस विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग कौटिल्य और चाणक्य का ही दूसरा नाम वात्स्यायन बताते हैं, और कुछ के मतानुसार वात्स्यायन कोई भिन्न व्यक्ति थे। परंतु वात्स्यायन और कौटिल्य की लेखन-शैली आपस में इतनी मिलती है कि हम उनको एक ही व्यक्ति मानने के लिये विवश हैं। जर्मन प्रोफ़ेसर जेकोबी का भी यही मत है। लेख-शैली का एक उदाहरण हम यहाँ देते हैं। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में 'विद्यासमुद्देश-प्रकरण' में "सांख्ययोगो लोकायतञ्चेत्यान्वीक्षिकी" वाक्य है। यहाँ 'योग' शब्द न्याय-वैशेषिक शास्त्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। न्याय-सूत्रों का भाष्य करते हुए प्रतितंत्र सिद्धांत की व्याख्या में वात्स्यायन ने इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। उपर्युक्त अर्थ में अप्रसिद्ध इस शब्द का उसी अर्थ में दो स्थलों पर प्रयोग करना प्रयोक्ता की एकता का द्योतक है। योग-शब्द न्याय-वैशेषिक के लिये इसलिये प्रयुक्त हुआ है कि गौतम और कणाद परमाणुओं के योग से जगत् की सृष्टि मानते हैं। जर्मन-विद्वान् रिचर्ड शिमिड (Richard Schmidt) ने अपनी पुस्तक Beitrage Zur Indischen Erotik Das Liebesleben des Sanskrit Volkes (भारतीय काम-शास्त्र पर भिन्न-भिन्न लेखकों का लेख-संग्रह, संस्कृत लोगों का काम-जीवन) में 'काम-सूत्र' के विषय में लिखा है कि भारत में काम-शास्त्र पर प्रामाणिक ग्रंथ 'काम-सूत्र' है। परंतु यह पुस्तक भी कोई मौलिक नहीं। यह इस शास्त्र के प्राचीन आचार्यों के मतों का संग्रह-मात्र है। वात्स्यायन ने जिन आचार्यों के प्रमाण अपनी पुस्तक में दिए है, उनमें से दो के—दत्तक, पांचाल और बाभ्रव्य के—ग्रंथ उसके काम-सूत्रों के टीकाकार यशोधर को मिले हैं। इससे सिद्ध होता है कि शेष लोगों के ग्रंथ भी अवश्य थे, वात्स्यायन ने यों ही उनके नाम नहीं लिख दिए। वात्स्यायन के 'काम-सूत्रों' में इन नव आचार्यों के मतों का उल्लेख है—

१. औद्दालकि श्वेतकेतु, २. बाभ्रव्य पांचाल, ३. दत्तक, ४. चारायण, ५. स्वर्णनाभ, ६. घोटकमुख, ७. गोनर्दीय, ८. गोणिकापुत्र, ९. कुचुमार।

काल क्रम से इनकी सूची यों लिखी जा सकती है—

प्रजापति (मनु स्वायंभुव, बृहस्पति)
|
नंदिन्
|
औद्दालकि श्वेतकेतु
|
बाभ्रव्य पांचाल
|
चारायण — स्वर्णनाभ — घोटकमुख — गोनर्दीय
स्वर्णनाभ | गोणिकापुत्र
घोटकमुख | दत्तक
गोनर्दीय | कुचुमार

वात्स्यायन

बाभ्रव्य, औद्दालकि श्वेतकेतु और प्रजापति ऐसे आचार्य हैं, जिनका वैदिक साहित्य में भी बड़ा नाम है। पाठक अनुमान करें कि जिस काम-कला को इन वैदिक आचार्यों ने अपने मनन का विषय बनाया, वह प्राचीन आर्यों की दृष्टि में कैसी महत्त्व-पूर्ण समझी जाती होगी। काम-सूत्र पर यशोधर ने जयमंगला नाम की एक संस्कृत-टीका लिखी है। कहते हैं, यशोधर एक राजमंत्री था। अपनी प्रिय पत्नी के देहांत पर वह संसार से विरक्त हो गया। अपने इस वैराग्य-काल में ही उसने 'काम-सूत्र' की टीका लिखी।

वात्स्यायन विक्रमीय संवत् की तीसरी शताब्दी में हुआ है; परंतु यशोधर विक्रम की ग्यारहवीं और चौदहवीं शताब्दी के बीच किसी समय था। लेखक के ग्यारह-बारह सौ बरस बाद होने के कारण वह वात्स्यायन की अनेक बातों को ठीक तौर पर समझ नहीं सका। इसलिये उसकी टीका में वे बातें स्पष्ट नहीं हो सकीं। काम-सूत्र पर दूसरी टीका का नाम कंदर्पचूड़ामणि है। यह वीरभद्रदेव की लिखी हुई है, और आर्या-छंद में उसका अनुवाद-मात्र है।

वात्स्यायन-काम-सूत्र का जो अँगरेज़ी-अनुवाद विलायत में छपा है, उसमें लिखा है—

यह ऐसी पुस्तक है, जिसे बूढ़े, जवान, दोनों को ही पढ़ना चाहिए। बूढ़ों को इसमें अनुभूत सच्ची तथ्य की बातें मिलेंगी, जिनको वे भी स्वयं आज़मा चुके हैं; जवानों को ऐसी बातें मिलेंगी, जिनको सीखकर वे लाभ उठा सकते हैं, पर इस पुस्तक को पढ़े बिना कदाचित् वे उन्हें सीख भी न पाते, और सीखते भी, तो इतनी देरी से कि कुछ लाभ न हो सकता। यह पुस्तक सामाजिक विज्ञान और मनुष्यता के विद्यार्थियों के भी बड़े काम की है, और सबसे अधिक उपयोगी तो यह उन विद्यार्थियों को है, जो पुराने विचारों का अध्ययन करते हैं; क्योंकि इसमें कुछ ऐसे ही विचार हैं, जो समयरूपी रेती से छनकर सुलभ हो रहे हैं, और जिनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है कि आज से बहुत पहले जो मनुष्य-प्रकृति थी, वही अब भी मौजूद है। इस पुस्तक के रचयिता को मनुष्यता का बहुत अधिक अनुभव था। उनके कोई-कोई कथन तो इतनी सादगी और सचाई से भरे हुए हैं कि इतना समय बीत जाने पर भी, आज भी, वैसे ही स्पष्ट और सत्य हैं, जैसे कि १८०० सौ वर्ष पूर्व, जब उनकी रचना हुई थी (पृ० १६९)। ऐसी दशा में इस पुस्तक द्वारा, जिसका शताब्दियों की परीक्षा में भी कुछ नहीं बिगड़ा, वात्स्यायन अमर हो गए हैं। उनके अथवा उनके ग्रंथ के स्मारक में इन पंक्तियों से सुंदर और क्या लिखा जा सकता है—जब तक ओठों द्वारा चुंबन-कार्य और नेत्रों द्वारा दर्शन-कार्य होता रहेगा, तब तक यह जीवित रहेगी, और इसी के साथ तुझे भी जीवन-दान मिलता रहेगा (पृ० ११७)।

वात्स्यायन काम-सूत्र से प्राचीन संस्कृत-कवियों ने बहुत-कुछ लिया जान पड़ता है। काव्यप्रदीप, काव्यानुशासन, कुमारसंभव और रघुवंश में शृंगार और काम-कला की जहाँ भी कोई बात कही गई है, वहाँ 'काम-सूत्र' की छाया स्पष्ट देख पड़ती है। ऐसा मालूम होता है कि कवि-कुल-गुरु कालिदास और वाग्भट ने वात्स्यायन के सूत्रों का अवश्य अध्ययन किया था। जिस पुस्तक का इतना महत्त्व हो, भला यह कब संभव हो सकता था कि उसके अनुकरण में पीछे से और पुस्तकें न लिखी जातीं। खोज से पता लगा है कि 'काम-सूत्र' के आधार पर, और उसकी सहायता से, संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखी गई थीं। परंतु उनमें से, जहाँ तक मुझे मालूम है, अब तक सात-आठ से अधिक प्रकाशित नहीं हुईं। काम-शास्त्र पर जिन प्रकाशित और अप्रकाशित पुस्तकों का कुछ पता लगा है, उनके नाम आगे दिए जाते हैं—

(१) 'काम-सूत्र'। वात्स्यायन मुनि-कृत। यह प्राचीन ग्रंथ जयपुर के महामहोपाध्याय पंडित दुर्गाप्रसाद ने निर्णयसागर-प्रेस, बंबई में छपवाया है। इसके साथ यशोधर की जयमंगला नाम की टीका है।

(२) रति-रहस्य। इसके लेखक कोकोक नाम के एक पंडित हैं। यह वास्तव में 'काम-सूत्र' का संक्षेप-मात्र है। इसमें नई बातें बहुत थोड़ी हैं। 'काम-सूत्र' से उतरकर, महत्त्व की दृष्टि से, दूसरे दर्जे पर यही पुस्तक है। इसी को साधारण लोग 'कोक-शास्त्र' कहते हैं। यह पुस्तक छप चुकी है। इसके अनुवाद योरप की भाषाओं में भी हो चुके हैं।

(३) नागर-सर्वस्वम्। यह भी छप चुका है। इसके लेखक पद्मश्री नाम के कोई संसार-त्यागी बौद्ध-भिक्षु हैं। उन्होंने यह किसी वासुदेव नाम के किसी ब्राह्मण

विद्वान् से सीखी थी। इस छोटी-सी पुस्तक में अनेक ऐसी बातें हैं, जो 'काम-सूत्र' और 'रति-रहस्य' आदि किसी भी दूसरे ग्रंथ में नहीं मिलतीं। हमने वे सब वहाँ से लेकर अपनी इस पुस्तक में दे दी हैं। इस पर जगज्ज्योतिर्मल्ल की टीका है।

(४) अनंग-रंग। यह पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। इसका लेखक कल्याणमल्ल है। यह कलिंग-देश का रहनेवाला कोई ब्राह्मण था। उस समय कलिंग में राजा अनंगभीम (उपनाम लददीव) राज्य करता था। जगन्नाथ के एक शिला-लेख से पता लगता है कि इस राजा ने १०६४ शकाब्द (सं० १२२६ वि०) में एक मंदिर बनवाया था।

(५) पंचसायक। इसके लेखक ज्योतिरीश्वर कवि-शेखर हैं। यह अनंग-रंग से पुरानी और अधिक महत्त्व की पुस्तक है। इसमें आयुर्वेद के योग अच्छे दिए गए हैं। यह भी छप चुकी है।

(६) हरिहर-कृत शृंगारदीपिका। अंतिम दो परिच्छेदों के सिवा शेष सारा ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है।

(७) नागार्जुन का रति-शास्त्र। यह भी प्रकाशित हो चुका है।

अब इसके आगे जितने ग्रंथों के नाम हैं, वे अभी प्रकाशित नहीं हो सके। उनमें से कुछ तो पूरे मिलते भी नहीं। कई एक के तो एक-एक दो-दो पत्रे ही मिले हैं।

(८) अनंग-तिलक।

(९) अनंग-दीपिका। इसके लेखक का पता नहीं। इसकी हस्त-लिखित प्रति राजेंद्रलाल मित्र को मिली थी। (Bikanere Selection 531) इसका आरंभ इस प्रकार है—

"प्रणिपत्य प्रमोदार्थं गिरीशं सुखदायिनम् ;
कामिनां गद्यबन्धेन क्रियतेऽनङ्गदीपिका।"

समाप्ति इस प्रकार है—

"कामिनीं आगच्छंतीं दृष्ट्वा जानन् सन् निद्रां करोति आगत्य चुम्बति प्रतिवेद्य चुम्बनम्। इति अनंगदीपिका।"

(१०) अनंग-शेखर।

(११) मंत्रिमंडन कहते हैं कि अनंत ने संवत् १५१५ वि० में 'काम-समूह' नाम की एक पुस्तक बनाई थी। इसकी हस्त-लिखित प्रति लंदन में, इंडिया-ऑफ़िस के पुस्तकालय में, है। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"यौवनस्य केशाग्रादारभ्य नखाग्रं यावत्।"

(१२) अष्टनायिकादर्पण। यह भगवत् कवि की अलंकार-विषय पर पुस्तक है।

(१३) ईश्वरकामित। अर्जुनवर्मदेव ने अपनी अमरुक की टीका में इसका उल्लेख किया है। देखो, कोक्कोक का रति-रहस्य।

(१४) कलावाद-तंत्र। इस पर गौरीकांत सार्वभौम की टीका है।

(१५) कलाविधि-तंत्र।

(१६) कला-शास्त्र। कोक्कोक-कृत।

(१७) काम-प्रकाश।

(१८) काम-प्रदीप। यह गुणाकर की रचना है।

(१९) काम-प्रबोध। इस नाम की दो पुस्तकें मिली हैं। एक पुस्तक राजेंद्रलाल मित्र को बहरामपुर के बाबू राधिकाप्रसाद सेन के यहाँ मिली थी। इसमें ५६४ श्लोक हैं। यह महाराजा अनूपसिंह की धर्मपत्नी की बनाई हुई बताई जाती है। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"दुरितगणविरामं रावणध्वंसकामं
विजितपरशुरामं कल्पितानेकयामम् ;
फलितसकलकामं सर्वदेवाभिरामं,
नतजनकृतकामं नौमि रामं सवामम्।
यः पुष्पबाणैरपि पञ्चसंख्यै-
र्जगत्त्रयं क्षोभयति क्षणेन ;
स सर्ववन्द्योऽद्भुतशक्तियुक्तः,
स्त्रीकेलिबन्धुर्जयति स्मरेशः।"

अंत इस प्रकार है—

"विचित्रैरुपचारैर्यत्तत्सम्भोगसुखं नृणाम् ;
न सम्भोगसुखं भुङ्क्ते वृषः किं धेनुमध्यगः।"

इति श्रीमन्महाराजाधिराज श्रीमहाराजाऽनूपसिंहदेवीये कामप्रबोधे बाह्यसम्भोगप्रकारविवेको नाम नवमः प्रकाशः। ग्रन्थोऽयम् पूर्तिमगात्। संवत् १८९२। माघमासः।"

इसी नाम की दूसरी पुस्तक भी राजेंद्रलाल मित्र ही को (Bik. 532.) मिली है। इसके लेखक तथा रचना-काल का कुछ पता नहीं। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"किंशुकाः कुसुमिताः कलकण्ठकूजितैर्मुकुलिताः सहकाराः ;
नागतः प्रियतमः सखि हा मे का गतिर्मधुरुपागत एषः।"

अंत का अंश यों है—

"विद्या नाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं
सुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न संपादिता।
× × ×
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिंगिताः।"

(२०) कामरत्न। नित्यनाथ-कृत।

(२१) काम-शास्त्र। यह वामन के आयुर्वेदप्रकाश का एक अंश है। कोकोक के रति-रहस्य को भी काम-शास्त्र कह दिया जाता है। कामशास्त्र-निरूपणाध्याय माधव का है।

(२२) कामसार। यह कामदेव का बनाया हुआ है। इसके सात पन्ने हैं। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"रतिपरिमलसिन्धुः कामिनीकेलिबन्धु-
र्विदितभुवनमोदः सेव्यमानप्रमोदः ;
जयति मकरकेतुर्मोहनस्यैकहेतु-
र्विरचितबहुसेवः कामिनीकामदेवः ॥१॥
पद्मिनी चित्रिणी चैव संखनी (?) हस्तिनी तथा ;
शशो मृगो वृषोऽश्वश्च स्त्रीपुंसोर्जातिरीरिता ॥ २ ॥"

इसका अंत इस प्रकार है—

"एतान् बन्धान् परिज्ञाय सुखमासादयेत्परम् ;
नारीणां दर्पसंघातं बन्धं कुर्यात् प्रियंवदः ॥ ४१ ॥
इति श्रीकामदेवविरचिते कामसारे आसनबन्धननिरूपणं सम्पूर्णम्॥"

(२३) कौतुक-मंजरी। अर्थात् नवीनाचरितकथन। यह राजेंद्रलाल मित्र को बँगला-अक्षरों में लिखी मिली है। इसमें १०६ श्लोक हैं। बहुत अशुद्ध है। लेखक का नाम मालूम नहीं। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"प्रणम्य वाणयाश्चरणारविन्दं (न्दौ ?)
सुरासुराणामपि वन्दनीयम् (यौ ?) ;
यूनाम् मुदे कामयताम् मनोज्ञा
प्रकाश्यते कौतुकमञ्जरीयम्।
तावद् उद्वाहानन्तरम् कान्तालिंगनमसहमाना परेद्युर्मातरमाह—
मातः केलिगृहं न यामि शयितुं कस्माच्च चन्द्रानने
जामाता तव निर्दयो निजभुजापाशेन मां पीडति ;
चिह्नाग्रौ च कुचौ करोति करजैर्दन्तैः प्रपीडन्मुखं
नीवीबन्धविमोचनं च कुरुते निद्रापि नायाति मे ॥१॥"

इसका अंत इस प्रकार है—

"चन्द्रः पूर्वं दयितविरहे चण्डभानुर्ममासीन्
मन्दोऽप्यासीन् मलयजरुजा मर्मभेदी च वज्रः ;
कल्पप्राया रजनिरभवत्कान्तसंगाद्दिदानीं
चन्द्रश्चन्द्रो मरुदिव मरुद् यामिनी यामिनीव॥३३॥"

(२४) पद्यमुक्तावली। यह अलंकार की पुस्तक है। इसमें काम-शास्त्र-संबंधी पद्य हैं। घासीराम ने अपनी रसचंद्र-नामक पुस्तक में इसका प्रमाण दिया है।

(२५) मदनसंजीविनी।

(२६) मदनार्णव। राजेंद्रलाल मित्र को बीकानेर-पुस्तकालय में मिली थी। ग्रंथकार का नाम मालूम नहीं। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"प्रणयात्तलोकनपथं गमितः
गमिताः प्रथमं निवस्त (?) रतिमन्मथयोः ;
तदनुप्रचारतरुणास्त्रिजगन्
मदयं स कोऽप्यतिशयो जयति।"

अंत—

"रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिन् युगे युगे मतपदम् याताः ;
स्वाष्टकायादवादय—इति ॥
इति मदनार्णवे भगवच्चरणत्वनिरूपणं नाम षष्ठं रत्नम्॥"

(२७) मदनोदय। दामोदर गुप्त अपने कुट्टिनी-मत में इसका यह प्रमाण देते हैं—

"वात्स्यायनमदनोदयदन्तकविट्पुत्रराजपुत्राद्यैः ;
उल्लपितम् यत् किञ्चित् तत् तस्या हृदयदेशमध्यास्ते।"

(२८) योगरत्नावली। शार्ङ्गधरपद्धति में है।

(२९) रति-मंजरी। यह जयदेव की बनाई हुई है। इसमें केवल एक सौ पचीस श्लोक हैं।

(३०) विद्याधर कवि का बनाया रति-रहस्य। इसमें ६४ पन्ने हैं, और १००० श्लोक। इसका उल्लेख Oudh VIII, 20 में है।

(३१) हरिहर-कृत रति-रहस्य। इसका नाम शृंगार-बंधुदीपिका भी है। पहला परिच्छेद पूरा है। दूसरे के केवल ५६ श्लोक हैं। इसमें चार प्रकार की स्त्रियों और पुरुषों का वर्णन है। इस पर अनेक लोगों ने टीकाएँ लिखी हैं।

(३२) रति-रहस्य टीका। (Oppert 6160)

(३३) रतिरहस्य-दीपिका। कांचीनाथ-कृत।

(३४) रतिरहस्य-व्याख्या। रामचंद्र सूरि-कृत।

(क) रतिविलास। काम-शास्त्र की एक पुस्तक का नाम है। मंख-कोश में लिखा है—

"तत्सिद्धये रतिविलासमतोऽभिधास्ये।"

(ख) रतिसंग्रह-व्याख्या। (देखो Oppert 2977)

(३५) रतिसर्वस्व। मल्लिनाथ मेघदूत पर टीका करते हुए इसका यह प्रमाण देते हैं—

"एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः ;
चण्डशक्तिमतोर्यूनोरुद्रटक्रमवर्तिनोः ।"

(३६) रतिसार । ३७ पृष्ठों की पुस्तक है । इसमें ४०० श्लोक हैं ।

(३७) विश्वेश्वर-कृत रसचंद्रिका । कदाचित् यह अलंकार की पुस्तक है । इसका आरंभ इस प्रकार है—

"तिर्यङ्मात्रप्रवणनयनापान्तदृश्यत्वलोभा-
दन्योन्यार्धावयवघटितं स्वाङ्गमध्यायि याभ्याम् ।"

अंत यों है—

"सूता मण्डनमण्डलीं परिदधुर्माणिक्यरोचिर्मम
क्रोधावेशसरागलोचनरुचा दारिद्र्यविद्राविणीम् ॥"

(३८) रसविवेक । वास्तव में इसे काम-शास्त्र की पुस्तक समझना भूल है ।

(३९) वाजीकरण-तंत्र ।

(४०) वात्स्यायन-सूत्र-सार । क्षेमेंद्र-कृत ।

क्षेमेंद्र अपनी पुस्तक "औचित्य-विचार-चर्चा" में इस श्लोक का प्रमाण देते हैं—

"कामः कामं कमलवदनानेत्रपर्यन्तवासी
दासीभूतत्रिभुवनजनः प्रीतये जायतां वः ;
दग्धस्यापि त्रिपुररिपुणा सर्वलोकस्पृहार्हा
यस्याधिक्यं रुचिरतितरां मज्जनस्येव यता ।"

(४१) वेश्यांगना-कल्प । (Oppert 6220)

(४२) वेश्यांगना-वृत्ति ।

(४३) श्रृंगारपद्धति । शार्ङ्गधर-कृत । इसमें स्त्री-पुरुषों के प्रकारों के अतिरिक्त नव रसों का भी वर्णन है । (बीकानेर-पुस्तकालय ५३४)। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"श्रृङ्गारवीरकरुणाद्भुतहास्यभयानकाः ;
बीभत्सरौद्रशान्ताश्च नवधा कीर्त्तिता रसाः ।"

और अंत यों है—

"दधुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां
द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः । "

(४४) श्रृंगारमदप्रदीप । इसकी हस्त-लिखित प्रति (1055 b.) Granth foll (59-77) के पहले अंश में किसी काम-शास्त्र से २ पृष्ठ उद्धृत हैं ।—(१०५३७) लिपि तेलगू । पृष्ठ १४ हैं ।

(४५) श्रृंगार-मंजरी । तेलगू में । १०० पृष्ठ हैं । तंजोर के राजा साहजी (विक्रम की १८वीं शताब्दी) के शासन-काल में लिखी गई ।

(क) श्रृंगारसारिणी । चित्रधर-कृत ।

(४६) समरकामदीपिका । विष्णवांगिरस्-कृत । इसमें ३०० श्लोक हैं ।

(४७) सुरतोत्सव काम-शास्त्र ।

(४८) स्त्री-विलास । देवेश्वर-कृत । ४५ पृष्ठ हैं ।

(४९) स्मरतत्त्व-प्रकाशिका । रेवणाराध्य-कृत । यह स्मरतत्त्व-नामक पुस्तक की टीका है । स्मरतत्त्व के केवल ५ श्लोक मिलते हैं । इसका रचयिता विरनरध्यर (वीरणाराध्य ?) है । इसके विषय में टेलर महाशय ने लिखा है— "काम के देवता मन्मथ की सुंदर प्रकृति के गुणानुवाद करना पाश्चात्य विचारों के अनुसार भद्दा या अश्लील है, तब जिस पुस्तक में इन्हीं कामदेव को धार्मिक रूप दिया गया है, उसका वर्णन करना कुछ कठिन ही है (जैसे पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज का वर्णन । यदि शुक्र प्रबल होगा । तो पुरुष-संतान पैदा होगी, और यदि प्रबलता शोणित की होगी, तो स्त्री-संतान । यदि दोनों समान रूप से प्रबल होंगे, तो संतान में स्त्री-पुरुष दोनों के गुण होंगे), या वे वर्णन जिनमें नष्ट पुरुष-शक्ति को फिर से प्राप्त करने के नुसख़े हैं, या पाँच प्रकार की रतियों का वर्णन ।"

(५०) स्मरदीपिका । इस नाम की कई पुस्तकें प्रकट हुई हैं । एक हस्त-लिखित (Paris B, 180) L. 111 7 प्रति का सार इस प्रकार दिया गया है—

"रुद्र-कृत । देसी, पीला कागद । पत्रे ५० । पंक्तियाँ ५-६ प्रति पृष्ठ । सारे १२० श्लोक । अक्षर बँगला । समय १७६४ शकाब्द । रूप-रंग पुराना । पद्य बहुत शुद्ध नहीं ! काम-शास्त्र पर पुस्तक । नाम-हीन । इसका आरंभ 'हरकोपानलेनैव भस्मीभूतां' से होता है । एक दूसरी हस्त-लिखित प्रति देवनागरी-अक्षरों में है । इसके ११ पत्रे और १६५ श्लोक हैं । इसके रचयिता का नाम रुद्र है । शायद यह रुद्र ही का अशुद्ध रूप है । कहते हैं, यह सुरतोत्सव कावशास्त्र (सुरतोत्सव काव्यशास्त्र) से ली गई है । मुख्यतः गद्य है । इसका आरंभ इस प्रकार होता है—

"हरकोपानलेनैव भस्मीभूतोऽकरोत्[1] स्मरः ।
अर्धनारीशरीरं हि[2] यस्य तस्मै नमोनमः ॥ १ ॥
सम्यगाराधितैः[3] कामः सुगन्धिकुसुमादिभिः ।

---

१. भस्मीभूतोऽकरोत् ; भस्मीभूत ; भस्मीभूतः कृतः स्मरः । २. अर्द्धं गौरीशरीरेण । ३. आराधित

विदधाति वरस्त्रीणां मानग्रन्थिविमोचनम् ॥ २ ॥
मारं निर्जित्य रुद्रेण पश्चादुद्दीपितैः स्मरः ।
येन तन्नामधेयेन निर्मिता स्मरदीपिका ॥ ३ ॥
अनेककामशास्त्राणां सारमाकृष्य यत्नतः ।
बालव्युत्पत्तये स्त्रीणां चित्तसन्तोषणाय च ॥ ४ ॥
कामशास्त्रस्य तत्त्वज्ञा जायन्ते सुन्दरीप्रियाः ।
कामशास्त्रमजानन्तो रमन्ते पशुवत् स्त्रियम् ॥ ५ ॥
नानाबन्धैः सुरतोपचारैः क्रीडासुखं जन्मफलं नराणाम् ।
सौरभेयीशतमध्यवर्ती वृषोऽपि सम्भोगसुखं न भुङ्क्ते ॥६॥
स्वनारीरक्षणं पुंसां परनार्यनुरञ्जनम् ।
बन्धभेदेङ्गितज्ञानं एतत्फलमुदाहृतम् ॥ ७ ॥
येन संवत्सरो दृष्टः सकृत् कामसुसेवितः ।
तेन सर्वमिदं दृष्टं पुनरावर्तितं जगत् ॥ ८ ॥
प्रथमं लक्षणं पुंसां स्त्रीणाञ्च तदनन्तरम् ।
ध्वजस्य लक्षणं प्रोक्तं भगलक्षणसंयुतम् ॥ ९ ॥
कामस्थानानि संलक्ष्य पुनः सम्यक् च चालनम् ।
पुनः षोडशबन्धाश्च तथैवाधोमुखाश्च षट् ॥१०॥
द्वौ बन्धौ सुन्दरीणाञ्च पश्चान्मुखरतं तथा ।
बाह्यं रतं ततः कुर्याद् रतं देशविशेषजम् ॥११॥
इङ्गितस्य परिज्ञानं दूत्याश्च तदनन्तरम् ।
तथाष्टनायिकानां च मन्त्रौषधसुतोदयाः ॥१२॥"

स्मरदीपिका की एक तीसरी हस्त-लिखित प्रति भी मिली है। इसका आरंभ इस प्रकार होता है—

"गर्गेण भाषितां सम्यग्वक्ष्यामि स्मरदीपिकाम् ।
यस्या विज्ञानमात्रेण मूर्खोऽपि रतिरङ्गधीः ॥ १ ॥
बालकस्तरुणः प्रौढो वृद्धाश्चेति विशेषतः ।
ज्ञातव्यो यत्नतः कामो ध्रुवं शृङ्गारमिच्छता ॥ २ ॥
अनेककामशास्त्राणां सारमाकृष्य यत्नतः ।
प्रबोधाय वरस्त्रीणां तुष्टयै रतिसुखाय च ॥ ३ ॥
मारं निर्जित्य बुद्धेन संध्येयं मानुषीकृता ।
येन तन्नामधेयेन निर्मिता स्मरदीपिका ॥ ४ ॥
अथ लक्षणं नृनार्योः ।"

इसके अंत में लिखा है—

"इति श्रीगर्गाचार्यमुनिप्रणीता स्मरदीपिका समाप्ता ।"

(५१) रतिरत्नप्रदीपिका । श्रीदेवराज महाराज-कृत । इसकी एक हस्त-लिखित प्रति योगानंद भट्ट नाम के एक व्यक्ति के पास, मलकोट में, मिली थी। हाल में, सन् १९८० वि० में, इसका संस्कृत-पाठ, और अँगरेज़ी-अनुवाद भी, मैसूर के पंडित क० रंगा स्वामी ऐयंगर ने छपा दिया है।

देवराज नाम के दो राजा मैसूर में हो गए हैं। उन्होंने सन् १६९९ ई० तक एक दूसरे के पश्चात् राज्य किया था।

(५२) स्मररहस्य-व्याख्या । (Madras 111)

(५३) कामप्रभृत । केशव-कृत ।

(५४) कामानंद । वरदार्य-कृत ।

(५५) रतिचंद्रिका और रतिदर्पण । हरिहर-कृत ।

कोकसार-भाषा । आनंद-कृत । यह हिंदी में, दोहों में, है। १७ पृष्ठ की एक हस्त-लिखित प्रति मिली है। यह लाहौर के डी० ए० वी० कॉलेज (खोज-विभाग) के पुस्तकालय में है। एक पृष्ठ पर ११-१२ पंक्तियाँ हैं। इसका आरंभ इस प्रकार है—

"ॐ श्रीगणेशाय नमः । अथ कोकसार भाषा आनंद क्रिति लिख्यते ।

दोहा ॐ

ललित सुमन धन अलप नच तन छवि अभिनव कंद;
मधुरति हितचित रति रसन जै जै मदन अनंद ॥ १ ॥

दोहा

बरनि काम अभिराम वर(बर)नो मानन मोग;
सकल कोक दधि मथै कै रच्यो सार सुमतोग ॥"

अंत यों है—

"पाधड़ी-छंद—

प्रथमे अमरावति हुते कोक, कोऊ जानत नाहि मृतलोक ।
थिक हुतो नादसाह मुनीस, तिह प्रगट कर क्रीड़ा रतीस ।
ता पाछे भई जगत ते अनेक, तिह कथहि का करि-करि विवेक ।
कामप्रदीप अरु पंचबान, रतिकरन और आनहि सजान ।
पूनै मदन विनोद अनंग रंग, रतरंजन सहस रति तरंग ।
पड़ि सकल कविय करि-करि विचारि बरनियो अनंद करि कोकसार ।

दोहा

छंद चतुर्दश अति सरस रचो जो बहुबिधि छंद;
पढ़त चढ़त चित चोप अति बाढ़ि अधिक अनंद ॥ २ ॥"*

संतराम

१. सामं । २. रुद्रेण । ३. उद्दीपित । असल में ये अशुद्ध पाठ हैं।

* यह लेख लेखक की अप्रकाशित पुस्तक "भारतीय काम-कला" का एक अंश है।—संपादक

आलोकमय जीव
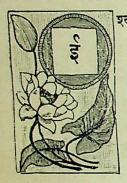
ईश्वर की विचित्र सृष्टि-रचना पर कौन ऐसा मनुष्य है, जो मुग्ध नहीं हो जाता ? हमारी आँखों के सामने जो देदीप्यमान व्योम है, उसकी अद्भुत शोभा किसके मन में उस विश्व-नाट्यकार का अनुराग नहीं उपजाती ? क्या आपने सोचा है कि सूर्य, चंद्र, नक्षत्र आदि की क्या अवस्था है, उनमें कौन-सा रहस्य है ? आकाश तो कुछ दूर का विषय है, जिस पृथिवी-तल पर आप निवास करते हैं, उसके जीवों को देखकर आपने ईश्वरीय चातुर्य की कोई झलक पाई है ? क्या आपने इस बात पर विचार किया है कि समुद्र में ६ मील नीचे, उस अंतरीण प्रदेश में, जहाँ प्रकाश की पहुँच तक नहीं होती, जहाँ अनवरत घोर अंधकार छाया रहता है, जहाँ प्रति वर्ग-इंच पर ७० मन से अधिक जल का दबाव रहता है, जहाँ बर्फ़ की-सी ठंडक पड़ती रहती है, वहाँ के अधिवासियों के लिये वह करुणावरुणालय परमेश्वर ताप, आलोक इत्यादि का क्या प्रबंध करता है ? धन्य हैं वे योरप के विद्वान्, जो प्राणों को हथेली पर रखकर इन विषयों का अनुसंधान, अनुशीलन करते और हमारे सामने उस दुर्गम्य स्थान के जीवित चित्र रख देते हैं।

ज़रा विचार करके देखिए, तो प्राणियों से कोई स्थान रिक्त नहीं है। कठिन, तरल या वायवीय, सभी स्थान जीवों से परिपूर्ण हैं। पर्वतों की चट्टानों में जो सूक्ष्म नसें होती हैं, उनमें भी जीव पाए गए हैं। उस अगम्य जलधि-शय्या को भी प्राणियों ने अपना स्थान बना ही डाला। इन्हीं कारणों से अँगरेज़ी के प्रसिद्ध गद्य-लेखक एडिसन साहब ने कहा था कि परमात्मा ने सृष्टि में उतना ही स्थान बनाया है, जितना जीवों के रहने के लिये पर्याप्त है। अस्तु।

आपको यह सुनकर बड़ा कौतूहल होगा कि समुद्र-तल-निवासी जीवों के पैर बड़े और पेट इत्यादि अंग छोटे होते हैं। यदि ऐसा न होता, तो इतना बोझ होने पर भी वे आसानी से चल-फिर न सकते। कितने ही कीड़ों की देह में अनेक छिद्र होते हैं, जिनसे पानी निकल जाता है, और उतना दबाव नहीं पड़ता। ईश्वर की ईश्वरता के ऐसे ही असंख्य उदाहरण आपको मिलेंगे। आइए, ज़रा ऐसे जीवों को देखिए, जिनके शरीर से आलोक निकलता है, तथा जिनके मस्तक, पृष्ठ, पूँछ इत्यादि में विद्युत् बनती रहती है।

इस जंतु-निर्गत आलोक को समझाने के लिये निम्न-लिखित वैज्ञानिक सिद्धांत जान लेना आवश्यक है। जब हम वार्तालाप में 'शक्ति'-शब्द का व्यवहार करते हैं, तो लोग उससे 'बल' का आशय लेते हैं; परंतु भौतिक विज्ञान में 'शक्ति' का अर्थ 'कार्य करने की क्षमता या योग्यता' होता है। जब एक पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं, तो शक्ति का व्यय होता है; वैसे ही एक वेगवान् पदार्थ को रोक लेने में भी शक्ति का व्यय होता है, और वेगवान् को अधिक वेगवान् करने में भी शक्ति व्यवहृत होती है। शक्ति के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं; जैसे, ताप-शक्ति, आलोक-शक्ति, विद्युच्छक्ति, शब्द-शक्ति, गति-शक्ति, रासायनिक शक्ति इत्यादि। ये शक्तियाँ परस्पर परिवर्तनशील हैं। एक ईंट से किसी दीवार

मारते हैं, या जब बंदूक़ की गोली किसी धातु के पत्तर पर लगती है, तो वह स्थान, जहाँ आघात पहुँचता है, उत्तप्त हो जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि गति-शक्ति तत्काल ताप-शक्ति में परिणत हो गई। पाश्चात्य विद्वानों ने शब्द-शक्ति को आलोक-शक्ति में एवं आलोक-शक्ति को वैद्युतिक-शक्ति में परिणत किया है, और इसी के सहारे 'बोलनेवाले बाय-स्कोप' का आविष्कार हुआ है। प्रोफ़ेसर सी०वी० रमन ने एक प्रकार की वीणा (Violin) से शब्द उत्पन्न कर आलोक-छत्र (Spectrum) अर्थात् आलोक के सप्त रंग में स्पंदन उत्पन्न किया है। यहाँ भी शब्द-शक्ति वैद्युतिक शक्ति में परिणत की गई है। इसी प्रकार आपको अनेक उदाहरण मिलेंगे, जिनमें शक्तियों के पारस्परिक परिवर्तन होते हैं। शक्ति का किसी प्रकार नाश नहीं होता, केवल रूप में परिवर्तन होता है। पदार्थ और शक्ति, दोनों अनादि और अमर हैं। प्रकृति की शक्ति-राशि में कोई वृद्धि या न्यूनता नहीं होती। जिन प्राणियों तथा वनस्पतियों के अंग से प्रकाश निकलता है, उनका वह प्रकाश-निर्गमन इसी सिद्धांत पर निर्द्धारित है।

प्रकाशमय पौदे—जब मछली सूखने के लिये लटका दी जाती है, तो उससे अँधेरे में एक प्रकार की चमक निकलती है। प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) के समय से ही यह बात विदित है कि रात्रि में मृत मांस से एक तेज निकलता है। आधुनिक प्राणितत्त्व-वेत्ताओं ने बतलाया है कि मछली या मांस पर एक प्रकार का कृमि (वैक्टीरिया) रहता है, जिसके संयोग से मांस पर एक रासायनिक क्रिया संपादित होती है, और उसी कारण वहाँ आलोक प्रकट होता है। पाठकों को इसे समझने में कठिनाई न होगी। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मैगनीशियम (Magnesium)-धातु के तार को जलाने से एक प्रखर ज्वाला निकलती है। यहाँ भी तार का जलना एक रासायनिक क्रिया है, जिसकी शक्ति पुनः आलोक-रूप में बदल जाती है। वैक्टीरिया प्रायः ६० प्रकार की होती हैं। ये अनेक स्थानों में पाई जाती हैं। कुछ तो मनुष्यों के घावों पर रहती हैं।

पौदों से जो प्रकाश निकलता है, उसमें वैक्टीरिया भाग नहीं लेती। दक्षिण-योरप में जतून का वृक्ष (Olivetree) होता है। उसकी जड़ पर एक प्रकार का पौदा जमता है, जिसे 'साँप का छाता (Koadslool, fungus) कहते हैं। इससे अँधेरे में रोशनी निकलती है। कहीं-कहीं इस पौदे के सूक्ष्म सूतों से ही रोशनी निकलती है, और कहीं इसका समूचा छाता चमकता रहता है। कभी-कभी सड़ती हुई लकड़ी से भी चमक आती है। इसको अरस्तू ने स्वयं देखा था, और उसे अत्यंत आश्चर्य भी हुआ था। यह प्रकाश साँप के छाते के फैलते हुए सूतों से निकलता है। इसी कारण वृक्षों की सड़ती हुई पत्तियों से भी प्रकाश निकलता है। बीच (beech)-नामक वृक्ष की पत्तियों के निचले भाग में पीले-पीले दाग़ रहते हैं, जिनमें अणुवीक्षण-यंत्र से उपर्युक्त सूत देखे गए हैं।

चट्टानों की अंधकाराच्छन्न गुहाओं में एक प्रकार की घास होती है, जिसे चमकीली घास (luminous moss) कहते हैं। उससे भी चमक आती है। परंतु वह चमक, घास से सूर्य-किरणें प्रतिक्षिप्त होने से निकलती है, घास से नहीं उत्पन्न होती। नदियों में जब धीमी-धीमी लहरें चलती

रहती हैं, तो सिवार से बड़े मनोहर लाल, नीले, पीले रंग निकलते रहते हैं। ये भी सूर्य की किरणों के प्रतिक्षेप से बनते हैं। समुद्र-तल पर अनेकों देदीप्यमान पौदे होते हैं, जिनका प्रकाश वहाँ के जीवों के लिये उपयुक्त होता है। समुद्री कलम (Sea-pen) नाम के एक पौदे का चित्र देखिए।

ये देदीप्यमान जलोद्भव पौदे देखकर मनुष्य को ईश्वर की असीम अनुकंपा का अनुभव होता है। वहाँ यदि सूर्य नहीं है, तो आलोक देनेवाले पौदे मौजूद हैं; और जहाँ वैसे पौदे नहीं हैं, वहाँ आलोकमय जीव ही बने हैं। आगे कुछ के चित्र देखिए।

देदीप्यमान जंतु—छत्तीस प्रकार के ऐसे प्राणी पाए गए हैं, जिनके शरीर से ज्योति निकलती है। इन प्राणियों में कोई वर्गीकरण का नियम नहीं देख पड़ता। समुद्री मछलियों, डंक मारनेवाले कीड़ों, तारा-मछलियों (Star-fish), योरप की अग्नि-मक्खियों (Fire-fly) तथा अन्य कितने ही जीवों में यह प्रकाश पाया गया है। योरप के जुगनू (फ़ायर-फ़्लाई) की रोशनी में पुस्तकें सरलता से पढ़ी जा सकती हैं। मछली से ऊपर की श्रेणीवाले जीवों में प्रकाश नहीं पाया जाता।

समुद्री कलम

(जापान के निकटवर्ती गहरे समुद्र से निकाला हुआ और लगभग एक गज़ ऊँचा है। यह ऐंठन पानी में नहीं होती। यह अत्यंत प्रकाशित रहता है।)

एक बार एक मेढक की देह में चमक पाई गई, इससे लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। जब मेढक का पेट चीर डाला गया, तो कई मरे जुगनू निकले। मेढक ने जुगनुओं को खा लिया था, और इसी कारण उसकी देह से चमक निकलती थी। अन्वेषण से पता चला है कि जिन प्राणियों के शरीर से प्रकाश-निर्गमन होता है, वे या तो जलचर हैं, या थलचर। नभचर जंतु प्रकाशमय नहीं होते।

जंतुओं के देह से जो आलोक निकलता है, उसमें एक बड़ी भारी
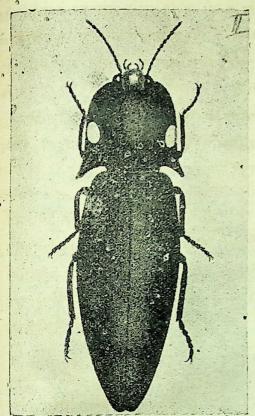
अग्नि-मक्षिका या योरप की फ़ायर-फ़्लाई

(इसके शरीर पर ऊपर और नीचे चमकते हुए बिंदु होते हैं। इस चित्र में आकार दूना दिखलाया गया है। प्रकाश से मक्खियाँ अपनी जाति पहचानती हैं।)

विशेषता है। आप जानते हैं, बिना ताप के प्रकाश नहीं होता; अर्थात् ताप ही प्रकाश का कारण है। जब किसी पथरीले चूने को उत्तप्त किया जाता है, तो एक ऐसी अवस्था आती है कि उससे प्रबल श्वेत आलोक निकलने लगता है। इसी सिद्धांत पर गैस-बत्तियों के मैंटल बने रहते हैं। इसी प्रकार जब एक लोहे या ताँबे के तार से विद्युत् प्रवाहित की जाती है, तो तार गरम होकर लहकने लगता और रोशनी निकलने लगती है। इसके प्रतिकूल, प्राणियों से जो प्रकाश निकलता है, उसमें शीतलता रहती है, उष्णता नहीं होती। चंद्रमा की ज्योति भी उष्णता-हीन होती है। योरप की अग्नि-मक्षिका या हमारे देश के जुगनू शीतल आलोक देते हैं। यदि मनुष्य भी आज ताप-हीन ज्योति उत्पन्न करना जान जाय, तो संसार में एक भारी आर्थिक समस्या हल हो जाय। प्रोफ़ेसर लांगले (Langley) का अनुमान है कि गैस, तेल इत्यादि से जितने ख़र्च में जो प्रकाश प्राप्त किया जाता है, उतना प्रकाश, ताप-हीन प्रकाश उत्पन्न करने की युक्ति से, चार सौगुना कम ख़र्च में ही उत्पन्न किया जा सकता है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस ओर यत्न किया है, और वे कुछ अंश में कृत-कार्य भी हुए हैं। जंतु-जनित आलोक में एक और विशेषता यह है कि उसमें अदृश्यमान आलोक (invisible light) नहीं होता। अदृश्यमान आलोक क्या है? जब सूर्य की किरणें एक तिपहले शीशे (prism) को पार करती निकलती हैं, तब व सात रंगों में बँट जाती हैं। वे रंग क्रमानुसार लाल, नारंजी, पीला, हरा, बैंगनी, नीला और बनफ़शई हैं। इस रंग-समुदाय को आलोक-छत्र या स्पेक्ट्रम (spectrum) कहते हैं। इस बात को निम्न-लिखित चित्र के द्वारा समझिए—

सूर्य-रश्मियों का आलोक-छत्र

infra-red	visible							ulta-violet.
क				ख				ग
	ला०	ना०	पी०	ह०	बैं०	नी०	ब०	
अदृश्यमान	दृश्यमान							अदृश्यमान

छत्र में लाल से बनफ़शई तक देख सकते हैं, और 'क', 'ग' भाग अदृश्यमान होते हैं। जो भाग लाल की तरफ़ है, अर्थात् 'क' भाग, उसको रक्त-वर्णोपरांत भाग (infra-red) तथा 'ग' भाग को बनफ़शई-वर्णोपरांत भाग (ultra-violet) कहते

हैं। यद्यपि हम इन भागों को प्रभाहीन पाते हैं, तथापि इनसे एक प्रकार की अदृश्यमान किरण निकलती है, जो पदार्थों में रासायनिक सम्मेलन करा सकती है। जंतु-जनित आलोक का भी छत्र निकाला गया है; पर उसमें यह अदृश्यमान आलोक नहीं होता, केवल 'ख' भाग का ही प्राधान्य रहता है। जंतु-निर्गत आलोक से भी फ़ोटोग्राफ़िक प्लेट पर चित्र बन जाता है। कुछ ऐसे भी पदार्थ हैं, जिन पर यह आलोक पड़ता है, तो वे चमकने लगते हैं; जैसे बेरियम प्लेटिनो सायनाइड (Barium-platino-cyanid) इत्यादि। जंतु-जनित आलोक नवजात पौदों को अपनी ओर आकृष्ट कर झुका देता है। इतना ही नहीं, पत्तियों में जो वृक्षों का खाद्य क्लोरोफ़िल (chlorophyll) बनता है, उसमें यह क्रिया-वर्द्धक होता है। जंतु-निर्गत आलोक के रंग प्रायः नीले या फीके हरे होते हैं। कभी-कभी एक ही जंतु से भिन्न-भिन्न रंग निकलते हैं।

प्रकाशमय जंतुओं के अंग में अनेक कोष रहते हैं, जिनमें आलोक-प्रद पदार्थ बनते हैं। हमारे देश के जुगनू (glow-worm) में वैसा ही एक कोष रहता है। किसी-किसी जंतु के शरीर से एक प्रकार का पदार्थ निकला करता है, जो चमकता है। किसी-किसी मछली के शरीर में अनेक आँखें बनी रहती हैं। इन आँखों से वे देखती नहीं हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इनकी बनावट कुछ-कुछ आँखों की बनावट से मिलती है। हमारी आँखों म एक प्रकार का मध्योन्नत लेंस या प्रकला (lens) है, जिसके द्वारा बाह्य आलोक भीतर प्रवेश करता और रासायनिक क्रिया के द्वारा मस्तिष्क में संवाद भेजता है। मछलियों की आँखों में ठीक इसके विपरीत रासायनिक क्रिया संपन्न होती है, जिसके फलस्वरूप तेजोनिर्गमन होता है। इस शक्ति-परिवर्तन में ताप-शक्ति कोई भाग नहीं लेती, अतएव निर्गत आलोक शीतल होता है।

समुद्र में बड़े ही सुंदर-सुंदर जाज्वल्यमान जीव मिलते हैं। कोरल नाम की मछली देखने में बड़ी ही मनोरम होती है।

कोरल-मछली

(इसमें नीली, सुनहली और हरी प्रभा अद्भुत शोभा दिखलाती है।)
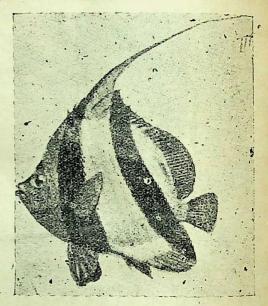
फ़्रांस के मार्किस डि फ़ोलाँ (Marquis de Folin) ने, जो समुद्र के गभीर प्रदेश की खोज करते हैं, एक अतीव मनोरंजक घटना का वर्णन किया है। उन्होंने समुद्र के गर्भ में जीवों को फँसाने के लिये एक जाल, जिसे ड्रेज (dredge) कहते हैं, फेंका। जब जाल ऊपर आया, तो उसमें अनेक अनुपम प्रभा-रंजित प्राणी निकले। उनसे जो तेज निकलता था, उसके सामने बीसों मसालें फीकी पड़ गईं। लोग उन प्राणियों को परीक्षा-भवन में ले गए, और वहाँ के दीपक बुझाकर देखने लगे। ईश्वर की कारीगरी का एक अनूठा उदाहरण मिला।

रह-रहकर उन प्राणियों के शरीर से मनोहर छटा निकलती थी। कभी बैंगनी, कभी नारंजी, कभी नीला, कभी हरा रंग निकलता, और कभी आलोक का रंग एकदम श्वेत हो जाता। पर ज्यों-ज्यों उन प्राणियों के प्राण निकलने लगे, त्यों-त्यों वे क्षीणप्रभ होते गए। उनकी जीवितावस्था में लोग उनसे छः गज़ के फ़ासले पर समाचारपत्र के सूक्ष्मतम अक्षरों को पढ़ सकते थे।

जंतु-जनित विद्युत्—अब ज़रा उन जीवों का हाल सुनिए, जिनके शरीर में विद्युत्कोष रहते हैं, और उनसे निरंतर अद्भुत छटा निकलती रहती है। परमात्मा की कैसी अपार लीला है! जिस विद्युत् के स्पर्श-मात्र से प्राणियों को आघात पहुँचता है, वही विद्युत् शरीर में बनकर आलोक प्रदान करती है!

प्राणियों के अंग-संचालन से पुट्ठों, रगों, आँखों की रक्त-वाहक सूक्ष्म नसों इत्यादि में जो क्रिया होती है, वही शक्ति अपना रूप बदलकर विद्युत्स्वरूप में निकलती है। जब 'मक्खीजाल' अर्थात् फ़्लाई-ट्रैप (Fly-trap) नाम का पौदा अपनी पत्तियों से किसी कीड़े को ढककर क़ैद कर लेता है, तो वहाँ एक वैद्युतिक क्रिया संपादित होती है। यही बात कितने ही और पौदों में पाई गई है। पत्तियों में क्लोरोफ़िल (Chlorophyll) के जो कार्बन-मिश्रित पदार्थ हैं, उनमें भी वैद्युतिक क्रिया होती है।

भूमध्य-सागर में एक मछली होती है, जिसे इलेक्ट्रिक रे (Electric ray), अर्थात् बिजली की ज्योति, कहते हैं। यह प्रायः १ गज़ लंबी और २ फ़ीट चौड़ी होती है। इसके पृष्ठ-भाग से रंग-बिरंगी ज्योति निकलती है। इसके शरीर के अंदर छोटे-छोटे असंख्य प्लेट अर्थात् तख़्ते होते हैं, जिनमें रगों की हरकत से बिजली संचित होती रहती है। इस मछली के स्पर्श से शरीर पर एक प्रबल वैद्युतिक आघात पहुँचता है, यहाँ तक कि पशुओं की मृत्यु तक हो जाती है। आघात करते-करते मछली की विद्युच्छक्ति नष्ट हो जाती है। फिर अवशिष्ट आघात उतने प्रबल नहीं होते।
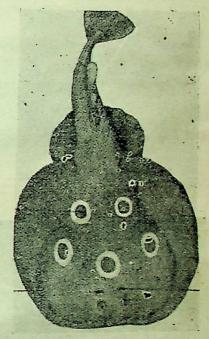
इलेक्ट्रिक रे-मछली

इलेक्ट्रिक ईल-मछली

ब्रेज़िल की दलदल-भूमि में एक प्रकार की लंबी मछली होती है, जिसे इलेक्ट्रिक ईल (Electric Eel) कहते हैं। इसमें इतनी अधिक विद्युत् रहती है कि यदि इसके पास एक हाथी जाय, तो वह भी वैद्युतिक आघात से मूर्च्छित हो जाय। यह

कभी-कभी ८ फ़ीट लंबी और तौल में २५ सेर होती है। इसके शरीर के ५ हिस्सों में ४ हिस्सा पूँछ ही समझिए। पूँछ के दोनों ओर बिजली भरी रहती है, और बिजली की धारा पूँछ से सिर की ओर दौड़ती है, जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है। जब यह अपनी पूँछ की नोक या सिर से अपने शरीर के किसी अंग का स्पर्श करती है, तो एक कठिन आघात पहुँचता है। जो प्राणी ईल से छू गया, वह अवश्य ही काल-कवलित हुआ। यह विद्युत् भी ईल की नसों तथा रगों की हरकत से उत्पन्न होती है। यहाँ गति-शक्ति आलोक-शक्ति में परिणत होती है। साहसी पुरुष इसका शिकार करते हैं। वे बहुतेरे घोड़ों को लेकर जल में जाते हैं। जब घोड़ों को मारते-मारते ईल की विद्युत्
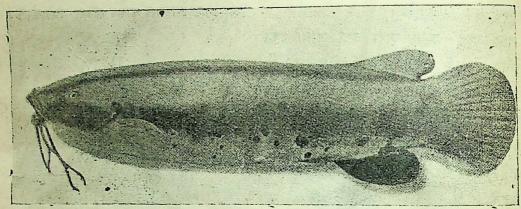
बिल्ली-मछली
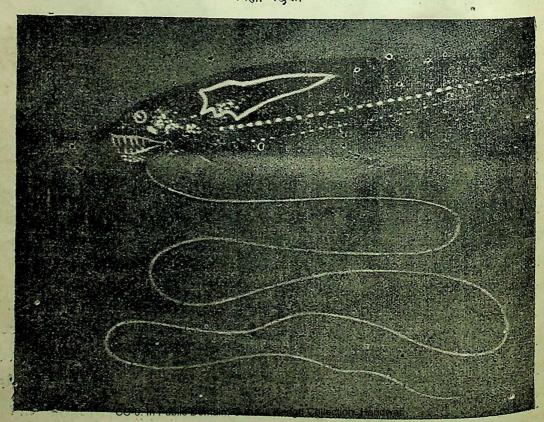
आयरलैंड के किनारे की प्रभान्वित मछली
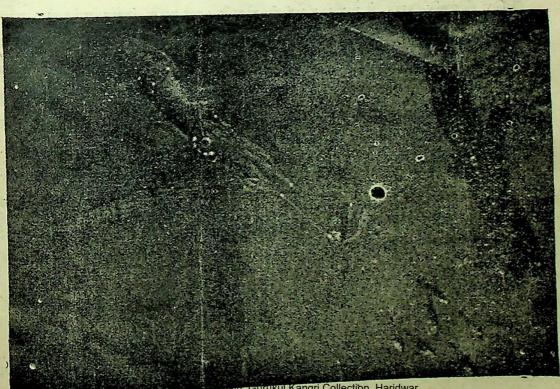
गंभीर प्रभामय समुद्र-तल

मध्य-अटलांटिक-सागर का चित्र

नष्टप्राय हो जाती है, तब वे उन्हें सहज ही पकड़ लेते हैं।

आफ़्रिका के विषुवत्प्रदेश तथा नाइल-नदी में एक प्रकार की मछली होती है, जिसे बिल्ली-मछली या कैट फ़िश (Cat-fish) कहते हैं।

यह शिथिल और देदीप्यमान मछली प्रायः एक गज़ लंबी होती है । यह अपने आघात से अन्य मछलियों को मारती रहती है। आघात का ज़ोर प्रायः ४५० वोल्ट होता है। वैज्ञानिक लोग सोच सकते हैं कि आघात में कितना बल होता होगा।

परमात्मा ने जल, स्थल, आकाश, सभी जगह अपनी महत्ता दिखलाई है ; परंतु अनुशीलन करनेवाले वीरों की आवश्यकता है। मध्य-अटलांटिक-सागर का सुंदर दृश्य देखिए।

जिस स्थान पर प्रकाश नहीं जा सका, वहाँ अपने प्रिय जीवों के लिये ईश्वर ने प्रकाशमय पौदे उत्पन्न कर दिए ; और जहाँ प्रकाशमय पौदे नहीं, वहाँ प्राणियों के देहों में ही प्रकाश दे दिया। इस प्रकाश से वे अपनी रक्षा करते हैं, शिकार करते हैं, और संभवतः स्वजातीय जीवों को पहचान भी लेते हैं।

रामेश्वरप्रसाद गुप्त

रस-रंग

[चित्रकार—श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा]

नायक—

तुम मेरी प्रानेश्वरी रमनी रमा-समान ;

नायिका—

तुम मेरे सर्बस्व प्रिय, वारौं तुम पर प्रान ।

राग देश-सोरठ—ताल तीन

स्वरकार—गोविंदप्रसाद शर्मा] [**शब्दकार**—चंदनरामजी (चरन)

छुननननन नननन बाजे मोहन पग पैजनी।

अस्थाई—आली बनमाली छवि निराली सोहे मन मोहे जिया जोहे,
भौंहें कमान हिय तान-तान मारे जो बान हाय गई जान, मुरली की तान करे
मधुर गान, संग गाजे पखावज धननननन। छुन०।

अंतरा—सप्त स्वर तीन ग्राम बंशी बाजी सासा, नीनी, धाधा, पापा,
पापा नीधापामा गारे धाधाकिट्धा धाधाकिट्धा धाधाकिट्धा चरन धरन धरत पग परत—
नई परन झाँझर झनके झन नननन ताना नादिर् दिर् दीम् तोम् तननननन। छुन०।

३				०				१				×			
ताल				खाली				ताल				सम			
		छु	न	न	न	न	न	न	न	न	न	बा	ऽ	ऽ	ऽ
		सां	नी	सां	रें	सां	नी॰	धा	पा	मा	गा	रे	—	—	पा
जे	ऽ	ऽ	मो	ह	ऽ	न	प	ग	ऽ	पै	ज	नी	ऽ	ऽ	ऽ
मा	गा	रे	सा	मा	—	रे	मा	पा	—	नी	नी	सां	—	—	—
ऽ	ऽ	आ	ऽ	ली	ऽ	ब	न	मा	ऽ	ली	ऽ	छ	बि	नि	रा
—	—	रे	—	गा॰	—	रे	रे	गा॰	—	रे	—	गा॰	गा॰	रे	रे
ऽ	ऽ	ली	सो	हे	ऽ	म	न	मो	ऽ	हे	जि	या	ऽ	ऽ	जो
—	गा॰	सा	सा	रे	—	नी॒	नी॒	नी॒	—	नी॒	नी॒	नी॒	—	—	नी॒
हें	ऽ	ऽ	भौं	हें	ऽ	क	मा	ऽ	न	हि	य	ता	ऽ	न	ता
सा	—	—	सा	मा	रे	रे	मा	—	मा	मा	मा	रे	मा	मा	पा

ऽ	न	मा	ऽ	रे	ऽ	जो	बां	ऽ	न	हा	ऽ	य	ग	ई	जा
—	पा	पा	पा	पा	धा	मा	पा	—	पा	नी	पा	नी	नी	नी	सा
ऽ	न	मु	र	ली	ऽ	की	ता	ऽ	न	क	रे	म	धु	र	गा
—	सा	नी	सा	रे	रे	रे	रे	—	रे	गा	रे	सा	नी	नी	नी
ऽ	न	सं	ग	गा	ऽ	जे	प	खा	ऽ	व	ज	ध	न	न	न
—	नी	नी	नी	पा	नी	नी	नी	सा	—	सा	सा	नी	धा	पा	मा

अंतरा

३				०				१				२			
न	न	छ	न	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
गा	रे	सा	नी	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
				स	ऽ	प्त	स्व	ऽ	र	ती	ऽ	न	ग्रा	ऽ	म
				पा	—	पा	रे	—	रे	रे	—	रे	रे	—	रे
बं	ऽ	शी	ऽ	बा	ऽ	जी	ऽ	सा	सा	ऽ	नी	नी	ऽ	धा	धा
रे	—	गा	रे	नी	—	नी	—	सा	सा	—	नी	नी	—	धा	धा
ऽ	पा	पा	ऽ	पा	ऽ	पा	ऽ	नी	धा	पा	मा	गा	रे	ऽ	ऽ
—	पा	पा	—	पा	—	पा	—	नी	धा	पा	मा	गा	रे	—	—
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	धा	धा	किट्ट	धा	धा	धा	किट्ट	धा	धा	धा	किट्ट	धा
—	—	—	—	मा	मा	मा	पा	नी	पा	नी	नी	पा	नी	नी	सा
ऽ	च	र	न	ध	र	न	ध	र	त	प	ग	प	र	त	न
—	सा	सा	सा	पा	पा	पा	नी	नी	नी	सा	सा	सा	नी	सा	रे
ई	प	र	न	झाँ	झ	र	झ	न	के	ऽ	झ	न	न	न	न
सा	नी	धा	पा	पा	रे	सा	नी	नी	नी	—	नी	नी	नी	नी	नी
न	न	ता	ना	ना	दिर्	दिर्	दी	ऽ	म्	तोम्	त	न	न	न	न
नी	नी	नी	नी	पा	नी	नी	सा	—	सा	सा	नी	सा	रे	सा	नी
न	न	छ	न	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
धा	पा	सा	नी	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—

(१) जिस स्वर के नीचे ० यह निशान हो, वह कोमल समझा जाय।

(२) जिस स्वर या अक्षर के बाद ऽ और—निशान हो, उसका प्रसार किया जाय।

(३) जिस स्वर के ऊपर—यह निशान यथा सा रे हो, वह तार सप्तक का समझा जाय।

---

१. सर आशुतोष मुखोपाध्याय

विद्यावीर, महापुरुष, शास्त्रवाचस्पति, संबुद्धागम-चक्रवर्ती, भारत-मार्तंड, एम्० ए०, डी० एल्०, डी० एस्-सी०, एफ़० आर० ए० एस्०, एफ़० आर० एस्० ई०, भूतपूर्व प्रेमचंद-रायचंद-वृत्तिधारी और कलकत्ता-हाई-कोर्ट के प्रधान जज सर आशुतोष मुखोपाध्याय सरस्वती का शुभ जन्म सन् १८६४ ई० में हुआ था। आपके पिता का नाम डॉक्टर गंगाप्रसाद मुखोपाध्याय था। आपने बी० ए० की डिगरी सन् १८८८ ई० में और डी० एल्० की डिगरी सन् १८६४ ई० में कलकत्ता-युनिवर्सिटी से पाई थी। आप बी० ए० की (ऑनर्स कोर्स) गणित-परीक्षा में, कलकत्ता-विश्वविद्यालय में, सबसे प्रथम हुए थे। पदार्थ-विद्या (Physics) में आप एम्० ए० थे। आपने प्रेम-चंद-रायचंद-वृत्ति के लिये भी अति कठिन परीक्षा दी थी, जिसमें आप ही को वृत्ति मिली। बाल्यकाल ही से आपकी कुशाग्र-बुद्धि और अद्भुत कार्य-क्षमता का परिचय मिलने लगा था। गणित-शास्त्र, पदार्थ-विद्या और क़ानून के तो आप अद्भुत विद्वान् थे ही, परंतु अँगरेज़ी और संस्कृत आदि भाषाओं तथा इतिहास आदि विद्याओं में भी पारंगत थे। आपकी विद्वत्ता इतनी गंभीर और मानस शक्तियाँ ऐसी विकसित थीं कि कलकत्ते के चीफ़ जस्टिस आदि अनेक विज्ञों ने आपको केवल बंगाल का ही नहीं, समस्त भारतवर्ष का सबसे बड़ा पुरुष कहा है।

अपनी योग्यता और परिश्रम से आप ऐसे अद्वितीय हुए कि टैगोर लॉ-प्रोफ़ेसर का स्पृहणीय पद, हाईकोर्ट के जज का पद, दस-ग्यारह वर्ष तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर का अधिकार तथा अंत को हाईकोर्ट के मुख्य जज (Chief Justice) का पद आपको स्वतः प्राप्त हुआ। आज तक कलकत्ता-विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर का सम्मान्य पद दस-ग्यारह वर्षों तक लगातार किसी ने गौरवान्वित नहीं किया। भारतवर्ष तथा विदेश के हिंदू, बौद्ध तथा योरपियन विद्वत्समाजों से आपको अनेक पदवियाँ मिली थीं। आप इन पदवियों से भूषित नहीं थे, प्रत्युत ये पदवियाँ ही आपसे भूषित थीं। बहुत-से लोग विशेषतः आपके साथ काम करनेवाले हिंदू, मुसलमान तथा अँगरेज़ आदि, इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि बुद्धि, विद्या और परिश्रम के कार्यों तथा देश-हित की चिंता और अनुष्ठानों में आप कभी किसी से पीछे नहीं रहते थे। लगातार आठ-आठ घंटे तक खड़े रहकर ज़ोरदार वक्तृता देना या युक्ति-युक्त बहस करना आपके लिये कोई बात नहीं थी। विश्व-विद्यालय के छोटे-बड़े प्रश्न-पत्रों से लेकर बड़े-बड़े अन्वे-

षण (Research) के कार्यों तक का विवेचन तथा गुण-दोष-निरीक्षण आदि आप स्वयं करते थे।

आपने दिए हुए प्रश्न-पत्र आदि का शुल्क (fee) आप कभी नहीं लेते थे। आप ही के वाइस चांसलर रहते-रहते और आप ही के प्रेम तथा विश्वास के कारण कलकत्ता-विश्वविद्यालय को सर तारकनाथ पालित और सर रासविहारी घोष से लाखों रुपए दान-स्वरूप मिले। आप ही की गुणग्राहिता से डॉ० गणेशप्रसाद तथा डॉ० चंद्रशेखर वेंकट रमन-जैसे विद्वान् आज कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्यापन और तत्त्वानुसंधान का कार्य कर रहे हैं। आपके अनुग्रह से सरकारी नौकरी छोड़कर शुद्ध सरस्वती-सेवा में लगे हुए डॉ० चंद्रशेखर वेंकट रमन ने ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार किए तथा अद्भुत ग्रंथ लिखे कि वह समस्त योरप के वैज्ञानिकों में प्रसिद्धि पाकर एफ़० आर० एस्० की दुर्लभ पदवी के अधिकारी हुए हैं। यह पदवी आज तक केवल तीन ही भारतीयों को मिली है।

छोटे-बड़े, विद्यार्थी, अफ़सर, अँगरेज़, हिंदू, राजे-महाराजे और देशी-विदेशी सज्जन हज़ारों की संख्या में आपके द्वार पर, दर्शन के लिये, आते थे। सबसे आप एक ही भाव से मिलते थे। घर पर केवल धोती ही या कभी धोती और कुर्ता पहने रहते थे। ऑफ़िस में भी आप अँगरेज़ी ढंग का कोट-पतलून नहीं पहनते थे। आप अनेक विद्यार्थियों को गुप्त दान द्वारा सहायता पहुँचाया करते थे। आपका सादा स्वभाव और प्रसन्न भाषण बरबस चित्त को मोहित कर लेता था। आप ऐसे स्वतंत्र प्रकृति के थे कि हाल में आपने वाइस चांसलर और हाईकोर्ट के जज का पद त्यागकर फिर वकालत करना शुरू कर दिया था; और सुना जाता था कि आप राजनीति के कार्यों को हाथ में लेकर सर्वात्मना देश-सेवा में लग जानेवाले थे। आपकी अद्भुत शक्तियों से देश को बहुत लाभ की आशा थी। आप-जैसा अद्भुत शक्तिशाली पुरुष यदि अमेरिका और फ़्रांस-जैसे स्वतंत्र देशों में उत्पन्न होता, तो उन राज्यों के सभापति (President) के पद की शोभा बढ़ाता, अथवा नेपोलियन और बिस्मार्क आदि की तरह युग-परिवर्तनकारी कार्य करके फिर से संसार को दिखला देता। यदि आप अधिक जीवित रहते, तो इस दीन-हीन देश में भी कुछ दिनों में न-जाने आप क्या-क्या कर दिखाते।

इधर, हाईकोर्ट की जजी छोड़ने के बाद, आप पटने में रहते थे। गत ता० २३ मई (१९२४) शुक्रवार को सबेरे गंगातट के पासवाले मैदान में आप टहल रहे थे (वहाँ आप प्रायः प्रतिदिन टहला करते थे)। टहलते-टहलते अकस्मात् आप अस्वस्थ हुए। शीघ्र ही आप डेरे पर लौट आए। रविवार के प्रातःकाल आपकी अवस्था बहुत ख़राब हो गई। आप हमारी प्रयोगशाला से सटे हुए एक बड़े मकान में रहते थे। हम लोगों को कुछ भी ख़बर न थी कि आप अस्वस्थ हैं। रविवार की संध्या को हमारे एक मित्र ने बड़ी घबराहट के साथ इनकी शोचनीय अवस्था की सूचना दी। हमारे पहुँचते-पहुँचते सर आशुतोष का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। बहुत-से डॉक्टर और वैद्य इकट्ठे थे। किसी को अब इनके बचने की आशा न थी। रविवार (२५ मई) की संध्या को (७ बजे) सर आशुतोष की आधिभौतिक शक्ति सदा के लिये अस्त हो गई। परंतु संसार में जब तक सरस्वती-सेवियों के हृदय में कुछ भी विद्यानुराग रहेगा, तब तक इन विद्यावीर की पवित्र स्मृति जीवित रहेगी।

उसी रात को सर आशुतोष के पुत्रों ने उनका शव-शरीर कलकत्ते पहुँचाने का प्रयत्न किया। वे लोग स्पेशल (Special) द्वारा शव को कलकत्ते ले गए। यहाँ (पटने) से अनेक लोग साथ गए। रेल आदि का प्रबंध करने में मि० हसनइमाम आदि बड़े-बड़े लोगों ने बड़ी सेवा की। सोमवार को अनेक राजे-महाराजे, अमीर-उमरा, जज-मैजिस्ट्रेट, विद्वान्-विद्यार्थी प्रभृति लाखों मनुष्य सर आशुतोष के शव के साथ हवड़ा-स्टेशन से कालीघाट तक गए। रात ही को मृत्यु-समाचार कलकत्ते में दावानल की तरह फैल चुका था। कालीघाट पर अंत्येष्टि हुई। सोमवार को कलकत्ता-हाईकोर्ट, पटना-हाईकोर्ट, कलकत्ते की और कचहरियों तथा ऑफ़िसों में आपकी यादगार मनाई गई। इधर प्रतिदिन वायसराय की कौंसिल से लेकर छोटी-बड़ी अनेक समितियों में आपका स्मरण किया जा रहा है। शोक में कचहरियाँ भी बंद हुईं।

अब इन विद्यावीर का स्मारक किस रूप में पृथ्वी पर स्थापित किया जाय, इसका विचार भी जहाँ-तहाँ सुनने में आ रहा है। करोड़ों रुपए लगाकर समस्त भारत के लिये यदि एक [illegible] वैज्ञानिकानुसंधान-समिति आपके

नाम से स्थापित की जाय, तो आपकी स्वर्गीय आत्मा को पूर्ण संतोष होगा । किंतु समिति किसी ऐसे केंद्र-स्थान में स्थापित की जाय, जहाँ संसार के समस्त विज्ञानों पर संस्कृत, हिंदी और बँगला आदि भाषाओं में, उत्तम विद्वानों द्वारा, अनुवाद अथवा मौलिक ग्रंथ लिखवाए जायँ, और जनता में वैज्ञानिक तत्त्वों का प्रचार कराने का भी बराबर प्रयत्न किया जाय। आशा है, ऐसा करने से, भारतवर्ष के लोगों पर जो आपके उपकार का ऋण है, वह कुछ अंशों में चुकाया जा सकेगा।

पांडेय रामावतार शर्मा

× × ×

२. यौवन-तरंग

(१)

उस दिन—यौवन-मद में चूर,
झूमता, इठलाता, इतराता,
प्रेमोत्फुल्ल हृदय से गाता,
मंद-मंद मुसकाता,
अरुणोदय में, निर्जन वन में, लता-कुंज में,
कोकिल के मृदु 'कुहु'-कूजन में, मधुप-पुंज में,
प्राणसखी उन्मादिनि को मैं ढूँढ़ रहा था बन करके उद्भ्रांत;
कभी अश्रु पीता, ग़म खाता, रोता और विहँसता—
हुआ मैं कठिन क्लांत !
सहसा देख खड़े सम्मुख ही सरल-हृदय निज शिशु को—
उमड़ पड़ी निर्दयता मुझमें !
मैंने उसकी हँसी उड़ाई, ठेल मार्ग से उसको—
आगे बढ़ा, घूमकर बोला—"घर जाओ अनजान।
क्या समझोगे मुझ पागल का तुम यौवन-विज्ञान ?"
उसी समय उसकी प्यारी आँखों से
झरने लगे विकल झरने-से आँसू झर-झर,
पत्र-सरीखा लगा काँपने उसका तन थर-थर-थर
मैं चल पड़ा, कहा—"क्या अरे, हीन हूँ ?"
शिशु ने समझा—मैं बालक हूँ और दीन हूँ।

(२)

आज देख उसको ही सहसा युवक और मतवाला—
चीख़ उठा मैं—अदल-बदल किसने कर डाला ?
चंपे का-सा रंग कहाँ से उसने पाया ?
सुंदरियों का वशीकरण किसने सिखलाया ?
दिन-दिन उसके मुख पर कैसा है रस सरस चमकता ?
वह आनंद-सिंधु में बहता, गाता और बहकता !
चला गया मैं निकट उसी के—
कहा—कि—"क्या करते हो ?
क्यों अपने सम इस दुनिया में
किसी को न गिनते हो ?
यहाँ अकेले खड़े-खड़े क्या सुख पाते हो ?
अंधकार में प्रेम-प्रभा को फैलाते हो !"
बोल उठा वह—"यह है यौवन की सुखमयी तरंग;
अरे वृद्ध, तुम क्या समझोगे यह सुख, यह रस-रंग।"
चकित हुआ मैं, यह क्या माया ?
मुझको अंधकार दिखलाया।
बस, लेकर संन्यास पहन ली मैंने कफ़नी;
वह तरंग अब ढूँढ़ रहा हूँ खोई अपनी।

"गुलाब"

× × ×

३. संयोग और वियोग

तुम आए मधुर वसंत !
हाँ, मुखरित हुआ दिगंत।
अरुण-प्रभा ने रवि के रथ पर अपना किया पसार;
चंपा ने मादक सौरभ से मोह लिया संसार।
मंद मलय-मारुत ने बहकर अपना किया विहार;
जुही-चमेली ने खिल-खिलकर पाया कुछ उपहार।
उस दिन ऊषा के अधरों पर,
नवागता के मृदु अंचल पर,
पड़े अचानक ही चंचल कर
चंचल होकर या सर्वस्व गवाँकर—
विकसित हुआ प्रकाश,
खग-दल हुआ निराश;
अहो, नीड़ को रिक्त छोड़कर नभ में किया प्रवास;
नवल प्रभा में उस दिन किसका हृत्तल हुआ हताश !
वक्षःस्थल पर वक्षःस्थल रख,
अधरों पर रख प्यासे ओंठ।
कर नयनों को बंद,
पान किया मकरंद,
तृप्त हुए ये प्यासे ओंठ।
कोरा बजरा शीघ्र सजाया,
सागर-तल पर बहने को;

नरल वायु के हिलकोरों को
धीरे-धीरे सहने को।
प्रेमीद्वय के आलिंगन में, मंद हास्य में,
मृदुल ज्योत्स्ना स्तब्ध-मात्र थी चंद-लास्य में।
दिनकर के अवसान-मात्र में दिन-भर का कुछ क्लांति ;
एक अलस मंथर गति से आ लगी बढ़ाने श्रांति।
शैशव की सुखदायक स्मृति-सा,
वैभव की संभ्रम-संसृति-सा,
एक समाहत कवि की कृति-सा ;
सुखद स्वप्न से दो अंतस्तल हुए अचानक भाराक्रांत ;
क्या उद्भ्रांति-काल में भी वह हो सकता है जन संभ्रांत ?
एक विराट् आनंद-राग,
कोमल-सा मिलता अनुराग ;
किसके अधरों पर फूटा,
जिसने आकर ही लूटा !
मुग्ध किया, विस्तृत कर डाला—
सागर की लहरों पर,
तारों के पहरों पर,
शीतलता में, शुभ्र शांति में, केवल मृदु कल-कल में ;
मुग्ध प्रिया के अंचल में।
किंतु अचानक निष्ठुरता से स्वप्नों का संहार हुआ ;
किसने हत-सर्वस्व किया, हा ! कवि का ही संहार हुआ।
कवि का बजरा कहाँ गया ?
कवि का कूजन कहाँ गया ?
सर्वस्व गया !—हाँ कहाँ गया ?
जिस पर अंकित थी छवि सुंदरता की—प्रिया-मात्र की !
कहाँ गई—मानस-वाहिनी, सानुरागिनी, रस-मात्र की ?
केवल मुख पर स्वेद-बिंदु हैं,
कोयल का है कातर गान ;
केवल संपुट बाँधे कलियों
का है अब होना परिम्लान।
केवल जुही, चमेली, चंपा
का है अब क्रंदन करना ;
केवल खग-वृंदों का है
अब तो सब बंधन सहना।
किंतु,
कहाँ गए सुख-साज वसंत !
हाय !
कैसी है यह भ्रांति अनंत ?
चला गया है—वह सुंदरता की मूर्ति वसंत ;
केवल अब है, कवि-कातरता की भीति अनंत।
तो भी,
किसकी ज्वाला !—किसकी लू-लपटों से ;
होता है संहार ;
किस निर्दय की घातकता से—देखो !
होता है अविचार !
कातरता से कोयल करती कूक,
विह्वलता से उपजाती है हूक,
इस वक्षःस्थल को वह करती टूक ;
हे निर्दय घातक ग्रीष्म !
मैं हूँ केवल नीरस, केवल रिक्त ;
प्रिया-मधुरिमा से है हृत्तल सिक्त।
तो भी आओ,
तन छार करो,
संहार करो,
हे निर्दय घातक ग्रीष्म !

ज़हूरबख़्श

× × ×

४. तरल तरंग

१—प्रेम की प्यासी

(क)

मेरे पास एक बड़ी-सी नाँद थी। वह किस पदार्थ की बनी थी, यह आज तक ठीक-ठीक निश्चय न हो सका। पदार्थ चाहे कोई हो, लेकिन था वह बहुत ही कोमल, परंतु दृढ़ ; अत्यंत सुहावना, परंतु दुर्लभ। नाँद तो वह सुहावनी एवं विचित्र थी ही, किंतु उसमें भरा हुआ तरल रस और भी अधिक मनभावना एवं कौतूहलप्रद था। वह स्वाद में अत्यंत मधुर, सुवास में अत्यंत मनोरम तथा दृष्टि को मंत्र-मुग्ध करने में जादू की शक्ति रखनेवाला था। उसके ऊपर दृष्टि नहीं ठहरती थी ; परंतु उसमें सूर्य की चकाचौंध न थी—चंद्र की शीतलता एवं चंद्रकांत-मणि की तरलता उसमें अपना रूप देखती थीं। यह दिव्य कोष, यह स्वर्गीय भंडार, मुझे कब प्राप्त हुआ, यह मुझे याद नहीं। हाँ, इतना जानता हूँ कि जब से होश सँभाला है, इसे अपने ही पास पाया है। किसने दिया, इसका भी मुझे ध्यान नहीं। हाँ, स्मृति-

पट पर एक अत्यंत अस्पष्ट चित्र-सा देख पड़ता है, जैसे दिवाकर के साथ प्रणयिनी उषा के प्रथम सहवास में क्षितिज पर स्थित सुदूरवर्ती वृक्ष-समूह । कदाचित् मुझे बिदा करते समय पिता ने यह सौग़ात बाँध दी थी। मेरी नाँद किसी बड़े नगर के खचाखच भरे हुए राजपथ पर नहीं रक्खी थी। वहाँ तो मदिरा के मद में चूर नेत्रों पर मोटा परदा डाले हुए पथिक-समाज भला इसे कब रहने देता ? कठोर जूतों की ठोकरों से इसका पता भी न लगता। मेरा यह अमूल्य कोष एक रम्य निकुंज में स्थापित था। कभी-कभी संसार के ताप से तपा हुआ कोई प्यासा बटोही उधर से आ निकलता, तो मैं सादर उसे अपना अतिथि बनाता। वह अपना छोटा-सा मिट्टी का पात्र उस अमूल्य रस से भर लेता। जिस-जिसने उसे पिया, वह मोह गया; जितना पिया गया, उतना पिया, फिर अपना पात्र भर लिया। यों ही समय बीतता गया। एक-एक करके अनेकों बटोही आए। सभी ने पेट-भर पिया, और अपना मिट्टी का छोटा पात्र भर लिया।

(ख)

मुझे खूब याद है— हाँ, वह चैत्र की पूर्णिमा थी। गगन में निशानाथ अपनी प्रणयिनी ज्योत्स्ना को गाढ़ आलिंगन कर रहे थे। निशा बेचारी अपने 'नाथ' की इस प्रेमलीला से तिरस्कृत होकर छिपने को जगह ढूँढ़ती फिरती थी। आकाश में तो बेचारी को कहीं आश्रय नहीं मिला, पृथ्वी पर भागी हुई आई। नगरों में जाकर अट्टालिकाओं में छिपी, तो सौत ने झरोखों-झिलमिलियों से झाँक दिया। भागकर वन की शरण ली, और वृक्षों के तले छिपी, तो सौत ने पत्तों में होकर छींटे मारे।

चंद्रदेव इस सौतिया-डाह को देखकर मुसकिराते और अपनी प्रणयिनी के पीछे-पीछे कुएँ-तालाब झाँकते फिरते थे। इसी ज्योत्स्ना में अपने रंग को मिलाती हुई एक बटोहिन आई। अन्य बटोहियों की भाँति इसके पास मिट्टी का छोटा पात्र न था, वरन् कनक की एक बड़ी-सी गागर थी। चंद्रदेव की उसी मुसकान में अपनी मुसकान मिलाते हुए उसने मेरी ओर देखा। उसकी दृष्टि में तृषा-तृप्ति की भिक्षा थी। मैं निश्चल भाव से इस नवागता को देख रहा था। वह फिर मुसकिराई— नेत्रों ने अपनी भिक्षा को फिर दुहराया। मुझे चेत हुआ;

मैंने कनखियों से नाँद की ओर इशारा किया। नाँद के किनारे वह बैठ गई। कमल-पत्रों में होकर जैसे कोई कलिका सहसा फूटती और अपने प्रियतम के साक्षात् से खिल उठती है, वैसे ही सुंदर वस्त्र-पट को हटाती हुई एक अंजलि निकली।

उसने रस-पान के हेतु अंजलि को नाँद में डुबोया। भ्रांत दृष्टि ने समझा, कोई खिला हुआ कमल सरोवर में डुबकी लगा रहा है। एक अंजलि होठों तक आई। बटोहिन ने उसी जूठी अंजलि को फिर नाँद में डुबोया। क्षण-मात्र के लिये मैं चौंका। वह हँस पड़ी, जैसे फणींद्र अपनी मणि पर किसी को आक्रमण करते देखकर चौंकता है, परंतु निपुण सपेरा उसे महुअर बजाकर सुला देता है। न मालूम वह कितनी प्यासी थी। कदाचित् उसने प्रथम बार ही अपने जन्म में इस रस का आस्वादन किया था। कितनी ही अंजलियाँ उसने भरीं और पी लीं। प्रत्येक अंजलि उसे मतवाला बनाती थी। उसके सलोने नेत्र झूमते थे, साथ ही मेरा हृदय भी झूमता था। पता नहीं, उसने कब तक अंजलि भर-भरकर पिया। क्षण-मात्र के लिये वह रुकी। एक भाव-पूर्ण दृष्टि मेरे ऊपर आ पड़ी। उस चितवन में क्या था, यह मैं कैसे बताऊँ। यदि उन 'बड़री अँखियान' की थिरक विजय-पताका फहरा रही थी, तो उन लोने-लोने लोचनों के सजल कोए पूर्ण आत्मसमर्पण की चुग़ली खा रहे थे। यदि वे अरुण नेत्र विजयी की मदिरा के प्याले थे, तो वह एकटक दृष्टि एक अचिंतित पराजय को समझने का प्रयत्न था। हा ! यदि वह उस 'सोमरस' को पीकर मतवाली हुई थी, और अपने आपे को खो बैठी थी, तो मैं उसकी उन्माद-मदिरा के दो लहलहाते हुए प्याले पीकर अपने आपे को, और अपने नाँद में भरे तरल द्रव्य को खो बैठा था।

चतुर सेनाध्यक्ष की भाँति उसने एक दृष्टि में पराजय के लक्षण देख लिए। विद्युत्-गति से उसने पैंतरा पलटा। चंद्रदेव आकाश में हँसकर जड़-संसार को प्रकाशित कर रहे थे। उसने अपनी भोली हँसी से मेरे सजीव निकुंज में प्रकाश कर दिया। उसके कोमल पतले-पतले होठ मुसकिरा रहे थे— वसंत-काल में कोमल नव-किसलय भी आम्र-वृक्ष पर यों ही मुसकिराते हैं। उसके अरुण कपोल प्रफुल्ल हो रहे थे— बाल सूर्य को देखकर कमल की अरुण पखड़ियाँ भी यों ही प्रफुल्लित होती हैं। और, हँस रहे थे

उसके लोने मदमाते नेत्र—उन्मत्त प्रेमियों के बीच मदिरा के प्याले भी यों ही छलकते हैं। चाल चल गई। चढ़े हुए नशे में एक गहरा प्याला और पिला दिया—हाथों में शक्ति न थी कि रोक सकें। बटोहिन ने कनखियों से अपने गगरे की ओर संकेत किया। फिर नाँद की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखा—नेत्रों ने गागर भरने की भिक्षा माँगी। मैं मौन था। "मौनं स्वीकृतिलक्षणम्।"—बस, वे ही कोमल अंजलियाँ, जो कुछ क्षण पूर्व उन नैसर्गिक होठों के चुंबन से धन्य हो चुकी थीं, नाँद के रस को गागर में भरने लगीं। मेरे नेत्रों में शैथिल्य-जनित स्थिरता थी। देखते-ही-देखते वह अमूल्य कोष, जो अनेकों पथिकों के आतिथ्य से तिल-भर भी ख़ाली न हुआ था, आज ख़ाली हो चला। अंजलि के बाद अंजलि! ओह, अब तो सिर्फ़ तली में तलछट ही रह गई। मतवाले नेत्र एक बार फिर मेरी ओर देखकर मुसकिराए। पागल के अंतिम प्रयास की भाँति वह तलछट भी गागर में डाल ली गई।

अलसाए हुए नेत्रों ने एक बार ख़ाली नाँद को देखा, फिर भरी हुई गागर पर एक संतोष-पूर्ण दृष्टि डाली। एक दीर्घ निःश्वास ने तृष्णाग्नि की शांति की सूचना दी। अब की बार फिर उन नेत्रों ने मेरी ओर देखा—अति उन्माद-जनित शिथिलता अपना पूर्ण राज्य जमाए हुए थी। प्रथम बार नेत्र-झरोखों में बैठकर दो हृदय मिले—शिथिलता ने आत्मसमर्पण का बाना धारण किया। अब वह न ठहर सकी—शिथिल अंग मेरी गोद में ढुलक गए। एक क्षण में मैंने अपने कोष को खोया था—दूसरे क्षण में उस कोष को और ब्याज में उसकी विजेत्री को अनंत लावण्य-राशि में लिपटा हुआ पाया। चंद्रदेव अपनी प्रणयिनी ज्योत्स्ना को आलिंगन कर रहे थे, और मैं अपनी प्रणयिनी विजेत्री को हृदय से लगा रहा था।

२—'फूट गई री गागरिया'

(क)

हृदय ख़ाली पड़ा था—उस बटोहिन का रूप रक्खे हुए लुटेरिन ने संपूर्ण प्रेम-रस लूटकर अपनी स्वर्ण-गागर भर ली थी। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आए, और चले गए। परंतु मैं अपनी इस निर्धनता में ही संतुष्ट था, परम सुखी था। उस लुटेरिन के पास अनंत धन-राशि थी। फिर भी उसने मुझ कंगाल के कोष को क्यों लूटा, यह वही जाने। उस लुटेरिन ने समस्त संपत्ति मेरे चरणों के नीचे रख दी, और स्वयं अपना सिर रखकर सो गई। मैंने उसके सिर को अपनी गोद में रख लिया, थपथपाया और चुंबन किया। मैंने देखा, उस सोने की गागर को वह अब भी अपनी बग़ल में दबाए, हृदय से चिमटाए है। मैंने उस गागर के रस को उलट लेना चाहा—उसने नेत्र खोल दिए। मुसकिराकर बोली—"नाथ, यह न दूँगी—एक बूँद भी न दूँगी—वैसे सर्वस्व आपके चरणों पर अर्पण है।" एक चुंबन से मैंने उसका मुँह बंद कर दिया। वह सो गई, मैं भी उसके वक्षःस्थल पर सिर रखकर सो गया।

(ख)

जब जागा, तो वह बटोहिन, लुटेरिन, ठगनी और छलिया मेरे पास न थी। कनक की गागर फूटी हुई पड़ी थी—वह अमूल्य रस सारी पृथ्वी पर फैल गया था। जिधर दृष्टि जाती, उधर उसी के कण दृष्टिगोचर होते। मैंने अपने हृदय में देखा—क्या मैं दुःखी था? नहीं-नहीं। अब मुझे किसी की पर्वा नहीं है। अब यह अमूल्य रस किसी लुटेरिन के हाथ न लगेगा। यह अब अपने ठिकाने लग गया। पिता ने यह धरोहर जिसके लिये दी थी, वहाँ वह बँट गई। अब मैं असंख्य कणों में उस बटोहिन का प्रतिबिंब देखता हूँ, और प्रत्येक प्रतिबिंब में पिता का पवित्र संदेश पढ़ता हूँ—'विश्व-प्रेम'

केशवलाल अग्रवाल

× × ×

५. अनंत की ओर

(१)

आशाओं के स्वप्न, क्षणिक जीवन के विषम विषाद बिदा!
भावों के सुख-स्वर्ग, कल्पना के सुंदर प्रासाद बिदा!
बिदा 'अहम्' की घनमय छाया, भ्रांति-पूर्ण उन्मत्त अशांति;
उद्गारों के वेग, महत्त्वाकांक्षा के उन्माद बिदा!

(२)

माया और ममत्व, वासना के मतवाले राग बिदा!
विश्व-कुसुम के पागल करनेवाले मधुर पराग बिदा!
बिदा वेदना और हृदय की करुण कथा के उपसंहार;
परिधि-रहित परिताप, और उस मौन व्यथा की आग बिदा!

(३)

लोलुप तृष्णा की उतावली-सी उन्मत्त उमंग बिदा!
यौवन-मद के दीवानेपन की वह तरल तरंग बिदा!

बिदा सुखों के विस्तृत सागर की उच्छृंखल उच्च उठान ;
और नाश के भीषण स्वर के ध्वनि-प्रतिध्वनि के व्यंग्य बिदा !

भगवतीचरण वर्मा

× × ×

६. विदेशी हुंडियों की दर और सट्टा

यह प्रायः देखा गया है कि विदेशी दर्शनी हुंडियों की दर सब देशों में किसी भी समय एक-सी रहती है और सर्वत्र एकसाथ ही घटती-बढ़ती है । इसका मुख्य कारण यह है कि जो महाजन या बैंक विदेशी हुंडियों में लेन-देन करते हैं, उनको तार या समाचारपत्र के द्वारा प्रायः सब देशों के बाज़ारों की इन हुंडियों की दर बराबर मालूम होती रहती है, और यदि किसी हुंडी के संबंध में किन्हीं भी दो देशों के बीच थोड़ा-बहुत फ़र्क़ मालूम हुआ, तो वे एकदम उन हुंडियों में सट्टा करना शुरू कर देते हैं, जिससे दो देशों में उस हुंडी की दर प्रायः एक-सी हो जाती है । यह समझाने के पहले कि इस सट्टे द्वारा साहूकार या बैंक किस प्रकार से मुनाफ़ा उठाते हैं, पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि समाचारपत्रों में विनिमय की जो दरें अक्सर दी जाती हैं, उनका असली मतलब किस प्रकार से समझना चाहिए ।

समाचारपत्रों में दर्शनी और विदेशी हुंडियों की दरें दी हुई रहती हैं । दर्शनी हुंडियाँ दो प्रकार की होती हैं । एक तो एक बैंक द्वारा दूसरे बैंक या अढ़तियों पर की हुई रहती हैं, जिसे बैंक-ड्राफ़्ट कहते हैं, और दूसरी साधारण हुंडी । जिस देश पर हुंडी की हुई रहती है, उसका भी उल्लेख रहता है । यदि तार की हुंडी हुई, तो T. T.(टेलीग्राफ़िक-ट्रांसफ़र)-शब्द लिखा रहता है । D. D. लिखा हुआ हो तो समझना चाहिए, वह दर्शनी बैंक-ड्राफ़्ट है । कभी-कभी दर के साथ ही यह भी बतला दिया जाता है कि वह दर बेचने की है, या ख़रीदने की । जिस दर के संबंध में यह बात नहीं लिखी रहती, उसके संबंध में यह समझना चाहिए कि लेन-देन उसी दर पर हो रहा है । जब किसी हुंडी के बारे में दो दरें दी हुई रहती हैं, तो एक दर तो बैंक-ड्राफ़्ट की और दूसरी साधारण हुंडी की रहती है । यदि मुद्दती हुंडी हुई, तो यह भी लिखा रहना आवश्यक है कि कितने दिनों के बाद उसकी मुद्दत पूरी होगी [illegible] यदि किसी समाचारपत्र में यह लिखा हो कि Banks selling rate T. T. on London is 1s. 4¼d. तो उसका अर्थ यह होगा कि भारत में लंदन पर की हुई दर्शनी तार की हुंडी १ शि० ४¼ पेंस की दर से बेची गई । इसी प्रकार Banks buying rate 2 months for Japan is R 165 for 100 yem का मतलब होगा कि भारत में जापान पर की हुई दो महीने की मुद्दती हुंडी १६५ रु०=१०० येंस के हिसाब से ख़रीदी गई । कभी-कभी भारत के अँगरेज़ी समाचारपत्रों में क्रास-रेट और किसी देश का नाम दिया हुआ रहता है, जिससे यह मालूम होता है कि इँगलैंड का उस देश पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी की दर क्या है । यदि किसी पत्र में अमेरिकन क्रासरेट ४·७२ डालर दिया हुआ है, तो इसका मतलब यह है कि उस दिन लंदन में अमेरिका पर की हुई दर्शनी हुंडियों की दर ४·७२ डालर = १ पौंड थी ।

उदाहरणार्थ यहाँ पर हम टाइम्स ऑफ़ इंडिया-नामक दैनिक पत्र से भारत के विनिमय की दरों का किसी एक दिन का संपूर्ण हाल देते हैं—

B. C. Rate T. T. 1/3, 15/16. बैंक क्रास-रेट तार द्वारा अर्थात् लंदन के बैंकों की बंबई या कलकत्ते पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी की दर १ शि० ३ १५/१६ पेंस=१ रुपया ।

B. C. Rate D. D. 1/3, 31/32. बैंक क्रासरेट दर्शनी हुंडी अर्थात् लंदन के बैंकों का बंबई या कलकत्ते पर की गई दर्शनी हुंडी की दर १ शि० ३ ३१/३२=१ रुपया ।

London.

Bank's selling T. T. 1/3, 15/16. अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी के बेचने की दर १ शि० ३ १५/१६ पेंस=१ रु० ।

Bank's selling T. T. 1/4, 3/32 Dec Jan. अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी के बेचने की दर दिसंबर-जनवरी में १ शि० ४ ३/३२ पें०=१ रुपया ।

Banks buying T. T. 1/4. अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी को ख़रीदने की दर १ शि० ४ पें०=१ रु० ।

Banks buying D. D. 1/4 1/32. अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई दर्शनी हुंडी के ख़रीदने की दर १ शि० ४ १/३२ =१ रु० ।

Banks buying 3 months 1/14 3/16 to $\frac{7}{32}$ अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई ३ मास की मुद्दती हुंडी ख़रीदने की दर १ शि० ४$\frac{३}{१६}$ से ४$\frac{७}{३२}$ पेंस= १ रुपया।

Banks buying 3 months 1/4 5/16 Nov. / Jan. अर्थात् बंबई में बैंकों की लंदन पर की हुई ३ मास की मुद्दती हुंडी ख़रीदने की नवंबर से जनवरी तक की दर १ शि० ४$\frac{५}{१६}$ पेंस=१ रुपया।

New York.

Banks selling T. T. 333. अर्थात् बंबई में बैंकों की न्यूयार्क पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी बेचने की दर १०० डालर=३३३ रुपए।

Banks buying T. T. 328. अर्थात् बंबई में बैंकों की न्यूयार्क पर की हुई तार की दर्शनी हुंडी ख़रीदने की दर १०० डालर=३२८ रुपए।

Banks buying D. D. 326. अर्थात् बंबई में बैंकों की न्यूयार्क पर की हुई दर्शनी हुंडी ख़रीदने की दर १०० डालर=३२६ रु०।

Banks buying 3 months 321. अर्थात् बंबई में बैंकों की न्यूयार्क पर की हुई तीन मास की मुद्दती हुंडी ख़रीदने की दर १०० डालर=३२१ रु०।

Paris.

Banks selling D. D. 523. अर्थात् बंबई में बैंकों की पेरिस पर की हुई दर्शनी हुंडी ख़रीदने की दर १०० रु०=५२३ फ्रैंक।

Banks buying D. D. 563. अर्थात् बंबई में बैंकों की पेरिस पर की हुई दर्शनी हुंडी बेचने की दर १०० रु०=५६३ फ्रैंक।

Banks buying 3 months 573. अर्थात् बंबई में बैंकों की पेरिस पर की हुई तीन महीने की मुद्दती हुंडी बेचने की दर १०० रु०=५७३ फ्रैंक।

Japan.

Banks selling T. T. 162. अर्थात् बंबई में बैंकों की जापान पर की हुई तार की दर्शनी हुंडियों की बेचने की दर १०० येन=१६२ रु०।

Banks buying 60 days 157½. अर्थात् बंबई में बैंकों की जापान पर की हुई ६० दिनों की मुद्दती हुंडियों की ख़रीदने की दर १०० येन=१५७½ रुपए।

Hongkong.

Banks selling D. D. 172. अर्थात् बंबई में बैंकों की हांगकांग पर की हुई दर्शनी हुंडी के बेचने की दर १०० डालर=१७२ रुपए।

Shanghai.

Banks selling D. D. 232. अर्थात् बंबई में बैंकों की शंघाई पर की हुई दर्शनी हुंडी के बेचने की दर १०० डालर=२३२ रुपए।

Singapore.

Banks selling D. D. 176. अर्थात् बंबई में बैंकों की सिंगापुर पर की हुई दर्शनी हुंडी के बेचने की दर १०० डालर=१७६ रुपए।

Cross Rate.

20th August 1923.

London/New York 4·55$\frac{5}{8}$ अर्थात् लंदन और न्यूयार्क के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=४·५५$\frac{५}{८}$ डालर।

London/Paris 81·70 अर्थात् लंदन और पेरिस के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=८१·७० फ्रैंक।

London/Berlin 21,000,000·00 अर्थात् लंदन और बर्लिन के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=२१,०००,००० मार्क।

London/Belgium 102·00. अर्थात् लंदन और बेलजियम के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=१०२ फ्रैंक।

London/Switzerland 25·20 अर्थात् लंदन और स्विटज़रलैंड के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=२५·२० फ्रैंक।

London/Italy 106·00 अर्थात् लंदन और इटली के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=१०६ लिटर।

London/Prague 156·00 अर्थात् लंदन और प्रेग के बीच में तार की दर्शनी हुंडी की दर १ पौंड=१५६ क्रोन।

Tone of Sterling Exchange:—Easy. अर्थात् यह आशा की जाती है कि इंगलैंड के विनिमय की दर (जो कि प्रायः अन्य देशों की करेंसी में बतलाई जाती है) धीरे-धीरे गिरेगी।

Bank of England Rate 4 per cent. इँगलैंड की बैंक के वार्षिक ब्याज (डिसकाउंट) की दर ४ फ़ी सैकड़ा।

Gold £ 4-10-5. सोने की क़ीमत ४ पौंड १० शि० ५ पें०=१ औंस।

Silver 3-11-16. अर्थात् एक औंस चाँदी की क़ीमत ३१$\frac{9}{16}$ पेंस।

Imperial Bank of India Rate 4 per cent. भारत के इंपीरियल बैंक के वार्षिक ब्याज (डिसकाउंट) की दर ४ फ़ी सैकड़ा।

Tone:—Easy. दर के कुछ गिरने की संभावना है।

Exchange closed weak with reluctant sellers of T. T. on London at 1st 3$\frac{15}{16}$ इसका अर्थ यह है कि लंदन पर की हुई हुंडियों को जो बेचनेवाले थे, वे उसे बेचना नहीं पसंद करते थे; क्योंकि वे यह आशा कर रहे थे कि विनिमय की दर (लंदन पर की हुई तार की हुंडियों की दर) शीघ्र ही कुछ गिरेगी, जिससे उनको उन हुंडियों पर कुछ अधिक रुपए मिल सकेंगे। जो कुछ हुंडियाँ बिकीं, उनकी दर १ शि० ३$\frac{15}{16}$ पें० फ़ी रुपया थी।

यदि देश की करेंसी में ही विनिमय की दर बतलाई जाती है, तो उसका बढ़ना प्रतिकूल और घटना अनुकूल समझा जाता है। इसी प्रकार जब अन्य देशों की करेंसी में विनिमय की दर बतलाई जाती है, तो हुंडियों की दरों का घटना देश के लिये प्रतिकूल और बढ़ना अनुकूल समझा जाता है। परंतु यह ध्यान में रखना चाहिए कि विनिमय की दर के प्रतिकूल होने से देश को हानि-ही-हानि और अनुकूल होने से लाभ-ही-लाभ होता है। इन दरों का प्रभाव देश के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर, अपनी परिस्थिति के अनुसार, भिन्न-भिन्न पड़ता है। किसी को लाभ होता है, तो किसी को हानि उठानी पड़ती है। अब हम यह बतलाते हैं कि विदेशी हुंडियों में लेन-देन करनेवाले साहूकार उनमें सट्टा करके किस प्रकार लाभ उठाते हैं। मान लीजिए, लंदन पर की हुई तार की हुंडी की दर बंबई में ता० १५ अगस्त को १ शि० ४$\frac{1}{8}$ पेंस है। उस दिन क़रीब एक बजे दिन को बंबई के एक साहूकार के पास लंदन से यह तार आया कि दर वहाँ पर किसी कारण से १ शि० ७ पेंस हो गई है। वह अपने लंदन के अढ़तिए को एकदम तार देता है कि लंदन में पंद्रह हज़ार रुपए की भारत पर की हुई तार की हुंडियाँ उसके नाम पर ख़रीद ली जायँ। इसके लिये लंदन के अढ़तिए को एक हज़ार पौंड देने होंगे। वह साहूकार भी बंबई में अपने बैंक से अपने लंदन के अढ़तिए के नाम लंदन पर की हुई तार की एक हज़ार पौंड की हुंडी १ शि० ४$\frac{1}{8}$ की दर से ख़रीद लेगा। इसके लिये उसे १४,५४० रुपए देने होंगे। लंदन से तार आने पर उसे १५,००० रुपए मिल जायँगे, और भारत से लंदन तार पहुँचने पर लंदन के अढ़तिए को उसके एक हज़ार पौंड मिल जायँगे। केवल कुछ ही घंटों में बंबई के साहूकार को ४६० रुपए की बचत हो जायगी, और लंदन के अढ़तिए को कमीशन और तारों का ख़र्चा चुकाने पर कम-से-कम ३०० रुपए आसानी से बच जायँगे। परंतु उसको यह लाभ तभी तक हो सकता है, जब तक बंबई के अन्य किसी साहूकार या बैंक को इँगलैंड में विनिमय की दर के घटने का हाल न मालूम हो जाय। अन्य साहूकार और बैंकों को हाल मालूम होने पर बंबई में भी विनिमय की दर १ शि० ४ पेंस हो जायगी, और फिर विदेशी हुंडी का सट्टा करने में कुछ भी लाभ न होगा।

मुद्दती हुंडियों के संबंध में भी इसी प्रकार से सट्टा किया जाता है। परंतु उसके संबंध में हमेशा ही हिसाब लगाना पड़ता है; क्योंकि मुद्दती हुंडियों की दर, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, किन्हीं भी दो देशों में एक सी नहीं हो सकती, यदि उनकी करेंसियाँ भिन्न-भिन्न हों। मान लीजिए, इँगलैंड के एक महाजन को अमेरिका (न्यूयार्क) के अपने अढ़तिए से मालूम हुआ कि तीन महीनेवाली मुद्दती हुंडी की दर अमेरिका में ४.८०० डालर = १ पौंड है। यह दर मालूम करने पर वह तुरंत यह हिसाब लगाता है कि इँगलैंड में अमेरिका पर की हुई तीन महीनेवाली मुद्दती हुंडी की क्या दर होनी चाहिए। वह हिसाब नीचे लिखे अनुसार होगा—

४ . ८०० डालर न्यूयार्क में तीन महीनेवाली मुद्दती हुंडी की दर

. ०३६ ,, तीन महीने का ब्याज (3%, बंदन की दर)

.००२ डॉलर		अमेरिका की स्टांप फ़ी इ०
४.८३८	,,	दर्शनी हुंडी की दर
.०४८	,,	तीन महीने का व्याज (४% अमेरिका की दर)
.००३	,,	इँगलैंड की स्टांप फ़ी इ०
.००३	,,	डाक और तार-ख़र्च
४.८९२	,,	इँगलैंड में न्यूयार्क पर की हुई तीन महीनेवाली मुद्दती हुंडी की दर

यह जानकर इँगलैंड का महाजन लंदन के बाज़ार में जाता और न्यूयार्क पर की हुई तीन महीनेवाली मुद्दती हुंडी की दर का पता लगाता है। यदि वह दर ४.८९ और ४.९० के बीच में हुई, तो वह लेन-देन नहीं करता, वापस आता है। परंतु यदि किसी कारण से दर ४.९५ डालर हुई, तो वह तुरंत १,००० पौंड देकर ४,९५० डालर की मुद्दती हुंडियाँ अपने न्यूयार्क के अढ़तिए के नाम ख़रीद लेता और उसे यह तार दे देता है कि १,००० पौंड की हुंडी ख़रीद ली गई। न्यूयार्क का अढ़तिया लंदन के साहूकार के नाम से १,००० पौंड उस रोज़ की दर्शनी हुंडी की दर से (जो कि ४.८३८ डालर है) जमा कर लेता है, और जब तीन महीने बाद उस हुंडी की मियाद पूरी होती है, तो उसे ४,९५० डालर मिल जाते हैं; परंतु वह लंदन के साहूकार के ४,८३८ डालर, और उनका तीन महीने का व्याज अर्थात् ४,८८६ डालर, का देनदार रहता है। इस प्रकार क़रीब ६४ डालर की बचत होती है, जो महाजन और अढ़तिए परस्पर बाँट लेते हैं। संसार के प्रायः सभी देशों में कई महाजन विदेशी हुंडियों में इसी प्रकार का सट्टा करते हैं, और इसका प्रभाव यह होता है कि दर्शनी हुंडियों की दरों में, भिन्न-भिन्न स्थानों में, अधिक अंतर नहीं रहने पाता। यदि उनमें घटी-बढ़ी हुई, तो एकसाथ सब जगह होती है।

दयाशंकर दुबे

× × ×

७. प्रेमोद्गार

आते ही क्षण मुझको जग में;
 रोका तूने सहसा मग में।
होकर स्वतंत्र था जन्म लिया;
 कैसे मुझको परतंत्र किया?
फैलाया तूने जाल यहाँ;
 फिर किया मुझे बेहाल यहाँ।
था कैसा अद्भुत खेल हुआ;
 रवि कमल-दलों का मेल हुआ।
ले गोद मुझे फिर त्याग गया;
 किस ओर न-जाने भाग गया।
यों उषा दिखाके बुला-बुला;
 अब निशा दिखाता रुला-रुला।
तू छोड़ गया भ्रम में जब से;
 सुख-शांति ले गया है तब से।
लटका मुझको चकडोर किए;
 तू खेल रहा कर डोर लिए।
सब ठौर खोज करती तेरी;
 तू निरख स्वयं आहें मेरी।
हा, कौन मोद में फूल रहा;
 नाता, ममता, सब भूल रहा।
दिन-दिन फटती जाती छाती;
 छिन-छिन घटती काया जाती।
मँझधार फँसी जीवन-तरणी;
 हूँ प्रेम-जाल की मैं हरिणी।
होकर कृपालु क्यों क्रूर हुआ;
 रहकर समीप क्यों दूर हुआ।
देकर निज लोचन-दान सखे;
 मत कर मेरा अपमान सखे।
तेरी वसंत-वाटिका खिली;
 मैं मधुप-रूप में उसे मिली।
पावस निदाघ यदि आप मुझे;
 ले जाने दे संताप मुझे।
तब भी गुण तेरा गाऊँगी;
 आशा की ज्योति जगाऊँगी।
उस दीप-शिखा में देख-देख;
 तेरी छवि मन में लेख-लेख।
नयनों से मोती लाऊँगी;
 मैं उन्हें पिरोती जाऊँगी।
अंचल भर-भर उनको धरके;
 तेरे सम्मुख सबको करके।
चुन-चुनकर हार बनाऊँगी;
 बैठूँगी, मन बहलाऊँगी।

चाहे तू ले, या ले न कभी ;
अर्पण कर दूँगी तुझे सभी।
मैं गद्गद स्वर से रोती हूँ ;
बैठी, उठती, या सोती हूँ।
तजता तो भी तू परे-परे ;
क्यों निठुर हुआ यों हरे-हरे।
जाऊँगी अब मैं जिस थल में ;
आवाहन दूँगी प्रति पल में।
जब मंदिर पर मैं वास करूँ ;
तेरी प्रतिमा का ध्यान धरूँ।
संगीत-सदन में जो जाऊँ ;
स-र-ग-म स्वर से तुझको गाऊँ।
वीणा की जब झनकार करूँ ;
तेरा ही उस पर राग भरूँ।
तू नभ में हो घनघोर घटा ;
मैं नाचूँगी ले मोर-छटा।
तू शरद-इंदु की विमल कला ;
मैं हूँ चकोर-सी देख भला।
फूलों की परिमल-युत सुषमा ;
देगी मुझको तेरी उपमा।
मैं अधिक नहीं तुझसे कहती ;
बस, प्रेम-वेग में हूँ बहती।

हर्षदेव ओली

× × ×

८. मिश्रबंधु-विनोद और सम्मन कवि का काल

मिश्रबंधु-विनोद के सफ़ा नं० ६०१ पर सम्मन कवि का वर्णन इस भाँति दिया है—

सम्मन ब्राह्मण

यह मल्लावाँ, ज़िला हरदोई में संवत् १८३४ में उत्पन्न हुए थे। इनका काव्य-काल संवत् १८६० मानना चाहिए। इन्होंने नीति के चटकीले दोहे कहे, और "पिंगल-काव्य-भूषण" नाम ग्रंथ भी १८७९ में बनाया। इनकी गणना साधारण श्रेणी में है।

हमारे विचार से या तो ऊपर दिया हुआ मिश्रबंधु-विनोद का समय नितांत अशुद्ध है, या सम्मन नाम के दो कवि हुए हैं, जिनके काल में कम-से-कम १४० वर्ष या इससे भी अधिक का अंतर है; क्योंकि भरतपुर-राज्य में हिंदी-पुस्तकों की खोज करने से हमको एक पुस्तक मिली है, जिसका नाम "अनेक सतकविराजोक्तिसार-संग्रह दोहा-सार" है। इस ग्रंथ के बनने का समय इस प्रकार है—

सतरह सौ बीसोत्तरा, मास चैत्र, गुरुवार ;
शुक्ल पक्ष, द्वितिया तिथि रच्यौ सो दोहा-सार।

इस ग्रंथ में सम्मन कवि के बहुत-से दोहे दिए हैं। उदाहरण के लिये कुछ दोहे नीचे लिखे जाते हैं—

सम्मन जासौं मन लग्यो कहा रंक कह राव ;
हेम कपूर न राचही मिले सुहागा ताव।
रूप न रेख न गुन कछू सब देखे औ गाय ;
सम्मन जासों मन लग्यो सो कछु औरहि आय।
सम्मन गाँठ जो प्रेम की परी जो केहूँ फेरि ;
बहुत सयाने पच रहे ना सुरझी उरझेरि।
जिनसे मानी रँगरली बहुत किए सुख-भोग ;
कवि सम्मन जाने कछू कहाँ गए वे लोग।
जहँ घर रोवत आइहुँ अंतहु चलिहैं रोय ;
सम्मन ता संसार में सुख कैसे कर होय।
काचे खरे सुहावने गादर खरे मिठाइँ ;
सम्मन वे फल कौन जे पाके ते करुवाइँ।
कबि सम्मन कैसे बनै अनबनते को संग ;
दीपक के भाँयें नहीं जर-जर मरत पतंग।
सीस कनौठी ऊजरी कहि सम्मन यह गाय ;
मौत सँदेसा देन को कान बिलंगहिं आय।
सम्मन कचि अँधियार में कीन्है बहुत उपाय ;
स्वेत चकुर की चाँदनी चोरी करी न जाय।
कहि सम्मन नेकी-बदी करि मन सोच-विचार ;
मदन कहै सो मत करै जो ढिन टरै सो टार।

जब "दोहा-सार" संवत् १७२० में बना है, और उसमें सम्मन कवि के दोहे दिए गए हैं, तो सम्मन का रचना-काल संवत् १७२० से पूर्व ही हो सकता है—१४० वर्ष पश्चात् संवत् १८६० नहीं हो सकता।

हमको नहीं मालूम, मिश्रबंधु-विनोद में सम्मन कवि का रचना-काल संवत् १८६० किस आधार पर दिया गया है; अतएव हम नहीं कह सकते कि मिश्रबंधु-विनोद में भूल से समय १८६० दिया है, या सम्मन नाम के दो कवि हुए हैं। आशा है, मिश्रबंधु इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

इस "दोहा-सार" ग्रंथ में विविध विषयों पर अनेक

कवियों की कविताएँ संगृहीत हुई हैं। हम किसी दूसरे लेख में विस्तारसहित लिखेंगे कि किस-किस कवि की कविता कौन-कौन विषय पर इस ग्रंथ में दी है, जिससे उन कवियों के रचना-काल के विषय में कुछ हाल मालूम हो सकेगा।

मयाशंकर याज्ञिक बी० ए०
भवानीशंकर याज्ञिक

× × ×

१. मृत्यु

निगोड़ी मृत्यु, तू सबको सताती ;
किसी पर तू दया है कब दिखाती ?
दया मानो तुझे करनी न आती ;
किसी पर तो भला तू तरस खाती ?
करोड़ों को किया बरबाद तूने ;
हज़ारों हो गए घर-बार-सूने।
भलों को भी, खलों को भी खली है ;
किसी की चाल तुझसे कब चली है।
किसी से भी न तुझको भीति होती ;
किसी से भी न तेरी प्रीति होती।
सभी हैं एक-से तेरी नज़र में ;
नहीं छोटा-बड़ा तू देखती है।
सभी पीते हैं तेरे घाट पानी ;
निरक्षर भट्ट हो, या ब्रह्मज्ञानी।
गई तू ले जिसे, वह फिर न आया ;
न दिखती है कहीं फिर उसकी छाया।
पिता-माता, स्वजन, गृह छोड़ जाता ;
जगत् से हाय ! नाता तोड़ जाता।
निराला है बड़ा ही रंग तेरा ;
विलक्षण है बड़ा ही ढंग तेरा।
किसी का क्यों न सरबस नष्ट होवे ;
किसी को क्यों न दारुण कष्ट होवे।
मगर तू कब किसी को छोड़ती है ;
कहाँ नाता किसी से जोड़ती है।
जिसे पाती, उसी को धर दबाती ;
धता किसको नहीं है तू बताती ?
सभी जन हार तुझसे मानते हैं ;
पिशाची लोग तुझको जानते हैं।
तुझे है कौन, जो डरता नहीं है ;
भला है कौन, जो मरता नहीं है।
जिसे है देख थर्राता ज़माना ;
जिसे है देख भय खाता ज़माना।
उसे भी धूल में तू है मिलाती ;
उसे भी है ठिकाने तू लगाती।
बता देती है तू, है कौन बढ़कर ;
दिखा देती है सबके सीस चढ़कर।
पहनता था सदा जो ताज शाही ;
हज़ारों पास थे जिसके सिपाही।
शयन करता रहा सुख-सेज ऊपर ;
कभी रक्खा न जिसने पाँव भू पर।
उसी का हाल अब क्या हो रहा है ;
वही भू-सेज पर अब सो रहा है।
कहाँ वह नाज़ है ऐ नाज़वाले !
कहाँ अब ताज है ऐ ताजवाले !
कहाँ दारा, सिकंदर और बाबर ;
कहाँ तैमूर, नादिर और अकबर !
गई ले लूट लाखों लाल-मोती ;
न फिर भी तू तनिक संतुष्ट होती।
मिलाना धूल में है काम तेरा ;
सभी हैं काँपते सुन नाम तेरा।
रहम कर तू, भला कुछ तो रहम कर ;
अरे अब तो न दामन पाप से भर।

मणिराम गुप्त

---

१. निहत्थों के काम

त योरपियन महायुद्ध में बहुत-से मनुष्य हस्त-हीन हो गए थे। उनके काम के लायक़ बहुत-सी मशीनें बनी हैं। एक मशीन ऐसी बनी है, जिसकी सहायता से वे खाना खा सकते हैं। छाती के साथ 'फ़ाउंटेन'-पेन बाँधकर लिखने के लिये भी एक कल बनी है। हाल ही में किताब पढ़ते समय उसके पन्ने उलटने के लिये एक मशीन का आविष्कार हुआ है। यह कल दाँत की सहायता से काम करती है। इसके किनारे पर रबर लगी रहती है। कल को दाँत से पकड़कर उसके रबर-वाले किनारे को किताब के पन्ने से सटाकर इस प्रकार उसका संचालन किया जाता है, जिससे पन्ना उलट जाता है। हस्त-हीन गोलंदाज़ के चलाने के लिये बंदूक़ों का भी आविष्कार हुआ है! कौन कह सकता है, उनके सुबीते के लिये अभी क्या-क्या न होगा?

२. कुत्ते की गाड़ी

पाठक जानते होंगे कि बरफ़ीले देशों में गाड़ी खींचने के लिये कुत्ते काम में लाए जाते हैं। किंतु बेलजियम के एक सज्जन रास्ते पर कुत्ते से गाड़ी चलवाते हैं। कुत्ता गाड़ी के आगे न जोतकर पीछे जोता जाता है। वह पीछे ही से गाड़ी ठेलकर निश्चित स्थान पर पहुँचा देता है। उसके स्वामी एक हैंडिल को इधर-उधर घुमाकर
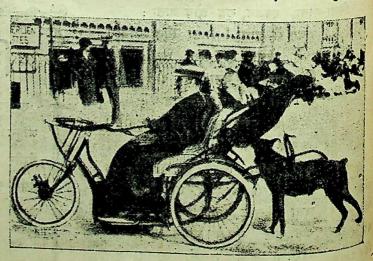
कल के सहारे पन्ना उलटना

कुत्ते की गाड़ी

गाड़ी का रुख़ बदलते हैं। इसे देखकर अँगरेज़ी की एक कहावत याद आती है—"To put the cart before the horse." घोड़े के आगे गाड़ी रखना इसे ही कहते हैं।

× × ×

३. सबसे छोटा बंदर

क्यों महाशय, आपने सबसे छोटा बंदर कितना बड़ा देखा है? आपने बंदर के बच्चों को देखा होगा, वे भी इससे बड़े अवश्य होंगे, जिसका चित्र यहाँ दिया जाता है। यह बंदर ब्रेज़िल के जंगलों में पाया जाता है। जब यह युवा और तगड़ा होता है, तब इसका वज़न केवल आधपाव होता है। यह मनुष्य की हथेली में अँट सकता है। लास एंजिलस की मिस रथ-क्लिफ़र्ड ने दुनिया के सबसे छोटे बंदरों में से एक को पाल रक्खा है। चित्र में उसे देखिए। इसका नाम 'पैरेडाक्स' रखा गया है। इसकी उम्र इस समय तीन वर्ष की है। इसका प्रिय आहार अंगूर है, और यह प्रति-दिन अपने वज़न के बराबर भोजन करता है। यह सरदी नहीं बरदाश्त कर सकता।

× × ×

४. आवश्यकता आविष्कार की जननी है

जर्मनी में मार्क का मूल्य इतना गिर गया है कि साधारण मनुष्य मोटर-कार, गाड़ी आदि का प्रतिदिन भाड़ा देकर वायु-सेवन नहीं कर सकते। यहाँ तक कि आवश्यकीय काम के लिये गाड़ी आदि भाड़ा करने के पहले वे तीन बार सोच लेते हैं। किंतु समय का मूल्य और सब पदार्थों के मूल्य से अधिक है, इसलिये वहाँ ऐसी साइकिलें बनी हैं, और रास्ते में बहुत देख पड़ती हैं, जिन पर दो मनुष्य बैठकर आसानी से जा सकते हैं।

यहाँ के बहुत-से शौक़ीन आदमी प्रायः दुःख प्रकट करते हुए देखे गए हैं, जो काफ़ी रुपया न रहने के कारण 'साइडकारवाली' मोटर-साइकिल या मोटर-कार नहीं ख़रीद सकते। वे अब यह 'साइडकारवाली' साइकिल ख़रीदकर अपना शौक़ पूरा कर सकते हैं; 'साइडकार' पर अपनी बीबी को बिठलाकर सैर कर सकते हैं। केवल एक ही मनुष्य गाड़ी चलाती है, इसलिये इसमें उन्हें कसरत भी कम नहीं करनी पड़ेगी।

यदि उनकी बीबी भी साइकिल पर चढ़ना जानती हों, या वे किसी मित्र के साथ वायु-सेवन का आनंद उठाना चाहते हों, या अधिक परिश्रम करना उन्हें मंजूर न हो,

सबसे छोटा बंदर

दो मनुष्यों की साइकिल
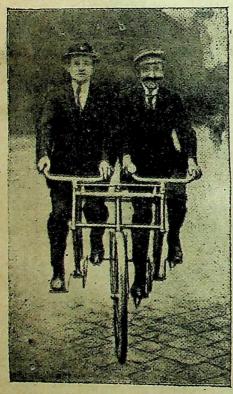
दो आदमी एक ही बाइसिकल पर

तो वे दूसरी प्रकार की साइकिल ले सकते हैं। इस पर पास-पास दो आदमी बैठकर दोनों साइकिल चलाते हैं। मेहनत भी अधिक नहीं पड़ती, और चढ़कर चलने में आनंद भी आता है। किंतु इसमें चढ़ना ही मुशकिल काम है। एक बार चढ़ लेने पर फिर तो बात ही न पूछिए—हवा से बातें करने लगिएगा; क्योंकि दो मनुष्यों द्वारा चालित होने के कारण इसकी गति साधारण साइकिल से अधिक है।

× × ×

५. नए प्रकार का वायुयान

अमेरिका ने अभी-अभी एक हवाई जहाज़ LB-I बनाया है। उसका आकार बहुत कुछ पक्षी से मिलता-जुलता है। उसकी लंबाई ६८० फ़ीट और व्यास ७८ फ़ीट है। चालक, इंधन तथा अन्यान्य सामग्रियों के
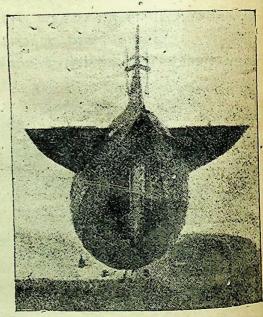
पक्षीनुमा हवाई जहाज़

साथ उसका वज़न प्रायः ६३० मन हो जाता है। वह उत्तर-ध्रुव की शीघ्र ही यात्रा करनेवाला है। उसके बनाने में ३००,००० पौंड अर्थात् ४,५००,००० रु० ख़र्च हुए हैं। चित्र में उसे देखिए।

× × ×

६. एक भेंड़ से साढ़े बारह सेर ऊन

पाश्चात्य देशों में पशु-पालन एक व्यवसाय है। जो पशु जिस काम के लिये पाला जाता है, उस काम में उसे सब प्रकार से लगाने की चेष्टा की जाती है। जो गाय दूध देने के लिये पाली जाती है, उसका दूध बढ़ाने के सभी उपाय काम में लाए जाते हैं। उसी प्रकार भेंड़ें ऊन देने के लिये पाली जाती हैं। जिसमें उनके बाल

एक भेंड़ से १२½ सेर ऊन

लंबे हो सकें, और वे अधिक ऊन दे सकें, इसकी सभी चेष्टाएँ की जाती हैं । ऐसी ही पली हुई एक भेंड़ के शरीर से साढ़े बारह सेर ऊन निकाला गया था । उसे चित्र में देखिए ।

× × ×

७. इस वर्ष का नोबेल-पुरस्कार

नोबेल-पुरस्कार (Nobel Prize) केवल साहित्यिकों को ही नहीं मिलता, संसार का हित करनेवाले मनुष्य को भी मिलता है । इस बार यह पुरस्कार डॉ० फ्रेडरिक ग्रांट बैंटिंग को बहुमूत्र की एक अव्यर्थ औषधि का आविष्कार करने के लिये मिला है । बहुमूत्र को लोग एक कष्ट-साध्य या असाध्य रोग समझते थे । भारतवर्ष में इसके बहुतेरे रोगी हैं । संसार के बहुत-से बड़े-बड़े मनुष्य इस रोग के शिकार बन चुके हैं । लो० तिलक को भी यह बीमारी थी । डॉ० बैंटिंग ने बहुत दिनों की चेष्टा के बाद एक दवा का आविष्कार किया है, जिसका नाम है—'इनसुलीन ।' 'इनसुलीन' एक लैटिन-शब्द है । इसका अर्थ है द्वीप । इस औषध को सुई के द्वारा रोगी के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है । योरप तथा अमेरिका के बड़े-बड़े अस्पतालों में इस दवा की परीक्षा हुई है । नामी डॉक्टरों का मत है कि बहुमूत्र-रोग की इससे बढ़कर और कोई दवा नहीं है ।

डॉ० फ्रेडरिक ग्रांट बैंटिंग

इस संबंध में, डॉ० बैंटिंग के विषय में, दो शब्द लिखना अनुचित न होगा । वह कनाडा के एक किसान के पुत्र हैं । उनकी उम्र इस समय इकतीस वर्ष की है । छः वर्ष हुए, जब वह कनाडा के मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी पास हुए थे । डॉक्टरी पास करने के बाद गत योरपियन महायुद्ध में वह शामिल हुए । युद्ध में घायल होकर लौट आए । तब से वह कनाडा-विश्वविद्यालय की रासायनिक प्रयोगशाला में एक सहकारी हैं ।

'इनसुलीन' यथाशीघ्र भारतवर्ष में आ जानी चाहिए । किंतु कठिनाई यह है कि उतनी दूर से आते-आते वह

'इनसुलीन'

'इनसुलीन' का प्रयोग हो रहा है
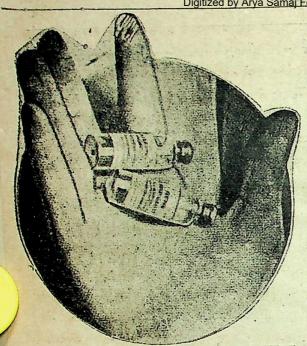
ख़राब हो जाती है। किसी प्रकार यदि वह अच्छी अवस्था में यहाँ पहुँची भी, तो यहाँ की आब-हवा उसके अनुकूल न होने के कारण कुछ दिनों में नष्ट हो जाती है। ठंडे स्थान में रखने से वह कुछ दिन ठीक रहती है। उसकी रक्षा का प्रबंध हो रहा है। आशा है, शीघ्र ही भारतवासी इस रोग से छुटकारा प्राप्त करने लगेंगे।

× × ×

८. दाँत

सर हैरी बाल्डविन ने 'ब्रिटिश डेंटिस्ट्स हास्पिटल' में वक्तृता देते हुए कहा है कि अस्वस्थ रहने का एक बड़ा कारण दाँतों और मसूढ़ों की बीमारी है। दाँतों में दोष होने से सब प्रकार की बीमारियाँ पैदा होती हैं। स्वास्थ्य और दाँतों का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। भोजन पचाने का पहला साधन दाँत ही हैं। जब तक दाँत खाद्य पदार्थों को टुकड़े-टुकड़े कर छोटा-छोटा नहीं कर देंगे, तब तक पाचक रस उसमें शीघ्र प्रवेश नहीं कर सकेगा, और वह भोजन ठीक से पच नहीं सकेगा। भोजन न पचने से अजीर्ण, अम्ल, उदरामय, पेट का दर्द, सिर का दर्द और दुर्बलता आदि बीमारियाँ तो होती ही हैं, किंतु इनके अतिरिक्त ऐसी बीमारियाँ भी होती हैं, जिनका कारण दाँत ही होंगे, ऐसा विश्वास एकाएक नहीं किया जा सकता। वात, मूत्राशय की बीमारियाँ, श्वास-कष्ट,
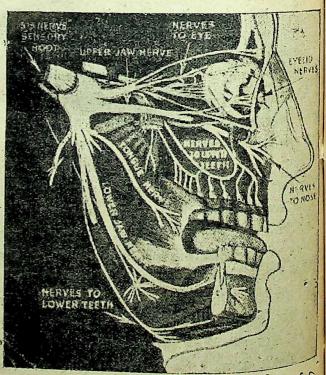
इस चित्र में दाँतों का संबंध आँख, नाक और कान आदि से दिखलाया गया है

यक्ष्मा, कंठ, नाक तथा पाकस्थली में घाव होना आदि रोग बुरे दाँतों ही का कुफल हैं। यह भी पता लगा है कि दाँतों के दोष से मनुष्य अंधा तक हो जाता है। दृष्टांत-स्वरूप कैथरिन ब्राउन नाम की स्त्री का उल्लेख किया जा सकता है। लड़कपन में वह दाँतों की बीमारी से कष्ट पाती थी। उसकी आँखों की शक्ति कम होने लगी, और युवावस्था में पदार्पण करते-करते वह एकदम अंधी हो गई। फिर से दृष्टि-लाभ की कितनी ही चेष्टाएँ उसने कीं, किंतु सब विफल हुईं। अंत को दाँतों की पीड़ा से तंग आकर उसने अपने दाँत ही उखड़वा डाले। इसके बाद अपनी खोई हुई तंदुरुस्ती उसे फिर मिल गई।

× × ×

९. तार का पुल

किसी-किसी नदी का स्रोत किसी-किसी विशेष स्थान पर इतना तेज़ होता है कि वहाँ मामूली तरह का पुल नहीं बन सकता, और न नाव पर चढ़कर उसे पार करना ही निरापद जान पड़ता है। विशेष कर उन स्थानों में, जहाँ नदी किसी पहाड़ से समतल भूमि पर गिरती है, नदी पर प्रभुत्व स्थापित करना टेढ़ी खीर है। हमारे देश के पहाड़ी स्थानों में नदी पार करने के लिये रस्सों के पुल बने रहते हैं। छोटी-छोटी नदियाँ तो इन पुलों से पार की जा सकती हैं, किंतु बड़ी नदियों को पार करना संभव नहीं है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये तार के पुलों का व्यवहार हो सकता है। इन तारों पर से बिजली की एक गाड़ी गुज़रती है, जो यात्रियों को पार उतारा करती है। नियाग्रा-नदी पर एक ऐसा ही पुल बना है। चित्र में उसे देखिए।

× × ×

१०. नई तरह की मोटर

जर्मनी में कोयले की कमी हो जाने के कारण रेलों का चलना एक तरह से बंद सा है। इसलिये वहाँ के डाक-विभागवाले मोटर-साइकिलों को मोटर-कार में परिवर्तित कर डाक ले जाने का काम ले रहे हैं। उन 'कारों' में तीन पहिए होते हैं। उनकी छत पर डाक के थैले, पारसल आदि लाद दिए जाते हैं, और भीतर मनुष्यों के बैठने के लिये भी स्थान बना हुआ है, जहाँ बैठकर मनुष्य भी यात्रा करते हैं। चार 'सिलेंडर' की मोटर-साइकिल की मोटर इस गाड़ी को ३५ मील प्रति घंटे के हिसाब से चला सकती है। कहा जाता है, मोटर

तार के पुल पर बिजली की गाड़ी चल रही है
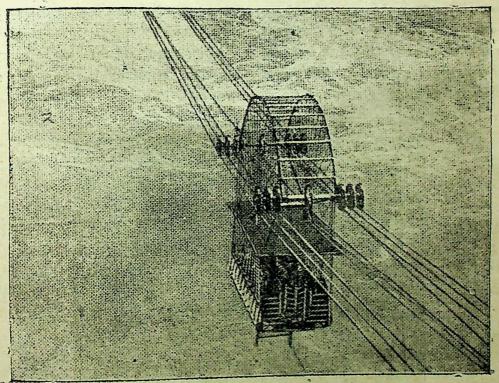
डाक ढोने के लिये तीन पहियों का मोटर-कार

चलाने में जितना ख़र्च होता, उससे कहीं कम ख़र्च इस प्रकार की सवारी में पड़ता है।

दूसरा चित्र एक टूरिंग मोटर-कार का है। जो मनुष्य मोटर-कार में बैठकर दूर का सफ़र करते हैं, वे अपने साथ यात्रा के सभी सामान रख लेते हैं। तीन पहियों की यह मोटर-कार ऐसी बनी है कि उसमें यात्री रात को सो सकता है। उसे होटल के शरणापन्न होने की आवश्यकता नहीं। पानी पड़ने के समय भी वह इसी मोटर में रह सकता है।

ये तीन पहियों की मोटरें चार पहियोंवालियों से किसी तरह ख़राब नहीं हैं। इनके शीघ्र प्रचार की आशा है।
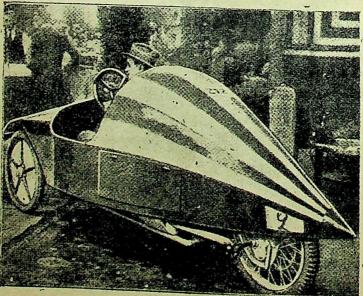
तीन पहियों की टूरिंग (सफ़री) मोटर-कार

१. हमारा दर्जा

भाभी बोली—"ननँदजी, पहले बचपन में तो लेख लिखा करती थीं; अब क्यों नहीं लिखतीं? आजकल तो देखती नहीं हो, माधुरी कैसी बढ़िया निकलती है। अब की तो माधुरी ही को कुछ लिखकर भेजो।"

भाभी का कहना क्योंकर टालूँ? इसी से कुछ लिखने बैठी हूँ। पर कौन जाने, मेरे लिखने में माधुरी के लायक़ गंभीरता आवेगी या नहीं। न आवेगी, तो न सही; माधुरी में नहीं, तो उसकी रद्दी की टोकरी में तो जगह मिलेगी। माधुरी के महिला-मनोरंजन-विभाग से हम स्त्रियाँ बहुत उपकृत हुई हैं, और माधुरी का बनाव-ठनाव, चमक-दमक तो ऐसी है कि तीन वर्ष का चुन्नी भी रूठ जाने पर उसकी तसवीरें देखे बिना नहीं मानता। कोई हर्ज नहीं, खिलौने मँगाने की दिक़्क़त मिटी। हम दोनों का मनोरंजन हो जायगा, और घर के लोग भी पढ़ लेंगे। ईश्वर करे, माधुरी की बड़ी उम्र हो।

भाभी फिर बोली—"लेख छपने के लिये इतनी ख़ुशामद न करतीं, तो क्या होता?" मानो यह ताना मारकर भाभी ने मुझे विषय पर आने का संकेत किया। मैंने भाभी से कहा—"अच्छा, जाने दो, तुम्हें किसी की उचित और सत्य प्रशंसा भी नहीं सुहाती, तो अब आगे बतलाओ, क्या लिखूँ? ऊपर तो लिखा है "हमारा दर्जा", सो बोलो कौन-सा लिखूँ? फ़र्स्ट, सेकिंड या थर्ड, जो कहो, वही लिख दूँ।"

भाभी बोली—"मैं क्या कहूँ, इतनी पढ़ी-लिखी हो, तुम भी तो कुछ जानती होगी; या वही कहावत है कि दिल्ली में रहे और भाड़ झोंका?"

"भाभी, तुम क्या आज लड़ने ही को बैठी हो? ऐसा न हो कि कहीं हमारा दर्जा लिखते-लिखते मुझे भाभी-ननँद की लड़ाई का चित्र खींचना पड़े। एक दफ़े ज़रा बता देतीं, तो फिर देखतीं कि तुम्हारी ननँद की क़लम राजर्स की क़ैंची-सी चलती है या नहीं।"

"बताने को तो ज़रा क्यों, बहुत बता दूँगी; पर क्या ज़रा मेरा नाम भी लेख के नीचे दे दोगी?"

"हाँ, हाँ, ज़रा क्यों समूचा ही दे दूँगी; और कहोगी तो धन्यवाद भी जोड़ दूँगी कि यह लेख परम सौभाग्यवती श्रीमती भाभी की सहायता से लिखा गया, इसलिये उनको धन्यवाद।"

"अच्छा, अच्छा, पर संपादकजी दो नाम छाप तो देंगे?"

"क्यों नहीं, इसमें क्या हर्ज है, स्वयं माधुरी के मुख-पृष्ठ पर भी तो युगल संपादक महोदयों के नाम सुशोभित हैं।"

"तो फिर लिखो, हम स्त्रियों का दर्जा पुरुषों से कम नहीं है। क्या धार्मिक, क्या लौकिक, दोनों ट्रेनों में यदि पुरुष फ़र्स्ट क्लास, का डिब्बा है, तो हम भी वही हैं; और यदि वह सेकिंड क्लास, तो हम भी सेकिंड हैं, और जो थर्ड हो, तो थर्ड हैं। यदि पुरुष ऊपर ही चढ़े, लाट साहब के

सेलून का डिब्बा ही बने, तो हम भी वही हैं। बस, ख़तम। ट्रेन बन गई, अब इसे चाहे जहाँ ले जाओ।"

"भाभी, यदि पुरुष एंजिन है, तो स्त्रियाँ क्या हैं ?"

"हो नहीं सकता, एंजिन पुरुष नहीं हो सकता। हाँ, यदि गृहस्थी को एक एंजिन मान लें, तो उसके पहिए पुरुष और स्त्री, दोनों हैं। एक ओर का पहिया ठीक न होने से जिस प्रकार एंजिन का चलना कठिन है, उसी प्रकार गृहस्थी के दोनों पहिए पुरुष और स्त्री का अच्छा होना ज़रूरी है। नहीं तो गृहस्थीरूपी एंजिन डाक का तो क्या, माल-गाड़ी के एंजिन का भी रूप न धारण कर सकेगा। गृहस्थीरूपी एंजिन का स्त्रीरूपी पहिया बिगड़ जाने के कारण ही आज हमारी गृहस्थी की ऐसी दशा हो रही है। स्त्रियों के सदा परतंत्र, पराधीन, ग़ुलामी की हालत में रहने एवं हमें उन्नत करने—ऊँचे उठाने—का प्रयत्न न होने से ही देश की संतान अज्ञान, निर्बल, निर्वीर्य, शौर्यहीन, कायर और पराधीन हो रही है।"

"सच है भाभी, यदि प्राचीन काल के समान आज हमें हमारा सच्चा स्थान मिल जाय, और हमारी महत्ता, योग्यता का उचित आदर हो, तो हमारा भारत संसार के सब देशों से ऊँचे, उन्नति के शिखर, पर जा पहुँचे। स्त्री-पुरुष के एकत्र जीवन विना मानव-जीवन पूर्ण नहीं कहला सकता। स्त्री विना पुरुष और पुरुष विना स्त्री आधा ही अंग है। अपने शेष अर्द्धांग की प्राप्ति हुए विना कोई पूर्णांग नहीं बन सकता। संसार-क्षेत्र में पुरुष विना स्त्री और स्त्री विना पुरुष कुछ नहीं कर सकता। महाराज श्रीरामचंद्रजी ने यज्ञ के पूर्व सीता की अनुपस्थिति के कारण सोने की सीता बनाकर इस बात का प्रबल उदाहरण जगत् के सामने सदा के लिये रख दिया है।

"जगत् की माता स्त्री है। प्रत्येक महान् पुरुष, चाहे वह ईश्वर का अवतार हो, पैग़ंबर हो, धर्मात्मा या ईश्वर का भक्त हो, महान् वीर या बलवान् योद्धा हो, भारी विद्वान् या संशोधक हो, जिसने धर्म के सिद्धांतों द्वारा, भक्ति या शौर्य द्वारा, विद्या के चमत्कार या किसी शोध या आविष्कार द्वारा जगत् को मोहित किया है, उसका जन्म स्त्री के उदर से ही हुआ है। स्त्री की ही गोद में वह पला और उसी के लालन-पालन और पोषण-रक्षण से बड़ा हुआ है।

देश का सच्चा धन, खरी संपत्ति, उस देश के महान् पुरुष हैं; और महान् पुरुष माताओं से ही उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये जो देश की उन्नति करना हो, यदि महान् पुरुषों की देश को आवश्यकता हो, तो भविष्य में माताएँ महान् कैसे हों, यह विचारने की, और वे बल, बुद्धि और गुणों में कैसे बढ़ें, इसका उपाय करने की पूर्ण आवश्यकता है।

"स्त्री पुरुष का सर्वोत्तम मित्र है। संसार में पत्नी के रूप में स्त्री का बहुत ऊँचा दर्जा है। पुरुष की शोभा और मान स्त्री से है। और तो क्या, गृहिणी-शून्य घर किसी काम का नहीं है। ईंट-पत्थर के चुने हुए मकान को घर नहीं कहते, गृहिणी ही घर है। प्रतिदिन के बोलचाल में बहुधा यह सुना जाता है कि "आजकल घर में कैसी है ?", "अभी घर में तकलीफ़ ही है", (अर्थात् गृहिणी अस्वस्थ है)। गृहिणी के विना घर जंगल के समान है, इस बात का पता, स्त्री का खरा महत्त्व और उसकी उपयोगिता का परिमाण अविवाहित पुरुषों के घरों में उनकी गृह-व्यवस्था और निस्तेज जीवन से भली भाँति जाना जा सकता है। जीवन-मार्ग में निश्चित पथ की ओर जाने के लिये पुरुष को उत्साहित करनेवाला, और परमात्मा तथा धर्म पर श्रद्धा करानेवाला पुरुष का सच्चा मित्र स्त्री और उसका प्रेम ही है। जिस भाँति वृक्षों के जीवन का मूल कारण और उन्हें हरा-भरा फल-फूलमय बना रखने में सहायक उनमें बहनेवाला रस है, उसी भाँति पुरुष-जीवन को सदा सरसब्ज़, निरंतर आशामय और उत्साह-पूर्ण रखनेवाला यदि कोई है, तो स्त्री ही।

"स्त्रियों ने कार्य-क्षेत्र में ज़रूरत पड़ने पर कई बार पुरुषों के-से काम किए हैं और अब भी कर सकती हैं। पर यदि उनके गृह-जीवन की ही बात कही जाय, तो भी वे उसमें जो स्वार्थ-त्याग दिखाती हैं, धैर्य, सुशीलता और माधुर्य से संसार को स्वर्ग बनाने का जो उद्योग करती हैं, वह अनुपम है। महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र, उनके स्वार्थ-त्याग और पराक्रम के कामों के कारण, लिखे जाते हैं; पर घर के कोने में अप्रसिद्ध रूप से इस संसार में रहकर धैर्य के साथ स्त्रियाँ जो संकट सहती और अनेक प्रकार के स्वार्थ-त्याग के छोटे-मोटे काम करती हैं, उनका यदि वर्णन किया जाय, तो उसका विस्तार पुरुष-समाज के जीवन-चरित्रों से बहुत अधिक हो जाय। ग्लाडस्टन

साहब ने एक जगह लिखा है—"किसी भी देश की उन्नति की परीक्षा वहाँ के जन-समाज में स्त्रियों को जो स्थान दिया जाता है, उससे हो सकती है"। प्राचीन समय में जब अन्य सब देश अविद्या और अज्ञान में डूबे थे, और हमारा भारत विद्या, कला-कौशल, धर्म, धन और श्रद्धा-भक्ति में उन्नति के शिखर पर था, तब हमारे यहाँ की स्त्रियों की दशा आज की-सी न थी। उस समय हम विद्या, बुद्धि और धर्म में बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं, और इसीलिये उस समय भारत में शूर-वीर, धार्मिक, विद्वान् बुद्धिमान्, बलवान् महानुभाव नर-रत्नों एवं साध्वी, सती वीरांगनाओं की अधिकता थी। इसलिये देश के उदय की बात स्त्री के उदय के विना व्यर्थ है।"

भाभी बोली—"ननँदजी! माधुरी के हृष्ट-पुष्ट आकार के १२०-१७५ पन्ने के पोथे को देखकर यह न सोचना कि केवल तुम्हारे ही इस खर्रे को स्थान मिल जायगा। अब दर्जे को यहीं ख़तम करो"।

"भाभी, थोड़ा और है, अधिक नहीं। घबराओ नहीं, एक नहीं, तो दो अंकों में जगह मिल जायगी। अंत में कहना यह है कि स्त्री दुखी रहे, तो कुटुंब सुखी नहीं हो सकता। देश की स्त्रियाँ सुखी न हों, तो यह कैसे हो सकता है कि देश सुखी रहे। मनुष्य-जीवन एवं देश-जीवन की सफलता के लिये जब तक स्त्री-जीवन की उपयोगिता एवं महत्त्व न समझा जाय, तब तक मनुष्य-जीवन किंवा देश-जीवन सफल नहीं हो सकता।

"जहाँ स्त्रियाँ परतंत्र हों, जहाँ उन्हें केवल पराधीनता, दासता का ही अनुभव होता हो, वहाँ की प्रजा स्वतंत्र नहीं हो सकती। जहाँ स्त्रियों की दशा दीन, हीन और दबी हुई हो, और कई तरह का उन्हें भय-विषाद लगा हो, वहाँ की प्रजा दृढ़, वीर और निर्भय हो नहीं सकती। जिस देश में स्त्रियों की महिमा, उनका गौरव और प्रतिष्ठा न हो, उस देश की जगत् में महिमा, गौरव और प्रतिष्ठा बढ़े, यह संभव नहीं।

"जब तक स्त्रियों के सांसारिक पद की उच्चता, उनकी प्रतिष्ठा और उपयोगिता का उचित आदर न हो, उनको देशोन्नति में एक मुख्य साधनरूप न गिना जाय, और उन्हें जब तक एक उत्तम गृहिणी, उत्तम माता, और परिवार तथा देश की एक उत्तम स्त्री बनाने का यत्न न किया जाय, जब तक स्त्रियों में बालकों की भावी संतान की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति करने की शक्ति न आवे, तब तक देशोन्नति की आशा व्यर्थ है। यही हमारे दर्जे का स्वरूप है।"

गेंद-मोहर

× × ×

२. 'स्त्री'-संबंधी कुछ विचार

हमारे ज़िले* के एक सुप्रतिष्ठित रईस† ने 'धर्मप्रदर्शनी'-नामक पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक स्वयं लेखक ने ही सन् १६०६ ईसवी में प्रकाशित की थी। लेखक ने भूतपूर्व भारत-सम्राट् सप्तम एडवर्ड को यह पुस्तक समर्पित की है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३०० है। बिक्री के लिये यह पुस्तक नहीं छपाई गई थी। लेखक ने अपने ख़र्च से छपाकर ग्रंथानुरागियों और इसके उपयुक्त पात्रों को भेंट-स्वरूप भेजी थी। इसके द्वितीय दृश्य में 'गृहीधर्म-दर्शन' नाम का एक अध्याय है, जिसमें गृह और गृहिणी आदि की चर्चा की गई है। भाषा पुराने ढंग की, पर विषय महत्त्व-पूर्ण है। ग्रंथकार ने 'स्त्री'-शीर्षक में जो कुछ लिखा है, वह हमारी बहनों के सुनने योग्य है। हमने ग्रंथकार के शब्दों, वाक्यों और भावों को अविकल रूप में ही रहने दिया है। हाँ, विराम-चिह्न आदि का प्रयोग करके सामयिक और सुगम अवश्य बना दिया है। लेखक ने लिखा है—

"स्त्री-संग्रह, अर्थात् विवाह से तात्पर्य यह है कि पुत्र उत्पन्न करे, कोरे सुख के लिये स्त्री-सेवन न करे। गृहस्थ के लिये वंश का शोच करके वंश बढ़ाना धर्म है। यदि ऐसा न करे तो 'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् 'एक मैं बहुत होऊँ'—इस ईश्वर-वाक्य के विरुद्ध हो। यद्यपि सब ईश्वरेच्छा के अधीन है, परंतु अपने धर्म का पालन उचित है। अच्छी स्त्री वह है, जो बुद्धि, विचार, ईमानदारी, पवित्रता, लज्जा, दया, नम्रता से युक्त हो, और जिसमें पति-प्रेम, लोक-निंदा का डर, पति के प्रसन्न रखने का गुण और चाव हो। रूपवती स्त्री से गुणवती स्त्री सुख की देनेवाली होती है। विवाह से पहले ही स्त्री के गुण-दोषों को यत्न-पूर्वक जान लेना उचित है। कुल, धन, रूप, वय आदि में अपने समान स्त्री से विवाह करना उत्तम

* शाहाबाद (आरा)।

† श्रीमन्महाराजकुमार नर्मदेश्वरप्रसादसिंहजी (स्वर्गीय ईश कवि) दिलीपपुर-निवासी।

है। कुल, धन, रूप, वय आदि में यदि स्त्री पुरुष से उन्नत हो, तो वह गर्व से अपने पति को छोटा समझकर अनादर करती है। पुरुष को चाहिए कि स्त्री की रुचि के योग्य वस्त्र-भूषणों से सत्कार किया करे। मनुजी ने कहा है कि "जिस कुल में वस्त्र-भूषणों से स्त्रियों का आदर नहीं होता, वह कुल झटपट नाश को प्राप्त हो जाता है।" पति को चाहिए कि पहले पति-धर्म, लोक-लज्जा, परलोक-भय और अपनी विवाहिता स्त्री में प्रेम, इन चारों के अवलंब से अपना आचरण शुद्ध रक्खे, जिससे स्त्री के हृदय में इन चारों का असर हो, और पति की सुचाल और बड़ाई के कारण सदा ही भय बना रहे। पति अपने प्रेम की विशेषता स्त्री पर प्रकट न करे; क्योंकि ऐसा होने से स्त्री के हृदय में गर्व उत्पन्न होकर उसके भाव को बिगाड़ता और सेवा में हानि पहुँचाता है। पति को चाहिए कि स्त्री के बाप-भाई आदि के साथ प्रेम, नम्रता और रीति-रस्म का उचित बर्ताव रक्खे। स्त्री को चाहिए कि पातिव्रत-धर्म की पुस्तकें और कहानियाँ, जिनमें उत्तम स्त्रियों की बड़ाई हो, सुना करे; परंतु प्रेम के क़िस्से-कहानी आदि को न सुने। हाँ, राम-चरित्र सुने। बदचलन और निकम्मी स्त्रियों के संग से बचे, रसोई बनाने की विद्या को उत्तम रीति से जाने और बनावे, दस्तकारी में भी प्रवीण हो, घर के प्रबंध तथा कामों में हमेशा लगी रहे। शुक्राचार्य ने कहा है कि "स्त्रियों को घर के कामों से क्षण-भर भी अवसर (अवकाश) देना नहीं चाहिए।"

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः;
पति-सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।"

अर्थ—विवाह की विधि स्त्रियों के लिये वैदिक संस्कार है, पति की सेवा ही गुरुकुल का वास है, गृह-कार्य के लिये अग्नि-सेवन ही उनका अग्निहोत्र है।

"पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने;
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।"

अर्थ—विवाह से पहले स्त्री की रक्षा पिता करता है, युवावस्था में पति करता है और वृद्धावस्था में पुत्र करते हैं। किसी अवस्था में स्त्री स्वतंत्र होने के योग्य नहीं है।

बस, 'स्त्री'-शीर्षक के अंदर इतनी ही बातें हैं। यद्यपि बातें निरर्थक नहीं हैं, तथापि, हमारी राय में, कुछ बातें अनुचित अवश्य हैं। अंतिम श्लोक तो स्त्रियों के लिये एक प्रकार का अमिट कलंक बन गया है। जहाँ कहीं स्त्रियों की स्वतंत्रता का प्रश्न उठता है, यही श्लोक सबसे पहले आगे आता है। यह स्त्रियों की असाध्य निर्बलता का सूचक है। "किसी अवस्था में स्त्रियाँ स्वतंत्र होने के योग्य नहीं हैं"—यह एक ऐसी बात है, जो भारतीय महिला-समाज के उच्च आदर्श की महिमा को घटा देती है। हमारी धारणा और दृढ़ विश्वास भी है कि स्त्रियों को यदि आत्मरक्षा की शक्ति के सदुपयोग का सुअवसर दिया जाय, और उनके प्रकृत अधिकारों की अवहेलना न कर उनके प्रति न्याय्य सद्व्यवहार किया जाय, तो वे स्वतंत्र और सुरक्षित रह सकती हैं।

दूसरी आपत्तिजनक बात यह है कि "पति अपने प्रेम की विशेषता स्त्री पर प्रकट न करे।" यह वाक्य संभवतः लेखक ने केवल राजों के लिये ही लिखा है; क्योंकि पुस्तक के प्रत्येक प्रकरण में लेखक ने राज-धर्म और राजनीति को प्रधानता दी है। यदि यह वाक्य गृहस्थों के लिये है, तो इसमें दंपति-शास्त्र की मर्यादा का अपमान भरा हुआ है। दांपत्य प्रेम में किसी प्रकार का भाव-गोपन समीचीन या संभव नहीं है। सच्चे प्रेम की विशेषता कदापि नहीं छिपाई जा सकती। कृत्रिम प्रेम हाथी के दाँत की तरह—"खाने को और, दिखाने को और"—होता है। किंतु वास्तविक दांपत्य प्रेम में किसी प्रकार का दुराव हो ही नहीं सकता।

तीसरी बात शुक्राचार्य की है—"स्त्रियों को घर के कामों से क्षण-भर भी अवकाश नहीं देना चाहिए।" तो क्या स्त्रियाँ कोल्हू के बैल की तरह दिन-रात पेरी जाती रहें? क्या क्षण-भर भी विश्राम करने से वे आदर्श-भ्रष्ट हो जायँगी? क्या वे इतनी चंचला और अविश्वसनीय हैं? कदापि नहीं। पुरुष-जाति की यह धारणा महिला-समाज के लिये अप्रतिष्ठाजनक, अतएव उपेक्षणीय है।

विमलादेवी
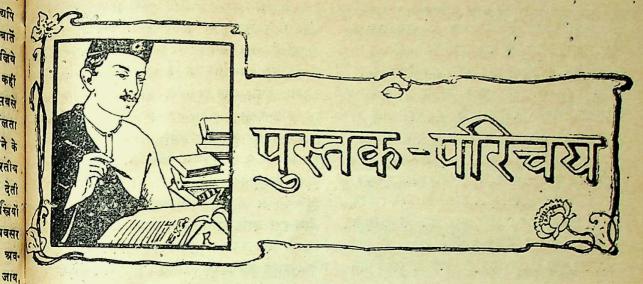
१. कविता और गद्य-काव्य

पद्य-रत्न-प्रभा—लेखक, श्रीगिरिधर शर्मा। प्रकाशक, श्रीचिरंजीवि ईश्वर शर्मा विद्यार्थी। नवरत्न-सरस्वती-भवन, झालरापाटन (राजपूताना)। पृष्ठ-संख्या ३६। मूल्य ।); कागज़ अच्छा। छपाई साधारण। प्रकाशक से प्राप्य।

श्रीगिरिधर शर्माजी ने इस पुस्तिका में पंडितराज श्रीजगन्नाथ की अनूठी उक्तियों का भाव विविध छंदों में, हिंदी में, अनूदित किया है। अनुवाद जिस छंद में हुआ है, उसका लक्षण भी ऊपर दे दिया गया है। यद्यपि मूल की सरलता अनुवाद में सर्वत्र नहीं पाई जाती, और वैसा होना असंभव भी है, फिर भी कहीं-कहीं पर 'शर्मा'जी की भाषांतर-चातुरी प्रशंसनीय है। एक उदाहरण लीजिए—

"तब तक कोकिल अपने
विरस बिता तू दिवस कहीं बसके,
जब तक खिल न उठें ये,
अलिकुल गुंजित रसाल के विटपी।"

× × ×

गीतांजलि—लेखक और प्रकाशक, वही। पृष्ठ-संख्या ६७। कागज़ और छपाई उत्तम। मूल्य संभवतः ।), यद्यपि आवरण-पृष्ठ पर ४) छपा है। प्रकाशक से प्राप्य।

कविवर श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर की बनाई 'गीतांजलि'-पुस्तक का अब तक हिंदी में कोई पद्यात्मक अनुवाद न था। यह कमी पूरी करने के लिये श्रीगिरिधर शर्माजी ने समालोच्य अनुवाद प्रस्तुत कर दिया है। इस पुस्तक के उपोद्घात-लेखक हैं श्री जे० एल० जैनी, एम्० ए०, बार-ऐट-ला, चीफ़ जस्टिस हाईकोर्ट ऐंड ला-मेंबर इंदौर-स्टेट। आपने अपने वक्तव्य में एक स्थान पर लिखा है—"Accurate and close is the translation, fluent is the language, fresh the phiasiology." अर्थात् अनुवाद शुद्ध और मूल के अनुसार है, भाषा प्रांजल है तथा शब्द-विन्यास अभिनव। इस अनुवाद को मूल-बँगला से हमने नहीं मिलाया, परंतु अँगरेज़ी के अंश को देखने से अनुवाद निर्दोष समझ पड़ा। शर्माजी प्रसिद्ध साहित्य-सेवी हैं। इस अनुवाद को लिखकर आपने हिंदी की अच्छी सेवा की है। अनुवाद प्रचलित खड़ी बोली में किया गया है, यद्यपि कहीं-कहीं पर खिचड़ी-भाषा के नमूने भी मिल सकते हैं। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक का अच्छा प्रचार होगा। शर्माजी से हमारी प्रार्थना है कि जब इसके दूसरे संस्करण का अवसर आवे, तो वह इस पुस्तक के आदि में धुरंधर विद्वानों की लिखी हुई गीतांजलि की कुछ समालोचनाएँ भी दे दें, तथा एक अच्छी भूमिका द्वारा गीतांजलि की विशेषताओं, कविता-संबंधी बारीकियों तथा आध्यात्मिकता आदि के विषय से भी पाठकों का परिचय करा दें। हमारी राय में अभी 'गीतांजलि' के यथार्थ भावों को बहुत थोड़े लोग समझ पाए हैं। अनुवाद का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

"यह छोड़ता सब भूषणों को आज मेरा गान है;
रखता न तेरे सामने निज साज का अभिमान है।

होती मिलन में ओट है यदि बीच में भूषण पड़े ;
उनके मुखर झंकार से तब दूर होता मान है।
मम कवि बनने का गर्व तेरे साम्हने (सामने ?) अनुचित निरा,
बैठा रहूँ कविराज, तेरे चरण में यह ध्यान है।
करके जतन जीवनमयी बंसी सरल जो घड़ (गढ़ ?) सकूँ ;
सब रंध्र भर दे निज सुरों से प्रार्थना भगवान है।"

× × ×

मुक्ति की युक्ति—लेखक, पं० राजाराम शुक्ल। प्रकाशक, मित्र-मंडल कार्यालय, कानपूर। पृष्ठ-संख्या ३२। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं है। ऊपरी कवर मोटे बैंगनी रंग के काग़ज़ पर है, जिसमें सुवर्णांकित अक्षरों में पुस्तक का नाम इत्यादि दिया हुआ है। प्रकाशक को लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

इस पुस्तक में उपासक, उपास्यदेव, उपासना-स्थल, उपासन-समय, आवश्यक सामग्री, उपासना, प्रार्थना, दिव्य-दर्शन तथा याचना, इन ९ विषयों को लेकर खड़ी बोली में पद्य-रचना की गई है। प्रत्येक विषय, क्रम से शार्दूलविक्रीड़ित, स्रग्धरा, मंदाक्रांता, मालिनी, उपेंद्रवज्रा, शिखरिणी, भुजंगप्रयात, द्रुतविलंबित तथा चंचरी-वृत्तों में निबद्ध किया गया है। कानपूर में नव लेखकों, कवियों तथा समालोचकों को प्रोत्साहन देने के लिये कोई मित्र-मंडल स्थापित हुआ है। यह मंडल समय-समय पर पुस्तकें प्रकाशित करेगा। समालोच्य पुस्तक उक्त मंडल द्वारा प्रकाशित पहली पुस्तक है। हम चाहते हैं कि मंडल को अपने सदुद्देश्य में सफलता प्राप्त हो। 'मुक्ति की युक्ति' पुस्तक में भाषा-प्रवाह बहुत अच्छा है। विचारों में विशेष गंभीरता नहीं है, परंतु शुक्लजी ने जो कुछ लिखा है, वह प्रसाद-गुण से मंडित है। कोई-कोई पद्य रमणीय भी हैं। रोचकता-गुण की कवि ने श्रम-पूर्वक रक्षा की है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय और बाबू मैथिलीशरण गुप्त की रचना-शैलियों का राज़ीनामा कराकर शुक्लजी ने अपनी शैली चलाने का यत्न किया है। हमारे विचार से हिंदी-काव्य-संसार में शुक्लजी को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। 'मुक्ति की युक्ति' के कुछ नमूने लीजिए—

"ललित नीलम में, पुखराज में,
रजत, कंचन, हीरक आदि में ;
बदन की द्युति में, मणि-माल में,
झलकती उसकी अभिरामता।
ज्यों हीं तेरे अतुल बल की चाह हो निर्बलों को ;
त्यों ही प्यारे सम्हल कर जा, है वहीं काम तेरा।
यों ही मेरे हृदयतल को जाँचना चाहता है ;
बैठा होगा द्रवित दृग हो सामने राम तेरा।
पोते धूलि-विभूति हैं न तन में, बाँधे न कोपीन हैं ;
मुद्रा-मंडल-मेखला-रहित हैं, योगी जटा-हीन हैं।
बाह्याडंबर हैं न रंचक रचे, सद्भक्ति में लीन हैं,
सच्चे संत अनंत प्रेम-पथ के तो भी बने मीन हैं।"

× × ×

प्रेम-रस-वाटिका—लेखक, बाबू बाँकेबिहारीलालजी (उपनाम 'बाँके पिया')। पृष्ठ-संख्या २५५। मूल्य केवल भक्ति। काग़ज़ और छपाई साधारण कोटि की। काग़ज़ की जिल्द बँधी हुई। संभवतः पुस्तक लेखक से प्राप्त होती है।

इस पुस्तक में विविध राग-रागिनी, कवित्त आदि में प्रेम-रस का प्रतिपादन किया गया है। बीच-बीच में, फ़ारसी-लिपि में, कुछ ग़ज़लें भी दी हुई हैं। बाबू बाँके-लालजी सच्चे वैष्णव और प्रेमी भक्त समझ पड़ते हैं। उनकी कविताएँ प्राचीन ढंग की हैं, और वे ही पुराने भाव उन्होंने भी दुहराए हैं; फिर भी कोई-कोई उक्ति चमत्कार-पूर्ण है। लेखक संभवतः पिंगल से कम परिचित हैं। आपकी रचना का एक उदाहरण यहाँ पर दिया जाता है—

गोधन सँग बन ते गृह आवन ;
गोधन खुरन धूलि अँग मंडित, मुख ते मुरली मधुर बजावन।
ग्वाल-बाल, गैयाँ सँग लीने मंद-मंद पग धावन ;
'बाँके पिय' प्रभु ऊँचे सुर सों धौरी, धूमर गाय बुलावन।"

× × ×

श्रीतुलसी-सूक्ति-सुधाकर-भाष्य—लेखक तथा प्रकाशक, श्रीयुत पं० बाबूराम शुक्ल, अध्यापक डाइमंड जुबिली हाई स्कूल, कन्नौज। पृष्ठ-संख्या २०८। काग़ज़ तथा छपाई साधारण। मूल्य २); प्रकाशक से प्राप्य।

इस पुस्तक में गोस्वामी तुलसीदास की निम्न-लिखित चौपाई के १६,७५,१४६ अर्थ किए गए हैं। उनमें विस्तार से सूचित अर्थ ५२५ हैं, और संक्षेप से १६,७४,६२०। चौपाई यह है—

"सबकर मत खगनायक एहा ;
करिय राम-पद-पंकज-नेहा।"

अर्थ किस प्रकार से किए गए हैं, इसका एक नमूना लीजिए—

"हे खगनायक ! खग—पक्षी हैं, नायक—अर्थात् वाहन जिनका ऐसे हंसवाहन । ब्रह्मा वा गरुड़वाहन ! विष्णु, अथवा खग नाम ग्रहों के नायक सूर्य । वा खग नाम देवों के नायक महादेवादिक ! पहा (इस ग्रंथ का) सबकर (सबका) मत (मान्य) [और] राम-पद-पंकज-नेहा (राम भक्ति दायक) करिए (कीजिए) ।"

वास्तव में पं० बाबूरामजी शुक्ल ने इस पुस्तक के लिखने में बड़ा परिश्रम, और इस पुस्तक द्वारा अपनी योग्यता का प्रदर्शन भी, खूब किया है । शुक्लजी-रचित भाष्य की यह पहली पुस्तक है । संभवतः अभी आप ऐसी ही और पुस्तकें भी लिखेंगे । हम शुक्लजी के परिश्रम की तो सराहना करते हैं, पर इस अर्थ-विस्तार की उपयोगिता में हमें संदेह है । हमें तो उपर्युक्त चौपाई का वही एक सीधा-सादा अर्थ पसंद है, और उसी में हम चौपाई का गौरव समझते हैं ।

× × ×

कानन-कुसुमांजलि—लेखकगण, कुँअर रामसिंह, ठाकुर चाँदसिंह, पंडित सूरजकरण तथा कुँअर ऊधोदास । प्रकाशक, प्रेमाश्रम, बीकानेर । पृष्ठ-संख्या १०० । मूल्य १=), कागज़ अच्छा ; छपाई साधारण । आरंभ में 'प्रेमाश्रम के प्राणाधार' का रंगीन चित्र । प्रकाशक से प्राप्य ।

इस पुस्तक में गद्य-काव्य का चमत्कार है । साधारण घटनाओं को लेकर उन पर काव्य-रचना की गई है, और अच्छी की गई है । पुस्तक संग्रह करने योग्य है । इसकी भाषा में कहीं-कहीं पर संशोधन की आवश्यकता है । एक उदाहरण लीजिए—

"मेरे नयन नीरद नीर टपकाकर निर्मल हो जाते हैं । मन-मयूर नाचने लगता है ।

हृदय-वाटिका में भाव-पुष्प खिलने लगते हैं । प्रेम के साम्राज्य में शब्द की गति नहीं है ।

वहाँ हृदय का एकाधिपत्य है, जिसकी भाषा मौन है ।"

× × ×

अमीरस-सार—संपादक, श्रीचमूपति एम्० ए०, आर्य-सेवक । प्रकाशक, श्रीराजपाल, प्रबंधकर्ता आर्य-पुस्तकालय, लाहौर । पृष्ठ-संख्या ४० । मूल्य ≡) ; मैनेजर श्रीराजपाल-आर्य-पुस्तकालय, सरस्वती-आश्रम, अनारकली, लाहौर से प्राप्य ।

इसमें भक्त अमीचंद के भजनों का संक्षिप्त, संशोधित संस्करण-संग्रह है ।

× × ×

पत्रपुष्प—लेखक, अज्ञात-नाम । प्रकाशक, सत्संग-भवन, सेठ शिवनारायण नेमाणी की बाड़ी, ठाकुरद्वार-रोड, बंबई । पृष्ठ-संख्या ७२ । मूल्य ।)

इसमें कई विषयों पर भजन इत्यादि हैं । पद्य-रचयिता की भाषा में मारवाड़ीपन झलकता है । पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अच्छी है ।

× × ×

मेघदूत—अनुवादकर्ता, पं० केशवप्रसाद मिश्र । प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी । पृष्ठ-संख्या ३१ । मूल्य ।) ; प्रकाशक से प्राप्य । छपाई-सफ़ाई उत्तम ।

इस पुस्तक में श्रीकालिदास के मेघदूत का, खड़ी बोली के पद्यों में, सुंदर अनुवाद है । खड़ी बोली में जो दो-चार और अनुवाद उपलब्ध हैं, उनमें यह सबसे अच्छा है । पद्य-रचना सरल, सुबोध और सरस है । पढ़ने में जी लगता है । एक नमूना नीचे दिया जाता है—

"उसी शैल पर उस विरही को आठ मास रोते बीता ;
कृश होने से कंचन-कंकण गिरकर हाथ हुआ रीता ।
अब असाढ़ आते ही उसने चोटी पर बादल देखा ;
क्रीड़ा में झुक ढूह ढाहते हाथी-सा उसको लेखा ।"

कृष्णविहारी

× × ×

स्वतंत्रता पर वीर-बलिदान—लेखक, पं० रघुनंदन-प्रसाद शुक्ल । प्रकाशक, पं० गोविंदप्रसाद शुक्ल, ३२-१ बुलानाला, काशी । पृष्ठ-संख्या २८ ; पद्य-संख्या १११ ; छपाई आदि साफ़ ; मूल्य =)

इस छोटी-सी पुस्तिका में रूस के एक वीर देश-भक्त की कहानी लिखी गई है । कहानी शिक्षाप्रद है । वर्णन-शैली भी भावमय है । किंतु पद्य एक भी शुद्ध नहीं है । केवल तुकबंदियाँ भरी हुई हैं ; पर तुकबंदी करने में भी लेखक को कुछ सफलता नहीं हुई है । कहीं-कहीं तो मुहावरों की हत्या कर डाली गई है । छपाई की अशुद्धियों ने और भी रंग फीका कर दिया है । अनेक अशुद्ध शब्दों का प्रयोग किया गया है । यथा—सौजन्यता, सरलपन, नवती, सत-सलाह, विस्मर्ण, क्षलना, करसमें, गीरा,

दिवश, मरशिया और कारागर आदि। आरंभ में एक हस्त-लिखित "शुद्धाशुद्ध-पत्र" भी है; पर उसमें केवल आठ ही अशुद्धियों का समावेश किया गया है। अच्छा होता, यदि लेखक महाशय ऐसी भोंड़ी तुकबंदी करने का निंदनीय प्रयास छोड़कर सुंदर गद्य-रचना का अभ्यास करते। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पंडित गोपाल-प्रसादजी शास्त्री को यह पुस्तिका समर्पित की गई है। शास्त्रीजी लेखक महाशय के 'गुरुवर' हैं। उन्होंने शायद लेखक को उत्साहित करने के लिये ही यह भक्ति-भेंट स्वीकार की है। लेखक महाशय ने इसे 'गुरुवर' के 'कर-कमलों में' समर्पित कर अपनी गुरु-भक्ति का अच्छा परिचय दिया है!

× × ×

भंग में रंग—लेखक, पं० अंबिकादत्त त्रिपाठी (दत्त)। प्रकाशक, साहित्य-सागर, सुइथा कलाँ, जौनपुर। पृष्ठ-संख्या ३२; पद्य-संख्या १५१; छपाई आदि साधारण। मूल्य ।) बहुत अधिक है।

यह पुस्तक 'सुधार-माला' का पाँचवाँ पुष्प है। आवरण पर काग़ज़ का एक टुकड़ा चिपकाया हुआ है। उस पर लिखा है—"मध्य-प्रदेश की टैक्स्ट-बुक-कमिटी से लाइब्रेरियों में रखने तथा इनाम देने के लिये स्वीकृत।" रचयिता महाशय अपने 'मुखबंध' में लिखते हैं—"इसमें पूजनीया पतिव्रता श्रीसावित्री देवी तथा वीर सत्यवान् की कथा वर्णन की गई है।...यदि हिंदी-संसार में यह पुस्तक स्वीकृत हो गई, तो शीघ्र ही अन्य कोई पुस्तक उपहार-स्वरूप सेवार्पित (?) करूँगा।" पुस्तक का विषय देखने पर इसका नाम बिलकुल असंगत और अशुद्ध जान पड़ता है। कितने ही पद्य बहुत क्लिष्ट हो गए हैं। सरसता और लालित्य को क्लिष्टता ने बहुत कम कर दिया है। कोई-कोई पद्य सुंदर हैं। यत्र-तत्र शब्द-योजना भी अच्छी है। प्रत्येक पृष्ठ में कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं। संभवतः यह टैक्स्ट-बुक-कमिटी की स्वीकृति की महिमा है। यदि लेखक महाशय अप्रचलित और विचित्र शब्दों के प्रयोग तथा शब्द और अर्थ की खींचातानी से बचने की चेष्टा करें, तो कुछ दिनों में उनकी रचना में प्रांजलता आ सकती है। पुस्तक के शिक्षाप्रद होने में संदेह नहीं है।

× × ×

किशोरभावोद्गार (प्रथम भाग)—रचयिता, पं० युगलकिशोर मिश्र "किशोर", मॉडर्न हाई स्कूल, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ३३। छपाई साफ़। संभवतः रचयिता से प्राप्य। न्योछावर ≈)॥ है।

इसमें एक नवयुवक के पद्य-बद्ध हृदयोद्गार भरे हुए हैं। दोहों, कवित्तों, सवैयों और गायन-पदों में इस पुस्तक की रचना हुई है। कुछ खड़ी बोली के पद्य भी हैं। उनमें अशुद्धियाँ बहुत हैं। दोहों में कुछ शृंगार-रस की उक्तियाँ भी हैं। कुछ उक्तियाँ प्रशंसनीय हैं, अधिकांश पिष्ट-पेषण है। दोहे, कवित्त, सवैए आदि की रचना मिश्रित व्रजभाषा में हुई है। व्रजभाषा की रचनाएँ भावमयी और सरल हैं। इसमें स्वदेश और ईश्वर की भक्ति को प्रधानता मिली है, इसलिये इससे कुछ देर दिल ज़रूर बहलता है।

× × ×

नाम-तरंग (A Book of Synonyms)—"कविवर स्वर्गीय श्रीसंतपालजी बर्मन 'हरी प्रेमी'-कृत" और "श्रीयुत बलदेवजी बर्मन द्वारा प्रकाशित।" पृष्ठ-संख्या २४; छपाई साधारण; मूल्य ≈) बहुत अधिक है। मिलने का पता—प्रकाशक, बड़ी पाटन देवी, गुलज़ार-बाग़, पटना।

यह एक छोटा-सा पद्य-बद्ध संक्षिप्त कोष है। इसकी शब्द-संख्या सौ से कुछ अधिक है। एक शब्द के अनेक पर्याय पद्य-रूप में दिए गए हैं। शुरू के चार पृष्ठों में स्वर्गीय रचयिता का संक्षिप्त परिचय है। बहुत-से पद्यों में छंदोभंग-दोष है। पद-योजना के लिये कितने ही शब्दों के रूप विकृत कर दिए गए हैं। रचना का एक उदाहरण देखिए—

"तारापति, रजनीश, निशाकर, द्विजराजहु राकेशा,
औषधीश, शश-अंक, सुधाकर, कलानिधी, नखतेशा।"

शिवपूजनसहाय

× × ×

'कालिदास-कृत अभिज्ञान शाकुंतलम्'—संपादक, श्रीयुत बनारसीदास जैन एम्० ए० तथा श्रीयुत मदनगोपाल शास्त्री। प्रकाशक, मेसर्स दास ब्रदर्स, अनारकली, लाहौर। मूल्य ज्ञात नहीं।

यह संस्करण छात्रों के लिये—विशेष करके अँगरेज़ी-कॉलेज के छात्रों के लिये—अत्यंत उपयोगी है। बहुत दिनों से प्राकृत का पठन-पाठन प्रायः शिथिल हो रहा है। परंतु अब उसकी उपयोगिता पर विद्वानों का ध्यान

आकृष्ट होने लगा है, और कॉलेजों में भी भाषा-शास्त्र की दृष्टि से प्राकृत का परिशीलन अनिवार्य-सा हो चला है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि प्रत्येक प्राकृत-पद के ठीक नीचे उसकी छाया संस्कृत में दी गई है, जिससे अनायास छात्रों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट होता है कि किस प्रकार प्राकृत से संस्कृत का संबंध है। मार्जिन में कठिन पदों का अँगरेज़ी-अनुवाद भी दिया गया है। इसके अतिरिक्त भूमिका भी बड़ी अच्छी लिखी गई है। परिशिष्ट में संस्कृत से प्राकृत बनाने के लिये कुछ नियमों का संक्षेप में उल्लेख है। इससे प्राकृत के अभ्यास में और भी अधिक सुविधा होगी। परिशिष्ट 'ब' में शकुंतला के पद्यों के लक्षण भी दिए गए हैं। पुस्तकांत में संक्षिप्त नोट्स भी दिए गए हैं, तथा श्लोकों की सूची में उनके छंदों के नाम भी। इससे पुस्तक की उपादेयता और भी अधिक बढ़ गई है। आशा है, छात्रगण इस उत्तम संस्करण से लाभ उठावेंगे।

आद्यादत्त

× × ×

२. उपन्यास और कहानी

ध्रुवतारा—लेखक, एक स्वयंसेवक 'विशारद' और प्रकाशक, नारायण-पुस्तकालय, चौक, पटना-सिटी। भाषा सजीव और मधुर। मूल्य ≡) कागज़, छपाई आदि सुंदर।

एक छोटी-सी आख्यायिका में एक विधवा की करुण कथा कही गई है।

× × ×

अपूर्व ब्रह्मचारी—लेखक और प्रकाशक, पं० विंध्येश्वरीदत्त शुक्लवकील, सिवान, सारन। मूल्य ।=) बहुत ठीक है। कागज़, छपाई आदि सुंदर।

रोचक उपन्यास है। लेखक ने बनारस के एक द्विज-कुल की कथा द्वारा ब्राह्मणों का वर्तमान धार्मिक पतन और अविद्या का दिग्दर्शन कराया है। वास्तव में इस जाति का ऐसा ही पतन हुआ है। कथा स्वाभाविक है। भिखारी मिसिर और उनकी कर्कशा स्त्री का चरित्र खींचने में लेखक ने सफलता प्राप्त की है। अखाड़ेवाला दृश्य बहुत अच्छा है। किंतु विनयानंद-जैसे कमसिन बालक के मुख से जो बातें कहलाई गई हैं, वे किसी युवक के मुख से शोभा देतीं। कथा भी शिथिल है। पुलीस के कर्मचारियों का जो देव-चरित्र अंकित किया गया है, वह किसी धार्मिक संस्था के सेवकों की याद दिलाता है। हमारे पुलीस के आदमी ऐसे ही दयालु होते, तो फिर रोना काहे का था!

× × ×

सुमति—लेखिका, श्रीमती रत्नवती देवी शर्मा। प्रकाशक, पं० चिरंजीलाल शर्मा, ३३ जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद। मूल्य छः आने।

एक छोटा-सा उपन्यास है। दो सौतें आपस में कैसे रह सकती हैं, यही बात दिखाई गई है। तारा धैर्य और स्नेह की मूर्ति है। उसकी छोटी सौत अपनी कुटिला चाची के फेर में पड़कर उसे बहुत दुःख देती है, पर तारा सब कुछ प्रसन्नता-पूर्वक सह लेती है। चरित्रों के दोष-गुण दिखाने की ज़रूरत नहीं। लड़कियों के मन-बहलाव की अच्छी पुस्तक है। कहीं-कहीं गाने और ग़ज़लें हैं, जिनकी उपन्यास में कोई ज़रूरत न थी। ग़ज़लों में बाज़ारी नाटक खेलनेवाले बातें करते हैं।

× × ×

रूपसुंदरी—लेखक, पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इंद्र"। प्रकाशक, सुंदर-प्रेस, सनावद, नीमाड़।

इसे न उपन्यास कह सकते हैं, न आख्यायिका। एक पतिव्रता स्त्री ने अपने पति की प्राणरक्षा की है, यहाँ तक तो कोई अनोखी बात नहीं, लेकिन इसके आगे राक्षसों का पदार्पण हुआ, जिससे कहानी का मज़ा जाता रहा। भाषा आद्योपांत अस्वाभाविक है।

× × ×

अद्भुत प्रायश्चित्त—लेखक, बाबू व्रजनंदनसहाय। लेखक ही से चित्रगुप्त मंदिर, बाबूबाज़ार, आरा के पते से ≡)॥ में मिल सकता है।

यह छोटा-सा मनोहर उपन्यास है। इसमें भाव, भाषा और उद्देश्य, सब कुछ परिमार्जित है। यद्यपि यह सन् १६०१ में लिखा गया था, पर इससे लेखक की प्रतिभा का परिचय मिलता है। अगर बाबू साहब ने उपन्यास लिखे होते, तो वह अवश्य सफल होते। एक शराबी, दुर्व्यसनी युवक, जिसे पिता ने निराश होकर घर से निकाल दिया था, अधःपतन की चरम सीमा तक पहुँचने के बाद, ईश्वर और मनुष्य पर विश्वास न रहने की हालत में, अपने ममेरे भाई के प्रेम और सद्व्यवहार से क्योंकर सँभल जाता है, यही इस पुस्तक में दिखाया गया है। वह दृश्य बहुत मार्मिक है, जब शराब-ख़ाने में दोनों भाइयों की भेंट हुई है। छपाई इससे उत्तम

होती, तो अच्छा होता। युवकों के लिये बहुत ही उपयोगी चीज़ है।

प्रेमचंद

× × ×

एकादशी—लेखक, श्रीगोविंदवल्लभ पंत। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, काशी। पृष्ठ-संख्या १४६। छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी। मूल्य १)

हिंदी-पुस्तक-माला का यह सत्ताईसवाँ पुष्प है। श्रीयुत पंतजी गद्य और पद्य, दोनों के लेखक हैं। आपकी कविताएँ माधुरी में प्रायः प्रकाशित हुआ करती हैं। एकादशी आपके उत्कृष्ट गद्य का नमूना है। इसमें ग्यारह कहानियों का संग्रह है। भाषा भली और शैली सुंदर है। भविष्य में पंतजी से इससे भी बढ़े-चढ़े ग्रंथों की आशा की जा सकती है। पर डर इस बात का है कि गद्य और पद्य, दोनों के उपासक की दो नाव पर चढ़नेवाले की-सी दशा न हो जाय। पुस्तक के आरंभ में अनेक नवयुवकों को उत्साहित कर मातृभाषा, राष्ट्रभाषा हिंदी की सेवा में प्रवृत्त करनेवाले श्रीरामदास गौड़ का 'पुण्याहवाचन' है। मालूम नहीं, क्यों आजकल के कतिपय साहित्य-सेवी श्रीगौड़जी की इस शैली से इतना भड़कते हैं। पुस्तक के आवरण-पत्र पर कई पुस्तकों का जूठा एक स्त्री का चित्र है, जिसने पुस्तक के किसी विशेष भाव की घटना को व्यक्त करने के बदले उसके महत्त्व को घटा दिया है। कहानियाँ अच्छी, पर प्रेस की प्रेत-बाधा से ग्रस्त हैं। मूल्य भी अधिक है।

× × ×

जीवन—लेखक, श्रीयुत ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शर्मा। प्रकाशक, पूर्वोक्त। पृष्ठ-संख्या ११०। छपाई-सफ़ाई साधारण। मूल्य ॥।-)

यह एक अद्भुत रस का उपन्यास है। इसका दूसरा नाम बम-विभ्राट् है। यह भी उसी माला का अट्ठाईसवाँ पुष्प है। इसमें देवकी-नामक एक व्यक्ति की सृष्टि की गई है, और उसी के जीवन की अद्भुत घटनाओं का इसमें वर्णन है। मौलिक होने के कारण पुस्तक अवश्य प्रशंसनीय है। हिंदी में ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है, जिनसे नवयुवकों में घटना-पूर्ण जीवन व्यतीत करने की इच्छा उत्पन्न हो, और वे ज़रा-ज़रा-सी कठिनाई पड़ने पर घबरा न जायँ। आशा है, ब्रह्मचारीजी भारतीय आदर्श लेकर राबिंसन क्रूसो और गुलियर की यात्रा के ढंग की पुस्तकें भी हिंदी-पाठकों की भेंट करेंगे। पुस्तक की रोचकता बढ़ाने के विचार से प्रकाशक ने इसके भी टाइटिल पर एक स्त्री का चित्र दिया है। यदि प्रकाशक इतना ही ध्यान प्रूफ़-संशोधन तथा संपादन की ओर देते, तो पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता। आशा है, इसके द्वितीय संस्करण में ये त्रुटियाँ न रहने पावेंगी।

छन्नूलाल द्विवेदी

× × ×

३. धर्म

"हिंदुओ! सावधान!!"—लेखक और प्रकाशक, पं० रामचंद्र द्विवेदी, गुरुकुल ऋषिया, देवघर (वैद्यनाथ-धाम), संथाल-परगना। पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य ।≈)

इस पुस्तक का दूसरा नाम है "दाइए-इसलाम का भंडाफोड़ (?)"। दिल्ली के ख़्वाजा हसननिज़ामी साहब ने 'दाइए-इसलाम'-नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमें हिंदुओं को मुसलमान बनाने की युक्तियाँ बतलाई गई हैं। इस पुस्तक में उन्हीं युक्तियों का उत्तर दिया गया है। लेखक ने पुस्तकारंभ में १४ पृष्ठों की एक भूमिका लिखी है। भूमिका जातीय जोश से भरी हुई है। इसकी बहुत-सी बातें विचारणीय हैं। लेखक ने ख़्वाजा साहब को ख़ूब उत्तर दिया है, और उनके मज़हबी हमले से बचाने के लिये हिंदुओं को अनेक बार पुकार-पुकारकर चितावनी दी है। हिंदुत्व का गौरव समझनेवाले पढ़े-लिखे हिंदुओं में इस पुस्तक के प्रचार की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी उन लोगों में, जो भोले-भाले, अपढ़ और अपने धर्म की महिमा से अपरिचित हैं। उन लोगों में यदि सावधानता-पूर्वक इस पुस्तक के मुख्य उद्देश का प्रचार किया जाय, और साथ-ही-साथ उन्हें धार्मिक विद्वेष से बचे रहने का उपदेश देते हुए स्वधर्म का गौरव समझाया जाय, तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। किंतु यदि इस पुस्तक का समुचित सदुपयोग न किया जा सका, तो धार्मिक विद्वेष फैलने की बड़ी भारी आशंका है। कहीं-कहीं ख़्वाजा साहब की मानसिक संकीर्णता से कुढ़कर लेखक को भी अपनी जातीयता का अखंड अभिमान ऐसे ढंग से प्रकट करना पड़ा है कि वहाँ स्वभावतः जातीय पक्षपात की झलक-सी आ गई है। कुछ स्थलों में तो

लेखक ने ख़्वाजा साहब या धर्मांध मुसलमानों को हिंदू-धर्म की श्रेष्ठता के बल पर छाती ठोककर ललकारा है। ख़्वाजा साहब की पुस्तक से जितने उद्धरण इसमें दिए गए हैं, इनसे यह स्पष्ट विदित होता है कि वह इसलाम-धर्म के कट्टर अंध-भक्त हैं। किंतु हिंदू-धर्म में उनके समान कट्टर अंध-भक्त की आवश्यकता नहीं है। मज़हबी अंध-भक्ति किसी भी जाति के लिये कलंक हो सकती है। लड़-झगड़कर कोई अपने धर्म की महत्ता नहीं सिद्ध कर सकता। खंडन-मंडन, दलील, हुज्जत या तर्क से धर्म का कोई सरोकार नहीं है। जिरह या बहस से धर्म-जैसी किसी वस्तु की रक्षा या वृद्धि नहीं हो सकती। हाँ, धार्मिक द्वेष और जातीय कलह-कोलाहल का विस्तार अवश्य हो सकता है। प्रायः ऐसे ही हिंदू अपनी चुटिया कटाते हैं, जो हिंदू-समाज से तिरस्कृत होकर असहाय भटकते फिरते हैं। यदि हिंदू-समाज अपने अंगों की रक्षा का दायित्व दृढ़ता-पूर्वक ग्रहण कर ले, तो हिंदू-धर्म पर किसी विधर्मी का दाँत नहीं गड़ सकता। जब तक हिंदू अपने अछूत भाइयों को प्रेम से गले नहीं लगाते, अपने अनाथ बालकों को आश्रय नहीं देते, अभागिनी असहाया विधवाओं को नहीं अपनाते, अपने निर्बल और ग़रीब भाइयों के साथ निंदनीय दुर्व्यवहार करना नहीं छोड़ते, और अपने समाज की अबलाओं की यथेष्ट प्रतिष्ठा करना नहीं सीखते, तब तक किसी आक्रमणकारी विधर्मी को किसी प्रकार का दोष देना हिंदुओं की जातीय कायरता है। जब तक हिंदू आत्म-रक्षा के लिये शुद्ध हृदय से कटि-बद्ध नहीं होंगे, तब तक ऐसी-ऐसी हज़ार पुस्तकों की कड़ी कनैठियाँ भी उन्हें ग़फ़लत की नींद से नहीं जगा सकेंगी।

× × ×

दान-विचार—लेखक, पं० भगवान शर्मा (नार्मदीय), स्थान—जरबाह, पो० ठीकरी, रियासत धार। पृष्ठ-संख्या ४७; छपाई आदि साधारण। मूल्य चार आने। लेखक से प्राप्य।

इस पुस्तक में धर्मशास्त्रों के आधार पर दान के लक्षण, अंग, माहात्म्य, फल, पात्र, और भेद आदि अच्छे ढंग से बतलाए गए हैं। दान की आवश्यकता और प्रशंसा पर भी बहुत कुछ लिखा गया है, और अच्छा लिखा गया है। भारतवर्ष की दान-प्रणाली बहुत दूषित हो गई है। इसलिये ऐसी पुस्तकों का प्रचार होना चाहिए। इसकी भाषा में कुछ सुधार की ज़रूरत है। लेखक के विचार पवित्र और उपयोगी हैं।

शिवपूजनसहाय

× × ×

अंजनासुंदरी—लेखक, श्री० पं० रामचरित उपाध्याय। प्रकाशक, श्रीआत्मानंद-जैन-ट्रैक्ट-सोसाइटी, अंबाला शहर। मूल्य ≈)॥, प्रकाशक से प्राप्य।

यह जैन-प्रथमान-योग-विषय की एक विख्यात कथा है। अंजनासुंदरी का स्वच्छ चरित्र, आपत्ति-काल में धैर्य और जैन-धर्म में अटल विश्वास सभी के लिये शिक्षाप्रद है। "गर्दनिया", "भुरकुस", "झड़कार", "तनिक", "बंटाढार", "आत्मसर दूँगा" आदि शब्दों का प्रयोग अच्छा नहीं लगता। बीच-बीच में जो गीत दिए गए हैं, वे भी कुछ महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं।

× × ×

अहिंसा-तत्त्व—संकलनकर्ता, एक दीन। प्रकाशक, खड्ग-विलास-प्रेस, पटना। पृष्ठ-संख्या १२५। मूल्य।≈); प्रकाशक से प्राप्य।

इस छोटी-सी पुस्तक में अहिंसा-तत्त्व का स्वरूप महाभारत, पद्मपुराण, अत्रिस्मृति, कूर्मपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रंथों के प्रमाण देकर भली भाँति दिखाया गया है, और यह सिद्ध कर दिया है कि अहिंसा-तत्त्व केवल धार्मिक श्रद्धान की ही वस्तु नहीं है, किंतु मनुष्य-जाति के समस्त सांसारिक दैनिक व्यवहार की उन्नति अहिंसा-तत्त्व पर निर्भर है। सांसारिक जीवन के सुख, राष्ट्रीय संगठन, स्वतंत्रता और स्वराज्य का मूल अहिंसा-धर्म का पालन करना है। समता, दया, क्षमा, त्याग आदि अहिंसा-धर्म के मुख्य अंग हैं।

अहिंसा-धर्म सर्वव्यापक है। देश, काल की अवधि इसके वास्ते बाधक नहीं है। अहिंसा-तत्त्व के प्रतिपादक, और प्रवर्तक महात्मा गाँधी साक्षात् विद्यमान हैं, और उनके कथनानुसार व्यवहार और उनके चरण-चिह्नों के अनुगामी होकर जीवन-यात्रा करना कुछ कठिन काम नहीं है।

पुस्तक अपने ढंग की निराली और उपयोगी है।

अजितप्रसाद

× × ×

क़ुरान में परिवर्तन—लेखक, पं० सत्यदेवजी । साइज़ १८×२२/८; पृष्ठ-संख्या ११२ । मूल्य ॥) ; मिलने का पता—पं० सत्यदेवजी, धर्म-दिवाकर-कार्यालय, जैतपुरा, काशी ।

विषय नाम से ही प्रकट है । वास्तव में संपूर्ण पुस्तक के तीन खंड हैं । प्रथम खंड में लेखक ने निम्न-लिखित बातें लिखी हैं—

(१) क़ुरान शरीफ़ का वर्तमान संग्रह तथा क्रम स्वयं हज़रत मुहम्मद साहब का किया हुआ नहीं है ।

(२) वर्तमान क़ुरान शरीफ़ की सूरतों (अध्यायों) का क्रम भी वैसा ही नहीं है, जैसा कि हज़रत मुहम्मद साहब पर उतरा हुआ माना जाता है ।

(३) क़ुरान शरीफ़ की सूरतों व आयतों में मतभेद ।

ज्ञात रहे, मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद कादियानी के अनुयायी मुसलमान आजकल इस्लाम के लिये सिरतोड़ कोशिश कर रहे हैं, और इनमें से जो लोग लाहौरी पार्टी के स्तंभ हैं, वे बड़े अनोखे ढंग से काम में लगे हैं । उसी का फल है कि मौलवी मुहम्मद अली साहब ने 'जमाक़ुरान'-नामी एक ग्रंथ रचकर यह बात दिखाने में ज़ोर मारा है कि वर्तमान क़ुरान शरीफ़ के क्रम में किंचिन्मात्र परिवर्तन नहीं हुआ । वह जिस प्रकार हज़रत मुहम्मद साहब पर उतरा, ठीक उसी क्रम से हमारे पास आज तक मौजूद है । क़ुरान शरीफ़-जैसी कोई धर्म-पुस्तक संसार में सुरक्षित व पूर्ण नहीं है । परंतु 'क़ुरान में परिवर्तन' के लेखक महाशय ने माननीय मुसलमानों के लेखों से ही बहुत अच्छी तरह दिखा दिया है कि क़ुरान शरीफ़ का वर्तमान संग्रह हज़रत मुहम्मद साहब का किया हुआ ही नहीं है, बल्कि वह हज़रत साहब के बाद हुआ है । इसमें वह क्रम नहीं है, जिस क्रम से यह ख़ुदा की ओर से उतरा है । किसी ने सूरतों की संख्या कुछ लिखी है, किसी ने कुछ ।

इतिहास के प्रेमी इस बात को जानते ही हैं कि हज़रत मुहम्मद साहब को अपने शत्रुओं से पीड़ित होकर मक्के से मदीने जाना पड़ा था । अतः 'क़ुरान शरीफ़' का कुछ अंश हज़रत साहब पर मक्के में उतरा था, और कुछ मदीने में भी । निदान दूसरे खंड के 'परिशिष्ट' में लेखक ने बड़ी खोज के साथ यह साबित कर दिखाया है कि मक्केवाली बातें कहीं मदीनेवाले क्रम में हैं, और कहीं मदीनेवाली बातें मक्केवाले क्रम में, अर्थात् शृंखला के विचार से वर्तमान क़ुरान शरीफ़ में आकाश-पाताल का मत-भेद है ; क्योंकि प्रथम उतरनेवाला अंश क़ुरान शरीफ़ के आरंभ में नहीं है, और अंत में उतरनेवाला समाप्ति पर नहीं, बल्कि वर्तमान क़ुरान शरीफ़ के एक अन्य स्थान में है ।

तीसरे खंड के 'उपसंहार' में लेखक ने प्रायः उन बातों को बतलाया है, जिन पर प्रायः साधारण मुसलमान विश्वास रखते हैं, और इसी खंड में यह बात दिखलाई है कि कितना और किस प्रकार 'क़ुरान शरीफ़' हज़रत मुहम्मद साहब पर उतरता था । मतलब यह कि लेखक ने ग्रंथ को बड़े परिश्रम से लिखा है । आवश्यकतानुसार अपनी पुष्टि में मुसलमान ग्रंथकारों के मत भी दिए हैं । इससे लेखक की अच्छी जानकारी का पता चलता है । जो लोग 'क़ुरान शरीफ़' से दिलचस्पी रखते हैं, उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है ।

महेशप्रसाद

× × ×

उपासना-तत्त्व—लेखक, श्रीयुत जुगलकिशोर मुख़्तार, सरसावा, जिला सहारनपुर । प्रकाशक, जैन-ग्रंथ-रत्नाकर-कार्यालय, हीराबाग़, गिरगाँव, बंबई । मूल्य—अनुवर्तन ।

यह छोटी-सी पुस्तक जैन-मतानुयायियों को उपासना का मर्म समझाने के उद्देश से लिखी गई है । आजकल, जैसा प्रायः सभी उपासनाओं में होने लगा है, जैन लोगों की उपासना भी भाव शून्य रहती है । इसलिये भाव की आवश्यकता पर प्रारंभ में ही ज़ोर दिया गया है । तदनंतर 'सिद्धांत तथा उद्देश्य'-शीर्षक में जैन-सिद्धांत तथा उपासना के उद्देश्य का वर्णन है । ततःपर मूर्तिपूजा का समर्थन किया गया है । पुस्तक जैन-धर्मावलंबियों के काम की है ।

× × ×

भारत का धार्मिक इतिहास—लेखक, बेथर-निवासी पंडित शिवशंकर मिश्र । प्रकाशक, रिखबदास बाहिती, ४, चोरबागान, कलकत्ता । मूल्य ३), रेशमी ३॥)

पुस्तक के प्रारंभ में मनुष्य-देह की श्रेष्ठता दिखलाते हुए मनुष्य को बुद्धि-पूर्वक धर्माधर्म और कर्तव्याकर्तव्य का विचार करके जीवन को सार्थक करने का उपदेश दिया गया है । फिर, मनुष्य का ध्येय अक्षय सुख की प्राप्ति है, यह बताकर, अक्षय सुख तथा मोक्ष का साधन क्या है, इस पर विचार किया गया है । फिर वैदिक धर्म को सबसे अधिक प्राचीन धर्म बताते हुए, लेखक महाशय

ने, वेद तथा उसमें प्रतिपादित विषयों का सप्रमाण विवेचन किया है। फिर क्रमशः दर्शन-शास्त्रों के उल्लेख के अनंतर भिन्न-भिन्न मतों तथा संप्रदायों का विवेचन है। उन-उन संप्रदायों का मूल तत्त्व क्या है, उनके मुख्य आचार्य कौन-कौन हुए हैं, तथा उनका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ, इस पर भी विचार किया गया है। भारत से बाहर के जरथोस्ती, यहूदी तथा क्रिश्चियन धर्मों का भी उल्लेख यथास्थान किया गया है। मुख्य-मुख्य संप्रदाय-प्रवर्तकों के चित्र भी दिए गए हैं। इस प्रकार के ग्रंथ की हिंदी-साहित्य में बड़ी आवश्यकता थी, जिसे पूरी करके लेखक महाशय ने हिंदी की अच्छी सेवा की है। पर यह इतिहास अत्यंत संक्षिप्त है। लेखक महाशय अपने 'वक्तव्य' में आशा करते हुए लिखते हैं कि भविष्य में कोई सज्जन इसको पल्लवित करने की चेष्टा करेंगे। पुस्तक प्रत्येक पुस्तकालय में रखने योग्य है। यही नहीं, हिंदी की उच्च परीक्षाओं में धर्म-संबंधी विषय के तुलनात्मक अभ्यास के लिये पाठ्य पुस्तक होने योग्य है। छपाई-सफ़ाई सुंदर है। पुस्तक के आकार तथा महत्त्व की दृष्टि से मूल्य भी अधिक नहीं है।

× × ×

'सरल गीता' (मूल-संस्कृत तथा हिंदी-अनुवाद)—अनुवादकर्ता, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे। प्रकाशक, हिंदी-पुस्तक-भवन, कलकत्ता।

गीता के असंख्य अनुवाद निकले हैं; पर उन सब में यह अत्यंत सरल और श्रेष्ठ है, इसमें संदेह नहीं। जिन्हें मूल-ग्रंथ का वास्तविक प्रयोजन समझना है, जिन्हें सांप्रदायिक झगड़ों में नहीं पड़ना है, उनके लिये यह अनुवाद बड़े काम का है। वैसे तो अनेक टीकाकारों ने गीता का अर्थ करने में अपना-अपना पांडित्य ख़र्च किया है, पर सरल और सुबोध होने में यह अनुवाद अद्वितीय है। स्थान-स्थान पर, जहाँ केवल अनुवाद से अर्थ स्पष्ट होना संभव नहीं देख पड़ा, सरल शब्दों में व्याख्या भी लिखी गई है। वह भी विस्तृत नहीं, जितनी अर्थ के स्पष्ट करने के लिये नितांत आवश्यक थी, उतनी ही। जो लोग संस्कृत अधिक न जानते हों, पर गीता का मर्म समझने की इच्छा रखते हों, उन्हें अवश्य इस सरल गीता से लाभ उठाना चाहिए।

आनंद

× × ×

विषलता—लेखक, श्रीयुत धर्मपाल बी० ए०, उर्फ़ मियाँ अब्दुलग़फ़ूर। प्रकाशक, वैदिक पुस्तकालय, मुरादाबाद। मूल्य ।≈) आने।

मियाँ अब्दुलग़फ़ूर जिन दिनों महाशय धर्मपाल के नाम से प्रसिद्ध होकर आर्यसमाज में यश और गौरव लूट रहे थे, उन्हीं दिनों उन्होंने यह छोटी-सी पुस्तिका (उर्दू में) लिखकर मुसलमान बादशाहों की धर्मांधता, अन्यायशीलता और पैशाचिकता का रोना रोया था। न सभी हिंदू राजे-महाराजे आदर्श थे, न सभी ईसाई, मुसलमान, बौद्ध या जैन ही। फिर विशेष रूप से मुसलमान बादशाहों को ही बदनाम करने की क्या आवश्यकता? वह अविद्या, अनुदारता और संग्राम का युग था। सभी नरेश न्यूनाधिक इसी कोटि के होते थे। किसी धर्म-विशेष के भूतपूर्व नरपतियों का अब छिद्रान्वेषण करना केवल दो जातियों में द्वेष बढ़ाना है। मेरी राय में ऐसी पुस्तकों को दियासलाई दिखानी चाहिए।

× × ×

छानबीन—लेखक, स्वर्गीय दर्शनानंदजी। प्रकाशक, वही। दाम पाँच आने।

यह एक ट्रैक्ट है, जिसमें कुरान पर आक्षेप किए गए हैं। ऐसे ट्रैक्टों से सांप्रदायिक विरोध बढ़ने के सिवा और कोई लाभ नहीं होता। इन्हीं करतूतों ने आज भारत की राष्ट्रीय स्थिति को इतना जटिल बना दिया है।

× × ×

विचित्र जीवन—लेखक, पं० कालीचरण शर्मा। प्रकाशक, प्रेम-पुस्तकालय (?), फुलट्टीबाज़ार, आगरा। यह भी उसी ढंग की पुस्तक है। इसमें हज़रत मुहम्मद के चरित्र के दोष दिखलाए गए हैं।

अत्यंत अशिष्ट, भ्रष्ट और अविचार-पूर्ण पुस्तक है। लज्जा और खेद का विषय है कि कुछ प्रकाशक टके कमाने के फेर में पड़कर ऐसी गंदी किताबें प्रकाशित कर रहे हैं। ऐसी किताबों से आर्यसमाज का गौरव नहीं बढ़ता, और महात्माजी के कथन की ही पुष्टि होती है। अगर मुसलमान लोग ऐसा साहित्य लिखते या प्रकाशित करते हों, तो उसके जवाब में भी हिंदुओं को ऐसी पुस्तकें न लिखनी चाहिए। हिंदू-धर्म का आदर्श क्षमा और नेकी ही है।

प्रेमचंद

× × ×

४. व्यापार

कपास की खेती—प्रकाशक, युक्तप्रांतीय खादीमंडल, मेस्टन-रोड, कानपुर। पृष्ठ-संख्या २३। मूल्य एक आना।

इस पुस्तक के कवर पर लेखक का नाम नहीं दिया गया है। परंतु प्रस्तावना के अंत में श्रीमान् गंगानारायण अवस्थी और श्रीयुत रामस्वरूप गुप्त के नाम दिए हुए हैं। इससे मालूम होता है कि आप लोग ही इसके लेखक हैं। हम विद्वान् लेखकों के इस मत से सहमत हैं कि चरखे और खद्दर के पुराने उद्योग का घर-घर गाँव-गाँव में प्रचार और पुनरुद्धार करने से ही इस देश का उद्धार हो सकता है। परंतु हम यह मानने को तैयार नहीं हैं कि उसको सफल बनाने के लिये कपास की खेती का विस्तार अधिकांश किसानों तक हो। यह जानते हुए कि देश में प्रतिवर्ष करोड़ों मन नाज की भयंकर कमी रहती है, अधिकांश किसानों को तो नाज की उपज बढ़ाने की तरफ़ ही विशेष ध्यान देना चाहिए। देश में कपास की उपज कम नहीं होती। करोड़ों रुपयों का कपास प्रतिवर्ष भारत से विदेश भेजा जाता है। यदि यह निर्यात कम कर दिया जाय, तो फिर देश में कपास की कमी न हो। हम यह मानने को तैयार हैं कि नए तरीक़ों के उपयोग से कपास की उपज बढ़ाई जा सकती है, और लंबे रेशेदार कपास की उपज बढ़ाना भी इस समय बहुत आवश्यक है। परंतु इसके लिये कपास की खेती का विस्तार अधिकांश किसानों तक करने की ज़रूरत नहीं है। पुस्तक में कपास की खेती से संबंध रखनेवाली कई आवश्यक और उपयोगी बातों का समावेश किया गया है। पुस्तक अच्छी है। इसका प्रचार कपास की खेती करनेवाले किसानों में अवश्य होना चाहिए। अच्छा हो, यदि कोई दानवीर सज्जन इस पुस्तक को ग़रीब किसानों में विना मूल्य बाँटने की व्यवस्था कर दें।

दयाशंकर दुबे

× × ×

५. वैद्यक

चिकित्सा-चंद्रोदय (पाँच भाग)—लेखक, वैद्यवर श्रीयुत हरिदासजी। प्रकाशक, हरिदास-कंपनी, २०१ हरीसन रोड, कलकत्ता। मूल्य जिल्ददार प्रथम भाग ३।।।); द्वितीय भाग ५।।।); तृतीय भाग ५); चतुर्थ भाग ४।।); पंचम भाग ५।।); विना जिल्द की प्रतियों के मूल्य में चार आने प्रति की कमी है, और एकसाथ जिल्ददार पाँचों भाग लेने से १५ रु० सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है।

हिंदी में अभी तक उपन्यासों के लिखने का बड़ा भारी शौक़ चला आ रहा है। इधर कुछ वर्षों से काव्य-ग्रंथों के लेखन और प्रकाशन का भी सिलसिला शुरू हुआ है। आंदोलन के कारण कुछ राजनीतिक तथा ऐतिहासिक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। लेकिन, अभी साहित्य के अन्यान्य अंग ख़ाली पड़े हुए हैं। विशेष कर आयुर्वेद-संबंधी हिंदी-ग्रंथों की कमी तो अक्षम्य-सी प्रतीत होती है। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि लेखकगण उन्हीं विषयों में हाथ लगाते हैं, जिनमें परिश्रम कम और अर्थ-यशःप्राप्ति की अधिक संभावना होती है। हर्ष का विषय है कि कलकत्ते के सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी बाबू हरिदासजी वैद्य ने आयुर्वेद की ओर विशेष ध्यान दिया है, और "स्वास्थ्य-रक्षा" लिखने के बाद, "चिकित्सा-चंद्रोदय"-नामक महद् ग्रंथ लिखना शुरू किया है। अभी तक इसके उपर्युक्त पाँच भाग प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक वैद्यक-विद्या की दृष्टि से सर्वांग-पूर्ण हुई है। पहले भाग में आयुर्वेद-शास्त्र की ३०० ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। शरीर की रचना, हृदय, फुफ्फुस, तथा मस्तिष्क की बनावट, गति और क्रिया का सचित्र वर्णन करके डॉक्टरी अन्वेषणों का भी समयोचित समावेश कर दिया गया है। शरीर की नसों, हड्डियों, धातुओं तथा मर्मस्थलों का भी दिग्दर्शन कराया गया है। वात, पित्त तथा कफ का वर्णन आयुर्वेद तथा एलो-पैथी, दोनों के आधार पर लिखा गया है। इसके बाद लक्षण, निदान, उपचार और औषध-निर्वाचन पर लग-भग १०० पृष्ठों में अच्छी व्याख्या लिखी गई है। हरएक बात बड़ी ही सरल भाषा में लिखकर ख़ूब अच्छी तरह से समझाई गई है। चरक, निघंटु, वंगसेन, सुश्रुत आदि ग्रंथों के उद्धरण देकर लेखक ने आयुर्वेद की ऐसी अच्छी पुष्टि की है कि पढ़ते ही बनता है।

दूसरे भाग में ज्वरों की उत्पत्ति और उनके स्वभाव-भेदों तथा लक्षणों, उपचारों एवं पथ्य-निर्णयों पर ५०० पृष्ठ लिखे गए हैं। ज्वर में पानी कैसा दिया जाय, किस ज्वर में कौन-सा पथ्य दिया जाय तथा वात-ज्वर, पित्त-ज्वर, सन्निपात-ज्वर, विषम-ज्वर, मलेरिया, जीर्ण-ज्वर, मोती-ज्वर, शीतला-ज्वर, न्यूमोनिया और इन ज्वरों के दस

प्रकार के उपद्रवों का विशद वर्णन भी किया गया है। इसके साथ ही धातु, उपधातु के शोधन की परिशुद्ध प्रणालियों का भी अच्छा वर्णन कर दिया गया है। यह दूसरा भाग संपूर्णतः ज्वर की व्याख्या और चिकित्सा से ही भर दिया गया है।

तीसरे भाग में अतिसार, संग्रहणी, बवासीर, मंदाग्नि, हैज़ा, कृमिरोग, पांडुरोग, उपदंश, गरमी, सोज़ाक आदि भयंकर रोगों का वर्णन है। हज़ारों अनुभूत नुस्ख़े दिए गए हैं। अमीरों के लिये मूल्यवान् नुस्ख़े लिखे गए हैं, तो ग़रीबों के लिये सस्ते-सस्ते उपचार भी बतलाए गए हैं। कोरी हिंदी जाननेवाला भी इन रोगों की दवा बड़ी ख़ूबी से कर सकता है, लेखक का यह दावा है।

चौथे भाग में सिर्फ़ दो रोगों का वर्णन किया गया है। भारत में ९९ फ़ी सदी नागरिकों को प्रमेह और नपुंसकता की बीमारी बतलाई जाती है। इन्हीं दो उत्कट रोगों की पूरी व्याख्या इसमें की गई है। संस्कृत-ग्रंथों के अवतरणों के साथ-साथ योरप के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डॉक्टरों के विचार भी दिए गए हैं, और इस प्रकार इन दोनों रोगों के लक्षण, उपचार और चिकित्सा के उपाय बतलाए गए हैं। अंत में, अभ्रक, राँगा, शीशा, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना आदि शोधने की क्रियाएँ लिखी गई हैं।

पाँचवें भाग के आरंभ में समस्त प्रकार के विषों के संबंध में लिखा गया है। संखिया का विष कैसा है? अफ़ीम के विष में क्या विशेषता है? धतूरा और कुचला विष के कौन-कौन-से अंश रखता है? साँप, बिच्छू, कनखजूरे, चूहे, मक्खी, बड़, मेंढक, बिसखपरे आदि के काटने और उनके विषों को उतारने तथा दूर करने का भी विवेक-पूर्ण वर्णन किया गया है। पागल कुत्ते के काटने की औषधि बड़ी उत्तमता से लिखी गई है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के रोगों की चिकित्सा की पूरी व्याख्या तथा उपचार एवं औषधियाँ लिखी गई हैं। प्रदर, सोम, मासिक धर्म, गर्भ-संबंधी समस्त रोगों का वर्णन सुंदर रीति से किया गया है। अंत में महाभयंकर रोग "राजयक्ष्मा" का वर्णन है। इस विषय पर लेखक ने प्रशंसनीय परिश्रम के साथ निदान करते हुए लक्षणों और उपचारों का ज़िक्र किया है। प्रत्येक रोग पर सैकड़ों की तादाद में, वैद्यक, डॉक्टरी तथा हकीमी नुस्ख़े दिए हैं। आशा है, वैद्यजी छठे, सातवें तथा आठवें भाग में बचे हुए रोगों पर भी इसी प्रकार मनन करके अपने विचार प्रकट करेंगे। हमारी सम्मति में, हिंदी-साहित्य के लिये यह पुस्तक गौरव-जनक होगी, और आगे चलकर लेखक की कृति सदा के लिये अमर हो जायगी। पुस्तक की उपयोगिता देखते हुए मूल्य अधिक नहीं है। इन विषयों की पुस्तकें, अँगरेज़ी-सरीखी व्यापक भाषाओं में भी इससे तिगुने और चौगुने मूल्य की होती हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि पाँचों भाग एकसाथ ख़रीदनेवालों को अच्छा कमीशन भी दिया जाता है। ऐसी पुस्तक प्रत्येक घर में गृहस्थ के पास रहनी चाहिए।

रामेश्वर मिश्र वैद्यशास्त्री

× × ×

६. इतिहास और भूगोल

नरसिंह-नयन (अर्थात् नरसिंहपुर-ज़िले का विवरण)—लेखक, श्री० चंद्रभानुराय। प्रकाशक, रायबहादुर हीरालाल-ईश्वरदास, डिपुटीकमिश्नर, नरसिंहपुर। पृष्ठ-संख्या ६९+८। मूल्य ।॥)

यह पुस्तक नरसिंहपुर-ज़िले का गज़ेटियर है। यह भी "विलासपुर-वैभव" की भाँति उपादेय और अच्छे ढंग से लिखी गई है। लेखक का परिश्रम प्रशंसनीय है। इस पुस्तक का नक़्शा उतना अच्छा नहीं है, जितना पूर्वोक्त पुस्तक का। चित्रों के बारे में केवल यही कहना है कि पुस्तक के चार चित्रों में अंतिम दो चित्र बिलकुल ही अप्रासंगिक हैं।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

× × ×

७. पत्र-पत्रिकाएँ

कवि-कौमुदी—हिंदी-कविता-संबंधी सचित्र मासिक पत्रिका। संपादक, पं० रामनरेश त्रिपाठी। प्रकाशक, हिंदी-मंदिर, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ५०। वार्षिक मूल्य २), तथा एक संख्या का ।)

कवि-कौमुदी की प्रथम संख्या में ११ विषयों पर गद्य-पद्यमय लेख तथा कविताएँ हैं। उनमें पाँच स्वयं पं० रामनरेशजी त्रिपाठी की रचनाएँ हैं। 'काम के' समस्या की पूर्ति श्रीहरिऔध, श्रीशंकर, श्रीलोचनप्रसादजी पांडेय, श्रीजगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी तथा श्रीगिरिधर शर्माजी आदि प्रसिद्ध कवियों ने की है। पं० लोचन-प्रसादजी की पूर्ति में संभवतः प्रेस के भूतों की कृपा से

दो पदों में छंदोभंग दोष हो गया है, जो 'दुर्वासा' को 'दुरबासा' और 'धर्म' को 'धरम' कर देने से सहज ही मिट सकता है। हरिऔधजी की नीचे-लिखी पूर्ति बहुत अच्छी बन पड़ी है—

"लोचन हैं जन-लोचन के सब
सोच-बिमोचन हैं बसु जाम के;
जीवन हैं जग-जीवन के, अरु
मूरि सजीवन हैं दुख दाम के।
हैं 'हरिऔध' मयंक-लौं मोहक,
मंजुल-दीपक हैं छबि-धाम के;
देव-कुमार-लौं हैं कमनीय,
महासुकुमार कुमार हैं काम के।"

त्रिपाठीजी-लिखित 'कवि का स्वप्न' भी एक अच्छा गद्य-लेख है। संपादकीय लेखों में यदि नाम न भी दिया जाता, तो कोई हानि न थी। आरंभ में मुरलीमनोहर का चित्र परम सुंदर है; पर पत्रिका के साइज़ से छोटा होने के कारण उसका न्यास कुछ भद्दा जान पड़ता है। 'कवि-कौमुदी' एक होनहार पत्रिका समझ पड़ती है। हम अपनी इस नवीन सहयोगिनी का हृदय से स्वागत करते और उसकी पूर्ण उन्नति चाहते हैं।

× × ×

हिंदी (सरोजिनी-अंक)—संपादक और प्रकाशक, पंडित भवानीदयालजी, जकोब्स, नेटाल, दक्षिण आफ़्रिका। भारतवर्ष के लिये वार्षिक मूल्य ६), दक्षिण आफ़्रिका के लिये १५ शिलिंग, और अन्य देशों के लिये १५ शिलिंग। पृष्ठ-संख्या २४। मोटा रंगीन कवर। साफ़-सुथरी छपाई। श्रीमती सरोजिनी के दो चित्र।

जिस भारतीय स्वातंत्र्य-सरोवर की श्रीमती सरोजिनी का यश:सौरभ दिग्दिगंत में फैल रहा है, वही भारत-महिला-मणि कलकंठी देवी दक्षिण आफ़्रिका की कांग्रेस का अध्यक्ष-पद सुशोभित और गौरवान्वित करने के लिये गई थीं। उन्हीं की शुभ यात्रा के उपलक्ष्य में 'हिंदी' का यह अंक प्रकाशित हुआ है। आवरण-पृष्ठ पर श्रीमतीजी का संदेश और एक लेख में आपकी यात्रा का विवरण भी प्रकाशित किया गया है। श्रीमती के साथ हिंदी-संपादकों की जो राजनीतिक बात-चीत हुई है, वह भी प्रश्नोत्तर के रूप में प्रकाशित है। उसकी अधिकांश बातें बड़े मार्के की हैं। संपादकीय वक्तव्य द्वारा यह जानकर हम बड़े दुःखी हुए हैं कि 'हिंदी' की आर्थिक अवस्था संतोषजनक नहीं है। हिंदी-प्रेमी सज्जनों से एक बार 'हिंदी' की सहायता करने के लिये हम निवेदन भी कर चुके हैं, और फिर उनसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे पं० भवानीदयालजी को विदेश में हिंदी की विजय-वैजयंती फहराते रहने के लिये पूर्ण समर्थ बनाने की चेष्टा करें। यदि 'हिंदी' को आर्थिक कष्ट के कारण किसी तरह का आकस्मिक धक्का खाकर गिरना पड़ा, तो हिंदी-भाषियों के लिये बड़े भारी कलंक की बात होगी, और भारत-राष्ट्र का अचिंत्य अपमान भी होगा।

× × ×

श्रीसनातनधर्म—संपादक, बाबू बैजनाथ केड़िया। प्रकाशक, वणिक्-प्रेस, १ सरकार-लेन, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य २), छमाही १।) और तिमाही ।।।)

यह पत्र तीन-चार महीने से निकल रहा है। इसमें साफ़ काग़ज़ के १६ पृष्ठ हैं। आकार माधुरी का-सा है। छपाई भी अच्छी है। संपादन-शैली भी ख़राब नहीं है। सुना है, वयोवृद्ध पं० अमृतलाल चक्रवर्ती भी इसके संपादकीय विभाग की शोभा-वृद्धि कर रहे हैं। यह और भी संतोष का विषय है। इस पत्र में धार्मिक और सामाजिक तथा व्यापारिक लेखों की प्रधानता रहती है। एक कहानी भी दी जाती है। टिप्पणियाँ गंभीर होती हैं। समाचार-संग्रह का अभाव बहुत खटकता है। नीति में कुछ समयानुकूल नवीनता और तेजस्विता की ज़रूरत है; क्योंकि श्रीसनातनधर्म असाध्य रोगी हो गया है, उसके लिये बहुत कड़वी दवा चाहिए। आशा है, यह पत्र देश की अवस्था के अनुकूल ही व्यवस्था देगा, और समय के प्रवाह के साथ चलने के लिये देश को तैयार करेगा।
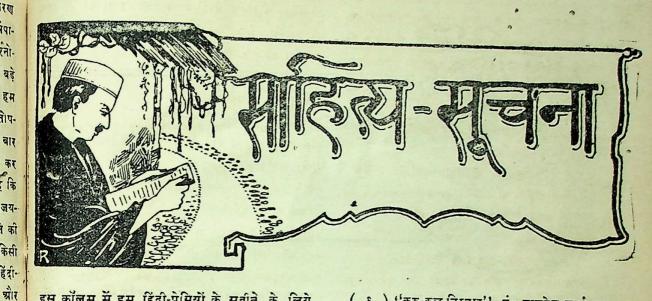
इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुबीते के लिये प्रतिमास नई और उत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी प्रकाशित हुईं—

(१) "शर्मिष्ठा-देवयानी", पं० पारसनाथ त्रिपाठी-लिखित। मूल्य २।), रंगीन जिल्द २॥), सु० रे० २॥।)

(२) "वृक्ष में जीव है", श्रीमंगलानंद पुरी-लिखित। मूल्य १॥।), सजिल्द २)

(३) "गीतांजलि", श्रीगिरिधर शर्माजी नवरत्न काव्यालंकार द्वारा अनूदित। मूल्य २)

(४) "बर्क्ले और कैंट का तत्त्वज्ञान", श्रीयुत पशुपाल वर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ॥)

(५) "महासती वृंदा", श्रीरामसिंह वर्मा द्वारा लिखित। मूल्य १)

(६) "राजर्षि भीष्म का प्रण", पं० वासुदेव शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ≋)

(७) "द्रौपदी-स्वयंवर", पं० वासुदेव शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ≋)

(८) "दुर्योधन की दुर्दशा", पं० वासुदेव शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ≋)

(९) "कुरु-कुल-विस्तार", पं० वासुदेव शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ≋)

(१०) "द्रौपदी-विवाह", पं० वासुदेव शर्मा द्वारा लिखित। मूल्य ≋)

(११) "हिंदी-लोकोक्ति-कोष", श्रीविश्वंभरनाथ खत्री द्वारा संकलित। मूल्य ३।), सुनहरी जिल्द ४)

(१२) "स्वस्थ शरीर" (प्रथम खंड), रायबहादुर डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी तथा पं० रामेश्वरप्रसाद पांडेय द्वारा लिखित। मूल्य २), रेशमी जिल्द २॥)

(१३) "स्वस्थ शरीर" (द्वितीय खंड), रायबहादुर डॉ० सरजूप्रसाद तिवारी तथा पं० रामेश्वरप्रसाद पांडेय द्वारा लिखित। मूल्य २।), रेशमी जिल्द २॥।)

(१४) "कंपनी-व्यापार-प्रवेशिका", श्रीकस्तूरमल बाँठिया द्वारा लिखित। मूल्य १)

(१५) "स्वप्नदोष", पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़-लिखित। मूल्य १॥), रेशमी जिल्द २)

(१६) "हस्त-लिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण" (प्रथम भाग), श्रीयुत श्यामसुंदरदास बी० ए० द्वारा संपादित। मूल्य ३॥)

१. हिंदी-नवरत्न का द्वितीय संस्करण
(संशोधित और परिवर्द्धित)

साहित्य-सेवा शिक्षित मनुष्य-मात्र का एक आवश्यक कर्तव्य और प्रशंसनीय व्यसन है। उसमें भी निस्स्वार्थ भाव से लोकोपयोगी और राष्ट्र में जातीयता के भाव भरनेवाले साहित्य की रचना करना मानो अपने को अमर बना देना है। प्रातःस्मरणीय गोस्वामीजी अथवा राष्ट्र-भाषा-भूषण महाकवि भूषण का पद, इस दृष्टि से, कोरे शृंगार-रचना-रसिक अन्यान्य प्रौढ़ कवियों से कहीं ऊँचा है। लोकमान्य तिलक, माननीय गोखले अथवा महात्माजी की लेखनी से निकले हुए ग्रंथों या लेखों और चंद्रकांता-संतति या भूतनाथ की जीवनी में महान् अंतर है, यद्यपि साहित्य में समावेश दोनों प्रकार की रचनाओं का हो सकता है। जो सुशिक्षित सज्जन नौकरी करके, या अन्य अनेक प्रकार के अपने आवश्यक कामों को करते हुए भी, समय बचाकर, देशवासियों के उपकार के लिये, अपनी मातृभाषा की समृद्धि-वृद्धि के लिये, उपयोगी लेख लिखते अथवा पठनीय पुस्तकों का प्रणयन करते हैं, उनका नाम जातीयता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाता है ; सर्व-साधारण में वे श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते हैं।

हमारे हिंदी-साहित्य-जगत् में यद्यपि ऐसे लेखक अभी यथेष्ट संख्या में नहीं हैं, पर उनका अत्यंताभाव भी नहीं है। इस प्रकार के जो कतिपय लेखक राष्ट्र-भाषा के शरीर को समय-समय पर बहुमूल्य रचना-रत्नों के आभूषणों से अलंकृत किया करते हैं, उनमें मिश्रबंधुओं का नाम सादर लिया जा सकता है। ये तीनों बंधु जैसे सत्कुलोद्भव, सुशिक्षित और सज्जन हैं, वैसे ही विना किसी स्वार्थ के मातृभाषा की सेवा करनेवाले भी। आप लोगों को गद्य और पद्य, दोनों में रचना करने का व्यसन है। समय-समय पर, हिंदी के पत्रों और पत्रिकाओं में, आप लोगों ने जो ऐतिहासिक और आर्थिक निबंध लिखे हैं, या समालोचनाएँ की हैं, वे महत्त्व-पूर्ण हैं। आप लोगों का यह क्रम अभी तक जारी है। आप लोगों के समकालीन कई लेखकों की लेखनी ने जहाँ संन्यास ग्रहण कर चुप्पी साध ली है, वहाँ आपकी लेखनी दूने उत्साह के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने को उद्यत रहती है। हमारे इस कथन का प्रमाण माधुरी में समय-समय पर प्रकाशित होनेवाले आपके सुचिंतित, सुलिखित, गवेषणा-पूर्ण निबंध हैं। आप लोगों ने केवल लेख लिखकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझ ली, समय-समय पर बहुमूल्य और विस्तृत कई उपयोगी ग्रंथ भी लिखकर अपनी अध्ययनशीलता, गवेषणाप्रियता और देश-प्रेम का परिचय दिया है। उनमें 'हिंदी-नवरत्न' और 'मिश्रबंधु-विनोद', ये दोनों ग्रंथ बड़े महत्त्व के हैं। इनके अलावा पुस्तकाकार प्रकाशित 'व्यय'-नामक आप लोगों का विशाल-काय निबंध भी आर्थिक दृष्टि से कम महत्त्व नहीं रखता।

अँगरेज़ी आदि अन्य भाषाओं के साहित्य में आप ऐसी अनेक पुस्तकें देखेंगे, जिनमें समस्त प्राचीन कवियों

अथवा लेखकों के संबंध में विस्तृत रूप से ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। कौन कवि किस समय, किस देश में, किस कुल में उत्पन्न हुआ; उसने कौन-कौन ग्रंथ लिखे; उसकी प्रकृति और रचनाओं में क्या विशेषताएँ थीं—कौन गुण थे, कौन दोष थे; इन बातों का विस्तार के साथ विशद विवेचन उन भाषाओं के लेखकों ने किया है। इसके सिवा अन्य भाषाओं के कवियों और लेखकों की संपूर्ण ग्रंथावलियों के भी सुंदर संस्करण निकले हैं, और निकलते जाते हैं। ग्रंथावलियों में पाठांतर, कठिन शब्दों और स्थलों के अर्थ, शंका-समाधान, निष्पक्ष आलोचना आदि का समावेश भी रहता है। तुलनात्मक आलोचनाएँ भी निकली हैं। ऐसी पुस्तकों की भी कमी नहीं है, जिनमें यह दिखाया गया है कि अमुक कवि या लेखक के विषय में अमुक-अमुक धुरंधर विद्वान् की क्या राय है। तात्पर्य यह कि अन्य भाषाओं में—ख़ासकर अँगरेज़ी में—प्राचीन कवियों और लेखकों के संबंध में सभी ज्ञातव्य विषयों से पूर्ण ग्रंथ खोज के साथ लिखे गए और प्रकाशित हुए हैं। किंतु हमारी राष्ट्र-भाषा हिंदी का यह विभाग बहुत ही हीन है। हमारे यहाँ ऐसे ग्रंथ प्रायः लिखे ही नहीं गए। लिखे कौन? इस प्रकार के ग्रंथ लिखने के लिये काफ़ी समय और धन के साथ ही यथेष्ट परिश्रम करने की प्रवृत्ति भी होनी चाहिए। हमारे प्राचीन कवियों और लेखकों में से अधिकांश अपने बारे में मौन हैं। इतने बड़े महाकवि कालिदास और भारवि आदि के कुल और समय का ठीक पता नहीं है! हिंदी के सूर्य तुलसी, सूर, देव, विहारी, भूषण, मतिराम आदि के विषय में भी बहुत-सी बातें अज्ञात हैं। इस गड़बड़ का एक कारण तो हमने ऊपर लिखा है कि वे अपने ग्रंथों में, अपने बारे में, अपने समय के बारे में, अधिकतर कुछ लिखते ही न थे। दूसरा कारण यह भी है कि उस समय छापेख़ाने तो थे नहीं; बहुत हुआ, तो लेखक या कवि ने अपने लिये एक प्रति ग्रंथ की लिख ली। रेल आदि यात्रा के सहज साधन न होने के कारण ऐसे ही किसी भारी कवि का, जो राज-दरबारों में घूमता था, नाम दूर तक प्रसिद्ध हो पाता था; नहीं तो आस-पास दस-बीस-पचास कोस तक—बहुत हुआ, तो ज़िले या प्रांत-भर में—वह प्रसिद्ध होता था। कवि के लड़के अगर अपढ़ हुए—जैसा कि प्रायः देखा जाता है—तो कवि की अपनी 'प्रति' भी नष्ट हो गई। बस, उसके शरीर के साथ उसके ग्रंथ का भी अंत हो गया। कौन जाने, इस तरह कितने बहुमूल्य ग्रंथ और कवियों के परिचय नष्ट हो गए हैं। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ऐसी हस्त-लिखित प्रतियों की खोज का उपयोगी कार्य कई वर्ष से करा रही है, और उसे बहुत-से ग्रंथ मिले भी हैं। उन ग्रंथों से कई कवियों के समय, कुल आदि के विषय में कुछ नई

मिश्र-बंधु

(पं० गणेशविहारी मिश्र, ऑनरेब्ल पं० श्यामविहारी मिश्र, पं० शुकदेवविहारी मिश्र)

बातें भी मालूम हुई हैं। सभा का यह कार्य प्रशंसनीय है।

ऐसी स्थिति में मिश्र-बंधुओं ने हिंदी-नवरत्न की रचना करके, नव प्रसिद्ध प्राचीन महाकवियों का इतिहास लिखकर, उनकी रचनाओं को उद्धृत करके, रचनाओं के गुण-दोष का विवेचन करके, हिंदी का और हिंदी-भाषा-भाषियों का कितना बड़ा उपकार किया है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। इन महाकवियों की रचनाएँ पढ़कर काव्य-प्रेमी सज्जनों को इनके संबंध में विशेष बातें जानने का कौतूहल होना स्वाभाविक था। उस कौतूहल को शांत करने का उपाय करके मिश्र-बंधुओं ने एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की है, इसमें संदेह नहीं।

आप लोगों का लिखा हिंदी-साहित्य का इतिहास 'मिश्रबंधु-विनोद' साहित्य की एक स्थायी संपत्ति है। 'हिंदी-नवरत्न' भी अमूल्य रत्न है। स्थायी साहित्य में उसी रचना का शुमार किया जा सकता है, जिसका महत्त्व और उपयोगिता केवल सामयिक न हो, बल्कि सदैव एक-सी बनी रहे। यह बात आप लोगों के 'नवरत्न' और 'विनोद', दोनों में पाई जाती है। हिंदी-नवरत्न एक दर्पण है, जिसमें हम अपने प्राचीन महाकवियों की योग्यता और इतिहास का पूरा प्रतिबिंब देख पाते हैं। 'मिश्रबंधु-विनोद' का महत्त्व इसलिये अधिक है कि आगे जो लेखक इस विषय पर विशेष विस्तार से लिखना चाहेंगे, उनके लिये यह ग्रंथ पथ-प्रदर्शक का काम करेगा [हम बड़े हर्ष के साथ यहाँ पर यह सूचना देते हैं कि हिंदी-नवरत्न की तरह मिश्रबंधु-विनोद का दूसरा सर्वांग-सुंदर संस्करण भी गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय से शीघ्र ही प्रकाशित होगा]।

हिंदी-नवरत्न का प्रथम संस्करण निकलने पर उसकी अनुकूल और प्रतिकूल, सभी तरह की आलोचनाएँ प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वानों ने की थीं। मतभेद होना कुछ अस्वाभाविक नहीं। उससे किसी रचना की उपयोगिता नहीं कम होती। लेखकों ने इस संस्करण में उन आलोचनाओं पर विचार करके आवश्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन भी किया है। जिन आपत्तियों को उन्होंने अग्राह्य समझा, उन पर ध्यान नहीं दिया। इसका विवरण पाठकों को लेखकों की लिखी इस द्वितीय संस्करण की भूमिका में पढ़ने को मिलेगा। इस संस्करण में कवियों के विषय में इधर ज्ञात हुई बहुत-सी नई बातों का समावेश भी किया गया है। जिस-जिस विषय में लेखकों का मत बदल गया है, वहाँ निस्संकोच परिवर्तन-परिवर्द्धन कर दिया गया है। भाषा में भी सर्वप्रिय सुधार कर दिए गए हैं। कवियों की कविताओं के उद्धृत उदाहरणों की मात्रा दूनी-तिगनी कर दी गई है, जिससे पुस्तक का कलेवर दूने के लगभग हो गया है। काग़ज़, छपाई-सफ़ाई में भी पहले की अपेक्षा उन्नति की गई है। इस बार पुस्तक की जिल्द भी, अधिक व्यय का ख़याल न करके, बहुत बढ़िया बनवाई गई है। प्रूफ़ पढ़ने में भी बड़ी सावधानी रक्खी गई है, जो कि गंगा-पुस्तकमाला की एक सर्वजन-विदित, लोकप्रिय विशेषता है। गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा कबीर-दास के प्रामाणिक रंगीन चित्र भी प्राप्त करके दिए गए हैं। मतलब यह कि नवरत्न का यह संस्करण सर्वांग-सुंदर और सर्वप्रिय बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी गई, और मूल्य भी यथासंभव कम ही—केवल ४॥) सादी जिल्द, ५) सुनहरी रेशमी जिल्द—रक्खा गया है। आशा है, हिंदी-भाषा-भाषी जनता में इस संस्करण का अच्छा आदर और प्रचार होगा। इस संस्करण में कबीरदास को भी रत्न-कवि के लक्षणों से युक्त समझकर स्थान दिया गया है। किंतु 'रत्न' नव ही रखने के लिये, 'नवरत्न' नाम की सार्थकता बनाए रखने के लिये, मतिराम और भूषण को 'त्रिपाठी-बंधु'-शीर्षक में एकत्र स्थान दिया गया है। कबीर को क्यों स्थान दिया गया, इसका विस्तृत विवरण लेखकों की भूमिका में दिया हुआ है। इस प्रकार, इस बार, यह पुस्तक एक नई ही पुस्तक बन गई है। अतएव जिन लोगों ने इसका प्रथम संस्करण ख़रीद लिया है, उन्हें भी द्वितीय संस्करण अवश्य लेना चाहिए। यदि हिंदी-नवरत्न के इस संस्करण का यथेष्ट आदर हुआ, यदि हिंदी-प्रेमी जनता ने इस परिश्रम, व्यय और उद्योग की क़दर की, तो शीघ्र ही मिश्रबंधु-लिखित हिंदी-साहित्य के इतिहास 'मिश्रबंधु-विनोद' का द्वितीय संस्करण भी सुंदर निकालने की चेष्टा की जायगी।

× × ×

२. स्वर्गवासी पं० विनायकराव

'कवि-नायक' तथा 'साहित्य-भूषण' पं० विनायकरावजी के स्वर्गवास का समाचार सुनकर हिंदी-साहित्य-संसार में घोर शोक छा गया है। हिंदी के लिये यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि इधर उसके पुराने साहित्य-सेवियों की संख्या प्रति दिन क्षीण होती जाती है। हमें नहीं सूझता कि पंडितजी के स्वर्गारोहण-जन्य इस असह्य शोक को किन शब्दों द्वारा प्रकट करें। मध्य-प्रदेश के साहित्याकाश के इस देदीप्यमान नक्षत्र के अस्त हो जाने से जो अंधकार छा गया है, वह सहज में दूर होनेवाला नहीं। सांसारिक मनुष्य होते हुए, गृहस्थी के झंझटों में फँसे रहकर भी, उन्होंने साहित्य और धर्म की जो सेवा की, वह अनुकरणीय है। पंडितजी का जन्म संवत् १९१२ में हुआ था। संवत् १९३२ में इन्होंने एफ़० ए० की परीक्षा पास कर ली थी। इसके बाद वह आगे नहीं पढ़ सके, और नौकरी कर ली। नौकरी में उन्हें बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई। बीस रुपए से शुरू करके उन्होंने दो सौ पचीस रुपए मासिक वेतन पर ट्रेनिंग इंस्टीट्यूशन में काम किया। इस समय आप जबलपूर में ही अपने घर पर रहते और सरकारी पेंशन से निर्वाह करते थे। आपके पुत्रों में देश-भक्ति के भाव बहुत दृढ़ हैं। आपका जन्म सनाढ्य-कुल में हुआ था। 'भानु-कवि-समाज' ने आपको 'कवि-नायक' की तथा 'भारतधर्म-महामंडल' ने 'साहित्य-भूषण' की उपाधि दी थी। आपमें हिंदी-साहित्य की सेवा करने का अपूर्व उत्साह था। हिंदी में छोटी-बड़ी १९ पुस्तकें आपने लिखी हैं। कई पाठ्य पुस्तकों के बनाने के उपलक्ष्य में आपको १,००० रुपए का पुरस्कार भी मिला था। गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण पर आपने एक विनायकी टीका भी लिखी है। इसकी प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है। पंडितजी ने ९ वर्ष कठिन परिश्रम करके इसे लिखा था। इस टीका का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह साहित्यिक है। पं० विनायकरावजी सुकवि थे। पुरानी हिंदी और खड़ी बोली, दोनों ही में वह सफलता-पूर्वक कविता करते थे।

स्वर्गीय पंडित विनायकराव साठे

'मिश्रबंधु-विनोद', 'हिंदी-कोविदरत्न-माला,' तथा 'कविता-कौमुदी' में उनका चरित्र विस्तार के साथ लिखा हुआ है।

वही पं० विनायकराव, ६८ वर्ष की अवस्था में, १२ जून, सन् १९२४ ई० को, रात के ९ बजे, सारे हिंदी-साहित्य-संसार को रुलाकर स्वर्ग को चल दिए।

आज नायक-विहीन मध्यप्रदेश कलप रहा है। उसे कौन कैसे धीरज बँधावे? हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि वह पंडितजी की आत्मा को सद्गति दे, और उनके दुःखित कुटुंब को धैर्य। क्या ही अच्छा हो, यदि पंडितजी की कीर्ति को स्थायी रखने के लिये कोई स्मारक बनाया जाय।

× × ×

३. मदरास में हिंदी-प्रचारक-विद्यालय

हिंदी के कुछ सच्चे सेवकों की बदौलत मदरास-प्रांत में भी हिंदी का कुछ प्रचार हुआ है। यद्यपि उसका परिमाण अत्यल्प है, फिर भी जिस उत्साह से कार्य हो रहा है, उसको देखते बड़ी-बड़ी आशाएँ की जा सकती हैं। हाल ही में हमारे पास हिंदी-प्रचारक-विद्यालय, मदरास की विवरण-पत्रिका आई है। उसके पढ़ने से मालूम हुआ कि मदरास-नगर में एक 'प्रचारक-विद्यालय' खुल रहा है। इसमें १८ वर्ष से लेकर २५ वर्ष तक की अवस्था के विद्यार्थी, जिनकी संख्या२०से अधिक न होगी, पढ़ाए जायँगे। कोर्स वही है, जो हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की मध्यमा परीक्षा में पढ़ाया जाता है। उत्तीर्ण छात्र विशारद कहलावेंगे। पाठ्य-क्रम एक साल का होगा। विद्यार्थियों को शुल्क नहीं देना पड़ेगा, और ठहरने को जगह भी मुफ़्त मिलेगी; पर भोजन का ख़र्च विद्यार्थियों के ही ज़िम्मे रहेगा। अभी विद्यालय में केवल पाँच अध्यापक रहेंगे। खेल-कूद का भी प्रबंध किया गया है। विद्यालय के संचालन में श्री एस्० श्रीनिवास ऐयंगर, श्री के० माध्यम् तथा जनाब याकूबहसन साहब-जैसे गण्य-मान्य नेताओं का समावेश है। प्रत्येक विद्यार्थी को उर्दू भी सीखनी पड़ेगी। इस विद्यालय की परीक्षा पास करके विद्यार्थीगण मदरास-प्रांत के स्कूलों और कॉलेजों तथा अन्य स्थानों में हिंदी का प्रचार करेंगे। इसी आषाढ़-शुक्ला ११ को विद्यालय खुल जायगा। विद्यालय का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिये धन की आवश्यकता है। जो सज्जन चाहें, वे व्यवस्थापक, हिंदी-प्रचार-कार्यालय, मदरास के पते से यथेष्ट सहायता भेज सकते हैं। हमें विद्यालय की सफलता में संदेह नहीं है, और हम चाहते हैं कि राष्ट्र-भाषा हिंदी का प्रत्येक प्रेमी इस विद्यालय की यथासाध्य सहायता करे। आशा है, हमारी यह अपील व्यर्थ न जायगी।

× × ×

४. 'आर्य-महिला'

काशी से 'आर्य-महिला'-नामक पत्रिका त्रै-मासिक रूप में कई साल से निकल रही है। जैसे इसका बाह्य-रूप—इसकी सजधज—निराली है, वैसे ही इसमें लेख भी बहुत उपयोगी और उच्च कोटि के रहते हैं। हर्ष की बात है कि अब इस पत्रिका ने और भी उन्नति कर ली है, और तीन मास के लिये प्रतीक्षा न कराकर प्रतिमास ही अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित हुआ करेगी। साल-भर में चार बार की जगह बारह बार अब इसके दर्शन होंगे। फिर भी मूल्य पहले का आधा ही देना पड़ेगा, अर्थात् ६) के स्थान में ३)। हम सहयोगिनी 'आर्य-महिला' को इस सफलता पर बधाई देते और आशा करते हैं कि इस रूप में वह भारतीय आर्य-महिला-समाज की सेवा और भी सुचारु रूप से करने में समर्थ होगी। जो सज्जन इस पत्रिका को मँगाना चाहें, वे श्रीयुत विंध्येश्वरीप्रसाद शास्त्री, संपादक, आर्य-महिला-विभाग, जगत्गंज, बनारस को पत्र लिखें।

× × ×

५. भ्रम-संशोधन

वैशाख-मास की माधुरी में श्रीबाल कृष्ण-नामक एक चित्र छपा है। उसके नीचे चित्रकार का नाम श्रीव्रज-विलासजी छप गया है। पर वास्तव में इस चित्र के बनानेवाले श्रीव्रजविलासजी नहीं, श्रीयुत महादेव-गोविंद कानिटकर हैं। श्रीव्रजविलासजी श्रीकानिटकर-जी की ओर से चित्र के छपाने का प्रबंध करनेवालों में से हैं, न कि स्वयं चित्रकार। असावधानी के कारण चित्र के नीचे कानिटकरजी का नाम न छपकर व्रज-विलासजी का नाम छप गया, इसका हमको बड़ा खेद है। श्रीव्रजविलासजी के हम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारा ध्यान इस त्रुटि की ओर आकर्षित किया। माधुरी के पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्रीबाल कृष्ण के चित्र के नीचे श्रीव्रजविलासजी का नाम काटकर श्रीकानिट-करजी का नाम बना लें। वर्ष के अंत में 'माधुरी' की जो विषय-सूची बनेगी, उसमें भी बाल कृष्ण के चित्रकार के संबंध में उचित संशोधन कर दिया जायगा। आशा है, श्रीकानिटकरजी इस प्रकार के संशोधन से संतुष्ट होंगे, और भूल के लिये हमें क्षमा करेंगे।

× × ×

६. हिंदी के दैनिक पत्रों पर एक दृष्टि

हिंदी में इस समय 'भारत-मित्र', 'विश्वमित्र', 'आज', 'स्वतंत्र', 'अर्जुन', 'कलकत्ता-समाचार' तथा 'वर्तमान', ये सात दैनिक पत्र, अच्छे ढंग से, निकल रहे हैं। इन सभी पत्रों के द्वारा हिंदी-संसार की बहुत सेवा हो रही है। इन सात दैनिक पत्रों में से चार तो कलकत्ते से ही निकलते हैं। 'अर्जुन' दिल्ली से प्रकाशित होता है। युक्त-प्रांत से केवल 'आज' और 'वर्तमान' का संचालन होता है। बंगाल की राजधानी से तो हिंदी के चार दैनिक निकलें, पर हिंदी की जन्म-भूमि युक्त-प्रांत में केवल दो दैनिकों का प्रकाशन हो, यह इस प्रदेश के लिये कितनी लज्जा की बात है ? फिर युक्त-प्रांत की राजधानी प्रयाग से तो कोई भी दैनिक नहीं निकलता। अवध की राजधानी लखनऊ भी दैनिक के अभाव में अपना सिर नीचा किए हुए है। काशी और कानपूर का भला हो, जिनकी बदौलत इस प्रांत की लज्जा कुछ तो बची हुई है।

जहाँ युक्त-प्रांत में दैनिकों की कमी का हमें दुःख है, वहाँ यह लिखते हुए परम प्रसन्नता होती है कि काशी का 'आज' हिंदी का सर्व-श्रेष्ठ दैनिक है। इसके संपादन और प्रकाशन में काफ़ी रुपया ख़र्च किया जाता है। इसमें अँगरेज़ी दैनिकों के समान देशी और विदेशी तारों के अनुवाद रहते हैं। इसके संपादकीय लेख और टिप्पणियाँ मार्के की होती हैं। यह पत्र अपरिवर्तन-वादी असहयोगी-दल का समर्थक है, और महात्मा गाँधी का अनन्य भक्त। इसमें समय-समय पर 'हमारी योरप की चिट्ठी'-नामक जो लेख-माला छपती है, उससे अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आकार में यह हिंदी के सभी दैनिकों से बड़ा है, और इस दृष्टि से मूल्य में सबसे सस्ता। हाँ, कभी-कभी इसमें तारों के अनुवाद में भूलें भी रह जाती हैं, और इसकी भाषा में भी गंभीरता की मात्रा अधिक रहने से कुछ रूखापन आ जाता है। इसका प्रूफ़-संशोधन बहुधा असावधानी से होता है। इस बार पहले-पहल इसी हिंदी दैनिक ने सरकारी बजट तथा कांग्रेस के सभापति का संपूर्ण भाषण प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। इसके साहित्यिक अंश में अभी बहुत कुछ उन्नति की गुंजाइश है। विचारशील पाठक इसी पत्र को पढ़ना पसंद करते हैं। यह पत्र अँगरेज़ी दैनिकों के ढंग पर निकाला जाता है, इसलिये इसमें अँगरेज़ी-पन की साफ़ झलक है। संभवतः काशी की पुराने विचारों-वाली पंडित-मंडली पर इसकी कृपा-दृष्टि नहीं रहती। माननीय पंडित मदनमोहनजी मालवीय के विरुद्ध भी प्रायः इसमें लेख निकलते हैं। सरकार भी इसके लेखों पर ध्यान-पूर्वक विचार करती है। भारत की किसी भी भाषा में ऐसा दैनिक निकलने से उसे उसका गर्व हो सकता है।

कलकत्ते से निकलनेवाला 'भारत-मित्र' सबसे पुराना हिंदी का दैनिक है। इसके अग्रलेख प्रायः गंभीर होते हैं, और उनमें राजनीतिक समस्याओं पर अच्छे ढंग से विचार किया जाता है। इसकी भाषा भी परिमार्जित और सुस्पष्ट होती है। इसमें यदा-कदा विनोद की सामग्री भी रहती है। असहयोग-आंदोलन से इस पत्र की भी पूर्ण सहानुभूति है। 'भारत-मित्र' को सबसे अधिक समय तक हिंदी-साहित्य की सेवा करने का अभिमान हो सकता है। 'स्वतंत्र'-पत्र का संपादन भी योग्यता से होता है। यह किसी पार्टी का पोषक नहीं, स्वतंत्र है। यह अपनी सम्मति बड़ी स्पष्टता और निर्भीकता के साथ देता है। इसमें व्यापारिक समाचार देने का विशेष प्रबंध है। 'कलकत्ता-समाचार' का भी संपादन ख़ासा होता है। यह सनातन धर्म का समर्थक पत्र है। इसकी छपाई-सफ़ाई अच्छी है। लेख भी इसमें गंभीर निकलते हैं। विश्वमित्र कट्टर असहयोगी राष्ट्रीय पत्र है। इसका संपादन अच्छा होता है। स्वराज्य-दल पर कभी-कभी इसके आक्रमण उग्र हो जाते हैं। यह विरोधी मत के आदमियों और पत्रों पर टीका-टिप्पणी करते समय कभी-कभी असंयत भाषा का प्रयोग भी कर बैठता है। पर वह शुद्ध हृदय से, केवल जोश में आकर। इसके लेखों और नोटों में विचारने की सामग्री रहती है। इसका रमता योगी व्यक्तिगत आक्षेप न करके मार्के के विनोद लिखता है। कलकत्ते के इन चारों ही पत्रों में बंगालीपन की कुछ-न-कुछ पुट दृष्टिगत हो ही जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक वाद-विवाद में भी ये पत्र अपने बहुत से कॉलम रँग डालते हैं। हाल ही में 'माहेश्वरी'-समाज की शाखाओं-प्रशाखाओं से संबंध रखनेवाले लेख इन दैनिकों में निकल रहे हैं। भला इन लेखों से माहेश्वरी

वैश्यों के अलावा अन्य पाठकों को क्या लाभ पहुँच सकता है ? उनकी इनमें क्या दिलचस्पी हो सकती है ?

दिल्ली के 'अर्जुन'-पत्र के संचालकगण आर्य-समाज से संबंध रखते हैं, इसलिये इस पत्र पर आर्य-समाज की छाप सोलहो आने है। शुद्धि और हिंदू-संगठन में इसको हिंदी के सभी दैनिकों की अपेक्षा अधिक दिलचस्पी है। पंजाब की उर्दू-पत्र-संपादन-नीति का इस पत्र में प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है। मुसलमानों की अनुचित कारवाइयों को यह पत्र बड़े परिश्रम से खोजकर प्रकाशित करता है। इसके अग्रलेख गंभीर, जोशीले और उपयोगी होते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके लेखों में मौलिकता के दर्शन होते हैं, और संपादक की विचारशीलता और गहरे अध्ययन का पता चलता है। राजधानी दिल्ली से इस पत्र का प्रकाशित होना हिंदी के भविष्य सौभाग्य का परिचायक है।

कानपूर का 'वर्तमान' हिंदी के सभी दैनिकों से निराला है। कदाचित् इसी हिंदी-दैनिक की सबसे अधिक बिक्री होती है। 'वर्तमान' की विशेषता उसका 'मनोरंजन'-कॉलम है। इस पत्र को अधिक शिक्षित और विचारशील पाठक चाहे उतने चाव से न पढ़ते हों, पर अर्धशिक्षितों में इसकी सबसे अधिक खपत है। ऊपरी पेज पर मोटी-मोटी लाइनों में सनसनी फैलानेवाले समाचारों की सूचना भी यह हिंदी के सभी दैनिकों से अच्छी देता है। इसके 'मनोरंजन' को लोग विशेष चाव से पढ़ते हैं। यद्यपि उनमें सभी नोट अच्छे या चुटीले नहीं होते, फिर भी वह 'वर्तमान' की विशेषता है, और उसके कारण वर्तमान की अधिक बिक्री में सहायता मिलती है। इसमें सनेहीजी की कविताएँ भी प्रायः निकलती हैं। वे बड़ी जोशीली होती हैं। यह पत्र भी अपरिवर्तन-वादी असहयोगी-दल का समर्थक है। परिवर्तन-वादी असहयोगियों पर टीका-टिप्पणी करने में यह कोई बात उठा नहीं रखता। कभी-कभी इसके ऐसे आक्षेप अशिष्ट भी हो जाते हैं। इस पत्र में विरोधियों के प्रति शौर्य-गुण (Chivalry) का परिचय बहुत कम मिलता है। इस पत्र में बोलशेविज़्म या मोशिए लेनिन के विचारों की चर्चा कभी-कभी विशेष रूप से दिखलाई पड़ती है। सरकार के कार्यों की आलोचना भी यह तीव्र भाषा में करता है। यह पत्र सर्व-साधारण का पत्र है, इसलिये इसमें हमें गंभीरता की बातें अवश्य ही कम मिलती हैं। इसे प्रचार-कार्य करनेवाला पत्र कहें, तो अनुचित न होगा।

ऊपर जो सूक्ष्म परिचय दिया गया है, उससे पाठक-गण अनुमान कर सकते हैं कि इस समय हिंदी-दैनिक पत्रों की क्या अवस्था है। इन पत्रों में जो सबसे बड़ी कमी है, वह है राजनीतिक समाचारों और उनसे संबंध रखनेवाले लेखों को छोड़कर शुद्ध साहित्यिक लेखों का एक प्रकार से अभाव। साहित्य की व्यापकता को हिंदी के दैनिकों ने बहुत कुछ संकुचित कर रक्खा है। भविष्य में इँगलैंड के दैनिकों के आदर्श पर ही हमें अपने दैनिकों का संचालन करना चाहिए।

× × ×

७. ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी

समाचार-पत्र पढ़ने से हमारे पाठकों को मालूम हो गया होगा कि गत २३ एप्रिल को, लंदन के वेंब्ली-पार्क में, बड़ी धूमधाम के साथ, ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी खोल दी गई है। यह प्रदर्शिनी आज तक संसार में होनेवाली सभी प्रदर्शिनियों से बड़ी है। इसमें बहुत-सी विशेषताएँ हैं। स्वयं सम्राट् पंचम जार्ज महोदय ने इसे खोलने का शुभ अनुष्ठान सुसंपन्न किया है। इस प्रदर्शिनी की ख़ास मंशा यह है कि इसमें ब्रिटिश-साम्राज्य की सभी प्रदर्शन-योग्य वस्तुएँ एकत्र कर दिखलाई जायँ। योरप के गत महायुद्ध के कारण ब्रिटिश-साम्राज्य के वाणिज्य की दशा विशृंखल हो उठी है। उसी की पुनः प्रतिष्ठा और उन्नति इसका प्रधान उद्देश्य है। किंतु इसके बारे में विलायत के भिन्न-भिन्न राजनीतिक विज्ञ पुरुष तरह-तरह के विरुद्ध मत प्रकट कर रहे हैं। इस प्रदर्शिनी में भारत की वस्तुओं के प्रदर्शन और ग़रीब भारत का धन ख़र्च करने का विरोध अनेक समझदार भारतीय विद्वानों और राजनीतिकों ने किया था। फिर भी सरकार ने अपनी ही टेक रक्खी—भारत की वस्तुएँ भेजी गईं, और काफ़ी रक़म भारत को देनी पड़ी, यद्यपि इस प्रदर्शिनी में शामिल होने से—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से—भारत का लाभ नहीं, हानि ही देख पड़ती है। अस्तु।

प्रदर्शिनी में ब्रिटिश-साम्राज्य के अंतर्गत सभी उपनिवेशों और देशों की शिल्प-सामग्री दिखलाने का आयोजन हुआ है। साम्राज्य के भीतर साम्राज्य के देशों में तैयार होनेवाली चीज़ों की अधिक बिक्री की व्यवस्था ही इसका
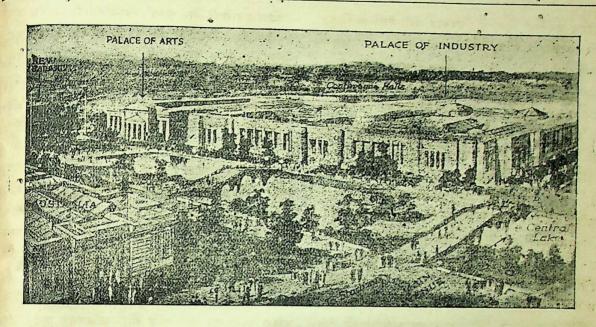
वेंब्ली-पार्क का एक हिस्सा

(विराट् साम्राज्य-प्रदर्शिनी इसी तरह अनेक विभागों में बँटी हुई है। बाईं ओर ऊपर-नीचे न्यूज़ीलैंड और आस्ट्रेलिया के विभाग हैं। न्यूज़ीलैंड के पास शिल्प-भवन है । उसके बाद पास-ही-पास कानफ़्रेंस-हाल, और श्रमशिल्प-भवन हैं। नीचे झील है। झील पर दर्शकों के आने-जाने की राह बनी है। स्टेडियम की राह भी पीछे देख पड़ती है।)
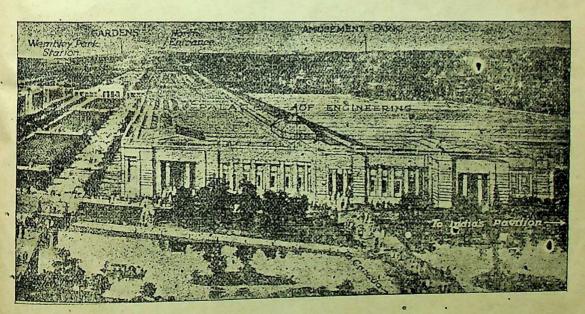
पार्क का दूसरा हिस्सा

(प्रथम चित्र के स्थानों के पास ही प्रदर्शिनी के ये विभाग हैं—वेंब्ली-पार्क, रेल-स्टेशन, बाग़, उत्तर का प्रधान प्रवेश-द्वार, प्रमोदवन आदि । सब स्थान पास-पास देख पड़ते हैं। बीच में इंजीनियरिंग-विभाग की इमारत है। उसके नीचे, झील के पास, भारत और कनाडा के विभागों की राह दिखाई देती है।)

उद्देश्य बतलाया जाता है। परस्पर सभी देशों का शिल्प-परिचय और साम्राज्य के गौरव की घोषणा भी उसका गौण फल होगा ही। किंतु इस संबंध में साम्राज्य के भीतर पक्षपाती शुल्क-नीति की चर्चा हो रही है, उससे ब्रिटन के राजनीतिक भी विचलित हो उठे हैं। उनका कहना यह है कि अबाध वाणिज्य-नीति छोड़कर इस पक्षपाती शुल्क की व्यवस्था करने से संपूर्ण सभ्य-जगत् की दृष्टि में ब्रिटिश-साम्राज्य का सम्मान कम हो जायगा। जान पड़ता है, ब्रिटिश राजनीतिक लोग अबाध वाणिज्य-नीति के अधिक पक्षपाती हैं। अपने साम्राज्य की बनी वस्तुओं—शिल्प-सामग्री—के लिये पक्षपाती शुल्क के संबंध में उनकी ऐसी आपत्ति किसी तरह युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होती। इसी कारण को लेकर उपनिवेशों में भी ब्रिटिश-साम्राज्य के विरुद्ध असंतोष दिखाई दे रहा है। इस ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी के द्वारा वह असंतोष दूर होता नहीं नज़र आता।

जिस प्रदर्शिनी में अन्य स्वाधीनप्राय ब्रिटिश उप-निवेशों के लिये विशेष सुविधा की आशा नहीं है, वहाँ पूर्ण पराधीन भारत के लिये कहाँ तक और कितनी सुविधा हो सकती है, यह पाठक स्वयं समझ सकते हैं। हम पहले ही किसी गत संख्या में कह चुके हैं कि भारत की शिल्प-सामग्री देखकर उसकी नक़ल करके उसका सुलभ संस्करण निकालकर विदेशी कारीगर यहाँ भेजेंगे, और इस तरह भारत की बची-खुची दस्तकारी भी प्रतियोगिता न कर सकने के कारण चौपट हो जायगी। पक्षांतर में भारत में उत्साह, धन और वैसी क्षमता न होने के कारण यहाँ के कारीगर, प्रदर्शिनी में जाकर भी, अन्य देशों की वस्तुओं के संबंध में अपने लिये ऐसी सुविधा नहीं कर सकते थे। इस प्रकार भारत की हानि ही होती नज़र आती है। हाँ, यह अवश्य है कि इस प्रदर्शिनी के कारण भारत की कुछ चीज़ें और अधिकतर कच्चा माल बिकने की सुविधा हो जाय। लेकिन जब उस कच्चे माल का

माडल
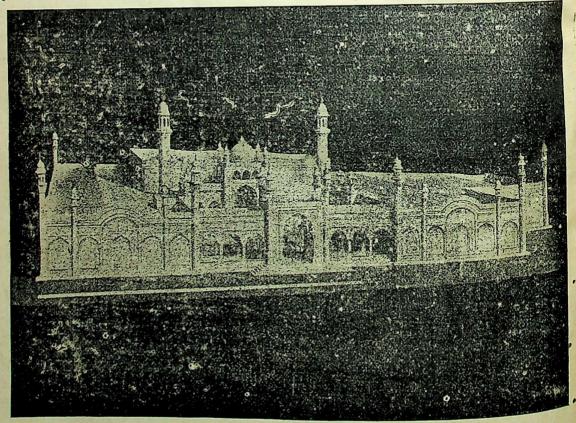
(इंडियन पैविलियन अर्थात् भारतीय विभाग की इमारत बनाने के लिये पहले यह नक़शा तैयार किया गया था।)
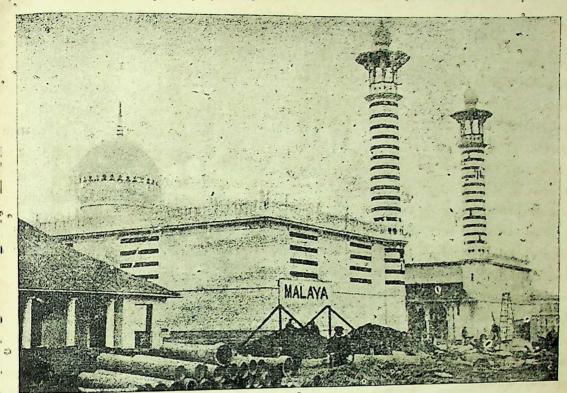
मालय-विभाग
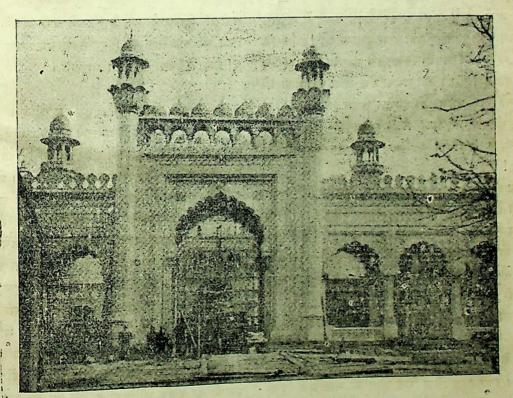
इंडियन पैविलियन

(पूर्ण रूप से तैयार होने के पहले ही यह फ़ोटो लिया गया था। इंडियन पैविलियन का घेरा १,००० वर्ग-फ़ीट है। सामने प्रवेश-द्वार देख पड़ता है।)
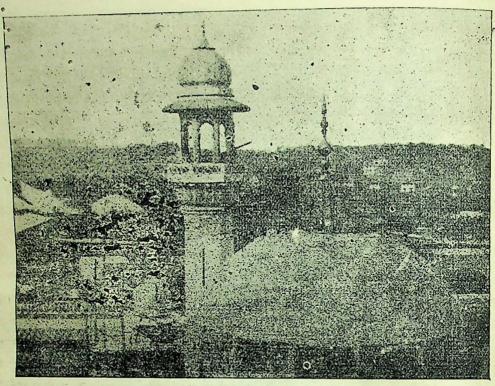
पैविलियन का स्थापत्य-शिल्प

तैयार माल भारत में ही आकर चौगुने दामों में खपेगा, तब भारत की हानि के सिवा लाभ कुछ भी नहीं है। इसके सिवा भारत को जितनी रक़म ख़र्च करनी पड़ी है, उसके आगे यह कुछ चीज़ों की अथवा कच्चे माल की बिक्री भी 'कुछ नहीं' के बराबर ही होगी। भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों को इस प्रदर्शिनी के लिये अपनी चीज़ें भेजने के साथ ही सहायता के लिये यथेष्ट धन भी तो देना पड़ा है!

सम्राट् ने प्रदर्शिनी खोलते समय की अपनी वक्तृता में कहा है कि इस प्रदर्शिनी में सब मिलाकर ३ करोड़ पौंड अर्थात् ४५ करोड़ रुपए ख़र्च किए गए हैं! किंतु इसमें जो चीज़ें प्रदर्शन के लिये रक्खी गई हैं, उनका मूल्य केवल १ करोड़ २० लाख पौंड अर्थात् १८ करोड़ रुपए ही है!!

भारतीय समिग्री जिस स्थान में दिखलाई गई है, उसका नाम है इंडियन पैविलियन। यह इमारत आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल के अनुकरण पर बनाई गई है। इसी तरह भिन्न-भिन्न देशों की सामग्रियाँ दिखलाने के स्थानों में उन देशों के स्थापत्य-शिल्प की विशेषता भी दिखलाई गई है। हमने यहाँ प्रदर्शिनी के छः चित्र भी इसलिये दे दिए हैं कि पाठकगण प्रदर्शिनी की कुछ विशेषता हृदयंगत कर सकें।

× × ×

८. यक्ष्मा अर्थात् क्षय-रोग की दवा

भारत में क्षय-रोग से प्रतिवर्ष अनेक मृत्युएँ होती हैं। यह राजरोग प्रायः जवानों को ही होता है, और तनिक-सी ग़फ़लत करने से असाध्य बन जाता है। प्रायः देखा गया है कि संपूर्ण सुस्थ, सबल शरीर का आदमी भी इस रोग के चंगुल में पड़ने से महीनों में ही घुलकर मर गया है। इस रोग की भयंकरता इसलिये और भी अधिक है कि यह प्रायः पुरुष-परंपरा तक बना रहता है। देखा गया है कि जिसके पिता-माता इस रोग के शिकार हुए हैं, वह ख़ुद भी समय पाकर इसी के आक्रमण से मृत्यु को प्राप्त हुआ है। आयुर्वेद में इस रोग को राजरोग और प्रायः प्रथम अवस्था के बाद असाध्य कहा है। तथापि आयुर्वेद-प्रणेता महर्षियों ने ऐसी दवाओं का वर्णन भी किया है, जो इसे नष्ट कर देती हैं। पर आजकल एक तो ऐसे वैद्य बहुत कम देख पड़ते हैं,

जिन्होंने गुरु-मुख से अच्छी तरह चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन किया हो, अच्छे वैद्य के पास कुछ दिन बैठकर अपना अनुभव बढ़ाया हो; दूसरे, लोगों की श्रद्धा भी आयुर्वेद पर उतनी नहीं देख पड़ती, जिसका कारण वही स्वयंभू वैद्यों की अधिकता है। भाषा में लिखे ग्रंथों को देखकर आप दवा दे देंगे, पर रोग का निदान और नाड़ी का ज्ञान तो ग्रंथ पढ़े और अनुभव प्राप्त किए विना न प्राप्त होगा। सुन पड़ता है, अमेरिका में यक्ष्मा-रोग की चिकित्सा के संबंध में एक नया आविष्कार हुआ है। जिनके श्वास-यंत्र में यक्ष्मा-रोग का सूत्रपात ही हुआ है, ऐसे रोगियों को औषध सुँघाकर आराम करने में वहाँ के डॉक्टरों को सफलता प्राप्त हुई है। एक पात्र में कैलसियम नमक (Calcium salt) और दाना-हीन कार्बन (Amorphous Carbon) अंगार-मिश्रित औषध रखकर एक नली और चौड़े मुँह के मुखनल की सहायता से वह दवा रोगी को सुँघाई जाती है। हवा की सहायता से वह दवा फुप्फुस में पहुँच जाती है। फल यह होता है कि नष्टप्राय सूक्ष्मातिसूक्ष्म तंत्रियाँ नए सिरे से उज्जीवित हो उठती हैं, और रोग का आगे बढ़ना बंद हो जाता है—फेफड़े का ख़राब होना रुक जाता है। एक अमेरिकन पत्र में लिखा है कि अमेरिका के डॉक्टरों ने इस चिकित्सा से अनेक रोगियों को आराम करने में सफलता पाई है। आशा है, यह चिकित्सा कुछ समय उपरांत भारत में भी प्रचलित हो जायगी, और उससे अनेक जवान रोगी अकाल-मृत्यु से बच सकेंगे।

× × ×

९. लीडर

प्रयाग का अँगरेज़ी दैनिक 'लीडर' इधर कई बरस से युक्त-प्रदेश की सेवा कर रहा है। इसके जन्मदाताओं में पं० मदनमोहन मालवीय और पं० मोतीलालजी नेहरू का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। कांग्रेस-नीति का समर्थन करने के लिये ही यह पत्र चलाया गया था। श्रीयुत सी० वाई० चिंतामणिजी ने इस पत्र का संपादन-भार ग्रहण करके अपनी प्रतिभा का बहुत अच्छा परिचय दिया। उनके संपादन-काल में इस पत्र ने यथेष्ट उन्नति की। इन प्रांतों के लिये जब पहला म्युनिसिपल बिल बना, तो उसमें मुसलमानों को उचित से अधिक अधिकार मिलते देखकर इसने विरोध की आवाज़ उठाई, और अपने पक्ष के समर्थन में अच्छे-अच्छे लेख लिखे। स्मरण रहे, पं० मदनमोहन मालवीय को छोड़कर पं० मोतीलालजी, पं० जगतनारायणजी तथा और प्रायः सभी नेता उक्त म्युनिसिपल बिल के समर्थक थे। फिर भी 'लीडर' ने अपना विरोध जारी रक्खा, और अंत तक जारी रक्खा। मुसलमान इस बात से चिढ़ गए, और तब से वे बराबर 'लीडर' को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। फिर भी यह पत्र अपनी नीति पर स्थिर है, और हिंदुओं के उचित स्वत्वों का समर्थन निर्भयता के साथ करता है। 'शासन-सुधार' का प्रादुर्भाव होते ही भारतीय नेताओं में मतभेद हो गया। 'लीडर' ने शासन-सुधारों का समर्थन किया, और जब उनको कार्य-रूप में परिणत कर दिखलाने के लिये सरकार ने उसके संपादक श्रीसी० वाई० चिंतामणि को मिनिस्टरी का ओहदा दिया, तो उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इसी समय असहयोग-आंदोलन का श्रीगणेश हुआ, और 'लीडर' ने उसका घोर विरोध किया। चिंतामणिजी के मिनिस्टर हो जाने पर इस पत्र का संपादन-भार श्रीकृष्णरामजी मेहता ने ग्रहण किया, और योग्यता-पूर्वक उसका कार्य-संचालन जारी रक्खा। इस समय 'लीडर' की प्रतिद्वंद्विता में प्रयाग से असहयोग पक्ष का समर्थक 'इंडिपेंडेंट' भी निकल रहा था। उसकी चारों ओर धूम थी। वह बहुत लोकप्रिय था। उधर 'लीडर' को जनता बिलकुल पसंद न करती थी। उसकी ग्राहक-संख्या बहुत कम रह गई थी। 'लीडर' ने फिर भी अपनी वही नीति जारी रक्खी। वह सदा शासन-सुधार का समर्थक और असहयोग-आंदोलन का विरोधी रहा। ख़िलाफ़त-आंदोलन की भी उसने पीठ नहीं ठोंकी। पंजाब-हत्याकांड के समय 'लीडर' ने बड़ा काम किया। इस पत्र के समान और किसी भी पत्र ने पंजाब के मामले को नहीं अपनाया। इसने अधिकारियों की काररवाइयों का निर्दयता के साथ भंडाफोड़ किया। हिंदुओं के उचित स्वत्वों का समर्थन यह सदा ही करता रहा। गत वर्ष चिंतामणि महाशय ने मिनिस्टरी से इस्तीफ़ा दे दिया। एक बार वह फिर स्वतंत्र हुए। अपने अधिकार-काल में उन्होंने जिस प्रकार से सरकार का साथ दिया था, उससे जनता उनसे बहुत अप्रसन्न थी। अतः जब वह दूसरे निर्वाचन के

लिये खड़े हुए, तो अभ्युदय-संपादक पं० कृष्णकांतजी मालवीय भी आपके मुक़ाबले में खड़े हुए। वोटर तो चिंतामणिजी से असंतुष्ट थे ही, अतः इस मुक़ाबले में उनकी करारी हार हुई। हाल ही में, पहली जून से, चिंतामणि महोदय ने फिर से 'लीडर' का संपादन आरंभ कर दिया है। 'ली-कमीशन' के संबंध में उनको लिखने के लिये मसाला भी अच्छा मिल गया, और उक्त कमीशन की रिपोर्ट की जो तीव्र समालोचना आपने की, उसकी इँगलैंड तक में प्रशंसा हुई है। आशा है, अब 'लीडर' की और भी अधिक उन्नति होगी। सुनते हैं, इँगलैंड में बड़े-बड़े राजनीति-धुरंधर भी 'लीडर' के लेखों को ध्यान के साथ पढ़ते हैं। यह पत्र सरकार का प्रीति-पात्र है। सरकारी नौकर इसे बिना किसी रोक-टोक के पढ़ सकते हैं। सर्व-साधारण और विशेष करके मुसलमान जनता इस पत्र को अच्छा नहीं समझती। असहयोगियों के प्रति इस पत्र में जैसी टिप्पणियाँ छपती हैं, उन्हें पढ़ने पर विवश होकर कहना पड़ता है कि इस पत्र की संपादकीय नीति में शौर्य-गुण (Chivalry) का अभाव है।

× × ×

१०. मतिराम और भूषण

इस संख्या में याज्ञिक-बंधुओं का लिखा हुआ 'मतिराम और भूषण'-शीर्षक जो लेख प्रकाशित हो रहा है, उसकी ओर हम पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। याज्ञिक-बंधुओं के लेख का सारांश यह है कि मतिराम, भूषण तथा चिंतामणि, ये तीनों भाई थे। नीलकंठजी इनके भाई न थे। सबसे बड़े मतिराम, उनसे छोटे भूषण, तथा सबसे छोटे चिंतामणि थे। आपने जो और बहुत-से छंद उद्धृत किए हैं, उनसे भी कई नई बातें मालूम पड़ती हैं। सबसे महत्त्व-पूर्ण बात तो यह ठहरती है कि इन तीनों ही कवियों को दिल्ली के शाही ख़ानदान का आश्रय प्राप्त था। मतिराम ने जहाँगीर के लिये रचना की थी, भूषण ने दाराशिकोह की प्रशंसा की थी, और चिंतामणि शाहशुजा के आश्रित कवि थे। दारा और शुजा की मृत्यु के बाद जो मनुष्य दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, वह औरंगज़ेब था। उसने दारा और शुजा, दोनों की हत्या कराई थी। दोनों उसके प्रचंड शत्रु थे। ऐसी दशा में यह बात सहज ही समझ में आ जाती है कि औरंगज़ेब के दरबार में इन दोनों द्वारा समादृत भूषण और चिंतामणि की दाल नहीं गल सकती थी। औरंगज़ेब का दरबार छूटते समय इन कवियों द्वारा किसी ऐसी नाटकीय घटना का हो जाना असंभव नहीं है, जैसी कि किंवदंतियों में सुन पड़ती है। जो हो, इतनी बात दृढ़ता-पूर्वक कही जा सकती है कि इन कवियों को मुग़ल-दरबार में आश्रय मिला था, और औरंगज़ेब के बादशाह होने के बाद वह छूट गया। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि मतिरामजी ने उन्हीं शिवाजी और बुँदेले छत्रसाल की भी प्रशंसा की है, जो भूषण के आश्रयदाता थे। उधर भूषण और चिंतामणि, दोनों ही शिवाजी के मित्र जयपुर-नरेश रामसिंहजी की प्रशंसा करते हैं। फिर भूषण भी बूँदी के महाराज की प्रशंसा करते हैं, और चिंतामणि भी राव भावसिंह का यशोगान करते हैं। बूँदी का दरबार मतिराम का आश्रयदाता था। चिंतामणि और भूषण, दोनों ही साहू की प्रशंसा में भी छंदोरचना करते हैं। इन ऐतिहासिक तथ्यों से यदि कोई और बात नहीं साबित होती, तो इतना तो अवश्य प्रमाणित होता है कि इन कवियों को सौभाग्य से ऐसे ही आश्रयदाता प्राप्त थे। अतः इन सबको एक दूसरे से मिलने का पूरा अवसर था। दो-एक बातों में हम अभी याज्ञिक-बंधुओं की दलीलें मानने में समर्थ नहीं हो सके हैं। आशा है, वे अपने मतिराम और भूषण से संबंध रखनेवाले दूसरे लेख में उन पर भी काफ़ी प्रकाश डालेंगे। पहली बात यह है कि 'फूलमंजरी' के रचयिता वही मतिराम हैं, जो रसराज के रचयिता हैं, इस बात का प्रमाण क्या है? दूसरे 'भूषण' के नाम की जो शृंगार-रसवाली कविताएँ हैं, वे शिवराज-भूषण के रचयिता की ही हैं, इसका क्या प्रमाण है? हिंदी के इतिहास से पता चलता है कि भूषण नाम के कई कवि हुए हैं। मतिराम विश्वनाथ के दत्तक पुत्र थे, इस अनुमान को पुष्ट करनेवाली तर्कावली भी हमें विशेष ज़ोरदार नहीं जँचती।

× × ×

११. सिराजगंज-कानफ़्रेंस

अभी हाल ही में, बंगाल में, प्रांतीय राजनीतिक कानफ़्रेंस हुई थी। यह कानफ़्रेंस ठीक उस समय हुई, जब महात्मा गाँधी इस आशय का वक्तव्य निकाल चुके थे कि स्वराज्य-दलवालों को कांग्रेस-समितियों के अधि-

कार-पदों से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। बंगाल में इस समय स्वराज्य-दल का ही बोलबाला है। श्रीयुत देशबंधु दास के नेतृत्व में बंगाल कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में है। इस कानफ़्रेंस में भी इस आशय का एक प्रस्ताव पास करके बंगाल ने अपनी स्पष्ट सम्मति प्रकट कर दी। कौंसिल-विरोधी लोग भी थे; पर उनकी गणना बहुत थोड़ी थी, और कानफ़्रेंस में यह बात साफ़ दृष्टिगत होती थी कि इन लोगों का प्रभाव बहुत कम है। जिस हिंदू-मुसलिम पैक्ट की घोर निंदा की जाती है, वह भी इस कानफ़्रेंस में पास हो गया। इधर बंगाल की हिंदू-जनता ने इस पैक्ट का घोर विरोध किया था, पर फिर न-जाने कौन-से कारण उपस्थित हुए, जिनसे वही पैक्ट वंग-प्रांत की राजनीतिक कानफ़्रेंस में पास हो सका। इतना ही नहीं, उसी स्थान पर होनेवाली हिंदू-सभा में भी उसके पास होने के समाचार मिले हैं। इस पैक्ट को इस तरह स्वीकृत होते देखकर हमें हर्ष नहीं है। हम इसके पास होने से हिंदुओं का अनिष्ट समझते हैं। पर साथ ही हम उस नेता की तारीफ़ किए विना भी नहीं रह सकते; जिसने इतने बड़े विरोध को दबाकर अंत में उसी जनता-द्वारा पैक्ट का समर्थन करवाया, जो दो दिन पूर्व उसका घोर विरोध करती थी। लेकिन आनंदबाज़ारपत्रिका, नायक आदि बँगला के दैनिकों को पढ़ने से यह मालूम पड़ा कि दास-दल ने कानफ़्रेंस में धींगामुश्ती और अनुचित उपायों से धाँधली मचाकर ये प्रस्ताव पास कर लिए हैं। वास्तव में लोकमत इनके विरुद्ध ही था। स्वराज्य-दल पर जो अभियोग उक्त पत्रों में छपे हैं, वे यदि सत्य हैं, तो स्वराज्य-दल की यह नीति उसे लोगों की नज़रों से शीघ्र ही गिरा देगी। इन दो प्रस्तावों के अतिरिक्त सिराजगंज-कानफ़्रेंस ने गोपीमोहन साहा से संबंध रखनेवाले बहुत ही बड़े विवाद-ग्रस्त प्रस्ताव को भी पास किया। गोपीमोहन ने हाल ही में एक निरपराध अँगरेज़ को पुलिस-कमिश्नर के धोखे में मार डाला था। जब वह पकड़ा गया, तो उसने साफ़ कह दिया कि मेरा हत्या करने का विचार पक्का था; पर मैंने भूल से दूसरे ही को मार डाला, जिसका मुझे खेद है। उसने कहा, मैं यह हत्या किसी व्यक्ति-गत कारण से नहीं करने जा रहा था, बरन् विदेशियों से स्वदेश का उद्धार करने के लिये। उसको फाँसी पाने का ज़रा भी भय न था, और जेल में उसके शरीर का वज़न बढ़ गया था। उसकी निर्भयता, सत्यकथन एवं स्वदेश-प्रेम के भावों से बहुत-से बंगालियों की सहानुभूति हो गई, इसलिये यद्यपि उसके हत्या-कार्य की घोर निंदा की गई, और प्रांत का अहिंसात्मक उपायों में विश्वास दिखलाया गया, फिर भी गोपीमोहन साहा के स्वदेश-प्रेम, निर्भयता और सचाई की प्रशंसा में एक प्रस्ताव पास हो गया। सबसे बढ़कर बात तो यह है कि स्वयं देशबंधु दास प्रस्ताव के समर्थक थे। इस प्रस्ताव के पास होते ही चारों ओर से समालोचनाओं की बौछार-सी होने लगी। पार्लियामेंट तक में इसको लेकर प्रश्नोत्तर हुए। महात्मा गाँधी भी इस प्रस्ताव के घोर विरोधी हैं। उधर देशबंधु अपनी बात पर डटे हैं। इस प्रस्ताव को लेकर अब तक वाद-विवाद चल रहा है। हमें तो 'सिराजगंज-कानफ़्रेंस' में देशबंधु दास की ही संपूर्ण विजय दिखलाई पड़ रही है। ऊपर जिन तीन प्रस्तावों का उल्लेख किया गया है, वे तीनों ही घोर विवाद-ग्रस्त हैं। तीनों का ही विरोध भी हुआ। पर फिर भी तीनों ही पास हो गए। जान पड़ता है, इस समय बंगाल में और कोई भी नेता सफलता-पूर्वक देशबंधु का विरोध नहीं कर सकता।

× × ×

१२. भारत की राजनीतिक स्थिति

इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी ही विचित्र दिखलाई पड़ रही है। थोड़े शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह नितांत अव्यवस्थित और छिन्न-भिन्न हो गई है। उसमें संघटन-शक्ति का पूरा अभाव दिखलाई पड़ रहा है। प्रत्येक राजनीतिक दल में मत-भेद का प्राधान्य है। सरकार से सहयोग करनेवाले नरम-दल की दशा सबसे अधिक शोचनीय है। आज उसके कुछ सदस्य स्वराज्य-दलवालों से मिलकर सरकारी बजट के विरुद्ध वोट देते हैं, तो कल उसी दल के कतिपय प्रमुख सिविल सर्विस के कल्पित दुःखों को बँटाने के आवेश में 'ली-कमीशन' की रिपोर्ट पर सही कर देते हैं। निर्वाचन में नरम-दलवालों को न चुनकर जनता ने उनके प्रति अपना असंतोष का भाव भली भाँति प्रकट कर दिया है। अब सरकार भी उनकी उपेक्षा कर रही है। कौंसिलों से खदेड़े जाने के बाद से

नरम-दलवालों का राजनीतिक आंदोलन बिलकुल ठंडा पड़ गया है। अब वे या तो स्वराज्य-दलवालों को गालियाँ देते दिखलाई पड़ते हैं, या लंबी-चौड़ी बातें करके इँगलैंड में डेपुटेशन भेजने की चर्चा किया करते हैं। गया-कांग्रेस के समय स्वराज्य-दल की सृष्टि हुई थी। तब से अब तक उसका महत्त्व बढ़ता ही गया है। लेजिस्लेटिव एसेंबली में बजट को अस्वीकार करके उसने जो स्थिति पैदा कर दी, उससे देश पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा। कुछ लोगों का कहना है कि 'बजट की अस्वीकृति' से इँगलैंड में जैसा प्रभाव पड़ा है, वैसा भारत के और किसी आंदोलन से कभी नहीं पड़ा था। पर अब देखते हैं कि इस दल में भी फूट के बीज उग रहे हैं। टैरिफ़-बोर्डवाले प्रस्ताव के पास होने से स्वराज्य-दल की 'शान' में कुछ कमी आ गई थी। उधर जब से महात्मा गाँधी ने कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध राय दी है, और स्वराजियों को कांग्रेस-समितियों के अधिकार-पदों को छोड़ देने को कहा है, तब से स्वराज्य-दल के सामने एक नवीन समस्या उपस्थित हो गई थी। पर अहमदाबाद के अधिवेशन में उचित समझौता हो जाने से यह विपत्ति टल गई है। अपरिवर्तन-वादी दल में कोई बहुत बड़ा नेता न था, इस कारण उसने अपने कार्य में अच्छी उन्नति नहीं कर दिखलाई थी। अब संभव है, महात्माजी के नेतृत्व में कुछ कर गुज़रे। इधर कुछ समय पहले तो वह स्वराज्य-दल की ओर ही लाल-लाल आँखें करके देखता रहता था। महात्मा गाँधी का भी देश पर अब वह प्रभाव नहीं देख पड़ता। पर इसका यथार्थ पता तो आगामी अगस्त-मास में, जब वह देश का दौरा करेंगे, तब लगेगा। हिंदू-मुसलमानों का वैमनस्य अब तक बढ़ रहा है। मुसलमान गुंडों के हथकंडे जले पर नमक छिड़कने का काम कर रहे हैं। कांग्रेस का कार्य बिलकुल रुका हुआ है। हाँ, हाल में दो घटनाएँ ऐसी अवश्य हुई हैं, जिन पर सारे देश का मत एक है। उनमें पहली है 'ली-कमीशन' की रिपोर्ट, और दूसरी 'सर शंकरन नायर और सर माइकल ओ'डायर' के मुक़द्दमे का परिणाम। 'ली-रिपोर्ट' का प्रत्येक भारतवासी विरोध कर रहा है, और करेगा। उसी प्रकार सर शंकरनवाले मामले में भी प्रत्येक भारतीय का विश्वास है कि न्यायवादी के साथ घोर अन्याय हुआ है। प्रांतों की दृष्टि से बंगाल देशबंधु दास के साथ जान पड़ता है। महाराष्ट्र और मध्य-प्रांत भी स्वराज्य-दल के अनुयायी हैं। पंजाब और मदरास में जाति-गत विद्वेष ने सारा राजनीतिक जीवन नष्ट कर रक्खा है। गुजरात अब भी महात्माजी का अनन्य भक्त है। युक्त-प्रदेश का नेतृत्व किस दल के हाथ में है, यह बात संदिग्ध है। देश की राजनीतिक स्थिति ऐसी ही है। सरकार के भाव पूर्ववत् हैं। 'हाँ-हुज़ूरी' सहयोगी दल उसके साथ है। मज़दूर-सरकार से लोगों को अब भी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

× × ×

१३. पंजाब और हिंदी

पंजाब में हिंदी की दशा अब भी बहुत बुरी है। लिखने का अधिकांश काम-काज उर्दू में ही होता है। विगत हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में शामिल होने को जो प्रतिनिधि दिल्ली गए थे, उनको दिल्लीवालों की हिंदी के प्रति उदासीनता देखकर बहुत बड़ा दुःख हुआ था। फिर भी आर्य-समाज का भला हो, जिसकी बदौलत वहाँ हिंदी का प्रचार बढ़ता ही जाता है। जिस ढंग से आर्य-समाज ने कार्य आरंभ कर रक्खा है, उससे सफलता की पूर्ण आशा है। सबसे पहले उसने पंजाबी पत्रों में, जो फ़ारसी-लिपि में छपते हैं, संस्कृत और हिंदी के शब्दों का प्रवेश शुरू कराया। पहले ऐसी शब्दावली बहुत संकुचित थी, फिर धीरे-धीरे उसका विस्तार होता गया। अब तो यह दशा है कि पंजाब के वे पत्र, जिनका संचालन आर्य-समाज के हाथ में है, ऐसी भाषा में निकलते हैं, जिसको विशुद्ध उर्दू तो कदापि नहीं कह सकते। हाँ, यदि इस भाषा में थोड़ा और फेर-फार कर दिया जाय, और वह देवनागरी-लिपि में लिखी जाय, तो उसे मुंशी स्टाइल की हिंदी कहने में कुछ भी आपत्ति न होगी। भाषा में यह परिवर्तन उपस्थित करके आर्य-समाज अपने लिये कार्य-क्षेत्र तैयार कर रहा है। देवनागरी-लिपि बहुत सरल है, और उसका निर्माण वैज्ञानिक रीति पर हुआ है। इसलिये सभी प्रकार के लोग उसे सहज ही सीख सकते हैं। पर भाषा में वह बात नहीं है; उसको सीखने के लिये कुछ समय चाहिए। भाषा का प्रश्न हल होने में ही देर है; लिपि का प्रश्न तो चुटकी बजाते हल होगा। अगर हिंदी-भाषा और नागरी-लिपि को मदरास में सफलता मिल सकती है, तो पंजाब में तो उसका मिलना बहुत मामूली

बात है। खेद की बात है कि इस समय पंजाब के हिंदू-मुसलमानों में घोर वैमनस्य है। एक जाति दूसरी जाति पर विश्वास नहीं करती। मुसलमानों को जहाँ हिंदुओं का संगठन और शुद्धि का काम नहीं पसंद है, वहाँ हिंदी का प्रचार भी उन्हें असह्य है; पर यह एक स्वाभाविक नियम है कि वैमनस्य की दशा में एक को जो बात पसंद नहीं होती, प्रतिद्वंद्वी उसी को करने पर तुल जाता है। इस समय हिंदी के संबंध में, पंजाब में, जो कुछ विशेष चर्चा चल रही है, वह इसी ढंग की है। हमारा विश्वास है कि हिंदी की उन्नति करने अथवा उसके प्रचार में बाधा डालने के ये दोनों ही रूप अस्वाभाविक हैं, और इनसे हिंदी को न तो वास्तविक हानि पहुँचेगी, और न कोई स्थायी लाभ होगा। फिर भी पंजाब में हिंदू-समाज इस समय हिंदी के प्रश्न में दिलचस्पी ले रहा है। अतः इस समय यदि शुद्ध साहित्यिक भाव और भाषा की प्रगति के विचार से पंजाब में हिंदी का आंदोलन चलाया जाय, तो उसमें सफलता प्राप्त होने की बहुत कुछ संभावना है। थोड़े ही दिन हुए, पंजाब का प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन भी खूब धूम-धाम के साथ हो गया है। उसके सभापति स्वामी सत्यदेवजी ने बहुत ही महत्त्व-पूर्ण भाषण दिया है। इसका पंजाब की जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। जो दो-चार हिंदी के पत्र पहले से प्रांत की सेवा कर रहे हैं, वे तो हैं ही, हाल ही में पंजाब के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत पं० नेकीरामजी शर्मा के संपादकत्व में 'संदेश'-नामक एक नया पत्र निकलने लगा है। इससे हिंदी के प्रचार की बड़ी संभावना है। पर सबसे अधिक आनंददायक समाचार तो यह है कि श्रीस्वामी दयानंदजी की शताब्दी के अवसर पर पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक आर्य उक्त अवसर के एक मास पूर्व हिंदी सीख ले, नहीं तो उसका नाम प्रतिनिधियों की सूची से निकाल डाला जायगा। आर्य-समाजी जो कहते हैं वह करते अवश्य हैं, इसलिये हम पंजाब में बहुत शीघ्र हिंदी-प्रचार का सुख-स्वप्न अभी से देखने लगे हैं।

× × ×

१४. बंबई-प्रांत में बुनने का व्यवसाय

बंबई-प्रांत में हाथ से कपड़ा बुनने का व्यवसाय अच्छी दशा में है। प्रायः प्रांत-भर में ३०० ऐसे स्थान हैं, जहाँ करघों से कपड़ा बुना जाता है। २० से कम तथा ५,००० से अधिक करघे उल्लिखित प्रत्येक स्थान में नहीं चलते हैं। इन्हीं करघों की बदौलत प्रायः ८ लाख मनुष्यों की रोटियाँ चलती हैं। पर इन करघों में उन्नति की बहुत अधिक आवश्यकता है। बुनने के पहले तागे को ठीक करने में बहुत-सा तागा व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। इधर इस करघे की बुनाई का मुक़ाबिला पड़ता है मिल की बुनाई से। इस कारण यदि इसमें लगातार उन्नति न की जायगी, तो यह व्यवसाय ठंडा पड़ जायगा। हर्ष की बात है कि बंबई-सरकार का ध्यान इस ओर पहले से ही है। सरकार की ओर से कुछ छात्र सोने और चाँदी के बने तागे से बुनने का काम सीखने के लिये योरप भेजे गए थे। वे लोग अब लौट आए हैं। सूरत में सोने-चाँदी के तागों से काम करनेवाली एक फ़ैक्टरी है। वे लोग उसी में काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त प्रांतीय व्यापारिक विभाग की ओर से रँगाई और छींट-छपाई के व्यवसाय में उन्नति करने के लिये जो प्रयोग हो रहे थे, उनमें भी सफलता हुई है। अहमदाबाद और सूरत के कारख़ानों में नए ढंग से छींट-छपाई का काम शुरू हो गया है। पूर्व-आफ़्रिका में छींट की बहुत अधिक खपत है। यदि इस व्यापार में सफलता हो, तो आफ़्रिका का बाज़ार भारत को मिल सकता है। इसके अतिरिक्त विशेष प्रकार की कताई, रँगाई तथा धुलाई आदि का काम भी कई छात्र विदेशों में सीख रहे हैं। वे सरकार से छात्रवृत्ति भी पाते हैं। एक भारतीय विशेषज्ञ रंग बनाने के संबंध में विचार कर रहे हैं। यदि इसमें उन्हें सफलता हुई, तो बड़ा काम हो जायगा। बंबई में नक़ली रेशम बनवाने के विषय में भी सरकार विचार कर रही है। पर सरकार इन सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण जो कार्य करना चाहती है, वह यह है कि बंबई-प्रांत में बुनाई के काम से संबंध रखनेवाली एक संस्था स्थापित हो जाय। उसमें समय-समय पर, आवश्यकतानुसार, प्रयोग भी होंगे, और अनुसंधान का काम भी चलेगा। कैसा तागा बुनने के काम में उपयोगी होगा, वह कम समय और कम ख़र्च में अधिक-से अधिक परिमाण में कैसे तैयार किया जाय, इन सब बातों पर भी इसी संस्था में विचार किया जायगा। यह प्रस्ताव

अत्यंत उपयोगी है, और सरकार को चाहिए कि जितना शीघ्र हो सके, इसे कार्य-रूप में परिणत करे।

× × ×

१५. विज्ञापन में व्यय

समाचार-पत्रों का प्रभाव धीरे-धीरे भारतवर्ष में भी बढ़ता ही जा रहा है। इनकी उन्नति के साथ-साथ विज्ञापन देने का चलन भी ज़ोर पकड़ता जाता है। जिस पत्र में जितना ही अधिक विज्ञापन देखिए, उसकी आर्थिक भित्ति उतनी ही दृढ़ समझिए। इतना ही नहीं, अधिक विज्ञापनों से संपन्न पत्र के विषय में यह बात भी विना संकोच के कही जा सकती है कि वह खूब लोकप्रिय है। एक लेखक ने सारे संसार में प्रतिवर्ष समाचार-पत्रों द्वारा विज्ञापन-छपाई में कितना व्यय पड़ता है, इसका हिसाब लगाया है। उसका कहना है कि ५ करोड़ रुपए के विज्ञापन तो अकेले इँगलैंड में निकलते हैं। इसके चौगुने अमेरिका में तथा ५ करोड़ के ही लगभग मध्य-योरप में। सारे संसार में ३५ करोड़ पौंड या ५ अरब २५ करोड़ रुपए के विज्ञापन प्रतिवर्ष छपते हैं।

× × ×

१६. कुछ नमक की बातें

गत १५ फ़रवरी सन् १९२४ ईसवी को सर रिचर्ड एम० डेन, के० सी० आई० ई० महोदय ने Royal Socity of Arts के सम्मुख 'भारत में लवण-निर्माण' विषय पर एक व्याख्यान दिया था। उक्त भाषण का सारांश नीचे दिया जाता है—

दक्षिण-भारत में समुद्र के किनारे नमक बहुत समय से बनता था। बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसे में भी खारी समुद्र-जल को उबालकर बनाए हुए नमक का व्यवहार होता था। संयुक्त-प्रदेश आगरा तथा अवध में तीन स्थानों से नमक आता था—कुछ तो भरतपुर-राज्य के नमकीन पानी के कुओं से, कुछ गुड़गाँव-ज़िले से तथा कुछ साँभर-झील से। पंजाब में कुछ नमक तो राजपूताने से आता था, और कुछ नमक की चट्टानों से प्राप्त होता था। मध्य-भारत में राजपूताने और बंबई से नमक आता था। स्वयं राजपूताने में तो नमक की खानें ही थीं। इसके अतिरिक्त पंजाब और युक्त-प्रदेश में लोना-मिट्टी से भी नमक बनाया जाता था। सन् १७८२ ईसवी में ईस्ट-इंडिया-कंपनी ने पहले-पहल बंगाल-प्रांत में नमक का ठेका ले लिया। सरकार द्वारा यह नमक का पहला नियंत्रण था। बंगाल में सरकार को छोड़कर और किसी को नमक बेचने का अधिकार नहीं रह गया था। सन् १८६३ ईसवी में कंपनी का यह ठेका टूट गया। सन् १८७४ ईसवी से बंगाल में ८० फ़ी सदी नमक विदेश से आता है। इसके बाद देश में बने नमक पर कर बैठाया गया। इसका कर वसूल करने में बड़ी कठिनाई होती थी। विशेष कर लोना-मिट्टी से बने नमक का तो पता ही न चलता था। सन् १८३४ ईसवी के बाद सारे देश में लोना-मिट्टी से नमक बनाने की प्रथा उठा दी गई। तब से देश में उस प्रकार से नमक बनना बंद हो गया। इस पर अपने नियंत्रण को और भी दृढ़ करने के लिये जोधपुर, जयपुर-राजों तथा अन्य लोगों से सरकार ने साँभर-झील का पट्टा लिखा लिया। इसके बाद राजपूताना-मालवा-रेल भी बन गई, और सरकार को देश-भर में सस्ते दामों में नमक भेजने का और भी सुबीता हो गया। पर इस प्रतियोगिता में भरतपुर तथा गुड़गाँव में नमक बनना बंद हो गया। साँभर-झील से $1\frac{1}{2}$ लाख टन नमक प्रतिवर्ष निकलता है। इस समय विदेशों से $5\frac{1}{2}$ लाख टन नमक प्रतिवर्ष आता है। देश में इस समय १४ लाख टन के लगभग नमक बनता है। इस नमक में ६० प्रतिशतक खारी समुद्र-जल से बनाया जाता है। मदरास में बननेवाला नमक अपने प्रांत-भर के ही काम आता है, पर बंबई का बना नमक अन्य प्रांतों में भी जाता है। बंगाल में इँगलैंड से जो नमक आता था, उसकी रफ़्तनी योरपियन महासमर के समय से बंद हो गई थी, और उसकी जगह अदन और सम्मद-बंदर का नमक आने लगा था। युद्ध का अंत होने पर अँगरेज़ी नमक फिर चल पड़ा है। साँभर से अधिक नमक निकालने का उद्योग हो रहा है; पर विशेषज्ञों का कहना है कि इससे झील की उपयोगिता सदा के लिये नष्ट हो जायगी।

ऊपर जो अत्यंत संक्षिप्त सारांश दिया गया है, उसको पढ़कर पाठक देख सकते हैं कि हमारे देश में नमक के व्यवसाय को भी ईस्ट-इंडिया-कंपनी ने किस तरह तबाह किया। इन प्रांतों में आज भी लोनिया-जाति मौजूद है, जिनके पूर्वज नमक बनाकर अपनी जीविका चलाते थे। पर उनके वंशज अब कहने-भर को लोनिया रह गए हैं। एक लोनिया स्त्री का शब्द-चित्र देखिए—

"धीर अकूरान सेत लुगुरा लहरि लेत,
लुगी लहँगा की रँगी, रँगी रंग हेरा की ;
गति मैं गुभ्फ़ र परी अँगिया उमंग उर,
ताय तनि पोही पीत पोति है तिफेरा की ;
हाथने लखौट, पाँय चूरा, पचमनी गरे,
गोरी की जुगुल जानु कोरी मनो केरा की ;
गजमौनी नोनी धरे नोन की ढरैया सीस,
नीरज-से नैन नारि निरखी लुनेरा की।"

× × ×

१७. कुछ जानने योग्य बातें

१—गर्भ में लड़का है या लड़की, यह जानने का कोई उपाय न था। हाल में जेकोस्लाविया-निवासी डॉक्टर ऐज़क फ़ायड ने यह घोषणा की है कि वह गर्भिणी के रक्त की परीक्षा करके, प्रसव के चार महीने पहले ही, बतला देते हैं कि लड़की होगी या लड़का। उनकी ऐसी भविष्यद्वाणी कई बार सत्य सिद्ध हो चुकी है।

२—हार्वर के मान-मंदिर में जो दूरबीन है, वह पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। हाल में उसकी सहायता से आकाश का पर्यवेक्षण करते समय सहसा बहुदूरवर्ती एक नए ग्रह का पता लगा है। यह ग्रह पृथ्वी से इतने फ़ासले पर है कि यहाँ से, उस सर्वश्रेष्ठ दूरबीन के द्वारा, एक सरसों के बराबर देख पड़ता है। कैलीफ़ोर्निया के विल्सन-पर्वत पर के मान-मंदिर से उसका जो फ़ोटो लिया गया है, उससे जान पड़ता है कि वह पृथ्वी का ही जाति-भाई है। इसकी दूरी का अंदाज़ इस तरह लगाया गया है—प्रकाश एक सेकिंड में १ लाख ८६ हज़ार मील जाता है, और इतने वेग से चलने पर भी उस नवीन ग्रह का प्रकाश १० लाख वर्ष में हमारी पृथ्वी तक पहुँचा होगा ; अर्थात् २ के अंक पर १८ सुन्न रखने पर जो संख्या होती है, उतने मील दूर यह ग्रह है।

३—प्रायः सभी लोगों ने इस पर ध्यान दिया होगा कि बहुत छोटे-छोटे जीव-जंतु परस्पर मिलकर चुप-चाप अपना काम करते रहते हैं। किंतु वे किसी तरह के शब्द द्वारा अपने मन का भाव एक दूसरे को जताते हैं या नहीं, यह बहुत कम लोग जानते होंगे। प्राणितत्त्व के विशेषज्ञ कहते हैं कि वे भी बोलते-चालते हैं ; और उस शब्द का कंपन इतना शीघ्र होता है कि हम सुन ही नहीं पाते। प्रति सेकिंड में उस कंपन की ताल २०,००० मात्रा से भी अधिक होने के कारण, मनुष्य के कानों की कौन कहे, बहुत उत्कृष्ट शब्दग्राही यंत्र भी उसे ग्रहण नहीं कर सकता। अमेरिका, वेस्टिंग-हाउस के तड़ित्तत्त्वज्ञ डॉक्टर फ़िलिप टॉमस इस विषय में बहुत दिन से चेष्टा कर रहे थे। अब जाकर वह एक ऐसा अनुश्रवण-यंत्र (Ultra audible radio microphone) बना सके हैं, जिसकी सहायता से हम चींटी, मकड़ी आदि क्षुद्रतम कीट-पतंगों की वाणी तक सुन सकेंगे।

४—विलायत में, सन् १८४१ में, सबसे पहले डाक के टिकट का उपयोग हुआ था, और वह काले रंग का था।

५—विएना-शहर में एक बाजे बजानेवालों का दल है, जिसका हरएक शख़्स डॉक्टर है।

६—पुराने डाक के टिकट जमा करने का शौक़ पाश्चात्य देशों में बहुत बढ़ा हुआ है। जितना ही पुराना और अप्राप्य टिकट होता है, उतने ही अधिक मूल्य पर बिकता है। मारिशस का, सन् १८४७ का, दो आने दाम का, एक टिकट हाल में ६,०००) का बिका है।

७—मील की नाप संसार में सर्वत्र एक-सी नहीं है। यथा स्वीडन में १,६१० गज़ का, भारत में १,७६० गज़ का और हालैंड में १,०९३ गज़ का एक मील होता है।

८—एस्बेस्टस-नामक पदार्थ एक हज़ार पाँच सौ डिग्री के ताप में भी नहीं गलता। बायस्कोप वग़ैरह के न जलनेवाले परदे इसी के बनते हैं। मिट्टी के नीचे पहाड़ों से यह पदार्थ प्राप्त होता है।

९—चौबीस घंटे में मनुष्य के शरीर में जो गरमी पैदा होती है, उससे २२ सेर बर्फ़ को गलाकर पानी का रूप दिया जा सकता है, और उस जल को २१२ डिग्री तक गरम किया जा सकता है।

१०—पृथ्वी पर सबसे छोटी रेल-लाइन है रैवेन-ग्लास एक्सडेल लाइन। उसके एंजिन चलानेवाले और गार्ड की अवस्था भी १६ वर्ष की है। एंजिन चलानेवाले का नाम बारहार्डी है, और वह आठ वर्ष से यह काम कर रहा है।

११—एक पूरी अवस्था की सील-मछली अंदाज़न् चार हाथ लंबी और ढाई मन भारी होती है।

१२—इटली के निकोला सैंटो साहब जो हवाई जहाज़ तैयार कर रहे हैं, वह सबसे बड़ा होगा। वह ४२६ फ़ीट लंबा, १५३ फ़ीट चौड़ा और ५० फ़ीट ऊँचा है। वह एक घंटे में १२५ मील जायगा। उसमें बहुत-सा माल-असबाब लादकर २०० आदमी जा सकेंगे। उसके भीतर सोने, भोजन करने और बाजा बजाने के अलग-अलग स्थान रहेंगे; बेतार के तार का सब सामान भी रहेगा। उसके बनकर तैयार होने में ७½ लाख रुपए ख़र्च होंगे।

१३—जगत् की सबसे प्राचीन खान है स्वीडन की फ़ैलन-नामक ताँबे की खान। सन् १२२५ से उसमें काम हो रहा है।

१४—अमेरिका के कालोरेडो-नामक जंगी जहाज़ में जो तोपें हैं, वे २८ मन भारी गोला १९ मील तक फेंक सकती हैं।

१५—मर्दों का मस्तिष्क २० वर्ष की अवस्था में और स्त्रियों का मस्तिष्क १७ वर्ष की अवस्था में परिपूर्णता को प्राप्त होता है।

१६—मनुष्य के शरीर के इंच-भर चमड़े में ३,५०० छेद होते हैं।

१७—अमेरिका के प्रसिद्ध धनी जे० डी० राकफ़ेलर पहले ३०) महीने के वेतन पर क्लर्की करते थे।

१८—ब्रिटिश-साम्राज्य-प्रदर्शिनी में एक बहुत ही छोटी जेबघड़ी दिखलाई गई है। इसका आकार छः पेनी के सिक्के से बड़ा नहीं है, और इसका घन-परिमाण हाफ़ गिनी के बराबर है। यह पृथ्वी की सबसे छोटी जेब-घड़ी बहुत सुंदर बनी है। इसका मूल्य १५ हज़ार रुपए तक लग चुका है।

१९—इसी प्रदर्शिनी में जो इंजीनियरिंग हाल बना है, उसके बनाने में ४० हज़ार पौंड के लगभग ख़र्च बैठा है।

२०—घरों में मकड़ियाँ घंटे में ६० के लगभग हिसाब से अंडे देती हैं। वे उन्हें एक रेशमी थैली के भीतर बड़े यत्न से सुरक्षित रखती हैं।

२१—दक्षिण-टिनत्रौसिया-राज्य में एक पुराना लिखा काग़ज़ प्राप्त हुआ है। जब रोमन सामरिक राज्य में ईसा का विचार हुआ था, तब लिखा गया, उसी संबंध का, यह काग़ज़ बतलाया जाता है।

२२—विलायत का हरएक आदमी औसत हिसाब से साल में १० पौंड साबुन ख़र्च करता है।

२३—लोगों का ख़याल है कि भविष्य में जापान और अमेरिका के बीच युद्ध अवश्य होगा। यह भी कहा जाता है कि उसमें जल-युद्ध की ही प्रधानता होगी। आकाश-युद्ध भी अवश्य ही होगा। दोनों ही पक्ष हवाई जहाज़ों से शत्रु के सीमा पर के बंदरगाहों और क़िलों पर बम की वर्षा करेंगे। जल-युद्ध की सामग्री जापान और अमेरिका के पास इस प्रकार है—ड्रेडनाट और बैटलशिप जापान के पास १० और अमेरिका के पास १८ हैं। इसी तरह क्रूज़र क्रमशः १८ और २५, टार्पेडो, गनबोट, डेस्ट्रायर क्रमशः १२५ और ३०२ तथा टार्पेडो-बोट और सबमेरीन क्रमशः ६४ और १४४ हैं। सर्वसाधारण की धारणा है कि जल-युद्ध में दोनों शक्तियाँ समान निपुण हैं।

२४—एक विलायती पत्र में इँगलैंड के धनी लोगों की संख्या प्रकाशित हुई है। ३०,०००) से अधिक सालाना आमदनी होने के कारण इनकम-टैक्स देने-वालों का ही शुमार उस सूची में किया गया है। बहुत अधिक आमदनीवाले लोगों की संख्या इस प्रकार है—

सालाना आमदनी	संख्या
१५ लाख	१३७
११¼ लाख	१२७
७½ लाख	२७८
६ लाख	२९१
३¾ लाख	१,०८१

२५—गत ७ जून को कलकत्ते में करेंसी-विभाग का हिसाब इस प्रकार था—१,७४,४२,३६,८७५ रुपए के जो नोट चल रहे थे, उनमें ८,१२,७१० रुपए के नोट कम हो गए। रक्षित-भांडार में जो ७०,४८,०३,९७६ रुपए के चाँदी के सिक्के थे, उनमें ८,२२,८५४ रुपए के सिक्के कम हो गए; और सोने के सिक्के तथा चाँदी-सोना जो २२,३१,६७,४५२ रुपए का था, उसमें १,०४४० रुपए की रक़म बढ़ गई। चाँदी के ६,०९,९२,१३१ रुपए के सिक्के ढाले जा रहे हैं। सब सिक्के और सोने-चाँदी का टोटल ९८,८९,६२,६५९ रुपए का था। उसमें ८,१२,७१० रुपए की रक़म कम हो गई। कंपनी काग़ज़, ख़रीद की [illegible] में १३,९९,९९,२७० रुपए का और

भारत में ५७,५२,७४,६४६ रुपए का था—कुल रक्षित-भांडार का टोटल १,७०,४२,३६,८७५ रुपए का था। उसमें ८,१२,७१० रुपए की कमी हुई।

२६—सिंध-प्रदेश में, सक्खर से ४० मील दूर, माहेजोडड़ो नाम का एक स्थान है। वहाँ कुछ ऐसी चीज़ें खुदाई में मिली हैं, जो प्रत-तत्त्व की दृष्टि से बड़ी प्रयोजनीय और बहुमूल्य हैं। मिट्टी के नीचे से चित्र-लिपि-सहित सील-मोहरें, मिट्टी के बरतन, सीपी की कारीगरी, मणि-मुक्ता-जटित आभूषण, दो शतरंज की गोटें, एक साँचा तथा और भी कुछ चीज़ें निकली हैं। प्रत-तत्त्व के विशेषज्ञों ने जाँचकर अनुमान लगाया है कि ढाई हज़ार वर्ष पहले सिंध-प्रदेश में सभ्यता की अच्छी उन्नति हुई थी, और उसी युग की ये चीज़ें हैं।

× × ×

१८. विलायत के प्रसिद्ध पत्रों की खपत

भारत के देशी भाषाओं के दैनिक, साप्ताहिक और मासिक आदि पत्र तो ग्राहक-संख्या का रोना रोते ही हैं, यहाँ के अँगरेज़ी दैनिक पत्रों की भी ग्राहक-संख्या विलायती पत्रों की ग्राहक-संख्या के मुक़ाबिले में नहीं के बराबर हैं। हाल में विलायत के एडवर्टाइज़र्स ए०बी०सी० में कई प्रसिद्ध पत्रों की, सन् १९२४ की, ग्राहक-संख्या प्रकाशित हुई है, जो इस प्रकार है—

पत्र	ग्राहक-संख्या
दि टाइम्स	७,६१,८६६
न्यूज़ ऑफ़ दि वर्ल्ड	३०,००,०००
डेली हेरल्ड	२,००,०००
डेली मिरर	१०,०८,८८२
डेली क्रानिकल	१०,००,०००
जॉन बुल	७,१६,२५५
आटोकर	४१,३५३
पंच	१,००,०००
पिक्चर शो	२,६८,३८०
एनसास	४,७८,६२१
ब्वायज़ मेगज़ीन	२,०४,३५१
ब्वायज़ ओन पेपर	३६,०००
कलर	८,६३५
गुड हाउस कीपिंग	१,४४,४७६
माई मेगज़ीन	१,०६,१०१
लोवज़ मेगज़ीन	१.६२,६०८
संडे अट होम	२०,०००
इलस्ट्रेटेड ड्रेसमेकर	६,१३,६१२
लेडीज़ जर्नल	४,४२,६३१
स्पोर्ट टाइम्स	५८,६६१
ब्रिटिश वीकली	८०,०००

× × ×

१९. शतरंज के खेल का इतिहास

शतरंज के खेल का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। किसने इस खेल का आविष्कार किया, यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोगों का ख़याल यह है कि मुसलमान-बादशाहों ने इस खेल का आविष्कार किया। किंतु यह मत ठीक नहीं जान पड़ता। यह सच है कि मुसलमान-बादशाह इस खेल के बड़े भक्त होते थे, मगर उनके शासन से पहले भी भारत में शतरंज का खेल प्रचलित होने का प्रमाण पाया गया है। खोज से यही सिद्ध हुआ है कि शतरंज (चतुरंग-क्रीड़ा) का आदि-स्थान या जन्मभूमि भारत ही है। अरब के सौदागरों ने यहाँ की अन्य बहुत-सी बातें ले जाकर जैसे योरप में फैलाई हैं, वैसे ही शतरंज का खेल भी। भारत से सर्वप्रथम शतरंज की शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य स्पेन (Spain) है। मध्य-युग में स्पेन और फ़्रांस के राजदरबारों में शतरंज का खेल प्रचलित था। फ़्रांस ने स्पेन से ही शतरंज सीखी। आज दिन पाश्चात्य देशों में इस खेल का चलन बहुत अधिक है। इसके संबंध में अनेक पुस्तकें भी लिखी जा चुकी हैं। इन दिनों योरप में एक बालक खिलाड़ी है, जो एकसाथ अठारह बाज़ियाँ खेल सकता है! भारत में भी शतरंज के अच्छे खिलाड़ी हो गए हैं, और अब भी राजदरबारों में ढूँढ़ने से निकल आवेंगे। पं० अंबिकादत्तजी व्यास भी अच्छी शतरंज खेलते थे। उनके पत्र पीयूष-प्रवाह में परिमित चालों से मात करने के नक़्शे छपा करते थे। इसमें संदेह नहीं कि यह खेल बुद्धि बढ़ानेवाला है।
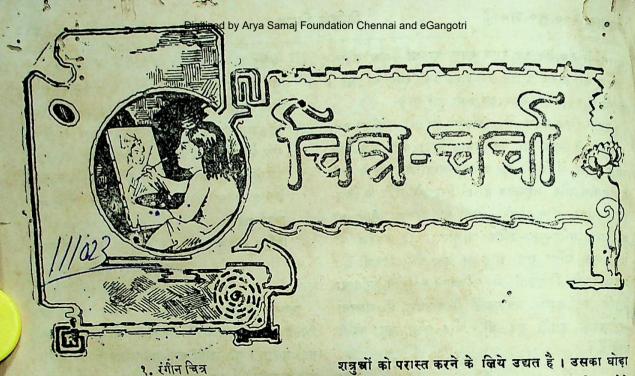
१. रंगीन चित्र

पहला रंगीन चित्र मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब की प्यारी और विदुषी ज्येष्ठ कन्या ज़ेबुन्निसा का है। चित्र १००-१५० वर्ष का पुराना और बहुत सुंदर है। दर पर परदे की लपेट, खुली हुई खिड़की से दिखाई पड़नेवाला दूर का शहर का दृश्य, शाहज़ादी और सहेलियों का अंग-सौष्ठव, रोब-दाब, भावभंगी, सब कुछ कारीगर की विलक्षण निपुणता का परिचय देनेवाला है। शाहज़ादी के सामने सखियाँ बैठी हुई राग अलाप कर, बाजे बजा-कर, उसका मनोरंजन कर रही हैं। यह चित्र जयपुरी क़लम की कारीगरी का नमूना है। पं० हनूमान शर्मा-जी ने इसे भेजने की कृपा की है।

दूसरा रंगीन चित्र महात्मा और कविवर कबीरदास-जी का है। इसके चित्रकार हैं स्वनाम-धन्य प्रो० ईश्वरी-प्रसाद वर्माजी के सुपुत्र और बाबू रामेश्वरप्रसादजी वर्मा के भ्राता बाबू महावीरप्रसादजी वर्मा। कबीर बैठे हुए अपना वस्त्र बुनने का काम कर रहे हैं। चित्र के नीचे कबीरदासजी का ही बनाया हुआ जो पद दिया गया है, उससे इस वस्त्र-वयन का रहस्य और भी स्पष्ट हो जाता है। कला की दृष्टि से भी चित्र कम महत्त्व का नहीं है। चित्र की ख़ूबियाँ परिचय में कहाँ तक लिखी जायँ—ग़ौर के साथ देखने से ही वे जानी जा सकती हैं।

तीसरा रंगीन चित्र महाभारत के सुप्रसिद्ध दृश्य का है। पिता अर्जुन और मामा कृष्ण के समान बल-वीर्य-संपन्न बालक अभिमन्यु वीर-वेष से समर में जाने और शत्रुओं को परास्त करने के लिये उद्यत है। उसका घोड़ा तैयार खड़ा है। वह अपनी प्रिया उत्तरा से बिदा होने के लिये आया है। बालिका पत्नी अपने प्राणनाथ को अकेले महारथियों की सेना में भेजते उद्विग्न और शंकित हो रही है! अभिमन्यु उसे सांत्वना दे रहा है। दोनों के मुखमंडलों पर भिन्न-भिन्न भाव बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाकर उस समय का सजीव दृश्य सामने उपस्थित कर दिया गया है। इसके चित्रकार हैं श्रीयुत चौधरी रमाशंकरदत्तजी।

२. व्यंग्य-चित्र

पहला चित्र है कलियुग की सूपनखा। यह चित्र कल्पित नहीं, ऐतिहासिक है। यह डचेज़ मार्गरेट वास्तव में सूपनखा ही थी—रूप और कर्मों में भी। प्रो० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा ने एक विलायती पत्र से इस चित्र की कॉपी की है। इसका परिचय पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मांजी के लिखे इसके संबंध के लेख में पढ़िए।

दूसरा व्यंग्य-चित्र 'रस-रंग' है। इसमें ऐसे वृद्ध और वृद्धा अंकित हैं, जिनकी अवस्था अधिक हो जाने पर भी हृदय से जवानी की उमंग नहीं गई है। दोनों अपने को सोलह-सोलह बरस का ही समझ रहे हैं। भारत में इन दिनों ऐसे वृद्धों की कमी नहीं है, जो ख़िज़ाब लगाकर माँग निकालते हैं, दाँत बँधवाकर जवानों का पार्ट अदा करते हैं, और जवानों के-से हाव-भाव दिखाकर अपना उपहास कराते हैं। यह चित्र भी बाबू रामेश्वरप्रसादजी वर्मा का बनाया हुआ है।

मदरास में राष्ट्र-भाषा का सच्चा प्रचार !!!

"हिंदी-प्रचारक"

(दक्षिण-भारत का एक-मात्र हिंदी मासिक पत्र)

वार्षिक चंदा ३ रुपए] [नमूना पांच आने

[संपादक—हृषीकेश शर्मा]

मदरास से निकलनेवाला हिंदी का यही एक राष्ट्रीय सचित्र मासिक पत्र है। इसमें हिंदी के सुलेखकों तथा सुकवियों के लिखे हुए साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक लेख, जीवन-चरित्र, देश के पवित्र तीर्थों का सचित्र वर्णन, छोटी-छोटी सुंदर कहानियाँ, गल्प, कविता आदि-विषयक लेख छपते हैं। भाषा इसकी बहुत सरल है। हरएक हिंदी-भाषा-भिमानी भारतीय को इस पत्र का ग्राहक बनकर हिंदी-प्रचार में सहायता देनी चाहिए। 'हिंदी-प्रचारक' दक्षिण-भारत को उत्तर-भारत के साथ मिलाने का सच्चा माध्यम है। अपने दोस्तों को भी इसे सहायता देने के लिये प्रेरणा कीजिए।

आज ही वार्षिक चंदा भेजकर स्थायी ग्राहक बन जाइए। मदरास-प्रांत में राष्ट्र-भाषा हिंदी के प्रचार में सहायता दीजिए।

हिंदी-प्रेमियों से विशेष निवेदन !

हमारे उत्तर-भारतीय हिंदी-प्रेमी भाई अपने जिन दक्षिण-भारतीय भाइयों की "अंडा-गुड़गुड़" बोली सुनकर घबड़ा जाते हैं, वे भी आपकी घबड़ाहट दूर करने के लिये कैसी हिंदी सीख चुके हैं और बोलते-लिखते हैं, यह भी आपको 'हिंदी-प्रचारक' में पढ़ने को मिलेगा। ग्राहक बनकर ज़रूर इस पत्र की सहायता कीजिए। जब अन्य-भाषा-भाषी लोग राष्ट्र-भाषा-प्रचार के लिये इतना उद्योग कर रहे हैं तब आप हिंदी-भाषा-भाषी राष्ट्र-भाषा के प्रचार में क्या इतनी भी सहायता नहीं कर सकते कि वार्षिक ३) चंदा देकर इस पत्र के ग्राहक बनकर हिंदी-प्रचार में हमारा उत्साह तो बढ़ावें।

हिंदी-माता के दुलारे सुयोग्य उत्साही उदीयमान सुलेखकों से भी विनय है कि वे भी अपनी ओजस्विनी लेखनी के प्रसाद से 'हिंदी-प्रचारक' को मदरास-प्रांत के लिये प्रतिमास सहायता देना अपना कर्तव्य समझें !

७०/२४८ **व्यवस्थापक, 'हिंदी-प्रचारक' ट्रिप्लिकेन, मदरास।**

हँसी का भंडार

मगाने में देरी न करें

दशों प्रकार की शर्तिया
हँसी दिलानेवाले
चुटकुलों का संग्रह

हँसोड़ मूल्य ॥)

हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर देने-
वाली सुनने-सुनाने योग्य कहानियाँ
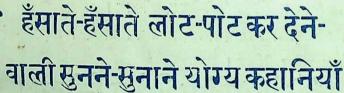
विदूषक मू० ॥।)

पुस्तकें सुंदर मोटे अक्षरों में सफ़ेद काग़ज़ पर
छापी गई हैं

दोनों पुस्तकें साथ लेने से १=) में मिलेंगी । डाक-खर्च ।-)

मिलने का पता—
हिमालयडिपो
मुरादाबाद.